ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : प्राकृत ग्रन्थांक–१९

श्रीमन्नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिरचित

गोम्मटसार

(जीवकाण्ड)

भाग–२

[श्रीमत्केशवण्णविरचित कर्णाटकवृत्ति, संस्कृत टीका जीवतत्त्वप्रदीपिका,
हिन्दी अनुवाद तथा प्रस्तावना सहित]

सम्पादक
स्व. डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये
एम. ए., डी. लिट्.
सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर नि० संवत् २५०५ : वि० संवत् २०३५ : सन् १९७९
प्रथम संस्करण : मूल्य–पैंतीस रुपये

स्व. पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें
स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित
एवं
उनकी धर्मपत्नी स्वर्गीया श्रीमती रमा जैन द्वारा संपोषित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री
डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन

•

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : बी/४५-४७, कॅनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-११०००१

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-२२१००१

•

स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७०, विक्रम सं० २०००, १८ फरवरी १९४४

भारतीय ज्ञानपीठ : संस्थापना 1944



मूल प्रेरणा
दिवंगता श्रीमती मूर्तिदेवी जी
मातुश्री श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन



अधिष्ठात्री
दिवंगता श्रीमती रमा जैन
धर्मपत्नी श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन

JÑĀNAPĪṬHA MŪRTIDEVĪ GRANTHAMĀLĀ : Prakrit Grantha No. 15

GOMMATASĀRA

(JĪVAKĀṆḌA)

Vol. II

of

ĀCĀRYA NEMICANDRA SIDDHĀNTACAKRAVARTI

With Karṇātakavṛti, Sanskrit Ṭīkā Jīvatattvapradīpikā,
Hindi Translation & Introduction

by

(Late) Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.
Siddhantacharya Pt. Kailash Chandra Shastri

BHARATIYA JNANPITH PUBLICATION

VĪRA NIRVĀṆA SAṀVAT 2505 : V. SAṀVAT 2035 : A. D. 1979
First Edition : Price Rs. 35/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA
MŪRTIDEVĪ JAIN GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

LATE SAHU SHANTI PRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE MOTHER SHRIMATI MURTIDEVI

AND

PROMOTED BY HIS BENEVOLENT WIFE

LATE SHRIMATI RAMA JAIN

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAINA ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL, PURĀNIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRAKRIT, SANSKRIT, APABHRMŚA, HINDI, KANNAḌA, TAMIL, ETC., ARE BEING PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES.

ALSO

BEING PUBLISHED ARE

CATALOGUES OF JAINA-BHAṆḌĀRAS, INSCRIPTIONS, ART AND ARCHITECTURE, STUDIES BY COMPETENT SCHOLARS AND POPULAR JAINA LITERATURE

●

General Editors

Siddhantacharya Pt. Kailash Chandra Shastri
Dr. Jyoti Prasad Jain

●

Published by

Bharatiya Jnanpith

Head Office · B/45-47, Connaught Place, New Delhi-110001

●

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam. 2470, Vikrama Sam. 2000, 18th Feb., 1944

विषय-सूची

१६. भव्यमार्गणाधिकार ७८६–८००

१७. सम्यक्त्व मार्गणाधिकार ८०१–८९१

१८. संज्ञिमार्गणा ८९२–८९४

१९. आहारमार्गणा ८९५–८९९

२०. उपयोगाधिकार ९००–९०३

२१. ओघादेश प्ररूपणाधिकार ९०४–९३४

२२ आलापाधिकार ९३५–१०७२

कुमति कुश्रुतज्ञानि मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक	बीस प्ररूपणा	१०२९
,, ,, ,, अपर्याप्तक	,,	१०३०
,, ,, सासादन	,,	,,
,, ,, ,, पर्याप्तक	,,	,,
,, ,, ,, अपर्याप्तक	,,	१०३१
विभंगज्ञानि	,,	,,
,, मिथ्यादृष्टि	,,	,,
,, सासादन	,,	,,
मतिश्रुतज्ञानि	,,	,,
,, पर्याप्तक	,,	१०३२
,, अपर्याप्तक	,,	,,
,, असंयत	,,	,,
मतिश्रुतज्ञानि असंयत अपर्याप्तक	,,	१०३२
,, ,, पर्याप्तक	,,	,,
मनःपर्ययज्ञानि	,,	१०३३
केवलज्ञानि	,,	,,
संयमानुवाद	,,	,,
,, प्रमत्त संयत	,,	,,
,, अप्रमत्त सं.	,,	१०३४
सामायिक संयम	,,	,,
परिहारविशुद्धि	,,	,,
यथाख्यात संयम	,,	,,
असंयम	,,	१०३५
,, पर्याप्तक	,,	,,
,, अपर्याप्तक	,,	,,
चक्षुदर्शनी	,,	१०३६
,, पर्याप्तक	,,	,,
,, अपर्याप्तक	,,	,,
,, मिथ्यादृष्टि	,,	,,
,, ,, पर्याप्तक	,,	१०३७
,, ,, अपर्याप्तक	,,	,,
अचक्षुदर्शनी	,,	,,
,, पर्याप्तक	,,	,,
,, अपर्याप्तक	,,	१०३८
,, मिथ्यादृष्टि	,,	,,
,, ,, पर्याप्तक	,,	,,
,, ,, अपर्याप्तक	,,	,,

अवधिदर्शनी	बीस प्ररूपणा	१०३९
,, पर्याप्तक	,,	,,
,, अपर्याप्तक	,,	,,
कृष्णलेश्या	,,	,,
,, पर्याप्तक	,,	,,
,, अपर्याप्तक	,,	१०४०
,, मिथ्यादृष्टि	,,	,,
,, ,, पर्याप्तक	,,	,,
,, ,, अपर्याप्तक	,,	,,
,, सासादन	,,	१०४१
,, ,, पर्याप्तक	,,	,,
,, ,, अपर्याप्तक	,,	,,
,, मिश्र	,,	,,
,, असंयत सम्यग्दृष्टि	,,	,,
,, ,, पर्याप्तक	,,	१०४२
,, ,, अपर्याप्तक	,,	,,
कपोतलेश्या	,,	,,
,, पर्याप्तक	,,	१०४३
,, अपर्याप्तक	,,	,,
,, मिथ्यादृष्टि	,,	,,
,, ,, पर्याप्तक	,,	,,
,, ,, अपर्याप्तक	,,	१०४४
,, सासादन	,,	,,
,, ,, पर्याप्तक	,,	,,
,, ,, अपर्याप्तक	,,	,,
,, सम्यग्मिथ्यादृष्टि	,,	,,
,, असंयत सम्यग्दृष्टि	,,	१०४५
,, ,, पर्याप्तक	,,	,,
,, ,, अपर्याप्तक	,,	,,
तेजोलेश्या	,,	,,
,, पर्याप्तक	,,	,,
,, अपर्याप्तक	,,	१०४६
,, मिथ्यादृष्टि	,,	,,
,, ,, पर्याप्तक	,,	,,
,, ,, अपर्याप्तक	,,	,,
,, सासादन	,,	,,
,, ,, पर्याप्तक	,,	१०४७
,, सासादन अपर्याप्त	,,	,,

ज्ञानमार्गणाधिकारः ॥१२॥

अनंतरं श्रीनेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्त्तिगळु ज्ञानमार्गणेयं पेळलुपक्रमिसि निरुक्तिपूर्व्वकं ज्ञानसामान्यलक्षणमं पेळ्वपरु ।

जाणइ तिकालविसए दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे ।
पच्चक्खं च परोक्खं अणेण णाणेत्ति णं वेंति ॥२९९॥

जानाति त्रिकालविषयान् द्रव्यगुणान् पर्य्यायांश्च बहुभेदान् । प्रत्यक्षं परोक्षमनेन ज्ञानमिति इदं ब्रुवंति ॥

त्रिकालविषयान् वृत्तवत्स्यंद्वर्त्तमानकालगोचरंगळप्प बहुभेदान् जीवादि ज्ञानादि स्थावरादि नानाप्रकारंगळप्प द्रव्यगुणान् जीवपुद्गलधर्म्माऽधर्म्माऽऽकाशकालंगळेंब द्रव्यंगळुमं ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वसुखवीर्य्यादिगळुं स्पर्शरसगंधवर्णादिगळुं गतिस्थित्यवगाहनवर्त्तनाहेतुत्वादिगळमेंबी गुणंगळुमं पर्य्यायांश्च स्थावरत्वत्रसत्वंगळुमणुत्वस्कंधत्वंगळुं अर्त्थव्यंजनभेदंगळुमं पेरवुमेंबी पर्य्यायंगळुमनात्मं प्रत्यक्षं स्पष्टं परोक्षं च अस्पष्टमुमागि अनेन जानातीति अरिगुमिदरिनेंदितु ज्ञानमितीदं ज्ञानमेंदितिदं करणभूतमप्प स्वात्थव्यवसायात्मकमप्प जीवगुणमं ब्रुवंति पेळ्वरर्हंदादिगळो ज्ञानमे

वासवै पूज्यपादाब्जं समवसृतिसंस्कृतम् ।
द्वादशं तीर्थकर्तारं वासुपूज्य जिनं स्तुवे ॥१२॥

अथ श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तचक्रवर्ती ज्ञानमार्गणामुपक्रममाणो निरुक्तिपूर्वकज्ञानसामान्यलक्षणमाह—

त्रिकालविषयान् वृत्तवत्स्यद्वर्तमानकालगोचरान् बहुभेदान्–जीवादिज्ञानादिस्थावरादिनानाप्रकारान् द्रव्याणि जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालाख्यानि, गुणान् ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वसुखवीर्यादीन् स्पर्शरसगन्धवर्णादीन् गतिस्थित्यवगाहनवर्तनाहेतुत्वादींश्च पर्यायाश्च स्थावरत्रसत्वादीन् अणुत्वस्कन्धत्वादीन् अर्थव्यञ्जनभेदानन्याश्च आत्मप्रत्यक्ष स्पष्ट परोक्ष च अस्पष्टं अनेन जानातीति ज्ञानमितीदं करणभूतं स्वार्थव्यवसायात्मकं जीवगुणं

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ज्ञानमार्गणाको प्रारम्भ करते हुए निरुक्तिपूर्वक ज्ञानसामान्यका लक्षण कहते हैं—

त्रिकाल अर्थात् अतीत, अनागत और वर्तमान कालवर्ती बहुत भेदोंको अर्थात् जीव आदि स्थावर आदि नाना प्रकारोंको, जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल नामक द्रव्योंको, ज्ञान दर्शन सम्यक्त्व सुख वीर्य आदि और स्पर्श रस गन्ध वर्ण आदि गुणोंको, तथा गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व आदि पर्यायोंको, स्थावर त्रस आदिको, परमाणु स्कन्ध आदिको अर्थपर्याय और व्यंजनपर्यायोंको इसके द्वारा प्रत्यक्ष अर्थात् स्पष्ट और परोक्ष अर्थात् अस्पष्ट रूपसे जानता है इसलिए अर्हन्त आदि इसे ज्ञान कहते हैं यह जीवका व्यवसायात्मक गुण है। यह ज्ञान ही प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे दो

१. म तिकालसहिए । २. त्रिकालसहितान् ।

प्रत्यक्षं परोक्षमुमेंदितु द्विप्रकारमप्प प्रमाणमक्कुं । तत्स्वरूपसंख्याविषयफललक्षणंगळं तद्विप्रतिपत्तिनिराकरणमिमं स्याद्वादमतप्रमाणस्थापनमुमं सविस्तरमागि मार्त्तंडादितर्क्कशास्त्रंगळोळु नोडिकोळल्पडुवुदें के दोडेऽहेतुवादरूपमप्पागमदोळं हेतुवादक्कनधिकारत्वदिदं ।

अनंतरं ज्ञानभेदमं पेळ्वपं ।

पंचेव होंति णाणा मदिसुदओहीमणं च केवलयं ।
खयउवसमिया चउरो केवलणाणं हवे खइयं ॥३००॥

पंचैव भवंति ज्ञानानि मतिः श्रुतावधिमनःपर्य्ययश्च केवलं । क्षायोपशमिकानि चत्वारि केवलज्ञानं भवेत्क्षायिकं ॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलमें दितु सम्यग्ज्ञानंगळुमय्दे अप्पुव नाधिकंगळल्तु । येत्तलानु सामान्यापेक्षेयिदं संग्रहरूपद्रव्यार्त्थिकनयमनाश्रयिसि ज्ञानमों दे यें दु पेळल्पट्टुदंतादोडं विशेषापेक्षेयिदं पर्य्यायार्त्थिकनयमनाश्रयिसि ज्ञानंगळय्दे एंदितु पेळल्पट्टुवें बुदत्थं । अवरोळु मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययमें ब नाल्कुं ज्ञानंगळुं क्षायोपशमिकंगळप्पुवु । मतिज्ञानाद्यावरणवीर्य्यांतरायकर्म्मद्रव्यगळनुभागक्के सर्व्वघातिस्पर्द्धकंगळगुदयाभावरूपमं क्षयमें बुदनुदयप्राप्तंगळ्गे सदवस्थारूपमनुपशममें बुदु । क्षयश्चासावुपशमश्च क्षयोपशमः । क्षयोपशमे भवानि क्षायोपशमिकानि । अथवा क्षयोपशमः प्रयोजनमेषां क्षायोपशमिकानि । तत्तदावरणदेशघातिस्पर्द्धकंगळुदयक्के विद्यमानत्व-

ब्रुवन्ति—कथयन्ति अर्हदादयः । एतज्ज्ञान प्रत्यक्षं परोक्षं चेति द्विविधं प्रमाणं भवति । तत्स्वरूपसंख्याविषयफललक्षणानि तद्विप्रतिपत्तिनिराकरणं स्याद्वादमतप्रमाणस्थापनं च सविस्तरं मार्तण्डादितर्कशास्त्रेषु द्रष्टव्यं, अत्राहेतुवादरूपे आगमे हेतुवादस्यानधिकारात् ॥२९९॥ अथ ज्ञानभेदानाह—

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलनामानि सम्यग्ज्ञानानि पञ्चैव नोनाधिकानि । यद्यपि सामान्यापेक्षया संग्रहरूपद्रव्यार्थिकनयमाश्रित्य ज्ञानमेकमेव कथितं, तथापि विशेषापेक्षया पर्यायार्थिकनयमाश्रित्य ज्ञानानि पञ्चैवेत्युक्तानि इत्यर्थः । तेषु मतिश्रुतावधिमनःपर्ययाख्यानि चत्वारि ज्ञानानि क्षायोपशमिकानि भवन्ति मतिज्ञानाद्यावरणवीर्यान्तरायकर्मद्रव्याणां अनुभागस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावरूपः क्षयः, तेषामेव अनुदयप्राप्तानां सदवस्थारूपः उपशमः । क्षयश्चासावुपशमश्च क्षयोपशमः, क्षयोपशमे भवानि क्षायोपशमिकानि । अथवा क्षयोपशमः प्रयोजनमेषामिति क्षायोपशमिकानि । तत्तदावरणदेशघातिस्पर्धकानामुदयस्य विद्यमानत्वेऽपि

प्रकारका प्रमाण होता है। प्रमाणका स्वरूप, संख्या, विषय, फल तथा तत्सम्बन्धी विवादोंका निराकरण करके स्याद्वादसम्मत प्रमाणका स्थापन विस्तारपूर्वक प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि तर्कशास्त्रके ग्रन्थोंमें देखना चाहिए। इस अहेतुवाद रूप आगम ग्रन्थमें हेतुवादका अधिकार नहीं है ॥२९९॥

आगे ज्ञानके भेद कहते हैं—

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल नामक सम्यग्ज्ञान पाँच ही हैं, न कम हैं, न अधिक हैं। यद्यपि सामान्यकी अपेक्षा संग्रह रूप द्रव्यार्थिक नयके आश्रयसे ज्ञान एक ही कहा है, तथापि विशेषकी अपेक्षा पर्यायार्थिक नयके आश्रयसे ज्ञान पाँच ही कहे हैं यह उक्त कथनका अभिप्राय है। उनमें-से मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय नामक चार ज्ञान क्षायोपशमिक होते हैं। मतिज्ञान आदि आवरण और वीर्यान्तराय कर्म द्रव्यके अनुभागके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयका अभाव रूप क्षय और जो उदय अवस्थाको प्राप्त न होकर सत्तामें स्थित है उनका वही हुआ सदवस्थारूप उपशम। क्षय और उपशमको क्षयोपशम कहते

मावोडं ज्ञानोत्पत्तिप्रतिघातित्वाऽभावविंदमविवक्षेयरियल्पडुवुदु । केवलज्ञानं क्षायिकमेयक्कुमेकें दोडे केवलज्ञानावरणवीर्यांतराय निरवशेषक्षयप्रादुर्भूतत्वविंदं, क्षये भवं क्षयः प्रयोजनमस्येति वा क्षायिकं । येसलानुमात्मंगे केवलज्ञानं प्रतिबंधकावस्थेयोळु शक्तिरूपदिवं मिर्प्पुवंतिर्द्दोडं प्रतिबंधकक्षयदिवमे तद्व्यक्तियक्कुमें वितु व्यक्त्यपेक्षेयिवं कार्य्यत्वसंभवविंदं क्षायिकमें वितु पेळल्पट्टुदु । आवरणक्षयमुंटागुत्तिरलु प्रादुर्भवति यें बी निरुक्तिगे तद्व्यक्त्यपेक्षत्वमुळ्ळुदरिंदं ।

अनंतरं मिथ्याज्ञानोत्पत्तिकारणस्वरूपस्वामिभेदंगळं पेळ्वपं :—

अण्णाणतियं होदि हु सण्णाणतियं खु मिच्छ अणउदए ।
णवरि विभंगं णाणं पंचिंदियसण्णिपुण्णेव ॥३०१॥

अज्ञानत्रयं भवति खलु सज्ज्ञानत्रयं खलु मिथ्यात्वानंतानुबंध्युदये । विशेषो विभंगं ज्ञानं पंचेंद्रियसंज्ञिपूर्ण एव ॥

आवुदों दु मतिश्रुतावधिगळु सम्यग्दर्शनपरिणतजीवसंबंधि सम्यग्ज्ञानत्रयं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवनविशेषग्रहणरूपाकारसहितोपयोगलक्षणमप्प तत् सम्यग्ज्ञानमे मिथ्यादर्शनानंतानुबंधिकषायान्यतमोदयमागुत्तिरलऽतत्वार्थश्रद्धानपरिणतजीवसंबंधिमिथ्याज्ञानत्रयं खलु स्फुटमक्कुं । णवरि विशेषमुंट्टु आवुदों दवधिज्ञानविपर्य्यायरूपमप्प विभंगमें ब पेसरनुळ्ळ मिथ्याज्ञानमवु

ज्ञानोत्पत्तिप्रतिघातित्वाभावात् अविवक्षा ज्ञातव्या । केवलज्ञान पुनः क्षायिकमेव भवति केवलज्ञानावरणवीर्यान्तरायनिरवशेषक्षयेण प्रादुर्भूतत्वात् । क्षये भवं, क्षयः प्रयोजनमस्येति वा क्षायिकम् । यद्यप्यात्मनः केवलज्ञानं प्रतिबन्धकावस्थायां शक्तिरूपेण विद्यमानं तथापि प्रतिबन्धकक्षयेणैव तद्व्यक्तिः स्यात् इति व्यक्त्यपेक्षया कार्यत्वसंभवात् क्षायिकमित्युक्तं । आवरणक्षये सति प्रादुर्भवति इति निरुक्तेः तद्व्यक्त्यपेक्षत्वात् ॥३००॥

अथ मिथ्याज्ञानोत्पत्तिकारणस्वरूपस्वामिभेदानाह—

यत्सम्यग्दर्शनपरिणतजीवसंबन्धिमतिश्रुतावधिसंज्ञं सम्यग्ज्ञानत्रयं संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तजीवस्य विशेषग्रहणरूपाकारसहितोपयोगलक्षणं तदेव मिथ्यादर्शनानन्तानुबन्धिकषायान्यतमोदये सति अतत्त्वार्थश्रद्धानपरिणतजीवसम्बन्धिमिथ्याज्ञानत्रयं खलु—स्फुटं भवति । नवरीति विशेषोऽस्ति यदवधिज्ञानविपर्ययरूपं विभङ्गनामकं

हैं। जो क्षयोपशमसे होते हैं अथवा क्षयोपशम जिनका प्रयोजन हैं वे क्षायोपशमिक हैं। क्षायोपशमिक ज्ञानोंमें यद्यपि उस-उस आवरण सम्बन्धी देशघाती स्पर्धकोंका उदय विद्यमान रहता है तथापि वे ज्ञानकी उत्पत्तिके प्रतिघाती नहीं हैं इसलिए यहाँ उनकी विवक्षा नहीं है। किन्तु केवलज्ञान क्षायिक ही होता है क्योंकि वह केवल ज्ञानावरण तथा वीर्यान्तरायके सम्पूर्ण क्षयसे प्रकट होता है। जो क्षयसे होता है या क्षय जिसका प्रयोजन है वह क्षायिक है। यद्यपि आत्मामें केवलज्ञान प्रतिबन्धक अवस्थामें शक्तिरूपसे विद्यमान है तथापि प्रतिबन्धकके क्षयसे ही वह प्रकट होता है इसलिए व्यक्तिकी अपेक्षा कार्य होनेसे उसे क्षायिक कहा है। आवरणका क्षय होनेपर प्रकट होता है ऐसी निरुक्ति होनेसे उसकी व्यक्तिकी अपेक्षा है ॥३००॥

अब मिथ्याज्ञानकी उत्पत्तिके कारण, स्वरूप और स्वामीभेदोंको कहते हैं—

जो सम्यग्दृष्टि जीवके मति, श्रुत और अवधि नामक तीन सम्यग्ज्ञान हैं, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके विशेष ग्रहणरूप आकार सहित उपयोग जिनका लक्षण है, वे ही तीनों मिथ्यादर्शन और अनन्तानुबन्धी कषायमें-से किसी एक कषायका उदय होनेपर अतत्त्वार्थश्रद्धानरूप परिणत मिथ्यादृष्टि जीवके मिथ्याज्ञान होते हैं। किन्तु इतना विशेष है

तत्संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तनोळेयक्कुमन्यनोळागदेंबुदरिंदं इतरमत्यज्ञानमुं श्रुताज्ञानमुमें बीयज्ञानद्वयमेकेंद्रियादिगळोळु पर्य्याप्तापर्य्याप्तकरोळेल्लरोळु मिथ्यादृष्टिसासादनरोळु संभविसुगुमें बु पेळल्पट्टुदाय्तु । खलु स्फुटमागि ।

अनंतरं सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानदोळु ज्ञानस्वरूपमं पेळ्वपं ।

मिस्सुदए संमिस्सं अण्णाणतिएण णाणतियमेव ।
संजमविसेससहिए मणपज्जवणाणमुद्दिट्ठं ॥३०२॥

मिश्रोदये संमिश्रमज्ञानत्रयेण ज्ञानत्रयमेव । संयमविशेषसहिते मनःपर्य्ययज्ञानमुद्दिष्टं ॥

मिश्रोदये सम्यग्मिथ्यात्वकर्म्मोदयमागुत्तिरलु अज्ञानत्रयदोडने सम्यग्ज्ञानत्रयमे संमिश्रं संमिश्रमक्कुमशक्यविवेचनत्वदिदं । सम्यग्मिथ्यामतिज्ञानमुं सम्यग्मिथ्याश्रुतज्ञानमुं सम्यग्मिथ्यावधिज्ञानमुमें ब व्यपदेशमक्कुं । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोळु वर्त्तमानज्ञानत्रयं केवलं सम्यग्ज्ञानमुमल्तु । केवलं मिथ्याज्ञानमुमल्तु । मत्तें तप्पुदेंदोडुभयात्मकश्रद्धानमात्मनोळें तंते वुभयात्मकत्वदिदं ज्ञानमुं संमिश्रमें वितु युक्तमप्पुदाचार्य्यरुगळिदं पेळल्पट्टुदु । मनःपर्य्ययज्ञानं मत्ते संयमविशेषसहितनोळु प्रमत्तसंयतादिक्षीणकषायपर्य्यंतमप्प गुणस्थानसप्तकदोळु तपोविशेषोपबृंहितविशुद्धिपरिणाममुळ्ळनोळु संभविसुगुमितरदेशसंयतादियोळु संभविसदेकेंदोडे देशसंयतादियोळु तद्विधतपोविशेषाऽभावमप्पुदरिंदं ।

मिथ्याज्ञानं तत् सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्त एव भवति, नान्यस्मिन् जीवे इति अनेन इतरत् मत्यज्ञान श्रुताज्ञानमिति द्वय एकेन्द्रियादिषु पर्याप्तापर्याप्तेषु सर्वेषु मिथ्यादृष्टिसासादनेषु संभवति इति कथितं भवति । द्वितीयः खलुशब्दः अतिशयेन स्पष्टत्वार्थे स्फुटं ॥३०१॥ अथ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने ज्ञानस्वरूपं निरूपयति—

मिश्रोदये—सम्यक्मिथ्यात्वकर्मोदये सति अज्ञानत्रयेण सह सम्यग्ज्ञानत्रयमेव सम्मिश्र भवति अशक्यविवेचनत्वेन सम्यग्मिथ्यामतिज्ञानं सम्यग्मिथ्याश्रुतज्ञानं सम्यग्मिथ्यावधिज्ञानमिति व्यपदेशभाग्भवति । सम्यग्मिथ्यादृष्टौ वर्तमानं ज्ञानत्रयं न केवलं सम्यग्ज्ञानं, न केवलं मिथ्याज्ञानं किन्तु उभयात्मकश्रद्धानवत् उभयात्मकत्वेन मिथ्याज्ञानसंमिश्र सम्यग्ज्ञानं भवति इत्याचार्यैः कथितं ज्ञातव्यम् । मन पर्ययज्ञान तु सयमविशेषसहितेष्वेव प्रमत्तसंयतादिक्षीणकषायपर्यन्तेषु सप्तगुणस्थानेषु तपोविशेषोपबृंहितविशुद्धिपरिणामविशिष्टेषु

कि जो अवधिज्ञानका विपरीत रूप विभंग नामक मिथ्याज्ञान है वह संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तके ही होता है, अन्य जीवके नहीं होता । इससे यह व्यक्त होता है कि अन्य मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान ये दोनों एकेन्द्रिय आदि पर्याप्त और अपर्याप्त सब मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंके होते हैं ॥३०१॥

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ज्ञानका स्वरूप कहते हैं—

मिश्र अर्थात् सम्यक्मिथ्यात्व कर्मका उदय होनेपर तीन अज्ञानोंके साथ तीनों सम्यग्ज्ञान मिले हुए होते हैं । अलग-अलग करना शक्य न होनेसे उन्हें सम्यग्मिथ्या मतिज्ञान, सम्यग्मिथ्या श्रुतज्ञान और सम्यग्मिथ्या अवधिज्ञान नामसे कहते हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें वर्तमान तीनों ज्ञान न केवल सम्यग्ज्ञान होते हैं और न केवल मिथ्याज्ञान होते हैं किन्तु जैसे उनके सम्यग्रूप और मिथ्यारूप मिला हुआ श्रद्धान होता है वैसे ही मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान मिला हुआ होता है यह आचार्यका कथन जानना । किन्तु मनःपर्ययज्ञान विशेष संयमसे सहित प्रमत्तसंयत नामक छठे गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थानपर्यन्त सात गुणस्थानोंमें तपविशेषसे वृद्धिको प्राप्त विशुद्धिरूप परिणामोंसे विशिष्ट

अनंतरं मिथ्याज्ञानविशेषलक्षणमं गाथात्रयदिदं पेळ्वपं ।

विसजंतकूडपंजरबंधादिसु विणुवएसकरणेण ।
जा खलु पवट्टइ मई मइअण्णाणेत्ति णं बेंति ॥३०३॥

विषयंत्रकूटपंजरबंधादिषु विनोपदेशकरणेन । या खलु प्रवर्त्तते मतिर्मत्यज्ञानमितीदं ब्रुवंति ॥

विषयंत्रकूट पंजरबंधमें बिवु मोदलाव जीवमारणबंधनहेतुगळोळु या मतिः आवुदों दु मति परोपदेशकरणमिल्लदे प्रवर्त्तिसुगुमदे मत्यज्ञानमें दु अर्हदादिगळु पेळ्वरल्लि परस्परसंयोगजनित-मारणशक्तिविशिष्टतैलकर्प्पूरादिद्रव्यं विषमें बुदक्कुं । सिहव्याघ्रादि क्रूरमृगंगळ धरणात्थमभ्यंतरी-कृतच्छागादिजीवमनुळ्ळ काष्ठादिरचितमप्पुदु तत्पादनिक्षेपमात्रकबाटसंघटीकरणदक्षसूत्रकी-लितमप्पुदु यंत्रमें बुदक्कुं । मत्स्यकच्छपमूषकादिग्रहणात्थंमवष्टब्धकाष्ठादिमयं कूटमें बुदक्कुं । तित्तिरीलावकहरिणादिधारणात्थं विरचितग्रंथिविशेषकलितरज्जुमयमप्प जालं पंजरमें बुदक्कुं । गजोष्ट्रादिधारणात्थंमवष्टब्धमप्पगर्त्तमुखकीलितग्रंथिविशिष्टवारिरज्जुरचनाविशेषं बंधमें बुदक्कुं । आदिशब्ददिदं पक्षिगळ पक्षमं पत्तिसि सिक्किसल्कें दु दीर्घदंडाग्रदोळ् तोडद पिप्पलनिर्य्यासादि चिक्कणबंधमुं । गूहहरिणादिशृंगलग्नसूत्रग्रंथिविशेषादिगळुं ग्रहणमक्कुमुपदेशपूर्व्वकत्वदोळु

संभवति नेतरदेशसंयतादिषू गुणस्थानेषु तथाविधतपोविशेषाभावात् ॥३०२॥ अथ मिथ्याज्ञानविशेषलक्षणं गाथात्रयेणाह—

विषयन्त्रकूटपञ्जरबन्धादिषु जीवमारणबन्धनहेतुषु या मतिः परोपदेशकरणेन विना प्रवर्तते तदिदं मत्यज्ञानमित्यर्हदादयो ब्रुवन्ति । तत्र परस्परसंयोगजनितमारणशक्तिविशिष्टं तैळकर्पूरादिद्रव्यं विषं, सिंह-व्याघ्रादिक्रूरमृगधारणार्थमभ्यन्तरीकृतछागादिजीवं काष्ठादिरचित तत्पादनिक्षेपमात्रकवाटसंपुटीकरणदक्षं सूत्रकीलित यन्त्र, मत्स्यकच्छपमूषकादिग्रहणार्थमवष्टब्धं काष्ठादिमयं कूटं, तित्तिरलावकहरिणादिधारणार्थ-विरचितं ग्रन्थिविशेषकलितरज्जुमय जालं पञ्जरं, गजोष्ट्रादिधारणार्थमवष्टब्धो गर्तमुखकीलितग्रन्थिविशिष्टो वारीरज्जुरचनाविशेषो बन्धः । आदिशब्देन पक्षिरक्षलगनार्थं दीर्घदण्डाग्रप्रक्षितपिप्पलनिर्यासादिचिक्कण-

---

महामुनियोंके होता है, अन्य देशसंयत आदि गुणस्थानमें नहीं होता क्योंकि वहाँ उस प्रकार-का तपविशेष नहीं है ॥३०२॥

अब तीन गाथाओंसे मिथ्याज्ञानोंका विशेष लक्षण कहते हैं—

जीवोंको मारने और बन्धनमें हेतु विष, यन्त्र, कूट, पंजर, बन्ध आदिमें बिना परोपदेशके मति प्रवर्तित होती है वह मतिअज्ञान है ऐसा अर्हन्त भगवान् आदि कहते हैं। परस्पर वस्तुके संयोगसे उत्पन्न हुई मारनेकी शक्तिसे युक्त तैल, रसकपूर आदि द्रव्य विष हैं। सिंह, व्याघ्र आदि क्रूर जीवोंको पकड़नेके लिए, अन्दरमें बकरा आदि रखकर लकड़ी आदिसे बनाया गया, जिसमें पैर रखते ही द्वार बन्द हो जाता हो, ऐसा सूत्रसे कीलित यन्त्र होता है। मच्छ, कछुआ, चूहा आदि पकड़नेके लिए काष्ठ आदिसे रचे गयेको कूट कहते हैं। तीतर, लावक, हरिण आदि पकड़नेके लिये रस्सीमें अमुक प्रकारकी गाँठ देकर बनाये गये जालको पंजर कहते हैं। हाथी, ऊँट आदि पकड़नेके लिए गढ़ा खोदकर और उसका मुख ढाँककर या रस्सी आदिका फन्दा लगाकर जो विशेष रचना की जाती है उसे बन्ध कहते हैं। आदि शब्दसे पक्षियोंके पंख चिपकाने के लिए लम्बे बाँस आदिके अग्रभागमें पीपल आदिका चिकना रस गोंद वगैरह लगाना और हरिण आदिके सींगके अग्रभागमें फन्दा आदि डालना आदि लिया जाता है। इस प्रकारके कार्योंमें जो बिना परोपदेशके स्वयं

श्रु ताज्ञानत्व प्रसंगमुळ्ळुदरिंदमुपदेशक्रियेयिल्लदे येत्तलानुमितप्पूहापोहविकल्पात्मकमप्प हिंसानृत-स्तेयाब्रह्मपरिग्रहकारणमप्पार्त्तरौद्रध्यानकारणमप्प शल्यदंडगारवसंज्ञाद्यप्रशस्तपरिणामकारणमप्प इंद्रियमनोजनितविशेषग्रहणरूपमप्प मिथ्याज्ञानमदु मत्यज्ञानमें दितु निश्चयिसल्पडुवुदु।

आभीयमासुरक्खं भारहरामायणादि उवएसा।
तुच्छा असाहणीया सुयअण्णाणेत्ति णं बेंति ॥३०४॥

आभीतमासुरक्षं भारतरामायणाद्युपदेशाः। तुच्छा असाधनीयाः श्रु ताज्ञानमितीदं ब्रुवंति ॥

तुच्छाः परमार्त्थशून्यंगळु असाधनीयाः सत्पुरुषवर्ग्गंनादरणीयंगळुमेकें दोडे परमार्त्थशून्यत्वदिदं आभीताऽसुरक्षभारतरामायणाद्युपदेशंगळुं तत्प्रबंधंगळुमवर श्रवणदिदं पुट्टिदुदावुदो दु ज्ञानमदिदु श्रु ताज्ञानमें दिताचार्य्यरुगळु पेळ्वरु। आसमंतात् भीताः आभीताः चोरास्तच्छास्त्र-मप्याऽऽभीतं। असवः प्राणास्तेषां रक्षा येभ्यस्तेऽसुरक्षास्तलवरास्तेषां शास्त्रमासुरक्षं। कौरवपांडवीय-पंचभर्तृकैकभार्य्यावृत्तांतयुद्धव्यतिकरादिचर्च्याव्याकुलमं भारतमें बुदु। सीताहरणरामरावणीय-जातिवानरराक्षसयुद्धव्यतिकरादिस्वेच्छाकल्पनारचितमं रामायणमें बुदु। आदिशब्ददिदावुदावुदु मिथ्यादर्शनदूषितसर्व्वथैकांतवादिस्वेच्छाकल्पितकथाप्रबंधभुवनकोशहिंसायागादिगृहस्थकर्म्ममुं त्रि-

---

बन्धनग्रहहरिणादिशृङ्गाग्रलग्नसूत्रग्रन्थिविशेषादिश्च गृह्यते। उपदेशपूर्वकत्वे श्रु ताज्ञानत्वप्रसगात्। उपदेशक्रिया विना यदीदृशमूहापोहविकल्पात्मकं हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहकारणं आर्तरौद्रध्यानकारणं शल्यदण्डगारवसंज्ञाद्य-प्रशस्तपरिणामकारण च इन्द्रियमनोजनितविशेषग्रहणरूप मिथ्याज्ञान तन्मत्यज्ञानमिति निश्चेतव्यं ॥३०३॥

तुच्छा परमार्थशून्या, असाधनीया अत एव सत्पुरुषाणामनादरणीयाः परमार्थशून्यत्वात् आभीता-सुरक्षभारतरामायणाद्युपदेशा. तत्प्रबन्धा. तेषा श्रवणादुत्पन्न यज्ज्ञानं तदिदं श्रुताज्ञानमिति ब्रुवन्त्याचार्या.। आ समन्ताद्भीताः आभीता चोरा तच्छास्त्रमप्याभीतं। असव. प्राणा तेषा रक्षा येभ्यः ते असुरक्षा' तलवराः तेषा शास्त्रमासुरक्षं। कौरवपाण्डवीयपञ्चभर्तृकैकभार्यावृत्तान्तयुद्धव्यतिकरादिचर्चाव्याकुलं भारतं, सीताहरण-रामरावणीयजातिवानरराक्षसयुद्धव्यतिकरादिस्वेच्छाकल्पनारचितं रामायण। आदिशब्दाद्यद्यन्मिथ्यादर्शनदूपित-

---

ही बुद्धि लगती है वह कुमति ज्ञान है। उपदेशपूर्वक होनेपर उसे कुश्रुत ज्ञानका प्रसंग आता है। अतः उपदेशके बिना जो इस प्रकारका ऊहापोह विकल्परूप हिंसा, असत्य, चोरी, विषयसेवन और परिग्रहका कारण, आर्त तथा रौद्रध्यानका कारण, शल्य, दण्ड, गारव, संज्ञा आदि अप्रशस्त परिणामोंका कारण, जो इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न हुआ विशेष ग्रहणरूप मिथ्या-ज्ञान है वह कुमतिज्ञान है यह निश्चय करना चाहिए ॥३०३॥

तुच्छ अर्थात् परमार्थसे शून्य और इसी कारणसे सज्जनोंके द्वारा अनादरणीय आभीत, आसुरक्ष, भारत रामायण आदिके उपदेश, उनकी रचनाएँ, उनका सुनना तथा उनके सुननेसे उत्पन्न हुआ ज्ञान उसे आचार्य श्रुतअज्ञान कहते हैं। आभीत चोरको कहते हैं क्योंकि उसे सब ओरसे भय सताता है। उनके शास्त्रको भी आभीत शास्त्र कहते हैं। असु अर्थात् प्राणोंकी रक्षा जिनसे होती है वे असुरक्ष अर्थात् कोतवाल आदि उनके शास्त्रको असुरक्ष कहते है। कौरव पाण्डवोंके युद्ध, पंचभर्ता द्रौपदीका वृत्तान्त, युद्धकी कथा आदिकी चर्चासे भरा महाभारत ग्रन्थ है, सीताहरण, रामकी उत्पत्ति, रावणकी जाति, वानरों और राक्षसोंके युद्धकी यथेच्छ कल्पनाको लेकर रची गयी रामायण है। आदि शब्दसे जो-जो मिथ्यादर्शनसे दूषित सर्वथा एकान्तवादी यथेच्छ कथाप्रबन्ध, भुवनकोश हिंसामय यज्ञादि

दंडजटाधारणादितपःकर्म्ममुं षोडशपदार्थं षट्पदार्थंभावनाविधिनियोग भूतचतुष्टय पंचविंशतितत्वब्रह्माद्वैतचतुरार्य्यसत्यविज्ञानाद्वैतसर्व्वशून्यतादिप्रतिपादकागमाभासजनितमप्प श्रुतज्ञानाभासमवेल्लं श्रुताज्ञानमें बुदिंतु निश्चैसल्पडुवुदेकें दोडे दृष्टेष्टविरुद्धार्थविषयत्वदिदं।

विवरीयमोहिणाणं खओवसमियं च कम्मबीजं च।
वेभंगोत्ति पउच्चइ समत्तणाणीण समयम्मि ॥३०५॥

विपरीतावधिज्ञानं क्षयोपशमिकं च कर्म्मबीजं च। विभंग इति प्रोच्यते समाप्तज्ञानिनां समये ॥

मिथ्यादर्शनकलंकितमप्प जीवंगे अवधिज्ञानावरणीयवीर्य्यांतरायक्षयोपशमजनितमप्पुदुं द्रव्यक्षेत्रकालभावमाश्रितमप्पुदुं रूपिद्रव्यविषयमप्पुदुं आप्तागमपदार्थंगळोळु विपरीतग्राहकमप्पुदुं तिर्य्यग्मनुष्यगतिगळोळु तीव्रकायक्लेश द्रव्यसंयमरूपगुणप्रत्ययमप्पुदुं। च शब्ददिदं देवनारकगतिगळोळु भवप्रत्ययमप्पुदुं मिथ्यात्वादिकर्म्मबंधबीजमप्पुदुं चशब्ददिद येत्तलानुं नारकादियोळु पूर्व्वभवदुराचारसंचितदुःकर्म्मफलतीव्रदुःखवेदनाभिभवजनितसम्यग्दर्शनज्ञानरूपधर्म्मबीजमुमप्पुदुं।

एवंविधमवधिज्ञानं विभंगमें दितु समाप्तज्ञानिगळ केवलज्ञानिगळ समये स्याद्वादशास्त्रदोळु प्रोच्यते पेळल्पट्टुदु। एकें दोडे नारकविभंगज्ञानदिदं वेदनाभिभवतत्कारणदर्शनस्मरणानुसंधान-

---

सर्वथैकान्तवादिस्वेच्छाकल्पितकथाप्रबन्धभुवनकोशहिंसायागादिगृहस्थकर्मत्रिदण्डजटाधारणादितपःकर्मषोडश - पदार्थषट्पदार्थभावनाविधिनियोगभूतचतुष्टयपञ्चविंशतितत्त्वब्रह्माद्वैतचतुरार्यसत्यविज्ञानाद्वैतसर्वशून्यत्वादिप्रति - पादकागमाभासजनितं श्रुतज्ञानाभासं तत्तत्सर्वं श्रुताज्ञानमिति निश्चेतव्यं, दृष्टेष्टविरुद्धार्थविषयत्वात् ॥३०४॥

मिथ्यादर्शनकलङ्कितस्य जीवस्य अवधिज्ञानावरणीयवीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं द्रव्यक्षेत्रकालभावसीमाश्रितं रूपिद्रव्यविषयं आप्तागमपदार्थेषु विपरीतग्राहकं तिर्यग्मनुष्यगत्योः तीव्रकायक्लेशद्रव्यसंयमरूपगुणप्रत्ययं, चशब्दाद्देवनारकगत्योर्भवप्रत्ययं च मिथ्यात्वादिकर्मबन्धबीजं, चशब्दात् कदाचिन्नारकादिगतौ पूर्वभवदुराचारसंचितदुष्कर्मफलतीव्रदुःखवेदनाभिभवजनितसम्यग्दर्शनज्ञानरूपधर्मबीजं वा अवधिज्ञानं विभङ्ग इति समाप्तज्ञानिना केवलज्ञानिना समये स्याद्वादशास्त्रे प्रोच्यते कथ्यते। नारकाणां विभङ्गज्ञानेन वेदनाभि-

---

गृहस्थकर्म, त्रिदण्ड तथा जटा धारण आदि तपस्वियोंका कर्म, नैयायिकोंका षोडश पदार्थ वाद, वैशेषिकोंका षट्पदार्थवाद, मीमांसकोंका भावनाविधिनियोग, चार्वाकका भूतचतुष्टयवाद, सांख्योंके पचीस तत्त्व, बौद्धोंका चार आर्यसत्य, विज्ञानाद्वैत, सर्वशून्यवाद आदिके प्रतिपादक आगमाभासोंसे होनेवाला जितना श्रुतज्ञानाभास है वह सब श्रुतअज्ञान जानना। क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमानसे विरुद्ध अर्थको विषय करता है ॥३०४॥

मिथ्यादृष्टि जीवके अवधिज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी मर्यादाको लिये हुए रूपी द्रव्यको विषय करनेवाला, किन्तु देव शास्त्र और पदार्थोंको विपरीत रूपसे ग्रहण करनेवाला अवधिज्ञान केवलज्ञानियोंके द्वारा प्रतिपादित आगममें विभंग कहा जाता है। यह विभंग ज्ञान तिर्यंचगति और मनुष्यगतिमें तीव्र कायक्लेश रूप द्रव्य संयमसे उत्पन्न होता है इसलिए गुणप्रत्यय है। 'च' शब्दसे देवगति और नरकगतिमें भवप्रत्यय है तथा मिथ्यात्व आदि कर्मोंके बन्धका बीज है। 'च' शब्दसे कदाचित् नरकगति आदिमें पूर्व जन्ममें किये गये दुराचारमें-से संचित खोटे कर्मोंके फल तीव्र दुःख वेदनाके भोगनेसे होनेवाले सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान रूप धर्मका भी बीज है।

प्रत्ययबलात् सम्यग्दर्शनोत्पत्तिप्रतीतेर्व्विशिष्टस्यावधिज्ञानस्य भंगो विपर्य्ययो विभंगमें दितु निरुक्ति-सिद्धार्त्थक्किर्दरिदमे प्ररूपितत्वदिदं ।

अनंतरं गाथानवकदिदं स्वरूपोत्पत्तिकारणभेदविषयंगळनाश्रयिसि मतिज्ञानमं पेळ्दपं :—

अहिमुहणियमियबोहणमाभिणिबोहियमणिदिइंदियजं ।
अवगहईहावाया धारणगा होंति पत्तेयं ॥३०६॥

अभिमुखनियमितबोधनमाभिनिबोधिकमनिंद्रियेंद्रियजं । अवग्रहेहावायधारणकाः भवंति प्रत्येकं ॥

स्थूलवर्त्तमानयोग्यदेशावस्थितोऽर्त्थोऽभिमुखः । अस्येंद्रियस्यायमेवार्त्थ[1] इत्यवधारितो नियमितोऽभिमुखश्चासौ नियमितश्च अभिमुखनियमितस्तस्यार्त्थस्य बोधनं ज्ञानमाभिनिबोधिकमें दितु मतिज्ञानमेंबुदत्थं । अभिनिबोध एवाभिनिबोधिकमेंदितु स्वार्त्थिकठण् प्रत्ययदिदं सिद्धमक्कुं । स्पर्शनादींद्रियंगळगे[2] स्थूलादिगळप्प स्पर्शादिस्वार्त्थंगळोळु ज्ञानजननशक्तिसंभवमप्पुदरिदं सूक्ष्मांतरितदूरार्त्थंगळप्प परमाणु शंखचक्रवर्त्तिनरकस्वर्गपटलमेर्व्वादिगळोळमा इंद्रियंगळगे ज्ञानजननशक्ति संभविसदेंबुदत्थं ।

इदरिदं मतिज्ञानक्के स्वरूपमं पेळल्पट्टुदुं, एंतेप्पुदा मतिज्ञानमें बोडे अनिंद्रियेंद्रियजं मनमुं

भवतत्कारणदर्शनस्मरणानुसंधानप्रत्ययबलात् सम्यग्दर्शनोत्पत्तिप्रतीतेः । विशिष्टस्य अवधिज्ञानस्य भङ्गः—विपर्यय विभङ्ग इति निरुक्तिसिद्धार्थस्यैव अनेन प्ररूपितत्वात् ॥३०५॥ अथ[3] नवभिर्गाथाभिः स्वरूपोत्पत्ति-कारणभेदविषयान् आश्रित्य मतिज्ञान प्ररूपयति—

स्थूलवर्तमानयोग्यदेशावस्थितोऽर्थः अभिमुख', अस्येन्द्रियस्य अयमेवार्थ इत्यवधारितो नियमित. । अभिमुखश्चासौ नियमितश्च अभिमुखनियमित । तस्यार्थस्य बोधनं ज्ञानं आभिनियबोधिकं मतिज्ञानमित्यर्थ । अभिनिबोध एव आभिनिबोधकमिति स्वार्थिकेन ठण्प्रत्ययेन सिद्ध भवति । स्पर्शनादीन्द्रियाणा स्थूला[4]दिष्वेव स्पर्शादिषु स्वार्थेषु ज्ञानजननशक्तिसंभवात् । सूक्ष्मान्तरितदूरार्थेषु परमाणु[5]शङ्खचक्रवर्तिमेर्वादिषु तेषा ज्ञानजनन-शक्तिर्न सभवतीत्यर्थ । अनेन मतिज्ञानस्य स्वरूप[6]मुक्तं । कथंभूत तत् ? अनिन्द्रियेन्द्रियजं—अनिन्द्रियं मन ,

क्योंकि नारकियोंके विभंग ज्ञानके द्वारा वेदनाभिभव और उसके कारणोंके दर्शन स्मरण आदि रूप ज्ञानके बलसे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति होती है । 'वि' अर्थात् विशिष्ट अवधिज्ञानका भंग अर्थात् विपर्यय विभंग होता है इस निरुक्ति सिद्ध अर्थको ही यहाँ कहा है ॥३०५॥

अब नौ गाथाओंसे स्वरूप, उत्पत्ति, कारण, भेद और विषयको लेकर मतिज्ञानका कथन करते हैं—

स्थूल, वर्तमान और योग्यदेशमें स्थित अर्थको अभिमुख कहते हैं । इस इन्द्रियका यही विषय है इस अवधारणाको नियमित कहते हैं । अभिमुख और नियमितको अभिमुख-नियमित कहते हैं । उस अर्थके बोधन अर्थात् ज्ञानको मतिज्ञान कहते हैं । अभिनिबोध ही अभिनिबोधिक है इस प्रकार स्वार्थमें ठण् प्रत्यय करनेसे इसकी सिद्धि होती है । स्पर्शन आदि इन्द्रियोंकी अपने स्थूल आदि स्पर्श आदि विषयोंमें ही ज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्ति

१ म स्थूलार्थंग° । २. म येंतप्प । ३ ब अथ स्वरूपोत्पत्तिकारणभेदविषयान् आश्रित्य गाथानवकेन मतिज्ञानमाह । ४ ब स्थूलार्थरूपस्पर्शादि स्वार्थेषु । ५ ब णुनरकस्वर्गपटलमे° । ६ ब °पं. प्ररूपितम् ।

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुश्रोत्रंगळुमेंबिवरिवं जातं पुट्टिदुवक्कुमिवरिंदमिंद्रियमनस्सुगळगे मतिज्ञानोत्पत्तिकारणत्वं पेळल्पट्टुदिंतु कारणभेदात् कार्य्यभेदः एंदितु मतिज्ञानं षट्प्रकारमेंदु पेळल्पट्टुदु ।

मत्ते प्रत्येकमों दोंदु मतिज्ञानक्के अवग्रहमुमीहेयवायमुं धारणे एंदितु नाल्कु नाल्कु भेदंगळप्पुवु-। मवे तें दोडे :—मानसोऽवग्रहः मानसीहा मानसोऽवायः मानसी धारणा एंदितु नाल्कप्पुवु ४। स्पर्शनजोऽवग्रहः स्पर्शनजेहे स्पर्शनजोऽवायः स्पर्शनजा धारणा एंदितु नाल्कप्पुवु ४। रसनजोऽवग्रहः रसनजेहा रसनजोऽवायः रसनजा धारणा एंदिंतिवु नाल्कप्पुवु ४। घ्राणजोऽवग्रहः घ्राणजेहा घ्राणजोऽवायः घ्राणजा धारणा एंदितु नाल्कप्पुवु ४। चाक्षुषोऽवग्रहः चाक्षुषोहा चाक्षुषोऽवायः चाक्षुषी धारणा एंदितुनाल्कप्पुवु ४। श्रोत्रजोऽवग्रहः श्रोत्रजेहा श्रोत्रजोऽवायः श्रोत्रजा धारणा एंदिंतिवु नाल्कप्पुवु ४ । इंतु मतिज्ञानं चतुर्व्विंशतिप्रकारमक्कु २४। मवग्रहादिगळगे लक्षणमं मुंदे शास्त्रकारं ताने पेळदपं ।

वेंजणअत्थअवग्गह भेदा हु हवंति पत्तपत्तत्थे ।
कमसो ते वावरिदा पढमं णहि चक्खुमणसाणं ॥३०७॥

व्यंजनार्त्थावग्रहभेदौ खलु भवतः प्राप्ताप्राप्तार्त्थयोः। क्रमशस्तौ व्यापृतौ प्रथमो न हि चक्षुर्म्मनसोः ॥

इन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि । तेभ्यो जातमुत्पन्नं अनिन्द्रियेन्द्रियजं, अनेन इन्द्रियमनसोर्मतिज्ञानोत्पत्तिकारणत्व[1] दर्शितम् । एवं च कारणभेदात्कार्यभेद इति मतिज्ञानं षट्प्रकारमुक्तम्[2] । पुनः प्रत्येकमेकैकस्य मतिज्ञानस्य अवग्रहः ईहा अवायः धारणा चेति चत्वारो भेदा भवन्ति । तद्यथा—मानसोऽवग्रहः मानसीहा मानसोऽवाय मानसी धारणा इति चत्वारः । स्पर्शनजोऽवग्रहः, स्पर्शनजा ईहा स्पर्शनजोऽवायः स्पर्शनजा धारणा इति चत्वारः । रसनजोऽवग्रहः रसनजा ईहा रसनजोऽवायः रसनजा धारणा इति चत्वारः । घ्राणजोऽवग्रहः घ्राणजा ईहा घ्राणजोऽवाय घ्राणजा धारणा इति चत्वारः । चाक्षुषोऽवग्रहः चाक्षुषीहा चाक्षुषोऽवायः चाक्षुषी धारणा ४। श्रोत्रजोऽवग्रहः श्रोत्रजा ईहा श्रोत्रजोऽवायः श्रोत्रजा धारणा इति चत्वारः । एवं मतिज्ञानं चतुर्विंशतिविकल्प[3] भवति अवग्रहादीना लक्षण[4] उत्तरत्र ग्रन्थकारः स्वयमेव वक्ष्यति ॥३०६॥

होती है । अर्थात् सूक्ष्म परमाणु आदि, अन्तरित शंख चक्रवर्ती आदि तथा दूरार्थ मेरु आदिको जाननेकी शक्ति उनमें नहीं है । इससे मतिज्ञानका स्वरूप कहा । वह मतिज्ञान अनिन्द्रिय मन और इन्द्रियाँ स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्रसे उत्पन्न होता है। इससे इन्द्रिय और मनको मतिज्ञानकी उत्पत्तिका कारण दिखलाया है। इस प्रकार कारणके भेदसे कार्यमें भेद होनेसे मतिज्ञान छह प्रकारका कहा। पुनः प्रत्येक मतिज्ञानके अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार भेद होते हैं। यथा—मानस अवग्रह, मानस ईहा, मानस अवाय और मानसी धारणा। स्पर्शनजन्य अवग्रह, स्पर्शनजन्य ईहा, स्पर्शनजन्य अवाय और स्पर्शनजन्य धारणा । रसनाजन्य अवग्रह, रसनाजन्य ईहा, रसनाजन्य अवाय और रसनाजन्य धारणा। घ्राणज अवग्रह, घ्राणज ईहा, घ्राणज अवाय और घ्राणज धारणा। चाक्षुष अवग्रह, चाक्षुषी ईहा, चाक्षुष अवाय और चाक्षुषी धारणा। श्रोत्रजन्य अवग्रह, श्रोत्रजन्य ईहा, श्रोत्रजन्य अवाय और श्रोत्रजन्य धारणा। इस प्रकार मतिज्ञानके चौबीस भेद होते हैं। अवग्रह आदिका लक्षण आगे ग्रन्थकार स्वयं ही कहेंगे ॥३०६॥

१ ब कारत्वमुक्तं। २. ब षोढा कथितं। ३. ब °त्रिभेदं। ४. ब णमग्रे शास्त्रकारः।

मतिज्ञानविषयं व्यंजनमें बुमर्त्थमें बु द्विविधमक्कुं २। अल्लि इंद्रियंगळिवं प्राप्तमप्प विषयं व्यंजनमें बुवक्कुं । इंद्रियंगळिवमप्राप्तमप्प विषयमर्त्थमें बुवक्कुमा प्राप्ताप्राप्तार्त्थंगळोळु क्रमदिवं यथासंख्यं । आ व्यंजनार्त्थावग्रहभेवंगळेरडुं २ व्यापृतौ प्रवृत्तौ भवतः प्रवृत्तंगळप्पुवु। इंद्रियंगळिवं प्राप्तार्त्थविशेषग्रहणं व्यंजनावग्रहमक्कु–। मिंद्रियंगळिदमप्राप्तार्त्थविशेषग्रहणमर्त्थावग्रहमक्कुमें दु- पेळ्वतेरं। व्यंजनव्यक्तं शब्दादिजातमें दितु तत्त्वार्त्थविवरणंगळोळु पेळल्पट्टुदितु पेळल्पट्टोडिती व्याख्यानदोडने तु संगतमक्कुमें दोडे पेळल्पडुगुं।

विगतमंजनमभिव्यक्तिर्य्यस्य तद्व्यंजनं। व्यज्यते मृक्ष्यते प्राप्यत इति व्यंजनमें दितंऽजगति व्यक्ति मृक्षणेषु एंदितु व्यक्तिमृक्षणार्त्थंगळ्गे ग्रहणमप्पुदरिवं। शब्दाद्यर्त्थं श्रोत्रादींद्रियदिदं प्राप्तमुमा- दोडमेन्नेवरमभिव्यक्तमल्लतन्नेवरमे व्यंजनमें दु पेळल्पट्टुदेकवारजलकण सिक्तनूतनशरावदंते मत्तम- भिव्यक्तियागुत्तिरलदे अर्त्थमक्कुमें तीगळु पुनः पुनर्ज्जलकणसिच्यमाननूतनशरावमभिव्यक्तसेक- मक्कुमदुकारणादिंदं चक्षुर्म्मनस्सुगळऽप्राप्तमप्प विषयदोळु प्रथमोद्दिष्टव्यंजनावग्रहमिल्ल। चक्षु- र्म्मनस्सुगळु स्वविषयमप्पार्त्थमं प्राप्य पोद्दिये अल्लिज्ञानमं पुट्टिसुगुमें ब नैय्यायिकादिमतं स्याद्वाद-

मतिज्ञानविषयो व्यञ्जनं अर्थश्चेति द्विविधः। तत्र इन्द्रियैः प्राप्तो विषयो व्यञ्जनं[2] तैरप्राप्त अर्थः। तयोः प्राप्ताप्राप्त[3]योरर्थयोः क्रमशः यथासख्यं तौ व्यञ्जनार्थावग्रहभेदौ व्यापृतौ प्रवृत्तौ भवत। इन्द्रियैं प्राप्तार्थविशेषग्रहणं व्यञ्जनावग्रह। तैरप्राप्तार्थविशेषग्रहण अर्थावग्रह इत्यर्थं। व्यञ्जनं–अव्यक्त शब्दादिजातं इति तत्त्वार्थविवरणेषु[4] प्रोक्तं कथमनेन व्याख्यानेन सह संगतमिति चेदुच्यते। विगतं–अञ्जनं–अभिव्यक्तिर्यस्य तद्व्यञ्जनम्। व्यज्यते म्रक्ष्यते प्राप्यते इति व्यञ्जनं अञ्जु गतिव्यक्तिम्रक्षणेष्विति व्यक्तिम्रक्षणार्थयोर्ग्रहणात्। शब्दाद्यर्थः श्रोत्रादीन्द्रियेण प्राप्तोऽपि यावन्नाभिव्यक्तस्तावद् व्यञ्जनमित्युच्यते एकवारजलकणसिक्तनूतन- शरावद्। पुनरभिव्यक्तौ सत्या स एवार्थो भवति। यथा पुनः पुनर्जलकणसिच्यमाननूतनशरावः अभिव्यक्तसेको भवति। अतः कारणात् चक्षुर्मनसोऽप्राप्ते विषये प्रथमो व्यञ्जनावग्रहो नास्ति। चक्षुर्मनसी स्वविषयमर्थं प्राप्यैव तत्र ज्ञानं जनयतः, इति नैयायिकादीना मत स्याद्वादतर्कग्रन्थेषु बहुधा निराकृतमित्यत्राहेतुवादे आगमाशे

मतिज्ञानका विषय दो प्रकारका है—व्यंजन और अर्थ। उनमें-से इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त विषयको व्यंजन और अप्राप्तको अर्थ कहते हैं। उन प्राप्त और अप्राप्त अर्थोंमें क्रमसे व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह प्रवृत्त होते हैं। इन्द्रियोंसे प्राप्त अर्थके विशेष ग्रहणको व्यंजना- वग्रह कहते हैं, और अप्राप्त अर्थके विशेष ग्रहणको अर्थावग्रह कहते हैं।

शंका—तत्त्वार्थसूत्रकी टीकामें कहा है, शब्दादिसे होनेवाले अव्यक्त ग्रहणको व्यंजन कहते हैं। उसकी संगति इस व्याख्याके साथ कैसे सम्भव है ?

समाधान—'अंजु' धातुके तीन अर्थ हैं—गति, व्यक्ति और म्रक्षण। यहाँ उनमें-से व्यक्ति और म्रक्षण अर्थ लेकर व्यंजन शब्द बना है। 'विगतं-अंजनं-अभिव्यक्तिर्यस्य' जिसका अंजन अर्थात् अभिव्यक्ति दूर हो गया है वह व्यंजन है। यह अर्थ तत्त्वार्थकी टीकामें लिया है। 'व्यज्यते म्रक्ष्यते प्राप्यते इति व्यंजनम्' जो प्राप्त हो वह व्यंजन है यह यहाँ ग्रहण किया है। शब्द आदि रूप अर्थ श्रोत्र आदि इन्द्रियके द्वारा प्राप्त होनेपर भी जबतक व्यक्त नहीं होता तबतक उसे व्यंजन कहते हैं। जैसे एक बार जलबिन्दुसे सिक्त नया सकोरा। पुनः व्यक्त होनेपर उसे ही अर्थ कहते हैं। जैसे बार-बार जलबिन्दुओंसे सींचे जानेपर नया

१. म प्राप्तमुमंबुदर्त्थमं। २. ब °नमिन्द्रियैरप्राप्तो विषयोऽर्थः। ३. ब °सार्थयो.। ४. ब °णे प्रोक्तमनेन सहेदं व्याख्यान कथं संगत°।

तर्क्कग्रंथंगळोळु बहुप्रकारदिदं निराकरिसल्पट्टुदंतिल्लि अहेतुवादमप्पागमांशदोळुपक्रमिसलपट्टु-दिल्ल। व्यंजनमप्प विषयदोळु स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रंगळेंब नाल्किंद्रियंगळिंदमवग्रहमों दे पुट्टिसल्प-डुवुदु ईहादिगळ् पुट्टिसल्पडवेकेंदोडे ईहादिज्ञानंगळ्गे देशसर्व्वाभिव्यक्तियागुत्तिरले उत्पत्तिसंभव-मप्पुदरिदं। तत्कालदोळु तद्विषयक्के अव्यक्तरूपव्यंजनत्वाऽभावमप्पुदरिदं। इंतु व्यंजनावग्रहंगळु नाल्कयप्पुवु।

विसयाणं विसईणं संजोगाणंतरं हवे णियमा।
अवगहणाणं गहिदे विसेसकंखा हवे ईहा ॥३०८॥

विषयाणां विषयिणां संयोगानंतरं भवेन्नियमात्। अवग्रहज्ञानं गृहीते विशेषाकांक्षा भवेदीहा ॥

विषयाणां अर्त्थंगळ विषयिणामिंद्रियंगळ संयोगः योग्यदेशावस्थानमप्प संबंधमवुंटागुत्तिरलु अनंतरं तदनंतरमे वस्तुसत्तामात्रलक्षणसामान्यनिर्व्विकल्पग्रहणं प्रकाशरूपमप्प दर्शनं नियमादुत्पद्यते नियमदिदं पुट्टुगुं। अनंतरं तदनंतर दृष्टमप्पर्त्थद वर्णसंस्थानादिविशेषग्रहणरूपमप्पवग्रहमें ब प्रसिद्धज्ञानं उत्पद्यते पुट्टुगुं। "अक्षार्त्थयोगे सत्तालोकोऽर्त्थाकारविकल्पधीरवग्रहः" ये दितु श्रीमद्-भट्टाकलंकपादंगळिदं दर्शनपूर्व्वकं ज्ञानं छद्मस्थानामें दितु श्रीनेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्त्तिगळिदमुं

नोपक्रम्यते। व्यञ्जनरूपे विषये स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रैः चतुर्भिरिन्द्रियैः अवग्रह एवोत्पद्यते नेहादयः। ईहादीना ज्ञानाना देशसर्वाभिव्यक्तौ सत्यामेव उत्पत्तिसंभवात्। तदा तद्विषयस्य अव्यक्तरूपव्यञ्जनत्वाभावात्। इति व्यञ्जनावग्रहाश्चत्वार एव ॥३०७॥

विषयाणा—अर्थाना, विषयिणा इन्द्रियाणां च संयोगः—योग्यदेशावस्थानरूपसंबन्धः तस्मिन् जाते सति अनन्तर-तदनन्तरमेव वस्तुसत्तामात्रलक्षणसामान्यस्य निर्विकल्पग्रहणमिदमिति प्रकाशरूपं दर्शनं नियमादुत्पद्यते—नियमाज्जायते। अनन्तर तदनन्तर दृष्टस्यार्थस्य वर्णसंस्थानादिविशेषग्रहणरूप अवग्रहाख्यं आद्यं ज्ञानं भवेत् उत्पद्यते। 'अक्षार्थयोगे सत्तालोकोऽर्थाकारविकल्पधीः अवग्रहः' इति श्रीमद्भट्टाकलङ्कपादैः, 'दर्शनपूर्वकं

सकोरा भीग जाता है। इस कारणसे अप्राप्त विषयमें चक्षु और मनसे प्रथम व्यंजनावग्रह नहीं होता। चक्षु और मन अपने विषयभूत अर्थको प्राप्त होकर ही उसको जानते हैं यह नैयायिकोंका मत जैन तर्क ग्रन्थोंमें विस्तारसे खण्डित किया गया है। यह तो अहेतुवादरूप आगम ग्रन्थ हैं अतः यहाँ वैसा नहीं गिना है। व्यंजनरूप विषयमें स्पर्शन, रसना, घ्राण, श्रोत्र चार इन्द्रियोंसे एक अवग्रह ही उत्पन्न होता है, ईहा आदि नहीं होते। क्योंकि एकदेश या सर्वदेश अभिव्यक्ति होनेपर ही ईहा आदि ज्ञानोंकी उत्पत्ति सम्भव है। उस समय उनका विषय अव्यक्तरूप व्यंजन नहीं रहता। इसलिए व्यंजनावग्रह चार ही होते हैं ॥३०७॥

विषय अर्थात् अर्थ और विषयी अर्थात् इन्द्रियोंका, संयोग अर्थात् योग्य देशमें स्थित होनेरूप सम्बन्धके होते ही नियमसे दर्शन उत्पन्न होता है। वस्तुके सत्तामात्र सामान्यरूपके निर्विकल्प ग्रहणको दर्शन कहते हैं। दर्शनके पश्चात् ही दृष्ट अर्थके वर्ण-आकार आदि विशेष रूपको ग्रहण करना अवग्रह नामक आद्यज्ञान उत्पन्न होता है। श्रीमद् भट्टाकलंक देवने लघीयस्त्रयमें कहा है—इन्द्रिय और अर्थका योग होते ही सत्तामात्रका दर्शन होता है। उसके

१. म 'व्य'।

पेळल्पट्टुदरिंदमिंद्रियार्त्थसंबंधानंतरं दर्शनं पुट्टुगुमें दु पेल्दी गाथासूत्रदोळनुक्तमुं पूर्व्वाचार्य्य-वचनानुसारदिदं व्याख्यानिसल्पट्टुदु ग्राह्यमक्कुं कैकोळल्पडुवुदें बुदर्त्थं । गृहीते अवग्रहदिदमिदु श्वेतमें दितु ज्ञातार्त्थदोळु विशेषमप्प बलाकारूपक्कागलु पताकारूपक्कागलु यथावस्थितवस्तुविनाऽकांक्षे बलाकया भवितव्यमें दितु भवितव्यताप्रत्ययरूपमप्प बलाकेयोळे संजायमानमीहे यें ब द्वितीयज्ञानमक्कुमथवा पताकारूपमप्प विषयमनवलंबिसि उत्पद्यमानमनया पताकया भवितव्यमें दितु भवितव्यताप्रत्ययरूपं पताकेयोळे संजायमानाकांक्षे ईहेयें ब द्वितीयज्ञानमक्कुमि ंद्रियांतरविषयंगळोळं मनोविषयदोळमवग्रहगृहीतदोळु यथावस्थितमप्प विशेषदाकांक्षारूपमीहे यें दितु निश्चितव्यमक्कुमेकें दोडे मतिज्ञानावरणक्षयोपशमतारतम्यभेददिदमवग्रहेहाज्ञानंगळगे भेदसंभवमुळ्ळुदरिदमी सम्यज्ञानप्रकरणदोळुबलाका वा पताका वा यें दितु संशयमक्कु बलाकेयोळु पताकया भवितव्यमें दितु विपर्य्ययक्कुमुमी मिथ्याज्ञानंगळगनवतारमें दरियल्पडुगुं ।

ज्ञान छद्मस्थाना' इति श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तचक्रवर्तिभिरपि प्रोक्तत्वात्, इन्द्रियार्थसबन्धानन्तर दर्शनमुत्पद्यते इत्येतस्मिन् गाथासूत्रे अनुक्तमपि पूर्वाचार्यवचनानुसारेण व्याख्यान ग्राह्यमित्यर्थ । गृहीते–अवग्रहेण इदं श्वेतमिति ज्ञाते अर्थविशेषस्य वलाकारूपस्य पताकारूपस्य वा यथावस्थितवस्तुन आकाङ्क्षा वलाकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपं वलाकायामेव संजायमान ईहाख्य द्वितीयं ज्ञान भवेत् । अथवा पताकारूप विषयमालम्ब्य उत्पद्यमाना अनया पताकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा पताकायामेव सजायमाना आकाङ्क्षा ईहेति द्वितीय ज्ञानं भवेत् । एव इन्द्रियान्तरविषयेषु मनोविषये च अवग्रहगृहीते यथावस्थितरूपविशेषस्य आकाङ्क्षारूपा ईहेति निश्चेतव्यम् । मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य तारतम्यभेदेन अवग्रहेहाज्ञानयोर्भेदसभवात् । अस्मिन् सम्यग्ज्ञानप्रकरणे वलाका वा पताका इति सशयस्य, वलाकाया पताकया भवितव्यमिति विपर्ययस्य च मिथ्याज्ञानस्यानवतारात् ॥३०८॥

अनन्तर अर्थके आकारादिको लिये हुए जो सविकल्प ज्ञान होता है वह अवग्रह है। श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीने भी कहा है कि छद्मस्थोंके दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है। यद्यपि इस गाथासूत्रमें यह नहीं कहा है कि इन्द्रिय और अर्थका सम्बन्ध होनेके अनन्तर दर्शन उत्पन्न होता है। फिर भी पूर्वाचार्योंके वचनके अनुसार व्याख्यान करना चाहिए। 'गृहीते' अर्थात् अवग्रहके द्वारा 'यह श्वेत है' ऐसा जाननेपर बलाकारूप या पताकारूप यथावस्थित अर्थको जाननेकी आकांक्षा यह बलाका—बगुलोंकी पंक्ति होना चाहिए इस प्रकार बगुलोंकी पंक्तिमें ही जो भवितव्यतारूप ज्ञान होता है वह ईहा है। अथवा पताकारूप विषयका आलम्बन लेकर अर्थात् यदि अवग्रहसे जानी हुई श्वेत वस्तु पताका प्रतीत हो तो यह पताका होनी चाहिए, इस प्रकार जो पताकामें ही भवितव्यता प्रत्ययरूप आकांक्षा होती है वह दूसरा ईहा ज्ञान है। इस प्रकार अन्य इन्द्रियोंके विषयमें और मनके विषयमें अवग्रहसे गृहीत वस्तुमें यथावस्थित विशेषकी आकांक्षारूप ज्ञान ईहा है यह निश्चय करना चाहिए। मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमकी हीनाधिकताके भेदसे अवग्रह और ईहा ज्ञानमें भेद होता है। इस सम्यग्ज्ञानके प्रकरणमें 'यह बलाका है या पताका' इस संशयको तथा बलाकामें यह पताका होनी चाहिए, इस विपरीत मिथ्याज्ञानको स्थान नहीं है ॥३०८॥

---

१. ब °तार इति ज्ञातव्यम् ।

ईहणकरणेण जदा सुणिण्णओ होदि सो अवाओ दु।
कालंतरेवि णिण्णिदवत्थुसुमरणस्स कारणं तुरियं ॥३०९॥

ईहनकरणेन यदा सुनिर्णयो भवति सोऽवायस्तु। कालांतरेपि निर्णीतवस्तुस्मरणस्य कारणं तुर्यं ॥

ईहनकरणेन विशेषाकांक्षाकरणदिदं बळिकं यदा आगळोम्मे ईहितविशेषार्त्थद सुनिर्णयः उत्पतननिपतनपक्षविक्षेपादिचिह्नंगळिदमिदु बलाकेये येंदितु बलाकात्वक्केये आवुदोंदु सुनिश्चयमक्कुमागळु सः अदु अवाय इति अवायमेंदितु अवयवोत्पत्तिरवायः एंब व्यपदेशमक्कुं। तु शब्दं पेरगाकांक्षितविशेषक्केये सुनिर्णयमवायमेंदितवधारणार्त्थमिदरिदं विपर्य्यासदिदं निर्णयं मिथ्याज्ञानतेयिदमवायमेंतेंदितु ग्राह्यमक्कुमल्लि बळिक्कं स एवावायः आ अवायमे पुनः पुनः प्रवृत्तिरूपाभ्यासजनितसंस्कारात्मकमागि कालांतरदोळं निर्णीतवस्तुस्मरणकारणत्वदिदं तुरियं चतुर्त्थं धारणाख्यं ज्ञानं भवे अक्कुं।

बहुबहुविहं च खिप्पाणिस्सिदणुत्तं धुवं च इदरं च।
तत्थेक्केक्के जादे छत्तीसं तिसयभेदं तु ॥३१०॥

बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवं चेतरं च। तत्रैकैकस्मिन् जाते षट्त्रिंशत्त्रिशतभेदं तु ॥

अर्त्थमु व्यंजनमुमेंब मतिज्ञानविषयं द्वादशप्रकारमक्कुमेंतेंदोडे बहुर्ब्बहुविधः क्षिप्रोऽनिःसृतोऽनुक्तो ध्रुवश्चेति। येंदु षट्प्रकारमु। एक एकविधोऽक्षिप्रोऽनिःसृत उक्तोऽध्रुवश्चेति। येंदु षट्प्रकारमितरभेदमुं कूडि द्वादशविधमक्कुमल्लि बह्वादिद्वादशविषयभेदंगळोळु एकैकस्मिन्

ईहनकरणेन-विशेषाकाङ्क्षाक्रियाया पश्चात् यदा ईहितविशेषार्थस्य सुनिर्णय. उत्पतनपतनपक्षविक्षेपादिभिश्चिह्नै इयं वलाकैवेति बलाकात्वस्य य. सुनिश्चयो भवेत् तदा स[1] अवाय इति व्यपदिश्यते। तुशब्दः प्रागाकाङ्क्षि[2]तविशेषस्यैव सुनिर्णयोऽवाय इत्यवधारणार्थं। अनेन विपर्यासेन निर्णयो मिथ्याज्ञानतया अवायो न भवतीति ग्राह्यम्[3]। ततः स एवावाय पुन पुन प्रवृत्तिरूपाभ्यासजनितसंस्कारात्मको भूत्वा कालान्तरेऽपि निर्णीतवस्तुस्मरणकारणत्वेन तुर्यं चतुर्थं धारणाख्यं ज्ञान भवति ॥३०९॥

अर्थो व्यञ्जन वा मतिज्ञानविषय बहु. बहुविध क्षिप्र. अनिसृत अनुक्तो ध्रुवश्चेति षोढा। तथा इतरोऽपि एकः एकविधः अक्षिप्र निसृत उक्त अध्रुवश्चेति षोढा एव द्वादशधा भवति। तत्र द्वादशस्वपि

विशेषकी आकांक्षारूप ईहा ज्ञानके पश्चात् जब ईहित विशेष अर्थका सुनिर्णय हो जाता है। जैसे ऊपर-नीचे होने तथा पंखोंके हिलाने आदि चिह्नोंसे यह बलाका ही है इस प्रकार निश्चयके होनेको अवाय कहते हैं। 'तु' शब्द पहले आकांक्षा किये गये विशेष वस्तुके निर्णयको ही अवाय कहते हैं यह अवधारणके लिए है। इससे यह ग्रहण करना चाहिए कि वस्तु तो कुछ और है और निर्णय अन्य वस्तुका किया तो वह अवाय नहीं है। वही अवाय बार-बार प्रवृत्तिरूप अभ्याससे उत्पन्न संस्काररूप होकर कालान्तरमें भी निर्णीत वस्तुके स्मरणमें कारण होता है तो धारण नामक चतुर्थ ज्ञान होता है ॥३०९॥

अर्थ या व्यंजनरूप मतिज्ञानका विषय बारह प्रकारका होता है—बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त, ध्रुव ये छह तथा इनके प्रतिपक्षी एक, एकविध, अक्षिप्र, निसृत, उक्त

१. ब स अवयवोत्पादः अवाय। २. ब काङ्क्षालक्षित वि°। ३. °ह्य पश्चात् स'।

बोंदोंदु विषयदोळु पेरगे पेळ्दष्टाविंशतिप्रकारमप्प मतिज्ञानं जाते सति पुट्टुत्तंमिरलु[1] मतिज्ञानं तु पुनः मत्ते षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतभेदमक्कुमें तेंदोडे अर्त्थात्मकबहुविषयमोंदरोळु अनिंद्रियेंद्रिय-भेदर्विदं मतिज्ञानंगळु षट्प्रकारंगळप्पु ६ वल्लि प्रत्येकमवग्रहेहावायधारणा एंब मतिज्ञानभेदंगळु नाल्कुं नाल्कुमागलुमारक्कमिप्पत्तनाल्कुं भेदंगळ्पुट्टुव २४वी प्रकारदिंदं व्यंजनात्मक बहुविषयदोळु स्पर्शनरसनघ्राण श्रोत्रंगळें ब चतुष्कदिंदं चतुरवग्रहज्ञानंगळे पुट्टुवंवितु अर्त्थव्यंजनात्मकबहुविषय-दोळु कूडि मतिज्ञानभेदंगळष्टाविंशतिप्रकारंगळप्पु २८वी प्रकारदिदमे अर्त्थव्यंजनात्मकबहुविधादि-गळोळु प्रत्येकमष्टाविंशतिअष्टाविंशतिमतिज्ञानभेदंगळागुत्तमिरलु अर्त्थव्यंजनात्मकबहुविषयादि पन्नेरडुं विषयंगळोळु पुट्टुव मतिज्ञानभेदंगळु षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतभेदंगळप्पुवु[2] ३३६।

बहुवत्तिजादिगहणे बहुबहुविहमियरमियरगहणम्मि ।
सगणामादो सिद्धा खिप्पादी सेदरा य तहा ॥३११॥

बहुव्यक्तिजातिग्रहणे बहुबहुविधमितरमितरग्रहणे । स्वकनामतः सिद्धाः क्षिप्रादयः सेतराश्च तथा ॥

एकैकस्मिन् विषये प्रागुक्ताष्टाविंशतिप्रकारे मतिज्ञाने जाते उत्पन्ने सति मतिज्ञानं तु पुनः षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतभेदं भवति ३३६। तद्यथा—बहुविषये अर्थात्मके अनिन्द्रियेन्द्रियभेदेन मतिज्ञानस्य भेदाः षट्, त एव पुनः अवग्रहेहावायधारणाभेदेन प्रत्येकं चत्वारश्चत्वारो भूत्वा चतुर्विंशतिः। तथा व्यञ्जनात्मके तु स्पर्शनरसनघ्राण-श्रोत्रैश्चत्वारोऽवग्रहा एव। एवमर्थव्यञ्जनात्मके बहुविषये मिलित्वा मतिज्ञानभेदा अष्टाविंशतिर्भवन्ति। अनेन प्रकारेण अर्थव्यञ्जनात्मकबहुविधादिष्वपि प्रत्येकमष्टाविंशत्यष्टाविंशतिज्ञानभेदेषु जातेषु द्वादशविषयेषु मतिज्ञानभेदा षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतीप्रमिता भवन्ति। यद्येकस्मिन्विषये अष्टाविंशतिर्मतिज्ञानभेदा भवन्ति तदा द्वादशसु विषयेषु कियन्तो मतिज्ञानभेदा भवन्तीति प्र १। फ २८। इ १२ त्रैराशिकं कृत्वा इच्छां फलेन संगुण्य प्रमाणेन भक्त्वा लब्धस्य तत्प्रमाणत्वात् ॥३१०॥

और अध्रुव। इन बारहोंमें-से एक-एक विषयमें पूर्वोक्त अट्ठाईस भेदरूप मतिज्ञानके उत्पन्न होनेपर मतिज्ञानके तीन सौ छत्तीस ३३६ भेद होते हैं। जो इस प्रकार जानना—बहुविषयरूप अर्थमें अनिन्द्रिय और इन्द्रियके भेदसे मतिज्ञानके छह भेद होते हैं। वे ही अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणाके भेदसे प्रत्येकके चार-चार होकर चौबीस होते हैं। तथा व्यंजनरूप विषयमें स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्रके द्वारा चार अवग्रह ही होते हैं। इस प्रकार अर्थ और व्यंजनरूप बहुविषयमें मिलकर मतिज्ञानके अठाईस भेद होते हैं। इस प्रकार अर्थ व्यंजनरूप बहुविध आदिमें भी प्रत्येकके अठाईस भेद होनेपर बारह विषयोंमें मतिज्ञानके भेद तीन सौ छत्तीस होते हैं। यदि एक विषयमें मतिज्ञानके भेद अठाईस होते हैं तो बारह विषयोंमें मतिज्ञानके भेद कितने होते हैं? इस प्रकार त्रैराशिक प्रमाणराशि एक, फलराशि अठाईस, इच्छाराशि बारह स्थापित करके फलराशि अठाईसको इच्छाराशि बारहसे गुणा करके प्रमाण-राशि एकसे भाग देनेपर मतिज्ञानके तीन सौ छत्तीस भेद होते हैं ॥३१०॥

१. म पुट्टुत्तं विरलु। २ म °रमप्पुं°।

बहुव्यक्ति विषयग्रहणमतिज्ञानदोळु तद्विषयमुं बहु एंदितु पेळल्पट्टुदु, एंतीगळु खंडमुंडश-बलादि बहुगोव्यक्तिगळिवें दितु । बहुजातिग्रहणमतिज्ञानदोळु तद्विषयं बहुविधमें दु पेळल्पट्टुदु । येंतीगळु गोमहिषाश्वादिबहुजातिगळें दितु । इतरग्रहणे एकव्यक्तिग्रहणमतिज्ञानदोळु तद्विषयमेकः ओंदु येंतीगळु खंडनिदें दितु । एकजातिग्रहणमतिज्ञानदोळु तद्विषयमेकविधमें तीगळु खंडनागलि मुंडनागलियदु गोवेयें दितु ।

क्षिप्रादिगळु क्षिप्राऽनिःसृतानुक्तध्रुवंगळुं सेतरंगळुमक्षिप्रनिःसृत उक्त अध्रुवंगळु तंतम्म नामंदिदमे सिद्धंगळऽवें तें दोडे क्षिप्रमें बुदु शीघ्रदिनिळितप्प जलधाराप्रवाहादियक्कुमनिःसृतमें बुदु गूढं जलमग्नहस्त्यादियक्कुमनुक्तमें बुदु अकथितमभिप्रायगतमक्कुं । ध्रुवमें बुदु स्थिरं चिरकालावस्थायिपर्व्वतादियक्कुमक्षिप्रमें बुदु मंदगमनाश्वादियक्कुं । निःसृतमें बुदु व्यक्तनिष्क्रांतं जलनिर्ग्गतहस्त्यादियक्कुमुक्तमें बुदु इदु घटमें दितु पेळल्पट्टु दृश्यमानमक्कुमध्रुवमें बुदु क्षणस्थायि विद्युदादियक्कुं ।

वत्थुस्स पदेसादो वत्थुग्गहणं तु वत्थुदेसं वा ।
सयलं वा अवलंबिय अणिस्सिदं अण्णवत्थुगई ।।।३१२।।

वस्तुनः प्रदेशतो वस्तुग्रहणं तु वस्तुदेशं वा । सकलं वाऽवलंब्यानिःसृतमन्यवस्तुगतिः ॥

बहुव्यक्तीना ग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषयो बहुरित्युच्यते[1] यथा खण्डमुण्डशवलादिबहुगोव्यक्तय.। बहुजातीना ग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषयो बहुविध[2] इत्युच्यते यथा गोमहिषाश्वादिबहुजातयः इति । इतरग्रहणे एकव्यक्तिग्रहणे मतिज्ञाने तद्विपय एकः यथा खण्डोऽयमिति । एकजातिग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषय एकविधः यथा खण्डो वा मुण्डो वा गौरिति । क्षिप्रादयः क्षिप्रानिसृतानुक्तध्रुवा स्वेतरे च अक्षिप्रनिसृतोक्ताध्रुवाश्च स्वस्वनामत एव सिद्धाः । तथाहि क्षिप्र शीघ्रपतज्जलधाराप्रवाहादि । अनिसृतः गूढो जलमग्नहस्त्यादिः । अनुक्तः अकथितः अभिप्रायगत । ध्रुवः स्थिर. चिरकालावस्थायी पर्वतादि । अक्षिप्रः मन्दं गच्छन्नश्वादि. । निसृत. व्यक्तनिष्क्रान्तः जलनिर्गतहस्त्यादि । उक्तः अय घट इति कथितो दृश्यमानः । अध्रुव क्षणस्थायी विद्युदादिः । तथा चेति-शब्दौ समुच्चयार्थौ ॥३११॥

जो मतिज्ञान बहुत व्यक्तियोंको ग्रहण करता है उसके विषयको बहु कहते हैं जैसे खण्डी, मुण्डी, चितकबरी आदि बहुत-सी गायें। जो मतिज्ञान बहुत-सी जातियोंको ग्रहण करता है उसके विषयको बहुविध कहते हैं। जैसे गाय, भैंस, घोड़ा आदि बहुत-सी जातियाँ। जो मतिज्ञान एक व्यक्तिको ग्रहण करता है उसके विषयको एक कहते हैं जैसे खण्डी गौ। जो मतिज्ञान एक जातिको ग्रहण करता है उसके विषयको एकविध कहते हैं जैसे खण्डी या मुण्डी गौ। शेष क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त, ध्रुव और उनके प्रतिपक्षी अक्षिप्र, निसृत, उक्त, अध्रुव तो अपने नामसे ही स्पष्ट हैं। क्षिप्र जैसे शीघ्र गिरती हुई जलधाराका प्रवाह आदि। अनिसृत गूढ़को कहते हैं जैसे जलमें डूबा हाथी आदि। अनुक्त बिना कहे हुए को या अभिप्रायमें वर्तमानको कहते हैं। ध्रुव स्थिरको कहते हैं जैसे चिरकाल तक स्थायी पर्वत आदि। अक्षिप्र जैसे धीरे-धीरे जाता हुआ घोड़ा वगैरह। निसृत व्यक्त या निकले हुएको कहते हैं। जैसे जलसे निकला हाथी आदि। उक्त 'यह घट है' इस प्रकारसे जो कहा गया वह विषय उक्त है। अध्रुव जैसे क्षणस्थायी बिजली आदि। तथा और चशब्द समुच्चयवाची है ।।३११।।

१. ब बहुर्यथा । २. ब बहुविध यथा ।

ओं दानुमों दु वस्तुविन प्रदेशात् एकदेशदोडनविनाभावियप्पऽव्यक्तमप्प वस्तुविन ग्रहणमनिसृतज्ञानमं बुदथवा ओं दु वस्तुविन एकदेशमं मेणु सकलं वस्तुवं मेणवलंबिसिकों डु मत्तमन्यवस्तुविन गतिः ज्ञानमावुदों ददुवुमनिःसृतज्ञानमक्कुमदक्कुदाहरणमं तोरिदपं ।

पुक्खरगहणे काले हत्थिस्स य वदणगवयगहणे वा ।
वत्थंतरचंदस्स य धेणुस्स य बोहणं च हवे ।।३१३।।

पुष्करग्रहणे काले हस्तिनश्च वदनगवयग्रहणे वा । वस्त्वंतरचंद्रस्य च धेनोश्च बोधनं च भवेत् ।।

जलदिदं पोरगे दृश्यमानमप्प पुष्करद जलमग्नहस्तिकराग्रद ग्रहणकालदोळु, दर्शनकालदोळु तदविनाभावि जलमग्नहस्तिग्रहणं जलदोळु हस्तिमग्ननिर्द्दपुदें दितु प्रतीति वा इव एंतंते इर्दरिंदमी साध्याविनाभावनियमनिश्चयमनुळ्ळ साधनदत्तणि "साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानमें दितु अनुमानप्रमाणं सगृहीतमक्कुं । अथवा ओं दानुमोर्व्व युवतिय वदनग्रहणकाले वदनदर्शनकालदोळे वस्त्वंतरचंद्रग्रहणं मुखसादृश्यदिदं चंद्रस्मरणं चंद्रसदृशं मुखमें दितु प्रत्यभिज्ञानं मेणरण्यदोळु गवयग्रहणकाले गवयदर्शनकालदोळे धेनुविन बोधनं धेनुविन स्मरणं गोसदृशं गवयमें दितु प्रत्यभिज्ञानं मेणु भवेत् अक्कुं । अनंतरगाथोक्तमप्पनिःसृतज्ञानक्किनितुमुदाहरणंगळु । वा शब्दं पक्षांतरसूचकं मेणु एंतोगळु

कस्यचिद्वस्तुन, प्रदेशाद्-एकदेशाद् व्यक्तात् तदविनाभाविनोऽव्यक्तस्य वस्तुनो ग्रहण अनिसृतज्ञानम् । अथवा एकस्य वस्तुन एकदेशं वा सकल वस्तु वा अवलम्ब्य गृहीत्वा पुनरन्यस्य वस्तुनो गति–ज्ञान यत्, तदप्यनिसृतज्ञानं भवति ।।३१२।। तदुदाहरति–

पुष्करस्य जलाद्बहिर्दृश्यमानस्य जलमग्नहस्तिकराग्रस्य ग्रहणकाले दर्शनकाले एव तदविनाभाविजलमग्नहस्तिग्रहण जले हस्तो मग्नोऽस्तोति प्रतीति । वा इव यथा अनेन अस्मात् साध्याविनाभावनियमनिश्चयात् साधनात् साध्यस्य ज्ञानमनुमानमिति अनुमानप्रमाण संगृहीत भवति । अथवा कस्याश्चित् युवतेर्वदनग्रहणकाले वस्त्वन्तरस्य चन्द्रस्य ग्रहणम् । मुखसादृश्याच्चन्द्रस्य स्मरण चन्द्रसदृश मुखमिति प्रत्यभिज्ञानं वा । अरण्ये गवयग्रहणकाले गवयदर्शनकाल एव धेनोर्बोधन स्मरण गोसदृशो गवय इति प्रत्यभिज्ञान वा भवेत् । वा इव

किसी वस्तुके प्रकट हुए एकदेशको देखकर उसके अविनाभावी अप्रकट अंशको ग्रहण करना अनिसृत ज्ञान है । अथवा एक वस्तुके एकदेश या समस्त वस्तुको ग्रहण करके अन्य वस्तुको जानना भी अनिसृत ज्ञान है ।।३१२।।

उसका उदाहरण देते हैं —

जलमें डूबे हुए हाथीकी जलसे बाहर दिखाई देनेवाली सूँडको देखते ही उसके अविनाभावी जलमग्न हस्तिका ग्रहण अनिसृत ज्ञान है। इससे, जिसका साध्यके साथ अविनाभाव नियम निश्चित है ऐसे साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते है इस अनुमान प्रमाणका संग्रह होता है । अथवा किसी युवतीके मुखको ग्रहण करते समय अन्य वस्तु चन्द्रमाका ग्रहण अथवा मुखकी समानतासे चन्द्रमाका स्मरण कि चन्द्रके समान मुख है अथवा गवयको देखते ही गायका स्मरण या गौके समान गवय है यह प्रत्यभिज्ञान इससे गृहीत होता है । 'वा' शब्द उदाहरणके प्रदर्शनमें प्रयुक्त हुआ है । जो बतलाता है कि अनन्तर

१. म °भावियप्प प्रतीत्यनिश्चयदत्तणिंद साधना° ।

[1]बाणसिगनावासदोळग्नियुंटागुत्तिरले पुट्टिद धूमं काणल्पट्टुदु अनग्निह्लावदोळु धूममनुपपन्नं निश्चितमंते सर्व्वदेशसर्व्वकालसंबंधितेयिंदमग्नि धूमंगळ अन्यथानुपपत्तिरूपाऽविनाभावसंबंधक्के ज्ञानं तर्क्कमें बुदक्कुं अदुवुं मतिज्ञानमक्कुमितनुमानस्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्क्काख्यंगळु नाल्कुं मतिज्ञानंगळुमनिःसृतार्त्थविषयंगळु केवलपरोक्षंगळेकें दोडेकदेशदिंदमुं वैशद्याभावमप्पुदरिदं । शेषस्पर्शनादींद्रियानिंद्रियव्यापारप्रभवंगळप्प बह्वाद्यर्त्थविषयमतिज्ञानंगळु सांव्यवहारिकप्रत्यक्षंगळप्पुवेकें-दोडेकदेशदिंदं वैशद्यसंभवदिंदं प्रत्यक्षं विशदज्ञानमेंबितु पूर्व्वाचार्य्यरुगळिंदं प्रत्यक्षक्के लक्षणं पेळल्पट्टुदप्पुदरिदं । यितवेल्लमुं मतिज्ञानंगळु प्रमाणंगळप्पुवेकेंदोडे सम्यग्ज्ञानत्वदिंदं सम्यग्ज्ञानं प्रमाणमें दितु प्रवचनदोळु पेळल्पट्टुदरिदं ।

एक्कचउक्कं चउवीसट्ठावीसं च तिप्पडिं किच्चा ।
इगिछब्बारसगुणिदे मदिणाणे होंति ठाणाणि ॥३१४॥

एकं चत्वारि चतुर्व्विंशतिमष्टाविंशतिं च त्रिः प्रति कृत्वा । एक षड्द्वादशगुणिते मतिज्ञाने भवन्ति स्थानानि ॥

यथा अत्र इवार्थद्योतको वाशब्दः उदाहरणप्रदर्शने प्रयुक्तः अनन्तरगाथोक्तानिसृतार्थज्ञानस्य एतावन्त्युदाहरणानि । पक्षान्तरसूचको वा । यथा महानसे अग्नौ सत्येव धूम उपपन्नो दृष्टः । ह्लदे अग्न्यभावे धूमोऽनुपपन्नो निश्चितः । तथैव सर्वदेशकालसंबन्धितया अग्निधूमयोरन्यथानुपपत्तिरूपस्य अविनाभावसंबन्धस्य ज्ञानं तर्कः सोऽपि मतिज्ञानं भवति । एवमनुमानस्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्काख्यानि चत्वारि मतिज्ञानानि अनिसृतार्थविषयाणि केवलं परोक्षाणि एकदेशतोऽपि वैशद्याभावात् । शेषाणि स्पर्शनादीन्द्रियानिन्द्रियव्यापारप्रभवानि बह्वाद्यर्थविषयाणि मतिज्ञानानि साव्यवहारिकप्रत्यक्षाणि एकदेशतो वैशद्यसंभवात् । प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानमिति पूर्वाचार्यैं प्रत्यक्षलक्षणस्योक्तत्वात् [2]। तानि सर्वाणि अपि मतिज्ञानानि प्रमाणानि सम्यग्ज्ञानत्वात् । सम्यग्ज्ञानं प्रमाण, इति प्रवचने प्रतिपादनात् ॥३१३॥

गाथामें कहे अनिसृत अर्थके ज्ञानके ये उदाहरण हैं। अथवा वा शब्द पक्षान्तरका सूचक है। जैसे रसोई घरमें अग्निके होनेपर ही धूम देखा जाता है। तालाबमें अग्निका अभाव होनेसे धूम भी नहीं होता। तथा सर्वदेश और सर्वकाल सम्बन्धी रूपसे आग और धूमके अन्यथानुपपत्तिरूप अविनाभाव सम्बन्ध—कि जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है। जहाँ आग नहीं होती वहाँ धूम भी नहीं होता—का ज्ञान तर्क है। यह भी मतिज्ञान है। इस प्रकार अनुमान, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान और तर्क नामक चारों ज्ञान मतिज्ञान हैं। ये चारों अनिसृत अर्थको विषय करते हैं इससे केवल परोक्ष हैं, एकदेशसे भी इनमें स्पष्टताका अभाव है। शेष स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ और मनके व्यापारसे उत्पन्न होनेवाले तथा बहु आदि अर्थको विषय करनेवाले मतिज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष हैं क्योंकि एकदेशसे स्पष्ट होते हैं। स्पष्ट ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते हैं। इस प्रकार पूर्वाचार्योंने प्रत्यक्षका लक्षण कहा है। ये सब मतिज्ञान प्रमाण हैं क्योंकि सम्यग्ज्ञान है। 'सम्यग्ज्ञान प्रमाण है' ऐसा आगममें कहा है ॥३१३॥

१ म प्रमाण । २ ब °स्यकथनात् ।

मतिज्ञानं सामान्यापेक्षेयिंदमों दु १। अवग्रहेहावायधारणापेक्षेयिंदं नाल्कु ४। इंद्रियानिंद्रियजनितार्त्थावग्रहेहावायधारणापेक्षेयिंदं चतुर्व्विंशति २४। अर्त्थव्यंजनोभयावग्रहापेक्षेयिंदं अष्टाविंशतिगळुमप्पु २८। विंतु नाल्कुं स्थानंगळं त्रिःप्रतिकंगळं माडि यथाक्रमं प्रथमस्थानचतुष्टयमं विषयसामान्यदिंदमों दरिदं गुणिसुवुदु। द्वितीयस्थानचतुष्टयमं बह्वादिविषयषट्कदिंदं गुणियिसुवुदु। तृतीयस्थानचतुष्टयमं बह्वादिद्वादशविषयंगळिंदं गुणिसुवुदिंतु गुणिसुत्तमिरलु मतिज्ञानदोळु विषयसामान्यार्धविषयसर्वविषयापेक्षंगळप्प स्थानंगळप्पुवु

२८। १	२८। ६	२८। १२
२४। १	२४। ६	२४। १२
४। १	४। ६	४। १२
१। १	१। ६	१। १२

अनंतरं श्रुतज्ञानप्ररूपणेयं प्रारंभिसुवातं मोदलोळन्नेवरं तत्सामान्यलक्षणं पेळ्वपं :—

अत्थादो अत्थंतरमुवलंभं तं भणंति सुदणाणं।
आभिणिबोहियपुव्वं णियमेणिह सद्दजं पमुहं ॥३१५॥

अर्त्थादर्त्थांतरमुपलभमानं तद्भणंति श्रुतज्ञानमाभिनिबोधिकपूर्व्वं नियमेनेह शब्दजं प्रमुखं ॥

मतिज्ञानं सामान्येन एक १। अवग्रहेहावायधारणापेक्षया चत्वारि ४। इन्द्रियानिन्द्रियजनितार्थावग्रहेहावायधारणापेक्षया चतुर्विंशतिः २४। अर्थव्यञ्जनोभयावग्रहापेक्षया अष्टाविंशतिः २८। एतानि चत्वारि स्थानानि त्रिःप्रतिकानि—

२८। १	२८। ६	२८। १२
२४। १	२४। ६	२४। १२
४। १	४। ६	४। १२
१। १	१। ६	१। १२

कृत्वा यथाक्रमं प्रथमं स्थानचतुष्टयं विषयसामान्येनैकेन गुणयेत्। द्वितीयं स्थानचतुष्टयं बह्वादिविषयषट्केन गुणयेत्। तृतीयं स्थानचतुष्टयं बह्वादिभिर्द्वादशविषयैर्गुणयेत्। एवं गुणिते सति मतिज्ञाने सामान्यविषयार्धविषयसर्वविषयापेक्षया स्थानानि भवन्ति ॥३१४॥ अथ श्रुतज्ञानप्ररूपणां प्रारभमाणः प्रथमस्तावत्तत्सामान्यलक्षणं[2] माह—

मतिज्ञान सामान्यसे एक है। अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाकी अपेक्षा चार है। इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाकी अपेक्षा चौबीस हैं। अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रहकी अपेक्षा अठाईस हैं। इन चारों स्थानोंको तीन जगह स्थापित करके यथाक्रम प्रथम चार स्थानोंको सामान्य विषय एकसे गुणा करना चाहिए। दूसरे चार स्थानोंको बहु आदि छह विषयोंसे गुणा करना चाहिए। तीसरे चार स्थानोंको बहु आदि बारह विषयोंसे गुणा करना चाहिए। इस तरह गुणा करनेपर मतिज्ञानके सामान्य विषय, बहु आदि छह अर्धविषय और सर्व विषयकी अपेक्षा स्थान होते हैं। यथा—॥३१४॥

२८×१	२८×६	२८×१२
२४×१	२४×६	२४×१२
४×१	४×६	४×१२
१×१	१×६	१×१२

अब श्रुतज्ञान प्ररूपणाको प्रारम्भ करते हुए पहले श्रुतज्ञानका सामान्य लक्षण कहते हैं—

---

१ म °दिद गु°। २ ब °णं प्ररूपयति।

मतिज्ञानदिदं निश्चितमावर्त्थदिदं तदर्त्थमनवलंबिसि अर्त्थांतरं तत्संबंधमन्यार्त्थमं उपलंभमानं अवबुध्यमानमं श्रुतज्ञानावरणवीर्य्यांतरायक्षयोपशमोत्पन्नमं जीवज्ञानपर्य्यायमं श्रुतज्ञानमेंदितु मुनीश्वररुगळु भणंति पेळ्वरु। अदें तप्पुदें दोडे आभिनिबोधिकपूर्व्वं नियमेन आभिनिबोधिकं मतिज्ञानं पूर्व्वं कारणं यस्य तदाभिनिबोधिकपूर्व्वं। मतिज्ञानावरणक्षयोपशमदिदं मतिज्ञानमे मोदलोळ् पुट्टुगुं मत्ते तद्गृहीतार्त्थमनवलंबिसि तद्बलाधानदिदमर्त्थांतरविषयमप्प श्रुतज्ञानं पुट्टुगुं मत्तों दु प्रकारदिदं पुट्टदें दितु नियमशब्ददिदं मतिज्ञानप्रवृत्यभावदोळु श्रुतज्ञानाभावमें दितवधारणमरिपल्पट्टुदु। इह ई श्रुतज्ञानप्रकरणदोळु अक्षरानक्षरात्मकंगळप्प शब्दजमुं लिंगजमुमें बेरडुं श्रुतज्ञानभेदंगळोळु शब्दजं वर्णपदवाक्यात्मकशब्दजनितमप्प श्रुतज्ञानं प्रमुखं प्रधानमेकें दोडे दत्तग्रहणशास्त्राध्ययनादिसकलव्यवहारंगळ्गे तन्मूलत्वदिदं। अनक्षरात्मकमप्प लिंगजश्रुतज्ञानमेकेंद्रियादिपंचेंद्रियपर्यंतमाद जीवंगळोळु विद्यमानमप्पुदादोडं व्यवहारानुपयोगदिदमप्रधानमक्कुं। श्रूयते श्रोत्रेंद्रियेण गृह्यते इति श्रुतः शब्दस्तस्मादुत्पन्नमर्त्थज्ञानं श्रुतज्ञानमें दितु व्युत्पत्तिगमुमक्षरात्मकप्राधान्याश्रयमक्कुमप्पुदरिंदमथवा श्रुतशब्दं रूढिशब्दमक्कुं। मतिज्ञानपूर्व्वकमर्थांतरमप्प

मतिज्ञानेन निश्चितमर्थमवलम्ब्य अर्थान्तरं—तत्सबद्धमन्यार्थमुपलम्यमानं—अवबुध्यमानं श्रुतज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमोत्पन्नं जीवस्य ज्ञानपर्यायं श्रुतज्ञानमिति मुनीश्वरा भणन्ति। तत्कथं भवेत् ? आभिनिबोधिकपूर्वं–नियमेन आभिनिबोधिकं मतिज्ञानं पूर्वं कारण यस्य तत्[1] तथोक्तं आभिनिबोधिकपूर्वं, मतिज्ञानावरणक्षयोपशमेन मतिज्ञान[2]मेव पूर्वं प्रथममुत्पद्यते। पुनः—पश्चात् तद्गृहीतार्थमवलम्ब्य तद्बला[3]दर्थान्तरविषय श्रुतज्ञानमुत्पद्यते नान्यप्रकारेणेति नियमशब्देन मतिज्ञानप्रवृत्त्यभावे श्रुतज्ञानाभाव इत्यवधार्यते। इह—अस्मिन् श्रुतज्ञानप्रकरणे अक्षरानक्षरात्मकयोः शब्दजलिङ्गजयोः श्रुतज्ञानभेदयोः मध्ये शब्दजं-वर्णपदवाक्यात्मकशब्दजनितं श्रुतज्ञानं प्रमुखं प्रधानं दत्तग्रहणशास्त्राध्ययनादिसकलव्यवहाराणा तन्मूलत्वात्। अनक्षरात्मक तु लिङ्गज श्रुतज्ञानं एकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तेषु जीवेषु विद्यमानमपि व्यवहारानुपयोगित्वाद-

मतिज्ञानके द्वारा निश्चित अर्थका अवलम्बन लेकर उससे सम्बद्ध अन्य अर्थको जाननेवाले जीवके ज्ञानको, जो श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ है, मुनीश्वर श्रुतज्ञान कहते हैं। वह ज्ञान नियमसे अभिनिबोधिक पूर्व है अर्थात् अभिनिबोधिक यानी मतिज्ञान उसका कारण है। मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे पहले मतिज्ञान ही उत्पन्न होता है। पश्चात् उससे गृहीत अर्थका अवलम्बन लेकर उसके बलसे अन्य अर्थको विषय करनेवाला श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। अन्य प्रकारसे नहीं। नियम शब्दसे यह अवधारण किया गया है कि मतिज्ञानकी प्रवृत्तिके अभावमें श्रुतज्ञान नहीं होता। इस श्रुतज्ञानके प्रकरणमें श्रुतज्ञानके अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक या शब्दजन्य और लिंगजन्य भेदोंमें-से वर्णपदवाक्यात्मक शब्दसे होनेवाला श्रुतज्ञान प्रमुख है प्रधान है क्योंकि देन-लेन, शास्त्रका अध्ययन आदि समस्त व्यवहारका मूल वही है। अनक्षरात्मक अर्थात् लिंगजन्य श्रुतज्ञान एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंमें विद्यमान रहते हुए भी व्यवहारमें उपयोगी न होनेसे अप्रधान होता है। 'श्रूयते' अर्थात् श्रोत्रेन्द्रियके द्वारा जो ग्रहण किया जाता है वह

१ ब तत् तदाभिनि°। २. ब °ज्ञानं पूर्वमु°। ३. ब तद्बलाधानेनार्था°।

अर्त्थांतरज्ञानद प्रतिपादकमप्पुदु परमागमदोळु रूढमक्कुमों दानुमों दु प्रकारदिदं कथंचित् निरुक्ति-संभविप रूढिशब्ददोळजहत्स्वार्त्थवृत्तिकदोळु कुशं लातीति कुशलः एंदितु कुशलादिशब्दंगळोळु निपुणाद्यर्त्थंगळु रूढंगळा रूढार्त्थंगळोळ तत्कुशलशब्दनिरुक्ति यें तंते अरियल्पडुगुमल्लि जीवोऽस्ति यें दितु नुडियल्पडुत्तिरलु जीवोऽस्ति यें दितो शब्दज्ञानं श्रोत्रेंद्रियप्रभवमतिज्ञानमक्कुमा ज्ञानदिंदं जीवोऽस्तिशब्दवाच्यरूपात्मास्तित्वदोळु वाच्यवाचकसंबंधसंकेतसंकलनेमा पूर्व्वकमागि आवुदों दु ज्ञानं पुट्टुगुमदक्षरात्मकश्रुतज्ञानमक्कुमेकें दोडक्षरात्मकशब्दसमुत्पन्नत्वदिदं कार्य्यदोळु[2] कारणोपचारमुळ्ळुदरिदं । वातशीतस्पर्शज्ञानदिदं वातप्रकृतिगे तत्स्पर्शनदोळमनोज्ञज्ञानमनक्षरात्मक-लिंगजमप्प श्रुतज्ञानमें बुदक्कुमेकें दोडे शब्दपूर्व्वकत्वाभावमप्पुदरिदं ।

लोगाणमसंखमिदा अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा ।
बेरूवछट्ठवग्गपमाणं रूऊणमक्खरगं ॥३१६॥

लोकानामसंख्यमितान्यनक्षरात्मके भवंति षट्स्थानानि । द्विरूपषष्ठवर्गप्रमाणं रूपोनमक्षरगं॥

प्रधानं भवति । श्रूयते—श्रोत्रेन्द्रियेण गृह्यते इति श्रुत. शब्द., तस्मादुत्पन्नमर्थज्ञानं श्रुतज्ञानमिति व्युत्पत्तेरपि अक्षरात्मकप्राधान्याश्रयणात् । अथवा श्रुतमिति रूढिशब्दोऽयं मतिज्ञानपूर्वकस्य अर्थान्तरज्ञानस्य प्रतिपादक परमागमे रूढ । यथाकथंचिन्निरुक्तिसंभव. रूढिशब्दे अजहत्स्वार्थवृत्तिके कुश लातीति कुशल इति कुशलादि-शब्देषु निपुणाद्यर्थेषु रूढेषु तन्निरुक्तिवत् । तत्र जीवोऽस्तीत्युक्ते जीवोऽस्तीति[3] शब्दज्ञानं श्रोत्रेन्द्रियप्रभव मतिज्ञानं भवति । तेन ज्ञानेन जीवोऽस्तीति शब्दवाच्यरूपे आत्मास्तित्वे वाच्यवाचकसंबन्धसंकेतसंकलनपूर्वक यत् ज्ञानमुत्पद्यते तदक्षरात्मकं श्रुतज्ञानं भवति, अक्षरात्मकशब्दसमुत्पन्नत्वेन कार्ये कारणोपचारात् । वातशीत-स्पर्शज्ञानेन वातप्रकृतिकस्य तत्स्पर्शे अमनोज्ञज्ञानमनक्षरात्मकं लिङ्गजं श्रुतज्ञानं भवति, शब्दपूर्वकत्वा-भावात् ॥३१५॥ अथ श्रुतज्ञानस्य अक्षरानक्षरात्मकभेदौ प्ररूपयति—

श्रुत अर्थात् शब्द है। उससे उत्पन्न अर्थज्ञान श्रुतज्ञान है। इस व्युत्पत्तिसे भी अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी प्रधानता लक्षित होती है। अथवा 'श्रुत' यह रूढ़ि शब्द है। परमागममें मतिज्ञान-पूर्वक होनेवाले अन्य अर्थके ज्ञानको कहनेमें रूढ़ है। फिर भी यथायोग्य निरुक्ति होती है। रूढ़ि शब्द अपने अर्थको नहीं छोड़ते। जैसे कुशको जो लाता है वह कुशल है इस प्रकार कुशल आदि शब्द चतुर आदि अर्थोंमें रूढ़ हैं फिर भी उनकी व्युत्पत्ति उसी प्रकार की जाती है। इसी प्रकार श्रुतके सम्बन्धमें जानना। 'जीव है' ऐसा कहनेपर यह जो शब्दका ज्ञान होता है कि 'जीव है,' यह श्रोत्रेन्द्रियसे उत्पन्न हुआ मतिज्ञान है। और ज्ञानके द्वारा 'जीव है' इस शब्दके वाच्यरूप आत्माके अस्तित्वमें वाच्यवाचक सम्बन्धके संकेत ग्रहणपूर्वक जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। क्योंकि अक्षरात्मक शब्दसे उत्पन्न हुआ है इस प्रकार कार्यमें कारणका उपचार किया है। तथा वायुके शीत स्पर्शके ज्ञानसे वात प्रकृतिवाले मनुष्यको जो उसके स्पर्शमें 'यह मेरे लिए अनुकूल नहीं है' ऐसा जो ज्ञान होता है वह अनक्षरात्मक लिंगजन्य श्रुतज्ञान है क्योंकि वह शब्दपूर्वक नहीं हुआ है ॥३१५॥

अब श्रुतज्ञानके अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक भेदोंको कहते हैं—

---

१. म °लनपूर्व सकलनमागि । २. म कार्यकारणो । ३. ब °स्त्येतद्ज्ञानं ।

अल्लि श्रुतज्ञानक्कऽनक्षरात्म अक्षरात्मकभेदर्दिदं द्विभेदमक्कु मल्लि अनक्षरात्मकमप्प श्रुतभेददोळु पर्य्यायपर्य्यायसमासलक्षणसर्व्वजघन्यज्ञानं मोदल्गों डु स्वोत्कृष्टपर्य्यंतं असंख्येयलोकमात्राऽज्ञानविकल्पंगळप्पुववुमसंख्येयलोकमात्रवारषट्स्थानवृद्धियिदं संवृद्धंगळप्पुवु। अक्षरात्मकं श्रुतज्ञानं द्विरूपवर्ग्गधारोत्पन्नषष्ठवार्ग्गमप्पे कट्ठमेंब पेसरनुळ्ळोड्डिढनोळेनितोळवु रूपुगळनितुमेकरूपोनंगळप्पुवुमनितुमक्षरंगळुमपुनरुक्ताक्षरंगळनाश्रयिसि संख्यातविकल्पमक्कुं। विवक्षितार्त्थाऽभिव्यक्तिनिमित्तपुनरुक्ताक्षरग्रहणदोळवं नोडलधिकप्रमाणमुमक्कुमें बुदर्त्थं।

अनंतरं श्रुतज्ञानक्के प्रकारांतरदिंदं भेदप्ररूपणार्त्थमागि गाथाद्वयमं पेळ्दपं :—

पज्जायक्खरपदसंघादं पडिवत्तियाणि जोगं च।
दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च ॥३१७॥

पर्य्यायाक्षरपदसंघातं प्रतिपत्तिकानुयोगं च। द्विकवारप्राभृतं च च प्राभृतकं वस्तुपूर्व्वं च ॥

तेसिं च समासेहि य वीसविधं वा हु होदि सुदणाणं।
आवरणस्स वि भेदा तत्तियमेत्ता हवंतित्ति ॥३१८॥

तेषां च समासैश्च विंशतिविधं वा हि भवति श्रुतज्ञानं। आवरणस्यापि भेदास्तावन्मात्रा भवंतीति ॥

श्रुतज्ञानस्य अनक्षरात्मकाक्षरात्मकौ द्वौ भेदौ, तत्र अनक्षरात्मके श्रुतज्ञाने पर्यायपर्यायसमासलक्षणे सर्वजघन्यज्ञानमादिं कृत्वा स्वोत्कृष्टपर्यन्तं असंख्येयलोकमात्रा ज्ञानविकल्पा भवन्ति। ते च असंख्येयलोकमात्रवारषट्स्थानवृद्धया सर्वाधिता भवन्ति। अक्षरात्मक श्रुतज्ञानं द्विरूपवर्गधारोत्पन्नषष्ठवर्गस्य एकट्ठनाम्नो यावन्ति रूपाणि एकरूपोनानि सन्ति तावन्ति अक्षराणि अपुनरुक्ताक्षराण्याश्रित्य संख्यातविकल्पं भवति। विवक्षितार्थाभिव्यक्तिनिमित्त पुनरुक्ताक्षरग्रहणे ततोऽधिकप्रमाण भवतीत्यर्थः ॥३१६॥ अथ श्रुतज्ञानस्य प्रकारान्तरेण भेदात् गाथाद्वयेनाह—

श्रुतज्ञानके अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक ये दो भेद हैं। अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके पर्याय और पर्यायसमास दो भेद हैं। इसमें सर्वजघन्य ज्ञानसे लेकर अपने उत्कृष्ट पर्यन्त असंख्यात लोक प्रमाण ज्ञानके भेद होते हैं। वे भेद असंख्यात लोकमात्र बार षट्स्थानपतित वृद्धिको लिये हुए हैं। अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके संख्यात भेद हैं। सो द्विरूप वर्गधारामें उत्पन्न छठे वर्गका, जिसका प्रमाण एकट्ठी है उसके प्रमाणमें-से एक कम करनेपर जितने अपुनरुक्त अक्षर होते हैं उतने हैं। इसका आशय यह है कि विवक्षित अर्थको प्रकट करनेके लिए पुनरुक्त अक्षरोंके ग्रहण करनेपर उससे अधिक प्रमाण हो जाता है ॥३१६॥

विशेषार्थ—दोसे लेकर वर्ग करते जानेको द्विरूपवर्गधारा कहते हैं। जैसे दोका प्रथम वर्ग चार होता है। चारका वर्ग सोलह होता है। सोलहका वर्ग दो सौ छप्पन होता है। दो सौ छप्पनका वर्ग पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस होता है जिसको पण्णट्ठी कहते हैं। पण्णट्ठीका वर्ग बादाल और बादालका वर्ग एकट्ठी प्रमाण होता है यही छठा वर्गस्थान है। इसमें एक कम करनेसे श्रुतज्ञानके समस्त अपुनरुक्त अक्षर होते हैं। उतने ही अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके भेद हैं।

अब अन्य प्रकारसे श्रुतज्ञानके भेद दो गाथाओंसे कहते हैं—

वा अथवा पर्य्यायश्च पर्य्यायमुं अक्षरं च अक्षरमुं पदं च पदमुं संघातश्चेति संघातमुमें दितु द्वंद्वैकत्वं प्रतिपत्तिकश्चानुयोगश्च प्रतिपत्तिकमुमनुयोगमुमें दिल्लियुमंते द्वंद्वैकत्वमक्कुं। द्विकवार-भाभृतकं च प्राभृतकप्राभृतकमुं प्राभृतकमें दुं वस्तु वस्तुवें दुं पूर्व्वं च पूर्व्वमुमें दितु दशभेदंगळप्पुवु। तेषां पेरगे पेळ्द पर्य्यायादिगळ पत्तुं समासंगळिंदं कूडि श्रुतज्ञानं विंशतिविधमुमक्कुमल्लि अक्षरादि विषयार्त्थज्ञानमप्प भावश्रुतक्के विवक्षितत्वदिदमवर विंशतिविधत्वनियमदोळु हेतुवं पेळ्दपं।

श्रुतज्ञानावरणद भेदंगळुमंतावन्मात्रंगळे भवंति अप्पुवेंदितु इतिशब्दक्के हेत्वर्त्थवृत्ति सिद्ध-माप्तु। पर्य्यायः पर्य्यायसमासश्च अक्षरमक्षरसमासश्च पदं पदसमासश्च संघातः संघातसमासश्च प्रतिपत्तिकः प्रतिपत्तिकसमासश्च अनुयोगोऽनुयोगसमासश्च प्राभृतकप्राभृतकं प्राभृतकप्राभृतक-समासश्च प्राभृतकं प्राभृतकसमासश्च वस्तु वस्तुसमासश्च पूर्व्वं पूर्व्वसमासश्चेति एंदितिदु तदा-लापक्रममक्कुं।

अनंतरं पर्य्यायमें ब प्रथमश्रुतज्ञानभेदस्वरूपप्ररूपणार्त्थं गाथाचतुष्टयमं पेळ्दपं।

णवरि विसेसं जाणे सुहुमजहण्णं तु पज्जयं णाणं।
पज्जायावरणं पुण तदणंतरणाणभेदम्मि ॥३१९॥

नवरि विशेषं जानीहि सूक्ष्मजघन्यं तु पर्य्यायं ज्ञान। पर्य्यायावरणं पुनस्तदनंतरज्ञानभेदे ॥

वा–अथवा, पर्यायाक्षरपदसंघातं पर्यायश्च अक्षरं च पद च सघातश्चेति द्वन्द्वैकत्वम्। प्रतिपत्तिकानुयोग–प्रतिपत्तिकश्च अनुयोगश्चेति द्वन्द्वैकत्वम्। द्विकवारप्राभृतक च प्राभृतकप्राभृतकमित्यर्थ। प्राभृतक च वस्तु च पूर्वं च इति दशभेदा भवन्ति। तेषा पूर्वोक्ताना पर्यायादीना दशभि समासै मिलित्वा श्रुतज्ञान विंशतिविध भवति। अत्राक्षरादिविषयार्थज्ञानस्य भावश्रुतस्य विवक्षितत्वेन तेषा विंशतिविधत्वनियमे हेतुमाह–श्रुतज्ञानावरणस्य भेदा अपि तावन्मात्रा एव विंशतिविधा एव भवन्ति, इति इतिशब्दस्य हेत्वर्थवृत्तिसिद्धेः। तद्यथा–पर्याय पर्यायसमासश्च, अक्षर, अक्षरसमासश्च, पद, पदसमासश्च, संघातः, संघातसमासश्च, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमासश्च, अनुयोग, अनुयोगसमासश्च, प्राभृतकप्राभृतकं, प्राभृतकप्राभृतकसमासश्च, प्राभृतक, प्राभृतकसमासश्च, वस्तु वस्तुसमासश्च, पूर्वं पूर्वसमासश्चेति तदालापक्रमो भवति ॥३१७–३१८॥ अथ पर्यायनाम्न प्रथमश्रुतज्ञानस्य स्वरूप गाथाचतुष्टयेनाह—

पर्याय, अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति, अनुयोग, प्राभृत प्राभृतक, प्राभृतक, वस्तु, पूर्व ये दस भेद होते हैं। इनके दस समास मिलानेसे श्रुतज्ञानके बीस भेद होते हैं—अर्थात् पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृतक प्राभृतक, प्राभृतक प्राभृतकसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व, पूर्वसमास, यह उनके आलापका क्रम है। यहाँ अक्षरादिके द्वारा कहे जानेवाले अर्थका ज्ञानरूप जो भावश्रुत है उसकी विवक्षा होनेसे उनके बीस ही होनेमें हेतु कहते हैं कि श्रुत-ज्ञानावरणके भेद भी बीस ही होते है। यहाँ 'इति' शब्द हेतुके अर्थमें है। इसलिए श्रुतज्ञानके बीस भेद हैं ॥३१७–३१८॥

अब पर्याय नामक प्रथम श्रुतज्ञानका स्वरूप चार गाथाओंसे कहते हैं—

पोसतप्प विशेषमरियल्पडुगुमदावुदें दोडे पर्य्यायमें ब प्रथमश्रुतज्ञानं तु मत्ते सूक्ष्मनिगोद-लब्ध्यपर्य्याप्तकन संबंधि सर्व्वजघन्यश्रुतज्ञानमक्कुं। पुनः मत्ते पर्य्यायज्ञानदावरणमुं तदनंतरज्ञान भेददोळनंतभागवृद्धियुक्तपर्य्यायसमासज्ञानप्रथमभेददोळक्कुमदें तें दोडे उदयागतपर्य्यायज्ञानावरण-समयप्रबद्धदुदयनिषेकदनुभागंगळ सर्व्वघातिस्पर्द्धकंगळुदयाभावलक्षणक्षयमुमवक्केये सदवस्था-लक्षणोपशममुं देशघातिस्पर्द्धकंगळुदयमुमुंटागुत्तिरलुमंतप्पावरणोदयदिदं पर्य्यायसमासप्रथमज्ञानमे-यावरणिसल्पडुगुं। तुमत्ते पर्यायज्ञानमावरणिसल्पडदेकें दोडे तदावरणदोळु जीवगुणमप्प ज्ञानक्क-भावमागुत्तिरलु गुणियप्पजीवक्केयुमभावप्रसंगमक्कुमप्पुदरिंदं।

अनुभागरचनेयं स्थापिसल्पट्टल्लि सिद्धानंतैकभागमात्रद्रव्यानुभागक्रमहानिवृद्धियुक्तनाना-गुणहानिस्पर्द्धकवर्ग्गणात्मकमप्प श्रुतज्ञानावरणद्रव्यदल्लि सर्व्वतःस्तोकमप्प सर्व्वपश्चिमप्रक्षीणोदया-नुभागसर्व्वघातिस्पर्द्धकद्रव्यक्केयो पर्य्यायज्ञानावरणत्वदिदं तावन्मात्रावरणद्रव्यक्के सर्व्वकालदोळ-मुदयाभावमप्पुदरिंदं।

नवीनं विशेष जानीहि, सः क ? पर्यायज्ञानं—पर्यायाख्यं प्रथम श्रुतज्ञानं, तु—पुनः, सूक्ष्मनिगोदलब्ध्य-पर्याप्तकस्य संबन्धि सर्वजघन्यं श्रुतज्ञानं भवति। पुनः—पश्चात् पर्यायज्ञानस्य आवरणं तदनन्तरज्ञानभेदे अनन्तभागवृद्धियुक्ते पर्यायसमासज्ञानप्रथमभेदे भवति, तद्यथा—उदयागतपर्यायज्ञानावरणसमयप्रबद्धोदयनिषेक-स्यानुभागाना सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणः क्षयः, तेषामेव सदवस्थालक्षण उपशमः, देशघातिस्पर्ध-कानामुदये सति तदावरणोदयेन पर्यायसमासप्रथमज्ञानमेव आव्रियते न तु पर्यायज्ञानम्। तदावरणे जीवगुणस्य ज्ञानस्याभावे गुणिनो जीवस्याप्यभावप्रसगात्। अनुभागरचनाया विन्यस्ते सिद्धानन्तैकभागमात्रे द्रव्यानुभाग-क्रमहानिवृद्धियुक्ते नानागुणहानिस्पर्धकवर्गणात्मके श्रुतज्ञानावरणद्रव्ये सर्वतः स्तोकस्य सर्वपश्चिमप्रक्षीणोदयानु-भागसर्वघातिस्पर्धकद्रव्यस्यैव पर्यायज्ञानावरणत्वात्। तावत आवरणद्रव्यस्य सर्वकालेऽप्युदयाभावात् ॥३१९॥

यह विशेष जानना कि पर्याय नामक प्रथम श्रुतज्ञान सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकका सबसे जघन्य श्रुतज्ञान होता है। किन्तु पर्यायज्ञानका आवरण उसके अनन्तर जो ज्ञानका भेद है, जो उससे अनन्तभागवृद्धिको लिये हुए है उस पर्याय समास ज्ञानके प्रथम भेदपर होता है। जो इस प्रकार है—उदयप्राप्त पर्याय ज्ञानावरणके समयप्रबद्धका जो निषेक उदयमें आया है उसके अनुभागके सर्वघाती स्पर्द्धकोंके उदयका अभाव ही क्षय है तथा जो अगले निषेक सम्बन्धी सर्वघाती स्पर्द्धक सत्तामें वर्तमान है उनका उपशम है और देशघाती स्पर्धकोंका उदय है। ऐसा क्षयोपशम पर्याय ज्ञानावरणका सदा रहता है। अतः पर्याय ज्ञानावरणके उदयसे पर्याय समास ज्ञानका प्रथम भेद ही आवृत होता है, पर्यायज्ञान नहीं। यदि उसका भी आवरण हो जाये तो जीवके गुण ज्ञानका अभाव होनेपर गुणी जीवके भी अभावका प्रसंग आता है। तथा अनुभाग रचनामें स्थापित किया सिद्ध राशिका अनन्तवाँ भागमात्र जो श्रुतज्ञानावरणका द्रव्य अर्थात् परमाणुसमूह है वह क्रम हानि और वृद्धिसे संयुक्त है, नाना गुणहानि स्पर्धक वर्गणात्मक है, उस श्रुतज्ञानावरणके द्रव्यमें जिसका उदयरूप अनुभाग क्षीण हो गया है और जो सबसे थोड़ा तथा सबसे अन्तिम सर्वघाति स्पर्धक है उसीका नाम पर्यायज्ञानावरण है। इतने आवरणका कभी भी उदय नहीं होता। इसलिए भी पर्यायज्ञान निरावरण है ॥३१९॥

सुहुमणिगोद अपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्मि ।
हांवदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं ।।३२०।।

सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये भवति खलु सर्व्वजघन्यं नित्योद्घाटं निरावरणं ।।

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तक जननद प्रथमसमयदोळु निरावरणं प्रच्छादनरहितमप्प नित्योद्घाटं सर्व्वदा प्रकाशमानमप्प सर्व्वजघन्यं सर्व्वनिकृष्टशक्तिकमप्प पर्य्यायमें ब श्रुतज्ञानमक्कुं । खलु । ई गाथासूत्रं पूर्व्वाचार्य्यप्रसिद्धं स्वोक्तार्त्थसंप्रतिपत्तिप्रदर्शनार्त्थमागि उदाहरणत्वदिदं बरेयल्पट्टुदु ।

सुहुमणिगोद अपज्जत्तगेसु सगसंभवेसु भमिऊण ।
चरिमापुण्णतिवक्काणादिमवक्कट्ठियेव हवे ।।३२१।।

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तगतेषु स्वसंभवेषु भ्रमित्वा । चरमापूर्णत्रिवक्राणामाद्यवक्रस्थित एव भवेत् ।।

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तनोळु संद स्वसंभवेषु द्वादशोत्तरषट्सहस्रप्रमितंगळप्प भवेषु भवंगळोळु भ्रमित्वा भ्रमिसि चरमापूर्णभवद त्रिवक्रविग्रहगतियिंदमुत्पन्नजीवन प्रथमवक्रद प्रथमसमयदोळिद्दंगेये मुंपेळ्द सर्व्वजघन्यपर्य्यायमें ब श्रुतज्ञानमक्कुं । मत्तल्लिये तज्जीवक्के स्पर्शनेंद्रियप्रभवसर्व्वजघन्यमतिज्ञानमचक्षुर्द्दर्शनावरणक्षयोपशमसमुद्भूताचक्षुर्द्दर्शनमुमक्कुमेकें दोडे -

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जात–जननं तस्य प्रथमसमये निरावरणं–प्रच्छादनरहित नित्योद्घाटं अतएव सर्वदा प्रकाशमान सर्वजघन्यं–सर्वनिकृष्टशक्तिकं पर्यायाख्यं श्रुतज्ञान भवति । खलु एतद्गाथासूत्रं पूर्वाचार्यप्रसिद्ध–स्वोक्तार्थसप्रतिपत्ति प्रदर्शनार्थं उदाहरणत्वेन लिखितम् ।।३२०।।

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकेषु स्वसंभवेषु द्वादशोत्तरषट्सहस्रप्रमितेषु भवेषु भ्रमित्वा चरमापूर्णभवस्य त्रिवक्रविग्रहगत्या उत्पन्नस्य जीवस्य प्रथमवक्रसमये स्थितस्यैव पूर्वोक्तं सर्वजघन्यं पर्यायाख्य श्रुतज्ञान भवति तत्रैव तस्य जीवस्य स्पर्शनेन्द्रियप्रभवं सर्वजघन्यं मतिज्ञान, अचक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमसंभूत अचक्षुर्दर्शनमपि

सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके जन्मके प्रथम समय पर्यायनामक श्रुतज्ञान होता है। यह निरावरण है इसीसे सर्वदा प्रकाशमान रहता है, सबसे जघन्य अर्थात् निकृष्ट शक्तिवाला होता है। यह गाथा सूत्र प्राचीन है यहाँ ग्रन्थकारने अपने कथनकी यथार्थता दिखलानेके लिए उदाहरणके रूपमें लिखा है ।।३२०।।

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीव अपने सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक सम्बन्धी छह हजार बारह भवोंमें भ्रमण करके अन्तिम लब्ध्यपर्याप्तक भवमें तीन मोड़ेवाली विग्रहगतिसे उत्पन्न होकर प्रथम मोड़ेके समयमें स्थित होता है उसके ही सबसे जघन्य पर्याय श्रुतज्ञान होता है। उसी समय उसके स्पर्शन इन्द्रियजन्य सबसे जघन्य मतिज्ञान होता है और अचक्षुदर्शनावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न अचक्षुदर्शन भी होता है। वहाँ ही सबसे जघन्य पर्याय श्रुतज्ञान होनेका कारण यह है कि बहुत क्षुद्रभवोंमें भ्रमण करनेसे उत्पन्न हुए बहुत

१. ब पर्यायनाम ।

बह्वपर्य्याप्तभवभ्रमणसंभूतबहुतमसंक्लेशवृद्धियिंदमावरणक्के तीव्रानुभागोदयसंभवमप्पुदरिंदं । द्वितीयादिसमयंगळोळु ज्ञानदर्शनवृद्धि संभवमेंदितु त्रिवक्रप्रथमवक्रसमयदोळे पर्य्यायज्ञानसंभवमरियल्पडुगुं ।

सुहुमणिगोद अपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्मि ।
फासिंदियमदिपुव्वं सुदणाणं लद्धिअक्खरयं ॥३२२॥

सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये । स्पर्शनेंद्रियमतिपूर्व्वं श्रुतज्ञानं लब्ध्यक्षरकं ॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकन जननप्रथमसमयदोळु सर्व्वजघन्यस्पर्शनेंद्रियमतिज्ञानपूर्व्वकमप्प लब्ध्यक्षरापरनामधेयमप्प पूर्व्वोक्तचरमभवत्रिवक्रप्रथमसमयादिविशेषणविशिष्टमप्प सर्व्वजघन्यपर्य्यायश्रुतज्ञानमक्कुमेंदितु ज्ञातव्यमक्कु । लब्धि एंबुदु श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशममक्कुमत्थग्रहणशक्तिमेणु लब्ध्या अक्षरमविनश्वरं लब्ध्यक्षरं तावन्मात्रक्षयोपशमक्के सर्व्वदा विद्यमानत्वदिदं ।

अनंतरं दशगाथासूत्रंगळिदं पर्य्यायसमासप्रकरणमं पेळ्दपं :—

अवरुवरिम्मि अणंतमसंखं संखं च भागवड्ढीओ ।
संखमसंखमणंतं गुणवड्ढी होंति हु कमेण ॥३२३॥

अवरोपर्य्यनंतमसंख्यं संख्यं च भागवृद्धयः । संख्यमसंख्यमनंतं गुणवृद्धयो भवंति हि क्रमेण ॥

सर्व्वजघन्यपर्य्यायज्ञानदमेले क्रमेण वक्ष्यमाणपरिपाटियिदमनंतभागवृद्धियुमसंख्यातभागवृद्धियुं संख्यातभागवृद्धियुं संख्यातगुणवृद्धियुमसंख्यातगुणवृद्धियुमनंतगुणवृद्धियुमेंदितु षट्स्थान-

भवति । बह्वपर्याप्तभवभ्रमणसंभूतबहुतमसंक्लेशवृद्धया आवरणस्य तीव्रतमानुभागोदयसंभवात्, द्वितीयादिसमयेषु ज्ञानदर्शनवृद्धिसंभवात् 'त्रिवक्रप्रथमवक्रसमये एव पर्यायज्ञानसंभवो ज्ञातव्यः ॥३२१॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जननप्रथमसमये सर्वजघन्यस्पर्शनेन्द्रियमतिज्ञानपूर्वकं लब्ध्यक्षरापरनामधेयं 'पूर्वोक्तचरमभवत्रिवक्रप्रथमसमयादिविशेषणविशिष्ट' सर्वजघन्यं पर्यायश्रुतज्ञानं भवतीति ज्ञातव्यम् । लब्धिर्नाम-श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशम: अर्थग्रहणशक्तिर्वा, लब्ध्या अक्षरं अविनश्वरं लब्ध्यक्षरं तावतः क्षयोपशमस्य सर्वदा विद्यमानत्वात् ॥३२२॥ अथ दशभिर्गाथाभिः पर्यायसमासप्रकरणं प्ररूपयति—

सर्वजघन्यपर्यायज्ञानस्य उपरि क्रमेण वक्ष्यमाणपरिपाट्या अनन्तभागवृद्धिः असंख्यातभागवृद्धिः

संक्लेशके बढ़नेसे आवरणके तीव्रतम अनुभागका उदय होता है, तथा दूसरे मोड़े आदिके समयोंमें ज्ञान और दर्शनमें वृद्धि सम्भव है। इसलिए तीन मोड़ोंमें-से प्रथम मोड़ेके समयमें ही पर्याय ज्ञान जानना ॥३२१॥

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवके जन्म लेनेके प्रथम समयमें सबसे जघन्य स्पर्शन इन्द्रियजन्य मतिज्ञानपूर्वक तथा पूर्वोक्त विशेषणोंसे विशिष्ट सबसे जघन्य पर्याय श्रुतज्ञान होता है। उसका दूसरा नाम लब्ध्यक्षर है। श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमको अथवा अर्थको ग्रहण करनेकी शक्तिको लब्धि कहते हैं। लब्धिसे जो अक्षर अर्थात् अविनाशी होता है वह लब्ध्यक्षर है; क्योंकि इतना क्षयोपशम सदा विद्यमान रहता है ॥३२२॥

अब दस गाथाओंसे पर्यायसमासका कथन करते हैं—

सबसे जघन्य पर्यायज्ञानके ऊपर आगे कही गयी परिपाटीके अनुसार अनन्तभागवृद्धि,

पतितंगळप्प वृद्धिगळप्पुवु। खलु। द्विरूपवर्गधारियोळनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदु जीवपुद्गलकालाकाशश्रेणियिदं मेलेयुमनंतानंतवर्ग्गस्थानंगळं नडेदु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकन जघन्यज्ञानाविभागप्रतिच्छेदंगळुत्पत्तिकथनदिदं तज्जघन्यज्ञानक्कनंतात्मकभागहारं पुट्टिसुगुं विरुद्धमल्तु।

जीवाणं च य रासी असंखलोगा वरं खु संखेज्जं ।
भागगुणंमि य कमसो अवट्ठिदा होंति छट्ठाणा ॥३२४॥

जीवानां च च राशिसंख्यातलोका वरं खलु संख्येयं। भागगुणयोश्च क्रमशोऽवस्थिता भवंति षट्स्थाने ॥

इल्लियनंतभागादिषट्स्थानंगळोळु क्रमदि ई षट्संदृष्टिगळप्पुवुमवुमवस्थितंगळु प्रतिनियतंगळुमप्पुववे ते दोडे अनंतमें बुदु भागवृद्धियोळं गुणवृद्धियोळं भागहारमुं गुणकारमुं प्रतिनियतसर्व्वजीवराशियेयक्कुं। १६। असंख्यातभागवृद्धियोळं गुणवृद्धियोळं भागहारमुं गुणकारमुं प्रतिनियतमसंख्यातलोकमेयक्कुं ≡a। संख्यातभागवृद्धियोळं गुणवृद्धियोळं भागहारमुं गुणकारमुं प्रतिनियतोत्कृष्टसंख्यातमेयक्कुं।

उव्वंकं चउरंकं पणछस्सत्तंकं अट्ठ अंकं च ।
छव्वड्ढीणं सण्णा कमसो संदिट्ठिकरणट्ठं ॥३२५॥

उर्व्वंकश्चतुरंकः पंचषट्सप्तांकाः। अष्टांकश्च षड्वृद्धीनां संज्ञाः क्रमशः संदृष्टिकरणार्थं ॥

संख्यातभागवृद्धि· संख्यातगुणवृद्धि· असंख्यातगुणवृद्धिः अनन्तगुणवृद्धिश्चेति षट्स्थानपतिता वृद्धयो भवन्ति खलु। द्विरूपवर्गधारायां अनन्तानन्तानि वर्गस्थानानि अतीत्यातीत्य उत्पन्नाना जीवपुद्गलकालाकाशश्रेणीना उपर्यपि अनन्तानन्तवर्गस्थानानि अतीत्य सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यज्ञानाविभाग-प्रतिच्छेदानामुत्पत्तिकथनात् तज्जघन्यज्ञानस्यानन्तात्मकभागहारः सुघटन् न विरुध्यते ॥३२३॥

अत्र अनन्तभागादिषु षट्सु स्थानेषु क्रमेण एताः षट् संदृष्टय अवस्थिता प्रतिनियता भवन्ति। तद्यथा—अनन्तभागवृद्धौ गुणवृद्धौ च भागहारो गुणकारश्च प्रतिनियतः सर्वजीवराशिरेव १६। असंख्यातभागवृद्धौ गुणवृद्धौ च भागहारो गुणकारश्च प्रतिनियतः असंख्यातलोक एव ≡ a। संख्यातभागवृद्धौ गुणवृद्धौ च भागहारो गुणकारश्च प्रतिनियत· उत्कृष्टसंख्यात एव १५ ॥३२४॥

असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि ये षट्स्थानपतित वृद्धियाँ होती हैं। द्विरूपवर्गधारामें अनन्तानन्त वर्गस्थान जा-जाकर जीवराशि, पुद्गलराशि, कालके समयोंकी राशि तथा आकाश श्रेणी उत्पन्न होती है। उनके भी ऊपर अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद उत्पन्न होते हैं ऐसा कथन है। अतः उसके जघन्य ज्ञानका भागहार अनन्तरूप सुघटित होता है इसमें कोई विरोध नहीं है ॥३२३॥

यहाँ अनन्तभागादिरूप छह स्थानोंमें क्रमसे ये छह संदृष्टियाँ अवस्थित हैं जो इस प्रकार हैं—अनन्तभागवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धिका भागहार और गुणकार प्रतिनियत सर्व जीवराशि प्रमाण है। असंख्यात भागवृद्धि और गुणवृद्धिका भागहार और गुणकार प्रतिनियत असंख्यात लोक ही है। संख्यातभागवृद्धि और गुणवृद्धिका भागहार और गुणकार प्रतिनियत उत्कृष्ट संख्यात ही है ॥३२४॥

पूर्व्वोक्तानंतभागाद्यर्त्थसंदृष्टिगळ्गे मत्तं लघुसंदृष्टिनिमित्तं षड्विधवृद्धिगळ्गे यथासंख्यमागि-यन्यनामसंदृष्टिगळ् पेळल्पट्टप्पुववेंते दोडनंतभागक्के उर्व्वंक। उ। मसंख्यातभागक्के चतुरंकं। ४। संख्यात भागक्के पंचांकं। ५। संख्यातगुणक्के षडंक-। ६। मसंख्यातगुणक्के सप्तांक। ७। मनंत-गुणक्कष्टांक। ८। मक्कुं।

अंगुल असंखभागे पुव्वगवड्ढीगदे दु परवड्ढी।
एक्कं वारं होदि हु पुण पुणो चरिमउड्ढिती ॥३२६॥

अंगुलासंख्यातभागान् पूर्व्ववृद्धौ गतायां तु परवृद्धिरेकं वारं भवति खलु पुनःपुनश्चरम-वृद्धिरिति ॥

अंगुलासंख्यातभागान् सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारंगलनु पूर्व्ववृद्धौ गतायां सत्यां पूर्व्व-वृद्धियोलुसलुत्तंविरलु। तु मत्ते परवृद्धिरेकंवारं भवति खलु। मुंवणवृद्धियोंदु बारियहुदु। स्फुट-मागियिती प्रकारदिदं पुनःपुनश्चरमपर्य्यंतं ज्ञातव्यं। मत्ते मत्ते चरमवृद्धिपर्यंत अरियल्पडुगुंम-वेंतें दोडे[2] पर्य्यायाख्यजघन्यज्ञानद मेलनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातेकभागमात्रंगळु पर्य्यायसमासज्ञानविकल्पंगळु नडेदोडोम्मे असंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कुं। ४। मत्तमंते अनंतैकभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडदु मत्तमोम्मे असंख्यात[3]भाग-

पूर्वोक्तानन्तभागाद्यर्थसदृष्टीना पुनः लघुसंदृष्टिनिमित्तं षड्विधवृद्धीना यथासंख्यं अपरसंज्ञाः संदृष्टयः कथ्यन्ते। अनन्तभागस्य उर्वङ्क उ। असंख्यातभागस्य चतुरङ्कः ४। संख्यातभागस्य पञ्चाङ्क ५। संख्यात-गुणस्य षडङ्कः ६। असंख्यातगुणस्य सप्ताङ्कः ७, अनन्तगुणस्य अष्टाङ्कः ८ ॥३२५॥

पूर्ववृद्धौ—अनन्तभागवृद्धौ सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्रवारान् गतायां सत्यां तु पुनः परवृद्धिः-असंख्यात-भागवृद्धिरेकवारं भवति खलु स्फुटं, पुनरपि अनन्तभागवृद्धौ सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रवारान् गताया सत्या असंख्यातभागवृद्धिरेकवारं भवति। अनेन क्रमेण तावद् गन्तव्यं यावदसंख्यातभागवृद्धिरपि सूच्यङ्गुलासंख्यातैक-भागमात्रवारान् गच्छति। ततः पुनरपि अनन्तभागवृद्धौ सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रवारान् गताया संख्यात-

पूर्वोक्त अनन्तभाग आदि अर्थसंदृष्टियोंकी पुनः लघुसंदृष्टिके निमित्त छह प्रकारकी वृद्धियोंकी यथाक्रम अन्य संज्ञा संदृष्टि कहते हैं—अनन्तभागवृद्धिकी उर्वंक अर्थात् उ, असंख्यातभाग वृद्धिकी चारका अंक ४, संख्यातभागवृद्धिकी पाँचका अंक ५, संख्यातगुणवृद्धि-की छहका अंक ६, असंख्यातगुणवृद्धिकी सातका अंक ७, और अनन्तगुणवृद्धिका आठका अंक ८ ॥३२५॥

पूर्ववृद्धि अर्थात् अनन्तभागवृद्धिके सूच्यंगुलके असंख्यात भाग बार होनेपर परवृद्धि अर्थात् असंख्यातभागवृद्धि एक बार होती है। पुनः अनन्तभागवृद्धि सूच्यंगुलके असंख्यात भाग बार होनेपर असंख्यातभागवृद्धि एक बार होती है। इस क्रमसे तबतक जाना चाहिए जब तक असंख्यातभागवृद्धि भी सूच्यंगुलके असंख्यात भाग बार होवे। उसके पश्चात् पुनः अनन्तभागवृद्धिके सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र बार होनेपर संख्यातभागवृद्धि एक बार होती है। पुनः पूर्वोक्त क्रमसे पूर्व-पूर्व वृद्धिके सूच्यंगुलके असंख्यातभाग मात्र बार होनेपर

१. म °वृद्धिगलेकैकवारंगलप्पुवु स्फुटं°। २. म दोडनंतभागवृद्धियुक्त स्थानंगलु पर्यायजघन्यज्ञानादि-विकल्पगलु सूच्यं। ३. म °तैकभाग।

वृद्धियुक्तस्थानमक्कु-। ४। मी प्रकारविदमसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैक भागमात्रंगळागुत्तिरलु। मत्तं मुंदेयनंतैकभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैक भागमात्रंगळु नडदोम्मे संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कु।५। मत्तमनंतभागवृद्धिस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैक-भागमात्रंगळु नडदोम्मे असंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कुंमत्तमंते अनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागंगळु नडदु मत्तोम्मे असंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कुमितु असंख्यात-भागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रगळागुत्तिरलु मत्तमनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडेदु मत्तमोम्मे संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कुमितु पूर्व्वापूर्व्वा-नंतासंख्यातैकभागवृद्धियुक्त[1]स्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभाग[2]मात्रंगळु नडनडदोम्मे संख्यात-भागवृद्धियुक्तस्थानंगळागुत्तमिरलु संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळं सूच्यंगुला[3]संख्यातभागमात्रंगळ-प्पुवंतागुत्तिरलु मर्त्तमितनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळुमसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानगळुं प्रत्येकं सूच्यगुलासंख्यातैकभागप्रमितगळु नडेनडेदु मत्तं मुंदे अनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुला-संख्यातैकभागमात्रंगळु नडदोम्मे संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानमक्कु-।६। मितु पूर्व्वपूर्व्वभागवृद्धि-युक्तस्थानगळु सूचयंगुलासंख्यातैक भागगळु नडनडदोम्मोम्मे संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळागुत्तं पोगलासंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळुं सूच्यंगुलासंख्याते[5]भागमात्रंगळप्पुवंतागुत्तिरलु। मर्त्तमित-नतासंख्यातसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळुं प्रत्येकं कांडकमितंगळनडेनडेदु मत्तं मुंदेयनंतभाग-वृद्धियुक्तस्थानंगळुं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडदोम्मे असख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानमक्कुमिते पूर्व्वापूर्व्वानंतासंख्यातसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानगळुं संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळुं सूच्यगुला-

भागवृद्धिरेकवार भवति। पुनरपि पूर्वोक्तक्रमेण पूर्वपूर्ववृद्धौ सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्रवारान् गतायां परवृद्धिरेकैकवारं भवतीत्यङ्गुलासंख्यातभागमात्रसंख्यातभागवृद्धौ गतायां पुन पूर्ववृद्धिषु सर्वासु पूर्वोक्तक्रमेण संख्यातभागवृद्धिरहितं आवर्तितासु सख्यातगुणवृद्धिरेकवारं भवति। उक्ताना वृद्धीना पूर्वोक्तसंदृष्टय –उ उ ४, उ उ ४, उ उ ५, उ उ ४, उ उ ४, उ उ ५, उ उ ४, उ उ ४, उ उ ६, द्विवारलिखित उर्वङ्कादिः अङ्गुलासंख्यातभागमात्रवारसंदृष्टि। एव षडङ्कपर्यन्तपङ्क्तिगतोर्वङ्कादीना सर्वेषामावृत्तौ सत्या षडङ्कोऽप्यङ्गुलासंख्यातभागमात्रवारान् गत इत्यर्थ, तत षडङ्करहितैकपङ्क्तेरावृत्तौ सत्या एकवारं सप्ताङ्कनामा-

वृद्धि एक-एक बार होती है। इस प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातभाग मात्र संख्यात भागवृद्धिके होनेपर पुनः पूर्वोक्त क्रमसे संख्यातभाग वृद्धिके सिवाय सब पूर्व वृद्धियोंकी आवृत्ति होनेपर एक बार संख्यात गुणवृद्धि होती है। उक्त वृद्धियोंकी पूर्वोक्त संदृष्टि इस प्रकार है—

उ उ ४। उ उ ४। उ उ ५। उ उ ४। उ उ ४। उ उ ५। उ उ ४। उ उ ४। उ उ ६।

उवंक आदिका दो बार लिखना सूच्यंगुलके असंख्यातभाग मात्र बारकी संदृष्टि है। इस प्रकार षडंक पर्यन्त पंक्तिगत उवंक आदि सबकी आवृत्ति होनेपर षडंक भी सूच्यंगुलके असंख्यात बार हुआ। अर्थात् ६ के अंककी वृद्धि भी दो बार हुई कहलायी। उसके पश्चात्

१ म °युक्त सू°। २ म मात्रस्थानंगलु। ३ म °ला संख्यातैकभाग°। ४ म °मत्तमनन्तैक भाग°। ५ म °तैकभाग°।

संख्यातैकभागमात्रंगळु नडेनडेदोम्मोम्मे असंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानमक्कुमंतागुत्तंविरलुमा असंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवंतागुत्तमिरलु । मत्तमंते अनंतासंख्यातसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळं संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळं प्रत्येकं कांडकप्रमितंगळ् नडनडेवु मत्तमंते मुंदे अनंतासंख्यातसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळं प्रत्येकं कांडकप्रमितंगळ् नडेवु मत्तमंते मुंदे मुंदेयु अनंतासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु प्रत्येकं कांडकप्रमितंगळ् नडेवु मत्तमंते मुंदे मुंदेयु अनंतासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु प्रत्येकं कांडकप्रमितंगळ् नडे नडेदु मुंदेयुमनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळु नडदोम्मे अनंतगुणवृद्धियुक्तस्थानमक्कुमितोंदु षट्स्थानदोळनंतासंख्यातसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु संख्यातासंख्यातानंतगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळुमेंदिती षट्स्थानंगळगमनिकेयुमं तत्तद्वृद्धिस्थानसंख्याप्रमाणमुमं ज्ञापिसितोरलु समर्थमप्प रचनाविशेषमिदु :—

२ १ २ ə ə	२ २ १ ə ə	२ १ ə	२ २ २ ə ə ə	२ २ १ ə ə	२ २ ə ə	२ ə				
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ	६
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६	२ ə
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७	१
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६	१
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६	२ ə
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७	२ ə
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६	१
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६	२ ə
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ८	१

संख्यातगुणवृद्धिर्भवति । एवं षडङ्कपङ्क्तिद्वयसप्ताङ्कैकपङ्क्तिरूपपङ्क्तित्रयस्यावृत्तौ सत्या सप्ताङ्कस्याङ्गुलासंख्यातभागमात्रवारसंदृष्टिर्भवति । इत्थं षट् पंक्तयो जाता. । ततः पुन सप्ताङ्करहितपङ्क्तित्रयस्य आवृत्तौ सत्या एकवारमष्टाङ्कनामा अनन्तगुणवृद्धिर्भवति । एवं षट्स्थानवृद्धीना वृत्तिक्रमो दर्शितो ग्रन्थलिखितरचनानुसारेण अव्यामोहेन श्रोतृजनैर्ज्ञातव्यः ।

षडंक रहित एक पंक्तिकी आवृत्ति होनेपर एक बार सप्तांक नामक संख्यात गुणवृद्धि होती है। इसी प्रकार षडंक सहित दो पंक्तियों और सप्तांक सहित एक पंक्ति, इस तरह तीन पंक्तियोंकी आवृत्ति होनेपर सप्तांककी सूच्यंगुलके असंख्यातभाग बार संवृष्टि होती है । इस प्रकार छह पंक्तियाँ हुई । इसके पश्चात् पुनः सप्तांक रहित तीन पंक्तियोंकी आवृत्ति होनेपर एक बार अष्टांक नामक अनन्तगुणवृद्धि होती है । यथा—

उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ८

इस प्रकार षट्स्थान वृद्धियोंका क्रम दिखलाया। ग्रन्थमें दर्शित रचनाके अनुसार श्रोताजनोंको बिना व्यामोहके जानना चाहिए। इस यन्त्रका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

पर्याय नामक श्रुतज्ञानके भेदसे अनन्तभागवृद्धि युक्त पर्याय समास नामक श्रुतज्ञानका प्रथम भेद होता है। इस प्रथम भेदसे अनन्तभागवृद्धि युक्त पर्याय समासका दूसरा भेद होता है। इस प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धि होनेपर एक बार असंख्यात भागवृद्धि होती है। ऊपर यन्त्रमें प्रथम पंक्तिके प्रथम कोठेमें दो बार उकार लिखा है वह सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धिकी पहचान जानना। उसके आगे चारका अंक लिखा वह एक बार असंख्यात भाग वृद्धिकी पहचान जानना। इसके ऊपर सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अनन्त भागवृद्धि होनेपर दूसरी बार असंख्यात भाग वृद्धि होती है। इसी क्रमसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धि होती है। इसीसे यंत्रमें प्रथम पंक्तिके दूसरे कोठेमें प्रथम कोठाकी तरह दो उकार और एक चारका अंक लिखा है जो दो बार सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग बारका सूचक है। अतः दूसरी बार लिखनेसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग बार जानना। उससे आगे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धि होनेपर एक बार असंख्यात भाग वृद्धि होती है। अतः प्रथम पंक्तिके तीसरे कोठेमें दो उकार और एक पाँचका अंक लिखा है। आगे जैसे पहले अनन्त भाग वृद्धिको लिये सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धिके होनेपर पीछे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धिके होनेपर एक बार संख्यात भाग वृद्धि हुई वैसे ही उसी क्रमसे दूसरी संख्यात भाग वृद्धि हुई। इसी क्रमसे तीसरी हुई। इस प्रकार संख्यात भाग वृद्धि भी सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण बार होती है। इससे ऊपर यन्त्रमें प्रथम पंक्तिमें जैसे तीन कोठे किये थे वैसे ही सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागकी पहचान-के लिए दूसरे तीन कोठे उसी प्रथम पंक्तिमें किये। यहाँसे आगे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धिके होनेपर एक बार असंख्यात भाग वृद्धि होती है। इस प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धि होती है। उसकी पहचानके लिए यन्त्रमें दो उकार और चारका अंक लिये दो कोठे किये। इससे आगे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धि होनेपर एक बार संख्यात गुण वृद्धि होती है। सो उसकी पहचानके लिए प्रथम पंक्तिके नौवें कोठेमें दो उकार और छहका अंक लिखा। जैसे प्रथम पंक्तिका क्रम रहा उसी प्रकार आदिसे लेकर सब क्रम दूसरी बार होनेपर एक बार दूसरी संख्यातगुणवृद्धि होती है। इसी क्रमसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण संख्यातगुणवृद्धि

द्विवारलिखितोर्व्वंकादिकमंगुलाऽसंख्यातैकवारसंदृष्टिः ।

मत्तमिल्लि सर्व्वजघन्यमप्प श्रुतज्ञानं पर्य्यायमें ब लब्ध्यक्षरापरनामधेयस्थानद मुंदण पर्य्यायसमासज्ञानविकल्पंगळनंतैकभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रविकल्पंगळप्पुववर वृद्धिप्रमाण क्रमविधानप्ररूपणं माडल्पडुमुगदें तें वोडनंतगुणजीवराशिप्रमितस्वात्र्थप्रकाशनशक्त्यविभागप्रतिच्छेदात्मकसर्व्वजघन्यश्रुतज्ञानमं । ज । एंदितु संस्थापिसि मत्तमा राशियं सर्व्वजीवराशियप्पनंतदिंदं भागिसि तदेकभागमं तज्जघन्यज्ञानदोळे समच्छेदमं माडि कूडुत्तमिरलवु

अथानन्तभागवृद्धेरङ्गुलासंख्यातभागमात्रवारान् वृत्तिक्रमो दर्श्यते तद्यथा—अनन्तगुणजीवराशिमात्रस्यार्थप्रकाशनशक्तय विभागप्रतिछेदात्मकं सर्वजघन्यश्रुतज्ञान ज इति सदृष्ट्या संस्थाप्य तं राशिं सर्वजीवराशिरूपानन्तेन भक्त्वा तदेकभागे ज तज्जघन्यस्योपरि समच्छेदेन युते सति म्रो राशिर्जायते स पर्यायसमासश्रुत-
१६

होती है। उसकी पहचानके लिए यन्त्रमें जैसे प्रथम पंक्ति थी उसी प्रकार उसके नीचे दूसरी पंक्ति लिखी। यहाँसे आगे—तीसरी पंक्ति प्रथम पंक्तिके समान लिखी। इतना विशेष कि नौवें कोठेमें जहाँ दो उकार एक छहका अंक लिखा था वहाँ तीसरी पंक्तिमें नौवें कोठेमें दो उकार और सातका अंक लिखा। यहाँसे आगे जैसे तीनों पंक्तियोंमें आदिसे लेकर अनुक्रमसे वृद्धि हुई उसी अनुक्रमसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण होनेपर जब असंख्यात गुण वृद्धि भी सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण हो तब पूर्ति हो। इसीसे यन्त्रमें जैसे प्रथम तीन पंक्तियाँ थीं वैसे ही दूसरी तीन पंक्तियाँ लिखीं। इस तरह छह पंक्तियाँ हुईं। यहाँसे आगे—जैसे आदिसे लेकर तीन पंक्तियोंमें क्रमसे वृद्धियाँ कही थीं वैसे ही क्रमसे पुनः सब वृद्धियाँ हुईं। विशेष इतना कि तीसरी पंक्तिके अन्तमें जहाँ असंख्यात गुण वृद्धि कही थी, उसके स्थानमें यहाँ तीसरी पंक्तिके अन्तमें एक बार अनन्त गुणवृद्धि होती है। इसीसे यन्त्रमें पहली, दूसरी, तीसरीके समान तीन पंक्तियाँ और लिखीं। किन्तु तीसरी पंक्तिके नौवें कोठेमें जहाँ दो उकार और सातका अंक लिखा है उसके स्थानमें यहाँ तीसरी पंक्तिके नौवें कोठेमें दो उकार और आठका अंक लिखा। जो अनन्त गुणवृद्धिका सूचक है। इसके आगे किसी वृद्धिके न होनेसे अनन्त गुणवृद्धि एक ही बार होती है। उसके होनेपर जो प्रमाण हुआ वह षट्स्थान पतित वृद्धिका प्रथम स्थान जानना। इस प्रकार पर्याय समास श्रुतज्ञानमें असंख्यात लोक बार मात्र षट्स्थान पतित वृद्धि होती है।

आगे उक्त कथनको स्पष्ट करते हैं—

सबसे जघन्य पर्याय श्रुतज्ञानके अपने विषयके प्रकाशनरूप शक्तिके अविभाग प्रतिच्छेद जीवराशिसे अनन्तगुणे होते हैं। उस राशिको सब जीवराशिरूप अनन्तसे भाजित करनेपर जो एक भाग आवे उसे उस जघन्य ज्ञानमें मिलानेपर पर्याय समास श्रुतज्ञानके विकल्पोंमें-से सबसे जघन्य प्रथम भेद आता है। यह एक बार अनन्त भाग वृद्धि हुई। फिर उस पर्याय समास ज्ञानके प्रथम विकल्पको जीवराशि प्रमाण अनन्तका भाग देनेपर जो एक भाग आवे उसे पर्याय समास ज्ञानके प्रथम भेदमें मिलानेपर उसका दूसरा भेद होता है। यह दूसरी अनन्त भाग वृद्धि हुई। उस दूसरे भेदको अनन्तका भाग देनेसे जो एक भाग आवे उसे उस दूसरे विकल्पमें मिलानेपर पर्याय समास ज्ञानका तीसरा विकल्प होता है। यह तीसरी अनन्तभाग वृद्धि हुई। फिर इस तीसरे भेदमें अनन्तसे भाग देनेपर जो एक भाग

पर्य्यायसमासश्रुतज्ञानविकल्पंगळोळु सर्व्वजघन्यप्रथमविकल्पमक्कु ज १६/१६ मिवरनंतैकभागमनल्लिये समच्छेदं माडि कूडुत्तिरलुमदु पर्य्यायसमासद्वितीयज्ञानविकल्पमक्कु ज १६/१६ १६/१६ मवरनंतैकभागममल्लिये समच्छेदं माडि कूडुत्तं विरलु पर्य्यायसमासतृतीयज्ञानविकल्पमक्कु ज १६/१६ १६/१६ १६/१६ मदरनंतैकभागमनल्लिये समच्छेदं माडि कूडिदोडे पर्य्यायसमासचतुर्त्थज्ञानविकल्पमक्कु ज १६/१६ १६/१६ १६/१६ १६/१६ मदरनंतैकभागमनल्लिवे समच्छेदं माडि कूडिदोडे पर्य्यायसमासपंचमश्रुतज्ञानविकल्पमक्कु ज १६/१६ १६/१६ १६/१६ १६/१६ १६/१६ मदरनंतैकभागमनल्लिये समच्छेदं माडि कूडु-

---

ज्ञानविकल्पेषु सर्वजघन्यप्रथमविकल्प स्यात् ज १६/१६ अस्यानन्तैकभागे ज १६/१६ । १६ अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते स पर्यायसमासद्वितीयज्ञानविकल्पः ज १६/१६ । १६/१६ । अस्यानन्तैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमास-तृतीयाज्ञानविकल्पः ज १६/१६ । १६/१६ । १६/१६ । अस्यानन्तैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमास-चतुर्थज्ञानविकल्प ज १६/१६ । १६/१६ । १६/१६ । १६/१६ । अस्यानन्तैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमास-पञ्चमश्रुतज्ञानविकल्प । ज १६/१६ । १६/१६ । १६/१६ । १६/१६ । १६/१६ । अस्यानन्तैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन

आवे उसे उस तीसरे भेदमें मिलानेपर पर्याय समास ज्ञानका चतुर्थ विकल्प आता है। यह चतुर्थ अनन्त भाग वृद्धि हुई। फिर इस चतुर्थ भेदमें अनन्तसे भाग देकर जो एक भाग आवे उसे उस चतुर्थ विकल्पमें मिलानेपर पर्याय समासका पंचम विकल्प आता है। यह पाँचवीं अनन्तभाग वृद्धि हुई। फिर उस पाँचवें भेदमें अनन्तसे भाग देनेपर जो भाग आता है उसे पाँचवें भेदमें मिलानेपर पर्याय समासका छठा विकल्प आता है। यह छठी अनन्त भाग वृद्धि हुई। इसी प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धि होनेपर जो पर्याय समास ज्ञानका भेद हुआ उसको एक बार असंख्यात लोक प्रमाण संख्यातसे भाग देनेपर जो परिमाण आवे उसे उसी भेदमें मिलानेपर एक बार असंख्यात भाग वृद्धिको लिये हुए पर्याय समास ज्ञानका भेद होता है। उसमें अनन्तसे भाग देनेपर जो परिमाण आवे उसे

त्तिरलु पर्य्यायसमासषष्ठश्रु तज्ञानविकल्पमक्कु ज $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ मितु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रानंतैकभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सर्व्वमु नडसल्पडुवुवल्लि तद्वृद्धिगळ्गे तज्जघन्यं

युते पर्यायसमासषष्ठश्रु तज्ञानविकल्पः ज $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ एवं सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागमात्राणि अनन्तैकभागवृद्धियुक्तस्थानानि सर्वाण्यानेतव्यानि ।

उसीमें मिलानेपर पर्याय समास ज्ञानका भेद होता है। यहाँसे अनन्त भाग वृद्धिका प्रारम्भ हुआ। इसी प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धि होनेपर जो पर्याय समास ज्ञानका भेद हुआ उसमें पुनः असंख्यातसे भाग देनेपर जो परिमाण आया उसको उसी भेदमें मिलानेपर दूसरी असंख्यात भाग वृद्धिको लिये पर्याय समास ज्ञानका भेद होता है।

इसी क्रमसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धिके पूर्ण होनेपर जो पर्याय समास ज्ञानका भेद हुआ उसमें अनन्तका भाग देनेपर जो परिमाण आवे उसको उसीमें मिलानेपर पर्याय समास ज्ञानका भेद होता है। यहाँ पुनः अनन्त भाग वृद्धिका प्रारम्भ हुआ सो सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धिके पूर्ण होनेपर जो पर्याय समास ज्ञानका भेद हुआ उसको उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर जो परिमाण आया उसको उसीमें मिलानेपर प्रथम संख्यात भाग वृद्धिको लिये पर्याय समासका भेद होता है। इससे आगे पुनः अनन्त भाग वृद्धि प्रारम्भ होती है। सो जैसे पूर्वमें कहा है उसीके अनुसार वृद्धि जानना। इतना विशेष है कि जिस भेदसे आगे अनन्त भाग वृद्धि होती है उसी भेदमें जीवराशि प्रमाण अनन्तका भाग देनेपर जो परिमाण आवे उसे उसी भेदमें मिलानेपर अनन्तरवर्ती भेद होता है। तथा जिस भेदसे आगे असंख्यात भाग वृद्धि होती है वहाँ उसी भेदको असंख्यात लोक प्रमाण असंख्यातसे भाग देनेपर जो परिमाण आवे उसको उसी भेदमें मिलानेपर उससे अनन्तरवर्ती भेद होता है। तथा जिस भेदसे आगे संख्यात भाग वृद्धि हो वहाँ उसी भेदको उत्कृष्ट संख्यात प्रमाण संख्यातसे भाग देनेपर जो परिमाण आवे उसे उसी भेदमें मिलानेपर उससे आगेका भेद होता है। तथा जिस भेदसे आगे संख्यात गुण वृद्धि होती है वहाँ उस भेदको उत्कृष्ट संख्यातसे गुणा करनेपर उस भेदसे अनन्तरवर्ती भेद होता है। जिस भेदसे आगे असंख्यात गुण वृद्धि होती है वहाँ उसी भेदको असंख्यात लोकसे गुणा करनेपर उससे आगेका भेद होता है। जिस भेदसे आगे अनन्त गुण वृद्धि होती है वहाँ उसी भेदको जीवराशि प्रमाण अनन्तसे गुणा करनेपर उससे आगेका भेद होता है इस प्रकार षट्स्थान पतित वृद्धिका क्रम जानना।

यहाँ जो संख्या कही है सो सब संख्या ज्ञानके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी जानना। तथा जो यहाँ भेद कहे हैं उनका भावार्थ यह है कि जीवके पर्याय ज्ञानसे यदि बढ़ता हुआ ज्ञान होता है तो पर्याय समासका प्रथम भेद ही होता है। ऐसा नहीं है कि किसी जीवके पर्यायज्ञानसे एक-दो अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ता हुआ भी ज्ञान हो।

मोदल्गोंडु तदुत्कृष्टवृद्धिपर्य्यंतं भेदमुंटप्पुदरिंदमवर विन्यासं तोरल्पडुगुमेंतेंदोडे पर्य्यायसमासज्ञानप्रथमविकल्पदोळिर्द्द वृद्धियं तेगदु जघन्यद मेगे स्थापिसि अदर केळगे एकसारानंतैकभागवृद्धियं स्थापिसुवुदंतु स्थापिसुत्तिरलु तद्वृद्धिगे प्रक्षेपकमेंब पेसरक्कु। मत्ते द्वितीयविकल्पदोळिर्द्द जघन्यमं मेगे स्थापिसि तदधस्तनभागदोळु तद्वृद्धिप्रक्षेपकंगळेरडुमोंदु प्रक्षेपकप्रक्षेपकमुमप्पुववं क्रमदिदं केळगे केळगिरिसुवुदु। तृतीयविकल्पदोळं जघन्यमं मेगे स्थापिसि तद्वृद्धिगळप्प मूरुं प्रक्षेपकंगळं मूरुं प्रक्षेपकप्रक्षेपंगळमोंदु पिशुलियुमं यथाक्रमदिदं तज्जघन्यद केळगे केळगे स्थापिसुवुदु। चतुर्त्थविकल्पदोळुमंते जघन्यमं मेगे स्थापिसि तदधस्तनभागदोळु तद्वृद्धिगळप्प नाल्कुं प्रक्षेपकंगळं षट्प्रक्षेपकप्रक्षेपकंगळं चतुःपिशुलिगळुमनोंदु पिशुलिपिशुलियुमं यथाक्रमदिद केळगे केळगे स्थापिसुवुदु।

पंचमविकल्पदोळमंते जघन्यमं मेग स्थापिसि तदधस्तनभागदोळु तद्वृद्धिगळप्प प्रक्षेपकंगळय्दुमं प्रक्षेपकप्रक्षेपकंगळ पत्तुं। पिशुलिगळु पत्तुमं पिशुलिपिशुलिगळैदुमनोंदु चूर्णियुमं यथाक्रमदिदं केळगे केळगे स्थापिसुवुदु। षष्ठविकल्पदोळुमंते जघन्यमं मेगे स्थापिसि तदधस्तनभागदोळु

तत्र तद्वृद्धीना तज्जघन्यमादि कृत्वा तदुत्कृष्टवृद्धिपर्यन्तं भेदे सति तद्विन्यासो दर्श्यते। तद्यथा—प्रथमविकल्पे स्थितवृद्धि पृथक्कृत्य जघन्यमुपरि संस्थाप्य तस्याधः एकवारानन्तैकभागवृद्धि स्थापयेत्, तद्वृद्धेः प्रक्षेपक इति नाम। तथा द्वितीयविकल्पे जघन्यमुपरि सस्थाप्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेर्द्वौ प्रक्षेपकौ एकं प्रक्षेपकप्रक्षेपकं च अधोधो न्यस्येत्। तृतीयविकल्पे जघन्यमुपरि सस्थाप्य तद्वृद्धेस्त्रीन् प्रक्षेपकान् त्रीन् प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् एकं पिशुलि च अधोधो न्यस्येत्। चतुर्थविकल्पे तज्जघन्यमुपरि न्यस्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेश्चतुरः प्रक्षेपकान् षट् प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् चतुरः पिशुलीन् एकं पिशुलिपिशुलि च अधोधो न्यस्येत्। पञ्चमविकल्पे

आगे यहाँ अनन्त भाग वृद्धि रूप सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान कहे हैं उसका जघन्य स्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त स्थापनका विधान कहते हैं। सो प्रथम ही संज्ञाओंको कहते हैं—

विवक्षित मूल स्थानको विवक्षित भागहारका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे प्रक्षेपक कहते हैं। उसी प्रमाणको उसी भागहारसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे प्रक्षेपक-प्रक्षेपक कहते हैं। उसमें भी विवक्षित भागहारसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे पिशुलि कहते हैं। उसमें भी विवक्षित भागहारसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे पिशुलि-पिशुलि कहते हैं। उसमें भी विवक्षित भागहारसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे चूर्णि कहते हैं। उसमें भी विवक्षित भागहारका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे चूर्णि-चूर्णि कहते हैं। इसी प्रकार पूर्व प्रमाणमें विवक्षित भागहारका भाग देनेपर द्वितीय आदि चूर्णि-चूर्णि कही जाती है। अस्तु—

सो पर्याय समास ज्ञानके प्रथम भेदमें ऊपर जघन्यको स्थापित करके उसके नीचे एक बार अनन्त भाग वृद्धिकी स्थापना करना चाहिए। उस वृद्धिका नाम प्रक्षेपक है। तथा दूसरे विकल्पमें जघन्यको ऊपर स्थापित करके उसके नीचे-नीचे उसकी वृद्धिके दो प्रक्षेपक और एक प्रक्षेपक-प्रक्षेपक स्थापित करें। तीसरे विकल्पमें जघन्यको ऊपर स्थापित करके उसकी वृद्धिके तीन प्रक्षेपक, तीन प्रक्षेपक-प्रक्षेपक और एक पिशुली नीचे-नीचे स्थापित करें। चतुर्थ विकल्पमें जघन्यको ऊपर स्थापित करके उसके नीचे-नीचे उसकी वृद्धिके चार प्रक्षेपक,

तद्वृद्धिगळप्प प्रक्षेपकंगळारुमं प्रक्षेपकप्रक्षेपकंगळ् पदिनैदुमं पिशुलिगळिप्पत्तुमं पिशुलिपिशुलिगळ् पदिनैदुमं चूर्णिगळारुमनोंदु चूर्णिचूर्णियुमं यथाक्रमदिदं केळगे केळगे स्थापिसुवुदितनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळेल्लवरोळं बेक्केय्दु तंतम्म जघन्यंगळ केळगे केळगे तंतम्म प्रक्षेपकंगळु गच्छमात्रंगळप्पुववं स्थापिसि यवर केळगे प्रक्षेपकप्रक्षेपकंगळु रूपोनगच्छेय एकवारसंकलनधनमात्रंगळप्पुववं स्थापिसुवुववर केळगे पिशुलिगळु द्विरूपोनगच्छेय द्विकवारसंकलनधनमात्रंगळप्पुववं स्थापिसि यवर केळगे पिशुलिपिशुलिगळु त्रिरूपोनगच्छेय त्रिकवारसंकलनधनमात्रंगळप्पुववं स्थापिसि यवर केळगे चूर्णिगळु चतूरूपोनगच्छेय चतुर्वारसंकलनधनमात्रंगळप्पुववं स्थापिसि यवर केळगे चूर्णिचूर्णिगळु पंचरूपोनगच्छेय पंचवारसंकलनधनमात्रंगळप्पुववं स्थापिसुवुदितु स्थापिसुत्तं पोगुत्तिरलु चरमाननंतभागवृद्धियुक्तस्थानविकल्पदोळु

तज्जघन्यमुपरि न्यस्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेः पञ्च प्रक्षेपकान् दश प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् दश पिशुलीन् पञ्च पिशुलिपिशुलीन् एकं चूर्णि च अधोधो न्यस्येत् । षष्ठविकल्पे तज्जघन्यमुपरि न्यस्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेः षट् प्रक्षेपकान् पञ्चदश प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् विंशति पिशुलीन् पञ्चदश पिशुलिपिशुलीन् षट् चूर्णीन् एकं चूर्णिचूर्णि च अधोधो न्यस्येत्, एवमनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानेषु सूच्यङ्गुलासंख्येयभागमात्रेषु सर्वेष्वपि स्वस्वजघन्यानामधोधः स्वस्वप्रक्षेपकान् गच्छमात्रान् न्यस्येत्, तेषामधः प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तेषामधः पिशुलीन् द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तेषामधः पिशुलिपिशुलीन् त्रिरूपोनगच्छस्य त्रिकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत्, तेषामधः चूर्णीन् चतूरूपोनगच्छस्य चतुर्वारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तेषामधः चूर्णिचूर्णीन् पञ्चरूपोनगच्छस्य पञ्चवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । एवं गत्वा

छह प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, चार पिशुलि और एक पिशुलि-पिशुली स्थापित करें। पाँचवें विकल्पमें जघन्यको ऊपर स्थापित करके उसके नीचे-नीचे उसकी वृद्धिके पाँच प्रक्षेपक, दश प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, दस पिशुली, पाँच पिशुली-पिशुली और एक चूर्णि स्थापित करे। छठे विकल्पमें जघन्यको ऊपर स्थापित करके उसके नीचे-नीचे उसकी वृद्धिके छह प्रक्षेपक, पन्द्रह प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, बीस पिशुली, पन्द्रह पिशुली-पिशुली, छह चूर्णि और एक चूर्णि-चूर्णि स्थापित करे। इस प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र अनन्त भाग वृद्धि युक्त सब पर्याय समास ज्ञानके स्थानोंमें अपने-अपने जघन्यके नीचे-नीचे अपने-अपने प्रक्षेपकोंको गच्छ प्रमाण स्थापित करना। उनके नीचे प्रक्षेपक-प्रक्षेपक एक कम गच्छके एक बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे पिशुली दो हीन गच्छके दो बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे पिशुली-पिशुली तीन हीन गच्छके तीन बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे चूर्णि चार हीन गच्छके चार बार संकलन धनमात्र स्थापित करना। उनके नीचे चूर्णि-चूर्णि पाँच हीन गच्छके पाँच बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। इसी प्रकार क्रमसे एक हीन गच्छका एक-एक अधिक बार संकलन चूर्णि-चूर्णि ही अन्त पर्यन्त जानना। अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थानोंमें अनन्तका जो स्थान है उनमें-से जघन्यको ऊपर स्थापित करना। उसके नीचे क्रमानुसार प्रक्षेपकोंको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र

१. म केळगे।

बेक्कं दु तज्जघन्यमं मेरो स्थापिसि तदधस्तनभागदोळु यथाक्रमदिदं प्रक्षेपकंगळु गच्छेमात्रंगळप्पुवेंदु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळं स्थापिसिदवर केळगे प्रक्षेपकप्रक्षेपकंगळु रूपोनगच्छेय एकवारसंकलनधनमात्रंगळप्पुवेंदु रूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छेय एकवारसंकलनधनप्रमितंगळं स्थापिसुवुदवर केळगे पिशुलिगळु द्विरूपोनगच्छेय द्विकवारसंकलनधनमात्रंगळप्पुवेंदु द्विरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छेय द्विकवारसंकलनधनमात्रंगळं स्थापिसुवुदवर केळगे पिशुलि पिशुलिगळु त्रिरूपोनगच्छेय त्रिवारसंकलनधनप्रमितंगळप्पुवेंदु त्रिरूपोनसूच्यंगुलासंख्यात भागगच्छेय त्रिवार-

---

चरमानन्तभागवृद्धियुक्तस्थानविकल्पे पृथक्कृततज्जघन्यमुपरि न्यस्येत्। तदधस्तनभागे यथाक्रमं प्रक्षेपकान् सूच्यङ्गुलासंख्येयभागमात्रान् न्यस्येत्। तदध. प्रक्षेपकप्रक्षेपका रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलनधनमात्राः सन्तीति रूपोनसूच्यङ्गुलासंख्येयभागगच्छस्य एकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत्। तदध. पिशुलय द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलनधनमात्राः सन्तीति द्विरूपोनसूच्यङ्गुलासंख्येयभागगच्छस्य द्विकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत्।

स्थापित करना, उसके नीचे प्रक्षेपक-प्रक्षेपकोंको, यतः वे एक कम गच्छके एक बार संकलन धन मात्र होते हैं अतः एक कम सूच्यंगुलके असंख्यात भाग गच्छके एक बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे पिशुली, जो दो हीन गच्छके दो बार संकलन धन मात्र होती हैं, इसलिए दो हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गच्छके दो बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे पिशुली-पिशुली तीन हीन गच्छके तीन बार संकलन धन मात्र होती हैं इसलिए तीन हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गच्छके तीन बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे चूर्णि चार हीन गच्छके चार बार संकलन धन मात्र होती हैं इसलिए चार हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गच्छके चार बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे चूर्णि-चूर्णि पाँच हीन गच्छके पाँच बार संकलन धन मात्र होती है इसलिए पाँच हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गच्छके पाँच बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। इसी प्रकार उसके नीचे-नीचे चूर्णि-चूर्णि छह हीन आदि गच्छके छह बार आदि संकलन धन मात्र होती हैं इसलिए छह हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग आदि गच्छोंके छह हीन सूच्यंगुलके असंख्यात भागादि बार संकलन धन मात्र नीचे-नीचे स्थापित करना। ऐसा करते-करते सबसे नीचेकी द्विचरम चूर्णि-चूर्णि दो हीन गच्छसे हीन गच्छकी दो हीन गच्छवार संकलित धन प्रमाण होती है इसलिए दो हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गच्छके दो हीन सूच्यंगुलके असंख्यात भाग बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे एक हीन गच्छसे हीन गच्छके एक हीन गच्छ मात्र बार संकलन धन मात्र उसकी अन्तिम चूर्णि-चूर्णि हैं इसलिए एक हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गच्छके एक हीन सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र बार संकलित धन प्रमाण स्थापित करना। परमार्थसे अन्तिम चूर्णि-चूर्णिका संकलित धन ही घटित नहीं होता क्योंकि द्वितीय आदि स्थानका अभाव है।

विशेषार्थ—अंक संदृष्टिसे उक्त कथन इस प्रकार जानना। जघन्य पर्याय ज्ञानका प्रमाण ६५५३६। विवक्षित भागहार अनन्तका प्रमाण चार। पूर्वोक्त क्रमसे चारका भाग देनेपर प्रक्षेपकका प्रमाण १६३८४। प्रक्षेपक-प्रक्षेपकका प्रमाण ४०९६। पिशुलीका प्रमाण १०२४। पिशुली-पिशुलीका प्रमाण २५६। चूर्णि प्रमाण ६४। चूर्णि-चूर्णि प्रमाण १६। इसी

संकलनधनमात्रंगळं स्थापिसुवुदवर केळगे चूर्णिगळु चतूरूपोनगच्छेय चतुर्व्वारसंकलनधनप्रमितंगळप्पुवेंबु चतूरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छेय चतुर्व्वारसंकलनधनमात्रंगळं स्थापिसुवुदवर केळगे चूर्णि चूर्णिगळु पंचरूपोनगच्छेय पंचवारसंकलनधनप्रमितंगळप्पुवेंबु पंचरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छेय पंचवारसंकलनधनमात्रंगळं स्थापिसुवुदिंतु तदधस्तनाधस्तनचूर्णिचूर्णिगळु

तदधः पिशुलिपिशुलय त्रिरूपोनगच्छस्य त्रिवारसकलनधनमात्राः सन्तीति त्रिरूपोनसूच्यङ्गुलासंख्येयभागगच्छस्य त्रिकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत्। तदधः चूर्णयः चतूरूपोनगच्छस्य चतुर्वारसंकलनधनमात्राः सन्तीति चतूरूपोनसूच्यङ्गुलासंख्येयभागगच्छस्य चतुर्वारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत्। तदधः चूर्णिचूर्णयः पञ्चरूपोनगच्छस्य पञ्चवारसंकलनधनप्रमिताः सन्तीति पञ्चरूपोनसूच्यङ्गुलासंख्यातभागगच्छस्य पञ्चवारसकलन-

---

तरह् चारका भाग देते रहनेसे द्वितीयादि चूर्णि-चूर्णिका प्रमाण चार, एक आदि जानना। ऊपर जघन्य ६५५३६ को स्थापित करके नीचे एक बार प्रक्षेपक १६३८४ स्थापित करके जोड़नेपर पर्याय समासके प्रथम भेदका प्रमाण ८१९२० होता है। फिर ऊपर जघन्य ६५५३६ स्थापित करके उसके नीचे दो प्रक्षेपक १६३८४।१६३८४ तथा एक प्रक्षेपक-प्रक्षेपक ४०९६ स्थापित करके जोड़नेपर पर्याय समासके दूसरे भेदका प्रमाण १०२४०० प्रमाण होता है। फिर ऊपर जघन्य ६५५३६ स्थापित करके उसके नीचे तीन प्रक्षेपक १६३८४। १६३८४। १६३८४। तीन प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, एक पिशुली स्थापित करके जोड़नेपर तीसरे भेदका प्रमाण १२८००० होता है। फिर ऊपर जघन्यको स्थापित करके नीचे-नीचे चार प्रक्षेपक, छह् प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, चार पिशुली एक पिशुली-पिशुली स्थापित करके जोड़नेपर चौथे भेदका प्रमाण १६०००० होता है। फिर ऊपर जघन्य स्थापित करके नीचे-नीचे पाँच प्रक्षेपक, दश प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, दस पिशुली, पाँच पिशुली-पिशुली, एक चूर्णि स्थापित करके जोड़नेपर पाँचवें भेदका प्रमाण दो लाख होता है। फिर ऊपर जघन्य स्थापित करके उसके नीचे-नीचे छह् प्रक्षेपक, पन्द्रह् प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, बीस पिशुलि, पन्द्रह् पिशुली-पिशुली, छह् चूर्णि, एक चूर्णि-चूर्णि स्थापित करके जोड़नेपर छठे स्थानका प्रमाण दो लाख पचास हजार होता है। इसी तरह् सब स्थानोंमें ऊपर जघन्य स्थापित करके उसके नीचे-नीचे जितना गच्छका प्रमाण है उतने प्रक्षेपक स्थापित करना। जहाँ जिस नम्बरका स्थान हो वहाँ उतना ही गच्छ जानना। जैसे छठे स्थानमें गच्छका प्रमाण छह् होता है। उसके नीचे एक हीन गच्छका एक बार संकलन धनका जितना प्रमाण हो उतने प्रक्षेपक-प्रक्षेपक स्थापित करना उनके नीचे दो हीन गच्छका दो बार संकलन धनका जितना प्रमाण हो उतने पिशुली स्थापित करने। उनके नीचे तीन हीन गच्छका तीन बार संकलन धनका जितना प्रमाण हो उतने पिशुली-पिशुली स्थापित करने। उनके नीचे चार हीन गच्छका चार बार संकलन धनका जितना प्रमाण हो उतने चूर्णि स्थापित करने। उनके नीचे पाँच हीन गच्छका पाँच बार संकलन धनका जितना प्रमाण हो हो उतने चूर्णि-चूर्णि स्थापित करना। इसी तरह् नीचे-नीचे छह् आदि हीन गच्छका छह् आदि बार संकलन धनका जितना-जितना प्रमाण हो उतने द्वितीयादि चूर्णि-चूर्णि स्थापित करना। इस तरह् स्थापित करके जोड़नेपर पर्याय समास ज्ञानके भेदोंका प्रमाण आता है। यहाँ जो एक बार-दो बार आदि संकलन धन कहे हैं उनका विधान कहते हैं।

षड्रूपोनादिगच्छेय षड्वारसंकलनादिधनप्रमितंगळप्पुवु षड्रूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागादिवार-संकलनधनमात्रंगळं केळगकेळगे स्थापिसुत्तं पोगि सर्व्वाधस्तनद्विचरम चूर्णिचूर्णिगळु द्विरूपोन-गच्छोनगच्छद्विरूपोनगच्छोनगच्छवारसंकलनदधन प्रमितंगळप्पुवु द्विरूपोनसूच्यंगुलासंख्यात-भागोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छेय द्विरूपोनसूच्यंगुलाऽसंख्यातभागवारसंकलनधनमात्रंगळं स्थापिसुवु ज २ । ३ । ४ । ००० । २–३ । २–२ । २ २ बुवनपर्वात्तसि ज २ २ यवर केळगे १६ a a

१६ । २ २ । २ २ । २३ । ००० । a ४ । a ३ । a । २ । a १

रूपोनगच्छोनगच्छरूपोनगच्छमात्रवार संकलनधनमात्र तच्चरमचूर्णिचूर्णियप्पुदरिंदं रूपोनसूच्यं-गुलासंख्यातभागोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छेय रूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारसंकलनधन-प्रमितमं ज । १ । २ । ३ ० ० ० २ २ २–१ २ अपवर्त्तितमनिदं ज । १ स्थापिसुवुदु

१६ २ । २ । २-१ । २–२ । ००० a ३–a २ । a १   १६ । २

a a a a   a

परमार्त्थरूपदिंदं चरमचूर्णिचूर्णिगे संकलितमे घटिसदेकेंदोडे द्वितीयादिस्थानाभावमप्पुदरिंदं । इल्लि षट्स्थानप्रकरणदोळनंतभागवृद्धियुक्तपर्य्यायसमासजघन्यादिज्ञानविकल्पंगळोळु सर्व्वत्र स्थापिसिद प्रक्षेपकंगळु गच्छमात्रंगळप्पुवदु कारणदिदं सुगमंगळु । प्रक्षेपकप्रक्षेपकादिगळ प्रमाण-नरिवल्लिगे करणसूत्रमिदु ।

धनमात्रान् न्यस्येत् । एवं तदधस्तनाधस्तनचूर्णिचूर्णय षड्रूपोनादिगच्छस्य षड्वारादिसंकलनधनप्रमिताः सन्तीति षड्रूपोनसूच्यङ्गुलासंख्येयभागादिगच्छाना षड्रूपोनसूच्यङ्गुलासख्यातभागादिवारसंकलनधनमात्रान् अधोऽधो विन्यस्यन् गत्वा सर्वाधस्तनद्विचरमचूर्णिचूर्णयः द्विरूपोनगच्छोनगच्छस्य द्विरूपोनगच्छवारसंकलनधन-प्रमिताः सन्तीति द्विरूपोनसूच्यङ्गुलासंख्येयभागोनसूच्यङ्गुलासख्यातभागगच्छस्य द्विरूपोनसूच्यङ्गुलासख्यातभाग-वारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत्—

ज	२	३	४ । ० ० ० । २–३	२–२	२–१	२
१६ २–१	२–१	२–२	२–३ । ० ० ० । a । ४	a । ३	a । २	२ । १
a	a	a	a			

अपवर्तिते एवं— ज/१६ २–१/a २ a तदधो रूपोनगच्छोनगच्छस्य रूपोनगच्छमात्रवारसकलनधनमात्रा तच्चरम-चूर्णिचूर्णय सन्तीति रूपोनसूच्यङ्गुलासंख्यातभागोनसूच्यङ्गुलासंख्यातभागगच्छस्य रूपोनसूच्यङ्गुलासंख्यात-भागमात्रवारसंकलनधनप्रमितं—

ज	१	२	३	४ ० ० ० २ । ३ । २–२ । २–१ । २
१६ २	२	२–१	२–२	२–३ । ० ० ० a ४ । a ३ । a २ । a १
a	a	a	a	a

अपवर्तितमिद— ज/१६ २/a १ स्थापयेत् । परमार्थतः चरमचूर्णिचूर्णे संकलितमेव न घटेत द्वितीयादिस्थाना-भावात् । अत्र षट्स्थानप्रकरणे अनन्तभागवृद्धियुक्तविकल्पेषु सर्वत्र प्रक्षेपका· गच्छमात्रा सन्तीति सुगमाः ।

इस षट्स्थान प्रकरणमें अनन्त भागवृद्धि युक्त विकल्पोंमें सर्वत्र प्रक्षेपक गच्छ प्रमाण होते हैं इसलिए वे सुगम हैं। प्रक्षेपक-प्रक्षेपक आदिका प्रमाण लानेके लिए करणसूत्र इस

व्येकपदोत्तरघातः सरूपवारोद्धृतो मुखेन युतः ।
रूपाधिकवारांताप्तपदाद्यंकैर्हतोवित्तं ॥

एंदितु पर्य्यायसमास ज्ञानविकल्पंगळोळु विवक्षितषष्ठविकल्पदोळु चतुर्व्वार संकलनधनानयनदोळु व्येकपद विगतमेकेन व्येकं । तच्च तत्पदं च व्येकपदं । अत्र चतूरूपोनगच्छ एव ६ । ४ पदं २ । तत्र एकस्मिन्नपनीते २—१ एवं । तेनोत्तरघातः । एकवारादिसंकलनमाश्रित्यैवोत्पत्तिसंभवाद्येकाद्येकोत्तरत्वादुत्तरघातः कर्त्तव्यः । १ । १ । सरूपवारोद्धृतः रूपेण सहितः सरूपः । स चासौ वारश्च सरूपवार ४ स्तेनोद्धृतो भक्तः । १/४ ० १ । मुखेन युतः मुखमादिस्तेन युतः समच्छेदी कृत्य युते एवं ६/५ पुनः रूपाधिकवारांताप्तपदाद्यंकैर्हतः । रूपाधिकवारावसान १/४ । हार विकल्पै ४ । ३ । २ । १ । राप्तभक्तपदाद्यंकैः । पदं गच्छ आदिर्य्येषां ते पदादयस्ते च ते अंकाश्च तैर्हतः ६ । २ । ३ । ४ । ५ / ५ । ४ । ३ । २ । १ अपवर्त्तितं वित्तं धनं भवति एंदितो सूत्रदिदं तरल्पट्ट विवक्षितषष्ठविकल्पदोळु चतुर्व्वारसंकलनधनमारक्कु । ६ । इंते सर्व्वत्र समस्तवारसंकलनधनंगळं विवक्षितंगळं तंदुकोंबुदु ।

प्रक्षेपकप्रक्षेपकादीना प्रमाणानयने करणसूत्रमिदं—

व्येकपदोत्तरघातः सरूपवारोद्धृतो मुखेन युतः ।
रूपादिकवारान्तासपदाद्यङ्कैर्हतो वित्तम् ॥

तत्र षष्ठं विकल्प विवक्षित कृत्वा चूर्णीना चतुर्वारसंकलितधनमानीयते । तत्र पदं चतूरूपोनगच्छ ६–४ मात्र २ । व्येक एकरहितं २–१ अस्य उत्तरेण घात. एकवारादिसंकलनरचनामाश्रित्यैव द्विकवारादिसंकलनरचनोत्पत्ते सर्वत्रादि उत्तरश्चैकैक. इत्येकेन घात कर्तव्य १ । १ । गुणिते एवं १, सरूपवारोद्धृतः रूपाधिकवार ४ । भक्त १/४ । मुखमादि. १ तेन समच्छेदेन ५/५ सहितः ६/५ रूपादिकवारान्तासपदाद्यङ्कैर्हत एकरूपप्रभृतिवारावसानहारभक्तपदाद्यङ्क. २/४ ३/३ ४/२ ५/१ हत गुणितः ६/५ २/४ ३/३ ४/२ ५/१ अपवर्तित ६ वित्तं षष्ठविकल्पचूर्णिधन भवति, एवमेव सर्वत्र समस्तवारसंकलनधनानि विवक्षितान्यन्यानि

प्रकार है—उसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट करनेके लिए छठे विकल्पको विवक्षित करके चूर्णियोंका चार बार संकलित धन लाते हैं—यहाँ पद चार हीन गच्छ ६ – ४ = मात्र २ है । उसमें एक घटानेपर २ – १ = एक शेष रहता है । इसको उत्तरसे गुणा करना चाहिए । सो एक बार आदि संकलन धन रचनाकी अपेक्षा ही दो बार आदि संकलनकी रचना उत्पन्न होती है । सर्वत्र आदि और उत्तर एक-एक है अतः उसे एकसे गुणा करने पर १ × १ = एक ही रहा । इसका यहाँ चार बार संकलन कहा है सो चारमें एक मिलानेपर पाँच हुआ । उसका भाग देनेपर एकका पाँचवाँ भाग हुआ । इसमें मुख जो आदि, उसका प्रमाण एक, सो समच्छेद करके मिलानेपर छहका पाँचवाँ भाग हुआ । यहाँ चार बार कहा है सो एकसे लेकर एक-एक

१. म चतुर्थवार ।

ज	ज	ज	ज	ज	ज	ज	ज
प्र	ज १ १६	ज २ १६	ज ३ १६	ज ४ १६	ज ५ १६	ज ६।००००००००० १६	ज २ १६ a
	प्र प्र	ज १ १६।१६	ज ३ १६।१६	ज ६ १६।१६	ज १० १६।१६	ज १५००००००००० १६।१६	ज २ २ १६।१६ aaa १
		पि	ज १ १६।१६।१६	ज ४ १६।१६।१६	ज १० १६।१६।१६	ज २०।०००००००० १६।१६।१६	ज २ २ २ २ १६।१६।१६ aa ३ a २१
			पि पि	ज १ १६।१६।१६।१६	ज ५ १६।१६।१६।१६	ज ५।०००००००	ज २३ २२ २१ २ ३ २४ aaa । १ ३२
				चू	ज १ १६।१६।१६।१६।१६	ज ६।०००००००००० १६।१६।१६।१६।१६	ज २ २ ० १६ a a ०
					चू चू	ज १।००००००००० १६।१६।१६।१६।१६।१६	ज १ १६ २ a

५

मत्तं केशवण्णंगळु तम्मभिप्रायदि तरल्पडुव विशेषकरणगाथासूत्रद्वयं :—

तिरियपदे रूऊणे तदिट्ठहेट्ठिल्ल संकळणवारा ।

कोट्ठधणस्साणयणे पभवं इट्ठूणिवुड्ढपदसंखा ॥

तिर्य्यक्पदे रूपोने तदिष्टाधस्तनसंकलनवारा । भवंति कोष्ठधनस्यानयने प्रभवः इष्टोनितोर्ध्वपदसंख्या ॥

तत्तो रूवहियकमे गुणगारा होंति उड्ढगच्छोत्ति ।

इगिरूवमादिरूउत्तरहारा होंति पभवोत्ति ॥

ततो रूपाधिकक्रमेण गुणकारा भवंत्यूर्ध्वगच्छपर्य्यंतं । एकरूपादिरूपोत्तरहारा भवंति प्रभवपर्य्यंतं ।

इल्लिष्टमप्पुदावुदानुमोंदु तिर्य्यक्पददोळ् ६ रूपोनमागुत्तिरलु ६ तत्तत्पदप्रमाणं इष्टाधस्तनसंकलनवारा भवंति। आ तिर्य्यग्गच्छेदद केळगे प्रक्षेपकोनैकवारसंकलनादिसर्व्वसंभवद्वार-

---

आनयेत् । पुनरेतदेव केशववर्णिभिः स्वाभिप्रायेण आनेतुं गाथाद्वयमुच्यते—

तिरियपदे रुऊणे तदिट्ठहेट्ठिल्लसकलणवारा ।

कोट्ठधणस्साणयणे पभवं इट्ठूण उड्ढपदसंखा ॥१॥

तिरियपदे अनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानेषु यद्विवक्षितं स्थानं तत् तिर्यक्पदं ६, तस्मिन् रूऊणे रूपोने कृते ६ तदिट्ठहेट्ठिल्लसंकलणवारा तदिष्टपदे प्रक्षेपकादधस्तनकोष्ठेषु प्रतिकोष्ठमेकैकं संकलनमिति संभवतां क्रमेणैकवारद्विवारादिसंकलनाना सख्या भवति ५ ॥ तत्र इष्टस्य 'कोट्ठधणस्स' चतुर्वारसंकलनधनगतकोष्ठधनस्य आणयणे आनयने 'इट्ठूणउड्ढपदसंखा' तदिष्टसंकलनवारस्य प्रमाणेन ४ न्यूनोर्ध्वपदं-६-४ पभवो आदिर्भवति ॥२॥

तत्तोरूवहियकमे गुणगारा होंति उड्ढगच्छोत्ति ।

इगिरूवमादिरूउत्तरहारा होंति पभवोत्ति ॥२॥

तत्तो तमादि २ मादि कृत्वा रूवहियकमे रूपाधिकक्रमेण गुणगारा गुणकारा अनुलोमगत्या होंति—

बढ़ते हुए चार पर्यन्त अंक रखकर १×२×३×४ परस्परमें गुणा करनेपर २४ हुए। यह भागहार हुआ। और गच्छ दो के प्रमाणसे लेकर एक-एक बढ़ता अंक रखकर २×३×४×५ परस्पर गुणा करनेपर १२० भाज्य हुआ। सो भाज्य १२० में भागहार २४ से भाग देनेपर लब्ध पाँच आया। इस पाँचसे पूर्वोक्त छहके पाँचवें भागको गुणा करनेपर पाँच रहे। यही दो का चार बार संकलन धन होता है। इसी तरह तीनका तीन बार संकलन धन लाना हो तो गच्छ तीनमें एक कम करके दो शेष रहे। उसे उत्तर एकसे गुणा करनेपर भी दो ही हुए। यहाँ तीन बार संकलन है। अतः उसमें एक अधिक बार चारका भाग देनेपर आधा रहा। उसमें मुख एक जोड़नेपर डेढ़ हुआ। यहाँ तीन बार कहा है अतः एकसे लेकर एक-एक बढ़ते तीन पर्यन्त अंक रखकर १×२×३ = परस्परमें गुणा करनेपर भागहार छह हुआ। और गच्छको आदि लेकर एक-एक अधिक अंक रख ३×४×५ परस्परमें गुणा करनेपर भाज्य साठ हुआ। भाज्य साठमें भागहार छहसे भाग देनेपर दस पाये। इस दससे पूर्वोक्त डेढ़को गुणा करनेपर छठे भेदमें तीन कम गच्छका तीन बार संकलन धनमात्र पन्द्रह पिशुली-पिशुली होती हैं। इसी तरह सर्वत्र विवक्षित संकलित धन लाना चाहिये।

संकलनबारंगळ प्रमाणमक्कुमल्लि कोष्ठधनस्यानयने विवक्षित ४ चतुर्व्वारसंकलनधनमंतप्पल्लि। प्रभवः आदि यें तुंटक्कुमें दोडे इष्टोनितोर्ध्वपदसंख्या स्यात्। तन्न विवक्षितसंकलनवारप्रमाणमं नाल्कं कळेदुळिदूर्ध्वपदप्रमाणमें तुंटंतुद्दु प्रभवमक्कुमें दिल्लि ऊर्ध्वगच्छमु मूरप्पुवदरोळु नाल्कं कळेदुळिद द्विरूपुगळु प्रभवमें बुदर्थं।

ततो रूपाधिक क्रमेण तदादिभूतप्रभवभूत द्विरूपं मोदल्गो डु मुंदे रूपाधिकक्रमदिदं गुणकारा भवंत्यूर्ध्वगच्छपर्य्यंतं अनुलोमक्रमदिं गुणकारंगळप्पु ऊर्ध्वगच्छप्रमाणांकक्कं नेवरमुत्पत्तियक्कुमन्नेवरं ज २। ३। ४। ५। ६ ई गुणकारंगळ्गे केळगे एकरूपादि रूपोत्तरहाराः भवन्ति एक-
१६। ५

रूपादिरूपोत्तरमप्प भागहारंगळु विलोमक्रमदिदमप्पुवु। प्रभवपर्य्यंतं मेलण गुणकारभूतप्रभवांकमाद्यंकमवसानमेन्नेवरमन्नेवरं ज ३। ४। ५। ६ केळगे अपवर्त्तितलब्धं चतुर्व्वारसंकलन-
१६। ५। ४। ३। २। १

धनमक्कु ज ६ इंतनंतभागवृद्धियुक्तचरमज्ञानविकल्पद तिर्य्यक्पदे
१६ १६ १६ १६ १६

तिर्य्यग्गच्छदोळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रगच्छदोळु २/a रूपोने २/a एकरूपोनमादोडे तत्

भवन्ति उड्ढगच्छोत्ति ऊर्ध्वगच्छाङ्कोत्पत्तिपर्यन्तं—ज २ ३ ४ ५ ६ तेषा गुणकाराणा अधः हारा भागहारा
१६ ५

इगिरूवमादि एकरूपादय रूउत्तरा-रूपोत्तरा होंति भवन्ति विलोमक्रमेण रूपाधिकेष्टवारस्थानेषु पभवोत्ति प्रभवाङ्कपर्यन्त ज २ ३ ४ ५ ६ अपवर्तिते लब्धं चतुर्वारसंकलनधन भवति—
१६ १६ १६ १६ १६ ५ ४ ३ २ १

ज ६ एवमनन्तभागवृद्धियुक्तचरमविकल्पे तिर्यक्पदं सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्र २
१६ १६ १६ १६ १६ a

इस संकलित धनको अपने अभिप्रायके अनुसार लानेके लिए केशववर्णीने दो गाथाएँ कही हैं। उनका अर्थ उदाहरण पूर्वक कहते हैं—अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थानोंमें जो विवक्षित स्थान है वह तिर्यक् पद है। जैसे छठा स्थान तिर्यक्पद है। उसमें एक घटानेपर उसके नीचे पाँच संकलन बार होते हैं। प्रक्षेपकके नीचे कोठोंमें-से प्रत्येकमें क्रमसे एक बार, दो बार आदि सम्भव संकलनोंकी संख्या होती है। यहाँ इष्ट चार बार संकलन धन गत कोठेके धनको लानेके लिए इष्ट संकलन बारके प्रमाण ४ को ऊर्ध्वपद ६ में कम करनेपर ६ – ४ = २ आदि होता है। इस आदि दोसे लगाकर एक-एक अधिकके क्रमसे ऊर्ध्व गच्छ छह पर्यन्त गुणकार होते हैं यथा २, ३, ४, ५, ६। इन गुणकारोंके नीचे भागहार एक रूप आदि एक अधिक बढ़ते हुए उल्टे क्रमसे होते हैं। सो यहाँ चार बार संकलनके कोठेमें चूर्णि है। जघन्यमें पाँच बार अनन्तका भाग देनेसे जो प्रमाण आता है उतना चूर्णिका प्रमाण है। इस प्रमाणके गुणकार क्रमसे दो, तीन, चार, पाँच, छह हैं और पाँच, चार, तीन, दो एक भागहार हैं। गुणकारसे चूर्णिके प्रमाणको गुणा करके भागहारोंका भाग देनेपर यथायोग्य अपवर्तन करनेपर छह गुणित चूर्णि मात्र प्रमाण आता है। इसका आशय यह है जो १६, १६, १६, १६, १६ यह चूर्णिका प्रमाण है। 'ज' अर्थात् जघन्य पर्याय ज्ञानमें १६ अर्थात् अनन्तका पाँच बार

---

१. म °णांकमेन्नेवर°।

तत्पदप्रमाणं। इष्टुहेट्टिल्लसंकलनवारा इष्टाधस्तनसंकलनवाराः तन्न विवक्षित तिर्य्यंगगच्छद केळगे केळगे संभविसुव प्रक्षेपकोनेकवारसंकलन आविसर्व्ववारसंकलनगळ प्रमाणमक्कु २/ə मवरोळु कोष्ठधनस्यानयने विवक्षित ४ चतुर्व्वारसंकलनधनमंतप्पल्लि प्रभवः आदि ये तुटक्कुमें दोडे इष्टोनितोर्ध्वपदसंख्या स्यात् तन्न विवक्षितसंकलनवारप्रमाणमं नाल्कं कळेदु ळिदवूर्ध्वपदप्रमाणमक्कु २/ə-४ मिल्लियूर्ध्वगच्छमुं सर्व्वाधस्तनचूर्णिचूर्णियागि प्रक्षेपकाख्यपर्य्यायावसानमप्प स्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रमेयक्कु २/ə मवरोळातन्निष्टवारसंकलनांकं नाल्कं कळेवुळिव शेषप्रमाणमादियक्कुमेंबुदत्थं ज २—४ / १६।५।ə ततो रूपाधिकक्रमेण ई यादिस्थानं मोदल्गोंडु मुंदे रूपाधिक क्रमदिदं गुणकारा भवंत्यूर्ध्वगच्छपर्य्यंतं अनुलोमदिं गुणकारंगळप्पुवूर्ध्वगच्छप्रमाणांकक्केन्नेवरमुत्पत्तियक्कुमन्नेवरं ज २-४ । २-३ । २-२ । २-१ २ / १६।५।əə ə ə ə ई गुणकारंगळगे एकरूपादि रूपोत्तर-

तस्मिन् रूपोने २/ə अवशिष्टं तदिष्टाधस्तनसंकलनवारा भवन्ति २/ə तेषु मध्ये विवक्षितस्य चतुर्वारसंकलनगतकोष्ठधनस्थानयने तद्वारप्रमाणे ४ ऊर्ध्वपदे २/ə अपनीते २–४/ə शेषप्रमाणमादिर्भवति ज २–४ / १६ ५ ə ततः तमादिमादिं कृत्वा अग्रे रूपाधिकक्रमेण गुणकारा भवन्ति ऊर्ध्वगच्छप्रमाणं यावदुत्पद्यते तावत् ज / १६ । ५ २–४ । २–३ । २–२ । २–१ । २ / ə ə ə । ə ə एषा गुणकाराणामधः एकाद्येकोत्तरा आदिपर्यन्तं विलोमक्रमेण हारा

भाग देनेसे आता है। भागहार और गुणकार इस प्रकार है— २, ३, ४, ५, ६ / ५, ४, ३, २, १। यहाँ दो तीन, चार पाँच का तो अपवर्तन हो गया। दोसे दो, तीनसे तीन, चारसे चार और पाँचसे पाँच अपवर्तित हो गये। छह और भागहार एक शेष रहा। सो छहगुना चूर्णिमात्र प्रमाण रहा। इसी प्रकार अनन्तभाग वृद्धि युक्त अन्तिम विकल्पमें वह स्थान सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागका जितना प्रमाण है उतनेका है इसलिए तिर्यग् गच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग मात्र है। उसमें-से एक घटानेपर जो अवशेष है उतना अधस्तन संकलनके बार हैं। उनमें-से विवक्षित चार बार संकलन गत कोठाका धन लानेके लिए विवक्षित संकलन बारके प्रमाण चारमें ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्रमें-से घटानेपर जो अवशेष रहता है वह आदि है। उसको आदि करके एक-एक बढ़ते क्रमसे ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग पर्यन्त तो गुणकार होता है। और इन गुणकारोंके नीचे उल्टे क्रमसे एकको आदि लेकर एक-एक बढ़ते हुए पाँच पर्यन्त भागहार होता है। यहाँ गुणकार और भागहार समान नहीं है

१ ब °रूपोन २/ə अवशिष्टं भवन्ति २/ə तेषु मध्ये।

हाराः एकरूपमादियागि रूपोत्तरमप्प भागहारंगळु विलोमक्रमदिं भवंति प्रभवपर्य्यंतं आविभूत-रूपचतुष्टयोनसूच्यंगुलासंख्यातभागावसानमप्प गुणकारं गलक्केळगेयप्पुवु :—

ज २-४ । २-३ । २-२ २ । २
१६।१६ १६ १६ १६ । ə ५ ə ४ ə ३ ə २ ə १

इल्लि विषमापवर्त्तनमप्पुदरिंदमनपवर्त्तितमितेयिरुतिक्कुमेकेंदोडे तल्लब्धमवधिज्ञानविषयमप्पुदरिंदं ।

इल्लिये चरमविकल्पदोळु ई प्रकारदिंदं विवक्षितद्विचरमचूर्णिचूर्णि द्विरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागवारसंकलनधनं तरतरल्पडुगुमदेंतेंदोडे तिर्य्यक्पदे रूपोने सति रूपहीनमादोडिदु

२
ə

तदिष्टाधस्तनसंकलनवाराः तद्विवक्षितेष्टाधस्तनसंकलनसमस्तवारसंख्येयक्कु कोष्ठधनस्यानयने तन्निष्टवारसंकलनधनमंतप्पल्लि प्रभवः आदिय प्रमाणमेंतुटेंदोडे इष्टोनितोर्ध्वपदसंख्या स्यात् तन्न विवक्षितवारसंकलनप्रमाणमं २—२ कळिदुळिदूर्ध्वपदप्रमाणं प्रभवमक्कुमेंदूर्ध्वपदं
ə

सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रमदरोळ्कळेदोडे शेषं द्विरूपमादियक्कुमेंबुदत्थं ।

ततो रूपाधिकक्रमेण तदाविभूतद्विरूपं मोदल्गोंडु मुंदे रूपाधिकक्रमदिंदं गुणकारा भवंत्यूर्ध्वगच्छपर्य्यंतं अनुलोमक्रमदिं गुणकारंगळूर्ध्वगच्छप्रमाणांकोत्पत्तिपर्य्यवसानमागियप्पु-

भवन्ति— ज २-४ । २-३ । २-२ । २-१ । २
१६ । १६ । १६ । १६ । १६ । ə ५ । ə ४ । ə ३ । ə २ । ə १

अत्र विषममपवर्तनमस्तीत्यनपवर्तितमेव अवतिष्ठते तल्लब्धस्य अवधिज्ञानविषयत्वात् । पुनस्तच्चरमविकल्पे विवक्षितद्विचरमचूर्णिचूर्णे-द्विरूपोनसूच्यङ्गुलासंख्यातभागवारसंकलनधनमानीयते, तद्यथा—तिर्यक्पदे २/ə रूपोने सति २/ə तदिष्टाधस्तनसंकलनसमस्तवारसंख्या भवति निजेष्टवारसंकलनधनानयने तद्वारसंकलनप्रमाणेन २-२/ə ऊनोर्ध्वपद २/ə आदि २ । ततस्तमादि कृत्वा अग्रे रूपाधिकक्रमेण अनुलोमगत्या गुणकारा ऊर्ध्वगच्छप्रमाणाकोत्पत्तिपर्यन्तं

अतः अपवर्तन हुए विना तदवस्थ रहता है। यहाँ जो लब्ध राशि होती है वह अवधिज्ञानका विषय है। पुनः अनन्त भाग वृद्धिसे युक्त उसके अन्तिम विकल्पमें विवक्षित उपान्त्य चूर्णि-चूर्णिके दो हीन सूच्यंगुलके असंख्यात भाग बार संकलन धनका प्रमाण लाते हैं जो इस प्रकार है—यहाँ भी तिर्यग्गच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग मात्र है। उसमें एक घटानेपर इष्ट अधस्तन संकलनके समस्त बारोंकी संख्या होती है। उनका संकलन धन लानेके लिए विवक्षित संकलन बार दो हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र है। उसे ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमें-से घटानेपर दो शेष रहे वह आदि, इससे लेकर आगे एक-एक बढ़ते क्रमसे ऊर्ध्वगच्छ पर्यन्त गुणकार होते हैं। और एकसे लेकर आगे एक-एक बढ़ते हुए अपने इष्ट बारके प्रमाणसे एक अधिक पर्यन्त विपरीत क्रमसे भागहार होते हैं। यहाँ दो आदि एक हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग पर्यन्त गुणकार और भागहारके अंक समान हैं। अतः

ज । २।३।४।००० । २–३ । २–२ । २–२ वी गुणकारंगळ केळगे एकरूपादिरूपोत्तरहाराः
१६ २ a a a

एकरूपादिरूपोत्तरमप्प हारंगळु विलोमक्रमदिं रूपाधिकेष्टवारसंकलनांकपर्य्यवसानमागि भवंति प्रभवपर्य्यंतं । तदाविर्भूतगुणकारद्विरूपावसानमागियप्पुवु :—

ज। २। ३।४।००००२–३।२–२ २ २ इल्लि समापवर्त्तनमुंटप्पुदरिंदमवर्त्तितमिदु
१६ २ २ २–२ २–३ । ०००० a ४ a ३ । a २ । a १
२

ज a a चरम चूर्णिचूर्णिगे संकलितमिल्ल द्वितीयादिस्थानाभावदिदं । सूच्यंगुलासंख्यात-
१६ a

भागमात्रवारानन्तभक्तजघन्यप्रमितमक्कुं ज १। इंतनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुला-
१६ । २
a

भवन्ति— ज २ । ३ । ४ । ००० । २–३ । २–२ । २–१ । २ एषामधः रूपादिरूपोत्तरा
१६ २ । a a a a
a २

हारा विलोमक्रमेण रूपाधिकेष्टवारसंकलनाङ्कावसाना भवन्ति प्रभवपर्यन्त—

ज ३ ४ । ००० २–३ २–२ २–१ २ अत्र समानापवर्तनमस्तीति अप-
१६ २ २ २–२ २–३ ००० a ४ a ३ a २ a १
a a a a

वर्तिते एवं— ज २ चरमचूर्णिचूर्णे संकलित नास्ति [1]द्वितीयादिस्थानाभावात् । सूच्यङ्गुलासंख्यात-
१६ a
२ ।
a

भागमात्रवारानन्तभक्तजघन्यप्रमितं स्यात् ज १ एवमनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातभाग-
१६ २
a

उनका अपवर्तन करनेपर शेष सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागका गुणकार और एकका भागहार रहता है । इस कोठेमें उपान्त्य चूर्णि-चूर्णि है उसका प्रमाण जघन्यको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र बार भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतना जानना । इसको पूर्वोक्त गुणकारसे गुणा करनेपर और एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण आता है वह उस कोठा सम्बन्धी प्रमाण है । अन्तिम चूर्णि चूर्णिमें संकलन नहीं है क्योंकि उसके दूसरे आदि स्थान न होनेसे वह एक ही है । सो जघन्यको सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र बार अनन्तसे भाग देनेपर अन्तिम चूर्णि-चूर्णिका प्रमाण होता है । उसमें एकसे गुणा करनेपर भी उतना ही उस कोठेमें वृद्धिका प्रमाण जानना । इस प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थान

---

१. ब द्वितयादिस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा ।

संख्यातभागमात्रंगळु सलुत्तमिरलु मों वसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कुं ज $\frac{\equiv a}{\equiv a}$ इल्लियुर्व्वंकमं चतुरंकदिंद भागिसि तदेकभागमनल्लिये कूडिदप्पुदरिंदं जघन्यं साधिकमक्कुं मुंदेल्लावृद्धिगळ्गमी क्रममेयक्कुं तंतम्म पेरगणुर्व्वंकंगळं भागिसिद भागवृद्धिगळुं गुणिसिद गुणवृद्धिगळुमरियल्पडुगुं। मत्तं मुन्निनंताऽनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळु सलुत्तं विरलु मत्तमों दसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कु ज $\frac{\equiv a}{\equiv a}$ $\frac{\equiv a}{\equiv a}$ मो क्रमदिंदमसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळु सलुत्तं विरलु मत्तमनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळु सलुत्तं विरलु ओंदु संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कुं ज $\frac{१५}{१५}$ मुंदे मत्तं मुन्निनंत-

मात्राणि नीत्वा एकं असंख्यातभागवृद्धियुक्तं स्थानं भवति ज $\frac{\equiv a}{\equiv a}$ । अत्र उर्वकं चतुरङ्केन भक्त्वा तदेकभाग- तत्रैव युतोऽस्तीति जघन्यं साधिकं भवति । अग्रेऽपि सर्ववृद्धीनां अयमेव क्रमो भवति । स्वस्वप्राक्तनोर्वकं भक्त्वा तदेकभागवृद्धिरवगन्तव्या । पुनः प्राग्वदनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरपरमसंख्यातभागवृद्धियुक्तं स्थानं भवति ज $\frac{\equiv a}{\equiv a}$ $\frac{\equiv a}{\equiv a}$ अनेन क्रमेण असंख्यातभागवृद्धियुक्त-स्थानान्यपि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातभाग-मात्राणि नीत्वा एकं संख्यातभागवृद्धियुक्तं स्थानं भवति ज $\frac{१५}{१५}$ । पुनः पूर्ववदनन्तभागासंख्यातभागवृद्धि-

होनेपर एक असंख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान होता है। यहाँ ऊर्वंक जो अनन्त भाग वृद्धि युक्त अन्तिम स्थान है उसमें चतुरंकसे भाग देनेपर जो एक भागका प्रमाण आवे उसे उसीमें जोड़ा, सो यहाँ जघन्य ज्ञान साधिक होता है। आगे भी सब वृद्धियोंका यही क्रम होता है। अपने-अपनेसे पूर्वके ऊर्वंकमें भाग देनेपर जो एक भाग आवे उतनी वृद्धि जानना। पुनः पूर्वकी तरह सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थानोंके बीतने पर पुनः आगेका असंख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान होता है। इस क्रमसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान बिताकर पुनः सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र अनन्त भाग वृद्धिसे युक्त स्थान बिताकर एक संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान होता है। पुनः पूर्ववत् प्रत्येक अनन्त भाग वृद्धि युक्त तथा असंख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थानोंके सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र होनेपर तथा पुनः सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थान होनेपर पुनः एक संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान होता है। इसी क्रमसे संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान भी सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र होनेपर आगे पूर्ववत् सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र अनन्त भाग

नंतभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु प्रत्येकं सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळावर्तिसि मुंदे मत्तमनंतवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभगमात्रंगळु सलुत्तं विरलु मत्तमोंदु संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानं पुट्टुगु ज $\frac{१५ । १५}{१५ । १५}$ मी क्रमदिदमी संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळं संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळुमसंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळं यथाक्रमावस्थितरूपसूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारंगळु संदु संदु मत्तं मुंदे अनंतभाग असंख्यातभागसंख्यातभागसंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळु प्रत्येकं कांडक कांडक प्रमितंगळु संदु संदु मत्तं मुंदे अनंताऽसंख्यातसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु प्रत्येकं कांडककांडकप्रमितंगळु संदु संदु मत्तं मुंदे, अनंतासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु प्रत्येकं कांडककांडकप्रमितंगळु नडेनडेदु मुंदे मत्तमनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळे सूच्यंगुलासंख्यात-

युक्तस्थानानि प्रत्येकं सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि आवर्त्य पुनरनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरेकं संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानं ज $\frac{१५ । १५}{१५ । १५}$ अनेन क्रमेण संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा । अग्रे प्राग्वदनन्तभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा एकं संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानं भवति । एवं संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनः अनन्तभागासंख्यातभागसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि प्राग्वत्सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनन्तभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि पूर्ववत्सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा[1] (पुनरनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागमात्राणि नीत्वा) एकमसंख्यातगुणवृद्धियुक्तं स्थानं भवति । एवमसंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा अग्रे अनन्तभागासंख्यातभागसंख्यातभागसंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानानि प्रत्येकं काण्डक[2]काण्डकप्रमितानि नीत्वा पुनरनन्तासंख्यात-

वृद्धि युक्त और असंख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थानोंको करके पुनः सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र अनन्त भाग वृद्धि स्थानोंके होनेपर एक संख्यात गुण वृद्धि युक्त स्थान होता है। इस प्रकार संख्यात गुण वृद्धि युक्त स्थान भी सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र होनेपर पुनः अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थान, असंख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान और संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थानोंमें से प्रत्येक पूर्ववत् सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र होनेपर पुनः अनन्त भाग वृद्धि युक्त असंख्यात भाग वृद्धि युक्त और संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र होनेपर तथा पुनः अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थान सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र होनेपर एक असंख्यात गुण वृद्धि युक्त स्थान होता है। इस प्रकार असंख्यात गुण वृद्धि युक्त स्थान भी सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र होनेपर आगे अनन्त भाग वृद्धि युक्त, असंख्यात भाग वृद्धि युक्त तथा संख्यात गुण वृद्धि युक्त स्थानोंमें-से प्रत्येकके सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग होनेपर पुनः अनन्त भाग वृद्धि युक्त, असंख्यात भाग वृद्धि युक्त, संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थानोंमें-से प्रत्येकके सुच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र होनेपर पुनः अनन्त भाग वृद्धि और असंख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थानोंमें-से प्रत्येकके सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग

१ ब कोष्ठान्तर्गत भागो नास्ति । २. सूच्यङ्गुलसंज्ञा ।

भागमात्रंगळु संदु द्वितीयषट्स्थानक्कादिभूतमप्पऽष्टांकमों दु पुट्टुगुमेन्नेवर मन्नेवरेगमी क्रममरियल्पडुगुं ।

आदिमछट्ठाणम्मि य पंच य वड्ढी हवंति सेसेसु ।
छव्वड्ढीओ होंति हु सरिसा सव्वत्थ पदसंखा ।।३२७।।

आदिमषट्स्थाने च पंच वृद्धयो भवंति शेषेषु । षड्वृद्धयो भवंति खलु सदृशी सर्व्वत्र पदसंख्या ।।

इल्लि संभविसुवंतप्पऽसंख्यातलोकमात्रषट्स्थानंगळोळु आदिमषट्स्थाने आदौ भवमादिमं षण्णां स्थानानां समाहारः षट्स्थानं आदिम षट्स्थानमादिमषट्स्थानं तस्मिन् मोदल षट्स्थानदोळु पंच वृद्धयो भवंति पंचवृद्धिगळेयप्पुवेकें दोडे चरमाष्टांकसंज्ञेयनुळ्ळनंतगुणवृद्धियुक्तस्थानक्के द्वितीय षट्स्थानक्कादित्व प्रतिपादनदिदं शेषेषु शेषद्वितीयादिचरमावसानमाद षट्स्थानंगळोळेल्लमष्टांकादियाद षड्वृद्धिगळप्पुवुमंतागुत्तिरलु सदृशी सर्व्वत्र पदसंख्या ई षट्स्थानंगळोळु संभविसुव स्थानविकल्पंगळ संख्यासादृश्यनियमक्के निमित्तमप्प सूच्यंगुलासंख्यातभागक्कवस्थितस्वरूपमुळ्ळदरिदं । समस्तषट्स्थानंगळ स्थानविकल्पंगळ संख्येसमानमेयक्कुमंतादोडे मोदल षट्स्थानदोळु पंचवृद्धियुक्तस्थानंगळप्पुवरिनष्टांकमें तु घटियिसुगुमें दोडुत्तरसूत्रदोळु पेळ्दपं :—

संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानान्यपि प्रत्येकं काण्डककाण्डकप्रमितानि नीत्वा पुनरनन्तभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि प्रत्येकं काण्डकप्रमितानि नीत्वा पुनरनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानान्येव सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा द्वितीयषट्स्थानस्य आदिभूतमष्टाङ्कसंज्ञं भवति इत्येव सर्वत्र षट्स्थानपतितवृद्धिक्रमो ज्ञातव्यः ।।३२६।।

अत्र संभवत्सु असंख्यातलोकमात्रेषु षट्स्थानेषु मध्ये आदिमे प्रथमे षट्स्थाने पञ्चैव वृद्धयो भवन्ति, चरमस्य अष्टाङ्कसंज्ञस्य अनन्तगुणवृद्धियुक्तस्य द्वितीयषट्स्थानस्यादित्वप्रतिपादनात् । शेषेषु द्वितीयादिचरमावसानेषु षट्स्थानेषु सर्वा अष्टाङ्कादयः षड्वृद्धयो भवन्ति । तथासति सदृशी सर्वत्र पदसंख्या एतेषु षट्स्थानेषु संभवति–स्थानविकल्पसंख्या सदृशा समानैव सादृश्यनियमनिमित्तस्य सूच्यङ्गुलासंख्यातभागस्य अवस्थितस्वरूपत्वात् । तथा सति प्रथमषट्स्थाने पञ्चवृद्धियुक्तस्थानानि संभवन्ति ।।३२७।। अष्टाङ्कः कथं न घटते इति चेद्धेतुमाह—

होनेपर पुनः अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थान सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग मात्र होनेपर द्वितीय षट्स्थानका आदिभूत अष्टांक होता है । इस प्रकार सर्वत्र षट्स्थानपतित वृद्धि क्रम जानना ।।३२६।।

जघन्य पर्याय ज्ञानके ऊपर असंख्यात लोक मात्र षट्स्थान होते हैं जो पर्याय समास श्रुतज्ञानके विकल्प हैं । उनमें-से प्रथम षट्स्थानमें पाँच ही वृद्धियाँ होती हैं क्योंकि अनन्त गुण वृद्धिसे युक्त जो अष्टांक संज्ञावाला अन्तिम स्थान है उसे दूसरे षट्स्थानका आदि स्थान कहा है । शेष दूसरेसे लेकर अन्तिम पर्यन्त सब षट्स्थानोंमें अष्टांक आदि छहों वृद्धियाँ होती हैं । ऐसा होनेसे इन षट्स्थानोंमें स्थानके विकल्पोंकी संख्या समान ही है क्योंकि सर्वत्र सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग तदवस्थ है उसमें हीनाधिकता नहीं है । इस तरह प्रथम षट्स्थानमें पाँच वृद्धि युक्त स्थान ही होते हैं ।।३२७।।

---

१. म °मूत्रंगल ।

छट्ठाणाणं आदी अट्ठंकं होदि चरिममुव्वंकं ।
जम्हा जहण्णणाणं अट्ठंकं होदि जिणदिट्ठं ॥३२८॥

षट्स्थानानामादिरष्टांको भवति चरममूर्व्वंकः। यस्माज्जघन्यज्ञानमष्टांको भवति जिनदृष्टः ॥

षट्स्थानवारंगळेनितोळवनितक्कमादिस्थानमष्टांकमेयक्कुं चरममुर्व्वंकमेयक्कुमंतागुत्तिरलु प्रथमष[ट्]स्थानदोळष्टांकमें तक्कुमें दोडे यस्माज्जघन्यज्ञानमष्टांको भवति जिनदृष्टत्वात्। तस्मात् आवुदों दु जिनदृष्टत्वकारणदिदं जघन्यज्ञानमष्टांकमक्कुम दु कारणदिदं प्रथमषट्स्थानदोळष्टांकादिकत्वं युक्तमक्कुं। इल्लि षट्स्थानंगळादियष्टांकमवसानमुर्व्वंकमें ब नियमं पेळल्पट्टुदरिदं चरमषट्स्थानंगळादियष्टांकमवसानमुमूर्व्वंकमुमागुत्तिरलल्लि मुंवणष्टांकमदेनक्कुमें दोडर्थाक्षरज्ञानमें दु मुंदे पेळल्पनदु कारणदिदं जघन्यपर्य्यायिज्ञानमादियें दु पेळ्दागमं निर्बाधबोधविषयमक्कु।

ई षट्स्थानंगळ्गे स्थानसंख्ये समानमें बुदं तोरिदपं :—

एक्कं खलु अट्ठंकं सत्तंकं कंडयं तदो हेट्ठा ।
रूवहियकंडएण य गुणिदकमा जाव मुव्वंकं ॥३२९॥

एकः खल्वष्टांकः सप्तांकः कांडकं ततोऽधो रूपाधिककांडकेन गुणितक्रमा यावदूर्व्वंकः ॥

षट्स्थानवाराणां सर्वेषामादि· प्रथमस्थानमष्टाङ्कमेव अनन्तगुणवृद्धिस्थानमेव भवति तेषा चरमस्थानमुर्वङ्कमेव अनन्तभागवृद्धिस्थानमेव भवति। तर्हि प्रथमस्थानस्य अष्टाङ्कत्व कथं ? इति तन्न, यस्मात् कारणात् तज्जघन्य ज्ञानं पर्यायाख्य पूर्वस्मादेकजीवागुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदाना वर्गस्थानादनन्तगुणत्वेन अष्टाङ्कं भवतीति जिनै· अर्हदादिभि· दिष्ट कथितं दृष्ट वा, तस्मात् कारणात् प्रथमषट्स्थानेऽपि अष्टाङ्कादित्वं युक्तम्। अत्र षट्स्थानानामादि· अष्टाङ्क·, अवसानं उर्वङ्कः इति नियम उक्तोऽस्तीति। चरमषट्स्थानेऽपि आदौ अष्टाङ्के अवसाने उर्वङ्के च सति तदग्रतनोऽष्टाङ्क कीदृगस्ति ? इति चेत् अर्थाक्षर-ज्ञानरूपो भवति तथैव अग्रे वक्ष्यमाणत्वात्। तदेव जघन्यपर्यायज्ञानमादिः इत्युक्तागमो निर्वाधबोधविषय· ॥३२८॥ एषा षट्स्थानाना सख्या समानेति दर्शयति—

षट्स्थान पतित वृद्धिरूप सब स्थानोंमें प्रथम स्थान अष्टांक अर्थात् अनन्तगुण वृद्धि रूप स्थान ही होता है। वही आदि स्थान है। तथा उनका अन्तिम स्थान उर्वंक अर्थात् अनन्तभागवृद्धि युक्त स्थान ही होता है। तब प्रथम स्थानमें अष्टांक कैसे रहा, इसका समाधान यह है वह जो पर्याय नामक जघन्य ज्ञान है इस जघन्य ज्ञानसे पहला ज्ञान स्थान एक जीवके अगुरु लघु गुणके अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण है उससे अनन्त गुणा जघन्य ज्ञान है इसलिए जिनदेवने अष्टांक रूप देखा है। इस कारणसे प्रथम स्थानके भी आदिमें अष्टांक और अन्तिम उर्वंक है। यह नियम कहा है।

शंका—अन्तिम षट्स्थानमें भी आदिमें अष्टांक और अन्तमें उर्वंक होनेपर उससे आगेका अष्टांक किस रूपमें है ?

समाधान—वह अर्थाक्षर ज्ञान रूप है। ऐसा ही आगे कहेंगे।

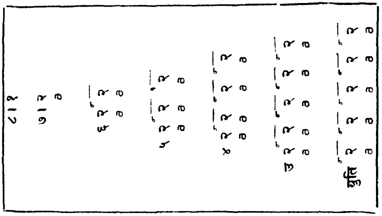
इस प्रकार जघन्य पर्याय ज्ञान आदि है यह कथन निर्बाध है ॥३२८॥

आगे इन षट्स्थानोंकी संख्या समान है यह दर्शाते हैं—

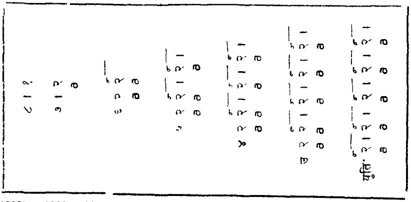
---

१. म नदोलादि°।

ओंदु षट्स्थानदोळु ओंदेयष्टांकमक्कुमेकेंदोडदक्कावृत्यभावमप्पुदरिदं। 'अंगुल असंखभागं पुव्वगवड्ढी गदे दु परवड्ढी एक्कं वारं होदिहु' एंदितु पूर्व्वपूर्व्ववृद्धिगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारंगळु सलुत्तिरलुत्तरोत्तरवृद्धिगळोंदोंदप्पुवेंब क्रममुळ्ळुदरिदं मनंतगुणवृद्धिगावृत्यभावमेकेंदोडे ईयनंतगुणवृद्धिस्थानक्के पूर्व्ववृद्धिगळावृत्यसिद्धियप्पुदरिदं। सप्तांकः कांडकं असंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळेयक्कुमदरिदं केळगण षडंकपंचांकचतुरंकोर्व्वंकंगळु रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातभागगुणितक्रमंगळप्पुवु। यावदुर्व्वंकमें बिदभिविधियप्पुदरिदमुर्व्वंकक्के सीमात्वमं सूचिसुत्तमदनु व्यापिसुगुमवर न्यासमिदु :—



एकस्मिन् षट्स्थाने एक एवाष्टाङ्को भवति कुतः ? 'अङ्गुलअसंखभाग पुव्वगवड्ढीगदे दु परवड्ढी एक्कं वारं होदीति' तस्य पूर्वस्वासंभवेनावृत्तेरभावात्। सप्ताङ्कः असंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानानि काण्डकं सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राण्येव भवन्ति। तदधस्तना षडङ्कपञ्चाङ्कचतुरङ्कोर्वङ्कास्तु रूपाधिकसूच्यङ्गुलासंख्यातभागगुणितक्रमा भवन्ति यावदुर्वङ्कं इत्यभिविधि उर्वङ्कस्य सीमत्वं सूचयन् तमेव व्याप्नोति तन्न्यासोऽयं—



एक षट्स्थानमें एक ही अष्टांक होता है क्योंकि पहले कहा है कि सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग पूर्वकी वृद्धि होनेपर आगेकी वृद्धि एक बार होती है। सो अष्टांक पूर्वमें है नहीं, इसलिए इसकी आवृत्ति बार-बार पलटना सम्भव नहीं है। सप्तांक अर्थात् असंख्यात

इंतु द्वितीयादि षट्स्थानदोळादिभूताष्टांकदिदं मुंदे उर्व्वंकमक्कुमादोडमेक्कंखलु अट्ठंकमें बी नियमवचनदिंदमष्टांकक्कमंगुलासंख्यातभागमात्रवाराऽभावमेयक्कुमेकें दोडे खलुशब्दक्के नियमात्थं-वाचकत्वदिदं ।

सव्वसमासो णियमा रूवाहियकंडयस्स वग्गस्स ।
विंदस्स य संवग्गो होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥३३०॥

सर्व्वसमासो नियमाद्रूपाधिककांडकस्य वर्ग्गस्य । वृंदस्य च संवर्गो भवतीति जिनैर्न्निद्दिष्टं ॥

यल्ला अष्टांकादिषड्वृद्धिगळ संयोगं रूपाधिककांडकस्य रूपाधिककांडकद, वर्ग्गस्य वर्ग्गद, वृंदस्य च घनद, संवर्ग्गः संवर्ग्गमात्रं भवति अक्कुमें दितु जिनैर्न्निद्दिष्टं अर्हदादिगळिदं पेळल्पट्टुदिल्लि तद्युतियं माळ्प क्रममें तें दोडे अष्टांकदात्मप्रमाणमनों दु रूपं तंदु सप्तांकद सूच्यंगुलासंख्यातभागदोळु कूडुत्तिरलु रूपाधिककांडकमक्कुमदं तोरि तदात्मप्रमाणमनो दु रूपं षडंकसंख्येयोळ्कूडुत्तिरलु रूपाधिककांडकद्वयमक्कुमा वर्ग्गरूपाधिककांडकात्मप्रमाणमं पंचांकसंख्ये-

एवं द्वितीयवारषट्स्थाने आदिभूताऽष्टाङ्कतोऽग्रे उर्वङ्कोऽस्ति तथापि 'एकं खलु अट्ठंक' इति नियमवचनान्न तस्याङ्गुलासंख्यातभागमात्रवारः, खलुशब्दस्य नियमार्थवाचकत्वात् ॥३२९॥

सर्वासां अष्टाङ्कादिषड्वृद्धीनां संयोगः रूपाधिककाण्डकस्य वर्गस्य वृन्दस्य च संवर्गमात्रो भवति इति जिनैरर्हदादिभिर्निर्दिष्टं कथितम् । अत्र तद्युतिः क्रियते तद्यथा—

अष्टाङ्कस्य आत्मप्रमाणैकरूपे सप्ताङ्कस्य सूच्यङ्गुलासंख्यातभागे युते सति रूपाधिककाण्डकं भवति तस्मिन् पुनः आत्मप्रमाणैकरूपे षडङ्कसंख्यायां काण्डकगुणितरूपाधिककाण्डकमात्र्यां युते सति रूपाधिक-

गुण वृद्धि युक्त स्थान काण्डक अर्थात् सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र ही होते हैं। उससे नीचेके षडंक, पंचांक, चतुरंक और उर्वंक क्रमसे रूपाधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गुणित उत्तरोत्तर उर्वंक पर्यन्त होते हैं अर्थात् असंख्यात गुण वृद्धिका प्रमाण सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग कहा है उसको एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतनी बार संख्यात गुण वृद्धि होती है। इसको भी एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतनी बार संख्यात भाग वृद्धि होती है। इसको भी एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतनी बार असंख्यात भाग वृद्धि होती है। इसको भी एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतनी बार अनन्त भाग वृद्धि होती है। इस प्रकार एक षट्स्थान पतित वृद्धिमें पूर्वोक्त प्रमाण एक-एक वृद्धि होती है। दूसरे षट्स्थानमें आदिमें अष्टांक उससे आगे उर्वंक है अतः एक ही अष्टांकका नियम जानना। वह अंगुलके असंख्यात भाग मात्र बार नहीं होता ॥३२९॥

अष्टांक आदि छह वृद्धियोंका जोड़ एक अधिक काण्डकके वर्गका तथा घनका परस्परमें गुणा करनेसे जो प्रमाण हो उतना है ऐसा जिन भगवान्ने कहा है। यहाँ उनका जोड़ दिखाते हैं—

अष्टांकके अपने प्रमाण एक रूपमें सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागको मिलानेपर सप्तांकका प्रमाण एक अधिक काण्डक होता है। उसमें षडंककी संख्या, जो काण्डकसे गुणित एक अधिक काण्डक प्रमाण है, मिलानेपर रूपाधिक काण्डकका वर्ग होता है। उसमें पंचांककी संख्याको, जो काण्डकसे गुणित रूपाधिक काण्डकके वर्ग प्रमाण है, मिलानेपर रूपाधिक

योळकूडुत्तिरलु रूपाधिककांडकघनमक्कुमदरात्मप्रमाणमनोंदु रूपं चतुरंकसंख्येयोळकूडुत्तिरलु रूपाधिककांडकंगळ घनमुं रूपाधिककांडकगुणमक्कुमदरात्मप्रमाणमनोंदु रूपं तंदुर्व्वंकसंख्येयोळु रूपाधिककांडचतुष्टयक्के रूपाधिककांडकचतुष्टयमं तोरि तोरलिल्लद कांडकदोळकूडुत्तिरलु रूपाधिककांडकदवर्ग्गदघनद संवर्ग्गप्रमाणमक्कुमेंदें नंबुवुदेकेंदोडे जिनैर्न्निर्द्दिष्टं जिनोक्तत्वात् जिनप्रणीतमप्पुदरिंदमिंद्रियज्ञानागोचरमप्पुदरिंदमा गुणकारंगळं गुणिसिद लब्धं घनांगुलासंख्यातभागमावोडं ६ a घनांगुलसंख्यातमादोडं ६ १ घनांगुलप्रमितमावोडं ६ संख्यातघनांगुलप्रमितमादोडं ६ १ मसंख्यातघनांगुलप्रमितमावोडं ६ a। स्मदाविगळगव्यक्तमिप्पुवरिंदं।

काण्डकवर्गो भवति। तदात्मप्रमाणैकरूपे पञ्चाङ्कसंख्यायां काण्डकगुणितरूपाधिककाण्डकवर्गप्रमितायां युते सति रूपाधिककाण्डकघनो भवति। तदात्मप्रमाणैकरूपे चतुरङ्कसंख्यायां काण्डकगुणितरूपाधिककाण्डकघनप्रमितायां युते सति रूपाधिककाण्डकवर्गस्य वर्गो भवति। तदात्मप्रमाणैकरूपे उर्वङ्कसंख्यायां काण्डकगुणितरूपाधिककाण्डकवर्गस्य वर्गप्रमितायां रूपाधिककाण्डकचतुष्टयेन रूपाधिककाण्डकचतुष्टयं समं प्रदर्श्य आत्मप्रमाणैकरूपे शेषकाण्डके युते सति रूपाधिककाण्डकवर्गस्य घनस्य च संवर्गप्रमाणं भवति। इदमित्थमेव प्रतिपत्तव्यम्। कुत ? जिनैर्निर्दिष्टमिति कारणात् इन्द्रियज्ञानगोचरत्वाभावात् तेषु। गुणकारेषु गुणितेषु लब्धं घनाङ्गुलासंख्यातभागमात्रं वा ६ a घनाङ्गुलसंख्यातभागमात्रं वा ६ १ घनाङ्गुलमात्रं वा। ६। संख्यातघनाङ्गुलमात्रं वा ६ १ असंख्यातघनाङ्गुलमात्रं वा ६ a इत्यस्माभिर्न ज्ञायते ॥३३०॥

काण्डकका घन होता है। उसमें चतुरंकोंकी संख्या जो काण्डकसे गुणित रूपाधिक काण्डकके घन प्रमाण है, मिलानेपर रूपाधिक काण्डकके वर्गका वर्ग होता है। उर्वंकोंकी संख्या काण्डकसे गुणित रूपाधिक काण्डकके वर्गके वर्ग प्रमाण है। इसमें शेष काण्डकोंको जोड़नेपर रूपाधिक काण्डकके वर्गका तथा घनका गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है उतना होता है।

विशेषार्थ—एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागको दो जगह रख परस्परमें गुणा करनेसे जो परिमाण होता है वह रूपाधिक काण्डकका वर्ग है और एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागको तीन जगह रख परस्परमें गुणा करनेसे जो प्रमाण होता है वह रूपाधिक काण्डकका घन है। इस वर्गको और घनको परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है उतनी बार एक षट्स्थानमें अनन्त भागादि वृद्धियाँ होती हैं। जैसे पहले अंक संदृष्टिमें आठका अंक एक बार लिखा और सातका अंक दो बार लिखा। दोनों मिलकर तीन हुए। छहका अंक छह बार लिखा। मिलकर तीनका वर्ग नौ हुए। पाँचका अंक अठारह बार लिखा। मिलकर तीनका घन सत्ताईस हुए। चारका अंक चौवन बार लिखा। मिलकर तीनसे गुणित तीनका घन ३ × २७ = ८१ इक्यासी हुए। उर्वंक एक सौ बासठ लिखे। मिलकर तीनके वर्गसे गुणित तीनका घन ९ × २७ = २४३ दो सौ तैंतालीस हुए। अंक संदृष्टिमें काण्डकका प्रमाण दो है। यथार्थमें सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग है।

इसको इसी प्रकार जानना क्योंकि जिन भगवान्ने ऐसा कहा है। यह इन्द्रिय ज्ञानका विषय नहीं है। अतः उन गुणकारोंसे गुणा करनेपर लब्ध घनांगुलका असंख्यातवाँ भाग मात्र है, अथवा घनांगुलका संख्यातवाँ भाग है, अथवा घनांगुल मात्र है अथवा असंख्यात घनांगुल मात्र है यह हम नहीं जानते ॥३३०॥

उक्कस्ससंखमेत्तं तत्तिचउत्थेक्कदालछप्पण्णं ।
सत्तदसमं व भागं गंतूण य लद्धियक्खरं दुगुणं ॥३३१॥

उत्कृष्टसंख्यातमात्रं तत्रिचतुर्थैकचत्वारिंशत् षट्पंचाशत् सप्तदशमं वा भागं गत्वा च लब्ध्यक्षरं द्विगुणं ॥

रूपाधिककांडकगुणितांगुलसंख्यातभागमात्रवारंगळनंतभागवृद्धिस्थानंगळु $\frac{२}{a}$ $\frac{\overline{२}}{a}$ मवर मध्यदोळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारंगळनसंख्यातभागवृद्धिस्थानंगळु सलुत्तिरलु $\frac{२}{a}$ तदुभय-वृद्धियुक्तजघन्यद एकवारं संख्यातभागवृद्धिस्थानमुत्पन्नमक्कु ज $\frac{१५}{१५}$ मुंदे मत्तं मुं पेळ्द क्रम-वृद्धिद्वयसहचरितंगळोळु संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळुत्कृष्टसंख्यातमात्रंगळु सलुत्तमिरलु अल्लि प्रक्षेपकवृद्धियं कूडुत्तिरलु लब्ध्यक्षरं सर्व्वजघन्यमप्प पर्य्यायमें ब श्रुतज्ञान साधिकमागि द्विगुण-मक्कुमेकें दोडे प्रक्षेपकदुत्कृष्टसंख्यातभाज्यभागहारंगळनपवर्त्तिसि कूडिदोडे अदक्के द्विगुणत्वसंभव-

रूपाधिककाण्डकगुणिताङ्गुलासंख्यातभागमात्रवारान् अनन्तभागवृद्धिस्थानेषु अङ्गुलासंख्यातभाग-मात्रवारान् असंख्येयभागवृद्धिस्थानेषु च गतेषु तदुभयवृद्धियुक्तजघन्यस्य एकवारं सख्यातभागवृद्धिस्थानमुत्पद्यते ज $\frac{१५}{१५}$ अग्रे पुन प्रागुक्तक्रमवृद्धिद्वयसहचरितेषु संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानेषु उत्कृष्टसंख्यातमात्रेषु गतेषु तत्र प्रक्षेपकवृद्धिषु युतासु लब्ध्यक्षरं सर्वजघन्यपर्यायाख्यं श्रुतज्ञानं साधिकद्विगुणं भवति । कुत ? प्रक्षेपकस्य उत्कृष्टसंख्यातभाज्यभागहारानपवर्त्य युते तस्य द्विगुणत्वसंभवात् तत्त्रिचतुर्थं पूर्वोक्तसंख्यातभागवृद्धियुक्तोत्कृष्ट-

एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणित अंगुलके असंख्यात भाग बार अनन्त भाग वृद्धियोंके होनेपर तथा अंगुलके असंख्यात भाग बार असंख्यात भाग वृद्धिके होनेपर उन दोनों वृद्धियोंसे युक्त जघन्य पर्याय ज्ञानका एक बार संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान उत्पन्न होता है। आगे पुनः पूर्वोक्त अनन्त भाग वृद्धि और असंख्यात भाग वृद्धिके साथ संख्यात भाग वृद्धिसे युक्त स्थानोंके उत्कृष्ट संख्यात मात्र होनेपर उनमें प्रक्षेपक वृद्धियोंको जोड़नेपर लब्ध्यक्षर नामक सर्व जघन्य पर्याय श्रुतज्ञान साधिक दुगुना होता है। कैसे होता है यह बतलाते हैं—पूर्ववृद्धिके होनेपर जो साधिक जघन्य ज्ञान हुआ उसे अलग रखकर उस साधिक जघन्य ज्ञानमें उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनेपर प्रक्षेपक होता है। तथा उत्कृष्ट संख्यात मात्र प्रक्षेपक है क्योंकि गच्छमात्र प्रक्षेपक वृद्धि होती है सो यहाँ उत्कृष्ट संख्यात मात्र संख्यात वृद्धिके स्थान हुए इसलिये उत्कृष्ट संख्यात मात्र प्रक्षेपक बढ़ाने है। सो यहाँ उत्कृष्ट संख्यात मात्र प्रक्षेपक होनेसे उत्कृष्ट संख्यात ही गुणकार हुआ। इस तरह गुणकार भी उत्कृष्ट संख्यात और भागहार भी उत्कृष्ट संख्यात; क्योंकि साधिक जघन्य ज्ञानमें उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनेसे प्रक्षेपक होता है। सो गुणकार और भागहारका अपवर्तन करने पर साधिक जघन्य ज्ञान रहा। उसे अलग रखे साधिक जघन्य ज्ञानमें मिलाने पर जघन्य ज्ञान साधिक दूना होता है। तथा 'तत्तिचउत्थ' अर्थात् पूर्वोक्त संख्यात भाग वृद्धि युक्त उत्कृष्ट

मुक्ळुवरिंदं तत्त्रिचतुर्त्थं मुंपेळ्वसंख्यातभागवृद्धियुक्तोत्कृष्टसंख्यातमात्रस्थानंगळ त्रिचतुर्त्थभागस्थानंगळु सलुत्तं विरलल्लिय प्रक्षेपकमुं प्रक्षेपकप्रक्षेपकमें बेरडु वृद्धिगळुं जघन्यदोळिक्कल्पडुत्तिरलु लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कुमदेंतेंदोडे प्रक्षेपकप्रक्षेपकद रूपोनगच्छदेकवारसंकलनधनप्रमितव ज (०) १५।३।१५।३ / १५।१५।४।२।४।१ ऋणमं बेरिरिसि ज (।०) १ । ३ / १५ ३२ अपवर्त्तितधनमिदु ज (।) ९/३२ इदरोळोंदु रूपंतेगेदु धनमं बेरिरिसूदु ज (।) १/३२ शेषापवर्त्तितधनं ज १/४ इदं प्रक्षेपकवृद्धियोळु ज ३/४ कूडिदोडे

संख्यातमात्रस्थानाना त्रिचतुर्थभागस्थानानि नीत्वा तत्र प्रक्षेपक. प्रक्षेपकप्रक्षेपकश्चेति वृद्धिद्वये जघन्यस्योपरि युते लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । तद्यथा—

प्रक्षेपकप्रक्षेपकस्य रूपोनगच्छस्य एकवारसकलनधनप्रमितस्य ज (।०) १५ ३ । १५ ३ / १५ १५ ४ २ ४ १ ऋण पृथक्कृत्य ज (।०) १ ३ / १५ ३२ शेषमपवर्त्य ज (।) ९/३२ एकरूपं पृथग् न्यस्य ज (।) १/३२ शेषे ज (।) ८/३२ अपवर्त्य ज (।) १/४ प्रक्षेपकवृद्धौ ज (।) ३/४

संख्यात मात्र स्थानोंको चारसे भाग देकर उनमें-से तीन भाग प्रमाण स्थानोंके होनेपर प्रक्षेपक और प्रक्षेपक-प्रक्षेपक इन दोनों वृद्धियोंको साधिक जघन्य ज्ञानमें जोड़नेपर लब्ध्यक्षर ज्ञान साधिक दूना होता है। कैसे, सो कहते हैं—पूर्व वृद्धि होनेपर जो साधिक जघन्य ज्ञान हुआ उसमें दो बार उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर प्रक्षेपक-प्रक्षेपक होता है। सो एक हीन गच्छका संकलन धन मात्र प्रक्षेपक-प्रक्षेपककी वृद्धि यहाँ करनी है। पूर्वोक्त करण सूत्रके अनुसार उस प्रक्षेपक-प्रक्षेपकको एक हीन उत्कृष्ट संख्यातके तीन चौथाई भागसे और उत्कृष्ट संख्यातके तीन चौथाई भागसे गुणा करना और दो और एकसे भाग देना। ऐसा करनेपर साधिक जघन्यका एक हीन तीन गुणा उत्कृष्ट संख्यात और तीन गुणा उत्कृष्ट संख्यात तो गुणकार हुआ तथा दो बार उत्कृष्ट संख्यात और चार दो, चार एक भागहार हुआ। एक हीन सम्बन्धी ऋणराशि साधिक जघन्यको तीनका गुणकार और उत्कृष्ट संख्यात तथा बत्तीसको भागहार करनेपर होती है। उसको अलग रखकर शेषका अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको नौसे गुणा और बत्तीससे भाग प्रमाण हुआ। साधिक जघन्यका चिह्न ज ऐसा है सो ज ९/३२ हुआ।

विशेषार्थ—यहाँ दो बार उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार और भागहारका अपवर्तन किया। गुणकार तीन-तीनको परस्परमें गुणा करनेसे नौका गुणकार हुआ और चार, दो, चार एक भागहारको परस्परमें गुणा करनेसे बत्तीस भागहार हुआ। ऐसे ही अन्यत्र भी जानना। अस्तु।

इस ज ९/३२ में एक गुणकार साधिक जघन्यका बत्तीसवाँ भाग है ज १/३२। इसको अलग रखकर शेष साधिक जघन्यको आठका गुणकार और बत्तीसका भागहार रहा। इसका अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यका चौथा भाग रहा ज १/४। प्रक्षेपक गच्छ प्रमाण है सो साधिक जघन्यको एक बार उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनेपर प्रक्षेपक होता है उसको उत्कृष्ट

साधिकजघन्यमक्कु ज मिदं मेलण साधिकजघन्यदोळ्कूडुत्तिरलु लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कुं (+ओ अथवा ज २) प्रक्षेपकप्रक्षेपकदोळगण ऋणधनमं ज १– नोडलु मसंख्यातगुणहीनमं दु
३२
किंचिन्न्यूनं माडि शेषमं ज १ – द्विगुणजघन्यदोळ्कूडिसाधिकं मावुदु।
३२

एक्कदाळछप्पण्णं मुंपेळ्द संख्यातभागवृद्धिस्थानंगळुत्कृष्टसंख्यातप्रमितंगळोळु एकचत्वारिंशत् षटपंचाशद्भागमात्रंस्थानंगळु सलुत्तं विरलु प्रक्षेपक प्रक्षेपकप्रक्षेपकवृद्धिद्वययोगदोळु साधिकजघन्यं द्विगुणमक्कुमल्लि प्रक्षेपकमिदु ज १५।४१ प्रक्षेपकप्रक्षेपकमिदु रूपोनगच्छद एकवार-
१५।५६

संकलित धनमात्रं ज १५।४१।१५।४१ इल्लिय ऋणरूपं तेरदु बेरिरिसुवुदु
१५।१५।५६।२।१।५६

युते सति साधिकजघन्यं भवति ज। अस्मिन् पुन उपरितनसाधिकजघन्ये युते सति लब्ध्यक्षरं द्विगुण भवति ज २। प्रक्षेपकप्रक्षेपकागतऋणं धनतः सख्यातगुणहीनमिति किंचिदून कृत्वा शेष ज १–द्विगुणजघन्ये संयोज्य
३२
साधिक कुर्यात्। एक्कदालछप्पण्ण प्रागुक्तसख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानाना उत्कृष्टसख्यातमितेषु एकचत्वारिशत्-षट्पञ्चाशद्भागमात्रस्थानानि नीत्वा प्रक्षेपकप्रक्षेपकद्वययोगे साधिकजघन्यं द्विगुणं भवति तत्र प्रक्षेपकोऽयं—

ज १५ ४१। प्रक्षेपकप्रक्षेपकस्तु रूपोनगच्छस्य एकवारसकलितधनमात्रः। ज १५ ४१ १५ ४१
१५ ५६   १५ १५ ५६ २ ५६ १

संख्यातके तीन चौथे भागसे गुणा करना। सो उत्कृष्ट संख्यात गुणकार भी और भागहार भी। उनका अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यका तीन चौथाई भाग मात्र प्रमाण रहा। इसमें पूर्वोक्त एक चौथा भाग जोड़नेपर साधिक जघन्य मात्र वृद्धिका प्रमाण होता है। इसमें मूल साधिक जघन्य ज्ञानको जोड़नेपर लब्ध्यक्षर दूना होता है। यहाँ प्रक्षेपक-प्रक्षेपक सम्बन्धी ऋण राशि धन राशिसे संख्यात गुणी कम है इसलिए साधिक जघन्यका बत्तीसवाँ भाग मात्र धनराशिमें ऋणराशि घटानेके लिए कुछ कम करके शेषको पूर्वोक्त द्विगुणित जघन्यमें जोड़नेपर साधिक दूना होता है।

'एक्कदालछप्पणं' अर्थात् पूर्वोक्त संख्यात वृद्धि युक्त उत्कृष्ट संख्यात प्रमाण स्थानोंमें-से इकतालीस बटे छप्पन प्रमाण ४१/५६ स्थान होनेपर प्रक्षेपक तथा प्रक्षेपक-प्रक्षेपक वृद्धियोंको उसमें जोड़नेपर लब्ध्यक्षर दूना होता है। इसको स्पष्ट करते हैं—साधिक जघन्यको उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर प्रक्षेपक होता है। सो प्रक्षेपक गच्छमात्र है। इससे इसको उत्कृष्ट संख्यात तथा इकतालीस बटे छप्पनसे गुणा करनेपर उत्कृष्ट संख्यातका अपवर्तन हो जाता है अतः साधिक जघन्यको इकतालीसका गुणकार और छप्पन भागहार होता है। यथा— ज १५ ४१ / १५ ५६। तथा प्रक्षेपक-प्रक्षेपक एक हीन गच्छका एक बार संकलन धन मात्र है। सो पूर्वोक्त करण सूत्रके अनुसार साधिक जघन्यको दो बार उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर प्रक्षेपक-प्रक्षेपक होता है। उसको एक हीन इकतालीस गुणा उत्कृष्ट संख्यात और इकतालीस

ज (१।४१)/(१५।११२।५६) अपवर्त्तितप्रक्षेपकप्रक्षेपक ज (१६८१)/(११२।५६) इल्लि एकरूपं धनमं बेरिरिसुवुदु ज १/(११२।५६) शेषमनु ज (१६।८०)/(११२।५६) अपवर्त्तिसलु ज १५/५६ इदं प्रक्षेपकदोळु ज ४१/५६ कूडिदोडे ज ५६/५६ अपवर्त्तितंजघन्यमक्कुमदनुपरितनजघन्यदोळकूडिदडे लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कु ज २। मुन्निरिसिद धनदोळु ज १/(११२।५६) इदं नोडलु संख्यातगुणहीनमप्प ऋणमं ज (१।४१)/(१५।११२।५६) किंचिदूनमं माडि शेषमं ज १/(११२।५६) – द्विगुणजघन्यदोळु कूडिदोडे साधिकमक्कुव ज २ सत्तदसमं

अत्रतन ऋणं अपनीय पृथक् संस्थाप्य ज (१ ४१)/(१५ ११२ ५६)। शेषं अपवर्त्य ज (१६ ८१)/(११२ ५६)। एकरूपं धनं पृथग्धृत्य ज १/(११२ ५६) शेष ज (१६ ८०)/(११२ ५६) अपवर्त्य ज १५/५६ प्रक्षेपके निक्षिप्य ज ५६/५६ अपवर्तिते जघन्यं भवति। ज। अस्मिन् पुन उपरितनजघन्ये युते सति लब्ध्यक्षर द्विगुण भवति। ज २। इदमेव पृथक्स्थापितधनेन ज १/(११२ ५६) इतः संख्यातगुणहीनऋणेन ज (१ ४१)/(१५ ११२ ५६) किंचिदूनीकृतेन ज १/(११२ ५६)— साधिक कुर्यात् ज २।

गुणा उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार तथा छप्पन, दो, छप्पन एकका भागहार होता है। यहाँ एक हीन सम्बन्धी ऋण साधिक जघन्यको इकतालीसका गुणकार और उत्कृष्ट संख्यात, एक सौ बारह और छप्पनका भागहार मात्र है यथा ज (१×४१)/(१५।११२।५६)। सो इसको अलग रखकर शेषमें दो बार उत्कृष्ट संख्यातका अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको सोलह सौ इक्क्यासी-का गुणकार और एकसौ बारह गुणा छप्पनका भागहार होता है यथा ज (१६८१)/(११२×५६)। यहाँ गुणकारमें इकतालीस-इकतालीस थे उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर सोलह सौ इक्यासी हुए और भागहारमें छप्पनको दोसे गुणा करनेपर एकसौ बारह हुए तथा दूसरे छप्पनको एकसे गुणा करने पर छप्पन हुए। गुणकारमें एक अलग रखा उसका धन साधिक जघन्यको एकसौ बारह गुणा छप्पनका भागहार मात्र होता है। शेष रहे साधिक जघन्यको सोलहसौ अस्सीका गुणकार और एकसौ बारह गुणा छप्पनका भागहार। यथा एक ऋणका धन ज १/(११२×५६) शेष। ज (१६८०)/(११२×५६)। इसमें एकसौ बारहसे अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको पन्द्रहका गुणकार और छप्पनका भागहार रहा ज १५/५६। इसमें प्रक्षेपकका प्रमाण जघन्यको

व भागं वा अथवा संख्यातभागवृद्धिस्थानंगळुत्कृष्टसंख्यातमात्रंगळोळु सप्तदशमभागमात्रंगळु सलुत्तिरलु प्रक्षेपक प्रक्षेपकप्रक्षेपक पिशुलिगळें ब मूरुं वृद्धिगळं कूडुत्तिरलु साधिकजघन्यं द्विगुणमक्कुमदें तें दोडे प्रक्षेपकं ज १५ । ७ / १५ । १० प्रक्षेपकप्रक्षेपकं रूपोनगच्छद एकवारसंकलितधनमात्रं

ज १५ । ७ । १५ । ७ / १५ । १५ । १० । २ । १० । १ पिशुलिद्विरूपोनगच्छद्विकवारसंकलितधनमात्रं

ज १५ । ७ । १५ । ७ । १५ । ७ / १५।१५ । १५ । १० । ३ । १० । २ । १० । १ ई मूरुं वृद्धिगळोळु पिशुलिय प्रथम ऋणमं बेरिरिसि

ज २ १५ । ७ । ७ / १५।१५।१६।१०।१०।१० शेषधनमपवर्त्तितमिदु ज १५ । ७ । ४९ / १५ । १० । ६००० इदरोळु इनितु ऋणमं

'सप्तदसमं च भाग' वा अथवा संख्यातभागवृद्धिस्थानाना उत्कृष्टसंख्यातमात्रेषु मध्ये सप्तदशमभागमात्रेषु गतेषु प्रक्षेपक–प्रक्षेपकप्रक्षेपक–पिशुलिसंज्ञवृद्धित्रये प्रक्षिप्ते साधिकजघन्यं द्विगुणं भवति। तद्यथा प्रक्षेपकः ज १५ ७ / १५ १० । प्रक्षेपकप्रक्षेपको रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलितधनमात्रः ज १५ ७ १५ ७ । / १५ १५ १० २ १० । १

पिशुलिः द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलितधनमात्रः ज १५ ७ । १५ ७ । १५ ७ / १५ १५ १५ १० । ३ । १० । २ । १० । १

तद्वृद्धित्रयमध्ये पिशुलेः प्रथमऋणं पृथक् संस्थाप्य ज २ १५ ७ । ७ । / १५ । १५ । ६ । १० । १० । १० ।

इकतालीसका गुणकार और छप्पनका भागहार मिलानेपर अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्य मात्रवृद्धिका प्रमाण रहा। इसमें मूल साधिक जघन्य जोड़नेपर लब्ध्यक्षर ज्ञान दूना होता है। यहाँ प्रक्षेपक-प्रक्षेपक सम्बन्धी धनसे ऋण संख्यात गुणा कम है। अतः किंचित् उन धनराशिको अधिक करनेपर साधिक दूना होता है।

'सत्तदसमं च भागं वा' अथवा संख्यात भाग वृद्धि युक्त उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थानोंमें-से सात बटे दस भाग मात्र स्थानोंके होनेपर उसमें प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, और पिशुलि नामक तीन वृद्धियोंके जोड़नेपर साधिक जघन्य ज्ञान दूना होता है। वही आगे कहते हैं— साधिक जघन्यको एक बार उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर प्रक्षेपक होता है वह गच्छ मात्र है अतः इसको उत्कृष्ट संख्यातके सात बटे दसवें भागसे गुणा और उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर साधिक जघन्यको सातका गुणकार और दसका भागहार होता है। प्रक्षेपक-प्रक्षेपक

---

१. संदृष्टेरयमप्याकारः—ज २ १५ । ७ । ७ / १५ १५ ६०० । १० । १

ज १ । ४९ बेरिरिसि अपवर्त्तिसिदोडिनितक्कुं ज ३४३ इवरोळु पदिमूरु रूपगळं तेगेदिरि-
१५ । ६००० ६०००

सुवुदु ज १३ शेषमिदु ज ३३० अपवर्त्तितमिदु ज ११ इल्लि धन ज १३ मिवरोळु
६००० ६००० २० । १० ६०००

प्रथमद्वितीयऋणंगळु संख्यातगुणहीनंगळेंदु किंचिदूनं माडि ज १३= मत्तं प्रक्षेपकप्रक्षेपक
६०००

ज १५ । ७ । ७ ऋणमिनितक्कु ज १ । ७ मिदं बेरिरिसि ज १५ । ७ । ७ अपवर्त्तितमिदु
१५ । २ । १० । १० १५ । २०० १५ । २००

ज ४९ इदरोळु मुन्निन पिशुलिधनमनेकादशरूपं कूडुत्तिरलुभयधनमिदु ज ६० अपवर्त्तितमिदु
२० । १० २००

शेषधनमपवर्त्य ज १५ ७ । ४९ अत्रस्थमृण ज १ ४९ पृथक्संस्थाप्य शेषमपवर्त्य ज ३४३ ।
१५ १० ६०० १५ ६००० ६०००

इतस्त्रयोदशरूपाण्यपनीय पृथक्संस्थाप्य ज १३ । शेष ज ३३० । अपवर्त्य ज ११ एकत्र संस्थाप्य
६००० ६००० २० १०

अस्य प्राक् पृथग्धृतधने ज १३ प्रथमद्वितीयऋण संख्यातगुणहीनमिति किंचिदूनं कृत्वा ज १३–। एकत्र
६००० ६०००

संस्थाप्य पुनः प्रक्षेपकप्रक्षेपके ज १५ ७ । ७ । ऋण ज १ ७ । पृथक् संस्थाप्य शेष ज १५ ७ ७ ।
१५ २ १० । १० । १५ २०० १५ २००

एक हीन गच्छका एक बार संकलन धन मात्र है सो साधिक जघन्यको दो बार उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर प्रक्षेपक-प्रक्षेपक होता है। उसका पूर्व सूत्रानुसार एक हीन सात गुणा उत्कृष्ट संख्यातका तथा सात गुणा उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार और दस, दो तथा दस एक भागहार हुआ। पिशुलि दो हीन गच्छका दो बार संकलित धन मात्र होती है। सो साधिक जघन्यको तीन बार उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनेसे पिशुली होती है। उसको पूर्व सूत्रानुसार दो हीन और सातसे गुणित उत्कृष्ट संख्यात और एक हीन तथा सातसे गुणित उत्कृष्ट संख्यात व सात गुणित उत्कृष्ट संख्यात गुणकार तथा दस, तीन, दस दो, दस एक भागहार होते हैं। इनमें पिशुलीके गुणकारमें दो कम किये थे उस सम्बन्धी प्रथम ऋणका प्रमाण साधिक जघन्यको दोका और एक हीन तथा सातसे गुणित उत्कृष्ट संख्यातका तथा सात गुणा उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार तथा दो बार उत्कृष्ट संख्यातका और छहका और तीन बार दसका भागहार करनेपर होता है। उसको अलग स्थापित करके शेषका अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको एक हीन सात गुणा उत्कृष्ट संख्यातका तथा उनचासका तो गुणकार हुआ और उत्कृष्ट संख्यात छह हजारका भागहार होता है यहाँ गुणकारमें एक हीन है।

ज $\frac{३}{१०}$ इवं प्रक्षेपकवोळु कूडिदोडे ज $\frac{१०}{१०}$ अपवर्तितमिदु ज इदरोळु संख्यातगुणहीनमप्प प्रक्षेपकप्रक्षेपकऋणमं किंचिदूनं माडि धनमं ज $\frac{१३ ≡}{६०००}$ साधिकं माडि मेलण जघन्यदोळु कूडिदोडे लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कुं ज २ मुन्नं प्रक्षेपकप्रक्षेपकधनदोळु बेरिरिसिद ज $\frac{१३}{६००}$ त्रयोदशरूपधनदोळु तन्न संख्यातभागमात्र ऋण रहितधनमं साधिकं माडुवुदु । अंतु माडुत्तिरलु साधिकद्विगुणलब्ध्यक्षरमक्कुं ज २। मोदलोळुत्कृष्टसंख्यातगुणितसंख्यातभागद सप्तदशमभागमात्रंगळु ज $\frac{१५ । ७}{१५ । १०}$ संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु पिशुलिपर्यंतमागि नडदु लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कुं।

अपवर्त्य ज $\frac{४९}{२००}$ । प्राक्तनपिशुलिधनैकादशरूपाणि मेलयित्वा ज $\frac{६०}{२००}$ । अपवर्त्य इदं ज $\frac{३}{१०}$ । प्रक्षेपके ज $\frac{७}{१०}$ । सयोज्य ज $\frac{१०}{१०}$ । अपवर्त्येदं ज प्राक्पृथग्धृतकिंचिदूनत्रयोदशरूपैः संख्यातगुणहीनप्रक्षेपकप्रक्षेपकऋणेन पुनः किंचिदूनितैः ज $\frac{१३ =}{६०००}$। साधिकं कृत्वा उपरितनजघन्ये युते सति लब्ध्यक्षरं द्विगुण भवति । ज २ । प्रथमतः उत्कृष्टसंख्यातगुणितसंख्यातभागस्य सप्तदशमभागमात्रेषु ज $\frac{१५ । ७}{१५ । १०}$ सख्यातभागवृद्धियुक्त-

---

उस सम्बन्धी द्वितीय ऋणका प्रमाण साधिक जघन्यको उनचासका गुणकार तथा उत्कृष्ट संख्यात और छह हजारका भागहार करनेपर होता है। उसको अलग रखकर शेषका अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको तीन सौ तैंतालीसका गुणकार और छह हजारका भागहार होता है। यहाँ गुणकारमें तेरह कम करके अलग रखना। उसमें साधिक जघन्यको तेरहका गुणकार और छह हजारका भागहार जानना। शेष साधिक जघन्यको तीन सौ तीसका गुणकार और छह हजारका भागहार रहा। तीससे अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको ग्यारहका गुणकार और दस गुणित बीसका भागहार हुआ। उसे एक जगह स्थापित करना। यहाँ गुणकारमें से तेरह कम करके जो अलग स्थापित किये थे उस सम्बन्धी प्रमाणसे प्रथम द्वितीय ऋण सम्बन्धी प्रमाण संख्यात गुणा कम है इसलिए कुछ कम करके साधिक जघन्य किंचित् कम तेरह गुणाको छह हजारसे भाग देनेपर इतना शेष रहा सो अलग रखे। तथा प्रक्षेपक-प्रक्षेपक सम्बन्धी गुणकारमें एक घटाया था उस सम्बन्धी ऋणका प्रमाण साधिक जघन्यको सातका गुणकार और उत्कृष्ट संख्यात तथा दो सौका भागहार किये होता है। उसको अलग रखकर शेष पूर्वोक्त प्रमाण साधिक जघन्यको उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार और

मत्तं मुंदे मुंदे तदेकचत्वारिंशत् षट्पंचाशत् भागव प्रक्षेपकप्रक्षेपकावसानमागि नडवु लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कुं–ज २ मुंदेयु संख्यातभागवृद्धिप्रथमस्थानं मोदल्गोंडुत्कृष्टसंख्यातद त्रिचतुर्थभागमात्रस्थानंगळु ज १५।३ / १५।४ प्रक्षेपकप्रक्षेपकावसानमागि सलुत्तं विरलु लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कु। ज २। मत्तमंते संख्यातभागवृद्धिस्थानंगळु प्रथमस्थानंगल् मोदल्गोंडुत्कृष्टसंख्यातमात्रंगळु प्रक्षेपकावसानमागि नडवल्लियु ज १५ / १५ लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कुमिल्लि साधिकजघन्यं द्विगुणमावोडं पर्य्यायसमासमध्यमविकल्पगत श्रुतज्ञानमुपचारदिवं लब्ध्यक्षरं में बु पेळल्पट्टुदेकें दोडे पर्य्यायज्ञानमप्प

स्थानेषु पिशुलिपर्यन्तेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति ज २। पुनस्तस्यैव एकचत्वारिंशत्षट्पञ्चाशद्भागस्य प्रक्षेपकावसानेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति ज २। अग्रेऽपि सख्यातभागवृद्धिप्रथमस्थानमादि कृत्वा उत्कृष्टसंख्यातस्य त्रिचतुर्थभागमात्रेषु ज १५ ३ / १५ ४। प्रक्षेपकप्रक्षेपकावसानेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति ज २। पुनस्तथा संख्यातभागवृद्धिस्थानेषु प्रथमस्थानमादि कृत्वा उत्कृष्टसख्यातमात्रेषु प्रक्षेपकावसानेषु गतेषु ज १५ / १५ लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति। ननु साधिकजघन्यं द्विगुणं तदा पर्यायसमासमध्यमविकल्पगतं श्रुतज्ञानं उपचारेण

दो बार सातका गुणकार तथा उत्कृष्ट संख्यात, दस, दो, दस एकका भागहार रखकर अपवर्तन तथा परस्पर गुणा करनेपर साधिक जघन्यको उनचासका गुणकार और दो सौका भागहार हुआ। इसमें पूर्वोक्त पिशुली सम्बन्धी ग्यारह गुणकार मिलानेपर साधिक जघन्यको साठका गुणकार और दो सौका भागहार हुआ। यहाँ बीससे अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको तीनका गुणकार और दसका भागहार हुआ। इसमें प्रक्षेपक सम्बन्धी प्रमाण साधिक जघन्यको सातका गुणकार और दसका भागहार जोड़े तो दससे अपवर्तन करनेपर वृद्धिका प्रमाण साधिक जघन्य होता है। इसमें मूल साधिक जघन्य जोड़नेपर लब्ध्यक्षर दूना होता है। तथा पहले पिशुली सम्बन्धी ऋण रहित धनमें किंचित् कम तेरहका गुणकार था उसमें प्रक्षेपक-प्रक्षेपक सम्बन्धी ऋण संख्यात गुणा हीन है। उसको घटानेके लिए किंचित् कम करनेपर जो साधिक जघन्यको दो बार किंचित् कम तेरहका गुणकार और छह हजारका भागहार हुआ सो इतना प्रमाण पूर्वोक्त दूना लब्ध्यक्षरमें जोड़नेपर साधिक दूना होता है। इस तरह प्रथम तो संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थानोंमें उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थानोंका सात बटे दस भाग प्रमाण स्थान पिशुली वृद्धि पर्यन्त होनेपर लब्ध्यक्षर ज्ञान दूना होता है। दूसरे, उस हीके इकतालीस बटे छप्पन भाग प्रमाण स्थान प्रक्षेपक-प्रक्षेपक वृद्धि पर्यन्त होनेपर लब्ध्यक्षर ज्ञान दूना होता है। आगे भी संख्यात भागवृद्धिके पहले स्थानसे लेकर उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थानोंका तीन बटे चार भाग मात्र प्रक्षेपक-प्रक्षेपक वृद्धि पर्यन्त होनेपर

मुख्यलब्ध्यक्षरक्के समीपवर्त्तित्वदिदं । नडे नडेदें दितु वीप्सार्थज्ञापकं च शब्दमक्कुं ।

एवं असंखलोगा अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा ।
ते पज्जायसमासा अक्खरगं उवरि वोच्छामि ॥३३२॥

एवमसंख्यलोकान्यनक्षरात्मके भवंति षट्स्थानानि । तानि पर्य्यायसमासा अक्षरगमुपरि वक्ष्यामि ॥

इंती पेळ्द प्रकारदिदमनक्षरात्मकमप्प पर्य्यायसमासज्ञानविकल्पसमूहदोळु षट्स्थानानि षट्स्थानवारंगळऽसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु तत्प्रमाणमं साधिसुव त्रैराशिकमिदु । एत्तलानुमिनितोळवु स्थानविकल्पंगळोळों दु षट्स्थानं पडेयल्पडुत्तिरलागळिनितु स्थानविकल्पंगळनक्षरात्मकज्ञानविकल्पंगळसंख्यातलोकमात्रंगळोळेनितोळवु षट्स्थानवारंगळप्पुवें दु त्रैराशिकं माडि प्र २ २ २ २ २
ə ə ə ə ə
फ १ इ ≡ə प्रमाणराशियिदमिच्छाराशिय भागिसुत्तिरलु तल्लब्धप्रमितषट्स्थानवारंगळप्पुवु

लब्ध्यक्षरं कथमुक्तं ? इति चेत् पर्यायज्ञानस्य मुख्यलब्ध्यक्षरस्य समीपवर्तित्वात् । चशब्दः गत्वागत्वेति वीप्सार्थं ज्ञापयति ॥३३१॥

एवमुक्तप्रकारेण अनक्षरात्मके पर्यायसमासज्ञानविकल्पसमूहे षट्स्थानवारा असंख्यातलोकमात्रा भवन्ति तद्यथा–यद्येतावतामनक्षरात्मकज्ञानविकल्पानां एकं षट्स्थानं लभ्यते तदा एतावतामनक्षरात्मकश्रुतज्ञानविकल्पानामसंख्यातलोकमात्राणा कति षट्स्थानवारा लभ्यन्ते । इति त्रैराशिकं कृत्वा

प्र २ २ २ २ २ फ १ । इ ≡ə प्रमाणराशिना इच्छाराशौ भक्ते यल्लब्धं तावन्त.
ə ə ə ə ə

लब्ध्यक्षर ज्ञान दूना होता है । इसी तरह संख्यात भाग वृद्धिके पहले स्थानसे लेकर उत्कृष्ट संख्यात स्थान मात्र प्रक्षेपक वृद्धि पर्यन्त होनेपर लब्ध्यक्षर ज्ञान दूना होता है ।

शंका—साधिक जघन्य ज्ञान दूना हुआ कहा । सो साधिक जघन्य ज्ञान तो पर्याय समास ज्ञानका मध्य भेद है । यहाँ लब्ध्यक्षर दूना हुआ ऐसे कैसे कहा ?

समाधान—मुख्य लब्ध्यक्षर जो पर्याय ज्ञान है उसका समीपवर्ती होनेसे उपचारसे पर्याय समासके भेदको भी लब्ध्यक्षर कहा है ॥३३१॥

उक्त प्रकारसे अनक्षरात्मक पर्याय समास ज्ञानके भेदोंके समूहमें असंख्यात लोक मात्र बार षट्स्थान होते हैं । वही कहते हैं—यदि इतने अर्थात् एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गसे उसहीके घनको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने भेदोंमें एक बार षट्स्थान होता है तो असंख्यात लोक प्रमाण पर्याय समासके भेदोंमें कितने बार षट्स्थान होंगे। इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गसे गुणित उस ही के घन प्रमाण है, फलराशि एक, इच्छाराशि असंख्यात लोक मात्र पर्याय समासके स्थान । यहाँ फलसे इच्छाको गुणाकर उसमें प्रमाण राशिसे भाग देनेपर जो लब्ध राशि आवे उतनी ही बार सब भेदोंमें षट्स्थान पतित वृद्धि होती है । इस प्रकार असंख्यात लोक

≡ a इंती प्रकारदिंदमसंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानवृद्धिगळिंद संवृद्धंगळप्पनंतभाग-

२ २ २ २ २
a a a a a

वृद्धियुक्तजघन्यज्ञानविकल्पं मोदल्गोंडु सर्व्वचरमोर्व्वंकवृद्धियुक्तसर्व्वोत्कृष्टज्ञानावसानमाद असंख्यातलोकमात्रंगळप्प ज्ञानविकल्पंगळेनितोळवनितुं पर्य्यायसमासज्ञानविकल्पंगळप्पुवें बुदत्थं । उवरि इल्लिंद मेले अक्षरगं अक्षरगतज्ञानमप्प श्रुतज्ञानमं वक्ष्यामि पेळ्वपें ।

अनंतरमक्षरगतश्रुतज्ञानमं पेळ्वपं ।

चरिमुव्वंकेणवहिद अत्थक्खरगुणिदचरिममुव्वंकं ।
अत्थक्खरं णाणं होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्टं ॥३३३॥

चरमोर्व्वंकेनापहृतार्थाक्षर गुणितचरमउर्व्वंकः । अर्थाक्षरंतु ज्ञानं भवतीति जिनैर्न्निर्द्दिष्टं ॥

पर्य्यायसमासज्ञानविकल्पंगळ संबंधिगळप्पऽसंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानंगळोळु भागवृद्धि-गुणवृद्धियुक्तास्थानंगळोळु तद्वृद्धिनिमित्तंगळप्प संख्याताऽसंख्यातानंतंगळवस्थितंगळु प्रतिनियत-प्रमाणंगळप्पुदरिदं चरमषट्स्थानद चरमोर्व्वंकदिदं मुंवणष्टांकवृद्धियुक्तस्थानमर्त्थाक्षरश्रुतज्ञान-मप्पुदरिंदमा पूर्व्वप्रतिनियताष्टांकप्रमाणमल्लीयष्टांकं विलक्षणमप्पुवें दु पेळ्वपं । असंख्यातलोक-

≡ a

षट्स्थानवारा भवन्ति २ २ २ २ २ एवमनेन प्रकारेण असख्यातलोकवारषट्स्थानवृद्धिसवृद्धा
a a a a a

अनन्तभागवृद्धियुक्तजघन्यज्ञानविकल्पमादि कृत्वा सर्वचरमोर्वङ्कवृद्धियुक्तसर्वोत्कृष्टज्ञानावसाना असंख्यातलोक-मात्रा ज्ञानविकल्पा यावन्तस्तावन्तः पर्यायसमासज्ञानविकल्पा भवन्ति इत्यर्थः । इत उपरि अक्षरगत श्रुतज्ञानं वक्ष्यामि ॥३३२॥ अथाक्षरगत श्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

पर्यायसमासज्ञानविकल्पसम्बन्धिषु असंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानेषु भागवृद्धिगुणवृद्धियुक्तेषु तद्वृद्धि-निमित्तसख्यातासंख्यातानन्ता अवस्थिता प्रतिनियतप्रमाणा भवन्ति इति चरमषट्स्थानस्य चरमोर्वङ्कतो-ऽग्रेतनमष्टाङ्कवृद्धियुक्तस्थान अर्थाक्षरश्रुतज्ञानं भवति इति तत्पूर्वकप्रतिनियताष्टाङ्कप्रमाणं अग्रतनाष्टाङ्कविल-क्षणमिति कथयति—

बार षट्स्थान वृद्धिसे बढ़े हुए पर्याय समास ज्ञानके विकल्प होते हैं। सो अनन्त भाग वृद्धिसे युक्त जघन्य ज्ञानके विकल्पसे लेकर सबसे अन्तिम उर्वंक नामक अनन्त भाग वृद्धि युक्त सबसे उत्कृष्ट ज्ञान पर्यन्त असंख्यात लोक मात्र ज्ञानके विकल्प होते हैं। वे सब पर्याय समास ज्ञानके विकल्प हैं। यहाँसे आगे अक्षरात्मक श्रुतज्ञानको कहेंगे ॥३३२॥

अब अक्षरश्रुतज्ञानको कहते हैं—

पर्याय समास ज्ञानके विकल्प सम्बन्धी असंख्यात लोक मात्र षट्स्थान भाग वृद्धि और गुणवृद्धिको लिये हुए हैं। उनमें वृद्धिके निमित्त संख्यात, असंख्यात और अनन्त अव-स्थित हैं, उनका प्रमाण निश्चित है। अर्थात् संख्यातका प्रमाण उत्कृष्ट संख्यात मात्र, असंख्यातका प्रमाण असंख्यात लोक मात्र और अनन्तका प्रमाण जीवराशि मात्र निश्चित है। अन्तिम षट्स्थानका अन्तिम उर्वंक जो अनन्त भाग वृद्धिको लिए हुए पर्याय समास ज्ञानका सर्वोत्कृष्ट भेद है उससे आगेका अष्टांक अर्थात् अनन्त गुण वृद्धि युक्त स्थान अर्था-

मात्रवारषट्स्थानंगळ आवुवों वु चरमषट्स्थानमवर चरमोर्व्वंकवृद्धियुक्तसर्व्वोत्कृष्टपर्य्यायसमासज्ञानमष्टांकदिदमोम्में गुणिसिदुदरोळन्नमप्पुदत्थाँक्षरज्ञानमष्टांकवृद्धियुक्तस्थानमें बुदत्थॅमदें तप्पुदें दोडे रूपोनेकट्ठमात्राऽपुनरुक्ताक्षरसंदर्भरूप द्वादशांगश्रुतस्कंधजनितार्थज्ञानं श्रुतकेवलमें वु पेळल्पट्टुदु। के। ई श्रुतकेवलज्ञानं रूपोनेकट्ठमात्राऽपुनरुक्ताक्षरप्रमाणदिदं भागिसुत्तिरलु अत्थाँक्षररूपमप्पेकाक्षरप्रमाणमक्कु के मी यत्थाँक्षरमं सर्व्वोत्कृष्टपर्य्यायसमासज्ञानमप्प चरमोर्व्वंकदिद भागिसुत्तिरलु
१८=
चरमोर्व्वंकमं गुणिसिदष्टांकप्रमाणमक्कु मदु कारणदिद मिन्ना अत्थाँक्षरश्रुतज्ञानोत्पत्तिनिमित्तं चरमोर्व्वंकापहृत अत्थाँक्षररूपाष्टांकदिदं गुण्यरूपमप्प चरमोर्व्वंकमं गुणिसुत्तिरलु तु पुनः अत्थाँक्षरज्ञानं भवतीति अत्थाँक्षरज्ञानं युक्ति युक्तमप्पुदें दु जिनैन्निर्द्दिष्टं जिनोक्तमक्कुमिदंत्यदीपकमेल्ला चतुरंकादियष्टांकावसानमाद षट्स्थानंगळ भागवृद्धियुक्तस्थानंगळुं गुणवृद्धियुक्तस्थानंगळुं तंतम्म पिदणानंतरोर्व्वंकवृद्धियुक्तस्थानमं भागिसियुं गुणिसियुं यथासंख्यं चतुरंकपंचांकंगळ षट्सप्ताष्टांकंगळ

असंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानेषु यच्चरमं षट्स्थानं तस्य चरमोर्वङ्करूपवृद्धियुक्तसर्वोत्कृष्टपर्यायसमासज्ञानं अष्टाङ्केन एकवारं गुणिते समुत्पन्नं अर्थाक्षरज्ञानं अष्टाङ्कवृद्धियुक्तस्थानमित्यर्थः। तत् कियद्? रूपोनैकट्ठमात्राऽपुनरुक्ताक्षरसन्दर्भरूपद्वादशाङ्गश्रुतस्कन्धजनितार्थज्ञानं श्रुतकेवलमित्युच्यते। के। इदं श्रुतकेवलज्ञानं रूपोनैकट्ठमात्रापुनरुक्ताक्षरप्रमाणेन भक्तं सत् अर्थाक्षररूपमेकाक्षरप्रमाणं भवति के इदमर्थाक्षरं सर्वोत्कृष्ट-
१८=
पर्यायसमासज्ञानरूपोर्वङ्केन भक्तं सच्चरमोर्वङ्कगुणिताष्टाङ्कप्रमाणं भवति ततः कारणादिदानी तदर्थाक्षरश्रुतज्ञानोत्पत्तिनिमित्तं चरमोर्वङ्कापहृताक्षररूपाष्टाङ्केन गुण्यरूपे चरमोर्वङ्के गुणिते तु-पुन अर्थाक्षरज्ञानं युक्तियुक्तं भवति इति जिनैर्निर्दिष्टम्। इदमन्त्यदीपकं इति सर्वाण्यपि चतुरङ्काद्यष्टाङ्कावसानानि षट्स्थानाना भागवृद्धियुक्तस्थानानि गुणवृद्धियुक्तस्थानानि च स्वस्वपूर्वानन्तरोर्वङ्कवृद्धियुक्तस्थानेन भक्त्वा पुनस्तेनैव गुणयित्वा

क्षर श्रुत ज्ञान होता है। पहले जो अष्टांकका प्रमाण जीवराशि मात्र गुणा कहा है उससे यहाँ जो अष्टांक है उसका प्रमाण वह नहीं है विलक्षण है यह कहते हैं—

असंख्यात लोक मात्र षट्स्थानोंमें जो अन्तिम षट्स्थान है उसके अन्तिम उर्वंक रूप वृद्धिसे युक्त सर्वोत्कृष्ट पर्यायसमास ज्ञानको एक बार अष्टांकसे गुणा करनेपर अर्थाक्षर श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इससे उसे अष्टांक वृद्धि युक्त स्थान कहते हैं। उस अष्टांकका कितना प्रमाण है यह बतलाते हैं एक कम एकट्ठी मात्र अपुनरुक्त अक्षरोंकी रचना रूप द्वादशांग श्रुतस्कन्धसे उत्पन्न हुए ज्ञानको श्रुत केवल ज्ञान कहते हैं। इस श्रुत केवल ज्ञानको एक कम एकट्ठी मात्र अपुनरुक्त अक्षरोंके प्रमाणसे भाग देनेपर अर्थाक्षर रूप एक अक्षरका प्रमाण होता है। इस अर्थाक्षरमें सबसे उत्कृष्ट पर्याय समास ज्ञान रूप उर्वंकसे भाग देनेपर अन्तिम उर्वंकके गुणकार रूप अष्टांकका प्रमाण होता है। अर्थात् अर्थाक्षर ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंका जितना प्रमाण है उसमें सर्वोत्कृष्ट पर्याय समास ज्ञानके भेद रूप उर्वंकके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणका भाग देनेपर जितना प्रमाण आता है वही यहाँ अष्टांकका प्रमाण है। इस कारणसे अब उस अक्षर श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिका कारण जो अन्तिम उर्वंक है उससे भाजित अक्षर रूप अष्टांकसे गुण्य रूप अन्तिम उर्वंकमें गुणा करने पर अर्थाक्षर ज्ञान होता है यह युक्तियुक्त है। ऐसा जिनदेवने कहा है। यह कथन अन्त्यदीपक अर्थात् अन्तमें रखे हुए दीपक-

वृद्धियुक्तस्थानंगळुत्पत्तियक्कुमल्लदे केवलं पर्य्यायजघन्यज्ञानमने भागिसियुं गुणिसियुं पुट्टुवल्लें-बुदक्कें दु निश्चयिसुवुदु मीयर्त्थाक्षरज्ञानम के । उ नपवर्त्तिसुत्तिरलु श्रुतकेवलज्ञानसंख्यातभाग-
१८। = उ
मात्रमर्त्थाक्षरज्ञानप्रमाणमक्कुं के अक्षराज्जातं ज्ञानमक्षरज्ञानमर्त्थं विषयमर्त्थं ग्राहकमर्त्थाक्षर-
१८ =
ज्ञानं। अथवा अर्य्यते गम्यते ज्ञायतयित्यर्त्थः। न क्षरतीत्यक्षरं द्रव्यरूपतया विनाशाभावात्। अर्त्थश्चासावक्षरं च तदर्त्थाक्षरं। अथवा अर्य्यते गम्यते श्रुतकेवलस्य संख्येयभागत्वेन निश्चीयत इत्यर्त्थः। अर्त्थश्चासावक्षरं च तदर्त्थाक्षरं तस्माज्जातं ज्ञानमर्त्थाक्षर ज्ञानं।

अथवा त्रिविधमक्षरं लब्ध्यक्षरं निर्वृत्यक्षरं स्थापनाक्षरं चेति। तत्र पर्य्यायज्ञानावरण-प्रभृतिश्रुतकेवलज्ञानावरणपर्य्यंतक्षयोपशमोद्भूताऽत्मनोर्त्थग्रहणशक्तिर्लब्धिर्भावेंद्रियं। तद्रूपमक्षरं लब्ध्यक्षरं अक्षरज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वात्। कंठोष्टताल्वादिस्थानस्पृष्टताधिकरणप्रयत्ननिर्व्वर्त्यमानस्वरूप-मकारादिककारादिस्वरव्यंजनरूपमूलवर्णतत्संयोगादिसंस्थानं निर्वृत्यक्षरं। पुस्तकेषु तत्तद्देशानु-

---

यथासंख्यं चतुरङ्कपञ्चाङ्कषडङ्कसप्ताङ्काष्टाङ्कवृद्धियुक्तस्थानानि उत्पद्यन्ते, न च केवलं पर्यायजघन्यज्ञानमेव भक्त्वा गुणयित्वा उत्पद्यत इति निश्चेतव्यं, इदमर्थाक्षरज्ञानं के उ अपवर्तितं सत् श्रुतकेवलज्ञान-
१८ = उ
संख्यातभागमात्रं अर्थाक्षरज्ञानप्रमाणं भवति के अक्षराज्जातं ज्ञानं अक्षरज्ञानं अर्थविषयमर्थग्राहकं
१८ =
अर्थाक्षरज्ञानं अथवा अर्यते गम्यते ज्ञायते इत्यर्थः, न क्षरति इत्यक्षरं द्रव्यरूपतया विनाशाभावात्। अर्थश्चासावक्षरं च तदर्थाक्षरम्। अथवा अर्यते गम्यते श्रुतकेवलस्य संख्येयभागत्वेन निश्चीयते इत्यर्थः, अर्थश्चासावक्षरं च तदर्थाक्षरं तस्माज्जातं ज्ञानमर्थाक्षरज्ञानम्। अथवा त्रिविधमक्षरं लब्ध्यक्षरं निर्वृत्त्यक्षरं स्थापनाक्षरं चेति। तत्र पर्यायज्ञानावरणप्रभृतिश्रुतकेवलज्ञानावरणपर्यन्तक्षयोपशमादुद्भूतात्मनोऽर्थग्रहणशक्तिर्लब्धिः भावेन्द्रियं, तद्रूपमक्षरं लब्ध्यक्षरं, अक्षरज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वात् कण्ठोष्ठताल्वादिस्थानस्पष्टतादिकरणप्रयत्ननिर्वर्त्यमानस्वरूप अकारादिककारादिस्वरव्यञ्जनरूपं मूलवर्णतत्संयोगादिसंस्थानं निर्वृत्यक्षरम्। पुस्तकेषु तत्तद्देशानुरूपतया

के समान है इसलिए चतुरंकसे लेकर अष्टांक पर्यन्त षट्स्थानोंके भागवृद्धि और गुण वृद्धिसे युक्त सब स्थान अपने-अपने अनन्तर पूर्व उर्वंक वृद्धि युक्त स्थानसे भाग देनेपर जितना प्रमाण आवे उससे पुनः उस पूर्व स्थानको गुणा करनेपर यथाक्रमसे चतुरंक, पंचांक, षष्ठांक, सप्तांक और अष्टांक वृद्धि युक्त स्थान उत्पन्न होते हैं। केवल जघन्य पर्याय ज्ञानमें भाग देकर और फिर उसीसे गुणा करनेपर ये स्थान उत्पन्न नहीं होते। यह निश्चित जानना। इस प्रकार श्रुत केवल ज्ञानका संख्यातवाँ भाग मात्र अर्थाक्षर श्रुत ज्ञानका प्रमाण होता है।

अक्षरसे उत्पन्न हुआ ज्ञान अक्षर ज्ञान है। जो अर्थको विषय करता है या अर्थका ग्राहक है वह अर्थाक्षर ज्ञान है। अथवा जो अर्यते अर्थात् जाननेमें आता है वह अर्थ है और द्रव्य रूपसे विनाश न होनेसे अक्षर है अर्थ और अक्षरको अर्थाक्षर कहते हैं। अथवा 'अर्यते' अर्थात् श्रुत केवलके संख्यातवें भाग रूपसे जिसका निश्चय किया जाता है वह अर्थ है। अर्थ और अक्षर अर्थाक्षर है। उससे उत्पन्न ज्ञान अर्थाक्षर ज्ञान है। अथवा अक्षर तीन प्रकारका है—लब्ध्यक्षर, निर्वृत्त्यक्षर, और स्थापनाक्षर। उनमें-से पर्याय ज्ञानावरणसे लेकर श्रुतकेवलज्ञानावरण पर्यन्तके क्षयोपशमसे उत्पन्न आत्माकी अर्थको ग्रहण करनेकी शक्ति लब्धि-

रूपतया लिखितसंस्थानं स्थापनाक्षरं। एवंविधमप्प एकाक्षरश्रवणसंजातार्थज्ञानमेकाक्षरश्रुतज्ञान-मेंदितु जिनरुगळिदं पेळल्पट्टुदॆंम्मिदं किंचित्प्रतिपादितमाय्तु।

अनंतरं श्रुतनिबद्धमं श्रुतविषयमं पेळ्दपं—

पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो दु सुदणिबद्धो ॥३३४॥

प्रज्ञापनीया भावा अनंतभागस्तु अनभिलाप्यानां। प्रज्ञापनीयानां पुनरनंतभागः श्रुतनिबद्धः ॥

अनभिलाप्यंगळप्प वाग्विषयंगळल्लदंतप्प केवलं केवलज्ञानगोचरमप्प भावानां जीवाद्यर्त्थंगळ अनंतैकभागमात्रंगळु। भावाः जीवाद्यर्त्थंगळु प्रज्ञापनीयाः तीर्त्थकरसातिशयदिव्यध्वनि प्रतिपाद्यंगळप्पुवु। पुनः मत्ते प्रज्ञापनीयानां सातिशयदिव्यध्वनिप्रतिपाद्यंगळप्प भावानां जीवाद्यर्त्थंगळ अनंतैकभागः अनंतैकभागं श्रुतनिबद्धद्वादशांगश्रुतस्कंधनिबद्धक्के विषयत्तॆयिदं नियमितमक्कुं। श्रुतकेवलिगळ्गमुमगोचरअर्थप्रतिपादनशक्ति दिव्यध्वनिगुंटुमादिव्यध्वनिगमगोचर-जीवाद्यर्त्थग्रहणशक्ति केवलज्ञानदोळॆंबुदर्त्थं।

अवाच्यानामनंतांशो भावाः प्रज्ञाप्यमानकाः।
प्रज्ञाप्यमानभावानामनंतांशः श्रुतोदितः ॥

लिखितसंस्थानं स्थापनाक्षरम्। एवंविधैकाक्षरश्रवणसंजातार्थज्ञानमेकाक्षरश्रुतज्ञानमिति जिनैः कथितत्वात् किंचित् प्रतिपादितम् ॥३३३॥ अथ श्रुतनिबद्धं श्रुतविषयं च प्ररूपयति—

अनभिलाप्याना अवाग्विषयाणा केवलं केवलज्ञानगोचराणा भावानां जीवाद्यर्थानां अनन्तैकभागमात्राः भावाः—जीवाद्यर्थाः, प्रज्ञापनीयाः तीर्थकरसातिशयदिव्यध्वनिप्रतिपाद्याः भवन्ति। पुनः प्रज्ञापनीयाना भावानां जीवाद्यर्थाना अनन्तैकभागः श्रुतनिबद्धः द्वादशाङ्गश्रुतस्कन्धस्य निबद्धः विषयतया नियमितः श्रुतकेवलिनामपि अगोचरार्थप्रतिपादनशक्तिर्दिव्यध्वनेरस्ति तद्दिव्यध्वनेरपि अगोचरजीवाद्यर्थग्रहणशक्तिः केवलज्ञानेऽस्तीत्यर्थः।

अवाच्यानामनन्ताशो भावाः प्रज्ञाप्यनामकाः। प्रज्ञाप्यमानभावाना अनन्तांशः श्रुतोदितः ॥१॥

रूप भावेन्द्रिय है। उस रूप अक्षर लब्ध्यक्षर है। क्योंकि वह अक्षर ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण है। कण्ठ, ओष्ठ, तालु आदि स्थानोंकी हलन-चलन आदि रूप क्रिया तथा प्रयत्नसे जिनके स्वरूपकी रचना होती है वे अकारादि स्वर, ककारादि व्यंजनरूप मूल वर्ण और उनके संयोगसे बने अक्षर निर्वृत्त्यक्षर हैं। पुस्तकोंमें उस-उस देशके अनुरूप लिखित अकारादिका आकार स्थापनाक्षर है। इस प्रकारके एक अक्षरके सुननेसे उत्पन्न हुआ अर्थज्ञान एकाक्षर श्रुतज्ञान है ऐसा जिनदेवने कहा है। उसीके आधारसे मैंने किंचित् कहा है ॥३३३॥

अब श्रुतके विषयको तथा श्रुतमें कितना निबद्ध है इसको कहते हैं—

जो भाव अनभिलाप्य अर्थात् वचनके द्वारा कहनेमें नहीं आ सकते, केवल केवलज्ञानके ही विषय हैं ऐसे पदार्थ जीवादिके अनन्तवें भाग मात्र प्रज्ञापनीय हैं अर्थात् तीर्थंकरकी सातिशय दिव्यध्वनिके द्वारा कहे जाते हैं। पुनः प्रज्ञापनीय जीवादि पदार्थोंका अनन्तवाँ भाग द्वादशांग श्रुतस्कन्धमें विषय रूपसे निबद्ध होता है। श्रुतकेवलियोंके भी अगोचर अर्थको कहनेकी शक्ति दिव्यध्वनिमें होती है। और दिव्यध्वनिसे भी अगोचर अर्थको ग्रहण करनेकी शक्ति केवलज्ञानमें है ॥३३४॥

अनंतरं गाथाद्वयदिंदं शास्त्रकारनक्षरसमासमं पेळ्वपं :—

एयक्खरादु उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो ।
संखेज्जे खलु उड्ढे पदणामं होदि सुदणाणं ॥३३५॥

एकाक्षरादुपरि चैकैकेनाक्षरेण वर्द्धमानाः । संख्येये खलु वृद्धे पदनाम भवति श्रुतज्ञानं ॥

एकाक्षरजनितार्त्थज्ञानदमेले तु मत्ते पूर्वोक्तक्रमदिं षट्स्थानवृद्धिरहितमागि एकैकाक्षरदिंद वर्द्धमानमागुत्तिरलु द्वयक्षरत्र्यक्षरादिरूपोनैकपदाक्षरमात्रपर्य्यंतसमुदायश्रवणजनिताक्षरसमासज्ञान-विकल्पंगळु संख्येयंगळु द्विरूपोनैकपदाक्षरप्रमितंगळु सलुत्तं विरलु तदनंतरमुत्कृष्टाक्षरसमासविकल्पद मेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तिरलु पदनाममनुळ्ळ श्रुतज्ञानमक्कुं ।

सोलससयचउतीसा कोडी तियसीदिलक्खयं चेव ।
सत्तसहस्सट्ठसया अट्ठासीदी य पदवण्णा ॥३३६॥

षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटयस्त्र्यशीतिलक्षाणि चैव । सप्तसहस्राष्टशताष्टाशीतिश्च पदवर्णाः ॥

इल्लि अर्त्थपदं प्रमाणपदं मध्यमपदमेंदु पदं त्रिविधमक्कुं । अल्लियेनिरक्षरसमूहदिंदं विवक्षितार्थमरियल्पडुवुमवर्थपदमक्कुं । गां दंडेन शालिभ्यो निवारय । त्वमग्निमानय । इत्यादिगळु । अष्टाक्षरादिसंख्येयिदं निष्पन्नमप्पक्षरसमूहं प्रमाणपदमेंबुदक्कु । नमः श्रीवर्द्धमानाय । एंबिवु मोदलादुवु । षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटयास्त्र्यशीतिलक्षाणि । सप्तसहस्राष्टशताष्टाशीतिश्च पदवर्णाः एंदी गाथोक्तप्रमाणैकपदा पुनरुक्ताक्षरंगळ समूहं मध्यमपदमेंबुदक्कुं १६३४८३०७८८८

॥३३४॥ अथ गाथाद्वयेन शास्त्रकारः अक्षरसमासं कथयति—

एकाक्षरजनितार्थज्ञानस्योपरि तु—पुनः पूर्वोक्तषट्स्थानवृद्धिक्रमरहिततया एकैकाक्षरेणैव वर्धमानाः द्व्यक्षरत्र्यक्षरादिरूपोनैकपदाक्षरमात्रपर्यन्ताक्षरसमुदायश्रवणमंजनिताक्षरसमासज्ञानविकल्पाः संख्येयाः द्विरूपोनैक-पदाक्षरप्रमितागताः तदा अनन्तरस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्या पदनाम श्रुतज्ञान भवति ॥३३५॥

अत्र अर्थपद प्रमाणपद मध्यमपदं चेति पद त्रिविधम् । तत्र यावताक्षरसमूहेन विवक्षितार्थो ज्ञायते तदर्थपदम् । दण्डेन शालिभ्यो गा निवारय, त्वमग्निमानय इत्यादय । अष्टाक्षरादिसंख्यया निष्पन्नोऽक्षरसमूह प्रमाणपद 'नमः श्रीवर्धमानाय' इत्यादि । षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोट्यः त्र्यशीतिलक्षाणि सप्तसहस्राणि अष्टशतानि

अब शास्त्रकार दो गाथाओंसे अक्षर समासको कहते हैं—

एक अक्षरसे उत्पन्न अर्थज्ञानके ऊपर पूर्वोक्त षट्स्थानपतित वृद्धिके क्रमके बिना एक-एक अक्षर बढ़ते हुए दो अक्षर तीन अक्षर आदि रूप एक हीन पदके अक्षर पर्यन्त अक्षर समूहके सुननेसे उत्पन्न अक्षर समास ज्ञानके विकल्प संख्यात हैं अर्थात् दो हीन पदके अक्षर प्रमाण हैं। उसके अनन्तर उत्कृष्ट अक्षर समासके विकल्पके ऊपर एक अक्षर बढ़नेपर पदनामक श्रुतज्ञान होता है ॥३३५॥

पदके तीन भेद हैं—अर्थपद, प्रमाणपद, मध्यमपद । जितने अक्षरोंके समूहसे विवक्षित अर्थका ज्ञान होता है वह अर्थपद है। जैसे डण्डेसे गायको भगाओ। आग लाओ, इत्यादि। आठ आदि अक्षरोंकी संख्यासे बने अक्षर समूहको प्रमाण पद कहते हैं। जैसे 'नमः श्रीवर्धमानाय'। इत्यादि। सोलह सौ चौंतीस करोड़, तेरासी लाख, सात हजार आठ-सौ अठासी अक्षरोंका एक पद होता है। इस गाथामें कहे प्रमाण एक पदके अपुनरुक्त अक्षरों-

१. मॅ एंबीत्यादिगलु ।

हीनाधिकमानंगळप्प प्रमाणपदार्थपदद्वयमध्यदोळे पेळल्पट्ट संख्याक्षरपरिमितसमूहदोळु वर्त्तमानत्वदिदं मध्यमपदमें दितन्वर्थतेयिदं परमागमदोळा मध्यमपदमे गृहीतमाय्तेके दोडे प्रमाणात्थंपदंगळु लोकव्यवहारदोळु गृहीतंगळागुत्तिरलो मध्यमपदमे लोकोत्तरमप्प परमागमदोळु पदमेंदितु व्यवहारिसल्पट्टुदु ।

अनंतरं सघातश्रुतज्ञानमं पेळ्दपं :—

एयपदादो उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो ।

संखेज्जसहस्सपदे उड्ढे संघादणाम सुदं ॥३३७॥

एकपदादुपर्य्येकैकाक्षरेण वर्द्धमाने। संख्येयसहस्रपदे वृद्धे संघातनामश्रुतं ॥

एकपदक्के पेळ्द प्रमाणाक्षरसमूहद मेले एकैकवर्णवृद्धिक्रमदिदमेकपदाक्षरमात्रपदसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु द्विगुणपदज्ञानमक्कु–। मदर मेले मत्तमेकैकवर्णवृद्धिक्रमदिदमेकपदाक्षरमात्रपदसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु त्रिगुणपदश्रुतज्ञानमक्कुमितु प्रत्येकमेकपदाक्षरमात्रविकल्पसहचरितंगळप्प चतुर्ग्गुणपदादिसंख्यातसहस्रगुणितपदमात्रंगळु रूपोनपदसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु प ००० प २ प २०००० प ३०००० प ४०००० प १००० १-१ ई चरमपद-

अष्टाशीतिश्च पदवर्णा· इत्येतद्गाथोक्तप्रमाणैकपदाऽपुनरुक्ताक्षरसमूहो मध्यमपदं १६३४८३०७८८८। हीनाधिकमानयो प्रमाणपदार्थपदयोर्मध्ये एतदुक्तसंख्यापरिमिताक्षरसमूहे वर्तमानत्वात् मध्यमपदं इत्यन्वर्थतया परमागमे तदेव परिगृहीत, प्रमाणपदार्थे पदे तु लोकव्यवहारे परिगृहीते। अत एव लोकोत्तरे परमागमे मध्यमपदमेव पदमिति व्यवह्रियते ॥३३६॥ अथ सघातश्रुतज्ञान प्ररूपयति—

एकपदस्य उक्तप्रमाणाक्षरसमूहस्योपरि एकैकाक्षरवृद्धया एकपदाक्षरमात्रेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु द्विगुणपदज्ञानं भवति। तस्योपरि पुनरपि एकपदाक्षरमात्रेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु त्रिगुणपदज्ञानं भवति। एव प्रत्येकमेकपदाक्षरमात्रविकल्पसहचरितेषु चतुर्गुणपदादिषु संख्यातसहस्रगुणितपदमात्रेषु रूपोनेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु—

प। प प।००।प२।प२।प२।००।प३।प३।प३ ० ० ० प१ ० ० ० १ ३

१६= १६= १६= १ ० ० ० १

का समूह १६३४८३०७८८८ मध्यम पद है। प्रमाण पद और अर्थ पदमें हीन अधिक अक्षर होते हैं। उन दोनोंके मध्यमें कही गयी संख्या परिमाणवाले अक्षर समूहमें वर्तमान होनेसे इसका मध्यम पद नाम सार्थक होनेसे परमागममें वही लिया गया है। प्रमाणपद और अर्थपद तो लोकव्यवहारमें चलते हैं इसीसे लोकोत्तर परमागममें मध्यमपदको ही पद कहा है ॥३३६॥

अब संघात श्रुतज्ञानको कहते हैं—

एक पदके उक्त प्रमाण अक्षर समूहके ऊपर एक-एक अक्षरकी वृद्धि होते-होते एक पदके अक्षर प्रमाण पद समास ज्ञानके विकल्पोंके होनेपर पद श्रुत ज्ञान दूना होता है। उसके ऊपर पुनः एक पदके अक्षर प्रमाण पदसमास ज्ञानके विकल्प बीतनेपर पदज्ञान तिगुना होता

१. म °पदमर्थपदं। २. म संखेज्जपदे उड्ढे सघादं णाम होदि सुदं।

समासज्ञानोत्कृष्टविकल्पद मेले एकाक्षरमे वृद्धमागुत्तिरलु संघातश्रुतज्ञानमक्कुं– प १००० १ मिदुवुं चतुर्ग्गतिगळोळोंदु गतिस्वरूपनिरूपकमध्यमपदसमुदायरूपसंघातश्रवणजनितार्त्थज्ञानमक्कुं ।

अनंतरं प्रतिपत्तिकश्रुतज्ञानस्वरूपमं पेळ्दपं :—

एक्कदरगदिणिरूवयसंघादसुदादु उवरि पुव्वं वा ।
वण्णे संखेज्जे संघादे उड्ढम्मि पडिवत्ती ॥३३८॥

एकतमगतिनिरूपकसंघातश्रुतादुपरि पूर्व्ववत् । वर्णे संख्येये संघाते वृद्धे प्रतिपत्तिः ॥

पूर्व्वोक्तप्रमाणमप्प एकतमगतिनिरूपकसंघातश्रुतद मेले पूर्व्वपरिपाटियिंदमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितमप्पेकैकपदवृद्धिक्रमदिदं संख्यातसहस्रपदमात्रसंघातंगळु संख्यातसहस्रप्रमितंगळु रूपोनसंघातसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु तच्चरमसंघातोत्कृष्टविकल्पद प १०००१ । १००० १–१ वृद्धिय मेले एकाक्षरवृद्धियमेलेयागुत्तिरलु प्रतिपत्तिकमेंब श्रुतज्ञानमक्कुं १६ = १०००।१।१०००१ । इदुवुं नारकादिचतुर्गतिस्वरूपसविस्तरप्ररूपकप्रतिपत्तिकाख्यग्रंथश्रवणसंजातार्त्थज्ञानमेंदितु निश्चैसल्पडुवुदु ।

अनंतरमनुयोगश्रुतज्ञानमं पेळ्दपरु—

चरमस्य पदसमासज्ञानोत्कृष्टविकल्पस्य उपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति संघातश्रुतज्ञानं भवति १६ = १०००१ तच्चतसृणां गतीनां मध्ये एकतमगतिस्वरूपनिरूपकमध्यमपदसमुदायरूपसंघातश्रवणजनितार्थज्ञानं ॥३३७॥ अथ प्रतिपत्तिकश्रुतज्ञानस्वरूपं निरूपयति—

पूर्वोक्तप्रमाणस्य एकतमगतिनिरूपकसंघातश्रुतस्य उपरि पूर्वोक्तप्रकारेण एकैकवर्णवृद्धिसहचरितैकैकपदवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रपदमात्रसंघातेषु संख्यातसहस्रेषु रूपोनेषु संघातसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमस्य संघातसमासोत्कृष्टविकल्पस्य १६ = १००० १ । १००० १–१ एतस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति प्रतिपत्तिकं नाम श्रुतज्ञानं भवति १६ = १००० १ । १००० १ । तच्च नारकादिचतुर्गतिस्वरूपसविस्तरप्ररूपकप्रतिपत्तिकाख्यग्रन्थश्रवणजनितार्थज्ञानमिति निश्चेतव्यम् ॥३३८॥ अथानुयोगश्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

है। इस प्रकार प्रत्येक एक पदके अक्षर मात्र विकल्पोंके बीतनेपर पदज्ञानके चतुर्गुने-पंचगुने होते-होते संख्यात हजार गुणित पदमात्र पदसमास ज्ञानके विकल्पोंमें एक अक्षर घटानेपर जो प्रमाण रहे उतने पदसमास ज्ञानके विकल्प होते हैं। अन्तिम पदसमास ज्ञानके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक अक्षर बढ़ानेपर संघात श्रुतज्ञान होता है। सो चार गतियोंमें-से किसी एक गतिके स्वरूपका कथन करनेवाले मध्यमपदके समुदायरूप संघात श्रुतज्ञानके सुननेसे जो अर्थज्ञान होता है वह संघात श्रुतज्ञान है ॥३३७॥

अब प्रतिपत्ति श्रुतज्ञानका स्वरूप कहते हैं—

पूर्वोक्त प्रमाण किसी एक गतिके निरूपक संघात श्रुतके ऊपर पूर्वोक्त प्रकारसे एक-एक अक्षरकी वृद्धिपूर्वक एक-एक पदकी वृद्धिके क्रमसे संख्यात हजार पदप्रमाण संख्यात हजार संघातमें होते हैं। उनमें एक अक्षर कम करनेपर संघात श्रुतज्ञानके विकल्प होते हैं। उसके अन्तिम संघात समासके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक अक्षर बढ़ानेपर प्रतिपत्ति नामक श्रुतज्ञान होता है। नारक आदि चार गतियोंके स्वरूपका विस्तारसे कथन करनेवाले प्रतिपत्तिक नामक ग्रन्थके सुननेसे होनेवाला अर्थज्ञान प्रतिपत्ति श्रुतज्ञान होता है ॥३३८॥

अब अनुयोग श्रुतज्ञानको कहते हैं—

चउगइसरूवरूवयपडिवत्तीदो दु उवरि पुव्वं वा।
वण्णे संखेज्जे पडिवत्ती उड्ढम्मि अणियोगं ।।३३९।।

चतुर्गतिस्वरूपरूपकप्रतिपत्तितस्तूपरि पूर्ववत् । वर्णे संख्येये प्रतिपत्तिके वृद्धे अनुयोगं ।।

चतुर्गतिस्वरूपप्ररूपकप्रतिपत्तिकदिदं मुंदेयुमवर मेले प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिक्रमदिदं संख्यातसहस्रपदसंघातप्रतिपत्तिकंगळु संवृद्धंगळागुत्तिरलु रूपोनतावन्मात्रप्रतिपत्तिकसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तमिरलु तच्चरमप्रतिपत्तिकसमासोत्कृष्टविकल्पद मेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तं विरलु अनुयोगाख्यश्रुतज्ञानमक्कुं । अदुवुं चतुर्द्दशमार्ग्गणास्वरूपप्रतिपादकानुयोगमें ब शब्दसंदर्भश्रवणजातार्त्थज्ञानमें बुदर्त्थं ।

अनंतरं प्राभृतप्राभृतकमं गाथाद्वयदिदं पेळ्वपर :—

चोद्दसमग्गणसंजुद अणियोगादुवरि वड्ढिदे वण्णे ।
चउरादी अणियोगे दुगवारं पाहुडं होदि ॥३४०॥

चतुर्द्दशमार्ग्गणासंयुतानुयोगादुपरि वर्द्धिते वर्णे । चतुराद्यनुयोगे द्विकवारं प्राभृतं भवति ।।

चतुर्द्दशमार्ग्गणासंयुतानुयोगश्रुतद मेले मुंदे पूर्व्वोक्तक्रमदिदं प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिगळिदं चतुराद्यनुयोगंगळु संवृद्धिगळागुत्तिरलु रूपोनतावन्मात्रंगळनुयोगसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु तच्चरमानुयोगसमासोत्कृष्टविकल्पद मेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तिरलुद्विकवारप्राभृतकमें ब श्रुतज्ञानमक्कुं ।

चतुर्गतिस्वरूपनिरूपकप्रतिपत्तिकात् परं तस्योपरि प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रेषु पदसंघातप्रतिपत्तिकेषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रेषु प्रतिपत्तिकसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमप्रतिपत्तिकसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति अनुयोगाख्यं श्रुतज्ञानं भवति । तच्चतुर्दशमार्गणास्वरूपप्रतिपादकानुयोगसंज्ञशब्दसंदर्भश्रवणजनितार्थज्ञानमित्यर्थ ।।३३९।। अथ प्राभृतकप्राभृतकस्य स्वरूपं गाथाद्वयेन प्ररूपयति—

चतुर्दशमार्गणासंयुतानुयोगात्पर तस्योपरि पूर्वोक्तक्रमेण प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभिश्चतुराद्यनुयोगेषु संवृद्धेषु सत्सु रूपोनतावन्मात्रानुयोगसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमानुयोगसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्या द्विकवारप्राभृतकं नाम श्रुतज्ञान भवति ।।३४०।।

चार गतियोंके स्वरूपको कहनेवाले प्रतिपत्तिकसे आगे उसके ऊपर एक-एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे संख्यात हजार पदोंके समुदायरूप संख्यात हजार संघात और संख्यात हजार संघातोंके समूहरूप प्रतिपत्तिककी संख्यात हजार प्रमाण वृद्धि होनेपर उसमें-से एक अक्षर कम करनेपर प्रतिपत्तिक समास ज्ञानके विकल्प होते हैं। उसके अन्तिम प्रतिपत्तिक समासके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक अक्षर बढ़ानेपर अनुयोग नामक श्रुतज्ञान होता है। चौदह मार्गणाओंके स्वरूपके प्रतिपादक अनुयोग नामक श्रुतग्रन्थके सुननेसे हुआ अर्थज्ञान अनुयोग श्रुतज्ञान है ।।३३९।।

अब दो गाथाओंसे प्राभृतक-प्राभृतकका स्वरूप कहते हैं—

चौदह मार्गणाओंसे सम्बद्ध अनुयोगसे आगे उसके ऊपर पूर्वोक्त क्रमसे प्रत्येक एक-एक अक्षरकी वृद्धिसे युक्त पद आदिकी वृद्धिके द्वारा चार आदि अनुयोगोंकी वृद्धि होनेपर प्राभृतक-प्राभृतक श्रुतज्ञान होता है। उसमें एक अक्षर कम करनेपर उतने मात्र अनुयोग

अहियारो पाहुडयं एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो।
पाहुडपाहुडणामं होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥३४१॥

अधिकारः प्राभृतकमेकार्थः प्राभृतस्याधिकारः प्राभृतकप्राभृतकनामा भवतीति जिनैर्न्निर्दिष्टं ॥

वस्तुवेंब श्रुतज्ञानद अधिकारः प्राभृतकमें बेरडुमेकार्त्थंगळु। प्राभृतद अधिकारमं प्राभृतकप्राभृतकमें बुदु अदुकारणदिदमेकार्त्थपर्य्यायशब्दमें दितु जिनेंद्रभट्टारकरिंदं पेळल्पट्टुदु। स्वरुचिविरचित मल्तें बुदर्त्थं।

द्विकवारप्राभृतानंतरं प्राभृतकस्वरूपमं पेळ्दपरु :—

दुगवारपाहुडादो उवरिं वण्णे कमेण चउवीसे।
दुगवारपाहुडे संउड्ढे खलु होदि पाहुडयं ॥३४२॥

द्विकवारप्राभृतकादुपरि वर्णे क्रमेण चतुर्विंशतौ। द्विकवारप्राभृते संवृद्धे खलु भवति प्राभृतकं ॥

द्विकवारप्राभृतकदिदं मेले तदुपरि पूर्व्वोक्तक्रमदिदं प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिगळिदं चतुर्व्विंशतिप्राभृतकप्राभृतकंगळु वृद्धंगळागुत्तिरलु रूपोनतावन्मात्रंगळु प्राभृतकप्राभृतकसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु तच्चरमोत्कृष्ट विकल्पद मेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तिरलु प्राभृतकमें बं श्रुतज्ञानमक्कुं।

अनंतरं वस्तुवें ब श्रुतज्ञानस्वरूपमं पेळ्दपं—

वस्तुनामश्रुतज्ञानस्य अधिकारः प्राभृतकं चेति द्वौ एकार्थौ। प्राभृतकस्य अधिकारोऽपि प्राभृतकप्राभृतकनामा भवति ततः कारणात् एकार्थः पर्यायशब्दः इति जिनैः—अर्हद्भट्टारकैः निर्दिष्टं न स्वरुचिविरचितमित्यर्थः ॥३४१॥ द्विकवारप्राभृतानन्तरं प्राभृतकस्वरूपं प्ररूपयति—

द्विकवारप्राभृतकात्परं तस्योपरि पूर्वोक्तक्रमेण प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभिः चतुर्विंशतिप्राभृतकप्राभृतकेषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रेषु प्राभृतकप्राभृतकज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमसमासोत्कृष्टविकल्पस्य उपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्यां प्राभृतकं नाम श्रुतज्ञानं भवति ॥३४२॥ अथ वस्तुनामश्रुतज्ञानस्वरूपमाह—

समास ज्ञानके विकल्प होते हैं। उसके अन्तिम अनुयोग समासके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक अक्षरके बढ़नेपर प्राभृतक-प्राभृतक नामक श्रुतज्ञान होता है ॥३४०॥

वस्तु नामक श्रुतज्ञानका अधिकार कहो या प्राभृतक कहो, दोनोंका एक ही अर्थ है। प्राभृतकका अधिकार भी प्राभृतक-प्राभृतक नामक होता है। ऐसा अर्हन्त देवने कहा है, स्वरुचि रचित नहीं है ॥३४१॥

अब प्राभृतकका स्वरूप कहते हैं—

प्राभृतक-प्राभृतकसे आगे उसके ऊपर पूर्वोक्त प्रकारसे प्रत्येक एक-एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे पद आदिकी वृद्धिके होते-होते चौबीस प्राभृतक प्राभृतकोंकी वृद्धिमें एक अक्षर घटानेपर प्राभृतक-प्राभृतक समासके भेद होते हैं। उसके अन्तिम भेदमें एक अक्षर बढ़ानेपर प्राभृतक श्रुतज्ञान होता है। उसके ऊपर पूर्वोक्त क्रमसे एक-एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे बीस प्राभृतक नामक अधिकारोंके बढ़नेपर प्राभृतक नामक श्रुतज्ञान होता है। उसमें एक अक्षर कम करनेपर उतने मात्र प्राभृतक समास ज्ञानके विकल्प होते हैं उसके अन्तिम प्राभृतक समासके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक अक्षर बढ़नेपर

वीसं वीसं पाहुड अहियारे एक्कवत्थुअहियारो ।
एक्केक्कवण्णउड्ढी कमेण सव्वत्थ णादव्वा ॥३४३॥

विंशतिर्विंशतिः प्राभृताधिकारे एकवस्त्वधिकारः । एकैकवर्णवृद्धिः क्रमेण सर्वत्र ज्ञातव्या ॥

मुं पेळ्द प्राभृतकद मुंदे तदुपरि अदर मेले पूर्व्वोक्तक्रमदिदमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिगळिमिप्पत्तु प्राभृतकनामाधिकारंगळु संवृद्धंगळागुत्तं विरलु रूपोनतावन्मात्रप्राभृतकसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु तच्चरमप्राभृतकसमासोत्कृष्टविकल्पद मेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तं विरलु ओंदु वस्तुनामाधिकारश्रुतज्ञानमक्कुं । वीसं वीसमें दितु उत्पादादिपूर्व्वंगळनाश्रयिसल्पट्ट वस्तुगळ समूहवीप्सेयोळु द्विर्वचनं पेळल्पट्टुदु । सर्व्वत्राक्षरसमासप्रथमविकल्पप्रभृति पूर्व्वसमासोत्कृष्टविकल्पपर्य्यंतमप्पुवरोळु क्रमदिदं । पर्य्यायाक्षरपदसंघातेत्यादि परिपाटियिदमेकैकवर्णवृद्धियेंबुदिदुपलक्षणमप्पुदरिंदमेकैकवर्णपदसंघातादिवृद्धिगळुमरियल्पडुवुवु । ई सूत्रानुसारदिदं वृत्तियोळमा प्रकारदिंदमे बरेयल्पट्टुदु ।

अनंतरं गाथासूत्रत्रयदिदं पूर्व्वश्रुतस्वरूपमं पेळ्वातं तदवयवंगळप्पुत्पादपूर्व्वादिचतुर्द्दशपूर्व्वंगळुत्पत्तिक्रममं तोरिदपं :—

दस चोद्दसट्ठ अट्ठारसयं बारं च बार सोलं च ।
वीसं तीसं पण्णारसं च दस चदुसु वत्थूणं ॥३४४॥

दश चतुर्द्दशाष्टाष्टादश द्वादश द्वादश षोडश, विंशति त्रिंशत्पंचदश दश चतुर्षु वस्तूनां ॥

पूर्व्वोक्तवस्तुश्रुतद मेले प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिगळिदं वक्ष्यमाणोत्पादादिचतुर्द्दशपूर्वाधिकारंगळोळु यथासंख्यमागि दश चतुर्दश अष्ट अष्टादश द्वादश द्वादश षोडश विंशति

पूर्वोक्तप्राभृतकस्याग्रे तदुपरि पूर्वोक्तक्रमेण एकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभिः विंशतिप्राभृतकनामाधिकारेषु संवृद्धेषु सत्सु रूपोनतावन्मात्रेषु प्राभृतकसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमप्राभृतकसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्या एकं वस्तुनामाधिकारश्रुतज्ञानं भवति । वीस वीसमिति उत्पादादिपूर्वाश्रितवस्तुसमूहवीप्साया द्विर्वचनमुक्तम् । सर्वत्राक्षरसमासप्रथमविकल्पात् प्रभृति पूर्वसमासोत्कृष्टविकल्पपर्यन्तेषु क्रमेण पर्यायाक्षरपदसंघातेत्यादिपरिपाट्या एकैकवर्णवृद्धि इदमुपलक्षण, तेन एकैकवर्णपदसंघातादिवृद्धयो ज्ञातव्या । एतत्सूत्रानुसारेण वृत्तौ तथा लिखितम् ॥३४३॥ अथ गाथात्रयेण पूर्वनामश्रुतज्ञानस्वरूपं प्ररूपयंस्तदवयवभूतोत्पादपूर्वादिचतुर्दशपूर्वाणामुत्पत्तिक्रमं दर्शयति—

पूर्वोक्तवस्तुश्रुतज्ञानस्य उपरि प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभि वक्ष्यमाणोत्पादादिचतुर्दश-

---

एक वस्तु नामक श्रुतज्ञान होता है। उत्पाद पूर्व आदि पूर्वोंके वस्तु समूहकी वीप्सामें 'वीस वीस' ऐसा दो बार कथन किया है। सर्वत्र अक्षर समासके प्रथम भेदसे लेकर पूर्व समासके उत्कृष्ट विकल्प पर्यन्त क्रमसे पर्याय, अक्षर, पद, संघात इत्यादि परिपाटीसे एक-एक अक्षरकी वृद्धि करना चाहिए। यह कथन उपलक्षण है। अतः 'एक-एक अक्षर पद, संघात आदिकी वृद्धि जानना'। इस सूत्रके अनुसार टीकामें सर्वत्र यथास्थान कथन किया है ॥३४२-३४३॥

अब तीन गाथाओंसे पूर्व नामक श्रुतज्ञानका स्वरूप कहते हुए उसके अवयवभूत उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्वोंकी उत्पत्तिका क्रम दर्शाते हैं—

पूर्वोक्त वस्तु श्रुतज्ञानके ऊपर एक-एक अक्षरकी वृद्धिके साथ पद आदिकी वृद्धि होते-

त्रिंशत् पंचदश दश दश दश दश वस्तुगळु वृद्धंगळागुत्तिरलु ।

उप्पापुव्वग्गेणिय विरियपवादत्थिणत्थियपवादे ।
णाणासच्चपवादे आदाकम्मपवादे य ॥३४५॥
पच्चक्खाणे विज्जाणुवादकल्लाणपाणवादे य ।
किरियाविसालपुव्वे कमसोथ तिलोय विंदुसारे य ॥३४६॥

उत्पादपूर्व्वाग्रायणीयवीर्य्यप्रवादास्तिनास्तिप्रवादे । ज्ञानसत्यप्रवादे आत्मकर्म्मप्रवादे च ॥ प्रत्याख्याने विद्यानुवादकल्याणप्राणवादे च। क्रियाविशालपूर्व्वे क्रमशोथ त्रिलोकबिंदुसारे च ॥

यथाक्रमदिदमुत्पादपूर्व्वमग्रायणीयपूर्व्वं वीर्य्यप्रवादपूर्व्वमस्तिनास्तिप्रवादपूर्व्वं ज्ञानप्रवादपूर्व्वं सत्यप्रवादपूर्व्वं आत्मप्रवादपूर्व्वं कर्म्मप्रवादपूर्व्वं प्रत्याख्यानपूर्व्वं विद्यानुवादपूर्व्वं कल्याणवादपूर्व्वं प्राणवादपूर्व्वं क्रियाविशालपूर्व्वं त्रिलोकबिंदुसारपूर्व्वं वेंदितु चतुर्द्दशपूर्व्वंगळप्पुविनवरोळु पूर्व्वोक्तवस्तुश्रुतज्ञानद मेले मुंदे प्रत्येकमेकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धियिदं दशवस्तुप्रमितवस्तुसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु रूपोनतावन्मात्रवस्तुश्रुतसमासज्ञानविकल्पंगळोळु चरमवस्तुसमासोत्कृष्टविकल्पद मेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तं विरलुत्पादपूर्व्वश्रुतज्ञानमक्कुमल्लिवत्तलावुत्पाद-

पूर्वाधिकारेषु यथासंख्य दशचतुर्दशाष्टाष्टादशद्वादशद्वादशषोडशविंशतित्रिंशत्पञ्चदशदशदशदशदशवस्तुषु वृद्धेषु सत्सु- ॥३४४॥

यथाक्रम उत्पादपूर्वं आग्रायणीयपूर्वं वीर्यप्रवादपूर्वं अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वं ज्ञानप्रवादपूर्वं सत्यप्रवादपूर्वं आत्मप्रवादपूर्वं कर्मप्रवादपूर्वं प्रत्याख्यानपूर्वं विद्यानुवादपूर्वं कल्याणवादपूर्वं प्राणवादपूर्वं क्रियाविशालपूर्वं त्रिलोकबिन्दुसारपूर्वं चेति चतुर्दशपूर्वाणि भवन्ति । एतेषु पूर्वोक्तवस्तुश्रुतज्ञानस्य उपरि–अग्रे प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्ध्या दशवस्तुप्रमितवस्तुसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु रूपोनतावन्मात्रवस्तुश्रुतसमासज्ञानविकल्पेषु चरमवस्तुसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्या उत्पादपूर्वश्रुतज्ञानं भवति । ततः उत्पादपूर्वश्रुतज्ञानस्य उपरि प्रत्येकमेकैकाक्षरवृद्धिसहचरितपदादिवृद्ध्या चतुर्दशवस्तुषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रोत्पादपूर्वसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमोत्कृष्टोत्पादपूर्वसमासज्ञानविकल्पस्य उपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्या

होते आगे कहे गये उत्पाद पूर्व आदि चौदह अधिकारोंमें क्रमसे दस, चौदह, आठ, अठारह, बारह, बारह, सोलह, बीस, तीस, पन्द्रह, दस, दस, दस, दस वस्तु अधिकार होते हैं। इतने वस्तु अधिकारोंकी वृद्धि होनेपर ॥३४४॥

यथा क्रम उत्पाद पूर्व, अग्रायणीपूर्व वीर्य प्रवाद पूर्व, अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व, ज्ञानप्रवाद पूर्व, सत्य प्रवाद पूर्व, आत्मप्रवादपूर्व, कर्मप्रवादपूर्व, प्रत्याख्यान पूर्व, विद्यानुवादपूर्व, कल्याणवाद पूर्व, प्राणवादपूर्व, क्रियाविशाल पूर्व, त्रिलोकबिन्दुसार पूर्व ये चौदह पूर्व होते हैं। इनमें-से प्रत्येकमें पूर्वोक्त वस्तु श्रुतज्ञानके ऊपर एक-एक अक्षरकी वृद्धिके साथ दस वस्तु प्रमाण वस्तु समास ज्ञानके विकल्पोंमें एक अक्षरसे हीन विकल्प पर्यन्त वस्तु श्रुत समास ज्ञानके विकल्प होते हैं। उनमें अन्तिम वस्तु समासके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर उत्पाद पूर्व श्रुतज्ञान होता है। फिर उत्पादपूर्व श्रुतज्ञानके ऊपर एक-एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे पद आदिकी वृद्धिके साथ चौदह वस्तुओंकी वृद्धि होनेपर उसमें एक अक्षर कम विकल्प पर्यन्त उत्पाद पूर्व समास ज्ञानके विकल्प होते हैं। उसके अन्तिम

पूर्व्वश्रुतज्ञानद मेळे प्रत्येकमेकैकाक्षरवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धियिदं चतुर्द्दशवस्तुगळु सलुत्तं विरलु रूपोनतावन्मात्रोत्पादपूर्व्वसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु तच्चरमोत्कृष्टोत्पादपूर्व्वसमासज्ञान-विकल्पद मेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तविरलु अग्रायणीयपूर्व्वश्रुतज्ञानमक्कु-। मितु मुंदे मुंदे अष्ट अष्टादश द्वादश द्वादश षोडश विंशति त्रिंशत् पंचदश दश दश दशं दश वस्तुगळु क्रमवृद्धंगळागुत्तं विरलु रूपोन रूपोन तावन्मात्र तावन्मात्र तत्तत् पूर्व्वसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु तत्तत्पूर्व्व-समासोत्कृष्टस्थानविकल्पंगळोळेकैकाक्षरवृद्धियागुत्तं विरलु तत्तद्वीर्य्यप्रवादपूर्व्व-अस्तिनास्ति-प्रवादपूर्व्व ज्ञानप्रवादपूर्व्व–सत्यप्रवादपूर्व्व–आत्मप्रवादपूर्व्व–कर्म्मप्रवादपूर्व्व-प्रत्याख्याननामधेयपूर्व्व-विद्यानुवादपूर्व्व–कल्याणवादपूर्व्व–प्राणावादपूर्व्व–क्रियाविशालपूर्व्व–त्रिलोकबिंदुसारपूर्व्वमेंबी श्रुत-ज्ञानंगळुत्पत्तिगळप्पुवु। इल्लि त्रिलोकबिंदुसारपूर्व्वक्के समासाभावमेकेंदोडे उत्तरज्ञानविकल्प-रहितत्वदिदं।

अनंतरं चतुर्द्दशपूर्व्ववस्तु वस्तुप्राभृतकसंख्येयं पेळ्दपरु :—

पण णउदिसया वत्थू पाहुडया तियसहस्सणवयसया।
एदेसु चोद्दसेसु वि पुव्वेसु हवंति मिलिदाणि ॥३४७॥

पंचनवतिशतानि वस्तूनि प्राभृतकानि त्रिसहस्रनवशतानि। एतेषु चतुर्द्दशसु पूर्व्वेषु सर्व्वेषु भवंति मिलितानि ॥

उत्पादपूर्व्वमादियागि लोकबिंदुसारावसानमाद चतुर्द्दशपूर्व्वंगळोळु वस्तुगळु सर्व्वमुं कूडि पंचनवत्युत्तरशतप्रमितंगळप्पुवु १९५ प्राभृतकंगळु सर्व्वमुं कूडि नवशतोत्तरत्रिसहस्रप्रमितंगळप्पुवु

अग्रायणीयपूर्वश्रुतज्ञानं भवति। एवमग्रेऽग्रेऽष्टाष्टादशद्वादशद्वादशषोडशविंशतित्रिंशत्पञ्चदशदशदशदशदश-वस्तुषु क्रमेण वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रतावन्मात्रतत्तत्पूर्वसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तत्तत्पूर्वसमासोत्कृष्टज्ञान-विकल्पस्योपरि एकैकाक्षरे वृद्धे सति तत्तद्वीर्यप्रवादपूर्वास्तिनास्तिप्रवादपूर्वज्ञानप्रवादपूर्वसत्यप्रवादपूर्वात्म-प्रवादपूर्वकर्मप्रवादपूर्वप्रत्याख्यानपूर्वविद्यानुवादपूर्वकल्याणवादपूर्वप्राणवादपूर्वक्रियाविशालपूर्वत्रिलोकबिन्दुसार-पूर्वनामश्रुतज्ञानान्युत्पद्यन्ते। अत्र त्रिलोकबिन्दुसारस्य तु समासो नास्ति उत्तरज्ञानविकल्पाभावात्॥३४५–३४६॥
अथ चतुर्दशपूर्वगतवस्तुप्राभृतकसंख्या कथयति—

उत्पादपूर्वमादि कृत्वा त्रिलोकबिन्दुसारावसानेषु चतुर्दशपूर्वेषु वस्तूनि सर्वाणि मिलित्वा पञ्चनवत्यु-त्तरशतप्रमितानि १९५ भवन्ति। प्राभृतकानि तु सर्वाणि मिलित्वा नवशतोत्तरत्रिसहस्रप्रमितानि भवन्ति

उत्कृष्ट उत्पाद पूर्व समास ज्ञान विकल्पके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर अग्रायणी पूर्व श्रुतज्ञान होता है। इसी प्रकार आगे-आगे आठ, अठारह, बारह, बारह, सोलह, बीस, तीस, पन्द्रह, दस, दस, दस, दस वस्तुओंकी क्रमसे वृद्धि होनेपर एक अक्षर कम उतने-उतने उस-उस पूर्व समास ज्ञान पर्यन्त उस-उस पूर्व समास ज्ञान सम्बन्धी विकल्प होते हैं। उस-उस पूर्व समास ज्ञानके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक-एक अक्षर बढ़ानेपर उस-उस वीर्य प्रवाद पूर्व अस्ति, नास्ति, प्रवाद, पूर्व आदि त्रिलोकबिन्दुसार पर्यन्त पूर्व श्रुतज्ञान उत्पन्न होते हैं। त्रिलोकबिन्दुसारका समास ज्ञान नहीं है क्योंकि उसके आगे श्रुतज्ञानके विकल्प नहीं हैं॥३४५–३४६॥

आगे चौदह पूर्वगत वस्तुओंके प्राभृतक नामक अधिकारोंकी संख्या कहते हैं—

उत्पाद पूर्वसे लेकर त्रिलोकबिन्दुसार पर्यन्त चौदह पूर्वोंमें मिलकर सब वस्तु अधिकार एक सौ पंचानवे होते हैं। तथा सब प्राभृत मिलकर तीन हजार नौ सौ होते हैं

३९०० वस्तुगळ प्रमाणमनिप्पत्तरिदं गुणिसुत्तिरलु तत्संख्ये संभविसुगुमप्पुर्दारदं ।

अनंतरं पूर्व्वोक्तविंशतिप्रकारश्रु तज्ञानविकल्पोपसंहारमं गाथाद्वयदिदं पेळदपं :—

अत्थक्खरं च पदसंघादं पडिवत्तियाणियोगं च ।
दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थुपुव्वं च ॥३४८॥
कमवण्णुत्तरवड्ढिय ताण समासा य अक्खरगदाणि।
णाणवियप्पे वीसं गंथे बारस य चोद्दसयं ॥३४९॥

अर्थाक्षरं च पदसंघातं प्रतिपत्तिकानुयोगं च। द्विकवारप्राभृतकं च च प्राभृतकं वस्तु-पूर्व्वं च ॥ क्रमवर्णोत्तरवर्द्धिततत्समासाश्च अक्षरगतानि । ज्ञानविकल्पे विंशतिः ग्रंथे द्वादश च चतुर्द्दशकं ॥

अर्त्थाक्षरमेंबुदु रूपोनेक्कट्ठविभक्तश्रु तकेवलज्ञानमात्रमेकाक्षरप्रमाणमक्कु के मी
१८ =

अर्त्थाक्षरमुं पवमुं संघातमुं प्रतिपत्तिकमुं अनुयोगमुं द्विकवारप्राभृतमुं प्राभृतकमुं वस्तुवुं पूर्व्वमुमेंबी योंभत्तुयोंभत्तरक्रमवर्णोत्तरवर्द्धितंगळप्पों भत्तुं समासंगळुमितष्टादशभेदंगळुमक्षरगतंगळु द्रव्यश्रुतविकल्पंगळप्पुवु । तत् द्रव्यश्रुतश्रवणसंजनितश्रुतज्ञानं विवक्षिसल्पडुत्तिरलुमनक्षरात्मकपर्य्याय-पर्य्यायसमासज्ञानद्वयसहितं विंशतिविकल्पं श्रुतज्ञानमक्कुं । ग्रंथे शास्त्रसंदर्भं विवक्षिसल्पडुत्तं विरलु द्वादश आचारांगादि द्वादशांगविकल्पमुमुत्पादपूर्व्वादिचतुर्द्दशपूर्व्वभेदमुमप्प द्रव्यश्रुतमुं तच्छ्रवणजनितज्ञान-

३९०० । वस्तुसंख्याया विंशत्या गुणिताया तत्संख्यासंभवात् ॥३४७॥ अथ पूर्वोक्तविंशतिविधश्रुतज्ञान-विकल्पोपसहारं गाथाद्वयेनाह—

अर्थाक्षरं तु रूपोनैकट्ठविभक्तश्रुतकेवलमात्रमेकाक्षरज्ञानं के तच्च तथा पद च सघातं प्रति-
१८ =

पत्तिकं अनुयोग द्विकवारप्राभृतकं प्राभृतक वस्तु, पूर्व चेति नव पुनः एषामेव नवानां क्रमवर्णोत्तरवर्धिता समामाश्च नव एवमष्टादशभेदा अक्षरगतद्रव्यश्रुतविकल्पा भवन्ति । तद्द्रव्यश्रुतश्रवणसंजनितश्रुतज्ञानमेव पुन. ज्ञाने विवक्षिते अनक्षरात्मकपर्यायपर्यायसमासज्ञानद्वययुतं सत् विंशतिविध श्रुतज्ञान भवति । ग्रन्थे शास्त्रसन्दर्भे विवक्षिते सति आचाराङ्गादिद्वादशाङ्गविकल्पं उत्पादपूर्वादिचतुर्दशपूर्वभेदं च द्रव्यश्रुत तच्छ्रवणसजनितज्ञान-

क्योंकि एक-एक वस्तुमें बीस-बीस प्राभृत होते हैं अतः वस्तुओंकी संख्या एक सौ पंचानवेमें बीससे गुणा करनेपर प्राभृतकोंकी संख्या उनतालीस सौ होती है ॥३४७॥

अब पूर्वोक्त श्रुतज्ञानके बीस भेदोंका उपसंहार दो गाथाओंसे करते हैं—

अर्थाक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति, अनुयोग, प्राभृतक-प्राभृतक, प्राभृतक वस्तु, पूर्व ये नौ तथा इन्हीं नौके क्रमसे एक-एक अक्षरसे बढ़े नौ समास, इस प्रकार अठारह भेद अक्षरात्मक द्रव्यश्रुतके होते हैं। उस द्रव्यश्रुतके सुननेसे उत्पन्न हुआ श्रुतज्ञान ही अनक्षरात्मक पर्याय और पर्याय समास ज्ञानोंको मिलानेपर बीस प्रकारका श्रुतज्ञान होता है। ग्रन्थकी विवक्षा होनेपर आचारांग आदि बारह भेदरूप और उत्पाद पूर्व आदि चौदह भेदरूप द्रव्यश्रुत है और उसके सुननेसे उत्पन्न ज्ञानस्वरूप भावश्रुत है। 'च' शब्दसे अंगबाह्य, सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णक भेदरूप द्रव्यश्रुत और भावश्रुतका समुच्चय किया जाता है। पुद्गल द्रव्य

स्वरूपमप्प भावश्रुतमुं च शब्दविनंगबाह्यमप्प सामायिकादिचतुर्द्दशप्रकीर्णकभेदद्रव्यभावात्मकश्रुतं समुच्चयं माडल्पट्टुदु। पुद्गलद्रव्यरूपं वर्णपदवाक्यात्मकं द्रव्यश्रुतमक्कुं। तच्छ्रवणसमुत्पन्न श्रुतज्ञानपर्य्यायरूपं भावश्रुतमक्कुमें दितिदाचार्य्याभिप्रायं।

पर्य्यायादिशब्दंगळ्गे निरुक्ति तोरल्पडुगुमदें तें दोडे परीयंते व्याप्यंते सर्व्वे जीवा अनेनेति पर्य्यायः। सर्व्वजघन्यज्ञानमितप्प ज्ञानरहितजीवक्कभावमेयक्कुमप्पुदरिदं। केवलज्ञानवंतरप्प जीवंगळोळमा ज्ञानमुमक्कुमदें तें दोडे महासंख्येयप्प कोटयादियोळु एकाद्यल्पसंख्येयुमल्लियंतंते ज्ञातव्यमक्कुं।

अक्षमिंद्रियं तस्मै अक्षाय श्रोत्रेंद्रियाय राति ददाति स्वमप्पंयतीत्यक्षरम्। पद्यते गच्छति जानात्यर्थमात्माऽनेनेति पदम्। सम् संक्षेपेणैकदेशेन हन्यते गम्यते ज्ञायते एका गतिरनेनेति संघातः। प्रतिपद्यंते सामस्त्येन ज्ञायंते चतस्रो गतयोऽनयेति प्रतिपत्तिः। संज्ञायां कप्रत्ययविधानात्प्रतिपत्तिकः। अनु गुणस्थानानुसारेण गत्यादिषु मार्ग्गणासु युज्यंते संबध्यंते जीवा अस्मिन्ननेनेति वा अनुयोगः।

प्रकर्षेण नामस्थापनाद्रव्यभावनिर्द्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानसत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वादिविशेषेण वस्त्वधिकारात्थ्यैंराभृतं परिपूर्णं प्राभृतं वस्तुनोधिकारः प्राभृतमिति संज्ञाऽस्यास्तीति प्राभृतकं प्राभृतकस्याधिकारः प्राभृतकप्राभृतकं। वसंति पूर्व्वमहार्ण-

स्वरूपं भावश्रुतम्। चशब्दात् अङ्गबाह्यसामायिकादिचतुर्दशप्रकीर्णकभेदद्रव्यभावात्मकश्रुतं पुद्गलद्रव्यरूपं वर्णपदवाक्यात्मकं द्रव्यश्रुतं, तच्छ्रवणसमुत्पन्नश्रुतज्ञानपर्यायरूपं भावश्रुतं च समुच्चीयते इति आचार्यस्य अभिप्रायः। पर्यायादिशब्दाना निरुक्तिः प्रदर्श्यते। तद्यथा—परीयन्ते व्याप्यन्ते सर्वे जीवा अनेनेति पर्यायः-सर्वजघन्यज्ञानं, ईदृशज्ञानरहितस्य जीवस्याभावात्। केवलज्ञानवत्स्वपि तत्सभवात् महासंख्याया कोट्यादौ एकाद्यल्पसंख्यावत्। अक्षाय—श्रोत्रेन्द्रियाय राति ददाति स्वमर्पयतीत्यक्षरम्। पद्यते गच्छति जानात्यर्थमात्मा अनेनेति पदम्। सं—संक्षेपेण एकदेशेन हन्यते गम्यते ज्ञायते एका गतिः अनेनेति संघातः। प्रतिपद्यन्ते सामस्त्येन ज्ञायन्ते चतस्रो गतयः अनयेति प्रतिपत्तिः, संज्ञायां कप्रत्ययविधानात् प्रतिपत्तिकः। अनु गुणस्थानानुसारेण गत्यादिषु मार्गणासु युज्यन्ते संबध्यन्ते जीवा अस्मिन्ननेनेति चानुयोगः। प्रकर्षेण—नामस्थापनाद्रव्यभावनिर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधान-सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वादिविशेषेण वस्त्वधिकारार्थैरा-

रूप वर्णपद वाक्यात्मक द्रव्यश्रुत होता है और उसके सुननेसे उत्पन्न हुए ज्ञानरूप भावश्रुत है यह आचार्यका अभिप्राय है। अब पर्याय आदि शब्दोंकी निरुक्ति कहते हैं—इसके द्वारा सब जीव 'परीयन्ते' व्याप्त किये जाते हैं वह पर्याय अर्थात् सर्वजघन्य ज्ञान है। इस प्रकारके ज्ञानसे रहित कोई जीव नहीं है, केवलज्ञानियोंमें भी वह रहता है। जैसे कोटि आदि महासंख्यामें एक आदि अल्प संख्या गर्भित रहती है। 'अक्षाय' अर्थात् श्रोत्रेन्द्रियके लिए 'राति' अपनेको देता है वह अक्षर है। जिसके द्वारा आत्मा अर्थको 'पद्यते' जानता है वह पद है। जिसके द्वारा एक गति 'सं' संक्षेप रूपसे एकदेशसे 'हन्यते' जानी जाती है वह संघात है। जिसके द्वारा चारों गतियाँ 'प्रतिपद्यन्ते' पूर्ण रूपसे जानी जाती हैं वह प्रतिपत्ति है। संज्ञामें 'क' प्रत्यय करनेसे प्रतिपत्तिक होता है। जिसमें या जिसके द्वारा जीव 'अनु' गुणस्थानके अनुसार गति आदि मार्गणाओंमें 'युज्यन्ते' युक्त किये जाते हैं वह अनुयोग है। 'प्रकर्षेण' नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान, सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व आदि विशेषोंसे वस्तु अधिकार

वस्यार्त्था एकदेशेन संत्यस्मिन्निति वस्तुपूर्व्वाधिकारः। पूरयति श्रुतार्त्थान् संबिभर्त्तीति पूर्व्वं। सं संगृह्य पर्य्यायादीनि पूर्व्वपर्य्यंतानि स्वीकृत्य अस्यंते क्षिप्यंते विकल्प्यंते इति समासाः। पर्य्यायज्ञानदत्तणिनुत्तरविकल्पंगळु पर्य्यायसमासंगळु। अक्षरज्ञानदत्तणिनुत्तरविकल्पंगळक्षरसमासंगळु इंतु मुंबेल्लेडेयोळं पदसमासादिगळु योज्यंगळप्पवु।

इल्लि पूर्व्वंगळु १४ वस्तुगळु १९५ प्राभृतकंगळु ३९०० द्विकवारप्राभृतकंगळु ९३६०० अनुयोगंगळु ३७४४०० प्रतिपत्तिकसंघातपदंगळु संख्यातसहस्रगुणितक्रमंगळु। एकपदाक्षरंगळु १६३४८३०७८८८ समस्ताक्षरंगळु रूपोनेकट्ठप्रमितंगळु १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ ईयक्षरंगळनेकपदाक्षरंगळिं प्रमाणिसुत्तं विरलु द्वादशांगपदप्रमाणमक्कुमें बु लब्धमं पेळ्दपं :—

बारुत्तरसयकोडी तेसीदो तह य होंति लक्खाणं।
अट्ठावण्णसहस्सा पंचेव पदाणि अंगाणं ॥३५०॥

द्वादशोत्तरं शतं कोटचस्त्र्यशीतिस्तथा च भवंति लक्षाणामष्टपंचाशत् सहस्राणि पंचैव पदान्यंगानां ॥

भूतं परिपूर्णं प्राभृत वस्तुनोऽधिकार, प्राभृतमिति संज्ञा अस्यास्तीति प्राभृतकं, प्राभृतकस्याधिकारः प्राभृतकप्राभृतकम्। वसन्ति पूर्वमहार्णवस्य अर्थाः एकदेशेन सन्त्यस्मिन्निति वस्तु। पूर्वाधिकारः पूरयति श्रुतार्थान् संबिभर्तीति पूर्वम्। सं—संगृह्य पर्यायादीनि पूर्वपर्यन्तानि स्वीकृत्य अस्यन्ते क्षिप्यन्ते विकल्प्यन्ते इति समासाः। पर्यायज्ञानादुत्तरविकल्पाः पर्यायसमासाः। अक्षरज्ञानादुत्तरविकल्पा अक्षरसमासाः। एवमग्रेऽपि सर्वत्र पदसमासादयो योज्याः। अत्र पूर्वाणि १४, वस्तूनि १९५, प्राभृतकानि ३९००, द्विकवारप्राभृतकानि ९३६००, अनुयोगा ३७४४००, प्रतिपत्तिकसंघातपदानि संख्यातसहस्रगुणितक्रमाणि एकपदाक्षराणि १६३४८३०७८८८, समस्ताक्षराणि रूपोनैकट्ठप्रमितानि १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५। एतेष्वक्षरेषु एकपदाक्षरैः प्रमाणितेषु यल्लब्धं तद्द्वादशाङ्गपदप्रमाणं शेषमङ्गबाह्याक्षराणि ॥३४८–३४९॥ तत्र प्रथमं तत्पदप्रमाणमाह—

सम्बन्धी अर्थोंसे जो 'आभृत' परिपूर्ण है वह प्राभृत है। और प्राभृत संज्ञा होनेसे प्राभृतक है। प्राभृतकके अधिकारको प्राभृतक-प्राभृतक कहते हैं। जिसमें पूर्व नामक महासमुद्रके अर्थ 'वसन्ति' एक देशसे रहते हैं वह वस्तु है। यह पूर्वोंका अधिकार है। श्रुतके अर्थोंका 'पूरयति' पोषण करता है वह पूर्व है। सं अर्थात् पर्यायसे लेकर पूर्व पर्यन्त भेदोंको 'अस्यन्ते' अपनाता है वह समास है। पर्याय ज्ञानसे उत्तर भेद पर्याय समास है, अक्षर ज्ञानसे उत्तर भेद अक्षर समास हैं इसी प्रकार आगे भी पदसमास आदिकी योजना कर लेना। पूर्व चौदह हैं। वस्तु एक सौ पंचानबे हैं। प्राभृतक उनतालीस सौ हैं। प्राभृतक-प्राभृतक तिरानबे हजार छह सौ है। अनुयोग तीन लाख चौहत्तर हजार चार सौ है। प्रतिपत्तिक, संघात और पद उत्तरोत्तर क्रमसे संख्यात हजार गुणित हैं। एक पदके अक्षर सोलह सौ चौंतीस कोटि, तेरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी है। समस्त अक्षर एक कम एकट्ठी प्रमाण १८४४६७४४०७३७०९५५०६१५ हैं। इन अक्षरोंमें एक पदके अक्षरोंसे भाग देनेपर जो लब्ध आया वह द्वादशांगके पदोंका प्रमाण है और शेष बचा वह अंगबाह्यके अक्षरोंका प्रमाण है ॥३४८–३४९॥

पहले द्वादशांगके पदोंकी संख्या कहते हैं—

द्वादशोत्तरशतप्रमितकोटिगळु मेंभत्तमूरु लक्षंगळु मय्वत्तेंटु सासिरदय्दु द्वादशांगमध्यमसर्व्वपदप्रमाणमक्कुं ११२८३५८००५ ।

अनंतरमंगबाह्याक्षरसंख्येयं पेळ्वपनवु मेकपदाक्षरंगळिं वेक्कट्टुनं भागिसुत्तिरलु शेषाक्षरंगळवर प्रमाणमं पेळ्दपं :—

अडकोडिएयलक्खा अट्ठसहस्सा य एयसदिगं च ।
पण्णत्तरिवण्णाओ पइण्णयाणं पमाणं तु ॥३५१॥

अष्टकोटयेकलक्षमष्टसहस्रं चैकशतिकं च । पंचोत्तरसप्ततिवर्णाः प्रकीर्णकानां प्रमाणं तु ॥

एंटु कोटिगळुमेकलक्षमुमेंटुसहस्रगळु नूरेप्पत्तैदु ८०१०८१७५ मंगबाह्यांगळप्प सामायिकादिचतुर्द्दशभेदंगळोळु संभविसुव प्रकीर्णकाक्षरंगळ प्रमाणमक्कुं । तु शब्ददिदं पूर्व्वसूत्रदोळु द्वादशांगपदसंख्ये पेळल्पट्टुदी सूत्रदोळंगबाह्याक्षरसंख्ये पेळल्पट्टुदें बो विशेषमरियल्पडुगु ।

अनंतरमी यर्त्थनिर्णयार्त्थं गाथाद्वयमं पेळ्दपं :—

तेत्तीसवेंजणाइं सत्तावीसा सरा तहा भणिया ।
चत्तारिय जोगवहा चउसट्ठी मूलवण्णाओ ॥३५२॥

त्रयस्त्रिंशद्व्यंजनानि सप्तविंशतिः स्वराः तथा भणिताः । चत्वारश्च योगवाहाः चतुःषष्टिमूलवर्णाः ॥

द्वादशोत्तरशतकोट्यः त्र्यशीतिलक्षाणि अष्टपञ्चाशत्सहस्राणि पञ्च च द्वादशाङ्गानां मध्यमसर्वपदप्रमाणं भवति ११२, ८३, ५८, ००५ । [अंग्यते मध्यमपदैर्लक्ष्यते इत्यङ्गम् । अथवा आचारादिद्वादशशास्त्रसमूहरूपश्रुतस्कन्धस्य अङ्गं अवयवः एकदेशः आचाराद्येकैकशास्त्रमित्यर्थः] ॥३५०॥ अथाङ्गबाह्याक्षरसंख्यां कथयति—

अष्टकोट्येकलक्षाष्टसहस्रैकशतपञ्चसप्ततिप्रमाणाः प्रकीर्णकानां अङ्गबाह्यानां सामायिकादीनां च चतुर्दशानां वर्णा भवन्ति ८०१०८१७५ तुशब्दः पूर्वसूत्रे द्वादशाङ्गपदसंख्योक्ता, अस्मिन् सूत्रे च अङ्गबाह्याक्षरसंख्योक्तेति विशेषं ज्ञापयति ॥३५१॥ अथामुमेवार्थं गाथाद्वयेनाह—

द्वादशांगके सब मध्यम पदोंका प्रमाण एक सौ बारह कोटि, तेरासी लाख, अठावन हजार पाँच है। अङ्ग्यते अर्थात् मध्यम पदोंके द्वारा जो लक्षित होता है वह अंग है। अथवा आचार आदि बारह शास्त्रसमूहरूप श्रुतस्कन्धका जो अंग अर्थात् अवयव या एकदेश है। अर्थात् आचार आदि एक-एक शास्त्र अंग है ॥३५०॥

अब अंगबाह्यकी अक्षर संख्या कहते हैं—

प्रकीर्णक अर्थात् सामायिक आदि चौदह अंगबाह्योंके अक्षर आठ कोटि, एक लाख आठ हजार एक सौ पिचहत्तर प्रमाण होते हैं। तु शब्द विशेषार्थक है वह ज्ञापित करता है कि पूर्व गाथासूत्रमें द्वादशांगके पदोंकी संख्या कही है। इस गाथा सूत्रमें अंगबाह्यके अक्षरोंकी संख्या कही है ॥३५१॥

इसी अर्थको दो गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. [ ] एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठो नास्ति ब प्रतौ ।

ओ अहो व्यंजनानि अर्द्धमात्रंगळप्प व्यंजनंगळु त्रयस्त्रिंशत्प्रमितंगळप्पुवु ३३ स्वराः स्वरंगळेक द्वित्रिमात्रंगळु सप्तविंशतिः सप्तविंशतिप्रमितंगळु २७ योगवाहाः योगवाहंगळु चत्वारश्च नाल्कु ४ अप्पुवु इंतु मूलवर्णंगळुचतुःषष्टिप्रमितंगळप्पुवेंदु ओ अहो भव्या नीनरियेंदितनादिनिधनपरमागम - दोळु प्रसिद्धंगळा प्रकारदिंदमे पेळल्पट्टुवु।

व्यज्यते स्फुटीक्रियतेऽर्थो यैस्तानि व्यंजनानि। स्वरंत्यर्थं कथयंतीति स्वराः। योगमन्याक्षरसंयोगं वहंतीति योगवाहाः। मूलानि संयुक्तोत्तरवर्णोत्पत्तिकारणभूता वर्णा मूलवर्णाः एंदितु समासात्थंबलदिदमसंयुक्तमागिये चतुःषष्टिवर्णंगळु ग्राह्यंगळप्पुवु। ई वर्णक्के संस्कृतदोळु दीर्घाभावमादोडमनुकरणदोळं देशांतर भाषेगळोळं सद्भावमक्कुं। ए ऐ ओ औ एंबी नाल्कक्कं संस्कृतदोळु ह्रस्वाभावमादोडं प्राकृतदोळं देशांतरभाषेगळोळं सद्भावमक्कुं।

चउसट्ठिपदं विरलिय दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा।
रूऊणं च कए पुण सुदणाणस्सक्खरा होंति ॥३५३॥

चतुःषष्टिपदं विरलयित्वा द्विकं च दत्वा संगुणं कृत्वा। रूपोनं च कृते पुनः श्रुतज्ञानस्याक्षराणि भवंति ॥

ओ–अहो भव्य! व्यञ्जनानि अर्धमात्राणि क् ख् ग् घ् ङ्। च् छ् ज् झ् ञ्। ट् ठ् ड् ढ् ण्। त् थ् द् ध् न्। प् फ् ब् भ् म्। य् र् ल् व् श् ष् स् ह्। इत्येतानि त्रयस्त्रिंशत् ३३। स्वरा एकद्वित्रिमात्राः। अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ इत्येते नव, प्रत्येक ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदैस्त्रिभिर्गुणिताः अ आ आ ३, इ ई ई ३, उ ऊ ऊ ३, ऋ ॠ ॠ ३, ऌ ॡ ॡ ३, ए १ ए २ ए ३, ऐ १ ऐ २ ऐ ३, ओ १ ओ २ ओ ३, औ १ औ २ औ ३ इत्येते सप्तविंशतिः २७। योगवाहा अं अः ᳲक ᳲप इत्येते चत्वार ४, एवं मिलित्वा मूलवर्णाश्चतुःषष्टिः ६४। यथानादिनिधने परमागमे प्रसिद्धास्तथैवात्र भणिता संजानीहि। व्यज्यते स्फुटीक्रियते अर्थो यैरतानि व्यञ्जनानि। स्वरन्ति–अर्थं कथयन्तीति स्वरा। योगं–अन्याक्षरसंयोग वहन्तीति योगवाहा.। मूलानि संयुक्तोत्तरवर्णोत्पत्तिकारणानि वर्णा. मूलवर्णा इति समासार्थबलेन असंयुक्ता एव चतुःषष्टिरिति लभ्यन्ते। ऌवर्णः संस्कृते दीर्घो नास्ति तथापि अनुकरणे देशान्तरभाषाया चास्ति। ए ऐ ओ औ इति चत्वारोऽपि संस्कृते ह्रस्वा न सन्ति तथापि प्राकृते देशान्तरभाषाया च सन्ति ॥३५२॥

'ओ' अर्थात् हे भव्य! अर्धमात्रा जिनमें होती है ऐसे सब व्यंजन तैंतीस हैं—

क् ख् ग् घ् ङ्। च् छ् ज् झ् ञ्। ट् ठ् ड् ढ् ण्। त् थ् द् ध् न्। प् फ् ब् भ् म्। य् र् ल् व् श् ष् स् ह्। एक-दो-तीन मात्रावाले स्वर सत्ताईस होते हैं—अ, इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ ये नौ। प्रत्येकको ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीनसे गुणा करनेपर सत्ताईस होते हैं। अ आ आ ३। इ ई ई ३। उ ऊ ऊ ३। ऋ ॠ ॠ ३। ऌ ॡ ॡ ३। ए १ ए २ ए ३। ऐ १ ऐ २ ऐ ३। ओ १ ओ २ ओ ३। औ १ औ २ औ ३। अं अः ᳲक ᳲप ये चार योगवाह। इस प्रकार सब मिलकर मूल अक्षर चौसठ हैं। जैसा अनादिनिधन परमागममें प्रसिद्ध है वैसा ही यहाँ कहे हैं।

'व्यज्यते' जिनके द्वारा अर्थ प्रकट किया जाता है वे व्यंजन हैं। 'स्वरन्ति' जो अर्थको कहते हैं वे स्वर हैं। योग अर्थात् अन्य अक्षरोंके संयोगको जो 'वहन्ति' वहन करते है वे योगवाह हैं। 'मूल' अर्थात् संयुक्त उत्तर वर्णोंकी उत्पत्तिके कारण वर्ण मूल वर्ण हैं। इस समासके अर्थके बलसे असंयुक्त अक्षर ही चौसठ है यह ज्ञात होता है। ऌ वर्ण संस्कृत भाषामें दीर्घ नहीं है, तथापि देशान्तरकी भाषामें है। ए ऐ ओ औ ये चारों संस्कृतमें ह्रस्व नहीं हैं। तथापि प्राकृत और देशभाषामें हैं ॥३५२॥

मूलवर्णप्रमाणमप्प चतुःषष्ट्यंकस्थानरूपंगळं विरलिसि तिर्य्यक्पंक्तिरूपदिदं स्थापिसि रूपं प्रति द्विकंगळनित्तु संगुणं कृत्वा परस्पर गुणनमं माडि तल्लब्धदोळु रूपोनं माडुत्तिरलु श्रुतज्ञानस्य द्वादशांगप्रकीर्णक श्रुतस्कंधद्रव्यश्रुतद अपुनरुक्ताक्षरंगळु तल्लब्धप्रमितंगळप्पुवें तें दोडे वाक्यार्थप्रतीतिनिमित्तंगळप्पपुनरुक्ताक्षरंगळ्गे संख्यानियमाभावमप्पुदरिदं। एकद्वित्र्यादि चतुःषष्टिसंयोगपर्य्यंतमप्प संयोगाक्षरंगळु संकलितमागुतिरलु श्रुतस्कंधाक्षरप्रमाणोत्पत्तियक्कुमा संकलितधनमें नितें दोडे पेळ्दपरु :—

एक्कट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता ।
सुण्णं णव पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो य पणगं च ॥३५४॥

एकाष्टचतुःचतुःषट्सप्तकं च चतुःचतुःशून्यसप्तत्रिकसप्त। शून्यं नव पंच पंच च एकं षट्कैककश्च पंचकं च ॥

एंदितेकांकमादियागि पंचांकावसानमाद्विंशतिस्थानात्मकद्विरूपवर्गधारारूपोनषष्ठवर्गप्रमाणाक्षरंगळप्पुवु—१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५।

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	च्	छ्	ज्	झ्	ञ्	००००६४
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	प्रत्येक
१	१	२	३	४	५	६	७	८	९	द्विसंयोग
	२	१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६	त्रिसंयोग
		४	१	४	१०	२०	३५	५६	८४	चतुःसंयोग
			८	१	५	१५	३५	७०	१२६	पंचसंयोग
				१६	१	६	२१	५६	१२६	षट्संयोग
					३२	१	७	२८	८४	सप्तसंयोग
						६४	१	८	३६	अष्टसंयोग
							१२८	१	९	नवसंयोग
								२५६	१	दशसंयोग
									५१२	

मूलवर्णप्रमाणं चतुःषष्टिपदं एकैकरूपेण विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति द्विकं दत्त्वा परस्पर सङ्गुण्य तल्लब्धे

मूल अक्षर प्रमाण चौंसठ पदोंको एक-एक रूपसे विरलन करके एक-एक रूपपर दो-

इवेकद्विसंयोगादिचतुःषष्ठिसंयोगपर्य्यंतमप्प संयोगाक्षरसंजनिताक्षरंगळ संख्येयप्पुदरिं ना एकद्वित्रिसंयोगाक्षरंगळिनुत्पत्तिक्रमं तोरल्पडुगुमदें तें दोडे व्यंजनंगळु त्रयस्त्रिंशत्प्रमितंगळु। स्वरंगळु सप्तविंशतिप्रमितंगळु। योगवहंगळु चतुःप्रमितंगळितु मूलवर्णंगळु चतुःषष्टिप्रमितंगळिवं क्रमदिदं मरुवत्तनाल्कडेयोळु बेरे बेरे तिर्य्यग्रूपदिदं स्थापिसि प्रत्येकं द्विसंयोगादिगळं माळ्पुदें तें दोडे कवर्णं दोळु प्रत्येकभगमों देयक्कुं १। द्विसंयोगमुळ्ळ खवर्णदोळु प्रत्येकभंगडु १। द्विसंयोगभंग १। अंतु २। गवर्णदोळु प्र १। द्वि २ त्रि ३। अंतु ४। घवर्णदोळु प्र १। द्वि ३ त्रि ३ च १ अंतु ८। ङ वर्णदोळु प्र १ द्वि ४ त्रि ६ च ४ पं १ अंतु १६। च वर्णदोळु प्र १ द्वि ५ त्रि १० च १० पं ५ ष १ अंतु ३२। छवर्णदोळु प्र १ द्वि ६ त्रि १५ च २० पं १५ ष ६ सप्त १ अंतु ६४। जवर्णदोळु प्र १ द्वि ७ त्रि २१ च ३५ पं ३५ ष २१ सप्त ७ अष्ट १ अंतु १२८। झवर्णदोळु प्र १ द्वि ८ त्रि २८

रूपोने कृते सति श्रुतज्ञानस्य द्वादशाङ्गप्रकीर्णकरूपश्रुतस्कन्धस्य द्रव्यश्रुतस्य अपुनरुक्ताक्षराणि भवन्ति। वाक्यार्थप्रतीत्यर्थं गृहीताना पुनरुक्ताक्षराणा संख्यानियमाभावात् ॥३५३॥ तदपुनरुक्ताक्षरप्रमाण कियदिति चेदाह—

एकाष्टचतुश्चतु:षट्सप्तकं चतुश्चतु:शून्यसप्तत्रिकसप्तशून्य नवपञ्चपञ्च एक षट्कैकश्च पञ्चकं च इत्येकाङ्कादिपञ्चाङ्कावसानविंशतिस्थानात्मकद्विरूपवर्गधारोत्पन्नरूपोनषष्ठवर्गप्रमाणाक्षराणि भवन्ति— १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५। एतानि अक्षराणि एकद्वित्रिसंयोगादीनि चतुःषष्टिसंयोगपर्यन्तानि सन्ति तेषामुत्पत्तिक्रमो दर्श्यते तद्यथा—उक्तमूलवर्णचतुःषष्टि तिर्यक्पङ्क्त्या लिखित्वा तत्र कवर्णे प्रत्येकभङ्ग एक १। द्विसंयोगो नास्ति। खवर्णे प्रत्येकभङ्ग १ द्विसंयोगभङ्ग १ एवं २। गवर्णे प्र १ द्वि २ त्रि १ एवं ४। घवर्णे प्र १ द्वि ३ त्रि ३ च १ एवं ८। ङवर्णे प्र १ द्वि ४ त्रि ६ च ४ प १ एवं १६। चवर्णे प्र १ द्वि ५ त्रि १० च १० प ५ ष १ एवं ३२। छवर्णे प्र १ द्वि ६ त्रि १५ च २० पं १५ ष ६ सप्त १ एवं ६४। जवर्णे प्र १ द्वि ७ त्रि २१ च ३५ पं ३५ ष २१ सप्त ७ अष्ट १ एवं १२८। झवर्णे प्र १ द्वि ८ त्रि २८

दोका अंक देकर परस्परमें गुणा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें एक कम करनेपर द्वादशांग और प्रकीर्णक श्रुतस्कन्ध रूप द्रव्य श्रुतके अपुनरुक्त अक्षर होते हैं। वाक्यके अर्थका ज्ञान करानेके लिए गृहीत पुनरुक्त अक्षरोंकी संख्याका कोई नियम नहीं है ॥३५३॥

एक आठ चार चार छह सात चार चार शून्य सात तीन सात शून्य नौ पाँच पाँच एक छह एक पाँच १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ इस प्रकार एक अंकसे लेकर पाँच अंक पर्यन्त बीस स्थानरूप अपुनरुक्त अक्षर होते हैं। सो द्विरूप वर्गधारामें उत्पन्न एक हीन छठे वर्ग प्रमाण हैं। ये अक्षर एक संयोगी दो संयोगी तीन संयोगी आदि चौसठ संयोग पर्यन्त होते हैं। उनकी उत्पत्तिका क्रम दिखलाते हैं—

उक्त मूल वर्ण चौसठ एक पंक्तिमें लिखें। उनमें-से कवर्णमें प्रत्येक भंग एक है। द्विसंयोगी आदि नहीं है। खवर्णमें प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी भंग एक है। इस प्रकार दो भंग हैं। गवर्णमें प्रत्येक एक, दो संयोगी दो, तीन संयोगी एक, इस तरह चार भंग हैं। घवर्णमें प्रत्येक एक, दो संयोगी तीन, तीन संयोगी तीन, चार संयोगी एक, इस तरह आठ भंग हैं। ङवर्णमें प्रत्येक एक, दो संयोगी चार, तीन संयोगी छह, चार संयोगी चार, पाँच संयोगी एक, इस तरह सोलह भंग हैं। चवर्णमें प्रत्येक एक, दो संयोगी पाँच, त्रिसंयोगी दस, चार संयोगी दस, पाँच संयोगी पाँच, छह संयोगी एक, इस तरह बत्तीस भंग हैं। छवर्णमें प्रत्येक एक, दो सयोगी छह, तीन संयोगी पन्द्रह, चार संयोगी बीस, पाँच संयोगी पन्द्रह, छह संयोगी छह, सात संयोगी एक, इस तरह चौसठ भंग है। जवर्णमें प्रत्येक एक दो, संयोगी सात, तीन

च ५६ पं ७० । ष ५६ । सप्त २८ । अष्ट ८ नव १ अंतु २५६ । ञवर्णदोळु प्र १ द्वि ९ त्रि ३६ च ८४ पं १२६ । ष १२६ । स ८४ । अष्ट ३६ । नव ९ । दश १ अंतु ५१२ । ई़ंती क्रमदिदं अरुवत्तनाल्कुं स्थानंगळोळं नडसुवुदंतु नडसुत्तिरलु प्रत्येकादिभंगंगळु पूर्व्वपूर्व्वमं नोडलुत्तरोत्तर भंगयुत्तिगळु द्विगुणद्विगुणक्रमदिदं नडेववा संदृष्टिपदगळंनिरिसिवोडितिप्पुंवी चतुःषष्टिपदंगळोळु ट् ठ् ड् ढ् ण् । त् थ् द् ध् न् । प् फ् ब् भ् म् । य् र् ल् व् श् ष् स् ह् । अ आ आ ३ । इ ई ई ३ । ऊ ऊ ऊ इत्यादि सप्तविंशतिस्वराः । अं अः ᳲ ᳳ इवरोळु विवक्षिताक्षरस्थानदोळु प्रत्येकद्विसंयोगादि भंगंगळं समस्तपदंगळोळु संभविसुव संयोगंगळ संख्याप्रमाणमुमं चरमस्थानपर्य्यंतं तरल्समर्त्थमप्प करणसूत्रमं श्रीमदभयचंद्रसूरिसैद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादप्रसाददिदं केशवण्णंगळ्पेळ्दपरदेंतेंदोडे :—

पत्तेयभंगमेगं बेसंजोगं विरूवपदमेत्तं ।
तिसंजोगादिपमा रूवाहियवारहीणपदसंकळिदं ॥

प्रत्येकभंग एकः विवक्षितस्थानदोळु प्रत्येकभंगमोंदेयक्कुं । १ । द्विसंयोगो विरूपपदमात्रः विगतं रूप यस्मात् तच्च तत्पदं च विरूपपदं । तदेव मात्रं प्रमाणं यस्यासौ विरूपपदमात्रः । रूपोनपदप्रमितमें बुदर्त्थं । तिसंजोगादिपमा त्रिसंयोगादिप्रमा त्रिसंयोगचतुःसंयोगपंचसंयोगादिविवक्षितपदसंभवसंयोगंगळ प्रमाणं यथाक्रमं क्रममनतिक्रमिसदे रूवहियवारहीणपदसंकळिदं रूपाधिकवारहीनपदसंकलितं भवति रूपाधिकैकद्वित्रिवारादिसंकलनसंख्याविहीनविवक्षितपदंगळ एकद्वित्रिवारादिसंकलितधनमक्कुं । इल्लि विवक्षितमप्प पत्तनेय ञवर्णदोळु प्रत्येकभंग एकः प्रत्येकभंगमोंदु १ । द्विसंयोगो विरूपपदमात्रः द्विसंयोगसंख्ये रूपोनपदमात्रमक्कुं । ९ । त्रिसंयोगादि-

---

च ५६ पं ७० ष ५६ सप्त २८ अष्ट ८ नव १ एवं २५६ । ञवर्णे प्र १ द्वि ९ त्रि ३६ च ८४ पं १२६ ष १२६ सप्त ८४ अष्ट ३६ नव ९ दश १ एव ५१२ । अनेन क्रमेण चतुःषष्टिस्थानेषु गतेषु प्रत्येकादिभङ्गाः पूर्वपूर्वेभ्यः उत्तरोत्तरे द्विगुणा द्विगुणा भवन्ति । ३५४ । तेषां संख्यासाधने करणसूत्रं श्रीमदभयचन्द्रसूरिसैद्धान्तचक्रवर्तिश्रीपादप्रसादेन केशववर्णिनः प्राहुः—

पत्तेयभङ्गमेगं वेसजोगं विरूवपदमेत्तं । तियसंजोगादिपमा रूवाहियवारहीणपदसंकलिदं ॥
प्रत्येकभङ्गमेकं द्विसंयोगं रूपोनपदमात्रं । त्रिसंयोगादिप्रमाण रूपाधिकवारहीनपदसंकलितं ॥

विवक्षितस्थानेषु सर्वत्र प्रत्येकभङ्गः एकैकः । द्विसंयोगभङ्गो रूपोनपदमात्रः । त्रिसंयोगादीनां प्रमाणं तु यथाक्रमं रूपाधिकवारहीनपदसंकलितम् । एकवारादिसंकलितं तद्वारसंख्यया एकरूपाधिकया हीनस्य

संयोगी इक्कीस, चार संयोगी पैंतीस, पाँच संयोगी पैंतीस, छह संयोगी इक्कीस, सात संयोगी सात, आठ संयोगी एक, इस तरह एक सौ अठाईस भंग हैं। झवर्णमें प्रत्येक एक, दो संयोगी आठ, तीन संयोगी अठाईस, चार संयोगी छप्पन, पाँच संयोगी सत्तर, छह संयोगी छप्पन, सात संयोगी अठाईस, आठ संयोगी आठ, नौ संयोगी एक, इस तरह दो सौ छप्पन भंग होते हैं। ञवर्णमें प्रत्येक एक, दो संयोगी नौ, तीन संयोगी छत्तीस, चार संयोगी चौरासी, पाँच संयोगी एक सौ छब्बीस, छह संयोगी एक सौ छब्बीस, सात संयोगी चौरासी, आठ संयोगी छत्तीस, नौ संयोगी नौ, दस संयोगी एक, इस तरह पाँच सौ बारह भंग हैं। इस क्रमसे चौंसठ स्थानोंमें प्रत्येक आदि भंग पूर्व-पूर्वसे उत्तरोत्तर दुगुने-दुगुने होते हैं। उनकी संख्या लानेके लिए करणसूत्र श्रीमत् अभयचन्द्र सूरि सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणोंके प्रसादसे केशववर्णी कहते हैं। जिसका आशय इस प्रकार है—विवक्षित स्थानोंमें सर्वत्र प्रत्येक भंग एक-एक होता है। द्विसंयोगी भंग एक कम गच्छ प्रमाण होते हैं। तीन संयोगी

प्रमा त्रिसंयोगचतुःसंयोगपंचसंयोगादिस्वसंभवसंयोगंगळ प्रमाणं रूपाधिकवारहीनपदसंकलितं भवति। रूपाधिकैकद्वित्रिवारादिस्वसंभवसंकलनसंख्या १ १ १ १ १ १ १ १ विहीनविवक्षित-
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

पदं :—१०।–२।१०।–३।१०।–४।१०।–५।१०।–६।१०।–७।१०।–८।१०।–९। ई पदंगळ तत्तद्वारसंकलितं यावत्तावद्भवति। त्रियोगंगळु रूपाधिकैकवारसंकलनसंख्याहीनपदवेकवारसंकलितमक्कुं १०–२।१०१ अपवर्त्तितमिदु।३६। चतुःसंयोगंगळु त्रिरूपोनपदद्विकवार-
२ १

संकलितमक्कुं ७।८।९ अपवर्त्तितमिदु।८४। पंचसंयोगंगळु चतूरूपोनपदत्रिवारसंकलितमक्कुं
३।२।१

६।७।८।९ अपवर्त्तितमिदु। १२६। षट्संयोगंगळु पंचरूपोनपदचतुर्वारसंकलितमक्कुं
४।३।२।१

५।६।७।८।९ अपवर्त्तितमिदु–१२६। सप्तसंयोगंगळु षड्रूपोनपदपंचवारसंकलितमक्कुं
५।४।३।२।१

विवक्षितपदस्य यावत्तावद्भवति। यथा दशमे अवर्णे त्रिसंयोगा द्विरूपोनपदस्य एकवारसंकलनमात्रा—
१०—२ । १०—१ अपवर्तिता ३६ चतुःसंयोगा त्रिरूपोनपदस्य द्विकवारसंकलनमात्रा—
२ । १

७।८।९ अपवर्तिताः ८४। पञ्चसंयोगा चतूरूपोनपदस्य त्रिकवारसंकलनमात्रा ६।७।८।९
३।२।१ ४।३।२।१

अपवर्तिता. १२६। षट् संयोगा पञ्च रूपोनपदस्य चतुर्वारसंकलनमात्राः ५।६।७।८।९ अपवर्तिता
५।४।३।२।१

आदिका प्रमाण यथाक्रम एक अधिक बार हीन गच्छका संकलन धन मात्र है। जितनी बार संकलन हो उतने बारोंकी संख्यामें एक अधिक करके और उसे विवक्षित गच्छमें घटानेपर जो शेष प्रमाण रहे उतनेका संकलन करना चाहिए। जैसे दसवें अवर्णमें त्रिसंयोगी भंग लानेके लिए एक बार संकलनका प्रमाण एक होनेसे उसमें एक अधिक करनेपर दो हुए। इस दोको गच्छ दसमें-से घटानेपर शेष आठ रहे। इस आठका एक बार संकलन धन मात्र त्रिसंयोगी भंग होते हैं। संकलन धन लानेके लिए कहे गये करणसूत्रके अनुसार विवक्षित दसवें अवर्णमें प्रत्येक भंग एक, द्विसंयोगी एक कम गच्छ प्रमाण नौ, त्रिसंयोगी भंग दो हीन गच्छ प्रमाण आठका एक बार संकलन धन मात्र है। सो संकलन धन लानेके सूत्रके अनुसार आठ और नौको दो और एकसे भाग देकर अपवर्तन करनेपर छत्तीस होते हैं। अर्थात् आठ और नौको परस्परमें गुणा करनेपर बहत्तर हुए। और दो-एकको परस्परमें गुणा करनेपर दो हुए। दोसे बहत्तरमें भाग देनेपर छत्तीस रहते हैं। इसी तरह चतुःसंयोगी भंग तीन हीन गच्छका दो बार संकलन धन मात्र हैं। सो सात, आठ, नौको तीन, दो, एकका भाग देनेपर ७।८।९। अपवर्तन करनेपर चौरासी होते हैं। पंचसंयोगी भंग चार हीन
३।२।१।

गच्छका तीन बार संकलन धन मात्र हैं। सो छह, सात, आठ, नौ को चार, तीन, दो, एकसे भाग देकर ६।७।८।९। अपवर्तन करनेपर एक सौ छब्बीस होते हैं। षट्संयोगी भंग
४।३।२।१।

४।५।६।७।८।९ अपवर्त्तितमिवुवु ८४। अष्टसंयोगंगळु। सप्तरूपोनपदषड्वारसंकलितमक्कु
६।५।४।३।२।१
३।४।५।६।७।८।९ अपवर्त्तितमिदु ३६। नवसंयोगंगळु अष्टरूपोनपदसप्तवारसंकलितमक्कुं
७।६।५।४।३।२।१
२।३।४।५।६।७।८।९ अपवर्त्तितमिदु ९। दशसंयोगंगळु नवरूपोनपदाष्टवारसंकलित-
८।७।६।५।४।३।२।१
मक्कुमादोडमल्लि परमार्त्थदिवं संकलितमिल्लिल्लियों दे रूपमक्कु-। मिवेल्लं कूडि ५१२। इंती प्रकारदिवेल्लेडेयोळु तंदु कोंबुदु।

चरमस्थानदोळु तोप्पं व दंतें दोडे चरमदोळं प्रत्येकभंग एकः प्रत्येकभंगमों दु। द्विसंयोगो द्विरूपपदमात्रः। द्विसंयोगंगळवसंख्ये विरूपपदमात्रमक्कुं। ६३। त्रिसंयोगाविक्रमाः त्रिसंयोगचतुःसंयोगपंचसंयोगादि स्वसंभवचतुःषष्टिसंयोगावसानमाद संयोगंगळ प्रमाणं यथाक्रमं क्रममनतिक्रमिसदे रूपाधिकवारहीनपदसंकलितं रूपाधिकैकद्वित्रिवारादि-स्वसंभवद्व्युत्तरषष्टिपर्य्यवसाने-

१२६। सप्तसंयोगाः षड्रूपोनपदस्य पञ्चवारसकलनमात्रा[2] ४।५।६।७।८।९ अपवर्तिता ८४।
६।५।४।३।२।१
अष्टसंयोगा सप्तरूपोनपदस्य षड्वारसकलनमात्राः ३।४।५।६।७।८।९ अपवर्तिताः ३६।
७।६।५।४।३।२।१
नवसंयोगा अष्टरूपोनपदस्य सप्तवारसकलनमात्रा २।३।४।५।६।७।८।९ अपवर्तिता. ९।
८।७।६।५।४।३।२।१।
दशसंयोगा. नवरूपोनपदस्य अष्टवारसंकलनमात्रा.। अत्र परमार्थतः सकलनमेव नास्ति इत्येकः। एते सर्वे एकप्रत्येकभङ्गनवद्विसंयोगे द्वादशोत्तरपञ्चशतभङ्गा भवन्ति ५१२। एवं सर्वपदेष्वानयेत्। चरमस्थाने प्रत्येकभगः एक १। द्विसंयोगो विरूपपदमात्राः। दश त्रिसंयोगाः द्विरूपोनपदस्यैकवारसंकलनमात्राः

पॉच हीन गच्छका चार बार संकलन धन मात्र हैं। सो पाँच, छह, सात, आठ, नौको पाँच, चार, तीन, दो, एकसे भाग देकर ५।६।७।८।९। अपवर्तन करनेपर एक सौ छब्बीस
५।४।३।२।१।
होते हैं। सात संयोगी भंग छह हीन गच्छका पाँच बार संकलन धन मात्र हैं। सो चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ में छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देकर ४।५।६।७।८।९
६।५।४।३।२।१
अपवर्तन करनेपर चौरासी होते है। आठ संयोगी भंग सात हीन गच्छका छह बार संकलन धन मात्र हैं। सो तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ को सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देकर ३।४।५।६।७।८।९ अपवर्तन करनेपर छत्तीस होते हैं।
७।६।५।४।३।२।१।
नौ सयोगी भंग आठ हीन गच्छका सात बार संकलन धन मात्र है। सो दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौको आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देनेपर नौ होते हैं। दस संयोगी भंग नौ हीन गच्छका आठ बार संकलन धन मात्र हैं। सो यहाँ वास्तवमें संकलन नहीं है क्योंकि एकका सकलन एक ही होता है अतः एक ही भग है। इस प्रकार सबको जोड़नेपर दसवें स्थानमें पाँच सौ बारह भंग होते हैं इसी प्रकार सब

१. म °सानवार संकलनसंख्या°। २. इतोऽग्रे मुद्रितप्रतौ सर्वं नास्ति।

संकलनवारसंख्याहीनपदंगळ ६४–२ । –६४–३ । –६४–४ । ६४–५ । ०००० । ६–४–६३ तत्तद्वार-संकलितं यावत्तावद्भवति एंदितु त्रिसंयोगंगळु रूपाधिकैकवारसंकलनसंख्याहीनपदद एकवार-संकलितमक्कुं ६४–२ । ६४ । १ अपवर्त्तितमिदु १९५३ चतुःसंयोगंगळु त्रिरूपोनपदद्विकवार-
२ १
संकलितमक्कुं ६१ । ६२ । ६३ अपवर्त्तितमिदु ३९७११ पचसंयोगंगळु चतूरूपोनपदत्रिवारसंकलित-
३ २ १
मक्कुं ६० । ६१ । ६२ अपवर्त्तितमिदु ५९५६६५ षट्संयोगंगळु पंचरूपोनपदचतुर्व्वारसंकलित-
४ । ३ । २
मक्कुं ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ अपवर्त्तितमिदु ७०२८८४७ सप्तसंयोगंगळु षड्रूपोनपदपंच-
५ ४ ३ २ १
वारसंकलितमक्कुं ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ अपवर्त्तितमिदु गुणितमिदु ६७९४५५२१
६ ५ ४ ३ २ १
अष्टसंयोगंगळु सप्तरूपोनपद षड्वारसंकलितमक्कुं ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३
७ ६ ५ ४ ३ २ १
अपवर्त्तितगुणितमिदु ५५३२७०६७१ नवसंयोगंगळु अष्टरूपोनपदसप्तवारसंकलितमक्कु अपवर्त्तिते-

---

६४—२ । ६४—१ अपवर्तितगुणिता १९५३ । चतु संयोगा त्रिरूपोनपदस्य द्विकवारसंकलनमात्रा
२ । १
६१ । ६२ । ६३ । अपवर्तिता ५९५६६५ । षट्संयोगाः पञ्चरूपोनपदस्य चतुर्वारसंकलनमात्रा
३ । २ । १ ।
५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ अपवर्तिता ७०२८८४७ । सप्तसंयोगा. षड्रूपोनपदस्य पञ्चवारसंकलन-
५ । ४ । ३ । २ । १
मात्रा. । अपवर्तिता ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । ६७९४५५२१ । अष्टसयोगा. सप्तरूपोन-
६ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।
पदस्य षड्वारसंकलनमात्रा । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । अपवर्तिताः ५५३२७०६७१ ।
७ । ६ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

स्थानोंमें जानना। अन्तके चौंसठवें स्थानमें प्रत्येक भंग एक, द्विसंयोगी भंग एक हीन गच्छ मात्र तिरसठ, त्रिसंयोगी भंग दो हीन गच्छका एक बार संकलन धन मात्र। सो बासठ और तिरसठको दो और एकका भाग देनेपर उन्नीस सौ तिरपन होते हैं। तथा चतुःसंयोगी भंग तीन हीन गच्छका दो बार संकलन धन मात्र। सो इकसठ, बासठ, तिरसठको तीन, दो, एकका भाग देनेपर उनतालीस हजार सात सौ ग्यारह भंग होते हैं। पंच संयोगी भंग चार हीन गच्छका तीन बार संकलन धन मात्र। सो साठ, इकसठ, बासठ, तिरसठको चार, तीन, दो, एकका भाग देनेपर पाँच लाख पंचानवे हजार छह सौ पैंसठ होते हैं। छह संयोगी भंग पाँच हीन गच्छका चार बार संकलन धन मात्र। सो उनसठ, साठ, इकसठ, बासठ, तिरसठको पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देनेपर सत्तर लाख अठाईस हजार आठ सौ सैंतालीस होते हैं। सात संयोगी भंग छह हीन गच्छका पाँच बार संकलन मात्र। सो अठावन, उनसठ, साठ, इकसठ, बासठ, तिरसठको छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देनेपर छह करोड़ उन्यासी लाख पैंतालीस हजार पाँच सौ इक्कीस होते हैं। आठ संयोगी

---

१. म [५८०४५६०१]।

नागतराशि ७ । ५७ । २९ । ५९ । ० । ६१ । ३१ । ० अपवर्त्तितगुणितमिदु ३८ । ७२८९४६९७
५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३
८ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । २ । १

दशसंयोगदोळु नवरूपोनपद अष्टवारसंकलितमक्कुं अप ५५ । ७ । १९ । २९ । ५९ । ०।६१।३१। ०
५५ । ५६ । ५७ । ५८ ।५९।६०।६१।६२।६३
९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १

[1]इंतीप्रकारदिंदमक्षसंचारसंजनितैकादशसंयोगादिभंगंगळु यथासंभवंगळु नडदु द्विचरमत्रिषष्टि-
संयोगंगळु रूपाधिकैकषष्टिवारसंकलनसंख्याविहीनपद ६४-६१ एकषष्टिवारसंकलितमक्कुं
२३ । ४ । ०००० । ६० । ६१ । ६२ । ६३ अपवर्त्तितमिदु ६३ । चतुःषष्टिसंयोगमो देयक्कुं । १ ।
६२ ६२ । ६० । ५५४ । ३ । २ । १
मध्य
० ० ० ०

ई चरमचतुःषष्ट्यक्षरस्थानदोळु प्रत्येकभंगमादियागि चतुःषष्ट्यक्षरं संयोगभंगावसानमादसमस्ता-[2]
क्षरविकल्पंगळ युति एक्कट्ठन अर्द्धमक्कु–१८= मितेकाद्येकोत्तरवर्णवृद्धिक्रमदिदं चतुःषष्टिवर्णाव-
२

नवसंयोगा अष्टरूपोनपदस्य सप्तवारसंकलनमात्रा. ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ ।
८ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।
अपवर्तिताः ३८७२८९४६९७ । दशसंयोगा' नवरूपोनपदस्याष्टवारसकलनमात्रा
५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । अनेन द्रवण......क्षसंचारसंजनितैकादशसयो-
९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।
गादिभङ्गा यथासभव नीत्वा द्विचरमत्रिषष्टिसंयोगाः द्वाषष्टिरूपोनपदस्यैकषष्टिवारसंकलनमात्राः
२ । ३ । ४ । ००० । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । अपवर्तिता ६३ । चतुःषष्टिसयोगः एक एव भवति ।
६२ । ६१ । ६० । मध्य ४ । ३ । २ । १ ।
अत्र चतु.षष्टितमेऽक्षरस्थाने प्रत्येकादीना चतु'षष्टिसंयोगान्ताना सर्वेषामक्षराणा युतिरेकट्ठस्यार्द्धं भवति ।

भंग सात हीन गच्छका छह बार संकलन मात्र होते हैं सो सत्तावन, अट्ठावन, उनसठ, साठ, इकसठ, बासठ, तिरसठको सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देनेपर पचपन करोड़ बत्तीस लाख सत्तर हजार छह सौ इकहत्तर होते हैं। नौ संयोगी भंग आठ हीन गच्छका सात बार संकलन मात्र। सो छप्पन, सत्तावन, अठावन, उनसठ, साठ, इकसठ, बासठ, तिरसठको आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देनेपर तीन अरब सत्तासी करोड़ अट्ठाईस लाख चौरानवे हजार छह सौ सत्तानवे होते हैं। दस संयोगी भंग नौ हीन गच्छका आठ बार संकलन मात्र। सो पचपन, छप्पन, सत्तावन, अठावन, उनसठ, साठ, इकसठ बासठ, तिरसठको नौ, आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देनेपर होते हैं। इसी प्रकार ग्यारह संयोगी आदि भंग जानना।

तिरसठ संयोगी भंग बासठ हीन गच्छ दोका इकसठ बार संकलन धन मात्र सो दो, तीन आदि एक-एक बढ़ते तिरसठ पर्यन्तको बासठ इकसठ आदि एक-एक घटते एक पर्यन्तका भाग देनेपर तिरसठ भंग होते हैं। चौंसठ संयोगी भंग एक ही है। चौंसठवें

१. म अपवर्तितगुणितमिदु २१४५८८४५८३१५ इती प्रकार। २. म °वस्थान°।

सानमाद चतुःषष्टिस्थानविकल्पंगळोळक्षसंचारविंदमु पत्तेयभंगमेगमित्याद्विकरणसूत्रविधानदिंदं मेणुत्तरल्पट्ट प्रत्येकद्विसंयोगादिवर्णविकल्पगळ युतिप्रतिस्थानमुमेकवर्णस्थानं मोदल्गोंडु चतुःषष्टिवर्णस्थानावसानमागि वोंदेरडु नाल्केंटु पदिनारु मूवत्तेरडु अरुवत्तनाल्कु नूरिप्पत्तेंटिभूरय्वत्तारैनूरहन्नेरडी क्रमदिं द्विगुणद्विगुणंगळागुत्तं पोगि चतुश्चरमत्रिचरमद्विचरम चरमस्थानंगळोळु एक्कट्ठन षोडशांशमेक्कट्ठनष्टमांशमेक्कट्ठनचतुर्थांशमेक्कट्ठनर्द्धप्रमिताक्षरविकल्पंगळप्पुवु		संदृष्टि :—
१ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । ६४ । १२८ । २५६ । ५१२ । ०००।५०।००१८ = १८। = १८। = १८। =
१६ ८ ४ २

इंतिर्द्दक्षरविकल्पसंख्येगळं चउसट्ठिपदविरलिय इत्यादिगुणसंकलनविधानदिंदं मेणु अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणंतरभजियमेंदितु संकलन धनमं तरुत्तिरलु द्वादशांगप्रकीर्णकश्रुतस्कंधसमस्ताक्षरंगळ संख्ये रूपोनेकट्ठप्रमितमक्कुमेंबुदु तात्पर्य्यं ।

---

१८ = । एवमेकाद्येकोत्तरक्रमेण चतुःषष्ठ्यन्तवर्णस्थानेष्वक्षसंचारक्रमेण 'पत्तेयभंगमेकामि'त्यादि-करणसूत्र-
२
विधानेन वा आनीतानां प्रत्येकद्विसंयोगादीनां युति क्रमशः एको द्वौ चत्वारोऽष्टौ षोडश द्वात्रिंशच्चतुःषष्टिरष्टाविंशत्यग्र शतं षट्पञ्चाशदधिकद्विशतं द्वादशोत्तरपञ्चशतमेवं द्विगुणा द्विगुणा भूत्वा चतुश्चरमत्रिचरमद्विचरमचरमेषु एकट्ठस्य षोडशांशाष्टांशचतुर्थांशार्द्धप्रमिता भवन्ति । १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । ६४ । १२८ । २५६ । ५१२ । ००० । ०० । ००० १८ = । १८ = । १८ = । १८ = । एवं स्थिताक्षर-
१६ । ८ । ४ । २
संख्या 'चउसट्ठिपद विरलिय' इत्यादिना वा 'अन्तधणं गुणगुणिय' इत्यादिना वा संकलिता सती द्वादशाङ्गप्रकीर्णकश्रुतस्कन्धसमस्ताक्षरसंख्या रूपोनेकट्ठप्रमिता भवतीति तात्पर्यम् ॥३५४॥

स्थानमें प्रत्येक आदि चौसठ संयोगी पर्यन्त भंगोंको जोड़नेपर एकट्ठीके आधे प्रमाण मात्र भंग होते हैं। इस प्रकार एक आदि एक-एक अधिक चौंसठ पर्यन्त अक्षरोंके स्थानोंमें 'पत्तेयभंगमेगं' इत्यादि करण सूत्रके अनुसार भंग होते हैं। अथवा गुणस्थानोंके वर्णनमें प्रमादोंका व्याख्यान करते हुए जो अक्षसंचार विधान कहा था उसके अनुसार भी इसी प्रकार भंग होते हैं। वे भंग क्रमसे एक, दो, चार, आठ, सोलह, बत्तीस, चौसठ, एक सौ अठाईस, दो सौ छप्पन, पाँच सौ बारह, एक हजार चौबीस, दो हजार अड़तालीस, चार हजार छानबे, आठ हजार एक सौ बानबे, सोलह हजार तीन सौ चौरासी, बत्तीस हजार सात सौ अड़सठ, पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस, एक लाख बत्तीस हजार बहत्तर, दो लाख बासठ हजार एक सौ चौआलीस, पाँच लाख चौबीस हजार दो सौ अठासी, दस लाख अड़तालीस हजार पाँच सौ छियत्तर, बीस लाख सत्तानबे हजार एक सौ बावन, इकतालीस लाख चौरानबे हजार तीन सौ दो, तिरासी लाख अठासी हजार छह सौ चार, एक करोड़ सड़सठ लाख तिहत्तर हजार दो सौ आठ आदि दूने-दूने होते हैं। अन्तिम स्थानसे चौथे, तीसरे, दूसरे तथा अन्तिम स्थानमें अर्थात् ६१, ६२, ६३ और ६४वें स्थानमें एकट्ठीके सोलहवें भाग, आठवें भाग, चतुर्थ भाग और आधे भाग प्रमाण भंग होते हैं। इस प्रकार स्थित अक्षरोंकी संख्या 'चउसट्ठि पदं विरलिय' इत्यादिके द्वारा या 'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादिके द्वारा संकलित की जानेपर द्वादशांग और अंगबाह्य श्रुतस्कन्धोंके समस्त अक्षरोंकी संख्या एक हीन एकट्ठी प्रमाण होती है ॥३५४॥

मज्झिमपदक्खरवहिदवण्णा ते अंगुपुव्वगपदाणि ।
सेसक्खरसंखाओ पइण्णयाणं पमाणं तु ॥३५५॥

मध्यमपदाक्षरापहृतवर्णास्तानि अंगपूर्व्वगपदानि । शेषाक्षरसंख्याः ओ अहो भव्याः प्रकीर्णकानां प्रमाणं तु ॥

परमागमप्रसिद्धमध्यमपदषोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटित्र्यशीतिलक्षसप्तसहस्राष्टशताष्टाशीति - प्रमिताक्षरसंख्येयिदमा सकलश्रुतस्कंधाक्षरसंख्येयं भागिसुत्तिरलु तल्लब्धप्रमितंगळु द्वादशांग-पूर्व्वगतमध्यमपदंगळप्पुवु । अवशिष्टाक्षरसंख्येयु-मंगबाह्यप्रकीर्णकाक्षरंगळ प्रमाणमक्कुमिल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुगुमेत्तलानुमो ंदु मध्यमपदाक्षरंगळने तक्को ंडु मध्यमपदमागलु इंतक्षरंगळगेनितु मध्यमपदंगळप्पुवेंदु त्रैराशिकममाडि प्रमाणराशियिदं भागिसिबंदलब्धमंगपूर्व्वपदंगळप्पुवु ११२८३५८००५ अवशिष्टाक्षरंगळु सामायिकाविियादंगबाह्यश्रुताक्षरंगळप्पुवु ८.१०८१७५ ओ अहो भव्य येंदितु । अंगअंगबाह्यश्रुतंगळेरडर यथासंख्यमागिपदप्रमाणमुमनक्षरप्रमाणमुमनरिनोंदितु । प्राकृतदोळु ओ शब्दमव्ययं संबोधनार्थमक्कुं ।

अनंतरमंगपूर्व्वंगळ पदसंख्याविशेषमं त्रयोदशगाथासूत्रंगळिंदं पेळ्दपरु :—

आयारे सुद्दयडे ठाणे समवायणामगे अंगे ।
तत्तो विहाहपणत्तीए णाहस्स धम्मकहा ॥३५६॥

आचारे सूत्रकृते स्थाने समवायनामके अंगे । ततो व्याख्याप्रज्ञप्तौ नाथस्य धम्मकथा ॥

मध्यमपदस्य परमागमप्रसिद्धस्याक्षरैः षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटित्र्यशीतिलक्षसप्तसहस्राष्टशताष्टाशीति-प्रमितैः तेषु सकलश्रुतस्कन्धाक्षरेषु रूपोनैकट्टमात्रेषु भक्तेषु यल्लब्धं तावन्त्यङ्गपूर्वगतमध्यमपदानि भवन्ति । अवशिष्टाक्षरसंख्या अङ्गबाह्यप्रकीर्णकाक्षरप्रमाणं भवति । यद्येतावतामक्षराणां एकं मध्यमपदं तदा एतावदक्षराणां कियन्ति मध्यमपदानि भवन्ति ? इति त्रैराशिकं कृत्वा प्रमाणराशिना भक्ते यल्लब्धं तदङ्गपूर्वपदानि भवन्ति । ११२८३५८००५ । अवशिष्टाक्षराणि सामायिकाद्यङ्गबाह्यश्रुताक्षराणि भवन्ति । ८०१०८१७५ । ओ ! अहो भव्य ! इत्यङ्गाङ्गबाह्यश्रुतद्वयस्य यथासंभव पदप्रमाणमक्षरप्रमाणं च त्वं जानीहि । प्राकृते ओ शब्दः अव्ययः संबोधनार्थः ॥३५५॥ अथाङ्गपूर्वपदसंख्याविशेषं त्रयोदशगाथासूत्रैराख्याति—

परमागममें प्रसिद्ध मध्यम पदके सोलह सौ चौंतीस कोटि, तिरासी लाख, सात हजार आठ सौ अठासी प्रमाण अक्षरोंसे समस्त श्रुतस्कन्धके एक कम एकट्ठी प्रमाण अक्षरोंमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने अंगों और पूर्वोंके मध्यमपद होते हैं। शेष रहे अक्षरोंकी संख्या अंगबाह्यरूप प्रकीर्णकोंके अक्षरोंका प्रमाण होता है।

यदि इतने अक्षरोंका एक मध्यमपद होता है तब एक हीन एकट्ठी प्रमाण अक्षरोंके कितने पद होते हैं ? इस प्रकार त्रैराशिक करके प्रमाण राशि मध्यम पदके अक्षरोंकी संख्यासे भाग देनेपर जो लब्ध आया एक सौ बारह कोटि, तिरासी लाख अठावन हजार पाँच, यह अंग और पूर्वोंके पदोंका प्रमाण है। तथा शेष बचे अक्षर आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एक सौ पचहत्तर सामायिक आदि अंगबाह्यके अक्षर होते हैं। हे भव्य ! इस प्रकार अंग और अंगबाह्य श्रुतोंके पद और अक्षरोंका प्रमाण जानो। प्राकृतमें 'ओ' शब्द सम्बोधनार्थक अव्यय है ॥३५५॥

अब अंगों और पूर्वोंके पदोंकी संख्या तेरह गाथासूत्रोंसे कहते हैं—

द्रव्यश्रुतमनधिकरिसिकों डे निरुक्तियुं प्रतिपाद्यार्त्थमुं पदसंख्याविशेषंगळुमें दिवक्के तत्तदंगपूर्व्वंगळोळु प्ररूपणे माडल्पड्डुगुमेके दोडे भावश्रुतदोळु निरुक्त्याद्यसंभवमप्पुदरिदं। इल्लि द्वादशांगंगळ मोदलोळाचारांगं पेळल्पट्टुदेकें दोडे मोक्षहेतुगळप्प संवरनिर्जराकारणपंचाचारादिसकलचारित्रप्रतिपादकत्वदिदं। मुमुक्षुगळिनादरिसल्पडुव मोक्षांगमप्प परमागमशास्त्रक्के मोदळोळु वक्तव्यत्वं युक्तिसिद्धमें दितु।

चतुर्ज्ञानसप्तर्द्धिसंपन्नरप्प गणधरदेवर्गळिदं तीर्त्थंकरमुखसरोजसंभूतसर्वभाषात्मकदिव्यध्वनिश्रवणावधारितसमस्तशब्दार्त्थंगळिदं शिष्यप्रतिशिष्यानुग्रहात्थंमागि विरचिसिद श्रुतस्कंधद्वादशांगंगळोळगे मोदळोळाचारांग विरचिसल्पट्टुदु। आचरंति समंततोऽनुतिष्ठंति मोक्षमार्ग्गमाराधयंत्यस्मिन्ननेनेति वा आचारस्तस्मिन् आचारांगे इंतप्पाचारांगदोळु—

जदं चरे जदं चिट्ठे जदं आसे जदं सये।
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झइ॥

कथं चरेत् कथमासीत कथं शयीत कथं भाषेत कथं भुंजीत कथं पापं न बध्यते। एंदितु गणधरप्रश्नानुसारदिदं यतं चरेत् यतं तिष्ठेत् यतमासीत यतं शयीत। यतं भाषेत यतं भुंजीत

द्रव्यश्रुतमधिकृत्य निरुक्तिप्रतिपाद्यार्थपदसंख्याविशेषाणां तत्तदङ्गपूर्वेषु प्ररूपणा क्रियते भावश्रुते निरुक्त्याद्यसंभवात्। अत्र द्वादशाङ्गेषु प्रथममाचाराङ्गं कथितम्। कुतः ? मोक्षहेतुभूतसंवरनिर्जराकारणपञ्चाचारादिसकलचारित्रप्रतिपादकत्वेन मुमुक्षुभिराद्रियमाणस्य मोक्षाङ्गभूतस्य परमागमशास्त्रस्य प्रथमतो वक्तव्यत्वस्य युक्तिसिद्धत्वात्। चतुर्ज्ञानसप्तर्धिसंपन्नगणधरदेवैः तीर्थंकरमुखसरोजसंभूतसर्वभाषात्मकदिव्यध्वनिश्रवणावधारितसमस्तशब्दार्थैः शिष्यप्रशिष्यानुग्रहार्थं विरचितश्रुतस्कन्धद्वादशाङ्गानां मध्ये प्रथममाचाराङ्गं विरचितम्। आचरन्ति समन्ततोऽनुतिष्ठन्ति मोक्षमार्गमाराधयन्ति अस्मिन्ननेनेति वा आचारः तस्मिन् आचाराङ्गे—

जदं चरे जदं चिट्ठे जदं आसे जदं सये।
जदं भुञ्जेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झई॥१॥

कथं चरेत् ? कथं तिष्ठेत् ? कथमासीत ? कथं शयीत ? कथं भाषेत ? कथं भुञ्जीत ? कथं पापं न बध्यते ? इति गणधरप्रश्नानुसारेण यतं चरेत्। यतं तिष्ठेत्। यतमासीत। यतं शयीत। यतं भाषेत। यतं

द्रव्यश्रुतको अधिकृत करके उस-उस अंग और पूर्वोंमें निरुक्ति, प्रतिपादित अर्थ और पदोंकी संख्याका कथन करते हैं क्योंकि भावश्रुतमें निरुक्ति आदि सम्भव नहीं हैं। द्वादशांगमें पहला आचारांग कहा है क्योंकि मोक्षके हेतु संवर निर्जराके कारण पंचाचार आदि सकल चारित्रका प्रतिपादक होनेसे मुमुक्षुओंके द्वारा आदरणीय तथा मोक्षके अंगभूत आचारका परमागम शास्त्रमें प्रथम वक्तव्य होना युक्तिसिद्ध है। चार ज्ञान और सात ऋद्धियोंसे सम्पन्न गणधरदेवने तीर्थंकरके मुखकमलसे उत्पन्न सर्वभाषामयी दिव्यध्वनिको सुनकर समस्त शब्दार्थको अवधारण करके शिष्य-प्रशिष्योंके अनुग्रहके लिए विरचित द्वादशांग श्रुतस्कन्धमें प्रथम आचारांगकी रचना की। जिसमें या जिसके द्वारा 'आचरन्ति' अच्छी रीतिसे आचरण करते हैं, मोक्ष मार्गकी आराधना करते हैं वह आचार है। उस आचारांगमें कैसे चलना, कैसे खड़े होना, कैसे बैठना, कैसे सोना, कैसे बोलना, कैसे भोजन करना कि पापका बन्ध न हो। इस गणधरके प्रश्नके अनुसार सावधानतापूर्वक चलिए, सावधानतापूर्वक खड़े होइए, सावधानता पूर्वक बैठिए सावधानतापूर्वक सोइए, सावधानतापूर्वक बोलिए

एवं पाप न बध्यते । इत्याद्युत्तरवाक्यप्रतिपादितमुनिजनसमस्ताचरणं वर्णिसल्पट्टुदु । सूत्रयति-संक्षेपेणात्थं सूचयतीति सूत्रं परमागमः। तदर्थं कृतं करणं ज्ञानविनयादि निर्व्विघ्नाध्ययनादिक्रिया। अथवा प्रज्ञापना कल्प्याकल्प्यच्छेदोपस्थापना व्यवहारधर्म्मक्रियाः स्वसमय-परसमयस्वरूपं च सूत्रैः कृतं करणं क्रियाविशेषो यस्मिन् वर्ण्यते तत्सूत्रकृतं नाम द्वितीयमंगं । तिष्ठंत्यस्मिन्नेकाद्येकोत्तराणि स्थानानीति स्थानं स्थानांगं तस्मिन् संग्रहनयेन एक एवात्मा व्यवहारनयेन संसारो मुक्तश्चेति द्विविकल्पः उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त इति त्रिलक्षणः, कर्म्मवशाच्चतुर्ग्गतिषु संक्रामतीति चतुःसंक्रमणयुक्तः, औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकौदयिकपारिणामिकभेदेन पंच विशिष्टधर्म्मप्रधानः, पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरोर्ध्वाधोगतिभेदेन संसारावस्थायां षट्कापक्रमयुक्तः, स्यादस्ति-स्यान्नास्ति स्यादस्तिनास्ति स्यादवक्तव्यः स्यादस्त्यवक्तव्यः स्यान्नास्त्यवक्तव्यः स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यः इत्यादिसप्तभंगिसद्भावे उपयुक्तः, अष्टविधकर्म्मास्रवणयुक्तत्वादष्टास्रवः, नवजीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्ज्जरामोक्षपुण्यपापरूपाः अर्त्थाः पदार्त्थाः विषयाः यस्य स नवार्त्थः, पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारणद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियभेदाद्दशस्थानकः इत्यादीनि जीवस्य, सामान्यार्प्पणया एकः

भुञ्जीत । एवं पाप न बध्यते । इत्याद्युत्तरवाक्यप्रतिपादितमुनिजनसमस्ताचरण वर्ण्यते । सूत्रयति—संक्षेपेण अर्थं सूचयति इति सूत्रं परमागमः । तदर्थं कृतं करण ज्ञानविनयादिनिर्विघ्नाध्ययनादिक्रिया, अथवा प्रज्ञापना, कल्प्याकल्प्य, छेदोपस्थापना, व्यवहारधर्मक्रिया, स्वसमयपरसमयस्वरूपं च सूत्रैः कृतं करणं क्रियाविशेषो यस्मिन् वर्ण्यते तत् सूत्रकृतं नाम द्वितीयमङ्गम् । तिष्ठन्ति अस्मिन् एकाद्येकोत्तराणि स्थानानीति स्थानं तस्मिन् संग्रहनयेन एक एवात्मा । व्यवहारनयेन संसारी मुक्तश्चेति द्विविकल्पः । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त इति त्रिलक्षणः । कर्मवशात् चतुर्गतिषु संक्रामतीति चतुःसंक्रमणयुक्तः । औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकौदयिकपारिणामिकभेदेन पञ्चविशिष्टधर्मप्रधानः । पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरोर्ध्वाधोगतिभेदेन संसारावस्थाया षट्कोपक्रमयुक्तः । स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादस्तिनास्ति स्यादवक्तव्यः स्यादस्त्यवक्तव्यः स्यान्नास्त्यवक्तव्यः स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यः इत्यादिसप्तभङ्गीसद्भावेऽप्युपयुक्तः । अष्टविधकर्मास्रवयुक्तत्वादष्टास्रवः । नव जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षपुण्यपापरूपा अर्थाः—पदार्थाः विषयाः यस्य स नवार्थः । पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारण-

और सावधानतापूर्वक भोजन करिए। ऐसा करनेसे पापका बन्ध नहीं होता, इत्यादि उत्तर वाक्योंमें प्रतिपादित मुनिजनोंका समस्त आचरण वर्णित है। 'सूत्रयति' अर्थात् जो संक्षेपसे अर्थको सूचित करता है वह सूत्र नामक परमागम है। उसमें कृत अर्थात् ज्ञानकी विनय आदि, निर्विघ्न अध्ययन आदि क्रिया अथवा प्रज्ञापना, कल्प्य-अकल्प्य, छेदोपस्थापना, व्यवहार धर्मकी क्रियाएँ तथा स्वसमय-परसमयका वर्णन है। अथवा सूत्रोंके द्वारा कृत क्रियाविशेष का जिसमें वर्णन है वह सूत्रकृत नामक दूसरा अंग है। जिसमें एकको आदि लेकर एक-एक बढ़ते हुए स्थान 'तिष्ठन्ति' रहते हैं। वह स्थानांग है। उसमें संग्रहनयसे आत्मा एक है, व्यवहारनयसे संसारी मुक्त दो प्रकार है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त होनेसे त्रिलक्षण है, कर्मवश चारों गतियोंमें संक्रमण करनेसे चार संक्रमणसे युक्त है, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, पारिणामिकके भेदसे पाँच विशिष्ट भावोंसे युक्त है, पूरब, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्वगति, अधोगतिके भेदसे संसार अवस्थामें छह उपक्रमोंसे युक्त है, स्यादस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य इत्यादि सप्तभंगीके सद्भावमें उपयुक्त है, आठ प्रकारके कर्मास्रवोंसे युक्त होनेसे आठ आस्रवरूप है, जीव अजीव आस्रव बन्ध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप

पुद्गलः विशेषार्प्पणया अणुस्कंधभेदाद्द्वितयः इत्यादि पुद्गलादीनां च एकाद्येकोत्तरस्थानानि वर्ण्यंत इति स्थानं नाम तृतीयमंगं।

समसंग्रहेण सादृश्यसामान्येन अवेयंते ज्ञायंते जोवादिपदार्त्थाः द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य तस्मिन्निति समवायांगं। तत्र द्रव्याश्रयेण धर्म्मास्तिकायेनाधर्म्मास्तिकायः सदृशः, संसारिजीवेन संसारिजीवः सदृशः, मुक्तजीवेन मुक्तजीवः सदृशः इत्यादिद्रव्यसमवायः। क्षेत्राश्रयेण सीमंतनरक मनुष्यक्षेत्र ऋत्विकसिद्धक्षेत्राणि प्रदेशतः सदृशानि। अवधिस्थाननरकजंबूद्वीपसर्व्वार्त्थसिद्धि-विमानमेतानि सदृशानीत्यादि क्षेत्रसमवायः। एकसमयः एकसमयेन सदृशः। आवलिरावल्या सदृशी। प्रथमपृथ्वीनारकभावनव्यंतराणां जघन्यायूंषि सदृशानि। सप्तमपृथ्वीनारक सर्व्वार्त्थसिद्धि-देवानामुत्कृष्टायुर्षी सदृशी। इत्यादि कालसमवायः। केवलज्ञानं केवलदर्शनेन सदृशमित्यादिर्भाव-समवायः। इति समवायाख्यं चतुर्त्थमंगं। विशेषैर्ब्बहुप्रकारैराख्या किमस्ति जीवः किं नास्ति जीवो किमेको जीवः किमनेको जीवः किं नित्यो जीवः किमनित्यो जीवः किमवक्तव्यो जीवः किं वक्तव्यो जीव इत्यादीनि (६००००) षष्टिसहस्रसंख्यानि भगवदर्हत्तीर्त्थकरसन्निधौ गणधरदेवप्रश्न-

---

द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदाद् दशस्थानकः इत्यादीनि जीवस्य, सामान्यार्पणादेकः पुद्गलः विशेषार्पणया अणुस्कन्धभेदाद् द्वितयः, इत्यादि पुद्गलादीनां च एकाद्येकोत्तरस्थानानि वर्ण्यन्ते इति स्थानं नाम तृतीयमङ्गम्। सं–संग्रहेण सादृश्यसामान्येन अवेयन्ते ज्ञायन्ते जीवादिपदार्था द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य अस्मिन्निति समवायाङ्गम्। तत्र द्रव्याश्रयेण धर्मास्तिकायेन अधर्मास्तिकायः सदृशः। संसारिजीवेन संसारिजीव. सदृशः। मुक्तजीवेन मुक्तजीवः सदृशः इत्यादिर्द्रव्यसमवाय.। क्षेत्राश्रयेण सीमन्तनरक-मनुष्यक्षेत्र–ऋत्विन्द्रक–सिद्ध-क्षेत्राणि प्रदेशतः सदृशानि। अवधिस्थान-नरक-जम्बूद्वीप-सर्वार्थसिद्धिविमानानि सदृशानि इत्यादि क्षेत्र-समवायः। एकसमयः एकसमयेन सदृशः, आवलिः आवल्या सदृशी, प्रथमपृथ्वीनारकभावनव्यन्तराणां जघन्यायूंषि सदृशानि। सप्तमपृथ्वीनरकसर्वार्थसिद्धिदेवाना उत्कृष्टायुषी सदृशे इत्यादिः कालसमवाय.। केवलज्ञानं केवलदर्शनेन सदृशमित्यादिर्भावसमवायः इति समवायाख्यं चतुर्थमङ्ग। विशेषै. बहुप्रकारैराख्यानं किमस्ति जीवः ? किं नास्ति जीव ? किमेको जीवः ? किमनेको जीवः ? किं नित्यो जीव ? किमनित्यो जीवः ? किं वक्तव्यो जीवः ? किमवक्तव्यो जीव इत्यादीनि षष्टिसहस्रसंख्यानि भगवदर्हत्तीर्थकरसन्निधौ

ये नौ पदार्थ उसके विषय होनेसे नौ अर्थरूप है, पृथिवी अप् तेज वायु प्रत्येक साधारण दोइन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियके भेदसे दस स्थानवाला है, इत्यादि जीवका और सामान्यसे पुद्गल एक है, विशेषकी अपेक्षा अणु और स्कन्धके भेदसे दो प्रकार है, इत्यादि पुद्गल आदिके एकादि एक-एक अधिक स्थानोंका वर्णन रहता है। इस प्रकार स्थान नामक तीसरा अंग है। 'सं' अर्थात् सादृश्य सामान्यरूप संग्रहनयसे 'अवेयन्ते' द्रव्य क्षेत्र काल भावको लेकर जीवादि पदार्थ जिसमें जाने जाते हैं वह समवायांग है। उसमें द्रव्यकी अपेक्षा धर्मास्तिकायसे अधर्मास्तिकाय समान है, संसारी जीवसे संसारी जीव समान है, मुक्त जीवसे मुक्त जीव समान है, इत्यादि द्रव्यसमवाय है। क्षेत्रकी अपेक्षा सीमन्त नरक, मनुष्यलोक, ऋतु नामक इन्द्रक विमान, सिद्धक्षेत्र प्रदेशसे समान है, सातवें नरकका अवधि-स्थान नामक इन्द्रकबिला, जम्बूद्वीप, सर्वार्थसिद्धि विमान समान है इत्यादि क्षेत्रसमवाय है। एक समय एक समयके समान है, आवली आवलीके समान है, प्रथम पृथिवीके नारकी, भवनवासी और व्यन्तरोंकी जघन्य आयु समान है, सातवें नरकके नारकी और सर्वार्थ-सिद्धिके देवोंकी उत्कृष्ट आयु समान है, इत्यादि कालसमवाय है। केवलज्ञान केवलदर्शनके समान है इत्यादि भावसमवाय है। इत्यादि समवायोंका कथन समवाय नामके चतुर्थ

वाक्यानि प्रज्ञाप्यंते कथ्यन्ते यस्यां सा व्याख्याप्रज्ञप्तिनाम पंचममंगं । नाथस्त्रिलोकेश्वराणां स्वामी तीर्त्थंकरपरमभट्टारकस्तस्य धर्म्मकथा जीवादिवस्तुस्वभावकथनं । घातिकर्म्मक्षयानंतरकेवलज्ञानसहोत्पन्नतीर्त्थंकरत्वपुण्यातिशयविजृंभितमहिम्नस्तीर्त्थंकरस्य पूर्व्वाह्णमध्याह्नापराह्णाऽर्द्धरात्रिषु षट् षट् घटिकाकालपर्यंतं द्वादशगणसभामध्ये स्वभावतो दिव्यध्वनिरुद्गच्छत्यन्यकालेपि गणधरशक्रचक्रधरप्रश्नानंतरं चोद्भवति । एवं समुद्भूतो दिव्यध्वनिः समस्तासन्नश्रोतृगणानुद्दिश्य उत्तमक्षमादिलक्षणं वा धर्म्मं कथयति । अथवा ज्ञातुर्गणधरदेवस्य जिज्ञासमानस्य प्रश्नानुसारेण तदुत्तरवाक्यरूपा धर्म्मकथातत्पृष्टास्तित्वनास्तित्वादिस्वरूपकथनं । अथवा ज्ञातृणां तीर्त्थंकरगणधरशक्रचक्रधरादीनां धर्म्मानुबंधिकथोपकथाकथनं ज्ञातृधर्म्मकथानाम षष्ठमंगं ।

तो वासयअज्झयणे अंतयडेणुत्तरोववाददसे ।
पण्हाणं वायरणे विवायसुत्ते य पदसंखा ॥३५७॥

तत उपासकाध्ययने अंतकृद्दशे अनुत्तरोपपाददशे । प्रश्नानां व्याकरणे विपाकसूत्रे च पदसंख्या ॥

गणधरदेवप्रश्नवाक्यानि प्रज्ञाप्यन्ते कथ्यन्ते यस्यां सा व्याख्याप्रज्ञप्तिनाम पञ्चममङ्गं । नाथ.–त्रिलोकेश्वराणां स्वामी तीर्थंकरपरमभट्टारकः तस्य धर्मकथा जीवादिवस्तुस्वभावकथनं, घातिकर्मक्षयानन्तरकेवलज्ञानसहोत्पन्नतीर्थंकरत्वपुण्यातिशयविजृम्भितमहिम्नः तीर्थंकरस्य पूर्वाह्णमध्याह्नापराह्णार्धरात्रेषु षट्षट्घटिकाकालपर्यन्त द्वादशगणसभामध्ये स्वभावतो दिव्यध्वनिरुद्गच्छति । अन्यकालेऽपि गणधरशक्रचक्रधरप्रश्नानन्तरं चोद्भवति । एव समुद्भूतो दिव्यध्वनिः समस्तासन्नश्रोतृगणानुद्दिश्य उत्तमक्षमादिलक्षणं रत्नत्रयात्मक वा धर्मं कथयति । अथवा ज्ञातुर्गणधरदेवस्य जिज्ञासमानस्य प्रश्नानुसारेण तदुत्तरवाक्यरूपा धर्मकथा तत्पृष्टास्तित्वनास्तित्वादिस्वरूपकथनं, अथवा ज्ञातृणा तीर्थंकरगणधरशक्रचक्रधरादीना धर्माऽनुबन्धिकथोपकथाकथनं नाथधर्मकथा ज्ञातृधर्मकथानाम वा षष्ठमङ्गम् ॥३५६॥

अंगमें होता है। क्या जीव है या नहीं है ? क्या जीव एक है या अनेक है ? क्या जीव नित्य है या अनित्य है ? क्या जीव वक्तव्य है या अवक्तव्य है इत्यादि गणधरदेवके साठ हजार प्रश्न भगवान् अर्हन्त तीर्थंकरके पासमें पूछे गये जिसमें विशेष अर्थात् बहुत प्रकारसे प्रज्ञाप्यन्ते कहे जाते हैं वह व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक पाँचवाँ अंग है। नाथ अर्थात् तीनों लोकोंके ईश्वरोंका स्वामी तीर्थंकर परम भट्टारककी धर्मकथा—जीवादि वस्तुओंके स्वभावका कथन, कि घातिकर्मोंके क्षयके अनन्तर केवलज्ञानके साथ उत्पन्न तीर्थंकर नामक पुण्यातिशयसे जिनकी महिमा बढ़ गयी है उन तीर्थंकरकी पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण और अर्धरात्रिमें छह-छह घड़ी काल पर्यन्त बारह गणोंकी सभाके मध्य स्वभावसे दिव्यध्वनि खिरती है, अन्य समयमें भी गणधर, इन्द्र और चक्रवर्तीके प्रश्न करनेपर खिरती है। इस प्रकार उत्पन्न हुई दिव्यध्वनि समस्त निकटवर्ती श्रोतागणोंके उद्देशसे उत्तमक्षमादि लक्षणरूप रत्नत्रयात्मक धर्मका कथन करती है। अथवा ज्ञाता जिज्ञासु गणधर देवके प्रश्नके अनुसार उत्तर वाक्यरूप धर्मकथा, पूछे गये अस्तित्व-नास्तित्व आदिके स्वरूपका कथन अथवा ज्ञाता तीर्थंकर गणधर इन्द्र चक्रवर्ती आदिके धर्मानुबन्धी कथोपकथन जिसमें हो वह ज्ञातृधर्मकथा नामक छठा अंग है ॥३५६॥

अल्लिदं बळिकं उपासते आहारादिदानैर्न्नित्यमहादिपूजाविधानैश्च संघमाराधयंतीत्युपासकाः। ते अधीयंते पठ्यंते दर्शनिकव्रतिकसामायिकप्रोषधोपवाससचित्तविरतरात्रिभक्तव्रतब्रह्मचार्य्यारंभपरिग्रहनिवृत्ताऽनुमतोद्दिष्टविरतभेदैकादशनिलयसंबंधिव्रतगुणशीलाचारक्रियामंत्रादि-विस्तरैर्व्वर्ण्यंतेऽस्मिन्निति उपासकाध्ययनं नाम सप्तममंगं।

प्रतितीर्त्थं दशदशमुनीश्वरास्तीव्रं चतुर्व्विधोपसर्गं सोढ्वा इंद्रादिभिर्व्विरचितं पूजादि, प्रातिहार्य्यसंभावनां लब्ध्वा कर्म्मक्षयानंतरं संसारस्यांतमवसानं कृतवंतोऽन्तकृतः। श्रीवर्द्धमानतीर्त्थे नमि मतंग सोमिल रामपुत्र सुदर्शन यमलीकबलिककिष्कंबिल पालंबष्टपुत्रा इति दश। एवं वृषभादितीर्त्थेष्वपि दश दशांतकृतो वर्ण्यंते यस्मिन्तदन्तकृद्दशं नामाष्टममंगं। तथा उपपादः प्रयोजनमेषां ते इमे औपपादिकाः अनुत्तरेषु विजयवैजयंतजयंतापराजितसर्व्वार्त्थसिद्धयाख्येषु औपपादिकाः अनुत्तरौपपादिकाः। प्रतितीर्त्थं दश दश मुनयः दारुणान्महोपसर्ग्गान्सोढ्वा लब्धप्रातिहार्य्याः समाधिविधिना त्यक्तप्राणा ये विजयाद्यनुत्तरविमानेषूपपन्नास्ते वर्ण्यंते यस्मिन् तदनुत्तरौपपादिकदशं नाम नवममंगं। तत्र श्रीवर्द्धमानतीर्त्थे ऋजुदास धन्य सुनक्षत्र कार्त्तिकेय नंद नंदन शालिभद्र

अतः परं उपासते आहारादिदानैर्नित्यमहादिपूजाविधानैश्च संघमाराधयन्तीति उपासकाः ते अधीयन्ते पठ्यन्ते दर्शनिकव्रतिकसामयिकप्रोषधोपवाससचित्तविरतरात्रिभक्तव्रतब्रह्मचर्यारम्भपरिग्रहनिवृत्तानुमतोद्दिष्टविरतभेदैकादशनिलयसंबन्धिव्रतगुणशीलाचारक्रियामन्त्रादिविस्तरैर्वर्ण्यन्ते अस्मिन्निति उपासकाध्ययनं नाम सप्तममङ्गम्। प्रति तीर्थं दश दश मुनीश्वराः तीव्रं चतुर्विधोपसर्गं सोढ्वा इन्द्रादिभिर्विरचिता पूजादिप्रातिहार्यसंभावना लब्ध्वा कर्मक्षयानन्तरं संसारस्यान्तं अवसानं कृतवन्तोऽन्तकृतः। श्रीवर्धमानतीर्थे नमि-मतङ्ग-सोमिल-रामपुत्र-सुदर्शन-यमलीक-वलिक-किष्कम्बिल-पालंबष्ट-पुत्रा इति दश। एवं वृषभादितीर्थेष्वपि दश दशान्तकृतो वर्ण्यन्ते यस्मिंस्तदन्तकृद्दशनामाष्टममङ्गम्। तथा उपपादः प्रयोजनमेषां ते इमे औपपादिकाः। अनुत्तरेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितसर्वार्थसिद्धयाख्येषु औपपादिकाः अनुत्तरौपपादिकाः। प्रति तीर्थं दश दश मुनयो दारुणान् महोपसर्गान् सोढ्वा लब्धप्रातिहार्याः समाधिविधिना त्यक्तप्राणाः ये विजयाद्यनुत्तरविमानेषूपपन्नाः ते वर्ण्यन्ते यस्मिंस्तदनुत्तरौपपादिकदश नाम नवममङ्गम्। तत्र श्रीवर्धमानतीर्थे ऋजुदास-

'उपासते' जो आहार आदि दानके द्वारा और नित्यमह आदि पूजाविधानके द्वारा संघकी आराधना करते हैं वे उपासक हैं। वे उपासक दर्शनिक, व्रतिक, सामयिक, प्रोषधोपवास, सचित्तविरत, रात्रिभक्तव्रत, ब्रह्मचर्य, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतविरत, उद्दिष्टविरत इन गृहस्थोंके ग्यारह भेदोंसे सम्बद्ध व्रत, गुण, शील, आचार, क्रिया, मन्त्र आदि विस्तारसे जिसमें 'अधीयन्ते' पढ़े जाते हैं वह उपासकाध्ययन नामक सातवाँ अंग है। प्रत्येक तीर्थमें दस-दस मुनीश्वर तीव्र चार प्रकारके उपसर्गको सहकर इन्द्रादिके द्वारा रचित पूजादि प्रतिहार्योंकी सम्भावनाको प्राप्त करके कर्मोंके क्षयके अनन्तर संसारका अन्त करते हुए। इसलिए उन्हें 'अन्तकृत' कहते हैं। श्री वर्धमान तीर्थंकरके तीर्थमें नमि, मतंग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, किष्कंविल, पालम्बु, अष्टपुत्र ये दस अन्तकृत् हुए। इसी प्रकार ऋषभदेव आदिके भी तीर्थमें हुए। जिसमें दस-दस अन्तकृतोंका वर्णन हो वह अंग अन्तकृद्दश नामक है। उपपाद जिनका प्रयोजन है वे औपपादिक हैं। विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि नामक अनुत्तरोंमें उपपाद जन्म लेनेवाले अनुत्तरौपपादिक होते हैं। प्रत्येक तीर्थमें दस-दस मुनि दारुण महान् उपसर्गोंको सहकर प्रातिहार्य प्राप्त करके समाधिपूर्वक प्राणोंको त्यागकर विजयादि अनुत्तरोंमें उत्पन्न हुए। उनका जिसमें वर्णन हो वह अनुत्तरौपपादिकदश नामक नौवाँ अंग है। उनमेंसे श्रीवर्धमान

अभय वारिषेण चिलातपुत्रा इत्येते दारुण महोपसर्गान्विजित्येंद्रादिकृतां पूजां लब्ध्वाऽनुत्तरविमानेषूत्पन्नाः। एवं वृषभादितीर्त्थेष्वपि परमागमानुसारेण ज्ञातव्याः। प्रश्नस्य दूतवाक्यनष्टमुष्टिचिंतादिरूपस्यार्त्थः त्रिकालगोचरो धनधान्यादि लाभालाभसुखदुःखजीवितमरणजयपराजयादिरूपो व्याक्रियते व्याख्यायते यस्मिन् तत्प्रश्नव्याकरणं। अथवा शिष्यप्रश्नानुरूपतया आक्षेपणी विक्षेपणी संवेजनी निर्व्वेजनी चेति कथा चतुर्विधा। तत्र प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोगद्रव्यानुयोगरूपपरमागमपदार्त्थानां तीर्त्थकरादिवृत्तांतलोकसंस्थानदेशसकलयतिधर्म्मपंचास्तिकायादीनां परमताशंकारहितं कथनमाक्षेपणीकथा। प्रमाणनयात्मकयुक्तियुक्तहेतुवादबलेन सर्व्वथैकांतादिपरसमयार्त्थनिराकरणरूपा विक्षेपणीकथा। रत्नत्रयात्मकधर्म्मानुष्ठानफलभूततीर्त्थंकराद्यैश्वर्य्यप्रभावतेजोवीर्य्यज्ञानसुखादिवर्णनारूपा संवेदनीकथा। संसारशरीरभोगजनितदुःकर्म्मफलनारकादिदुःखदुःकुलविरूपांगदारिद्र्यापमानदुःखादिवर्णनाद्वारेण वैराग्यकथनरूपा निर्व्वेजनीकथा। एवंविधाः कथाः व्याक्रियंते

धन्य-सुनक्षत्र-कार्तिकेय-नन्द-नन्दन-शालिभद्र-अभय-वारिषेण-चिलातपुत्रा इत्येते दारुणमहोपसर्गान् विजित्य इन्द्रादिकृतां पूजां लब्ध्वा अनुत्तरविमानेषूपपन्नाः। एवं वृषभादितीर्थेष्वपि परमागमानुसारेण ज्ञातव्या। प्रश्नस्य–दूतवाक्यनष्टमुष्टिचिन्तादिरूपस्य अर्थः त्रिकालगोचरो धनधान्यादिलाभालाभसुखदुःखजीवितमरणजयपराजयादिरूपो व्याक्रियते व्याख्यायते यस्मिंस्तत्प्रश्नव्याकरणम्। अथवा शिष्यप्रश्नानुरूपतया आक्षेपणी विक्षेपणी संवेजनी निर्वेजनी चेति कथा चतुर्विधा। तत्र प्रथमानुयोगकरणानुयोगचरणानुयोगद्रव्यानुयोगरूपपरमागमपदार्थानां तीर्थकरादिवृत्तान्तलोकसंस्थानदेशसकलयतिधर्मपञ्चास्तिकायादीनां परमताशङ्कारहितं कथनमाक्षेपणी कथा। प्रमाणनयात्मकयुक्तियुक्तहेतुत्वादिबलेन सर्वथैकान्तादि परसमयार्थनिराकरणरूपा विक्षेपणी कथा। रत्नत्रयात्मकधर्मानुष्ठानफलभूततीर्थंकराद्यैश्वर्यप्रभावतेजोवीर्यज्ञानसुखादिवर्णनारूपा संवेजनी कथा। संसारशरीरभोगरागजनितदुष्कर्मफलनारकादिदुःखदुष्कुलविरूपाङ्गदारिद्र्यापमानदुःखादिवर्णनाद्वारेण वैराग्यकथनरूपा

स्वामीके तीर्थमें ऋजुदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिकेय, नन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण, चिलातपुत्र ये दारुण महा उपसर्गोंको जीतकर इन्द्रादिके द्वारा की गयी पूजाको प्राप्त करके अनुत्तर विमानमें उत्पन्न हुए। इसी प्रकार ऋषभ आदि तीर्थंकरोंके तीर्थमें भी परमागमके अनुसार जानना। प्रश्न अर्थात् दूतवाक्य, नष्ट, मुष्टि चिन्तादि विषयक प्रश्नका त्रिकाल गोचर अर्थ जो धनधान्य आदिकी लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवन-मरण, जय-पराजय आदिसे सम्बद्ध है वह जिसमें व्याक्रियते अर्थात् उत्तरित किया गया हो, वह प्रश्नव्याकरण है। अथवा शिष्योंके प्रश्नके अनुसार अवक्षेपणी[1] विक्षेपणी, संवेजनी और निर्वेजनी ये चार कथाएँ जिसमें वर्णित हों वह प्रश्नव्याकरण है। तीर्थंकर आदिके इतिवृत्तको कहनेवाले प्रथमानुयोग, लोकके आकार आदिका कथन करनेवाले करणानुयोग, देशचारित्र और सकलचारित्रको कहनेवाले चरणानुयोग तथा पंचास्तिकाय आदिका कथन करनेवाले द्रव्यानुयोग रूप परमागमके पदार्थोंका परमतकी आशंकाको दूर करते हुए कथनको आक्षेपणी कथा कहते हैं। प्रमाणनयात्मक युक्ति तथा हेतु आदिके बलसे सर्वथा एकान्त आदि अन्य मतोंका निराकरण करानेवाली कथाको विक्षेपणी कथा कहते हैं। रत्नत्रयात्मक धर्मका अनुष्ठान करनेके फलस्वरूप तीर्थंकर आदिके ऐश्वर्य, प्रभाव, तेज, ज्ञान, सुख, वीर्य आदिका कथन करनेवाली संवेजनी कथा है। संसार शरीर और भोगोंसे राग करनेसे दुष्कर्मका बन्ध होता है और उसके फलस्वरूप नारक आदिका दुःख, दुष्कुलकी प्राप्ति, शरीरोंके अंगोंका विरूपपना, दारिद्रय, अपमान आदिके वर्णनके द्वारा वैराग्यका कथन करनेवाली निर्वेजनी

१. अवक्षे–मु।

व्याख्यायंते यस्मिन् तत्प्रश्नव्याकरणं नाम दशममंगम् । शुभाशुभकर्म्मणां तीव्रमंदमध्यमविकल्पशक्तिरूपानुभागस्य द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रयः फलदानपरिणतिरूप उदयो विपाकस्तं सूत्रयति वर्णयतीति विपाकसूत्रं नामैकादशमंगम् । एतेष्वाचारादिषु विपाकसूत्रपर्य्यंतेष्वेकादशस्वंगेषु प्रत्येकं मध्यमपदानां संख्या यथाक्रमं वक्ष्यते इत्यर्थः ।

अट्ठारस छत्तीसं बादालं अडकदी अडबिछप्पण्णं ।
सत्तरि अट्ठावीसं चउदालं सोलस सहसा ।।३५८।।

अष्टादश षट्त्रिंशत् द्वाचत्वारिंशत् अष्टकृतिरष्टद्विः षट्पंचाशत् सप्ततिरष्टाविंशतिः चतुश्चत्वारिंशत् षोडश सहस्राणि ।।

इगिदुगपंचेयारं तिवीस दुतिणउदिलक्ख तुरियादी ।
चुलसीदिलक्खमेया कोडी य विवागसुत्तम्मि ।।३५९।।

एकद्विपंचैकादशत्रिविंशति द्वित्रिनवतिलक्षाणि तुर्य्यादीनि चतुरशीतिलक्षाण्येका कोटी च विपाकसूत्रे ।।

सहस्रशब्दः सर्व्वत्र संबध्यते । आचारांगे आचारांगदोळु अष्टादशसहस्रपदंगळप्पुवु १८००० सूत्रकृतांगदोळु षट्त्रिंशत्सहस्रपदंगळप्पुवु ३६००० स्थानांगदोळु द्वाचत्वारिंशत्सहस्रपदंगळप्पुवु ४२००० चतुर्त्थसमवायादिप्रश्नव्याकरणपर्य्यंतमाद सप्तांगदोळु एकलक्षादियोगं माडल्पडुवुदवें तें दोडे समवायांगदोळु एकलक्षमुं चतुःषष्टिसहस्रपदंगलप्पुवु १६४००० । व्याख्याप्रज्ञप्त्यंगदोळु द्विलक्षमुमष्टाविंशतिसहस्रपदंगळप्पुवु २२८००० ज्ञातृकथांगदोळु पंचलक्षंगळुं षट्पंचाशत्सहस्रपदंगळप्पुवु ५५६००० उपासकाध्ययनांगदोळु एकादशलक्षंगळु सप्ततिसहस्रपदंगळप्पवु ११७००००

निर्वेजनी कथा । एवंविधाः कथाः व्याक्रियन्ते व्याख्यायन्ते यस्मिंस्तत्प्रश्नव्याकरण नाम दशममङ्गम् । शुभाशुभकर्मणा तीव्रमन्दमध्यमविकल्पशक्तिरूपानुभागस्य द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रयफलदानपरिणतिरूप उदयः—विपाकः तं सूत्रयति वर्णयतीति विपाकसूत्र नामैकादशमङ्गम् । एतेष्वाचारादिषु विपाकसूत्रपर्यन्तेषु एकादशसु अङ्गेषु प्रत्येक मध्यमपदानां संख्या यथाक्रमं वक्ष्यते इत्यर्थ. ।।३५७।।

सहस्रशब्द सर्वत्र संबध्यते । आचाराङ्गे अष्टादशसहस्राणि पदानि १८००० । सूत्रकृताङ्गे षट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ३६००० । स्थानाङ्गे द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि ४२००० । चतुर्थादिषु समवायादिषु प्रश्नव्याकरणपर्यन्तेषु सप्तस्वङ्गेषु एकलक्षादियोगः क्रियते । तद्यथा—समवायाङ्गे एकलक्षचतुःषष्टिसहस्राणि पदानि १६४००० । व्याख्याप्रज्ञप्त्यङ्गे द्विलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि पदानि २२८००० । ज्ञातृकथाङ्गे पञ्चलक्षषट्पञ्चाशत्सहस्राणि पदानि ५५६००० । उपासकाध्ययनाङ्गे एकादशलक्षसप्ततिसहस्राणि पदानि ११७०००० ।

कथा है । इस प्रकारकी कथाएँ जिसमें वर्णित हों वह प्रश्नव्याकरण नामक दसवाँ अंग है । शुभ और अशुभ कर्मोंके तीव्र-मन्द-मध्यम विकल्प शक्तिरूप अनुभागके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावके आश्रयसे फलदानकी परणतिरूप उदयको विपाक कहते हैं । उसको जो वर्णन करता है वह विपाक सूत्र नामका ग्यारहवाँ अंग है । आचारसे लेकर विपाक सूत्र पर्यन्त ग्यारह अंगोंमें-से प्रत्येकमें मध्यमपदोंको यथाक्रम कहते है ।।३५७।।

सहस्र शब्दका सम्बन्ध सर्वत्र लगता है । आचारांगमें अठारह हजार पद हैं । सूत्रकृतांगमें छत्तीस हजार पद हैं । स्थानांगमें बयालीस हजार पद हैं । चतुर्थ समवायांगसे लेकर प्रश्नव्याकरण पर्यन्त सात अंगोंमें एक लाख आदिका योग किया जाता है । अतः समवायांगमें एक लाख चौंसठ हजार पद हैं । व्याख्याप्रज्ञप्ति अंगमें दो लाख अठाईस

अंतकृद्दशांगदोळु त्रयोविंशतिलक्षंगळुमष्टाविंशतिसहस्रपदंगळप्पुवु २३२८०००। अनुत्तरौपपादिकदशांगदोळु द्विनवतिलक्षंगळुं चतुश्चत्वारिंशत्सहस्रपदंगळप्पुवु ९२४४०००। प्रश्नव्याकरणांगदोळु त्रिनवतिलक्षंगळुं षोडशसहस्रपदंगळप्पुवु ९३१६०००। विपाकसूत्रांगदोळु एककोटियुं चतुरशीतिलक्षपदंगळप्पुवु १८४०००००।

वापणनरनोनानं एयारंगे जुदी हु वादम्मि ।
कनजतजमताननमं जनकनजयसीम बाहिरे वण्णा ॥३६०॥

वा चतुः। प एक। ण पंच। न शून्य। र द्वि। नो शून्य। ना शून्य। नं शून्यमेकादशांगे युतिः। खलु वादे क एक। न शून्य। ज अष्ट। त षट्। ज अष्ट। म पंच। ता षट्। न शून्य। न शून्य। मं पंच। ज अष्ट। न शून्य। क एक। न शून्य। ज अष्ट। य एक। सि सप्त। म पंच बाह्ये वर्णाः पेरगे पेळल्पट्ट एकादशांगगळ पदसंख्यायुतियनक्षरसंख्येयिदं वापणनरनोनानं नाल्कु कोटियुं पदिनैदुलक्षमुमेरडु सासिर पदंगळप्पुवु। ४१५०२००० खलु स्फुटमागि वादे दृष्टिवाददोळु कनजतजमताननमं नूरेंटुकोटियुमरुवत्तेंटुलक्षमुमय्वत्तारुसासिरदय्दु पदंगळप्पुवु १०८६८५६००५, जनकनजयसीम। मेंटुकोटियु मोंदुलक्षमु मेंटुसासिरद नूरेप्पत्तैदुक्षरंगळु सामायिकादिचतुर्द्दशभेददोळंगबाह्यदोळप्पुवु ८०१०८१७५, दृष्टीनां त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतसंख्यानां मिथ्यादर्शनानां वादोऽनुवादस्तन्निराकरणं च यस्मिन् क्रियते तद्दृष्टिवादं नाम द्वादशमंगं। अदेंतें दोडे कौत्कल। काण्ठे-

अन्तकृद्दशाङ्गे त्रयोविंशतिलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि पदानि २३२८०००। अनुत्तरौपपादिकदशाङ्गे द्विनवतिलक्षचतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि ९२४४०००। प्रश्नव्याकरणाङ्गे त्रिनवतिलक्षषोडशसहस्राणि पदानि ९३१६०००। विपाकसूत्राङ्गे एककोटिचतुरशीतिलक्षाणि पदानि १८४००००० ॥३५८–३५९॥

पूर्वोक्तैकादशाङ्गपदसंख्यायुतिः अक्षरसंख्यया वापणनरनोनानं चतुःकोटिपञ्चदशलक्षद्विसहस्रप्रमिता भवति ४१५०२००० खलु स्फुट। दृष्टिवादाङ्गे कनजतजमताननम अष्टोत्तरशतकोट्यष्टषष्टिलक्षषट्पञ्चाशत्सहस्रपञ्चपदानि भवन्ति १०८६८५६००५। जनकनजयसीम अष्टकोट्येकलक्षाष्टसहस्रैकशतपञ्चसप्तत्यक्षराणि सामायिकादिचतुर्दशभेदेऽङ्गबाह्यश्रुते भवन्ति ८०१०८१७५। दृष्टीना त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतसंख्याना मिथ्यादर्शनाना वादः अनुवाद तन्निराकरणं च यस्मिन् क्रियते तद् दृष्टिवादं नाम द्वादशमङ्गम्। तद्यथा कौत्कल-कण्ठेविद्धि-

हजार पद हैं। ज्ञातृकथांगमें पांच लाख छप्पन हजार पद हैं। उपासकाध्ययनांगमें ग्यारह लाख सत्तर हजार पद हैं। अन्तकृद्दशांगमें तेईस लाख अठाईस हजार पद हैं। अनुत्तरौपपादिक दशांगमें बानबे लाख चवालीस हजार पद हैं। प्रश्नव्याकरणमें तिरानबे लाख सोलह हजार पद हैं विपाक सूत्रमें एक कोटि चौरासी लाख पद हैं ॥३५८–३५९॥

पूर्वोक्त ग्यारह अंगोंके पदोंका जोड़ अक्षरोंकी संख्यामें 'वापणनरनोनानं' अर्थात् चार कोटि, पन्द्रह लाख दो हजार प्रमाण होते हैं। पहले गतिमार्गणामें मनुष्योंकी संख्या अक्षरोंमें कही है। उसकी टीकामें स्पष्ट कर दिया है कि किस अक्षरसे कौन संख्या लेना। जैसे यहाँ 'व' से चार, 'प' से एक, 'ण' से पांच, 'न' से शून्य, 'र' से दो और तीन शून्य लेना क्योंकि 'व' य से चतुर्थ अक्षर है, 'र' दूसरा अक्षर है, 'ण' टवर्गका पाँचवाँ अक्षर है और 'प' पवर्गका प्रथम अक्षर है। दृष्टिवाद अंगमें 'कनजतजमताननमं' अर्थात् एक सौ आठ कोटि अड़सठ लाख, छप्पन हजार पाँच पद हैं १०८६८५६००५। 'जनकनजयसीम' आठ कोटि, एक लाख, आठ हजार एक सौ पचहत्तर ८०१०८१७५ अक्षर सामायिक आदि चौदह भेदरूप अंगबाह्यमें होते हैं। तीन सौ तिरसठ दृष्टि अर्थात् मिथ्यादर्शनोंका वाद

बिद्धि । कौशिक । हरिस्मश्रु । मान्थपिक । रोमश । हारीत । मुण्ड । आश्वलायननेंबिवर्गळु क्रियावाददृष्टिगळिवर्गळ नूरें भत्तु १८० । मरीचि । कपिल । उलूक । गार्ग्य । व्याघ्रभूति । वाड्वलि । माठर । मौद्गलायनं मोदलादवर्गळु अक्रियावाददृष्टिगळवर्गळें बत्तनाल्कु ८४ । शाकल्य । वल्कल । कुंथुमि । सात्यमुग्रि । नारायण । कठ । माध्यंदिन । मौद । पैप्पलाद । बादरायण । स्विष्टिक्य । दैतिकायन । वसु जैमिन्यादिगळु अज्ञानदृष्टिगळु इवर्गळरुवत्तेळु ६७ । वशिष्ठ । पाराशर । जतुकर्ण । वाल्मीकि । रोमहर्षिणि । सत्यदत्त । व्यास । एलापुत्र औपमन्यव । इंद्रदत्त । अगस्त्यादिगळु वैनैकदृष्टिगळिवर्गळ मूवत्तेरडु । ३२ । मितु कूडि मूनूररुवत्तमूरु मिथ्यावादंगळप्पुवु । ३६३ ।

चंदरविजंबुदीवय दीवसमुद्दय वियाहपण्णत्ती ।
परियम्मं पंचविहं सुत्तं पढमाणियोगमदो ॥३६१॥
पुव्वं जलथलमाया आगासयरूवगयमिमा पंच ।
भेदा हु चूलियाए तेसु पमाणं इमं कमसो ॥३६२॥

चंद्ररविजंबूद्वीपद्वीपसमुद्रव्याख्याप्रज्ञप्तयः । परिकर्म्म पंचविधं सूत्रं प्रथमानुयोगोऽतः ॥ पूर्व्वं, जलस्थलमायाकाशरूपगतामिमे पंचभेदाश्चूलिकायाः तेषु प्रमाणमिदं क्रमशः ॥

दृष्टिवाददोळधिकारंगळैदप्पुववावुवेंदोडे परिकर्म्म । सूत्रं । प्रथमानुयोगः । पूर्व्वगतं । चूलिकेयुमें दितिल्लि परितः सर्व्वतः कर्म्माणि गणितकरणसूत्राणि यस्मिन् तत्परिकर्म्मं । ई परि-

कौशिक-हरिश्मश्रु-मान्थपिक-रोमश-हारीत-मुण्ड-आश्वलायनादय क्रियावाददृष्टय अशीत्युत्तरशत १८० । मरीचि-कपिल-उलूक-गार्ग्य-व्याघ्रभूति-वाड्वलि-माठर-मौद्गलायनादय अक्रियावाददृष्टयश्चतुरशीति ८४ । शाकल्य[2]-वाल्कल-कुथुमि-सात्यमुग्रि-नारायण-कठ-माध्यन्दिन-मौद-पैप्पलाद-बादरायण-स्विष्टिक्य-दैतिकायन[3] वसु-जैमिन्यादयः अज्ञानकुदृष्टयः सप्तषष्टि ६७ । वशिष्ठ-पाराशर-जतुकर्ण-वाल्मिकि-रोमहर्षणि-सत्यदत्त-व्यास-एलापुत्र-औपमन्यव[4]-ऐन्द्रदत्त-अगस्त्यादयः वैनयिकदृष्टयो द्वात्रिंशत् ३२ । मिलित्वा मिथ्यावादाः त्रिषष्टयग्र-त्रिशती भवन्ति ॥३६०॥

दृष्टिवादाङ्गे अधिकाराः पञ्च । ते के ? परिकर्म सूत्र प्रथमानुयोग पूर्वगतं चूलिका चेति । तत्र

अर्थात् अनुवाद और उनका निराकरण जिसमें किया जाता है वह दृष्टिवाद नामक बारहवाँ अंग है। कौत्कल, कंठेविद्धि कौशिक, हरिश्मश्रु, मांधपिक, रोमश, हारीत, मुंड, आश्वलायन आदि क्रियावाद दृष्टियाँ एक सौ अस्सी हैं। मरीचि, कपिल, उलूक, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, वाड्वलि, माठर, मौद्गलायन आदि अक्रियावाददृष्टि चौरासी हैं। शाकल्य, वाल्कल, कुंथुमि, सात्यमुग्रि, नारायण, कठ, माध्यंदिन, मौद, पैप्पलाद, बादरायण, स्विष्टिक्य, ऐतिकायन, वसु, जैमिनि आदि अज्ञानकुदृष्टि सड़सठ हैं। वशिष्ठ, पाराशर, जतुकर्ण, वाल्मिकि, रोमहर्षणि, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यव, ऐन्द्रदत्त, अगस्त्य आदि वैनयिक दृष्टि बत्तीस हैं। ये सब मिथ्यावाद मिलकर तीन सौ तिरसठ होते हैं ॥३६०॥

दृष्टिवाद अंगमें पाँच अधिकार हैं—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत, चूलिका।

---

१. म मान्थयिक । २. ब काकल्य । ३. ब दतिकायन । दैत्यकायन मु । ४. अपमं ।

कर्म्ममेंबु प्रकारकक्कुमवें तें बोडे चंद्रप्रज्ञप्तियुं । सूर्य्यप्रज्ञप्तियुं । जंबूद्वीपप्रज्ञप्तियुं । द्वीपसागरप्रज्ञप्तियुं व्याख्याप्रज्ञप्तियुमें दितु चंद्रप्रज्ञप्तियें बुदु चंद्रविमानायुःपरिवारऋद्धिगमनहानिवृद्धिसकलार्द्ध-चतुर्त्थांशग्रहणादिगळं वर्णिसुगुं । सूर्य्यप्रज्ञप्तियें बुदु सूर्य्यनायुर्म्मंडलपरिवारऋद्धिगमनप्रमाणग्रहणा-दिगळं वर्णिसुगुं । जंबूद्वीपप्रज्ञप्तियें बुदु जंबूद्वीपगतमेरुकुलशैलह्रदवर्षकुंडवेदिकावनषंडव्यंतरावास महानदिगळमोदलादुवं वर्णिसुगुं । द्वीपसागरप्रज्ञप्तियें बुदु असंख्यातद्वीपसागरंगळ स्वरूपमं तत्र-स्थितज्योतिर्व्वानभावनावासंगळोळु विद्यमानंगळप्पऽकृत्रिमजिनभवनादिगळ वर्णनमं माळ्कुं । व्याख्याप्रज्ञप्तियें बुदु रूप्यरूपिजीवाजीवद्रव्यंगळ भव्याभव्यभेदप्रमाणलक्षणंगळ, अनंतरसिद्ध परंपरा-सिद्धरुगळ पेरवुं वस्तुगळ वर्णनमं माळ्कुं । सूत्रयति सूचयति कुदृष्टिदर्शनानिति सूत्रं । जीवोऽबंध-कोऽकर्त्ता निर्ग्गुणोऽभोक्ताऽस्वप्रकाशकः परप्रकाशकोस्त्येव जीवो नास्त्येव जीव इत्यादिक्रियाक्रिया-ज्ञानविनयकुदृष्टिनां त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतमिथ्यादर्शनंगळुं पूर्व्वपक्षतेयिंदं पेळ्गुं । प्रथमानुयोगमें बुदु प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकारः प्रथमानुयोगः ।

परित' सर्वत' कर्माणि गणितकरणसूत्राणि यस्मिन् तत्परिकर्म, तच्च पञ्चविध चन्द्रप्रज्ञप्तिः सूर्यप्रज्ञप्तिः जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति द्वीपसागरप्रज्ञप्ति' व्याख्याप्रज्ञप्तिश्चेति । तत्र चन्द्रप्रज्ञप्तिः चन्द्रस्य विमानायु'परिवारऋद्धि-गमनहानिवृद्धिसकलार्धचतुर्थांशग्रहणादीन् वर्णयति । सूर्यप्रज्ञप्तिः सूर्यस्यायुर्मण्डलपरिवारऋद्धिगमनप्रमाणग्रह-णादीन्वर्णयति । जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति. जम्बूद्वीपगतमेरुकुलशैलह्रदवर्षकुण्डवेदिकावनखण्डव्यन्तरावासमहानद्यादीन् वर्णयति । द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः असंख्यातद्वीपसागराणा स्वरूपं तत्रस्थितज्योतिर्वानभावनावासेषु विद्यमानाकृत्रिम-जिनभवनादीन् वर्णयति । व्याख्याप्रज्ञप्ति' रूप्यरूपिजीवाजीवद्रव्याणां भव्याभव्यभेदप्रमाणलक्षणानां अनन्तर-सिद्धपरम्परासिद्धाना अन्यवस्तूनां च वर्णनं करोति । सूत्रयति—सूचयति कुदृष्टिदर्शनानीति सूत्रम् । जीवः अबन्धक' अकर्ता निर्गुण अभोक्ता स्वप्रकाशकः परप्रकाशकः अस्त्येव जीवः नास्त्येव जीवः इत्यादि क्रिया-क्रियाज्ञानविनयकुदृष्टीना त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतमिथ्यादर्शनानि पूर्वपक्षतया कथयति । प्रथमानुयोगः प्रथमं मिथ्या-दृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकार. प्रथमानुयोग. । चतुर्विंशतितीर्थंकरद्वादश-

---

'परितः' अर्थात् पूरी तरहसे 'कर्माणि' अर्थात् गणितके करणसूत्र जिसमें हैं वह परिकर्म है। उसके भी पाँच भेद हैं—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, व्याख्या-प्रज्ञप्ति। उनमें-से चन्द्रप्रज्ञप्ति चन्द्रमाके विमान, आयु, परिवार, ऋद्धि, गमन, हानि, वृद्धि, पूर्णग्रहण, अर्धग्रहण, चतुर्थांशग्रहण आदिका वर्णन करती है। सूर्यप्रज्ञप्ति सूर्यकी आयु, मण्डल, परिवार, ऋद्धि, गमनका प्रमाण तथा ग्रहण आदिका वर्णन करती है। जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति जम्बूद्वीपगत मेरु, कुलाचल, तालाब, क्षेत्र, कुण्ड, वेदिका, वनखण्ड, व्यन्तरोंके आवास, महानदी आदिका वर्णन करती है। द्वीपसागरप्रज्ञप्ति असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके स्वरूप, उनमें स्थित ज्योतिषीदेवों, व्यन्तरों और भवनवासी देवोंके आवासोंमें वर्तमान अकृत्रिम जिनालयोंका वर्णन करती है। व्याख्याप्रज्ञप्ति रूपी-अरूपी, जीव-अजीव द्रव्योंका, भव्य और अभव्य भेदोंका, उनके प्रमाण और लक्षणोंका, अनन्तर सिद्ध और परम्परा सिद्धों-का तथा अन्य वस्तुओंका वर्णन करती है। 'सूत्रयति' अर्थात् जो मिथ्यादृष्टि दर्शनोंको सूचित करता है वह सूत्र है। जीव अबन्धक है, अकर्ता है, निर्गुण है, अभोक्ता है, स्वप्रकाशक नहीं है, परप्रकाशक है, जीव अस्ति ही है या नास्ति ही है इत्यादि क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानी और वैनयिक मिथ्यादृष्टियोंके तीन सौ तिरसठ मतोंको पूर्वपक्षके रूपमें कहता है।

१. म प्रकारमदेंतेने । २. क °तु,मल्लि च° ।

चतुर्व्विंशतितीर्त्थकरद्वादश चक्रवर्त्तिगळ नवबलदेव नववासुदेव नवप्रतिवासुदेवरुगळप्प त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराणंगळं वर्णिसुगुं । मुंदे पूर्व्वं चतुर्द्दशविधं विस्तरदिदं पेळल्पट्टपुदु ।

चूलिकेयुमय्दु प्रकारमक्कुमवें तें दोडे जलगता स्थलगता मायागता आकाशगता रूपगता एंदितिवरोळु जलगताचूलिके जलस्तंभन जलगमनाग्निस्तंभनाग्निभक्षणाग्न्यासनाग्निप्रवेशनादिकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादिगळं वर्णिसुगुं । स्थलगता चूलिकेयं बुदु मेरुकुलशैलभूम्यादिगळोळु प्रवेशन शीघ्रगमनादिकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादिगळं वर्णिसुगुं । मायागता चूलिकेयं बुदु मायारूपेंद्रजालविक्रियाकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादिगळं वर्णिसुगुं । रूपगताचूलिकेयं बुदु सिंहकरितुरगरुरुनर तरुहरिणशशवृषभव्याघ्रादिरूपपरावर्तनकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादिगळं चित्रकाष्ठलेप्योत्खननादिलक्षणधातुवादरसवादखन्यावादादिगळं वर्णिसुगुं ।

आकाशगताचूलिकेयं बुदु आकाशगमनकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादिगळं वर्णिसुगुं ।

पेरगे पेळ्द चंद्रप्रज्ञप्त्यादिगळोळु क्रमशः यथाक्रमदिदं पदप्रमाणमनंतरमे वक्ष्यमाणमनिदं जानीहि एंदितु संबोधनमध्याहार्य्यं ।

चक्रवर्तिनवबलदेवनववासुदेवनवप्रतिवासुदेवरूपत्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराणानि वर्णयति । पूर्वं चतुर्दशविधं विस्तरेण अग्रे वक्ष्यति । चूलिकापि पञ्चविधा जलगता स्थलगता मायागता आकाशगता रूपगता चेति । तत्र जलगता चूलिका जलस्तम्भनजलगमनाग्निस्तम्भाग्निभक्षणाग्न्यासनाग्निप्रवेशनादिकारणमन्त्रतन्त्रतपश्चरणादीन् वर्णयति । स्थलगता चूलिका मेरुकुलशैलभूम्यादिषु प्रवेशनशीघ्रगमनादिकारणमन्त्रतन्त्रतपश्चरणादीन् वर्णयति । मायागता चूलिका मायारूपेन्द्रजालविक्रियाकारणमन्त्रतन्त्रतपश्चरणादीन् वर्णयति । रूपगता चूलिका सिंहकरितुरगरुरुनरतरुहरिणशशकवृषभव्याघ्रादिरूपपरावर्तनकारणमन्त्रतन्त्रतपश्चरणादीन् चित्रकाष्ठलेप्योत्खननादिलक्षणधातुवादरसवादखन्यावादादींश्च वर्णयति । आकाशगता चूलिका आकाशगमनकारणमन्त्रतन्त्रतपश्चरणादीन् वर्णयति । प्रागुक्तचन्द्रप्रज्ञप्त्यादिषु क्रमशो यथाक्रमं पदप्रमाणं अनन्तरमेव वक्ष्यमाणं जानीहि इति संबोधनमध्याहार्यम् ॥३६१–३६२॥

प्रथम अर्थात् मिथ्यादृष्टि, अव्रती या अव्युत्पन्न व्यक्तिके लिए जो अनुयोग रचा गया वह प्रथमानुयोग है। यह चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव, नौ प्रतिवासुदेव, इन तिरसठ शलाका प्राचीन पुरुषोंका वर्णन करता है। चौदह प्रकारके पूर्वोंके सम्बन्धमें आगे विस्तारसे कहेंगे। चूलिका भी पाँच प्रकार की है—जलगता, स्थलगता, मायागता, आकाशगता और रूपगता। जलगता चूलिका जलका स्तम्भन, जलमें गमन, अग्निका स्तम्भन, अग्निका भक्षण, अग्निपर बैठना, अग्निमें प्रवेश आदिके कारण मन्त्र, तन्त्र, तपश्चरण आदिका वर्णन करती है। स्थलगता चूलिका मेरु, कुलाचल, भूमि आदिमें प्रवेश करने तथा शीघ्र गमन आदिके कारण मन्त्र, तन्त्र, तपश्चरण आदिका वर्णन करती है। मायागता चूलिका मायावी रूप, इन्द्रजाल (जादूगरी) विक्रियाके कारण मन्त्र, तन्त्र, तपश्चरण आदिका वर्णन करती है। रूपगता चूलिका सिंह, हाथी, घोड़ा, मृग, खरगोश, बैल, व्याघ्र आदिके रूप बदलनेमें कारण मन्त्र, तन्त्र, तपश्चरण आदिका तथा चित्र, काष्ठ, लेप्य, उत्खनन आदिका लक्षण व धातुवाद, रसवाद, खदान आदि वादोंका कथन करती है। आकाशगता चूलिका आकाशमें गमन करनेमें कारण मन्त्र, तन्त्र, तपश्चरण आदिका कथन करती है। इन चन्द्रप्रज्ञप्ति आदिमें क्रमसे पदोंका प्रमाण आगे कहते हैं ॥३६१-३६२॥

१. ब °खन्या° ।

गतनम मनगं गोरम मरगत जवगातनोननं जजलक्खा ।
मननन धममननोनननामं रनधजधरानन जलादी ॥३६३॥
याजकनामेनाननमेदाणि पदाणि होंति परियम्मे ।
कानवधिवाचनाननमेसो पुण चूलियाजोगो ॥३६४॥

ग । त्रि । त । षट् । न । शून्य । म । पंच । म । पंच । न । शून्य । गं । त्रि । गो । त्रि । र । द्वि । म । पंच । म । पंच । र । द्वि । ग । त्रि । त । षट् । ज । अष्ट । व । चतुः । गा । त्रि । त । षट् । नोननं । शून्य । शून्य । शून्य । ज । अष्ट । ज । अष्ट । लक्षाणि । म । पंच । न । नन । शून्य । शून्य । शून्य । ध । नव । म । पंच । म । पंच । न । शून्य । नो । शून्य । न । शून्य । ना । शून्य । म । पंच । रा । द्वि । न । शून्य । ध ।नव । ज । अष्ट । ध । नव । रा । द्वि । न । शून्य । न । शून्य । जलादयः ॥

या । एक । ज । अष्ट । क एक । ना शून्य । मे । पंच । ना शून्य । न शून्य । न शून्य । मेतानि पदानि भवंति । परिकर्म्मणि । का । एक । न शून्य । व । चतुः । धि । नव । वा चतुः । च षट् । ना शून्य । न शून्य । न शून्य । मेषः पुनश्चूलिकायोगः । अक्षरसंज्ञेयिवं गतनमनोननं षट्त्रिंशल्लक्षपंचसहस्रपदंगळु चंद्रप्रज्ञप्तियोळप्पुवु ३६०५००० । मनगं नोननं पंचलक्षत्रिसहस्रपदंगळु सूर्य्यप्रज्ञप्तियोळप्पुवु ५०३००० । गोरमनोननं त्रिलक्षपंचविंशतिसहस्रपदंगळु जंबूद्वीपप्रज्ञप्तियोळप्पुवु ३२५००० । मरगतनोननं द्विपंचाशल्लक्षषट्त्रिंशत्सहस्रपदंगळु द्वीपसागरप्रज्ञप्तियोळप्पुवु ५२३६००० । जवगातनोननं चतुरशीतिलक्षषट्त्रिंशत्सहस्रपदंगळु व्याख्याप्रज्ञप्तियोळप्पुवु । ८४३६००० । जजलक्खा अष्टाशीतिलक्षपदंगळु सूत्रदोळप्पुवु ८८००००० । मननन पंचसहस्रपदंगळु प्रथमानुयोगदोळप्पुवु ५००० । धममननोनननामं पंचनवतिकोटियुं पंचाशल्लक्षमुमय्दु पदंगळु चतुर्द्दशपूर्व्वसमुच्चयदोळप्पुवु ९५५००००००५ । रनधजधराननजलावि द्विकोटिनवलक्षनवाशीतिसहस्रद्विशतोत्तरपदंगळु प्रत्येकं जलगतादि पंचचूलिकास्थानंगळोळु समानंगळेयप्पुवु । जलगतंगळु २०९८९२०० स्थलगतंगळु २०९८९२०० मायागतंगळु २०९८९२०० आकाशगतंगळु

अक्षरसंज्ञया चन्द्रप्रज्ञप्तौ गतनमनोननं-षट्त्रिंशल्लक्षपञ्चसहस्राणि पदानि ३६०५००० । सूर्यप्रज्ञप्तौ मनगंनोनन-पञ्चलक्षत्रिसहस्राणि पदानि ५०३००० । जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ गोरमनोननं त्रिलक्षपञ्चविंशतिसहस्राणि पदानि ३२५००० । द्वीपसागरप्रज्ञप्तौ मरगतनोननं द्विपञ्चाशल्लक्षषट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ५२३६००० । व्याख्याप्रज्ञप्तौ जवगातनोननं—चतुरशीतिलक्षषट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ८४३६००० । सूत्रे जजलक्खा—अष्टाशीतिलक्षाणि पदानि ८८००००० । प्रथमानुयोगे मननन—पञ्चसहस्राणि पदानि ५००० । चतुर्दशपूर्वसमुच्चये धमननोनननाम—पञ्चनवतिकोटिपञ्चाशल्लक्षपञ्चपदानि ९५५००००००५ । जलादौ जलगतादिपञ्चचूलिकास्थानेषु प्रत्येके रनधजधराननं-द्विकोटिनवलक्षनवाशीतिसहस्रद्विशतानि पदानि । २०९८९२०० ।

अक्षरोंकी संज्ञासे चन्द्रप्रज्ञप्तिमें 'गतनमनोननं' अर्थात् छत्तीस लाख पाँच हजार ३६०५००० पद हैं। सूर्यप्रज्ञप्तिमें 'मनगंनोननं' पाँच लाख तीन हजार ५०३००० पद हैं। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमें 'गोरमनोननं' तीन लाख पच्चीस हजार ३२५००० पद हैं। द्वीपसागर प्रज्ञप्तिमें 'मरगतनोननं' बावन लाख छत्तीस हजार ५२३६००० पद हैं। व्याख्याप्रज्ञप्तिमें 'जवगातनोनं' चौरासी लाख छत्तीस हजार ८४३६००० पद हैं। सूत्रमें 'जजलक्खा' अठासी लाख ८८००००० पद हैं। प्रथमानुयोगमें 'मननन' पाँच हजार ५००० पद हैं। चौदह पूर्वोमें 'धममननोनननामं' पंचानबे कोटि पचास लाख पाँच ९५५००००००५ पद हैं। जलगता आदि

२०९८९२०० रूपगतंगळु २०९८९२००। याजकनामेनाननं एककोटयेकाशीतिलक्षंगळुमय्दुसहस्र-पदंगळु चंद्रप्रज्ञप्त्यादि पंचप्रकारमनुळ्ळ परिकर्म्मंपुतियोळप्पुवु १८१०५००० कानवधिवाचनाननं दशकोटयेकोनपंचाशल्लक्षषट्चत्वारिंशत्सहस्रपदंगळु पुनः मत्ते जलगतादि पंचप्रकारभूतचूलिका-योगमिदु १०४९४६०००।

पण्णट्ठदाल पणतीस तीस पण्णास पण्ण तेरसदं।
णउदी दुदाल पुव्वे पणवण्णा तेरससयाइं ॥३६५॥
छस्सयपण्णासाइं चउसयपण्णास छसयपणुवीसा।
बिहि लक्खेहि दु गुणिया पंचम रूऊण छज्जुदा छट्ठे ॥३६६॥

पंचाशदष्टचत्वारिंशत्पंचत्रिंशत् त्रिंशत् पंचाशत् पंचाशत् त्रयोदशशतं नवतिर्द्वाचत्वारिंशत् पूर्व्वे पंच पंचाशत् त्रयोदशशतानि। षट्छतपंचाशच्चतुःशतपंचाशत् षट्शतपंचविंशतिर्द्वाभ्यां लक्षाभ्यां गुणितास्तु पंचमरूपोन षड्युताः षष्टि।

५०। ४८। ३५। ३०। ५०। ५०। १३००। ९०। ४२। ५५। १३००।—६५०। ४५०। ६२५।

पूर्व्वे उत्पादादि पूर्व्वदोळु चतुर्द्दशविधदोळं यथाक्रमदिदमी संख्ये पेळल्पट्टुदु। वस्तुविन द्रव्यद उत्पादव्ययध्रौव्यादि अनेकधर्म्मपूरकमुत्पादपूर्व्वमक्कु—मदु जीवादिद्रव्यंगळ नानानय-विषयक्रम यौगपद्यसंभावितोत्पादव्ययध्रौव्यंगळु त्रिकालगोचरंगळु। नवधर्म्मंगळप्पुवु। तत्परिणत द्रव्यमुं नवविधमक्कुं। उत्पन्नमुत्पद्यमानमुत्पत्स्यमानं नष्टं नश्यत् नंक्ष्यत् स्थितं तिष्ठत् स्थास्यदिति इंतु नवप्रकारंगळप्पुवुत्पन्नत्वादिगळगे प्रत्येकं नवविधत्वसंभवदत्तणदमेकाशीतिविकल्पधर्म्म-

चन्द्रप्रज्ञप्त्यादिपञ्चविधपरिकर्मयुतौ याजकनामेनाननं—एककोट्येकाशीतिलक्षपञ्चसहस्राणि पदानि १८१०५०००। जलगतादिपञ्चविधचूलिकायोग पुन कानवधिवाचनानन—दशकोट्येकोनपञ्चाशल्लक्षषट्चत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि १०४९४६००० ॥३६३-३६४॥

उत्पादादिचतुर्दशपूर्वेषु यथाक्रम पदसंख्योच्यते—वस्तुनो—द्रव्यस्य उत्पादव्ययध्रौव्याद्यनेकधर्मपूरक-मुत्पादपूर्वं तच्च जीवादिद्रव्याणा नानानयविषयक्रमयौगपद्यसंभावितोत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिकालगोचराणि नवधर्मा भवन्ति। तत्परिणत द्रव्यमपि नवविधं। उत्पन्न उत्पद्यमानं उत्पत्स्यमान। नष्ट नश्यन् नंक्ष्यत्। स्थितं तिष्ठत् स्थास्यदिति नवप्रकारा भवन्ति। उत्पन्नादीना प्रत्येकं नवविधत्वसंभवादेकाशीतिविकल्पधर्मपरि-

प्रत्येक चूलिकामें 'रनधजधरानन' दो कोटि नौ लाख नवासी हजार दो सौ पद हैं २०९८९-२००। चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि पाँच परिकर्मोंमें मिलाकर 'याजकनामेनानन' एक कोटि इक्यासी लाख पाँच हजार पद हैं १८१०५०००। जलगता आदि पाँचों चूलिकाओंके पदोंका जोड़ 'कानवधिवाचनान' दस कोटि उनचास लाख छियालीस हजार १०४९४६००० है ॥३६३-३६४॥

उत्पाद आदि चौदह पूर्वोंमें क्रमसे पद संख्या कहते हैं—द्रव्यके उत्पाद-व्यय आदि अनेक धर्मोंका पूरक उत्पादपूर्व है। जीवादि द्रव्योंके नाना नय विषयक क्रम और युगपत् होनेवाले तीन कालके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप नौ धर्म होते हैं अतः उन धर्मरूप परिणत द्रव्य भी नौ प्रकारका है—उत्पन्न, उत्पद्यमान, उत्पत्स्यमान, जो नष्ट हो चुका, हो रहा है, होगा, स्थिर हुआ, हो रहा है, होगा ये नौ प्रकार हैं। उत्पाद आदि प्रत्येकके नौ

परिणतद्रव्यवर्णनमं माळ्कु–। मल्लि द्विलक्षंगळिदं गुणितपंचाशत्तुगळगेककोटिपदंगळप्पुवु १००००००० । अग्रस्य द्वादशांगेषु प्रधानभूतस्य वस्तुनः अयनं ज्ञानमग्रायणं तत्प्रयोजनमग्रायणीयं द्वितीयं पूर्वमीयग्रायणी पूर्व्वं सप्तशत सुनय दुर्णय पंचास्तिकाय षड्द्रव्य सप्ततत्व नवपदार्त्थंगळु मोदलादवनु वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणिताष्टचत्वारिंशत्पदंगळु षण्णवतिलक्षंगळप्पुवें बुदर्त्थं ।— ९६००००० । वीर्य्यस्य जीवादिवस्तुसामर्त्थ्यस्य अनुप्रवादोनुवर्णनमस्मिन्निति वीर्य्यानुप्रवादमंगं तृतीयपूर्व्वमदु आत्मवीर्य्यं परवीर्य्यं उभयवीर्य्यं क्षेत्रवीर्य्यं कालवीर्य्यं भाववीर्य्यं तपोवीर्य्यं मेंदित्यादिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायवीर्य्यंगळं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितपंचत्रिंशत्पदंगळु सप्ततिलक्षपदंगळप्पुवें बुदर्त्थं—७०००००० । अस्तिनास्तीत्यादि धर्म्माणां प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति अस्तिनास्तिप्रवादं चतुर्त्थं पूर्व्वमिदु ।

जीवादिवस्तु स्यादस्ति स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य । स्यान्नास्ति परद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य । स्यादस्ति च नास्ति च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं संयुक्तमाश्रित्य । स्यादवक्तव्यं युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयमाश्रित्य तथा वक्तुमशक्यत्वात् । स्यादस्ति चावक्तव्यं च स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य । स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च परद्रव्यक्षेत्रकालभावान्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य । स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य एंदितेकानेकनित्यानित्याद्यनंतधर्म्मंगळ विधिनिषेधावक्तव्यभंगंगळ प्रत्येक-

णतद्रव्यवर्णनं करोति । तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चाशत्पदानि एका कोटिरित्यर्थः १००००००० । अग्रस्य द्वादशाङ्गेषु प्रधानभूतस्य वस्तुनः अयनं ज्ञानं अग्रायणं । तत्प्रयोजनम् अग्रायणीयं, द्वितीयं पूर्वं । तच्च सप्तशतसुनयदुर्णयपञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थादीन् वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणिताष्टचत्वारिंशत्पदानि षण्णवतिलक्षाणि इत्यर्थः । ९६००००० । वीर्यस्य—जीवादिवस्तुसामर्थ्यस्य अनुप्रवादः—अनुवर्णनं अस्मिन्निति वीर्यानुप्रवादं नाम तृतीयं पूर्वं । तच्च आत्मवीर्यपरवीर्योभयवीर्यक्षेत्रवीर्यकालवीर्यभाववीर्यतपोवीर्यादिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायवीर्याणि वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चत्रिंशत्पदानि सप्ततिलक्षाणीत्यर्थः ७०००००० । अस्तिनास्तीत्यादिधर्माणां प्रवादः-प्ररूपणमस्मिन्निति अस्तिनास्तिप्रवादं चतुर्थं पूर्वं । तच्च जीवादिवस्तु स्यादस्ति स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य, स्यान्नास्ति परद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य । स्यादस्ति नास्ति च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं संयुक्तमाश्रित्य । स्यादवक्तव्यं युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयमाश्रित्य तथा वक्तुमशक्यत्वात् । स्यादस्ति

प्रकार हो सकते हैं अतः इक्यासी धर्म परिणत द्रव्यका वर्णन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित पचास अर्थात् एक कोटि पद होते हैं। अग्र अर्थात् द्वादशांगमें प्रधान भूत वस्तुका 'अयन' अर्थात् ज्ञान अग्रायण है। वह जिसका प्रयोजन है वह दूसरा पूर्व अग्रायण है। वह सात सौ सुनयों, दुर्नयों, पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ आदिका वर्णन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित अड़तालीस अर्थात् छानबे लाख पद हैं। वीर्य अर्थात् जीवादि वस्तुकी सामर्थ्यका 'अनुप्रवाद' अर्थात् वर्णन जिसमें होता है वह वीर्यानुप्रवाद नामक तीसरा पूर्व है। वह अपने वीर्य, पराये वीर्य, उभयवीर्य, क्षेत्रवीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य, तपवीर्य आदि समस्त द्रव्य गुण पर्यायोंके वीर्यका कथन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित पैंतीस अर्थात् सत्तर लाख पद हैं। अस्ति-नास्ति आदि धर्मोंका 'प्रवाद' अर्थात् प्ररूपण जिसमें है वह अस्ति-नास्ति प्रवाद नामक चतुर्थ पूर्व है। जीवादि वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावकी अपेक्षा स्यादस्ति है। परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभावकी अपेक्षा स्यात्नास्ति है। क्रमसे स्वद्रव्यक्षेत्रकालभाव और परद्रव्यक्षेत्रकाल

द्विसंयोगत्रिसंयोगजंगळ त्रिभ्येकसंख्यंगळ ७ मेलॆ[1]नंत सप्तभंगियं प्रश्नवशदिदमों दे वस्तुविनोळविरोधदिद संभविपुवं नानानयमुख्यगौणभावदिदं प्ररूपिसुगुमिल्लि। द्विलक्षगुणितत्रिंशत्पदंगळु षष्ठिलक्षपदंगळप्पुवॆंबुदत्थं ६००००००ल।

ज्ञानानां प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति ज्ञानप्रवादं। पंचमं पूर्व्वमिदु। मतिश्रुतावधिमनःपर्य्यय केवलमॆंबु पंच सम्यग्ज्ञानंगळु। कुमतिकुश्रुतविभंगमॆंब त्र्यज्ञानंगळि[2]वररर स्वरूपसंख्याविषयफळंगळनाश्रयिसियवक्के प्रामाण्याप्रामाण्यविभागमुमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितपंचाशत्पदंगळु रूपोनकोटिगळप्पुवेकॆंदोडे पंचमरूऊणमॆंबुदरिंदं पंचमप्पूर्व्वदोळु द्विलक्षगुणितपंचाशत्पवलक्षदोळॊंदु कोटियोळॊंदु गुंदुगुमॆंदु पेळ्दुदरिंदं ५ = अ = ९९९९९९९। सत्यस्य प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति सत्यप्रवादं षष्ठपूर्व्वमिदु वाग्गुप्तियुमं वाक्संस्कारकारणंगळुमं वाक्प्रयोगमुमं द्वादशभाषेगळुमं वक्तृभेदगळुमं बहुविधमृषाभिधानमुमं दशविधसत्यमुमं प्ररूपिसुगु-

चावक्तव्य च स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य। स्यान्नास्ति चावक्तव्य च परद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य। स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्य च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वय युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वय च सयुक्तमाश्रित्य। इत्येकानेकनित्यानित्याद्यनन्तधर्माणा विधिनिषेधावक्तव्यभङ्गाना प्रत्येकद्विसयोगत्रिसयोगजाना त्रिद्व्येकसख्याना मेलन सप्तभङ्गी प्रश्नवशादेकस्मिन्नेव वस्तुनि अविरोधेन सभवन्ती नानानयमुख्यगौणभावेन प्ररूपयति। तत्र द्विलक्षगुणितत्रिंशत्पदानि षष्टिर्लक्षाणि इत्यर्थ। ६००००००। ज्ञानाना प्रवाद प्ररूपणमस्मिन्निति ज्ञानप्रवाद पञ्चम पूर्वं, तच्च मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि पञ्च सम्यग्ज्ञानानि, कुमतिकुश्रुतविभङ्गाज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि स्वरूपसख्याविषयफलानि आश्रित्य तेपा प्रामाण्याप्रामाण्यविभाग च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चाशत्पदानि किन्तु पञ्चमरूऊणमिति कथनादेकरूपोना कोटिरित्यर्थ ९९९९९९९। सत्यस्य प्रवाद प्ररूपणमस्मिन्निति सत्यप्रवाद षष्ठं पूर्वं, तच्च वाग्गुप्तिः वाक्सस्कारकारणानि वाक्प्रयोग द्वादश भाषा-

भावकी अपेक्षा स्यात् अस्ति नास्ति है। एक साथ स्वपर द्रव्यक्षेत्रकाल भावकी अपेक्षा अवक्तव्य है क्योंकि एक साथ दोनों धर्मोंका कहना शक्य नहीं है। स्वद्रव्यक्षेत्रकाल भाव तथा युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकाल भावकी अपेक्षा स्यादस्ति अवक्तव्य है। परद्रव्यक्षेत्रकालभाव और युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा स्यात् नास्ति अवक्तव्य है। तथा क्रमसे स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभाव और युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य है। इस प्रकार एक अनेक, नित्य अनित्य आदि अनन्त धर्मोंके विधि निषेध और अवक्तव्य भंगोंके प्रत्येक, दो संयोगी, तीन संयोगी तीन, तीन और एक भंगोंकी संख्याको मिलानेसे सप्तभंगी होती है। वह प्रश्नके अनुसार एक वस्तुमें किसी विरोधके बिना नाना नयोंकी मुख्यता और गौणतासे कथन करती है। उसमें दो लाखसे गुणित तीस अर्थात् साठ लाख पद हैं। ज्ञानका जिसमें प्रवाद अर्थात् प्ररूपण हो वह ज्ञानप्रवाद नामक पंचम पूर्व है। वह मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल इन पाँच सम्यग्ज्ञानोंका तथा कुमति, कुश्रुत, कुअवधि इन तीन अज्ञानोंका स्वरूप, संख्या, विषय और फलको लेकर कथन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित पचास किन्तु 'पंचमरूवूण' कहनेसे एक कम एक करोड़ पद होते हैं। सत्यका प्रवाद अर्थात् कथन जिसमें हो वह सत्यप्रवाद पूर्व है। वह वचन गुप्ति, वचनके संस्कारके कारण, वचन प्रयोग, बारह भाषा, वक्ताके भेद, अनेक प्रकारका असत्य और

१. म मेलण स। २. म °लिंदिवर।

मवें तें वोडे असत्यनिवृत्तियुं मेणु मौनमुं वाग्गुप्तियुमें बुदक्कुं। उरःकंठ शिरोजिह्वामूलदंतनासिकाताल्वोष्ठाख्यंगळष्टस्थानंगळुं स्पृष्टतेषत्पृष्टता विवृततेषद्विवृतता संवृतता रूपंगळप्प पंचप्रयत्नंगळुं वाक्संस्कार कारणंगळें बुदक्कुं। शिष्टदुष्टरूपमप्प वाक्प्रयोगमुं तल्लक्षणशास्त्र संस्कृतादि व्याकरणंगळुं वाक्प्रयोगमें बुदक्कुं। इदिवनिदं माडल्पट्टुदें बनिष्टकथनरूपमभ्याख्यानमुं। परस्परविरोधकारणकलहवचनमुं पेरगे दोषसूचनपैशुन्यवचनमुं। धर्म्मार्त्थकाममोक्षाऽसंबधवचनरूपमबद्धप्रलापमुं इंद्रियविषयंगळोळु रत्युत्पादिकेयप्प वाग्रूपरीतिवचनमुं। अवरोळऽरत्युत्पादिका वाग्रूपारतिवचनमुं परिग्रहार्ज्जनसंरक्षणाद्यासक्तिहेतु वाक्कुपधिवचनमें बुदक्कुं। व्यवहारदोळु वंचनाहेतुवाक् निकृतिवाक्कें बुदक्कुं। तपोज्ञानाधिकरोळमविनयहेतुवाक्कप्रणतिवागें बुदु अक्कुं। स्तेयहेतुवचनं मोषवागें बुदक्कुं। सन्मार्गोपदेशवाक् सम्यग्दर्शनवागें बुदक्कुं। मिथ्यामार्गोपदेशवाक् मिथ्यादर्शनवागें बुदक्कुमितु द्वादशभाषेगळें बुदक्कुं।

द्वींद्रियादिपंचेंद्रियपर्य्यंतमाद जीवंगळु व्यक्तवक्तृत्वपर्य्यायमनुळ्ळ वक्तृगळप्पुवु। द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रितमप्प बहुविधमसत्यवचनं मृषाभिधानमक्कुं। जनपदसत्यादिदशप्रकारमप्प सत्यं मुंपेळल्पट्ट ळक्षणमुळ्ळुदक्कुमी सत्यप्रवाददोळु द्विलक्षगुणितपंचाशत्पदंगळु षडुत्तरकोटियक्कु-

वक्तृभेदान् बहुविध मृपाभिधान दशविध सत्य च प्ररूपयति। तद्यथा-असत्यनिवृत्तिर्मौन वा वाग्गुप्तिः। उर कण्ठशिरोजिह्वामूलदन्तनासिकाताल्वोष्ठाख्यानि अष्टौ स्थानानि। स्पृष्टतेषत्स्पृष्टताविवृततेषद्विवृततासवृततारूपा पञ्च प्रयत्नाश्च वाक्संस्कारकारणानि। शिष्टदुष्टरूप. प्रयोगः वाक्प्रयोगः तल्लक्षणशास्त्रं सम्कृतादिव्याकरण वा। इदमनेन कृतमित्यनिष्टकथनरूपमभ्याख्यान। परस्परविरोधकारणं कलहवचन। परदोषमूचन पैशुन्यवचन। धर्मार्थकाममोक्षासबद्धवचनरूप अवद्धप्रलाप.। इन्द्रियविषयेषु रत्युत्पादिका वाक् रतिवाक्। तेषु अरत्युत्पादिका वाक् अरतिवाक्। परिग्रहार्जनसंरक्षणाद्यासक्तिहेतुर्वाक् उपधिवाक्। व्यवहारवञ्चनाहेतुर्वाक् निकृतिवाक्। तपोज्ञानादिषु अविनयहेतुर्वाक् अप्रणतिवाक्। स्तेयहेतुर्वाग् मोषवाक्। सन्मार्गोपदेशवाक् सम्यग्दर्शनवाक्। मिथ्यामार्गोपदेशवाक् मिथ्यादर्शनवाक्। एवं द्वादशभाषा.। द्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्ता जीवा व्यक्ताव्यक्तवक्तृत्वपर्यायाः वक्तारः। द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रित बहुविधमसत्यवचनं मृषावाक्। जनपदसत्यादि-

---

दस प्रकारके सत्यका कथन करता है। इन सबका स्वरूप इस प्रकार है—असत्यसे निवृत्ति या मौनको वचन गुप्ति कहते हैं। उर, कण्ठ, शिर, जिह्वा मूल, दाँत, नाक, तालु, ओठ ये आठ स्थान हैं। स्पृष्टता, किंचित् स्पृष्टता, विवृतता, किंचित् विवृतता, संवृतता ये पाँच प्रयत्न हैं। ये सब स्थान और प्रयत्न वचन संस्कारके कारण हैं। शिष्टरूप और दुष्टरूप वचनप्रयोग होता है। 'यह इसने किया है' ऐसा अनिष्ट वचन अभ्याख्यान है। परस्परमें विरोधका कारण वचन कलह वचन है। दूसरेके दोषको सूचन करना पैशून्य वचन है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसे असम्बद्ध वचन असम्बद्ध प्रलाप है। जो वचन इन्द्रियोंके विषयोंमें रति उत्पन्न करे वह रतिवाक् है। जो उनमें अरति उत्पन्न करे वह अरतिवाक् है। परिग्रहके अर्जन और संरक्षणमें आसक्ति उत्पन्न करनेवाले वचन उपधिवाक् है। व्यवहारमें छल-कपट करनेमें हेतु वचन निकृतिवाक् है। तपस्वी और ज्ञानी जनोंके प्रति अविनयमें हेतु वचन अप्रणतिवाक् है। चोरी करनेमें हेतु वचन मोषवाक् है। सन्मार्गका उपदेश करनेवाले वचन सम्यक्दर्शनवाक् है। मिथ्या मार्गका उपदेश करनेवाले वचन मिथ्यादर्शनवाक् है। इस प्रकार बारह प्रकारकी भाषा है। दोइन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीव, जिनमें वक्तृत्व पर्याय व्यक्त और अव्यक्त हैं वे वक्ता हैं। द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावकी अपेक्षा अनेक प्रकारका असत्य वचन

मेकेंदोडे छज्जुदा छट्टे एंदिवरिदं षष्ठपूर्व्वदोळु द्विलक्षगुणितपंचाशल्लब्धमोंदु कोटिप्रमितसंख्येयोळु षडधुतत्वकथनविदं १०:००००६ ।

आत्मनः प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति आत्मप्रवादं सप्तमं पूर्व्वमदु । आत्मन "जीवो कत्ताय वत्ताय पाणि भोत्ताय पोग्गळो। वेदो विह्णू सयंभू य सरीरी तह माण ओ। सत्ता जंतू य माणी य मायी जोगी य सक्कुडो। असक्कुडो य खेत्तण्हू अंतरप्पा तहेव य ॥" इत्यादि स्वरूपमं वर्णिसुगुमदें तेंदोडे :—जीवति व्यवहारनयेन दशप्राणान् निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसम्यक्त्वरूपचित्प्राणान् धारयति जीविष्यति जीवितपूर्व्वश्चेति जीवः। व्यवहारनयेन शुभाशुभकर्म्मं निश्चयनयेन चित्पर्य्यायान् करोतीति कर्त्ता। व्यवहारेण सत्यमसत्यं वक्तीति वक्ता निश्चयेनावक्ता। नयद्वयोक्तप्राणाः संत्यस्येति प्राणी। व्यवहारेण शुभाशुभकर्म्मफलं निश्चयेन स्वस्वरूपं भुंक्ते अनुभवतीति भोक्ता। व्यवहारेण कर्म्मनोकर्म्मपुद्गलान् पूरयति गालयति चेति पुद्गलो। निश्चयेनापुद्गलः। नयद्वयेन लोकालोकगतं त्रिकालगोचरं सर्व्वं वेत्ति जानातीति वेद.। व्यवहारेण स्वोपात्तदेहं समुद्घाते सर्व्वलोकं निश्चयेन ज्ञानेन सर्व्वं वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः। यद्यपि व्यवहारेण कर्म्मवशाद्भवे भवे भवति परिणमति तथापि निश्चयेन स्वयं स्वस्मिन्नेव ज्ञानदर्शनस्वरूपेणैव भवति परिणमतीति

दशप्रकारसत्य तत्प्रागुक्तलक्षणमिति। तत्र सत्यप्रवादे द्विलक्षगुणितपञ्चाशत्पदानि षड्भिरधिकानि। छज्जुदा छट्टे इति वचनात् षडुत्तरकोटिरित्यर्थ.। १००००००६। आत्मन' प्रवाद. प्ररूपणमस्मिन्निति आत्मप्रवादं सप्तमं पूर्वं। तच्च आत्मन 'जीवो कत्ता य वत्ता य पाणी भोत्ता य पुग्गलो। वेदो विण्हू सयम्भू य सरीरी तह माणवो॥ सत्ता जन्तू य माणी य मायी जोगी य सकुडो। असकुडो य खेत्तण्हू अन्तरप्पा तहेव य।' इत्यादिस्वरूप वर्णयति। तद्यथा—जीवति व्यवहारनयेन दशप्राणान् निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसम्यक्त्वरूपचित्प्राणाश्च धारयति। जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीव'। व्यवहारनयेन शुभाशुभ कर्म निश्चयनयेन चित्पर्यायाश्च करोतीति कर्ता। व्यवहारनयेन सत्यमसत्य च वक्तीति वक्ता निश्चयेनावक्ता। नयद्वयोक्तप्राणा. सन्ति अस्येति प्राणी। व्यवहारेण शुभाशुभकर्मफलं निश्चयेन स्वस्वरूप च भुङ्क्ते अनुभवतीति भोक्ता। व्यवहारेण कर्मनोकर्मपुद्गलान् पूरयति गालयति चेति पुद्गल'। निश्चयेनापुद्गलः। नयद्वयेन लोकालोकगतं त्रिकालगोचरं सर्व वेत्ति जानातीति वेद'। व्यवहारेण स्वोपात्तदेह समुद्घाते सर्वलोकं निश्चयेन ज्ञानेन सर्वं वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णु। यद्यपि व्यवहारेण कर्मवशाद्भवे भवे भवति परिणमति तथापि निश्चयेन स्वयं स्वस्मिन्नेव

मृषावाक् है। जनपदसत्य आदि दस प्रकारके सत्यके लक्षण योगमार्गणामें कह आये हैं। सत्य प्रवादमें दो लाख गुणित पचास तथा छह अधिक अर्थात् एक कोटि छह पद हैं। आत्माका जिसमें प्रवाद अर्थात् कथन है वह आत्मप्रवाद नामक सातवाँ पूर्व है। वह आत्माके स्वरूपका वर्णन करता है कि जीव कर्ता, वक्ता, प्राणी, भोक्ता, पुद्गल, वेदी, विष्णु, स्वयम्भू, शरीरी, मानव, सक्ता, जन्तु, मानी, मायी योगी, संकुट-असंकुट, क्षेत्रज्ञ तथा अन्तरात्मा है। इनका स्वरूप कहते हैं—जीव अर्थात् जीता है जो व्यवहारनयसे दस प्राणोंको और निश्चयनयसे केवलज्ञान, केवलदर्शन सम्यक्त्वरूप चेतन प्राणोंका धारण करता है। तथा जो आगे जियेगा, पूर्वमें जिया है वह जीव है। व्यवहारनयसे शुभ-अशुभ कर्मको और निश्चयनयसे चित्पर्यायोंको करता है अतः कर्ता है। व्यवहार नयसे सत्य और असत्य बोलता है अतः वक्ता है। निश्चयनयसे अवक्ता है। दोनों नयोंसे कहे गये प्राणवाला होनेसे प्राणी है। व्यवहारनयसे शुभ अशुभ कर्मोंके फलको भोक्ता है और निश्चयसे अपने स्वरूपका अनुभव करता है अतः भोक्ता है। व्यवहारनयसे कर्म और नोकर्म पुद्गलोंको पूरता और गलाता है अतः पुद्गल है। निश्चयसे अपुद्गल है। दोनों नयोंसे लोक और अलोकमें रहने-

स्वयंभूः । व्यवहारेणौदारिकादिशरीरमस्यास्तीति शरीरो निश्चयेनाशरीरः । व्यवहारेण मानवादिपर्य्यायपरिणतो मानवः । उपलक्षणात् । नारकस्तिर्य्यङ्देवश्च निश्चयेन मनौ ज्ञाने भवो मानवः । व्यवहारेण स्वजनमित्रादिपरिग्रहेषु सजतीति सक्ता । निश्चयेनासक्ता । व्यवहारेण चतुर्गतिसंसारी नानायोनिषु जायत इति जंतुः । संसारीत्यर्थः । निश्चयेनाजंतुः । व्यवहारेण मानोऽहंकारोस्यास्तीति मानी निश्चयेनामानी । व्यवहारेण माया वंचनास्यास्तीति मायी निश्चयेनामायी । व्यवहारेण योगः कायवाग्मनस्कर्म्मास्यास्तीति योगी । निश्चयेनायोगी । व्यवहारेण सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकसर्व्वजघन्यशरीरप्रमाणेन संकुटते संकुचितप्रदेशो भवतीति संकुटः । समुद्घाते सर्व्वलोकं व्याप्नोतीत्यसंकुटः । निश्चयेन प्रदेशसंहारविसर्प्पणाभावादनुभयः किंचिदूनचरमशरीरप्रमाण इत्यर्थः । नयद्वयेन क्षेत्रं लोकालोकं स्वस्वरूपं च जानातीति क्षेत्रज्ञः व्यवहारेणाष्टकर्म्माभ्यंतरवर्त्तिस्वभावत्वात् । निश्चयेन चैतन्याभ्यंतरवर्त्तिस्वभावत्वाच्चांतरात्मा । इल्लि चशब्दंगळुक्तानुक्तसमुच्चया-

ज्ञानदर्शनस्वरूपेणैव भवति परिणमति इति स्वयम्भूः । व्यवहारेण औदारिकादिशरीरमस्यास्तीति शरीरी निश्चयेनाशरीरः । व्यवहारेण मानवादिपर्यायपरिणतो मानवः, उपलक्षणान्नारकः तिर्यङ् देवश्च । निश्चयेन मनौ ज्ञाने भवः मानवः । व्यवहारेण स्वजनमित्रादिपरिग्रहेषु सजतीति सक्ता । निश्चयेनासक्ता । व्यवहारेण चतुर्गतिससारे नानायोनिषु जायत इति जन्तुः संसारी इत्यर्थः निश्चयेनाजन्तुः । व्यवहारेण मानः अहंकारः अस्यास्तीति मानी, निश्चयेनामानी । व्यवहारेण माया वञ्चना अस्यास्तीति मायी निश्चयेनामायी । व्यवहारेण योगः कायवाङ्मनःकर्मास्यास्तीति योगी, निश्चयेनायोगी । व्यवहारेण सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकसर्वजघन्यशरीरप्रमाणेन संकुटति संकुचितप्रदेशो भवतीति संकुटः, समुद्घाते सर्वलोकं व्याप्नोतीत्यसंकुटः । निश्चयेन प्रदेशसंहारविसर्पणाभावादनुभयः किंचिदूनचरमशरीरप्रमाण इत्यर्थः । नयद्वयेन क्षेत्रं लोकालोकं स्वस्वरूपं च जानातीति क्षेत्रज्ञः व्यवहारेण अष्टकर्माभ्यन्तरवर्तिस्वभावत्वात्, निश्चयेन चैतन्याभ्यन्तरवर्तिस्वभावत्वाच्च अन्तरात्मा । इति—चशब्दौ उक्तानुक्तसमुच्चयार्थौ । ततः कारणाद् व्यवहाराश्रयेण कर्मनोकर्मरूपमूर्तद्रव्या-

वाले त्रिकालवर्ती सब पदार्थोंको जानता है अतः वेत्ता या वेद है। व्यवहार नयसे अपने गृहीत शरीरको और समुद्घात दशामें सर्व लोकमें व्यापता है, निश्चयनयसे ज्ञानके द्वारा सबको 'वेवेष्टि' अर्थात् व्यापता है जानता है अतः विष्णु है। यद्यपि व्यवहारनयसे कर्मवश भव-भवमें परिणमन करता है तथापि निश्चयनयसे 'स्वयं' अपनेमें ही ज्ञान-दर्शनरूप स्वभावसे 'भवति' अर्थात् परिणमन करता है अतः स्वयम्भू है। व्यवहारनयसे औदारिक शरीरवाला होनेसे शरीरी है और निश्चयसे अशरीरी है। व्यवहारसे मानव आदि पर्यायरूप परिणत होनेसे मानव है, उपलक्षणसे नारक, तिर्यंच और देव है। निश्चयनयसे मनु अर्थात् ज्ञानमें रहता है अतः मानव है। व्यवहारसे अपने परिवार, मित्र आदि परिग्रहमें आसक्त होनेसे सक्ता है, निश्चयसे असक्ता है। व्यवहारसे चार गतिरूप संसारमें नाना योनियोंमें जन्म लेता है अतः जन्तु यानी संसारी है। निश्चयसे अजन्तु है। व्यवहारसे माया कषायसे युक्त होनेसे मायी है, निश्चयसे अमायी है। व्यवहारसे मन-वचन-कायकी क्रियारूप योगवाला होनेसे योगी है, निश्चयसे अयोगी है। व्यवहारसे सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके सर्व जघन्य शरीरके परिमाणरूपसे 'संकुटति' संकुचित प्रदेशवाला होनेसे संकुट है। किन्तु समुद्घातसे सर्वलोकमें व्याप्त होनेसे असंकुट है। निश्चयसे प्रदेशोंके संकोच विस्तारका अभाव होनेसे अनुभय है अर्थात् मुक्तावस्थामें अन्तिम शरीरसे कुछ कम शरीर प्रमाण रहता है। दोनों नयोंसे क्षेत्र अर्थात् लोक-अलोक और अपने स्वरूपको जाननेसे क्षेत्रज्ञ है। व्यवहारसे आठ कर्मोंके अभ्यन्तरवर्ती स्वभाववाला होनेसे और निश्चयसे चैतन्यके अभ्यन्तरवर्ती

र्थंगळवु कारणदिवं । व्यवहाराश्रयदिदं कर्म्मनोकर्म्मरूपमूर्त्तद्रव्यानादिमंबंधदिदं मूर्त्तनु निश्चयनयाश्रयदिनमूर्त्तमेंबित्याद्यात्मधर्म्मंगळ समुच्चयं माडल्पडुगुमीयात्मप्रवाददोळ् द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतपदंगळु षड्विंशतिकोटिगळप्पुवें बुदत्थं । २६००००००० २६ को ।

कर्म्मणः प्रवादः प्ररूपणमस्मिस्मिन्निति कर्म्मप्रवादमष्टमं पूर्व्वमदु । मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं बहुविकल्पबंधोदयोदीरणासत्वाद्यवस्थं ज्ञानावरणादिकर्म्मस्वरूपं सांपरायिकेर्य्यापथतपस्याऽधाकर्म्मादियुमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितनवतिपदंगळेककोटियुमशीतिलक्षंगळप्पुवें बुदत्थं १८०००००० १८० ल । प्रत्याख्यायते निषिध्यते सावद्यमस्मिन्ननेनेति वा प्रत्याख्यानं नवमं पूर्व्वमदु नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावंगळनाश्रयिसि पुरुषसंहननबलाद्यनुसारदिदं परिमितकालंमेणपरिमितकालं प्रत्याख्यानं सावद्यवस्तुनिवृत्तियनुपवासविधियं तद्भावनांगमुमं पंचसमितित्रिगुप्त्यादिकमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितद्वाचत्वारिंशत्पदंगळु चतुरशीतिलक्षपदंगळप्पुवें बुदत्थं ८४०००००० ८४ ल । विद्यानामनुवादोऽनुक्रमेण वर्णनं यस्मिन् तद्विद्यानुवादं दशमं पूर्व्वमदु । सप्तशतमंगुष्ठप्रसेनाद्यल्पविद्येगळुं रोहिण्यादिपंचशतमहाविद्येगळुमं तत्स्वरूपसामर्थ्यंसाधनमंत्रतंत्रपूजाविधानंगळुमं सिद्धमादविद्येगळ फलविशेषंगळुमनें टु महानिमित्तंगळुमनवावुवं दोडे अंतरिक्ष

दिसंबन्धेन मूर्तः निश्चयनयाश्रयेणामूर्तः इत्यादय आत्मधर्माः समुच्चीयन्ते । तस्मिन्नात्मप्रवादे द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतपदानि षड्विंशतिकोट्य इत्यर्थः २६००००००० । कर्मणः प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति कर्मप्रवादमष्टमं पूर्वं तच्च मूलोत्तरोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं बहुविकल्पबन्धोदयोदीरणसत्त्वाद्यवस्थ ज्ञानावरणादिकर्मस्वरूपं समवधानेर्यापथतपस्याधाकर्मादि च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितनवतिपदानि एककोट्यशीतिलक्षाणीत्यर्थः १८०००००० । प्रत्याख्यायते निषिध्यते सावद्यमस्मिन्ननेनेति वा प्रत्याख्यानं नवम पूर्वं । तच्च नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य पुरुषसंहननबलाद्यनुसारेण परिमितकाल अपरिमितकालं वा प्रत्याख्यानं सावद्यवस्तुनिवृत्ति उपवासविधिं तद्भावनाङ्गं पञ्चसमितित्रिगुप्त्यादिकं च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितद्वाचत्वारिंशत्पदानि चतुरशीतिलक्षाणीत्यर्थः । ८४ ल । विद्याना अनुवाद अनुक्रमेण वर्णनं यस्मिन् तद्विद्यानुवादं दशमं पूर्वं, तच्च सप्तशतानि अङ्गुष्ठप्रसेनाद्यल्पविद्याः रोहिण्यादिपञ्चशतमहाविद्याः तत्स्वरूपसामर्थ्यसाधनमन्त्र-

स्वभाववाला होनेसे अन्तरात्मा है । 'इति और च' शब्द उक्त और अनुक्त अर्थके समुच्चयके लिए है । इससे व्यवहारनयसे कर्म-नोकर्मरूप मूर्त द्रव्य आदिके सम्बन्धसे मूर्तिक है और निश्चयनयसे अमूर्तिक है, इत्यादि आत्मधर्मका समुच्चय किया जाता है । उस आत्मप्रवादमें दो लाखसे गुणित तेरह सौ अर्थात् छब्बीस कोटि पद हैं । कर्मका प्रवाद अर्थात् कथन जिसमें हो वह कर्मप्रवाद नामक आठवाँ पूर्व है । वह मूल और उत्तर प्रकृतिके भेदसे भिन्न, अनेक प्रकारके बन्ध उदय उदीरणा सत्ता आदि अवस्थाको लिये हुए ज्ञानावरण आदि कर्मोंके स्वरूपको तथा समवदान, ईर्यापथ, तपस्या, आधाकर्म आदिका कथन करता है । उसमें दो लाखसे गुणित नब्बे अर्थात् एक कोटि इक्यासी लाख पद हैं । जिसमें 'प्रत्याख्यायते' अर्थात् सावद्य कर्मका निषेध किया गया है वह प्रत्याख्यान नामक नौवाँ पूर्व है । वह नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके आश्रयसे पुरुषके संहनन और बलके अनुसार परिमित काल या अपरिमितकालके लिए प्रत्याख्यान अर्थात् सावद्य वस्तुओंसे निवृत्ति, उपवासकी विधि, उसकी भावना, पाँच समिति, तीन गुप्ति आदिका वर्णन करता है । उसमें दो लाखसे गुणित बयालीस अर्थात् चौरासी लाख पद हैं । विद्याओंका अनुवाद अर्थात् अनुक्रमसे वर्णन जिसमें हो वह विद्यानुवाद पूर्व है । वह अंगुष्ठप्रसेना आदि सात सौ अल्पविद्याओं,

१. ब साम्परायिकेर्या° ।

भौमांगस्वरस्वप्नलक्षणव्यंजनच्छिन्ननामंगळुमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितपंचपंचाशत्पदंगळेककोटिदशलक्षंगळप्पुवें बुदत्थं। ११० ल। ११०००००० । कल्याणानां वादः प्ररूपणमस्मिन्निति कल्याणवादमेकादशं पूर्व्वमक्कु। तीर्त्थंकरचक्रधरबलदेववासुदेवादिगळ गर्ब्भावतरणादिकल्याणंगळं महोत्सवंगळुमं तीर्त्थंकरत्वादिपुण्यविशेषहेतुषोडशभावना तपोविशेषाद्यनुष्ठानंगळं चंद्रसूर्य्यग्रहनक्षत्रचारग्रहणशकुनादियुमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतपदंगळु षड्विंशतिकोटिपदंगळप्पुवें बुदत्थं। २६ को २६०००००००। प्राणानामावादः प्ररूपणमस्मिन्निति प्राणावादं द्वादशं पूर्व्वं मक्कु। कायचिकित्साद्यष्टांगमायुर्व्वेदमं भूतिकर्म्मजांगुलिकप्रक्रमं ईळापिंगलसुषुम्नादि बहुप्रकारप्राणापानविभागमं दशप्राणंगळुपकारकापकारकद्रव्यंगळुमं गत्याद्यनुसारदिं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितपंचाशदुत्तरषट्शतपदंगळु त्रयोदशकोटिगळप्पुवें बुदत्थं। १३ को १३००००००० ।

क्रियादिभिर्न्नृत्यादिभिर्व्विशालं विस्तीर्णं शोभायमानं वा क्रियाविशालं त्रयोदशपूर्व्वमक्कु। संगीतशास्त्रच्छंदोलंकारादिद्वासप्ततिकळेगळं चतुःषष्टिस्त्रीगुणंगळुमं शिल्पादिविज्ञानंगळुमं चतुरशीतिगळं गर्ब्भाधानादिकंगळुमं अष्टोत्तरशतमं सम्यग्दर्शनादिगळुमं पंचविंशतियं देववंदनादि-

तन्त्रपूजाविधानानि सिद्धविद्यानां फलविशेषान् अष्टमहानिमित्तानि, (तानि कानि ?) अन्तरीक्षभौमाङ्गस्वरस्वप्नलक्षणव्यञ्जनच्छिन्ननामानि च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चपञ्चाशत्पदानि एककोटिदशलक्षाणीत्यर्थः। ११० ल। कल्याणानां वादः प्ररूपणमस्मिन्निति कल्याणवादमेकादशं पूर्वं, तच्च तीर्थंकरचक्रधरबलदेववासुदेवप्रतिवासुदेवादीना गर्भावतरणकल्याणादिमहोत्सवान् तत्कारणतीर्थंकरत्वादिपुण्यविशेषहेतुषोडशभावनातपोविशेषाद्यनुष्ठानानि चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रचारग्रहणशकुनादिफलादि च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतपदानि षड्विंशतिकोट्य इत्यर्थः. २६ को.। प्राणाना आवादः प्ररूपणमस्मिन्निति प्राणावादं द्वादशं पूर्वं, तच्च कायचिकित्साद्यष्टाङ्गमायुर्वेदं भूतिकर्मजांगुलिकप्रक्रम इलापिङ्गलासुषुम्नादिबहुप्रकारप्राणापानविभागं दशप्राणाना उपकारकापकारकद्रव्याणि गत्याद्यनुसारेण वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चाशदुत्तरषट्छतानि पदानि त्रयोदशकोट्य इत्यर्थः १३ को.। क्रियादिभिः नृत्यादिभि, विशालं विस्तीर्णं शोभमानं वा क्रियाविशालं त्रयोदशं पूर्वम्। तच्च संगीतशास्त्रछन्दोलङ्कारादिद्वासप्ततिकलाः चतुःषष्टिस्त्रीगुणान् शिल्पादिविज्ञानानि चतुरशीतिगर्भा-

रोहिणी आदि पाँच सौ महाविद्याओंका स्वरूप, सामर्थ्य, साधन, मन्त्र-तन्त्र-पूजा विधान, सिद्ध विद्याओंका फल विशेष तथा आकाश, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन, छिन्न नामक आठ महानिमित्तोंका वर्णन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित पचपन अर्थात् एक करोड़ दस लाख पद हे। कल्याणोंका वाद अर्थात् कथन जिसमें है वह कल्याणवाद नामक ग्यारहवाँ पूर्व है। वह तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव आदिके गर्भमें अवतरण कल्याण आदि महोत्सवोंका, उसके कारण तीर्थंकरत्व आदि पुण्य विशेषमें हेतु सोलह भावना, तपोविशेष आदिके अनुष्ठान, चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्रोंका गमन, ग्रहण, शकुन आदिके फल आदिका वर्णन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित तेरह सौ अर्थात् छब्बीस करोड़ पद है। प्राणोंका आवाद—कथन जिसमें है वह प्राणवाद नामक बारहवाँ पूर्व है। वह कायचिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, जननकर्म, जांगुलि प्रक्रम, गणित, इला, पिंगला, सुषुम्ना आदि अनेक प्रकारके श्वास-उच्छ्वासके विभागका तथा दस प्राणोंके उपकारक-अपकारक द्रव्यका गति आदिके अनुसार वर्णन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित छह सौ पचास अर्थात् तेरह करोड़ पद हैं। नृत्य आदि क्रियाओंसे विशाल अर्थात् विस्तीर्ण या शोभमान क्रियाविशाल नामक तेरहवाँ पूर्व है। वह संगीत शास्त्र, छन्द, अलंकार आदि बहत्तर कला, स्त्री सम्बन्धी चौसठ गुण, शिल्पादि विज्ञान, चौरासी गर्भाधान आदि क्रिया,

गळुमं नित्यनैमित्तिकक्रियेगळुमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितपंचाशदधिकचतुःशतपदंगळु नवकोटिगळप्पुवें बुदत्थं ९ को ९०००००००। त्रिलोकानां बिंदवोऽवयवाः सारं च वर्ण्यंयन्तेऽस्मिन्निति त्रिलोकबिंदुसारं चतुर्द्दशपूर्व्वमदु। त्रिलोकस्वरूपमं मूवत्तारु परिकर्म्ममं एंटु व्यवहारंगळुमं नाल्कुबीजंगळुमं मोक्षस्वरूपमं तद्गमनकारणक्रियेगळुमं मोक्षसुखस्वरूपमुमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितपंचविंशत्यधिकषट्शतपदंगळु द्वादशकोटिगळुं पंचाशल्लक्षंगळप्पुवें बुदत्थं १२५००००००।

सामायियचउवीसत्थयं तदो वंदणा पडिक्कमणं।
वेणयिय किरिकम्मं दस वेयालं च उत्तरज्झयणं ॥३६७॥

सामायिकचतुर्व्विंशतिस्तवं ततो वंदना प्रतिक्रमणं। वैनयिकं कृतिकर्म्मदशवैकालिकं चोत्तराध्ययनं।

कप्पववहारकप्पा कप्पियमहकप्पियं च पुंडरियं।
महपुंडरीयणिसिहियमिदि चोद्दसमंगबाहिरयं ॥३६८॥

कल्प्यव्यवहारं कल्प्याकल्प्यं महाकल्प्यं च पुंडरीकं। महापुंडरीकं निषिद्धिकेति चतुर्द्दशांगबाह्यकं।

सामायिकमें दुं चतुर्व्विंशतिस्तवनमें दुं वंदनेयें दुं प्रतिक्रमणमें दुं वैनेकमें दुं कृतिकर्म्ममें दुं दशवैकालिकमें दुं वुत्तराध्ययनमें दुं कल्प्यव्यवहारमें दुं कल्प्याकल्प्यमें दुं महाकल्प्यमें दुं पुंडरीकमें दुं महापुंडरीकमें दु निषिद्धिकेयुमें वितंगबाह्यश्रुतं चतुर्द्दशविधमक्कुमल्लि सम् एकत्वेनात्मनि आयः आगमनं। परद्रव्येभ्यो निवृत्त्य उपयोगस्यात्मनि प्रवृत्तिः समयः अयमहं ज्ञाता दृष्टा चेति। यें दितात्मविषयोपयोगमें बुदत्थं एकें दोडात्मनोव्वंगेये ज्ञेयज्ञायकत्वसंभवमप्पुदरिदं।

धानादिका अष्टोत्तरशतसम्यग्दर्शनादिकाः पञ्चविंशति देववन्दनादिका. नित्यनैमित्तिका क्रियाश्च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चाशदधिकचतु शतपदानि नवकोट्य इत्यर्थ.। ९ को.। त्रिलोकाना बिन्दव अवयवा. सारं च वर्ण्यन्ते अस्मिन्निति त्रिलोकबिन्दुसारं चतुर्दशं पूर्वं तच्च त्रिलोकस्वरूप षट्त्रिंशत्परिकर्माणि अष्टौ व्यवहारान् चत्वारि बीजानि मोक्षस्वरूप तद्गमनकारणक्रियाः मोक्षसुखस्वरूपं च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चविंशत्यधिकषट्शतानि पदानि द्वादशकोटिपञ्चाशल्लक्षाणीत्यर्थ. १२ को ५० ल ॥३६५-३६६॥

सामायिक चतुर्विंशतिस्तव ततो वन्दना प्रतिक्रमणं वैनयिकं कृतिकर्मं दशवैकालिकं उत्तराध्ययन कल्प्यव्यवहार कल्प्याकल्प्य महाकल्प्य पुण्डरीक महापुण्डरीकं निषिद्धिका च इत्यङ्गबाह्यश्रुतं चतुर्दशविधं भवति। तत्र समं एकत्वेन आत्मनि आयः आगमन परद्रव्येभ्यो निवृत्य उपयोगस्य आत्मनि प्रवृत्तिः समाय,

---

एक सौ आठ, सम्यग्दर्शन आदि पच्चीस क्रिया, तथा देववन्दना आदि नित्य-नैमित्तिक क्रियाओंका वर्णन करता है। उसमें दो लाख गुणित चार सौ पचास अर्थात् नौ करोड़ पद हैं। तीनों लोकोंके बिन्दु अर्थात् अवयव और सार जिसमें वर्णित है वह त्रिलोकबिन्दुसार नामक चौदहवाँ पूर्व है। वह तीनों लोकोंका स्वरूप, छत्तीस परिकर्म, आठ व्यवहार, चार बीज, मोक्षका स्वरूप, मोक्षमें गमनके कारण क्रिया, और मोक्ष सुखका स्वरूप कहता है। उसमें दो लाखसे गुणित छह सौ पच्चीस अर्थात् बारह कोटि पचास लाख पद हैं ॥३६५-६६॥

सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्प्यव्यवहार, कल्प्याकल्प्य, महाकल्प्य, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, निषिद्धिका, इस प्रकार अंगबाह्य श्रुत चौदह प्रकारका होता है। 'सम' अर्थात् एकत्व रूपसे आत्मामें

अथवा सम् समे रागद्वेषाभ्यामनुपहते मध्यस्थे आत्मनि आय उपयोगस्य प्रवृत्तिः समायः स प्रयोजनमस्येति सामायिकं नित्यनैमित्तिकानुष्ठानमुं तत्प्रतिपादकं शास्त्रमुं सामायिकमें बुदत्थं। नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेददिदं सामायिकं षड्विधमक्कुमल्लि इष्टानिष्टनामंगळोळु रागद्वेषनिवृत्तियुं सामायिकाभिधानमुं मेणु नामसामायिकमक्कुं। मनोज्ञामनोज्ञस्त्रीपुरुषाद्याकारकाष्ठलेप्यचित्रादिप्रतिमेगळोळु रागद्वेषनिवृत्तियुं यिदु सामायिकमें दिंतु स्थाप्यमानासद्भावस्थापनेयुमप्पक्षतादिपुंज मेणु स्थापनासामायिकमक्कुं। इष्टानिष्टंगळप्प चेतनाचेतनद्रव्यंगळोळु रागद्वेषनिवृत्तियुं सामायिकशास्त्रानुपयुक्तज्ञायकतच्छरीरादि मेणु द्रव्यसामायिकमक्कुं। ग्रामनगरवनादिक्षेत्रंगळिष्टानिष्टंगळोळु रागद्वेषनिवृत्तिक्षेत्रसामायिकमक्कुं। वसंतादि ऋतुगळोळं शुक्लपक्षकृष्णपक्षंगळोळं दिवसवारनक्षत्रादिगळप्पिष्टानिष्टकालविशेषंगळोळं रागद्वेषनिवृत्तिकालसामायिकमक्कुं। जीवादितत्त्वविषयोपयोगरूपपर्य्यायक्के मिथ्यादर्शनकषायादिसंक्लेशनिवृत्तियुं सामायिकशास्त्रोपयोगयुक्तज्ञायकनुं तत्पर्य्यायपरिणतमप्प सामायिकं मेणु भावसामायिकमक्कुं। तत्कालसंबंधिगळप्प चतुर्व्विंशतितीर्थकरुगळ नामस्थापनाद्रव्यभावंगळनाश्रयिसि पंचमहाकल्याण-

अयमहं ज्ञाता द्रष्टा चेति आत्मविषयोपयोग इत्यर्थः, आत्मनः एकस्यैव ज्ञेयज्ञायकत्वसंभवात्। अथवा सं समे रागद्वेषाभ्यामनुपहते मध्यस्थे आत्मनि आयः उपयोगस्य प्रवृत्तिः समायः स प्रयोजनमस्येति सामायिकं नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं तत्प्रतिपादकं शास्त्रं वा सामायिकमित्यर्थः। तच्च नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् षड्विधम्। तत्र इष्टानिष्टनामसु रागद्वेषनिवृत्तिः सामायिकमित्यभिधानं वा नाम सामायिकम्। मनोज्ञामनोज्ञासु स्त्रीपुरुषाद्याकारासु काष्ठलेप्यचित्रादिप्रतिमासु रागद्वेषनिवृत्तिः। इदं सामायिकमिति स्थाप्यमानं यत् किञ्चिद्वस्तु वा स्थापनासामायिकम्। इष्टानिष्टेषु चेतनाचेतनद्रव्येषु रागद्वेषनिवृत्तिः सामायिकशास्त्रानुपयुक्तज्ञायकः तच्छरीरादिर्वा द्रव्यसामायिकम्। ग्रामनगरवनादिक्षेत्रेषु इष्टानिष्टेषु रागद्वेषनिवृत्तिः क्षेत्रसामायिकम्। वसन्तादिऋतुषु शुक्लकृष्णपक्षयोर्दिनवारनक्षत्रादिषु च इष्टानिष्टेषु कालविशेषेषु रागद्वेषनिवृत्तिः कालसामायिकम्। भावस्य जीवादितत्त्वविषयोपयोगरूपस्य पर्यायस्य मिथ्यादर्शनकषायादिसंक्लेशनिवृत्तिः सामायिकशास्त्रोपयोगयुक्तज्ञायकः तत्पर्यायपरिणतसामायिकं वा भावसामायिकम्। तत्तत्कालसम्बन्धिनां चतुर्विंशतितीर्थकराणा

'आय' अर्थात् आगमनको समाय कहते हैं। अर्थात् परद्रव्योंसे निवृत्त होकर आत्मामें प्रवृत्तिका नाम समाय है, यह मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ इस प्रकारका आत्मविषयमें उपयोग समाय है, क्योंकि आत्मा ही ज्ञेय और वही ज्ञायक होता है। अथवा 'सं' यानी सम—राग-द्वेषसे अबाधित मध्यस्थ आत्मामें 'आय' अर्थात् उपयोगकी प्रवृत्ति समाय है। वह प्रयोजन जिसका है वह सामायिक है। नित्य-नैमित्तिक अनुष्ठान और उनका प्रतिपादक शास्त्र सामायिक है यह इसका अर्थ है। वह सामायिक नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे छह प्रकारकी है। इष्ट-अनिष्ट नामोंमें राग-द्वेषकी निवृत्ति अथवा सामायिक नाम नामसामायिक है। मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्त्री-पुरुष आदिके आकारोंमें काष्ठ, लेप्य और चित्र आदिमें अंकित प्रतिमाओंमें राग-द्वेष न करना, अथवा जिस-किसी वस्तुमें 'यह सामायिक है' इस प्रकार स्थापना करना स्थापनासामायिक है। इष्ट-अनिष्ट, चेतन-अचेतन द्रव्योंमें राग-द्वेषकी निवृत्ति अथवा सामायिक शास्त्रका ज्ञाता जो उसमें उपयोगवान् नहीं है, अथवा उसका शरीर आदि द्रव्यसामायिक है। इष्ट-अनिष्ट, ग्राम-नगर आदि क्षेत्रोंमें राग-द्वेष न करना क्षेत्रसामायिक है। वसन्त आदि ऋतु, शुक्ल-कृष्ण पक्ष, दिन, वार, नक्षत्रादि इष्ट-अनिष्ट काल विशेषोंमें राग-द्वेष न करना कालसामायिक है। भाव अर्थात् जीवादि तत्त्व विषयक उपयोगरूप पर्यायकी मिथ्यादर्शन कषाय आदि संक्लेशोंसे निवृत्ति, अथवा सामा-

चतुस्त्रिंशदतिशयाष्टमहाप्रातिहार्य्यपरमौदारिकदिव्यदेहसमवसरणसभाधर्म्मोपदेशनादितीर्थंकरत्व-महिमेय स्तुतियु चतुव्विंशतिस्तवनमेंबुदु । तत्प्रतिपादकशास्त्रमुं चतुव्विंशतिस्तवनमें दु पेळल्पट्टुदु । ततः परं एकतीर्थंकरालंबनचैत्यचैत्यालयादिस्तुतियं वंदनेयेंबुदु तत्प्रतिपादकशास्त्रमुं वंदनेयेंदु पेळल्पट्टुदु । प्रतिक्रम्यते प्रमादकृतदैवसिकादिदोषो निराक्रियते इनेनेति प्रतिक्रमणं । दैवसिक रात्रिक पाक्षिक चातुर्म्मासिक सांवत्सरिकैर्य्यापथिकोत्तमार्थभेददिं सप्तविधमक्कुं । भरतादिक्षेत्रमं दुःषमादिकालमं षट्संहननसमन्वितस्थिरास्थिरादिपुरुषभेदंगळुमनाश्रयिसि तत्प्रति-पादकमप्प शास्त्रं प्रतिक्रमणमें बुदक्कुं । विनयः प्रयोजनमस्येति वैनयिकमें दु ज्ञानदर्शनचारित्र-तपउपचारविषयमप्प पंचविधविनयविधानम पेळ्गुं ।

कृतेः क्रियायाः कर्म्म विधानमस्मिन् वर्ण्यत इति कृतिकर्म्म । ई कृतिकर्म्मशास्त्रमर्हत्सिद्धा-चार्य्यबहुश्रुतसाधुगळमोदलाद नवदेवतावंदनानिमित्तमं आत्माधीनता प्रादक्षिण्य त्रिवारत्र्यवनति चतुःशिरोद्वादशावर्त्तादिलक्षणनित्यनैमित्तिकक्रियाविधानमं वर्णिसुगुं । विशिष्टाः कालाः विकालाः तेषु भवानि वैकालिकानि । दशवैकालिकानि वर्ण्यन्तेस्मिन्निति दशवैकालिकं । ई दशवैकालिक-

---

नामस्थापनाद्रव्यभावानाश्रित्य पञ्चमहाकल्याणचतुस्त्रिंशदतिशयाष्टमहाप्रातिहार्यपरमौदारिकदिव्यदेहसमवसरण-सभाधर्मोपदेशनादितीर्थंकरत्वमहिमस्तुति चतुर्विंशतिस्तवः तस्य प्रतिपादक शास्त्र वा चतुर्विंशतिस्तव इत्युच्यते । तस्मात्पर एकतीर्थंकरालम्बना चैत्यचैत्यालयादिस्तुतिः वन्दना तत्प्रतिपादक शास्त्रं वा वन्दना इत्युच्यते । प्रतिक्रम्यते प्रमादकृतदैवसिकादिदोषो निराक्रियते अनेनेति प्रतिक्रमण तच्च दैवसिकरात्रिकपाक्षिकचातुर्मासिक-सांवत्सरिकैर्यापथिकौत्तमार्थिकभेदात्सप्तविध, भरतादिक्षेत्रं दु षमादिकाल षट्संहननसमन्वितस्थिरास्थिरादिपुरुष-भेदश्च आश्रित्य तत्प्रतिपादकं शास्त्रमपि प्रतिक्रमणम् । विनय प्रयोजनमस्येति वैनयिक तच्च ज्ञानदर्शनचारित्र-तपउपचारविषयं पञ्चविधविनयविधानं कथयति । कृतेः क्रियायाः कर्म विधानं अस्मिन् वर्ण्यते इति कृतिकर्म । तच्च अर्हत्सिद्धाचार्यबहुश्रुतसाध्वादिनवदेवतावन्दनानिमित्तमात्माधीनताप्रादक्षिण्यत्रिवारत्रिनवतिचतु शिरो - द्वादशावर्तादिलक्षणनित्यनैमित्तिकक्रियाविधानं च वर्णयति । विशिष्टा काला विकालास्तेषु भवानि वैकालिकानि

यिक शास्त्रमें उपयुक्त उसका ज्ञाता, अथवा सामायिक पर्यायरूप परिणत व्यक्ति भावसामा-यिक है । उस-उस काल सम्बन्धी चौबीस तीर्थंकरोंके नाम, स्थापना, द्रव्य और भावको लेकर महाकल्याणक, चौंतीस अतिशय, आठ महाप्रातिहार्य, परम औदारिक दिव्य शरीर, सम-वसरण सभा, धर्मोपदेशना आदिके द्वार, तीर्थंकरकी महिमाका स्तवन चतुर्विंशतिस्तव है । अथवा उसका कथन करनेवाला शास्त्र चतुर्विंशतिस्तव कहा जाता है । उसके पश्चात् एक तीर्थंकरको लेकर चैत्य-चैत्यालय आदिकी स्तुति वन्दना है । अथवा उसका प्रतिपादक शास्त्र वन्दना कहलाता है । जिसके द्वारा 'प्रतिक्रम्यते' अर्थात् प्रमादसे किये हुए दैवसिक आदि दोषोंका विशोधन किया जाता है वह प्रतिक्रमण है । वह दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक और पारमार्थिकके भेदसे सात प्रकारका है । भरत आदि क्षेत्र, दुषमादि काल, छह संहननोंसे युक्त स्थिर-अस्थिर आदि पुरुषोंके भेदोंको लेकर प्रतिक्रमणका कथन करनेवाला शास्त्र भी प्रतिक्रमण है । विनय जिसका प्रयोजन है वह वैनयिक है । वह ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और उपचारके भेदसे पाँच प्रकारकी विनयका कथन करता है । जिसमें कृति अर्थात् क्रियाकर्मका विधान कहा जाता है वह क्रियाकर्म है । उसमें अर्हन्त, सिद्ध-आचार्य, बहुश्रुत (उपाध्याय), साधु आदि नौ देवताओंकी वन्दनाके निमित्त आत्माधीनता (अपने अधीन होना), तीन बार प्रदक्षिणा, तीन बार नमस्कार, चार

शास्त्रं मुनिजनंगळाचरण गोचारविधियं पिंडशुद्धिलक्षणमं वर्णिसुगु। उत्तराण्यधीयंते पठ्यन्तेऽस्मिन्नित्युत्तराध्ययनं। ई उत्तराध्ययनशास्त्रं चतुर्विधोपसर्गंगळ द्वाविंशतिपरीषहंगळ सहनविधानमं तत्फलमुमं यितु प्रश्नमादोडितुत्तरमें दितुत्तरविधानमं वर्णिसुगुं। कल्प्यं योग्यं व्यवह्रियते अनुष्ठीयतेऽस्मिन्निति अनेनेति वा कल्प्यव्यवहारः। ई कल्प्यव्यवहारशास्त्रं साधुगळ योग्यानुष्ठानविधानमं अयोग्यसेवेयोळु प्रायश्चित्तमुमं वर्णिसुगुं। कल्प्यं चाकल्प्यं च कल्प्याकल्प्यं तद्वर्ण्यतेऽस्मिन्निति कल्प्याकल्प्यं। ई कल्प्याकल्प्यशास्त्रं द्रव्यक्षेत्रकाल भावंगळनाश्रयिसि मुनिगलिदु कल्प्यमिदकल्प्यमें दु योग्यायोग्यविभागमं वर्णिसुगुं।

महतां कल्प्यमस्मिन्निति महाकल्प्यं। ई महाकल्प्यशास्त्रं जिनकल्पसाधुगळ्गे उत्कृष्टसंहननादिविशिष्टद्रव्यक्षेत्रकालभाववर्त्तिगळ्गे योग्यमप्प त्रिकालयोगाद्यनुष्ठानमं स्थविरकल्परुगळ दीक्षाशिक्षागणपोषणात्मसंस्कार सल्लेखनोत्तमार्त्थस्थानगतोत्कृष्टाराधनाविशेषमुमं वर्णिसुगुं। पुंडरीकमें ब शास्त्रं भावनव्यंतरज्योतिष्ककल्पवासिविमानंगळोळुत्पत्तिकारणदानपूजातपश्चरणाकामनिर्ज्ज-

दश वैकालिकानि वर्ण्यन्तेऽस्मिन्निति दशवैकालिकं तच्च मुनिजनाना आचरणगोचरविधिं पिण्डशुद्धिलक्षणं च वर्णयति। उत्तराणि अधीयन्ते पठ्यन्ते अस्मिन्निति उत्तराध्ययनं तच्च चतुर्विधोपसर्गाणां द्वाविंशतिपरीषहाणां च सहनविधान तत्फलं एवं प्रश्ने एवमुत्तरमित्युत्तरविधानं च वर्णयति। कल्प्य योग्यं व्यवह्रियते अनुष्ठीयतेऽस्मिन्ननेनेति वा कल्प्यव्यवहारः, स च साधूनां योग्यानुष्ठानविधानं अयोग्यसेवायां प्रायश्चित्तं च वर्णयति। कल्प्यं चाकल्प्यं च कल्प्याकल्प्य, तद्वर्ण्यते अस्मिन्निति कल्प्याकल्प्यम्। तच्च द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य मुनीनामिदं कल्प्यं योग्यं इदमकल्प्यं अयोग्यमिति विभागं वर्णयति। महतां कल्प्यमस्मिन्निति महाकल्प्यं शास्त्रं तच्च जिनकल्पसाधूना उत्कृष्टसंहननादिविशिष्टद्रव्यक्षेत्रकालभाववर्तिनां योग्यं त्रिकालयोगाद्यनुष्ठानं स्थविरकल्पाना दीक्षाशिक्षागणपोषणात्मसंस्कारसल्लेखनोत्तमार्थस्थानगतोत्कृष्टाराधनाविशेषं च वर्णयति। पुण्डरीकं नाम शास्त्रं भावनव्यन्तरज्योतिष्ककल्पवासिविमानेषु उत्पत्तिकारणदानपूजातपश्चरणाकामनिर्जरासम्यक्त्वसंयममादिविधान तत्तदुपपादस्थानवैभवविशेषं च वर्णयति। महच्च तत्पुण्डरीकं तत्महापुण्डरीक शास्त्रं

बार सिर नमाना, बारह आवर्त आदि रूप नित्य नैमित्तिक क्रिया विधानका वर्णन होता है। विशिष्ट कालोंको विकाल कहते हैं, उनमें होनेको वैकालिक कहते हैं। जिसमें दस वैकालिकोंका वर्णन हो वह दशवैकालिक है। उसमें मुनियोंका आचार, गोचरीकी विधि और भोजन शुद्धिका लक्षण कहा गया है। जिसमें उत्तरोंका अध्ययन हो वह उत्तराध्ययन है। उसमें चार प्रकारके उपसर्गों और बाईस परीषहोंके सहनेका विधान, उनका फल तथा इस प्रकारके प्रश्नका उत्तर इस प्रकार होता है इसका कथन होता है। जो कल्प्य अर्थात् योग्यके व्यवहारका कथन करता है वह कल्प्यव्यवहार है। उसमें साधुओंके योग्य अनुष्ठानके विधानका और अयोग्यका सेवन होनेके प्रायश्चित्तका कथन होता है। जिसमें कल्प्य और अकल्प्यका कथन हो वह कल्प्याकल्प्य है। वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके आश्रयसे यह मुनियोंके योग्य और यह अयोग्य है ऐसा कथन करता है। महान् पुरुषोंका कल्प्य जिसमें हो वह महाकल्प्य शास्त्र है। उसमें जिनकल्पी साधुओंके उत्कृष्ट, संहनन आदि विशिष्ट द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको लेकर त्रिकाल योग आदि अनुष्ठानका तथा स्थविर कल्पी साधुओंकी दीक्षा, शिक्षा, गणका पोषण, आत्मसंस्कार, सल्लेखना, उत्तम स्थानगत उत्कृष्ट आराधना विशेषका कथन होता है। पुण्डरीक नामक शास्त्र भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देवोंके विमानोंमें उत्पत्तिके कारण दान, पूजा, तपश्चरण, अकामनिर्जरा, सम्यक्त्व, संयम आदिका विधान तथा उस-उस उपपाद स्थानके वैभव विशेषको कहता है। महान्

रासम्यक्त्वसंयमादिविधानमं तत्तदुपपादस्थानवैभवविशेषमुमं वर्णिसुगुं ।

महापुंडरीकमेंब शास्त्रं महर्द्धिकरप्पेंद्रप्रतींद्रादिगळोळुत्पत्तिकारण तपोविशेषाद्याचारमं वर्णिसुगुं ।

निषेधनं प्रमाददोषनिराकरणं निषिद्धिः संज्ञेयोळु कप्रत्ययमागुत्तिरलु निषिद्धिका । एंबिदु प्रायश्चित्तशास्त्रमेंबुदर्थमदु प्रमाददोषविशुध्यर्थं बहुप्रकारमप्प प्रायश्चित्तमं वर्णिसुगुं । निशीतिका वा एंदितु क्वचित्पाठं काणल्पडुगुं ।

इंतु चतुर्द्दशविधमप्प अंगबाह्यश्रुतं परिभाविसल्पडुवुदु । अनंतरं शास्त्रकारं श्रुतज्ञानमहात्म्यमं पेळदपं ।

सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति बोहादो ।
सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं ॥३६९॥

श्रुतं केवळं च ज्ञानं द्वे अपि सदृशे भवतो बोधात् । श्रुतज्ञानं तु परोक्षं प्रत्यक्षं केवलं ज्ञानम् ।

श्रुतज्ञानमुं केवलज्ञानमुमें बेरडुं ज्ञानंगळु बोधात् अरिविनिंदं समस्तवस्तुद्रव्यगुणपर्य्यायपरिज्ञानदिदं समानंगळेयप्पुवु । तु मत्ते इदु विशेषमुंटदें तें दोडे परमोत्कर्षपर्य्यंतप्राप्तमादुदावोडं श्रुतकेवलज्ञानं सकलपदार्त्थंगळोळु परोक्षं अविशदमस्पष्टममूर्त्तंगळोळमर्त्थपर्य्यायंगळोळमुळिद सूक्ष्मांशंगळोळं विशदत्वदिदं प्रवृत्यभावमप्पुदरिदं । मूर्त्तंगळोळु व्यंजनपर्य्यायंगळप्प स्थूलांशंगळप्प स्वविषयंगळोळु अवधिज्ञानादियंते साक्षात्करणाभावदिदमुं सकलावरणवीर्य्यांतराय निरवशेषक्षयो-

तच्च महर्धिकेषु इन्द्रप्रतीन्द्रादिषु उत्पत्तिकारणतपोविशेषाद्याचरण वर्णयति । निषेधनं प्रमाददोषनिराकरणं निषिद्धि' सज्ञाया कप्रत्यये निषिद्धिका प्रायश्चित्तशास्त्रमित्यर्थ , तच्च प्रमाददोषविशुद्धयर्थं बहुप्रकार प्रायश्चित्तं वर्णयति । निसीतिका इति क्वचित्पाठो दृश्यते । एवं चतुर्दशविध अङ्गबाह्य श्रुत परिभावनीयम् ॥३६७–३६८॥ अथ शास्त्रकार श्रुतज्ञानमाहात्म्यं वर्णयति—

श्रुतज्ञानं केवलज्ञानं चेति द्वे ज्ञाने बोधात् समस्तवस्तुद्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानात् सदृशे समाने भवत तु-पुन' अत्र विशेषः । स कः ? परमोत्कर्षपर्यन्तं प्राप्तमपि श्रुतकेवलज्ञान सकलपदार्थेषु परोक्षं अविशदं अस्पष्टं अमूर्तेषु अर्थपर्यायेषु अन्येषु सूक्ष्मांशेषु विशदत्वेषु विशदत्वेन प्रवृत्त्यभवात् । मूर्तेष्वपि व्यञ्जनपर्यायेषु स्थूलांशेषु

पुण्डरीक शास्त्रको महापुण्डरीक कहते हैं । उसमें महर्धिक इन्द्र-प्रतीन्द्र आदिमें उत्पत्तिके कारण तपोविशेष आदि आचरणका कथन होता है । निषेधन अर्थात् प्रमादसे लगे दोषोंका निराकरण निषिद्धि है । संज्ञामें 'क' प्रत्यय करनेपर निषिद्धिका होता है, उसका अर्थ है प्रायश्चित्त शास्त्र । उसमें प्रमादसे लगे दोषोंकी विशुद्धिके लिए बहुत प्रकारके प्रायश्चित्तोंका वर्णन है । कहींपर 'निसीतिका' पाठ भी देखा जाता है । इस प्रकार चौदह प्रकारका अंगबाह्य श्रुत जानना ॥३६७–३६८॥

अब शास्त्रकार श्रुतज्ञानके माहात्म्यको कहते हैं—

श्रुतज्ञान और केवलज्ञान ये दोनों ज्ञान समस्त वस्तुओंके द्रव्य-गुण-पर्यायोंको जाननेकी अपेक्षा समान हैं । किन्तु इतना विशेष है कि परम उत्कर्ष पर्यन्तको प्राप्त भी श्रुतज्ञान समस्त पदार्थोंमें परोक्ष होता है, अस्पष्ट जानता है, अमूर्त अर्थ पर्यायोंमें तथा अन्य सूक्ष्म अंशोंमें स्पष्ट रूपसे उसकी प्रवृत्ति नहीं होती । मूर्त भी व्यंजन पर्यायोंको अपने विषयोंके

त्पन्नं केवलज्ञानं प्रत्यक्षं। समस्तत्त्वदिदं विशदं स्पष्टमक्कुं। मूर्त्तामूर्त्तार्त्थव्यंजनपर्य्यायस्थूलसूक्ष्मांशंगळप्प सर्व्वंगळोळु प्रवृत्ति संभविसुगुमप्पुदरिदं। साक्षात्करणदिदमुं अक्षमात्मानमेव प्रतिनियतं परानपेक्षं प्रत्यक्षं। उपात्तानुपात्तपरप्रत्ययापेक्षं परोक्षमिति। एंदितु प्रत्यक्षपरोक्षशब्दनिरुक्तिसिद्धलक्षणभेददिदमा श्रुतज्ञानकेवलज्ञानंगळ्गे सादृश्याभावमक्कुमंते समंतभद्रस्वामिगळिदमुं पेळल्पट्टुदु। "स्याद्वाद केवलज्ञाने सर्व्वतत्त्वप्रकाशने। भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवे" वेंदितु। [आप्तमी.]

अनंतरं शास्त्रकारं पंचषष्ठिगाथासूत्रंगळिदमवधिज्ञानप्ररूपणेयं पेळलुपक्रमिसिदपं।

> अवहीयदित्ति ओही सीमाणाणेत्ति वण्णियं समये।
> भवगुणपच्चयविहियं जमोहिणाणेत्ति णं बेंति ॥३७०॥

अवधीयत इत्यवधिः सीमाज्ञानमिति वर्णितं समये। भवगुणप्रत्ययविहितं यदवधिज्ञानमितीदं ब्रुवंति।

अवधीयते द्रव्यक्षेत्रकालभावंगळिदं परिमीयते एंदितवधि यें बुददेकें दोडे मतिश्रुतकेवलंगळंते द्रव्यादिगळिदमपरिमितविषयत्वाऽभावमप्पुदरिदं सीमाविषयज्ञानमें दु समये परमागमदोळु भणितं पेळल्पट्टुदु। यत् आवुदो दु तृतीयज्ञानं भवगुणप्रत्ययविहितं भवो नरकादिपर्य्यायः गुणः सम्यग्दर्शनविशुद्ध्यादिः। भवश्च गुणश्च भवगुणौ तावेव प्रत्ययौ ताभ्यां कारणाभ्यां

स्वविषयेषु अवधिज्ञानादिव साक्षात्करणाभावाच्च। सकलावरणवीर्यान्तरायनिरवशेषक्षयोत्पन्नं केवलज्ञानं प्रत्यक्षं समस्तत्त्वेन विशदं स्पष्टं भवति। मूर्तामूर्तार्थव्यञ्जनपर्यायस्थूलसूक्ष्मांशेषु सर्वेष्वपि प्रवृत्तिसंभवात् साक्षात्कारणाच्च। अक्षं आत्मानमेव प्रतिनियतं परानपेक्षं प्रत्यक्षं, उपात्तानुपात्तपरप्रत्ययापेक्षं परोक्षमिति निरुक्तिसिद्धलक्षणभेदात्तयोः श्रुतज्ञानकेवलज्ञानयोः सादृश्याभावात्। तथा चोक्तं समन्तभद्रस्वामिभिः—

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने। भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥— [आप्तमी०] ॥३६९॥ अथ शास्त्रकारः पञ्चषष्टिगाथासूत्रैः अवधिज्ञानप्ररूपणामुपक्रमते—

अवधीयते—द्रव्यक्षेत्रकालभावैः परिमीयते इत्यवधिर्मतिश्रुतकेवलवद्द्रव्यादिभिरपरिमितविषयत्वाभावात्। यत्तृतीयं सीमाविषयं ज्ञानं समये परमागमे वर्णितं तदिदमवधिज्ञानमित्यर्हदादयो ब्रुवन्ति। तत्कति-

---

स्थूल अंशको अवधिज्ञानकी तरह साक्षात्कार करनेमें असमर्थ है। किन्तु समस्त ज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयसे उत्पन्न केवलज्ञान पूर्ण रूपसे स्पष्ट होता है। मूर्त अमूर्त, अर्थपर्याय, व्यंजनपर्याय, स्थूल अंश, सूक्ष्म अंश सभीमें उसकी प्रवृत्ति है और सभीको साक्षात् जानता है। अक्ष अर्थात् आत्मासे ही जो ज्ञान होता है, परकी अपेक्षा नहीं करता उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। उपात्त इन्द्रियादि और अनुपात्त प्रकाशादि परकारणोंकी अपेक्षासे होनेवाला ज्ञान परोक्ष है। इस प्रकार निरुक्तिसे सिद्ध लक्षणोंके भेदसे श्रुतज्ञान और केवलज्ञानमें समानता नहीं है। स्वामी समन्तभद्रने भी अपने आप्तमीमांसामें कहा है—

स्याद्वाद अर्थात् श्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनों ही सर्व तत्त्वोंके प्रकाशक हैं किन्तु भेद यही है कि केवलज्ञान साक्षात् प्रत्यक्ष जानता है और श्रुतज्ञान परोक्ष जानता है। जो इन दोनों ज्ञानोंमें-से एकका भी विषय नहीं है वह अवस्तु है ॥३६९॥

अब शास्त्रकार पैंसठ गाथाओंसे अवधिज्ञानका कथन करते हैं—

'अवधीयते' अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके द्वारा जिसका परिमाण किया जाता है वह अवधि है। अर्थात् जैसे मति, श्रुत और केवलज्ञानका विषय द्रव्यादिकी अपेक्षा

विहितमुक्तं भवगुणप्रत्ययविहितं भवप्रत्ययत्वदिंदं गुणप्रत्ययत्वदिंदं पेळल्पट्टुदं तद्दिवमवधिज्ञान-मिति। अंतप्पिवनवधिज्ञानमें दितु ब्रुवंति अर्हंदादिगळु पेळ्वरु। सीमाविषयमनुळ्ळवधिज्ञानं भवप्रत्ययमें दु गुणप्रत्ययमें दितु द्विविधमक्कुमें बुदुतात्पर्य्यं।

भवपच्चइगो सुरणिरयाणं तित्थेवि सव्वअंगुत्थो।
गुणपच्चइगो णरतिरियाणं संखादिचिण्हंभवो ॥३७१॥

भवप्रत्ययकं सुरनारकाणां तीर्त्थेपि सर्व्वांगोत्थं। गुणप्रत्ययकं नरतिरश्चां शंखादि-चिह्नभवं ॥

भवप्रत्ययावधिज्ञानं देवर्कळोळं नारकरोळं चरमभवतीर्त्थंकरोळं संभविसुगुमदुवुमवरोळु सर्व्वांगोत्थमक्कुं। सर्व्वात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणंवीर्य्यांतरायद्वयक्षयोपशमोत्पन्नमें बुदर्त्थं। गुण-प्रत्ययावधिज्ञानं पर्य्याप्तमनुष्यर्गं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यंचर्गं संभविसुगुमदुवुमवरोळु शंखादि-चिह्नभवं नाभिप्रदेशर्दिदं मेगण शंखपद्मवज्रस्वस्तिकझषकलशादिशुभचिह्नलक्षितात्मप्रदेशस्था-वधिज्ञानावरणवीर्य्यांतरायकर्म्मद्वयक्षयोपशमोत्थमें बुदर्त्थं। भवप्रत्ययावधिज्ञानदोळु दर्शनविशुद्ध्या-दिगुणसद्भावमादोडमदनपेक्षिसदे भवप्रत्ययत्वमरियल्पडुगुं। गुणप्रत्ययावधिज्ञानदोळु तिर्य्यग्-मनुष्यभवसद्भावमादोडमदनपेक्षिसदे गुणप्रत्ययत्वमरियल्पडुगुं।

त्रिधं भवगुणप्रत्ययविहित—भवः नरकादिपर्यायः, गुणः सम्यग्दर्शनविशुद्ध्यादि भवगुणौ प्रत्ययौ कारणे ताभ्या विहितमुक्तं भवगुणप्रत्ययविहित भवप्रत्ययत्वेन गुणप्रत्ययत्वेन अवधिज्ञानं द्विविधं कथितमित्यर्थ. ॥३७०॥

तत्र भवप्रत्ययावधिज्ञानं सुराणा नारकाणां चरमभवतीर्थकराणा च सभवति। तच्च तेषा सर्वांगोत्थं भवति। सर्वात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्यान्तरायकर्मद्वयक्षयोपशमोत्थं भवतीत्यर्थ। गुणप्रत्ययं अवधिज्ञान नराणा पर्याप्तमनुष्याणा तिरश्चा च सज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिरश्चा संभवति। तच्च तेषा शङ्खादिचिह्नभवं भवति, नाभेरुपरि शङ्खपद्मवज्रस्वस्तिकझषकलशादिशुभचिह्नलक्षितात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्यान्तराय-कर्मद्वयक्षयोपशमोत्पन्नमित्यर्थ.। भवप्रत्यये अवधिज्ञाने दर्शनविशुद्ध्यादिगुणसद्भावेऽपि तदनपेक्षयैव भवप्रत्य-यत्वं ज्ञातव्यम्। गुणप्रत्ययेऽवधिज्ञाने तिर्यग्मनुष्यभवसद्भावेऽपि तदनपेक्षयैव गुणप्रत्ययत्व ज्ञातव्यम् ॥३७१॥

अपरिमित है वैसा इसका नहीं है। परमागममें जो तीसरा सीमा विषयक ज्ञान कहा है उसे अर्हन्त आदि अवधिज्ञान कहते हैं। भव अर्थात् नरकादि पर्याय और गुण अर्थात् सम्यग्दर्शन विशुद्धि आदि। भव और गुण जिनके कारण हैं वे भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय नामक अवधिज्ञान हैं। इस तरह अवधिज्ञानके दो भेद हैं ॥३७०॥

उनमें-से भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवों, नारकियों और चरमशरीरी तीर्थंकरोंके होता है। तथा यह समस्त आत्माके प्रदेशोंमें वर्तमान अवधिज्ञानावरण और वीर्यान्तराय नामक दो कर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है इसलिए इसे सर्वांगसे उत्पन्न कहा जाता है। गुण-प्रत्यय अवधिज्ञान पर्याप्त मनुष्योंके और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचोंके होता है। और वह उनके शंख आदि चिह्नोंसे उत्पन्न होता है। अर्थात् नाभिसे ऊपर शंख, पद्म, वज्र, स्वस्तिक, मच्छ, कलश आदि शुभ चिह्नोंसे युक्त आत्मप्रदेशोंमें स्थित अवधिज्ञानावरण और वीर्यान्त-राय कर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है। भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भी सम्यग्दर्शन, विशुद्धि आदि गुण रहते हैं फिर भी उसकी उत्पत्तिमें उन गुणोंकी अपेक्षा नहीं होती, मात्र भवधारण करनेसे ही अवधिज्ञान होता है इसीलिए उसे भवप्रत्यय कहते हैं। गुणप्रत्यय अवधिज्ञानमें यद्यपि मनुष्य और तिर्यंचका भव रहता है फिर भी अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें उसकी अपेक्षा

गुणपच्चइगो छद्धा अणुगावट्ठिदपवड्ढमाणिदरा ।
देसोही परमोही सव्वोहित्ति य तिधा ओही ॥३७२॥

गुणप्रत्ययकः षोढा अनुगावस्थितप्रवर्द्धमानेतरे । देशावधिः परमावधिः सर्वावधिरिति च त्रिधावधिः ॥

आवुदोंदु गुणप्रत्ययावधिज्ञानमदु अनुगमनुगामियेंदुमवस्थितमेंदु प्रवर्द्धमानमेंदुं मूरुतेरनप्पुवु । इतरंगळु अननुगमननुगामियेंदुमनवस्थितमेंदुं हीयमानमुमेंदितु मूरुतेरनप्पुवंतु कूडि अनुगामि अननुगामि अवस्थितमनवस्थित वर्द्धमानहीयमानमेंदितु षड्विधमक्कुमल्लि आवुदोंदवधिज्ञानं तन्न स्वामियप्प जीवनं बळिसल्गुमदनुगामियेंबुदक्कुमदुवुं क्षेत्रानुगामियेंदुं भवानुगामियेंदुं उभयानुगामियेंदितु त्रिविधमक्कुमल्लि आवुदोंदु तां पुट्टिद क्षेत्रदिंदमन्यक्षेत्रदोळु विहारिसुव जीवनं बळिसल्गुं । भवांतरदोळु बळिसल्लददु क्षेत्रानुगामियेंबुदक्कुमावुदोंदु तां पुट्टिद भवदिंदमन्यभवदोळं स्वस्वामियं बळिसल्गुमदु भवानुगामियेंबुदक्कुमावुदोंदु तां पुट्टिद क्षेत्रभवंगळेरडरत्तणिंदमन्यभरतैरावतविदेहादिक्षेत्रदोळं देवमनुष्यादिभवंगळोळं वर्त्तमानजीवमुं बळिसल्गुमदुभयानुगामियेंबुदक्कुमावुदोंदु तन्न स्वामियप्प जीवनं बळिसलुवुदल्लददननुगामियेंबुदक्कुमदुवुं क्षेत्राऽननुगामियेंदुं भवाननुगामियेंदुमुभयाननुगामियेंदुं त्रिविधमक्कुं । मल्लि आवुदोंदु क्षेत्रांतरमं बळिसल्वुदल्तदु तां पुट्टिद क्षेत्रदोळे किडुगुं । भवांतरं बळिसलगे मेण्माणगे अदु क्षेत्रा-

यद्गुणप्रत्ययावधिज्ञानं तदनुगाम्यननुगाम्यवस्थितमनवस्थितं प्रवर्धमानं हीयमानं चेति षड्विधम् । तत्र यदवधिज्ञान स्वस्वामिन जीवमनुगच्छति तदनुगामि । तच्च क्षेत्रानुगामि भवानुगामि उभयानुगामीति त्रिविधम् । यत् स्वोत्पत्तिक्षेत्रात् अन्यक्षेत्रे विहरन्तं जीवमनुगच्छति भवान्तरं नानुगच्छति तत्क्षेत्रानुगामि भवति । यत् उत्पत्तिभवादन्यभवे स्वस्वामिनं अनुगच्छति तद्भवानुगामि भवति । यत्स्वोत्पत्तिक्षेत्रभवाभ्या अन्यत्र भरतैरावतविदेहादिक्षेत्रे देवमनुष्यादिभवे च वर्तमानं जीवमनुगच्छति तदुभयानुगामि भवति । यदवधिज्ञानं स्वस्वामिन जीवं नानुगच्छति तदननुगामि । तदपि क्षेत्राननुगामि भवाननुगामि उभयाननुगामीति त्रिविधम् । तत्र यत्क्षेत्रान्तरं न गच्छति स्वोत्पत्तिक्षेत्रे एव विनश्यति भवान्तरं गच्छतु वा मा गच्छतु तत् क्षेत्राननुगामि । यद्भवान्तरं नानुगच्छति स्वोत्पत्तिभव एव विनश्यति, क्षेत्रान्तरं गच्छतु वा मा वा गच्छतु

नहीं होती, केवल सम्यग्दर्शनादि गुणोंके कारण ही अवधिज्ञान प्रकट होता है इसलिए वह गुणप्रत्यय कहा जाता है ॥३७१॥

गुणप्रत्यय अवधिज्ञान, अनुगामी, अननुगामी, अवस्थित, अनवस्थित, वर्धमान, हीयमानके भेदसे छह प्रकारका है। उनमें-से जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीवका अनुगमन करता है वह अनुगामी है। वह तीन प्रकारका है—क्षेत्रानुगामी, भवानुगामी और उभयानुगामी। जो अवधिज्ञान अपने उत्पत्तिक्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमें जानेवाले जीवके साथ जाता है, किन्तु भवान्तरमें साथ नहीं जाता वह क्षेत्रानुगामी है। जो उत्पत्तिक्षेत्रसे स्वामीका मरण होनेपर दूसरे भवमें भी साथ जाता है वह भवानुगामी है। जो अपने उत्पत्तिक्षेत्र और भवसे अन्यत्र भरत, ऐरावत, विदेह आदि क्षेत्रमें और देव, मनुष्य आदिके भवमें जीवका अनुगमन करता है वह उभयानुगामी है। जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीवका अनुगमन नहीं करता वह अननुगामी है। वह भी क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी, उभयाननुगामीके भेदसे तीन प्रकारका है। जो अवधि अन्य क्षेत्रमें नहीं जाता अपने उत्पत्तिक्षेत्रमें ही नष्ट हो जाता है,

ननुगामियें बुदक्कुमावुदोंदु भवांतरमं बळिसल्वुवल्लु तां पुट्टिद भवदोळे केडुगुं। क्षेत्रांतरमं बळिसळगे मेण्माण्गे अदु भवाननुगामियें बुदक्कुमावुदोंदु क्षेत्रांतरमं भवांतरमुमं बळिसल्वुवल्लु। स्वोत्पन्नक्षेत्रभवंगळोळे केडुगुमदुभयाननुगामियें बुदक्कुमावुदोंदु हानियुं वृद्धियुं इल्लदे सूर्य्य-मंडलदंतेकप्रकारमागिरुत्तिक्कुमदु अवस्थितावधियें बुदक्कुमावुदोंदु ओम्मे पेर्च्चुगुमोम्मे कुंदुगुमोम्मे यवस्थितमागिक्कुमदनवस्थितावधिज्ञानमें बुदक्कु। मावुदोंदु शुक्लपक्षद चंद्रमंडलदंते स्वोत्कृष्टपर्य्यंतं पेर्च्चुगुमदु वर्द्धमानदेशावधियें बुदक्कुं। आवुदोंदु कृष्णपक्षद चंद्रमंडलदंते स्वक्षय-पर्य्यंतं कुंदुगुमदु हीयमानदेशावधियेंबुदक्कुमंते सामान्यदिदमवधिज्ञानं देशावधियें दुं दक्के परमाव-धियें दुं सर्व्वावधियुमेंदितु त्रिधा त्रिप्रकारमक्कुमिनितु गुणप्रत्ययमप्प देशावधिये षट्प्रकारमक्कुं परमावधिसर्व्वावधिगळल्लेंबुदर्थं।

भवपच्चइगो ओहो देसोही होदि परमसव्वोही।

गुणपच्चइगो णियमा देसोही वि य गुणे होदि ॥३७३॥

भवप्रत्ययावधिर्देशावधिर्भवति परमसर्व्वावधिः। गुणप्रत्ययौ नियमाद् भवतः देशावधिरपि च गुणे भवति ॥

आवुदोंदु पूर्व्वोक्तभवप्रत्ययावधियदुनियमादवश्यंभावात् देशावधियेयक्कुं। देवनारकरु-गळगं गृहस्थतीर्थकररंगेयुं परमावधियुं सर्व्वावधियुं संभविसवप्पुदरिंदं, परमावधियुं सर्व्वावधियुं नियमदिदं गुणप्रत्ययंगळेयप्पुवेकें दोडे संयमलक्षणगुणभवदोळा येरडक्कभावमप्पुदरिंदं देशावधियुं-

---

तद्भवाननुगामि। यत् क्षेत्रान्तरं भवान्तरं च नानुगच्छति स्वोत्पन्नक्षेत्रभवयोरेव विनश्यति तत् क्षेत्रभवाननु-गामि। यद्धानिवृद्धिभ्या विना सूर्यमण्डलवत् एकप्रकारमेव तिष्ठति तदवस्थितम्। यत् कदाचिद्वर्धते कदाचिद्धीयते कदाचिदवतिष्ठते च तदनवस्थितम्। यत् शुक्लपक्षस्य चन्द्रमण्डलवत् स्वोत्कृष्टपर्यन्तं वर्द्धते तद् वर्धमानम्। यत् कृष्णपक्षचन्द्रमण्डलवत् स्वक्षयपर्यन्त हीयते तद्धीयमानं देशावधिज्ञान भवति। तथा सामान्येन अवधिज्ञानं देशावधिः परमावधिः सर्वावधिश्च इति त्रिधा त्रिप्रकार भवति। एवं गुणप्रत्ययो देशावधिः षोढा न परमावधिसर्वावधी इत्यर्थः ॥३७२॥

यः पूर्वोक्तो भवप्रत्ययोऽवधिः स नियमात्—अवश्यंभावात् देशावधिरेव भवति देवनारकयोर्गृहस्थ-तीर्थकरस्य च परमावधिसर्वावध्योरसंभवात्। परमावधिः सर्वावधिश्च द्वावपि नियमेन गुणप्रत्ययावेव भवत

भवान्तरमें जाये या न जावे, वह क्षेत्राननुगामी है। जो अन्य भवमें साथ नहीं जाता अपने उत्पत्तिभवमें ही छूट जाता, अन्य क्षेत्रमें जाये या न जाये, वह भवाननुगामी है। जो न अन्य क्षेत्रमें साथ जाता है और न अन्य भवमें साथ जाता है अपने उत्पत्तिक्षेत्र और भवमें ही छूट जाता है वह क्षेत्र भवाननुगामी है। जो हानि-वृद्धिके बिना सूर्यमण्डलकी तरह एक रूप ही रहता है वह अवस्थित है। जो कभी बढ़ता है, कभी घटता है, कभी तदवस्थ रहता है वह अनवस्थित है। जो शुक्लपक्षके चन्द्रमण्डलकी तरह अपने उत्कृष्टपर्यन्त बढ़ता है वह वर्धमान है। जो कृष्णपक्षके चन्द्रमण्डलकी तरह अपने क्षयपर्यन्त घटता है वह हीयमान है। तथा सामान्यसे अवधिज्ञान देशावधि, परमावधि, सर्वावधिके भेदसे तीन प्रकार है। इस प्रकार गुणप्रत्यय देशावधि छह प्रकारका है परमावधि सर्वावधि नहीं ॥३७२॥

पूर्वोक्त भवप्रत्यय अवधि नियमसे देशावधि ही होता है, क्योंकि देव, नारकी और गृहस्थ अवस्थामें तीर्थंकरके परमावधि सर्वावधि नहीं होते। परमावधि और सर्वावधि

गुणे दर्शनविशुद्धयादिलक्षणगुणमुंटागुत्तिरलेयक्कुं। मितु गुणप्रत्ययंगळ्मूरुमवधिगळुं संभविसुववुं। भवप्रत्ययं देशावधियेयेंदितु निश्चितमाय्तु।

देसोहिस्स य अवरं णरतिरिये होदि संजदम्मि वरं।

परमोही सव्वोही चरमसरीरस्स विरदस्स ॥३७४॥

देशावधिरवरं नरतिर्य्यक्षु भवति संयते वरं। परमावधिः सर्व्वावधिश्चरमशरीरस्य विरतस्य॥

देशावधिज्ञानद जघन्यं नररोळं तिर्य्यंचरोळं संयतरोळमसंयतरोळमक्कुं। देवनारकरोळप्पुदु एकेंदोडे देशावधिय सव्वोत्कृष्टं नियमदिदं मनुष्यगतिय सकलसंयतरोळेयक्कु–। मितरगतित्रयदोळिल्लेकेंदोडे महाव्रताभावमप्पुदरिंदं। परमावधिसर्व्वावधिगळेरडुं जघन्यदिदमुमुत्कृष्टदिदमुं मनुष्यगतियोळे चरमांगरप्प महाव्रतिगळ्गेये संभविसुववु। चरमं संसारांतर्वत्तितद्भवमोक्षकारणरत्नत्रयाराधकजीवसंबंधिशरीरं वज्रऋषभनाराचसंहननयुक्तं यस्यासौ चरमशरीरः।

पडिवादी देसोही अप्पडिवादी हवंति सेसा ओ।

मिच्छत्तं अविरमणं ण य पडिवज्जंति चरिमदुगे ॥३७५॥

प्रतिपाती देशावधिरप्रतिपातिनौ भवतः शेषौ अहो। मिथ्यात्वमविरमणं न च प्रतिपद्यन्ते चरमद्विके॥

सम्यक्त्वमुं चारित्रमुमेंबी येरडरिंदं बळिचे मिथ्यात्वाऽसंयमंगळप्राप्ति प्रतिपातमक्कुमदनुळ्ळुदं प्रतिपातियक्कुमितप्प प्रतिपाति देशावधियेयक्कं। शेष परमावधि सर्व्वावधिगळेरडुम-

संयमलक्षणगुणाभावे तयोरभावात्। देशावधिरपि गुणे दर्शनविशुद्धयादिलक्षणे सति भवति। एवं गुणप्रत्ययास्त्रयोऽप्यवधयः संभवन्ति। भवप्रत्ययस्तु देशावधिरेवेति निश्चितं जातम् ॥३७३॥

देशावधेर्ज्ञानस्य जघन्यं नरतिरश्चोरेव संयतासंयतयोः भवति, न देवनारकयोः। देशावधेः सर्वोत्कृष्ट तु नियमेन मनुष्यगतिसकलसंयते एव भवति नेतरगतित्रये तत्र महाव्रताभावात्। परमावधिसर्वावधी द्वावपि जघन्येनोत्कृष्टेन च मनुष्यगतावेव चरमाङ्गस्य महाव्रतिन एव सभवतः। चरमं संसारान्तर्वर्तितद्भवमोक्षकारणरत्नत्रयाराधकजीवसंबन्धि शरीरं वज्रऋषभनाराचसंहननयुतं यस्यासौ चरमशरीर. ॥३७४॥

सम्यक्त्वचारित्राभ्यां प्रच्युत्य मिथ्यात्वासयमयो. प्राप्तिः प्रतिपात., तद्युतः प्रतिपाती स तु देशावधिरेव

नियमसे गुणप्रत्यय ही होते हैं। क्योंकि संयमगुणके अभावमें वे दोनों नहीं होते। देशावधि भी दर्शनविशुद्धि आदि गुणोंके होनेपर होता है। इस प्रकार गुणप्रत्यय तो तीनों भी अवधि होते हैं। किन्तु भवप्रत्यय देशावधि ही है यह निश्चित हुआ ॥३७३॥

देशावधिज्ञानका जघन्य भेद संयमी या असंयमी मनुष्यों और तिर्यंचोंके ही होता है, देवों और नारकियोंके नहीं होता। किन्तु देशावधिका सर्वोत्कृष्ट भेद नियमसे सकलसंयमी मनुष्यके ही होता है, शेष तीन गतियोंमें नहीं होता, क्योंकि वहाँ महाव्रत नहीं होते। परमावधि सर्वावधि जघन्य भी और उत्कृष्ट भी मनुष्यगतिमें ही चरमशरीरी महाव्रतीके ही होते हैं। चरम अर्थात् संसारके अन्तमें होनेवाले उसी भवसे मोक्षके कारण रत्नत्रयकी आराधना करनेवाले जीवके होनेवाला वज्रवृषभनाराच संहननसे युक्त शरीर जिसका है उसीके होते हैं। वही चरमशरीरी है ॥३७४॥

सम्यक्त्व और चारित्रसे च्युत होकर मिथ्यात्व और असंयममें आनेको प्रतिपात कहते हैं। और जिसका प्रतिपात होता है वह प्रतिपाती है। देशावधि ही प्रतिपाती है।

प्रतिपातिगळेयप्पुवु। चरमद्विके परमावधिसर्व्वावधिद्विकवोळु जीवंगळु नियमदिदं मिथ्यात्वमुमनविरमणमुमं न च प्रतिपद्यंते पोद्दुवव रल्लरदु कारणदिदमा येरडुमप्रतिपातिगळेयप्पुवदु कारणदिदं देशावधिज्ञानं प्रतिपातियुमप्रतिपातियुमप्पुदें बुदु सुनिश्चितं।

दव्वं खेत्तं कालं भावं पडि रूवि जाणदे ओही।
अवरादुक्कस्सो त्ति य वियप्परहिदो दु सव्वोही ॥३७६॥

द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं प्रति रूपि जानीते अवधिः। अवरादुत्कृष्टपर्य्यंतं विकल्परहितस्तु सर्व्वावधिः॥

अवरात् जघन्यविकल्पमोदलगोंडु उत्कृष्टविकल्पपर्य्यंतमसंख्यातलोकमात्रविकल्पमनुळ्ळवधिज्ञानं द्रव्यमं क्षेत्रमं कालमं भावमं प्रति प्रति प्रतिनियतसीमेयं माडि रूपि पुद्गलद्रव्यमं तत्संबंधिसंसारिजीवद्रव्यमुमं जानीते प्रत्यक्षमागरिगुं। तु मत्ते सर्व्वावधिज्ञानं विकल्परहितं जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहितमक्कुमवस्थितैकरूपमुं हानिवृद्धिरहितमुं परमोत्कर्षप्राप्तमुमें बुदत्थं। अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमसर्व्वोत्कृष्टमुमल्लिये संभविसुगुं। अदुकारणदिदं देशावधि परमावधिगळोळे जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पंगळु संभविसुगुमें बुदु निश्चितमक्कुं।

णोकम्मुरालसंचं मज्झिमजोगाज्जियं सविस्सचयं।
लोयविभत्तं जाणदि अवरोही दव्वदो णियमा ॥३७७॥

नोकर्म्मौदारिकसंचयं मध्यमयोगार्जितं सविस्रसोपचयं। लोकविभक्तं जानाति अवरावधिर्द्रव्यतो नियमात्॥

भवति। शेषौ परमावधिसर्वावधी द्वावपि अप्रतिपातिनावेव भवत, चरमद्विके—परमावधिसर्वावधिद्विके[1] जीवाः नियमेन मिथ्यात्वं अविरमणं च न प्रतिपद्यन्ते ततः कारणात् तौ द्वावपि अप्रतिपातिनौ, देशावधिज्ञानं प्रतिपाति अप्रतिपाति च इति निश्चितम् ॥३७५॥

अवरात् जघन्यविकल्पादारभ्य उत्कृष्टविकल्पपर्यन्त असंख्यातलोकमात्रविकल्प अवधिज्ञानं द्रव्यं क्षेत्रं काल भावं च प्रतीत्य—नियतसीमा कृत्वा रूपि पुद्गलद्रव्य तत्सबन्धि ससारिजीवद्रव्यं च जानीते प्रत्यक्षतया अवबुध्यते। तु—पुनः सर्वावधिज्ञानं जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहितं अवस्थितं हानिवृद्धिरहितं परमोत्कर्षप्राप्तमित्यर्थः, अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमसर्वोत्कृष्टस्य तत्रैव संभवात्, ततः कारणाद् देशावधिपरमावध्योर्जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पा संभवन्तीति निश्चितं भवति ॥३७६॥

शेष परमावधि सर्वावधि दोनों अप्रतिपाती ही हैं। 'चरिमदुगे' अर्थात् परमावधि सर्वावधि जिनके होते हैं वे जीव मिथ्यात्व और अविरतिको प्राप्त नहीं होते। इस कारण वे दोनों अप्रतिपाती हैं और देशावधिज्ञान प्रतिपाती भी है अप्रतिपाती भी है, यह निश्चित हुआ ॥३७५॥

अवधिज्ञानके जघन्य भेदसे लेकर उत्कृष्ट भेद पर्यन्त असंख्यातलोक प्रमाण भेद हैं। वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादाके अनुसार रूपी पुद्गल द्रव्य और उससे सम्बद्ध संसारी जीवोंको प्रत्यक्ष रूपसे जानता है। किन्तु सर्वावधिज्ञान जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदसे रहित है, अवस्थित है, उसमें हानि-वृद्धि नहीं होती। इसका अर्थ है कि वह परम उत्कर्षको प्राप्त है, क्योंकि अवधिज्ञानावरणका सर्वोत्कृष्ट क्षयोपशम वहीं होता है। इससे यह निश्चित होता है कि देशावधि और परमावधिके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद होते हैं ॥३७६॥

---

१. ब °द्विको जीवः।

देशावधिजघन्यज्ञानं द्रव्यतः द्रव्यदिदं मध्यमयोगार्ज्जितमप्प नोकर्म्मौदारिकसंचयमं द्व्यर्द्ध-गुणहानिप्रमितसमयप्रबद्धसमूहरूपमं स्वयोग्यविस्रसोपचयपरमाणुसंयुक्तमं लोकदिदं भागिसल्पट्टुदं नियमदिदं तावन्मात्रमने जानाति प्रत्यक्षमागरिगुमदरिदं किरिदनरियदेबुदत्थं । जघन्ययोगार्ज्जित-मप्प नोकर्म्मौदारिकसंचयक्कल्पत्वमनरिवदक्के सूक्ष्मत्वसंभवदिदं । तद्ग्रहणदोळु तद्ज्ञानक्के शक्तिअभावमप्पुदरिदं । उत्कृष्टयोगार्ज्जितनोकर्म्मौदारिकसंचयक्के स्थूलत्वमक्कुं तद्ग्रहणदोळु प्रतिषेधरहितत्वदिदमदरिदं नियमदिदं मध्यमयोगार्ज्जितमप्प नोकर्म्मौदारिकसंचयद्रव्यनियमं

पेळल्पट्टुदु स ० । १२– । १६ ख
≡

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्मि ।
अवरोगाहणमाणं जहण्णयं ओहिखेत्तं तु ॥३७८॥

सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये । अवरावगाहनमानं जघन्यमवधिक्षेत्रं तु ॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकन पुट्टिद तृतीयसमयदोळावुदोंदु पूर्व्वोक्तजघन्यावगाहनमानमदु तु मत्ते जघन्यदेशावधिज्ञानविषयमप्प क्षेत्रप्रमाणमक्कुं ६ । ८ । २२

०

प १९ । ८९ । ८ । २२ । १९
० ० ०

देशावधिजघन्यज्ञानं द्रव्यतः मध्यमयोगार्जित नोकर्मौदारिकसंचयं द्व्यर्धगुणहानिप्रमितसमयप्रबद्धसमूह-रूपं स्वयोग्यविस्रसोपचयपरमाणुसंयुक्तं लोकेन विभक्तं नियमेन तावन्मात्रमेव जानाति–प्रत्यक्षतया अवबुध्यते न ततोऽल्पमित्यर्थ. । जघन्ययोगार्जितस्य नोकर्मौदारिकसंचयस्य अल्पत्वं ततोऽस्य सूक्ष्मत्वसंभवात् । तद्ग्रहणे तज्ज्ञानस्य शक्त्यभावात् । उत्कृष्टयोगार्जितनोकर्मौदारिकसंचयस्य स्थूलत्वं भवति तद्ग्रहणे प्रतिषेधाभावात् ।

तेन नियमान्मध्यमयोगार्जितनोकर्मौदारिकसंचयो द्रव्यनियमः कथितः । स ० १२—१६ खं ॥३७७॥
≡

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य उत्पत्तितृतीयसमये यत्पूर्वोक्तजघन्यावगाहनं तत् तु–पुनः जघन्यदेशावधि-

मध्यम योगके द्वारा उपार्जित नोकर्म औदारिक शरीरके संचयको, जो डेढ़ गुण हानि प्रमाण समयबद्धोंका समूहरूप है और अपने योग्य विस्रसोपचयके परमाणुओंसे संयुक्त है उसमें लोकराशिसे भाग देनेपर जो एक भाग मात्र द्रव्य होता है उसे जघन्य देशावधि ज्ञान जानता है। उससे कमको नहीं जानता। जघन्य योगके द्वारा उपार्जित नोकर्म औदारिक शरीरका संचय उससे अल्प होनेसे सूक्ष्म होता है। उसको जाननेकी शक्ति इस ज्ञानकी नहीं है। और उत्कृष्ट योगसे उपार्जित नोकर्म औदारिकका संचय स्थूल होता है उसको जाननेका निषेध नहीं है। तथा विस्रसोपचय रहित सूक्ष्म होता है इसलिए उसको जाननेकी शक्ति नहीं है। इस प्रकार उक्त संचयके घनलोकके प्रदेश प्रमाण खण्ड करके उनमें-से एकखण्डरूप अतीन्द्रिय पुद्गल स्कन्धको सबसे जघन्य देशावधिज्ञान प्रत्यक्ष जानता है, इस प्रकार द्रव्यका नियम कहा है ॥३७७॥

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके उत्पत्तिके तीसरे समयमें जो जघन्य अवगाहनाका प्रमाण पहले कहा है वह जघन्य देशावधि ज्ञानके विषयभूत क्षेत्रका प्रमाण होता है। इतने

इनितु क्षेत्रदोळु पूर्व्वोक्तजघन्यद्रव्यंगळेनितोळवनितुमं जघन्यदेशावधिज्ञानमरिगुमल्लियं पोरगिद्दुंवनरियदें वितु क्षेत्रसीमे पेळल्पट्टुदु ।

अवरोहिखेत्तदीहं वित्थारुस्सेहयं ण जाणामो ।
अण्णं पुण समकरणे अवरोगाहणपमाणं तु ॥३७९॥

अवरावधिक्षेत्रदैर्घ्यं विस्तारोत्सेधकं न जानीमः । अन्यत्पुनः समकरणे अवरावगाहनप्रमाणं तु ।

जघन्यावधिविषयक्षेत्रदैर्घ्यविस्तारोत्सेधप्रमाणमं नामरियेवु ईगळदरुपदेशाभावमप्पुदरिदं । तु मत्ते परमगुरूपदेशपरंपरायातं मत्तों दुंटु समकरणदोळु भुजकोटिवेदिगळगे हीनाधिकभावमिल्लदे समीकरणमागुत्तिरलु पुट्टिद ·क्षेत्रफलं जघन्यावगाहनप्रमाणं घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रमक्कुमें-बिदने बल्लेवु ।

अवरोगाहणमाणं उस्सेहंगुलअसंखभागस्स ।
सूइस्स य घणपदरं होदि हु तक्खेत्तसमकरणे ॥३८०॥

अवरावगाहनमानमुत्सेधांगुलासंख्यातभागस्य । सूच्याश्च घनप्रतरं भवति खलु तत् क्षेत्रसमकरणे ।

अंतावोडा सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्य्याप्तकन जघन्यावगाहनमेंतुटेंदितु प्रश्नमागुत्तिरलुत्तरवचनमिदु तज्जघन्यावगाहनमनियतसंस्थानमक्कुमादोडं क्षेत्रखंडनविधानदिदं भुजकोटि वेदिगळगे समकरणमागुत्तिरलुत्सेधांगुलमं परिभाषानिष्पन्नव्यवहारसूच्यंगुलमनावुदानुमों द् संख्यातदिदं खंडिसि-

ज्ञानविषयभूतक्षेत्रप्रमाणं भवति ६ । ८ । २२ । एतावति क्षेत्रे पूर्वोक्तजघन्यद्रव्याणि यावन्ति संति तावन्ति

प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ११ ९

जघन्यदेशावधिज्ञानं जानाति न तद्बहिःस्थितानीति क्षेत्रसीमा कथिता ॥३७८॥

जघन्यावधिविषयक्षेत्रस्य दैर्घ्यविस्तारोत्सेधप्रमाणं न जानीमः । इदानी तदुपदेशाभावात् । तु पुनः परमगुरूपदेशपरम्परायात जघन्यावगाहनप्रमाणं समकरणे-समीकरणे कृते सति घनाङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रं भवति इत्यन्यत्पुनर्जानीम. ॥३७९॥

तर्हि तत्सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहन कीदृग् अस्ति ? इति चेत्, तदवगाहन अनियतसंस्थानमस्ति तथापि क्षेत्रखण्डनविधानेन भुजकोटिवेधाना समकरणे सति उत्सेधाङ्गुलपरिभाषानिष्पन्नव्यवहार-

क्षेत्रमें पूर्वोक्त प्रमाणवाले जितने जघन्य द्रव्य होते हैं उन सबको जघन्य देशावधिज्ञान जानता है । उस क्षेत्रसे बाहर स्थितको नहीं जानता । इस प्रकार जघन्य देशावधिज्ञानके क्षेत्रकी सीमा कही ॥३७८॥

हम जघन्य देशावधि ज्ञानके विषयभूत क्षेत्रकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई नहीं जानते, क्योंकि इस कालमें उसका उपदेश नहीं प्राप्य है । किन्तु परम गुरुके उपदेशकी परम्परासे इतना जानते हैं कि जघन्य अवगाहनाके प्रमाणका समीकरण करनेपर क्षेत्रफल घनांगुलके असंख्यातवे भाग मात्र होता ॥३७९॥

प्रश्न होता है कि वह सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना कैसी है ? इसका उत्तर यह है कि उस जघन्य अवगाहनाका आकार नियत नहीं है । फिर भी क्षेत्र

वेकभागमात्रभुजकोटिवेधिगळ अन्योन्यगुणकारोत्पन्नघनक्षेत्रं घनांगुलासंख्यातभागमात्रं खलु परमागमदोळु स्फुटं प्रसिद्धमप्पुदु बक्कुं। तत्समानं जघन्यदेशावधिज्ञानक्षेत्रमक्कुमेंदितु तात्पर्य्यं। तन्न्यासमिदु $\frac{२}{a}\ \frac{२}{a}\ \frac{२}{a}$ — गुणिसिदोडे घनांगुलासंख्यातभागमात्रमक्कुं $\frac{६}{a}$ च शब्दविद जघन्यावगाहनमुं जघन्यदेशावधिक्षेत्रमुमीप्रकारमप्पुवेंदितु समुच्चिसल्पट्टुदु।

अवरं तु ओहिखेत्तं उस्सेहं अंगुलं हवे जम्हा।
सुहुमोगाहणमाणं उवरि पमाणं तु अंगुलयं ॥३८१॥

जघन्यं त्ववधिक्षेत्रं उत्सेधांगुलं भवेद्यस्मात्। सूक्ष्मावगाहनमानमुपरि प्रमाणं त्वंगुलं।

तु मत्ते जघन्यदेशावधिज्ञानविषयक्षेत्रमावुदोंदु जघन्यावगाहनसमानं घनांगुलासंख्यातभागमात्रं पेळल्पट्टुदवुत्सेधांगुलमक्कुं। व्यवहारांगुलमनाश्रयिसि ये पेळल्पट्टुदु। प्रमाणात्मांगुलमनाश्रयिसि पेळल्पट्टुदिल्लदेकेंदोडे आवुदोंदु कारणदिदं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाह-

सूच्यङ्गुलं असंख्यातेन भक्त्वा तदेकभागमात्रभुजकोटिवेधाना अन्योन्यगुणनोत्पन्नघनाङ्गुलासंख्यातभागमात्र खलु परमागमे स्फुट प्रसिद्धमागच्छति। तत्समानजघन्यदेशावधिज्ञानक्षेत्रमित्यर्थः $\frac{२}{a}$ । $\frac{२}{a}$ । $\frac{२}{a}$ गुणिते घनाङ्गुलासंख्यातमात्रं भवति $\frac{६}{a}$ ॥३८०॥

तु—पुनः, जघन्यदेशावधिज्ञानविषयक्षेत्रं यज्जघन्यावगाहनसमानं घनाङ्गुलासंख्यातभागमात्रमुक्तं तदुत्सेधाङ्गुलं व्यवहाराङ्गुलमाश्रित्योक्तं भवति न प्रमाणाङ्गुलं नाप्यात्माङ्गुलमाश्रित्य। यस्मात्कारणात्

खण्डन विधानके द्वारा भुज, कोटि और वेधका समीकरण करनेपर, उत्सेधांगुलको असंख्यातसे भाजित करके एक भाग प्रमाण भुज कोटि और वेधको परस्परमें गुणा करनेपर घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रफल होता है। उसीके समान जघन्य देशावधिज्ञानका क्षेत्र है।

विशेषार्थ—आमने-सामने दो दिशाओंमें-से किसी एक दिशा सम्बन्धी प्रमाणको भुज कहते हैं। शेष दो दिशाओंमें-से किसी एक दिशा सम्बन्धी प्रमाणको कोटि कहते हैं। ऊँचाईके प्रमाणको वेध कहते हैं। व्यवहारमें इन्हें ऊँचाई, चौड़ाई, लम्बाई कहते हैं। यहाँ जघन्य क्षेत्रकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई एक सी नहीं है कमती-बढ़ती है। किन्तु क्षेत्रखण्डन विधानके द्वारा समीकरण करनेपर ऊँचाई, चौड़ाई, लम्बाईका प्रमाण उत्सेधांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र होता है। उनको परस्परमें गुणा करनेपर घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण घनक्षेत्रफल होता है। इतना ही प्रमाण जघन्य अवगाहनाका है और इतना ही जघन्य देशावधिके क्षेत्रका है ॥३८०॥

जघन्य देशावधिज्ञानका विषय क्षेत्र जो जघन्य अवगाहनाके समान घनांगुलके असंख्यातवें भागमात्र कहा है वह उत्सेधांगुल व्यवहार अंगुलकी अपेक्षा कहा है, प्रमाणांगुल

नप्रमाणं जघन्यदेशावधिक्षेत्रमक्कु कारणदिदं व्यवहारांगुलमनाश्रयिसिये पेळल्पट्टुदु। तज्जघन्यावगाहनमुं परमागमदोळु देहगेहग्रामनगरादिप्रमाणमुत्सेधांगुलदिदमे यें दितु नियमितमप्पुदरिदं व्यवहारांगुलाश्रितमे यक्कुं। मेले यावुदो देडेयोळंगुलमावळिया एकभागमसंखेज्जमित्यादिगाथा सूत्रोक्तकांडकंगळोळु अंगुलग्रहणमल्लि प्रमाणांगुलमे ग्राह्यमक्कुमुत्तरोत्तर निर्दिश्यमानहस्तगव्यूतियोजनभरतादिक्षेत्रंगळ्गे प्रमाणांगुलाश्रितत्वदिदं।

अवरोहिखेत्तमज्झे अवरोही अवरदव्वमवगमइ।
तद्दव्वस्सवगाहो उस्सेहासंखघणपदरो ॥३८२॥

अवरावधिक्षेत्रमध्ये अवरावधिरवरद्रव्यमवगच्छति। तद्द्रव्यस्यावगाहः उत्सेधासंख्यघनप्रतरः।

जघन्यावधिक्षेत्रमध्यदोळिर्द्द पूर्व्वोक्तजघन्यद्रव्यमं जघन्यदेशावधिज्ञानमरिगुं। तत्क्षेत्रमध्यदोळिर्द्द असंख्यातंगळनौदारिकशरीरसंचयलोकभक्तैकभागप्रमितखंडंगळननितुमनरिगुमें बुदर्त्थं। तज्जघन्यपुद्गलस्कंधद मेले एकद्व्यादिप्रदेशोत्तरपुद्गलस्कंधंगळनरिगुमें बुदनिल्लि पेळल्वेडेकें दोडे सूक्ष्मविषयज्ञानक्के स्थूलावबोधनदोळु सुघटत्वमप्पुदरिदं। द्रव्यावगाहक्षेत्रं जघन्यावधिविषयक्षेत्रमं नोडलसंख्येयगुणहीनमक्कुमादोडं उत्सेधघनांगुलासंख्यातभागमात्रमक्कुं। मदर

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनप्रमाणं जघन्यदेशावधिक्षेत्रं ततः कारणात्, देहगेहग्रामनगरादिप्रमाणं उत्सेधाङ्गुलेनैवेति परमागमे नियमितत्वात् व्यवहाराङ्गुलमेवाश्रितं भवति। उपरि यत्र "अङ्गुलमावलियाए भागमसंखेज्जदो वि संखेज्जो, इत्यादिगाथासूत्रोक्तकाण्डकेषु अङ्गुलग्रहणं तत्र प्रमाणाङ्गुलमेव ग्राह्यं, उत्तरोत्तरनिर्दिश्यमानहस्तगव्यूतियोजनभरतादिक्षेत्राणां प्रमाणाङ्गुलाश्रितत्वात् ॥३८१॥

जघन्यावधिक्षेत्रमध्ये स्थितं पूर्वोक्तं जघन्यद्रव्यं जघन्यदेशावधिज्ञानं जानाति तत्क्षेत्रमध्यस्थितानि औदारिकशरीरसंचयस्य लोकविभक्तैकभागप्रमितखण्डानि[1] असंख्यातानि जानातीत्यर्थः। तज्जघन्यपुद्गलस्कन्धस्योपरि एकद्व्यादिप्रदेशोत्तरपुद्गलस्कन्धान् न जानातीति न वाच्यं, सूक्ष्मविषयज्ञानस्य स्थूलावबोधने सुघटत्वात्। द्रव्यावगाहक्षेत्रं तु जघन्यावधिविषयक्षेत्रादसंख्यातगुणहीनं भवति, तथाप्युत्सेधघनाङ्गुलासंख्यात-

या आत्मांगुलकी अपेक्षा नहीं, क्योंकि सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना प्रमाण जघन्य देशावधिका क्षेत्र है। और परमागममें यह नियम कहा है कि शरीर, घर, ग्राम, नगर आदिका प्रमाण उत्सेधांगुलसे ही मापा जाता है। इसलिये व्यवहार अंगुलका ही आश्रय लिया है। आगे 'अंगुलमावलियाए' आदि गाथासूत्रोंमें कहे गये काण्डकोंमें अंगुलका प्रमाण प्रमाणांगुलसे लिया है। उससे आगे भी जो हस्त, गव्यूति, योजन भरत आदि प्रमाण क्षेत्र कहा है वह सब प्रमाणांगुलसे ही लिया है ॥३८१॥

जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रके मध्यमें स्थित पूर्वोक्त जघन्य द्रव्यको जघन्य देशावधिज्ञान जानता है। अर्थात् उस क्षेत्रके मध्यमें औदारिक शरीरके संचयको लोकसे भाग देनेपर एक भाग प्रमाण जो असंख्यात खण्ड स्थित हैं उनको जानता है। उस जघन्य पुद्गल स्कन्धसे ऊपर एक-दो आदि अधिक प्रदेशवाले स्कन्धोंको वह नहीं जानता ऐसा नहीं है। क्योंकि जो ज्ञान सूक्ष्मको जानता है वह स्थूलको जाननेमें समर्थ होता है। द्रव्यकी अवगाहनाका प्रमाण जघन्य अवधिके विषयभूत क्षेत्रके प्रमाणसे असंख्यात गुणाहीन

१. ब, तन्यसंख्याखण्डानि जा°।

भुजकोटिवेधंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळरियल्पडुवुवु २/ǝǝ २/ǝǝ २/ǝǝ ।

आवलि असंखभागं तीद भविस्सं च कालदो अवरं ।
ओही जाणदि भावे काल असंखेज्जभागं तु ॥३८३॥

आवल्यसंख्यभागं अतीतं भविष्यं तं च कालतोवरावधिर्ज्जानाति भावे कालासंख्येय भागं तु ।

कालदिदं जघन्यावधिज्ञानं अतीत भविष्यत्कालमनावल्यसंख्यातभागमात्रमनरिगुं ८/ǝ स्वविषयैकद्रव्यगतव्यंजनपर्य्यायंगळनावल्यसंख्यातैकभागमात्रपूर्व्वोत्तरंगळ नरिगुमें बुदत्थं । एकें-दोडे व्यवहारकालक द्रव्यद पर्य्यायस्वरूपमल्लदन्यत् स्वरूपांतराभावमप्पुदरिदं । भावे भावदोळु तु मत्तें कालासंख्येयभागं तज्जघन्यावधिविषयकालावल्यसंख्यातैकभागद असंख्येयभागमात्रमन-रिगुं । इंतु जघन्यदेशावधिज्ञानविषयद्रव्यक्षेत्रकालभावं गळगे सीमाविभागमं पेळ्दु तद्देशावधिज्ञान-विकल्पंगळं चतुर्व्विधविषयभेददिदं पेळ्दपं ।

भागमात्रमेव भवति । तद्भुजकोटिवेधाः सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रा ज्ञातव्याः २/ǝǝ २/ǝǝ २/ǝǝ ॥३८२॥

कालेन जघन्यावधिज्ञान अतीतभविष्यत्कालमावल्यसंख्यातभागमात्रं जानाति ८/ǝ । स्वविषयैकद्रव्यगत-व्यञ्जनपर्यायान् पूर्वोत्तरान् तावतो जानातीत्यर्थः । व्यवहारकालस्य द्रव्यस्य पर्यायस्वरूपं विनाऽन्यस्वरूपान्त-राभावात् । भावे तज्जघन्यद्रव्यगतवर्तमानपर्याये तु पुनः कालासंख्येयभागं तज्जघन्यावधिविषयकालस्यावल्य-संख्यातैकभागस्य असंख्यातैकभागमात्रं जानाति ८/ǝǝ । एवं जघन्यदेशावधिज्ञानविषयद्रव्यक्षेत्रकालभावानां सी-माविभाग प्ररूप्येदानी द्वितीयादीन् देशावधिज्ञानविकल्पान् चतुर्विधविषयभेदानाह—

होता है। तथापि घनांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र ही होता है। उसके भुजा, कोटि और वेध सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र हैं ॥३८२॥

कालकी अपेक्षा जघन्य अवधिज्ञान आवलीके असंख्यातवें भागमात्र अतीत और अनागतकालको जानता है। अर्थात् अपने विषयभूत एक द्रव्यकी अतीत और अनागत व्यंजनपर्यायोंको आवलीके असंख्यातवें भागमात्र जानता है क्योंकि व्यवहारकालके और द्रव्यके पर्याय स्वरूपके बिना अन्य स्वरूप सम्भव नहीं है। भावकी अपेक्षा उस जघन्य द्रव्यगत वर्तमान पर्यायोंको कालके असंख्यातवें भाग जानता है अर्थात् जघन्य अवधिका विषय जो आवलीके असंख्यातवें भागमात्र काल है उसके असंख्यातवे भागमात्र अर्थपर्यायों-को जानता है ॥३८३॥

इस प्रकार जघन्य देशावधिज्ञानके विषय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी सीमाका विभाग कहकर अब देशावधिज्ञानके द्वितीय आदि विकल्पोंके विषयभूय द्रव्यादिको कहते हैं—

अवरद्व्वादुवरिमदव्ववियप्पाय होदि धुवहारो ।
सिद्धाणंतिमभागो अभव्वसिद्धादणंतगुणो ॥३८४॥

अवरद्रव्यादुपरितनद्रव्यविकल्पाय भवति ध्रुवहारः। सिद्धानंतैकभागोऽभव्यसिद्धादनंतगुणः ॥

जघन्यदेशावधिज्ञानविषयद्रव्यदिदं मेलणनंतरदेशावधिज्ञानविकल्पविषयद्रव्यविकल्पमं तरल्वेडि सिद्धानंतैकभागमुमभव्यसिद्धानंतगुणमुमप्प ध्रुवभागहारमरियल्पडुगुं ।

धुवहारकम्मवग्गणगुणगारं कम्मवग्गणं गुणिदे ।
समयपबद्धपमाणं जाणिज्जो ओहिविसयम्मि ॥३८५॥

ध्रुवहारकार्म्मणवर्गणागुणकारं कार्म्मणवर्गणां गुणिते । समयप्रबद्धप्रमाणं ज्ञातव्यमवधिविषये ॥

कार्म्मणवर्गणाया गुणकाराः कार्म्मणवर्गणागुणकाराः ध्रुवहाराश्चेते कार्म्मणवर्गणागुणकाराश्च ध्रुवहारकार्म्मणवर्गणागुणकारास्तान् । कार्म्मणवर्गणां च गुणितेऽवधिविषये समयप्रबद्धप्रमाणं भवतीति ज्ञातव्यं । गुण्यरूपदिनिर्द्द कार्म्मणवर्गणेगे गुणकाररूपदिनिर्द्द ध्रुवहारंगळं कार्म्मणवर्गणयुमं गुणिसुत्तिरलु अवधिविषयसमयप्रबद्धप्रमाणमक्कुमेंदु ज्ञातव्यमक्कुं ।

जघन्यदेशावधिविषयद्रव्यात् उपरितनद्वितीयाद्यवधिज्ञानविकल्पविषयद्रव्याणि आनेतु सिद्धानन्तकभाग', अभव्यसिद्धेभ्योऽनन्तगुण ध्रुवभागहार. स्यात् ॥३८४॥

द्विरूपोनदेशावधिविकल्पमात्रध्रुवहाराद् गत्युत्पन्नेन कार्मणवर्गणागुणकारेण द्विरूपाधिकपरमावधिज्ञानविकल्पमात्रध्रुवहारसवर्गसमुत्पन्नकार्मणवर्गणा गुणिता सती अवधिविषये समयप्रबद्धमात्रप्रमाण स्यादिति

जघन्य देशावधि ज्ञानके विषयभूत द्रव्यसे ऊपर द्वितीय आदि अवधिज्ञानके भेदोंके विषयभूत द्रव्योंको लानेके लिए सिद्ध राशिका अनन्तवाँ भाग और अभव्य राशिसे अनन्तगुणा ध्रुवभागहार होता है ॥

विशेषार्थ—पूर्वपूर्व द्रव्यमें जिस भागहारका भाग देनेसे आगेके भेदके विषयभूत द्रव्यका प्रमाण आता है वह ध्रुव भागहार है । जैसे जघन्य देशावधिज्ञानके विषयभूत द्रव्यमें भाग देनेसे जो प्रमाण आता है वह उसके दूसरे भेदके विषयभूत द्रव्यका प्रमाण होता है ॥३८४॥

देशावधिज्ञानके विकल्पोंमें दो घटानेपर जितना प्रमाण रहे उतनी जगह ध्रुवहारोंको स्थापित करके परस्परमें गुणा करनेपर जितना प्रमाण होता है उतना कार्मण वर्गणाका गुणकार होता है । और परमावधिज्ञानके विकल्पोंमें दो अधिक करनेपर जितना प्रमाण हो उतनी जगह ध्रुवहारोंको स्थापित करके परस्परमें गुणा करनेपर जितना प्रमाण हो वह कार्मणवर्गणा होती है । कार्मणवर्गणाके गुणकारसे कार्मणवर्गणाको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह अवधिज्ञानका विषय समयप्रबद्ध जानना । अर्थात् जो जघन्य देशावधिका विषय-

---

१. ध्रुवहारक्के सदृष्टि नवाकं तत्प्रमाण मुंदे पेळल्पडुगुमीग पेळ्वुदेके दोडे देशावधिय चरमद्रव्याविकल्पंगळं बिट्टु त्रिचरमदोळ्तोडगि प्रथमविकल्पपर्य्यंतमेकादयेकोत्तरक्रमदिनिळिदिळिदु बद्दु प्रथमविकल्पदोळु तावन्मात्रध्रुवहारगळि कार्म्मणवर्गणेयं गुणियिसिद लब्धप्रमाणसमान प्रथमद्रव्यमेंबुदत्थं ॥

विशेषदिंदं ध्रुवहारप्रमाणमं पेळ्दपं :—

मणदव्ववग्गणाण वियप्पाणंतिमसमं खु धुवहारो ।
अवरुक्कस्सविसेसा रूवहिया तव्वियप्पा हु ॥३८६॥

मनोद्रव्यवर्गणानां विकल्पानामनंतैकभागसमः स्फुटं ध्रुवहारः । अवरोत्कृष्टविशेषाः रूपाधिकास्तद्विकल्पाः खलु ॥

ध्रुवहारप्रमाणमरियल्पडुगुमदें तें दोडे मनोद्रव्यवर्गणेगळ विकल्पंगळिनितोळवनि $\frac{\overline{ज}\ १}{ख}$ तदनंतैकभागदोडने $\frac{\overline{ज}\ १}{ख\ ख}$ समानमक्कुं। खलु स्फुटमागि। अंतादोडा मनोद्रव्यवर्गणाविकल्पंगळ्तामेनितप्पुवें दोडे पेळल्पडुगुं। अवरोत्कृष्टविशेषाः रूपाधिकास्तद्विकल्पाः खलु जघन्यमनोद्रव्यवर्गणेयनुत्कृष्टमनोद्रव्यवर्गणेयोळ्कळेदुळिद शेषदोळेकरूपं कूडुत्तिरला मनोद्रव्यवर्गणाविकल्पंगळप्पुवु। आदी। ज। अन्ते $\frac{\overline{ज}\ ख}{ख}$ सुद्धे $\frac{\overline{ज}\ १}{ख}$ वड्ढिहिदे $\frac{\overline{ज}\ १}{ख\ १}$ रूवसंजुदे ठाणा $\frac{\overline{ज}}{ख}$ ई स्थानविकल्पंगळनंतैकभागवोडने $\frac{\overline{ज}}{ख\ ख}$ समानं ध्रुवहारप्रमाणमक्कुमें बुदर्थमंतादोडा जघन्योत्कृष्टमनोद्रव्यवर्गणेगळ प्रमाणमेनितें दोडे पेळ्दपं :—

अवरं होदि अणंतं अणंतभागेण अहियमुक्कस्सं ।
इदि मणभेदाणंतिमभागो दव्वम्मि धुवहारो ॥३८७॥

अवरो भवत्यनंतोऽनंतभागेनाधिक उत्कृष्ट, इति मनोभेदानामनंतैकभागो द्रव्ये ध्रुवहारः ॥

ज्ञातव्यम् ॥३८५॥ विशेषेण ध्रुवहारप्रमाणमाह—

मनोद्रव्यवर्गणाया यावन्तो विकल्पास्तेषामनन्तैकभागेन सम संख्यया समानं खलु ध्रुवहारप्रमाणं स्यात्। ते च विकल्पा कति ? मनोवर्गणाजघन्य ज तदुत्कृष्टे $\frac{\overline{ज}\ ख}{ख}$ विशोध्य शेषे $\frac{ज}{ख}$ रूपाधिकीकृते एतावन्तः $\frac{\overline{ज}}{ख}$ खलु स्युः ॥३८६॥ ते जघन्योत्कृष्टे प्रमाणयति—

भूत द्रव्य कहा था उसे ही यहाँ समयप्रबद्धके रूपमें स्थापित किया है। इसमें ही ध्रुवहारका भाग दे-देकर आगेके विकल्पोंके विषयभूत द्रव्य लायेंगे ॥३८५॥

सामान्य रूपसे ध्रुवहारका प्रमाण सिद्धराशिके अनन्तवें भाग कहा। अब विशेष रूपसे ध्रुवहारका प्रमाण कहते हैं—

मनोद्रव्यवर्गणाके जितने भेद हैं उनके अनन्तवें भागकी संख्याके बराबर ध्रुवहारका प्रमाण है। मनोवर्गणाके जघन्यको मनोवर्गणाके उत्कृष्टमें-से घटाकर जो प्रमाण शेष रहे उसमें एक जोड़नेपर मनोवर्गणाके भेदोंका प्रमाण होता है ॥३८६॥

आगे मनोवर्गणाके जघन्य और उत्कृष्ट भेदका प्रमाण कहते हैं—

जघन्यमनोद्रव्यवर्ग्गणाप्रमाणमनंत मवर । ज । अनंतैकभागविनधिकमुत्कृष्टमनोद्रव्यवर्ग्गणाप्रमाणमक्कु ज ख/ख मितु मुंपेळ्द क्रमविंदमादियंते सुद्धे इत्यादिविधानदिदं तरल्पट्टु मनोद्रव्यवर्ग्गणाविकल्पंगळ ज/ख १ अनंतैकभागदोडने ज/ख ख १ अवधिविषयद्रव्यविकल्पंगळोळु पुगुव ध्रुवहारप्रमाणं समानमें दु निश्चयिसुवुदु ॥ अथवा :—

धुवहारस्स पमाणं सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तं पि ।
समयपबद्धणिमित्तं कम्मणवग्गणगुणादो दु ॥३८८॥

ध्रुवहारस्य प्रमाणं सिद्धानंतैकभागप्रमाणमात्रमपि । समयप्रबद्धनिमित्तं कार्म्मणवर्ग्गणागुणात्तु ॥

होदि अणंतिमभागो तग्गुणगारोवि देसओहिस्स ।
दोऊणदव्वभेदपमाणं धुवहारसंवग्गो ॥३८९॥

भवत्यनंतैकभागस्तद्गुणकारोपि देशावधेर्द्विरूपोनद्रव्यभेदप्रमाणध्रुवहारसंवर्ग्गः ॥

ध्रुवहारप्रमाणं सिद्धानंतैकभागप्रमाणमात्रमादोडमवधिविषयसमयप्रबद्धनिश्चयनिमित्तं कार्म्मणवर्ग्गणागुणकारमं नोडलु तु मत्ते अनंतैकभागमक्कुमा कार्म्मणवर्ग्गणागुणकारमुं देशावधिज्ञानद्विरूपोनद्रव्यविकल्पप्रमितध्रुवहारंगळ संवर्ग्गमक्कुमा देशावधिज्ञानद्रव्यविकल्पंगळेनितें दोडे पेळल्पड्डुगु ।

देशावधिद्रव्यविकल्परचनेयोळु त्रिचरमदेशावधिद्रव्यविकल्पदोळु गुण्यरूपकार्म्मणवर्ग्गणेगे

मनोद्रव्यवर्गणाजघन्यं अनन्तो भवति । तदनन्तैकभागेनाधिकमुत्कृष्टं भवति इत्येवमुक्तरीत्या मनोद्रव्यवर्गणाविकल्पानामनन्तैकभागः ज/ख ख अवधिविषयद्रव्यविकल्पेषु ध्रुवहारप्रमाणं ज्ञातव्यम् । अथवा—

ध्रुवहारप्रमाणं सिद्धानन्तैकभागमात्रमपि अवधिविषयसमयप्रबद्धप्रमाणमानेतुं उक्तस्य कार्मणवर्गणागुणकारस्य अनन्तैकभागमात्र स्यात् । स च गुणकारोऽपि कियान् ! देशावधिज्ञानस्य द्विरूपोनद्रव्यभेदमात्र-

मनोवर्गणाका जघन्य भेद अनन्त प्रमाण है। अर्थात् अनन्त परमाणुओंके स्कन्धरूप जघन्य मनोवर्गणा है। उसमें अनन्तका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उसे उस जघन्य भेदमें जोड़नेपर उसीके उत्कृष्ट भेदका प्रमाण होता है। इस प्रकार मनोद्रव्य वर्गणाके विकल्पोंके अनन्तवें भाग अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्योंके विकल्पोंमें ध्रुवहारका प्रमाण है ॥३८७॥

यद्यपि ध्रुवहारका प्रमाण सिद्ध राशिके अनन्तवें भाग है किन्तु अवधिज्ञानके विषयभूत समयप्रबद्धका प्रमाण लानेके लिए पहले कहे कार्मणवर्गणाके गुणकारका अनन्तवाँ भाग है। और वह गुणकार देशावधिज्ञानके द्रव्यकी अपेक्षा भेदोंमें दो घटाकर जो प्रमाण शेष रहे उतनी जगह ध्रुवहारोंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो प्रमाण हो उतना है। इतना प्रमाण कैसे कहा, सो कहते हैं—देशावधिज्ञानके विषयभूत द्रव्यकी रचनामें उत्कृष्ट

पोक्कध्रुवहारगुणकारमों बु तदनंतरद्विचरमविकल्पदोळेरडु ध्रुवहारगुणकारंगळप्पुवी क्रमदिदमिळिदिळिदु देशावधिजघन्यद्रव्यपर्य्यंतमविच्छिन्नरूपदिनेकाद्येकोत्तरक्रमदिदं पोक्क ध्रुवहारगुणकारंगळु सर्व्वजघन्यदेशावधिज्ञानविषयद्रव्यविकल्पदल्लि कार्म्मणवर्ग्गणेगे पोक्क ध्रुवहारगुणकारंगळेनितप्पुवें दोडे देशावधिद्रव्यसर्व्वविकल्पसंख्येयोळु ≡–६।२ द्विरूपहीनमात्रंगळप्पुवु संदृष्टि—
ƏƏ

व अवनितुमं परस्परसंवर्ग्गं माडिदोडे गुण्यरूपकार्म्मणवर्ग्गणेय गुणकारप्रमाण-
९
व
व ९
व ९ ९
व ९ ९ ९
व ९ ९ ९ ९
० ०
० २
० ——
व ≡६।२ ९
ƏƏ

मक्कुमी कार्म्मणवर्गणागुणकारदनंतैकभागं ध्रुवहारप्रमाणमें बुदर्त्थमी गुण्यरूपकार्म्मणवर्ग्गणेयुममी कार्म्मणवर्ग्गणागुणकारमुमं गुणिसुत्तिरलु जघन्यदेशावधिज्ञानविषयत्वदिं पेळल्पट्ट नोकर्म्मौदारिक·

ध्रुवहारसंवर्गमात्र स्यात्। कुतः? तद्द्रव्यरचनायामस्या—

व त्रिचरमविकल्पादेकाद्येकोत्तरक्रमेण अधोऽधो गत्वा प्रथमविकल्पे कार्मणवर्गणाया. तावतां ध्रुवहाराणा
९
व
व ९
व ५ ९।
व ९ ९ ९।
व ९ ९ ९ ९।
०
० ०
० १– २
व ≡—६।२ ९
प Ə
Ə

गुणकारत्वेन सद्भावात्। गुण्यगुणकारे गुणिते प्रागुक्तो लोकविभक्तैकखण्डमात्रनोकर्मौदारिकसंचय एव

अन्तिम भेदका विषय कार्मणवर्गणामें एक बार ध्रुवहारका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतना है। उसके नीचे द्विचरम भेदका विषय कार्मणवर्गणा प्रमाण है। उनके नीचे त्रिचरम भेदका विषय कार्मणवर्गणाको एक बार ध्रुवहारसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है। उसके नीचे चतुर्थ चरम भेदका विषय दो बार ध्रुवहारसे कार्मणवर्गणाको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है। इस प्रकार एक बार अधिक ध्रुवहारसे कार्मणवर्गणाको गुणा करते-करते दो कम देशावधिके द्रव्यभेद प्रमाण ध्रुवहारोंको परस्परमें गुणा करनेसे जो गुणकारका प्रमाण हुआ उससे कार्मणवर्गणाको गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है वही जघन्य देशावधिज्ञानके

संचयलोकविभक्तैखंडप्रमाणमेयक्कुमें दु निश्चयिसुवुदु स ә १२—१६ ख ≡ इन्तु देशावधिविषय-सर्व्वद्रव्यविकल्पंगळेनितें दोडे पेळ्वपं :—

अंगुल असंखगुणिदा खेत्तवियप्पा य दव्वभेदा हु ।
खेत्तवियप्पा अवरुक्कस्सविसेसं हवे एत्थ ॥३९०॥

अंगुलासंख्यातगुणिताः क्षेत्रविकल्पाश्च द्रव्यभेदाः खलु । क्षेत्रविकल्पा अवरोत्कृष्टविशेषो भवेदत्र ।

सूच्यंगुलासंख्यातैकभागगुणितक्षेत्रविकल्पंगळु देशावधिज्ञानविषयसर्व्वद्रव्यभेदंगळप्पुवु । खलु स्फुटमागि । अंतादोडा क्षेत्रविकल्पंगळ्तामेनितें दोडे अत्र इल्लि अवधिविषयदोळु क्षेत्रविकल्पाः क्षेत्रविकल्पंगळु अवरोत्कृष्टविशेषो भवेत् । जघन्यदेशावधिज्ञानविषय सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तक-जघन्यावगाहप्रमितजघन्यक्षेत्रमनिद ६।८।२२ / प १९।८९।८।२२।७९ नपर्वात्तितमं घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रम ६/प नुत्कृष्टदेशावधिज्ञानविषयक्षेत्रंलोकप्रमित ≡ मदरोळकळेदुळिवुवेनितोळवनितेयप्पुवु ≡ ६/प इवं सूच्यंगुलासंख्यातदिदं गुणिसिलब्धराशियोळेकरूपं कूडुत्तिरलु देशावधिद्रव्यविकल्पंगळप्पुवु ≡ – ६।२/प एकें दोडे देशावधि जघन्यद्रव्य विकल्पं मोदलगों डु ध्रुवहारभक्तै-

स्यात् ।—स ә १२—१६ ख ≡ ३।८ ॥३८९॥ देशावधिद्रव्यविकल्पान् प्रमाणयति—

सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागगुणितदेशावधिविषयसर्वक्षेत्रविकल्पाः खलु तद्विषयद्रव्यविकल्पा भवन्ति, ते च क्षेत्रविकल्पाः अत्र देशावधिविषये अवरे जघन्यक्षेत्रे ६/प तद्विषयोत्कृष्टक्षेत्रे ≡ विशोधिते शेषमात्रा भवन्ति ≡–६/प

विषयभूत द्रव्यका प्रमाण है जो लोकसे भाजित नोकर्म औदारिक शरीरका संचय प्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ उत्कृष्ट भेदसे लेकर जघन्य भेद पर्यन्त रचना कही है इससे इस प्रकार गुणकारका प्रमाण कहा है। यदि जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट भेदपर्यन्त रचनाकी जावे तो क्रमसे ध्रुवहारका भाग देते जाइए। अन्तिम भेदमें कार्मणवर्गणाको एक बार ध्रुवहारसे भाग देनेपर द्रव्यका प्रमाण आ जाता है ॥३८८-३८९॥

अब देशावधिके द्रव्यकी अपेक्षा विकल्प कहते हैं—

देशावधिके विषयभूत क्षेत्रकी अपेक्षा जितने विकल्प है उनको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर देशावधिके विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा भेद होते हैं।

कैकभागमात्रद्रव्यविकल्पंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडेनडदेकैकप्रदेशक्षेत्रवृद्धियागुत्तं पोगियुत्कृष्टदेशावधिय सर्व्वोत्कृष्टद्रव्यक्षेत्रविकल्पं पुट्टिदागळु तदुत्कृष्टक्षेत्रं संपूर्णलोकमावुदवु कारणविदं। आदिक्षेत्रमनंत्यक्षेत्रवोळ्कळेवु सूच्यंगुलासंख्यातदिदं गुणिसि लब्धदोळोंदु रूपं कूडिदोडे देशावधिज्ञानविकल्पंगळुं द्रव्यविकल्पंगळुमप्पुविवक्कंकसंदृष्टिदेशावधियुत्कृष्टद्रव्यक्षेत्रंगळु इल्लि जघन्यक्षेत्रमनुत्कृष्टक्षेत्रवोळ्कळेदु शेषम ४ नंगुलासंख्यातकांडकमेर-

४	८
२ ४	७
४२	७
४२२	६
४२२२	६
४२२२२	५
४२२२२२	५
४२२२२२२	४
४२२२२२२२	४
द्रव्य	क्षेत्र

डरिंदं गुणिसि एकरूपं कूडिदोडे— ४। २ देशावधिसर्व्वद्रव्यविकल्पंगळप्पुवु । ९। 'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा'। विंदी स्थानविकल्पमं साधिसुव करणसूत्रक्के व्याख्यानं विरोधमागि बक्कुमें देनल्वेडेकें दोडिल्लि चशब्दमनर्थकवचनमप्पुदरिनल्लि किंचिदिष्टज्ञापनमक्कुमदें तें दोडे ग्रंथकारं 'खेत्तवियप्पा अवरुक्कस्सविसेसं हवे एत्थ' एंदु जघन्योत्कृष्टंगळं शेषेसुत्तिरलल्लि क्षेत्रविकल्पंगळें वु पेळ्दोडल्लि कूडुवेकरूपं बेरिरिसि सूच्यंगुलासंख्यातदिदं गुणिसि लब्धदोळारूपं कूडिदोडे द्रव्यविकल्पंगळ प्रमाणमप्पुवें बी विशेषसूचकमक्कुं।

रूपयुतक्षेत्रविकल्पंगळं सूच्यंगुलासंख्यातदिदं गुणिसिदोडे दृष्टेष्टविरोधमक्कुमदें तें दोडे अंकसंदृष्टियोळु रूपयुतक्षेत्रविकल्पंगळय्दु ४ इवं कांडकमप्पेरडरिंदं गुणिसिदोडे पत्तु १०। इवु

एते एव सूच्यङ्गुलासंख्यातेन गुणयित्वा एकरूपयुताः देशावधिसर्वद्रव्यविकल्पाः स्यु ≡—६ । २ कुतः ? प ७ ७ जघन्यद्रव्यं ध्रुवहारेण भक्त्वा भक्त्वा सूच्यङ्गुलासंख्येयभागमात्रद्रव्यविकल्पेषु गतेषु जघन्यक्षेत्रस्योपर्येकप्रदेशो

और वे क्षेत्रकी अपेक्षा विकल्प इस प्रकार हैं—देशावधिके उत्कृष्ट क्षेत्रमें जघन्य क्षेत्रको घटानेपर जो प्रदेशका प्रमाण शेष रहता है उतने क्षेत्रकी अपेक्षा विकल्प हैं। उनको ही सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करके एक जोड़नेपर देशावधिके द्रव्यकी अपेक्षा विकल्प होते हैं। वह कैसे यह कहते हैं—जघन्य द्रव्यको ध्रुवहारसे भाग देते-देते सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र द्रव्यके भेद बीतनेपर जघन्य क्षेत्रके ऊपर एक प्रदेश बढ़ता है। इसी प्रकार लोकप्रमाण उत्कृष्ट देशावधिक्षेत्र पर्यन्त जानना। इसका आशय यह है कि सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागपर्यन्त द्रव्यके विकल्प होने तक क्षेत्र वही रहता है जो जघन्य भेदका विषय था। इतने विकल्प बीतनेपर क्षेत्रमें एक प्रदेशकी वृद्धि होती है। पुनः सूच्यंगुलके असंख्यातवें

द्रव्यविकल्पंगळल्तु द्विरूपहीनद्रव्यविकल्पमात्रध्रुवहारसंवर्गमे वर्ग्गणागुणकारमें बल्लि पेळ्‌मावें टक्के प्रसंगमक्कुमंतुमल्लदेयुं रूपयुतमल्लव क्षेत्रविकल्पमं। ४। कांडकदिदं गुणिसि लब्धदोळेक-रूपं कूडिदोडे। ४। २। अवु देशावधिद्रव्यविकल्पप्रमाणमल्तु। द्विरूपोनद्रव्यविकल्पमात्र ध्रुवहार-संवर्गमे वर्ग्गणागुणकारमें बल्लि एळुमादारक्के प्रसंगमक्कुमप्पुदरिंदमन्तुमल्तु दृष्टविरोधमुमागम-विरोधमुमप्पुदरिंदं रूपयुतमल्लव क्षेत्रविकल्पमं कांडकदिदं गुणिसि लब्धदोळोंदु रूपं कूडिदोडे देशावधिद्रव्यविकल्पमों भत्तेयप्पुविदुनिर्बाधबोधविषयमक्कुं। अंतादोडा जघन्योत्कृष्टदेशावधिज्ञान-विषयजघन्योत्कृष्टक्षेत्रविकल्पंगळावुवें दोडे पेळ्दपं।

अंगुलअसंखभागं अवरं उक्कस्सयं हवे लोगो।
इदि वग्गणगुणगारो असंख धुवहारसंवग्गो ॥३९१॥

अंगुलासंख्यातभागोऽवरः उत्कृष्टो भवेल्लोकः। इतिवर्गणागुणकारोऽसंख्यध्रुवहारसंवर्गः। अंगुलासंख्यातभागः मुंपेळ्द घनांगुलासंख्यातैकभागमप्प लब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहप्रमाणमे अवरः जघन्यक्षेत्रविकल्पप्रमाणमक्कुमुत्कृष्टो भवेल्लोकः। उत्कृष्टक्षेत्रविकल्पं संपूर्णलोकप्रमाण-मक्कु—। मितु वर्ग्गणागुणकारमसंख्य ध्रुवहारसंवर्ग्गप्रमितमक्कुं। द्विरूपोनदेशावधिज्ञानविषयसर्व्व-द्रव्यविकल्प प्रमित ध्रुवहारसंवर्ग्गजनितलब्धप्रमितं वर्ग्गणागुणकारप्रमाणमें बुदत्थं।

वर्धते अनेन क्रमेण लोकमात्रक्षेत्रोत्पत्तिपर्यन्तं गमनिकासद्भावात् अवशिष्टप्रथमद्रव्यविकल्पस्य पश्चान्नि-क्षेपात् ॥३९०॥ ते जघन्योत्कृष्टक्षेत्रे संख्याति—

अवरं जघन्यदेशावधिविषयक्षेत्रं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहप्रमाणमिदं-

६। ८। २२
  ० १—
प १९। ८। ९। ८। २२। १। ९
० ० ०

अपवर्तितं घनाङ्गुलासंख्यातभागमात्रं भवति ६/प/० उत्कृष्ट लोक जगच्छ्रेणिघनो भवति इत्येवं द्विरूपोनदेशावधि-सर्वद्रव्यविकल्पमात्रासंख्यध्रुवहारसवर्ग एव कार्मणवर्गणागुणकारः स्यात् ॥३९१॥ अथ क्रमप्राप्तं वर्गणा-प्रमाणमाह—

भाग द्रव्यके विकल्प होने तक क्षेत्र एक प्रदेश अधिक उतना ही रहता है। उसके पश्चात् क्षेत्रमें पुनः एक प्रदेश बढ़ता है। इस तरह प्रत्येक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग द्रव्यके विकल्प होनेपर क्षेत्रमें एक-एक प्रदेशकी वृद्धि उत्कृष्ट क्षेत्र लोक पर्यन्त प्राप्त होने तक होती है। इसीसे क्षेत्रकी अपेक्षा विकल्पोंको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर द्रव्यकी अपेक्षा विकल्प कहे हैं। इनमें पहला द्रव्यका भेद पीछेसे मिलाया वह अवशेष था अतः एकको मिलाना कहा ॥३९०॥

अब देशावधिके उन जघन्य और उत्कृष्ट क्षेत्रोंको कहते हैं—

जघन्य देशावधिका विषयभूत क्षेत्र सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना प्रमाण घनांगुलका असंख्यातवें भाग मात्र होता है। उत्कृष्ट क्षेत्र जगत् श्रेणिका घनरूप लोक-प्रमाण है। इस प्रकार देशावधिके समस्त द्रव्यकी अपेक्षा विकल्पोंमें दो कम करके

वग्गणरासिपमाणं सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तंपि ।
दुगसहियपरमभेदपमाणवहाराणसंवग्गो ।।३९२।।

वर्ग्गणाराशिप्रमाणं सिद्धानंतैकभागप्रमाणमात्रमपि । द्विकसहितपरमभेदप्रमाणावहाराणां संवर्ग्गः ।।

वर्ग्गणाराशिप्रमाणं इन्ना कार्म्मण वर्ग्गणाराशिप्रमाणं तानें तुटें दोडे सिद्धानंतैकभागप्रमाणमात्रमपि सिद्धराश्यनंतैकभागप्रमाणमप्पुदंतादोडं द्विकसहितपरमभेदप्रमाणावहाराणां संवर्ग्गः द्विरूपयुक्तपरमावधिज्ञानसर्व्वविकल्पंगळेनितु ध्रुवहारंगळ संवर्ग्गसंजनितलब्धप्रमितमक्कुमंतादोडा परमावधिज्ञानविकल्पंगळतावेनितें दोडे पेळदपं :—

परमावहिस्स भेदा सगओगाहणवियप्पहदतेऊ ।
इदि धुवहारं वग्गणगुणगारं वग्गणं जाणे ।।३९३।।

परमावधेर्भेदाः स्वावगाहनविकल्पहततैजसाः । इति ध्रुवहारं वर्ग्गणागुणकारं वर्ग्गणां जानीहि ।।

परमावधेर्भेदाः परमावधिज्ञानविकल्पंगळुं स्वावगाहनविकल्पहततैजसाः मुन्नं जीवसमासाधिकारदोळ्पेळल्पट्ट स्वकीयावगाहनविकल्पंगळिदं गुणिसल्पट्ट तेजस्कायिकजीवंगळ संख्यातराशियु तदवगाहनविकल्पंगळोळु सर्व्वजघन्यावगाहनमिदु ६ । ८ । २२ तदुत्कृष्टा-

a
प १९ । ७ । ८ । २२ । १९
a a a

कार्मणवर्गणाराशिप्रमाण सिद्धराश्यनन्तैकभागमात्रमपि द्विरूपाधिकपरमावधिसर्वभेदमात्रध्रुवहार-सवर्गमात्र स्यात् व ।।३९२।। ते भेदाः कति ? इति चेदाह—

परमावधिज्ञानस्य भेदा तेजस्कायिकावगाहनविकल्पैर्गुणिततेजस्कायिकजीवराशि≡ a मात्रा भवन्ति a । ६ । a । ते अवगाहनविकल्पा प्राग्मत्स्यरचनाया तज्जघन्यमिदं ६ । ८ । २२

प
a

a
प १९ । ८ । ७ । ८ । २२ १९ ।
a a a

उतनी बार ध्रुवहारोंको परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है वही कार्मण वर्गणाका गुणकार होता है ।।३९१।।

अब क्रमानुसार वर्गणाका प्रमाण कहते हैं—

कार्मण वर्गणा राशिका प्रमाण सिद्ध राशिके अनन्तवें भाग है तथापि परमावधिके समस्त भेदोंमें दो मिलानेपर जितना प्रमाण हो उतनी बार ध्रुवहारोंको परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है ।।३९२।।

वे परमावधिके भेद कितने हैं, वह कहते हैं—

तैजस्कायिककी अवगाहनाके विकल्पोंसे तैजस्कायिक जीवराशिको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने परमावधिके भेद हैं । तथा अग्निकायिककी जघन्य अवगाहनाके प्रमाण-

वगाहमिदु ६ । ८ । ८ / प ६ ८ ८ । १९ आदी अंते सुद्धे इत्यादि सूत्राभिप्रायविंदं तरल्पट्टपर्व्वात्ततलब्धाव-गाहविकल्पंगळिनितप्पुवु ६ ० / प ई तेजस्कायिक सर्व्वावगाहनविकल्पराशियिदं गुणिसुत्तिरलावु-दों दु लब्धं तल्लब्धमात्रं परमावधिज्ञानविकल्पंगळप्पुवु ≡ ६ ० / प ई परमावधिज्ञानविकल्पराशियं द्विरूपयुक्तं माडि विरलिसि प्रतिरूप ध्रुवहारमनित्तु वर्ग्गितसंवर्ग्गं माडुत्तिरलु आवुदों दु लब्धमदु कार्म्मणवर्ग्गणाराशियक्कुं । व । इदि इंतु ध्रुवहारप्रमाणमुं वर्ग्गणागुणकारप्रमागमुं वर्ग्गणाप्रमाणमुं व्यक्तमागि मूरुं राशिगळुं पेळल्पट्टुववं नीनु जानीहि अरियें बु शिष्यसंबोधनं माडल्पट्टुदु ।

देसोहि अवरदव्वं धुवहारेणवहिदे हवे बिदियं ।
तदियादिवियप्पेसु वि असंखवारोत्ति एस कमो ॥३९४॥

देशावधेरवरद्रव्यं ध्रुवहारेणापहृते भवेद्द्वितीयं । तृतीयादिविकल्पेष्वपि असंख्यवारपर्य्यंत-मेष क्रमः ॥

देशावधिज्ञानविषयजघन्यद्रव्यमं स ० १२ । १६ ख / ≡ ध्रुवभागहारदिदं भागिसिदेक-भागं देशावधिज्ञानविषयद्वितीयद्रव्यविकल्पमक्कुं स ० ० १२ । १६ ख / ≡ ९ तृतीयविकल्पंगळोळमी

तदुत्कृष्टे ६ । ८ । ८ / प ६ । ८ ८ । १९ विशोध्य शेषमपवर्त्य ६ । ० / प एकरूपे निक्षिप्ते एतावन्तः ६ । ० । / प इत्येवं ध्रुवहारप्रमाणं वर्गणागुणकारप्रमाण वर्गणाप्रमाण च जानीहि ॥३९३॥

यत्प्रागुक्त देशावधिज्ञानविषयजघन्यद्रव्य–स ० १२–१६ ख / ≡ । ध्रुवहारेण एकेन भक्त द्वितीयदेशावधि-

---

को अग्निकायिककी उत्कृष्ट अवगाहनाके प्रमाणमें-से घटाकर जो शेष बचे उसमें एक जोड़नेपर अग्निकायकी अवगाहनाके भेद होते हैं। इस प्रकार ध्रुवहारका प्रमाण, वर्गणाके गुणकारका प्रमाण और वर्गणाका प्रमाण जानना ॥३९३॥

जो देशावधिज्ञानका विषय जघन्य द्रव्य पहले कहा था, उसकी ध्रुवहारसे एक बार भाग देनेपर देशावधिके दूसरे भेदका विषयभूत द्रव्य होता है। इसी प्रकार ध्रुवहारका

क्रमदिदमसंख्यातवारंगळरियल्पडुवुवु । इंतसंख्यातवारं ध्रुवहारभक्तैकैकभागंगळागुत्तं पोपुवंतु पोगल्के :—

देसोहिमज्झभेदे सविस्ससोवचयतेजकम्मंगं ।
तेजोभासमणाणं वग्गणयं केवलं जत्थ ॥३९५॥

देशावधिमध्यभेदे सविस्रसोपचयतेजः कार्म्मणांगं । तेजोभाषामनसां वर्गणां केवलां यत्र ॥

पस्सदि ओही तत्थ असंखेज्जाओ हवंति दीउवही ।
वासाणि असंखेज्जा होंति असंखेज्जगुणिदकमा ॥३९६॥

पश्यत्यवधिस्तत्रासंख्येया भवंति द्वीपोदधयः । वर्षाण्यसंख्येयानि भवंत्यसंख्येयगुणितक्रमाणि ॥

देशावधिमध्यभेदे देशावधिज्ञानमध्यमविकल्पदोळु यत्र आवुदानुमों वेडेयोळु विस्रसोपचयसहितमप्प तैजसशरीरस्कंधमुमं कार्म्मणशरीरस्कंधमुमं विस्रसोपचयरहित केवलं तैजसवर्ग्गणेयुमं भाषावर्ग्गणेयुमं मनोवर्ग्गणेयुमं पश्यत्यवधिः अवधिज्ञानं प्रत्यक्षमागरिदुमा येडेगळोळु क्षेत्रंगळसंख्यातद्वीपोदधिगळप्पुवु । कालंगळुमा येडेगळोळु असंख्यातवर्षंगळप्पुवा द्वीपोदधिगळु वर्षंगळुमसंख्यातंगळागुत्तमुं तैजसशरीरस्कंधस्थानं मोदल्गोंडुत्तरोत्तरंगळसंख्यातगुणितक्रमंगळुमप्पुवु ।

तत्तो कम्मइयस्सिगिसमयपबद्धं विविस्ससोपचयं ।
धुवहारस्स विभज्जं सव्वोही जाव ताव हवे ॥३९७॥

ततः कार्म्मणस्यैकसमयप्रबद्धं विविस्रसोपचयं । ध्रुवहारस्य विभाज्यं सर्व्वावधिर्य्यावत्तावद्भवेत् ॥

विषयद्रव्यं भवति—स a १२-१६ ख (≡ ९) । एवं तृतीयादिविकल्पेष्वपि असख्यातबारपर्यन्तमेष एव क्रमः कर्तव्य. ॥३९४॥ तथा सति किं स्यादिति चेदाह—

देशावधिज्ञानमध्यमविकल्पेषु यत्र सविस्रसोपचयं तैजसशरीरस्कन्धं तदग्रे यत्र तादृशं कार्मणशरीरस्कन्धं तदग्रे यत्र केवला विविस्रोपचया तैजसवर्गणा तदग्रे यत्र केवला भाषावर्गणा तदग्रे केवला मनोवर्गणा च अवधिज्ञानं जानाति । तत्र पञ्चसु स्थानेषु क्षेत्राणि असंख्यातद्वीपोदधयः काला असख्यातवर्षाणि च भवन्ति तथापि उत्तरोत्तरासख्यातगुणितक्रमाणि ॥३९५-३९६॥

भाग दूसरे भेदके विषयभूत द्रव्यमें देनेपर तीसरे भेदके विषयभूत द्रव्यका प्रमाण आता है। ऐसा ही क्रम असंख्यात बार पर्यन्त करना चाहिए ॥३९४॥

ऐसा करनेसे क्या होता है यह कहते हैं—

देशावधिज्ञानके मध्यम भेदोंमेंसे जहाँ देशावधिज्ञान विस्रसोपचय सहित तैजसशरीररूप स्कन्धको जानता है, उससे आगे जहाँ विस्रसोपचय सहित कार्मणस्कन्धको जानता है, उससे आगे जहाँ विस्रसोपचय रहित तैजस वर्गणाको जानता है, उससे आगे जहाँ विस्रसोपचय रहित भाषावर्गणाको जानता है, उससे आगे जहाँ विस्रसोपचयरहित मनोवर्गणाको जानता है वहाँ इन पाँचों स्थानोंमें क्षेत्र असंख्यात द्वीप समुद्र और काल असंख्यात वर्ष होता है। तथापि उत्तरोत्तर असंख्यात गुणितक्रम होता है। अर्थात् पहलेसे

ततः पश्चात् बळिकमा मनोवर्ग्गणेयं ध्रुवहारदिदं भागिसुत्त पोगलु केवलं विस्रसोपचय-रहितमप्प कार्म्मणैकसमयप्रबद्धमावुदोंदेडेयोळ्पुट्टुगुमल्लिवत्तला कार्म्मणसमयप्रबद्धं ध्रुवहारक्के भाज्यराशियक्कुमन्नेवरमें दोडे सर्व्वावधिज्ञानमेन्नेवरमन्नेवरं ।

एदम्मि विभज्जंते दुचरिमदेसावहिम्मि वग्गणयं ।
चरिमे कम्मइयस्सिगिवग्गणमिगिवारभजिदं तु ।।३९८।।

एतस्मिन् विभाज्यंते द्विचरमदेशावधौ वर्गणां । चरमे कार्म्मणस्यैकवर्ग्गणामेकवारभक्तां तु ।

ई कार्म्मणसमयप्रबद्ध दोळु सर्व्वावधिपर्य्यंतमवस्थितभाज्यदोळु ध्रुवहार पुगुत्तं पोगळु द्विचरमदेशावधियोळु कार्म्मणवर्ग्गणेयक्कुमा कार्म्मणवर्ग्गणेयं तु मत्ते एकवार भक्तां ओंदु बारि ध्रुवहारभक्तलब्धमात्रमं चरमे कडेयोळु सर्व्वोत्कृष्टदेशावधिज्ञानं पश्यति प्रत्यक्षमागि काणुमरिगुं ।

अंगुल असंखभागे दव्ववियप्पे गदे दु खेत्तम्मि ।
एगागासपदेसो वड्ढदि संपुण्णलोगोत्ति ।।३९९।।

अंगुलाऽसंख्यभागे द्रव्यविकल्पे गते तु पुनः क्षेत्रे । एकाकाशप्रदेशो वर्द्धते संपूर्णलोकपर्य्यंतं ।

सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रद्रव्यविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु क्षेत्रदोळेकाकाशप्रदेशं पेर्च्चुंगुमी प्रकारदिदमे सर्व्वोत्कृष्टदेशावधिज्ञानविषयं सर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रं संपूर्णलोकमक्कुमेन्नवरमन्नेवरं पेर्च्चुगुं ।

आवलि असंखभागो जहण्णकालो कमेण समयेण ।
वड्ढदि देसोहिवरं पल्लं समऊणयं जाव ।।४००।।

आवल्यसंख्येयभागो जघन्यकालः क्रमेण समयेन वर्द्धते । देशावधिवरः पल्यं समयोनं यावत् ।

ततः पश्चात् ता मनोवर्गणा ध्रुवहारेण पनः पुनर्भक्त्वा यत्र विकल्पे विविस्रसोपचयः कार्मणैकसमय-प्रबद्ध उत्पद्यते, तत उपरि स एव ध्रुवहारस्य भाज्यं भवेत् यावत्सर्वावधिज्ञानं तावत् ।।३९७।।

एतस्मिन् कार्मणसमयप्रबद्धे विभज्यमाने सति द्विचरमे देशावधिविकल्पे कार्मणवर्गणैवावशिष्यते, तु—पुनः, चरमे ध्रुवहारेण एकवारभक्तैव अवशिष्यते ।।३९८।।

सूच्यङ्गुलासख्येयभागमात्रेषु द्रव्यविकल्पेषु गतेषु जघन्यक्षेत्रस्योपर्येकाकाशप्रदेशो वर्धते इत्यय क्रमः तावद्विधेय यावन् सर्वोत्कृष्टदेशावधिविपयक्षेत्र सम्पूर्णलोको भवति ।।३९९।।

दूसरे, दसरेसे तीसरे, तीसरेसे चौथे और चौथेसे पाँचवें भेद सम्बन्धी क्षेत्र कालका परिमाण असंख्यात गुणा है ।।३९५-३९६।।

उसके पश्चात् उस मनोवर्गणाको ध्रुवहारसे बार-बार भाजित करते-करते जिस भेदमें विस्रसोपचयरहित कार्मणशरीरका एक समयप्रबद्ध उत्पन्न होता है। उसीमें आगे भी ध्रुवहारका भाग तबतक दिया जाता है जबतक सर्वावधिज्ञानका विषय आता है ।।३९७।।

इस कार्मण समयप्रबद्धमें ध्रुवहारसे भाग देनेपर देशावधिके द्विचरम भेदमें कार्मणवर्गणारूप द्रव्य उसका विषय होता है। और अन्तिम भेदमें ध्रुवहारसे एक बार भाजित कार्मणवर्गणा द्रव्य होता है ।।३९८।।

सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र द्रव्यकी अपेक्षा भेदोंके होनेपर जघन्य क्षेत्रके ऊपर एक आकाशका प्रदेश बढ़ता है। यह क्रम तबतक करना जबतक सर्वोत्कृष्ट देशावधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र सम्पूर्ण लोक हो ।।३९९।।

जघन्यदेशावधिज्ञानविषयमप्प जघन्यकालमावल्यसंख्येयभागमात्रमक्कु ८/a मी जघन्यकालं क्रमदिदं मेकैकसमयदिंदं पेर्च्चुत्तं पोकुमन्नेवरं मुत्कृष्टदेशावधिज्ञानविषयमप्प कालं समयोनपल्यमात्रमक्कुमेन्नेवरं । प—१ । इल्लि जघन्यकालद मेलेकैकसमयवृद्धिक्रममं तोरिदप ।

अंगुल असंखभागं धुवरूवेण य असंख वारं तु ।
असंखसंखं भागं असंखवारं तु अद्धुवगे ॥४०१॥
धुवअद्धुवरूवेण य अवरे खेत्तम्मि वड्ढिदे खेत्ते ।
अवरे कालम्मि पुणो एक्केक्कं वड्ढदे समयं ॥४०२॥

अंगुलासंख्यभागं ध्रुवरूपेण च असंख्यवारं तु । असंख्यसंख्यभागं असंख्यवारं तु अध्रुवके ।
ध्रुवाध्रुवरूपेणावरे क्षेत्रे वर्द्धिते क्षेत्रे । अवरस्मिन् काले पुनरेकैको वर्द्धते समयः ।

मुंदे वक्ष्यमाणकांडकंगळं कटाक्षिसि कालवृद्धिविशेषमं ध्रुवाध्रुवरूपदिदं पेळदपना कांडकंगळोळगे मोदल कांडकदोळु अंगुलासंख्यभागं ध्रुवरूपेण च घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रप्रदेशंगळु ध्रुवरूपदिदं जघन्यक्षेत्रद मेले क्रमदिदं पेच्चि पेच्चि जघन्यकालद मेलोंदोंदु समयं पेर्च्चुत्तं पेर्च्चुत्तं प्रथमकांडकचरमविकल्पपर्यंतं असंख्यवारं तु असंख्यातवारं पेच्चिदडे असंख्यातसमयंगळु पेर्च्चुगुमदेंतेंदोडे प्रथमकांडकदोळु जघन्यक्षेत्रमिदु ६/a तत्कांडकोत्कृष्टक्षेत्रमिदु ६/७ आदियनंतदोळु कळेदाडा शेषमा कांडकदोळु जघन्यक्षेत्रदमेळे पेच्चिद प्रदेशंगळ प्रमाणंगळप्पुवु ६a—७/७a मत्तमाकां-

---

जघन्यदेशावधिविषयकालः आवल्यसंख्येयभागः ८/a सोऽय क्रमेण ध्रुवाध्रुववृद्धिरूपेण एकैकसमयेन तावद्वर्धते यावदुत्कृष्टदेशावधिविषय समयोन पल्यं भवेत् प—१ ॥४००॥ अथ तावेव क्रमौ एकान्नविंशतिकाण्डकेषु वक्तुमनास्तावत्प्रथमकाण्डके गाथासार्धद्वयेनाह—

घनाङ्गुलासंख्यातैकभागं आवलिभक्तघनाङ्गुलमात्र ध्रुवरूपेण वृद्धिप्रमाणं स्यात् सा च वृद्धि

जघन्य देशावधिका विषयभूत काल आवलीका असंख्यातवाँ भाग है। यह क्रमसे ध्रुववृद्धि और अध्रुववृद्धिके रूपसे एक-एक समय करके तबतक बढ़ता है जबतक उत्कृष्ट देशावधिका विषय एक समय कम पल्य होता है ॥४००॥

आगे क्षेत्र और कालका क्रम उन्नीस काण्डकोंमें कहनेकी भावनासे शास्त्रकार प्रथम काण्डकको अढ़ाई गाथासे कहते हैं—

घनांगुलको आवलीसे भाग देनेपर घनांगुलका असंख्यातवाँ भाग होता है। उतना ही ध्रुवरूपसे वृद्धिका प्रमाण होता है। यह वृद्धि प्रथमकाण्डकके अन्तिम भेद पर्यन्त असंख्यातवार होती है। पुनः उसी प्रथम काण्डकमें अध्रुववृद्धिकी विवक्षा होनेपर उस वृद्धिका प्रमाण घनांगुलका असंख्यातवाँ भाग और संख्यातवाँ भाग होता है। अध्रुव वृद्धि भी प्रथम काण्डकके अन्तिम भेद पर्यन्त असंख्यातवार होती है ॥४०१॥

उक्त ध्रुववृद्धिके प्रमाणसे या अध्रुववृद्धिके प्रमाणसे जघन्य देशावधिके विषयभूत क्षेत्रके ऊपर क्षेत्रके बढ़नेपर जघन्यकालके ऊपर एक-एक समय बढ़ता है।

विशेषार्थ—पहले कहा था कि द्रव्यकी अपेक्षा सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग भेद बीतनेपर क्षेत्रमें एक प्रदेश बढ़ता है। यहाँ कहते हैं कि जघन्य ज्ञानके विषयभूत क्षेत्रके ऊपर

डकदोळे जघन्यकालमिदु ८/a तत्कांडकोत्कृष्टकालमिदु ८/१ आदियनंतवोळ्कळे वोडे शेषं तत्कांडकदोळु जघन्यकालद मेले पेच्चिवद समयंगळ प्रमाणमप्पुवु ८ a १/१ a ई कालविशेषदिवं क्षेत्रविशेषमं भागिसुवुदेके दोडे जघन्यकालद मेले इनितु समयंगळु पेच्चिवदागळा जघन्यक्षेत्रद मेलेनितु प्रदेशंगळु पेच्चिवद वों दु समयं पेच्चिवदागळेनितु प्रदेशंगळु पेर्च्चुगुमें दितु त्रैराशिकं माडि प्र काल ८ a १/१ a फलप्रदेश ६ a ७/७ a इच्छाकालसमय १ लब्धक्षेत्रप्रदेशंगळु ६/८ इंतावलिभक्तघनांगुलप्रमितक्षेत्र विकल्पंगळु ध्रुवरूपदिदं नडेदु नडेदों दों दु समयवृद्धियागुत्तं पोगि प्रथमकांडकचरमविकल्पदोळु जघन्यकालद मेले पेच्चिद समयंगळिनितप्पुवु ८ a ७/७ a इवं तज्जघन्यकालदोळु कूडुवागळु समच्छेदं माडि ८ ७/a ७ आवलिगावलियं तोरि संख्यातरूपुगळं कूडिदोडिदु ८ a/७ a अत्रत्यासंख्यातभाज्यभागहारंगळं सरिगळिद शेषं संख्यातभक्तावलिप्रमितमक्कु ८/a मत्तमों दु समयवृद्धियादागळु क्षेत्रदोळु आवलिभक्तघनांगुलप्रमितप्रदेशंगळु क्षेत्रदोळु पेर्च्चुत्तं विरलागळिनितु समयंगळु पेच्चिवदलिगेनितु प्रदेशंगळु क्षेत्रदोलु पेर्च्चुववें दितु त्रैराशिकमं माडि प्र = का स १ । फ । = प्रदेश ६/८ इ = का स ८ a–७/७ a लब्धक्षेत्रप्रदेशंगळु ६ a–७/a ७ इवं जघन्यक्षेत्रदोळ् कूडुवागळु संख्यातरूपुगळिवं समच्छेदं माडि ६ ७/a ७ घनांगुलक्के घनांगुलमं तोरि संख्यातरूपुगळं कूडिदोडिदु ६ a/७ a अत्रत्यासंख्यातभाज्यभागहारंगळनपवर्तिसिद शेषं संख्यातभक्तघनांगुलप्रमितं चरमक्षेत्रविकल्पमक्कुं ६/७

इन्तु ध्रुवरूपवृद्धि विवक्षेयिं सर्व्वकांडकदोळं परिपाटिक्रमवरियल्पडुगुमिन्तु ध्रुववृद्धिविवक्षेयिद तत्प्रथमकांडकदोळु असंख्यं संख्यं भागं असंख्यवारं तु घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रक्षेत्र प्रदेशंगळु जघन्यक्षेत्रद मेले पेच्चिवदागळों दों दु समयं जघन्यकालद मेले पेर्च्चुगुमंते घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रक्षेत्रप्रदेशंगळु पेच्चिवदागळों वुं समयं केळगण कालदमेले पेर्च्चुगुमितु ध्रुवाध्रुववृद्धिगळु क्षेत्रदोळु तद्योग्यासंख्यातवारंगळागुत्तं विरलु कालदोळु मुंपेळ्दिनितु समयंगळु ८ a–७/७ a

---

प्रथमकाण्डकचरमविकल्पपर्यन्तं असंख्यातवारं भवति । तु–पुनः, तत्रैव काण्डके अध्रुववृद्धिविवक्षाया तद्वृद्धिप्रमाणं घनाङ्गुलस्यासंख्यातैकभागमात्रं संख्यातैकभागमात्रं च स्यात् सापि तच्चरमपर्यन्तमसंख्यातवारं भवति ॥४०१॥

तेन उक्तध्रुववृद्धिप्रमाणेन अध्रुववृद्धिप्रमाणेन वा जघन्यदेशावधिविषयक्षेत्रस्योपरि क्षेत्रे वर्धिते

एक-एक प्रदेश बढ़ते-बढ़ते घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रदेश बढ़नेपर जघन्य देशावधिके विषयभूत कालमें एक समयकी वृद्धि होती है। इस प्रकार क्षेत्रमें इतनी वृद्धि होनेपर कालमें एक समयकी वृद्धि आगे भी होती है इसे ध्रुववृद्धि कहते हैं। और पूर्वोक्त प्रकारसे ही कभी

जघन्यकालदोळु पेर्च्चुववो प्रथमकांडक्केपरिपाटियिवं ध्रु वाध्रु ववृद्धिगळु देशावधिय सर्व्वक्षेत्रकाल-कांडकंगळोळु तत् क्षेत्रकालानुसारविंदं संभविसुववल्लि क्षेत्रवृद्धिगळु ध्रु वरूपविवक्षेयिदं तत्तत्-कांडकदोळवस्थितरूपमक्कुमाध्रु ववृद्धिविवक्षेयिदं तत्तत्कांडकदोळु प्रथमकांडकं मोदलागि क्षेत्रानु-सारमागि केलवेडेयोळु घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रं केलवेडेयोळु घनांगुलसंख्यातैकभागमात्रं केलवेडेयोळु घनांगुलमात्रं केलवेडेयोळु संख्यातघनांगुलमात्रं केलवेडेयोळसंख्यातघनांगुलमात्रं केलवडेयोळु श्रेण्यसंख्येयभागमात्रं केलवेडेयोळु श्रेणिसंख्येयभागमात्रं केलवेडेयोळु श्रेणिमात्रं केलवेडेयोळु संख्यातश्रेणिमात्रं केलवेडेयोळसंख्यातश्रेणिमात्रं केलवेडेयोळं प्रतराऽसंख्येयभागमात्रं केलवेडेयोळं प्रतरसंख्येयभागमात्रं केलवेडेयोळु प्रतरमात्रं केलवेडेयोळसंख्यातप्रतरमात्रं क्षेत्र-प्रदेशंगळु क्षेत्रदोळु पेच्चिदागळोंदोंदु समयदमधस्तनकालद मेले पेर्च्चुगुमितऽसंख्यातवारं पेर्च्चुगुमेंदु वक्तव्यमक्कुमदुकारणदिंदमुत्कृष्टक्षेत्रकालंगळुत्पत्तिगाळिविरोधिसल्पडवेंदितु सिद्धंगळु ।

संखातीदा समया पढमे पव्वम्मि उभयदो वड्ढी ।
खेत्तं कालं अस्सिय पढमादी कंडये बोच्छं ॥४०३॥

संख्यातीताः समयाः प्रथमे पर्व्वणि उभयतो वृद्धिः । क्षेत्रं कालमाश्रित्य प्रथमादिकांडकानि वक्ष्यामि ॥

प्रथमे पर्व्वणि मोदलकांडकदोळु संख्यातीताः समयाः असंख्यातसमयंगळु पूर्व्वोक्तप्रमितंगळु ८ a १ / १ a उभयतो वृद्धिः ध्रु वाध्रु वरूपदिंदं वृद्धियरियल्पडुगुं । क्षेत्रमुमं कालमुमनाश्रयिसि

जघन्यकालस्योपरि एकैक ममयो वर्धते ॥४०२॥

एव मति प्रथमे पर्वणि काण्डक उभयतः ध्रुवरूपतोऽध्रुवरूपतो वा वृद्धि. क्षेत्रवृद्धि संख्यातीताः समयाः जघन्यकालोननदुत्कृष्टकालमात्रा. स्यु ८ । a–१ / १ । a । क्षेत्रवृद्धिस्तु तज्जघन्यक्षेत्रोनतदुत्कृष्टक्षेत्रमात्री ६ । a–१ / १ । a इमौ वृद्धिक्षेत्रकालौ जघन्यक्षेत्रकालाभ्या—६ । ८ / a a समच्छेदेन ६ । १ । ८ । १ / a । १ । a । १ मेलयित्वा ६ । a । ८ । a / १ । a । १ । a अपवर्तितौ । ६ । ८ / १ । १ प्रथमकाण्डकचरमविकल्पविषयौ क्षेत्रकालौ स्याताम् । इतः परं क्षेत्रं काल चाश्रित्य प्रथमादीनि एकान्न-

---

घनांगुलके असंख्यातवें भाग और कभी घनांगुलके संख्यातवें भाग प्रदेशोंकी वृद्धि होनेपर कालमें एक समयकी वृद्धिके होनेको अध्रुववृद्धि कहते हैं ॥४०२॥

इस प्रकार पहले काण्डकमें ध्रुवरूप और अध्रुवरूपसे एक-एक समय बढ़ते-बढ़ते असंख्यात समयकी वृद्धि होती है। सो प्रथमकाण्डकके उत्कृष्टकालके समयोंमें-से जघन्यकालके समयोंको घटानेपर जो शेष रहे उतने असंख्यात समयोंकी वृद्धि प्रथम काण्डकमें होती है। इसी तरह प्रथमकाण्डकके उत्कृष्ट क्षेत्रके प्रदेशोंमेंसे उसके जघन्य क्षेत्रके प्रदेशोंको घटानेपर जो शेष रहे उतने प्रदेशप्रमाण प्रथम काण्डकमें क्षेत्र वृद्धि होती है। इन वृद्धिरूप क्षेत्र और कालको जघन्य क्षेत्र और जघन्य कालमें जोड़नेपर प्रथम काण्डकके अन्तिम विकल्पके क्षेत्र और काल होते हैं। अर्थात् वृद्धिरूप प्रदेशोंके परिमाणको जघन्य क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवें भागमें मिलानेपर प्रथम काण्डकके अन्तिम भेदके क्षेत्रका प्रमाण होता है। इसी प्रकार वृद्धिरूप समयोंके परिमाणको जघन्य काल आवलीके असंख्यातवें भागमें जोड़नेपर प्रथम काण्डक-

प्रथमादिकांडकंगळं पेळ्वपेनें बुदाचार्यन प्रतिज्ञेयक्कुं ।

अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्जदो वि संखेज्जा ।
अंगुलमावलियंतो आवलियं चांगुलपुधत्तं ॥४०४॥

अंगुलमावल्योर्भागोऽसंख्येयतोपि संख्येयः । अंगुलमावल्यंतः आवलिकं चांगुलपृथक्त्वं ॥

प्रथमकांडकदोळु जघन्यक्षेत्र कालंगळु घनांगुलावळिगळ असंख्यातैकभागमात्रंविदं मेले संख्येयो भागः क्षेत्रमुं कालमुं यथासंख्यमागि घनांगुलसंख्येयभागमुमावळि संख्येयभागमुमक्कु ६ ८ / १ १

द्वितीयकांडकदोळु क्षेत्रं घनांगुलमक्कुं कालमावल्यंतमेयक्कुं । किंचिदूनावलि यें बुदर्थं । ६ । ८–। तृतीयकांडकदोळु आवलिरंगुलपृथक्त्वं घनांगुलपृथक्त्वमुमावलियमक्कुं । पृथक्त्व । ६८ ।

आवलियपुधत्तं पुण हत्थं तह गाउयं मुहूत्तं तु ।
जोयणभिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णुवीसं तु ॥४०५॥

आवलिपृथक्त्वं पुनर्हस्तस्तथा गव्यूतिर्म्मुहूर्त्तस्तु । योजनं भिन्नमुहूर्त्तः दिवसांतः पंचविंशतिस्तु ॥

चतुर्थकांडकदोळु पृथक्त्वावलियुमेकहस्तमुमक्कुं । हस्त १ । ८ । पृ । पंचमकांडकदोळु तथा गव्यूतिर्म्मुहूर्त्तांतः एकक्रोशमुमंतर्म्मुहूर्तमुमक्कुं । को १ । का २ १– । षष्ठकांडकदोळु योजनंभिन्नमुहूर्त्तः एकयोजनमुं भिन्नमुहूर्त्तमुमक्कुं । यो १ । का = भिन्नमु १ ॥ सप्तमकांडकदोळु दिवसांतः पंचविंशतिस्तु किंचिदूनदिवसमुं पंचविंशतियोजनंगळुमक्कुं । यो २५ का = दि १ ।

विंशतिकाण्डकानि वक्ष्ये इत्याचार्यप्रतिज्ञा ॥४०३॥

प्रथमकाण्डके क्षेत्रकालौ जघन्यौ घनाङ्गुलावल्योरसंख्यातैकभागौ ६ । ८ उत्कृष्टौ तयोः संख्येयभागौ / a a

६ । ८ द्वितीयकाण्डके क्षेत्रं घनाङ्गुलम् । कालः आवल्यन्तः-किंचिदूनावलिरित्यर्थः ६ । ८– । तृतीयकाण्डके / १ । १
क्षेत्रं घनाङ्गुलपृथक्त्वं कालः आवलिपृथक्त्वं पृ ६ । ८ ॥४०४॥

चतुर्थकाण्डके कालः आवलिपृथक्त्व । क्षेत्र एकहस्तः । ह १ । ८ पृ । पञ्चमकाण्डके क्षेत्रं एकक्रोशः । कालः अन्तर्मुहूर्तः । क्रो १ । का २ १ । षष्ठकाण्डके क्षेत्रमेकयोजन, कालः भिन्नमुहूर्तः । यो १ का भिन्न मु० १– । सप्तमकाण्डके कालः किंचिदूनदिवसः क्षेत्रं पञ्चविंशतियोजनानि यो २५ का दि १– ॥४०५॥

के अन्तिम भेदमें कालका प्रमाण होता है । आगे क्षेत्र और कालको लेकर उन्नीस काण्डक कहेंगे ऐसी प्रतिज्ञा आचार्यने की है ॥४०३॥

प्रथम काण्डकमें जघन्य क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवें भाग और जघन्य काल आवलीका असंख्यातवाँ भाग है । उत्कृष्ट क्षेत्र घनांगुलका संख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट काल आवलीका संख्यातवाँ भाग है । द्वितीयकाण्डकमें क्षेत्र घनांगुल प्रमाण और काल कुछ कम आवली है । तीसरे काण्डकमें क्षेत्र घनांगुल पृथक्त्व प्रमाण है और काल आवली पृथक्त्व प्रमाण है ॥४०४॥

चतुर्थ काण्डकमें काल आवली पृथक्त्व और क्षेत्र एकहाथ प्रमाण है । पाँचवें काण्डकमें क्षेत्र एक कोस प्रमाण काल अन्तर्मुहूर्त है । छठे काण्डकमें क्षेत्र एक योजन और काल भिन्न मुहूर्त है । सप्तम काण्डकमें काल कुछ कम एक दिन और क्षेत्र पचीस योजन है ॥४०५॥

भरहम्मि अद्धमासं साहियमासं च जंबुदीवम्मि ।
वासं च मणुवलोए वासपुधत्तं च रुजगम्हि ॥४०६॥

भरतेऽर्द्धमासः साधिकमासश्च जंबूद्वीपे । वर्षं च मनुजलोके वर्षपृथक्त्वं च रुचके ॥

अष्टमकांडकदोळु भरतक्षेत्रमुमर्द्धमासमक्कुं । भर । अर्द्ध मा । नवमकांडकदोळु जंबूद्वीपमं साधिकमासमुमक्कुं । जं मा. १ । दशमकांडकदोळु मनुष्यलोकमुमेकवर्षमुमक्कुं । म ४५ ल । वर्ष १ । एकादशकांडकदोळु रुचकद्वीपमुं च वर्षपृथक्त्वमुमक्कुं । रु । व पृ ।

संखेज्जपमे वासे दीवसमुद्दा हवंति संखेज्जा ।
वासम्मि असंखेज्जे दीवसमुद्दा असंखेज्जा ॥४०७॥

संख्येयप्रमे वर्षे द्वीपसमुद्रा भवंति संख्येयाः । वर्षे असंख्येये द्वीपसमुद्रा असंख्येयाः ॥

द्वादशकांडकदोळु संख्येयमात्र द्वीपसमुद्रंगळु संख्यातवर्षंगळुमप्पुवु । द्वी = स = १ ॥ वर्ष १ । मेळे त्रयोदशादि कांडकंगळोळु तैजसशरीरादि द्रव्यविकल्पंगळेडेयोळु मुं पेळ्दऽसंख्यातद्वीपसमुद्रंगळु तत्कालंगळुमसंख्यातवर्षंगळुमसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवु । इंतु देशावधिज्ञानविषयंगळप्प द्रव्यक्षेत्रकालं भावंगळ एकान्नविंशतिकांडकगळोळु चरमकांडक चरमद्रव्यक्षेत्रकालभावंगळु मुं पेळ्द ध्रुवहारैकवारभक्तकार्म्मणवर्गणेयुं $\frac{व}{९}$ संपूर्णकमुं ≡ समयोनैकपल्यमुं ॥ प १ ॥ यथाक्रमदिंदमप्पुवुमाद्यदेशावधिज्ञानविषय द्रव्यक्षेत्रकालभावंगळगे सदृष्टि—

अष्टमकाण्डके क्षेत्र–भरतक्षेत्रं, काल अर्धमास, भर अर्धमा = । नवमकाण्डके क्षेत्रं जम्बूद्वीप, कालः साधिकमास., जं = । मा १ । दशमकाण्डके क्षेत्रं मनुष्यलोकः कालः एकवर्ष., ४५ ल वर्ष १ । एकादशे काण्डके क्षेत्र रुचकद्वीपः, काल वर्षपृथक्त्व रु । व पृ ॥४०६॥

द्वादशे काण्डके क्षेत्रं संख्येयद्वीपसमुद्राः । कालः संख्यातवर्षाणि द्वी = स = १ वर्ष १ । उपरित्रयोदशादिषु काण्डकेषु तैजसशरीरादिद्रव्यविकल्पस्थानेषु क्षेत्राणि असंख्यातद्वीपसमुद्राः कालः असंख्यातवर्षाणि उभयेऽपि असंख्यातगुणितक्रमेण भवन्ति । चरमकाण्डकचरमे द्रव्यं ध्रुवहारभक्तकार्मणवर्गणा $\frac{व}{९}$ क्षेत्रं संपूर्णलोकः ≡ कालः समयोनपल्यं प—१ ॥४०७॥

अष्टमकाण्डकमें क्षेत्र भरतक्षेत्र और काल आधामास है। नौवें काण्डकमें क्षेत्र जम्बूद्वीप काल कुछ अधिक एक मास है। दसवें काण्डकमें क्षेत्र मनुष्य लोक, काल एक वर्ष है। ग्यारहवें काण्डकमें क्षेत्र रुचकद्वीप काल वर्षपृथक्त्व है ॥४०६॥

बारहवें काण्डकमें क्षेत्र संख्यात द्वीप-समुद्र और काल संख्यात वर्ष है। आगे तेरहवे आदि काण्डकोंमें जो तैजस शरीर आदि द्रव्यकी अपेक्षा स्थान कहे हैं, उनमें क्षेत्र असंख्यात द्वीप समुद्र है और काल असंख्यात वर्ष है। दोनों ही आगे-आगे क्रमसे असंख्यातगुने असंख्यातगुने होते हैं। अन्तके उन्नीसवें काण्डकमें द्रव्य तो कार्मणावर्गणामें ध्रुवहारका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतना है। क्षेत्र सम्पूर्ण लोक है और काल एक समय कम पल्य प्रमाण है ॥४०७॥

देशावधि संबंध			
व ९ ख ९ व व ९ ९ ०	≡ ० ० ०	प १ ० ० ०	≡a ० ० ०
कार्म्मसम कार्म्मसम	० ० ० द्वीप a ६	० ० ० वर्ष a ६	० ० ० ०
० ० म ण व म ण व	० ० ० द्वीप e ५	० ० ० वर्ष a ५	० ० ० ०
० ० भाषा प भाषो प	० ० ० द्वीप a ४	० ० ० वर्ष a ४	० ० ० ०
० ० तेज वर्ग तेज वर्ग	० ० ० द्वीप a ३	० ० ० वर्ष a ३	० ० ० ०
० ० कार्म्मण श कार्म्मण श	० ० ० द्वीप a २	० ० ० वर्ष a २	० ० ० ०
० ० तेज०:शरीर तेजः शरीर	० ० ० द्वीप स ७	० ० ० वर्ष a १	० ० ० ०
० ० ०	० ०	० ० ० वर्ष स ७	० ० ० ०
० ० ० ०	० ० रुचक	० ० ० वर्ष पृ	० ० ०
० ० ०	० ० मानसक्षे.४५	० ० ० वर्ष १	० ० ०
० ० ०	० ० जंबु द्वीप	० ० मास १	० ० ०
० ० ०	० ० भरत	० ० दिन १५	० ० ०
० ० ०	० ० यो २ ५	० ० दिन १	० ० ०
० ० ०	० ० यो १	० ० भिन्न १-	० ० ०
० ० ०	० ० क्रोश १	२१ म्न १-	० ० ० ० ०
० ० ०	० ० हस्त १	० ० पृ ८	० ० ० ० ० ०
० ० ०	० ० ० पृ ६	० ० ० ८	० ० ० ० ० ०
० ० ०	० ६	० ० ० ८	० ० ० ० ०

०   ०
०   ०   ०
०   ६   ८   ०
०   ७   ७ ८ ८ ८ ८   ०
०   ०   ०   ०
०   ०   ० e a a a a a
०   ०   ० ८ ८ ८
०   ०   ० a a a a
०   ०   ० ८ ८
०   ० a a a
स a १२   १६ ख ०   ० ८
≡   ९   ६   ८ a
स a १२   १६ ख a a a
≡

द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव

काल विसेसेणवहिदखेत्तविसेसो धुवा हवे वड्ढी ।
अद्धुववड्ढीवि पुणो अविरुद्धं इट्ठकंडम्मि ॥४०८॥

कालविशेषेणापहृतक्षेत्रविशेषो भवेत् ध्रुवा वृद्धिः । अध्रुववृद्धिरपि पुनरविरुद्धमिष्टकांडके ।

कालविशेषेणापहृतः क्षेत्रविशेषो ध्रुवा वृद्धिर्भवेत् । प्रथमकांडकदोळु जघन्यकालमं ८/a तन्नुत्कृष्टकालदोळु ८/१ विशेषिसि ८a – १/१a अदरिंदं भागिसल्पट्ट क्षेत्रविशेषं जघन्यक्षेत्रमं ६/a तन्नुत्कृष्टक्षेत्रदोळु ६/१ शेषिसिदुदनिद ६a–१/१a भागिसिद लब्ध ६a–१/(१a८a१/१a) मपवर्त्तितमिवु ६/८ ध्रुवा भवेत् वृद्धि :। प्रथमकांडकदोळु ध्रुवरूपक्षेत्रवृद्धिप्रमाणमक्कुं । सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्र-द्रव्यविकल्पंगळवस्थितरूपदिदं नडदोंदु प्रदेशं क्षेत्रदोळु पेर्च्चुगुमी क्रमदिदमीयावलि भक्तघनांगुल-प्रमितप्रदेशंगळु जघन्यक्षेत्रदोळु पेच्चि कालदोळोंदु समयं जघन्यकालद मेले पेर्च्चुगुमितु तत्कांडक चरमपर्य्यंतं ध्रुवरूपदिदं जघन्यकालद मेले पेर्च्चिद समयंगळिनितप्पुवु ८a१/१a इवं जघन्य-कालदोळु ८/a समच्छेदं माडि कूडिदोडे प्रथमकांडक चरमदोळु आवलि संख्येयभागमक्कुमेंबुदर्थं ८/१ जघन्य क्षेत्रद मेले ६/a पेर्च्चिद प्रदेशंगळुमिनितप्पुवु ६a१/१६ विवं जघन्यक्षेत्रदोळु कूडिदोडे प्रथमकांडकचरमदोळु घनांगुलसंख्येयभागमात्रमक्कुं ६/१ इंतेल्ला कांडकंगळोळं ध्रुववृद्धियं

विवक्षितकाण्डके जघन्यक्षेत्रं स्वोत्कृष्टक्षेत्रे जघन्यकाल च स्वोत्कृष्टकाले विशोध्य शेषराशी क्षेत्र-कालविशेषौ स्याताम् । तत्र प्रथमकाण्डके कालविशेषेण ८। a–१/१।a क्षेत्रविशेषः ६। a–१/१।a भक्त्वा ६ a–१/(१a८a–१/१a) अपवर्तित ६/८ ध्रुवावृद्धिर्भवेत् । सूच्यङ्गुलासंख्येयभागमात्रद्रव्यविकल्पेषु अवस्थितरूपेण गतेषु एकप्रदेशः क्षेत्रे वर्धते । अनेकक्रमेण आवलिभक्तघनाङ्गुलप्रमितप्रदेशा. जघन्यक्षेत्रस्योपरि वर्धन्ते । तदा जघन्यकालस्योपरि एक. समयो वर्धते । एव तत्काण्डकचरमपर्यन्त ध्रुवरूपेण जघन्यकालस्योपरि वर्धितसमयप्रमाणमिदम् । ८ a–१/१ a

विवक्षित काण्डकके अपने उत्कृष्ट क्षेत्रमें जघन्य क्षेत्रको और अपने उत्कृष्ट कालमें। जघन्य कालको घटानेपर जो शेष राशि रहती है उसको क्षेत्र विशेष और काल विशेष कहते हैं। प्रथम काण्डकके कालविशेषसे क्षेत्रविशेषमें भाग देनेपर ध्रुववृद्धिका प्रमाण होता है। सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र द्रव्यके विकल्पोंके बीतनेपर क्षेत्रमें एक प्रदेश बढ़ता है। इस क्रमसे जघन्य क्षेत्रके ऊपर आवलीसे भाजित घनांगुल प्रमाणप्रदेश जघन्य क्षेत्रके ऊपर बढ़ते हैं। इतने प्रदेश जघन्य क्षेत्रके ऊपर बढ़नेपर जघन्यकालके ऊपर एक समय बढ़ता है। इस प्रकार प्रथम काण्डकके अन्त पर्यन्त ध्रुववृद्धिसे जितने समय बढ़ें उन्हें जघन्यकालमें मिलानेपर आवलीका संख्यातवाँ भाग प्रथम काण्डकका उत्कृष्ट काल होता है। इसी तरह जितने जघन्य क्षेत्रके ऊपर प्रदेश बढ़ें उन्हें जघन्य क्षेत्रमें मिलानेपर घनांगुलका संख्यातवाँ

साधिसुवुदु । अध्रुववृद्धिरपि पुनरविरुद्धमिष्टकांडकें अध्रुववृद्धियुं तन्न विवक्षितकांडकदोळ विरुद्धमागि ।

अंगुल असंखभागं संखं वा अंगुलं च तस्सेव ।
संखमसंखं एवं सेढीपदरस्स अद्धुवगे ॥४०९॥

अंगुलासंख्यातभागं संख्यं वा अंगुलं च तस्यैव । संख्यमसंख्यं एवं श्रेणीप्रतरस्या ध्रुवके ॥

अध्रुववृद्धिविवक्षितमादोडे तत्कांडक क्षेत्रकालंगळऽविरुद्धमागि घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रमुं ६/a मेणु घनांगुल संख्यातैकभागमात्रमुं ६/१ मेणु घनांगुलमात्रमुं ६ संख्यातघनांगुलमात्रमुं ६१ । असंख्यातघनांगुलमात्रमुं । ६a । एवं इंतु श्रेणिगं प्रतरक्कमरियल्पडुगुमदेंतेदोडे श्रेण्यसंख्येयभागमात्रमुं श्रेणिय संख्येयभागममात्रमुं श्रेणिमात्रमुं, संख्यातश्रेणिमात्रमुं ।—१। असंख्यातश्रेणिमात्रमुं ।—a । असंख्येयभागप्रतरमात्रमुं =/a प्रतरसंख्येयभागमात्रमुं =/१ प्रतरमात्रमु = संख्यातप्रतरमात्रमु =१ असंख्यातप्रतरमात्रमुं =a प्रदेशगळु पेर्चि पेर्च्चिकालदोळेकैक समयं पेर्च्चुगुमें बुदध्रुववृद्धिक्रमं ।

कम्मइयवग्गणं धुवहारेणिगिवारभाजिदे दव्वं ।
उक्कस्सं खेत्तं पुण लोगो संपुण्णओ होदि ॥४१०॥

कार्म्मणवर्गणां ध्रुवहारेणैकवारभाजिते द्रव्यमुत्कृष्टं क्षेत्रं पुनर्लोकः संपूर्णो भवति ॥

अत्र च जघन्यकाले ८ समच्छेदेन ६/a । १/a१ । मिलिते प्रथमकाण्डकचरमे घनाङ्गुलसंख्येयभागो भवति ६/१ एव सर्वकाण्डकेषु ध्रुववृद्धि साधयेत् । अध्रुववृद्धिरपि विवक्षितकाण्डकेन तत्तत्क्षेत्रकालाविरोधेन वक्तव्या ॥४०८॥

तद्यथा—

घनाङ्गुलासंख्यातैकभागमात्राः ६/a वा घनाङ्गुलसंख्येयभागमात्रा. ६/१ वा घनाङ्गुलमात्राः ६ वा संख्यातघनाङ्गुलमात्राः ६ १ वा असंख्यातघनाङ्गुलमात्रा ६ a एव श्रेणीप्रतरयोरपि, तथाहि—श्रेण्यसंख्येयभागमात्राः a वा श्रेणिसंख्येयभागमात्रा. १ वा श्रेणिमात्राः—वाः संख्यातश्रेणिमात्रा.—१ वा असंख्यातश्रेणिमात्रा.—a वा प्रतरासंख्येयमात्रा =/a वा प्रतरसंख्येयभागमात्रा =/१ वा संख्यातप्रतरमात्रा = १ वा असंख्यातप्रतरमात्राः = a प्रदेशा वर्धित्वा वर्धित्वा काले एकैकसमयो वर्धते इत्यध्रुववृद्धिक्रमः ॥४०९॥

भागप्रमाण उत्कृष्टक्षेत्र प्रथमकाण्डकका होता है। इसी प्रकार सब काण्डकोंमें ध्रुववृद्धिका प्रमाण लाना चाहिए। अध्रुववृद्धि भी विवक्षित काण्डकमें उस-उस क्षेत्रकालका विरोध न करते हुए लानी चाहिए ॥४०८॥

वही कहते हैं—

घनांगुलके असंख्यातवें भागमात्र अथवा घनांगुलके संख्यातवें भागमात्र, अथवा घनांगुलमात्र, अथवा संख्यात घनांगुलमात्र, अथवा असंख्यात घनांगुलमात्र, अथवा श्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र, अथवा श्रेणीके संख्यातवें भागमात्र, अथवा श्रेणिप्रमाण, अथवा संख्यात श्रेणिमात्र, अथवा असंख्यात श्रेणिमात्र, अथवा प्रतरके असंख्यातवें भाग, अथवा प्रतरके संख्यातवें भाग अथवा प्रतरमात्र अथवा संख्यात प्रतरमात्र अथवा असंख्यात प्रतरमात्र प्रदेश बढ़ा-बढ़ाकर कालमें एक-एक समय बढ़ता है। इस प्रकार अध्रुववृद्धिका क्रम है ॥४०९॥

कार्म्मणवर्ग्गणेयनोम्मे ध्रुवहारदिंदं भागिसिदोडे देशावधिज्ञानवुत्कृष्टद्रव्यमक्कुं व/९ तदुत्कृष्टं क्षेत्रं मत्ते लोकवोळेनुं कोरतेयिल्लदे संपूर्णलोकमात्रमक्कुं।

पल्ल समऊणकाले भावेण असंखलोगमेत्ता हु।
दव्वस्स य पज्जाया वरदेसोहिस्स विसया हु ॥४११॥

पल्यं समयोनं काले भावेन असंख्य लोकमात्राः खलु। द्रव्यस्य च पर्य्यायाः वरदेशावधेर्व्विषयाः खलु ॥

कालदोळु देशावधिगुत्कृष्टं समयोनपल्यमात्रमक्कुं। प १। भावदिंदमसंख्यातलोकमात्रंगळु स्फुटमागि काल भाव शब्दद्वयवाच्यंगळुमा द्रव्यपर्य्यायंगळु वरदेशावधिज्ञानक्के विषयंगळप्पुवु। स्फुटमागि। ≡a ॥

काले चउण्ह उड्ढी कालो भजिदव्व खेत्तउड्ढी य।
उड्ढीए दव्वपज्जय भजिदव्वा खेत्तकाला हु ॥४१२॥

काले चतुर्णां वृद्धिः कालो भजनीयः क्षेत्रवृद्धिश्च। द्रव्यपर्य्याययोर्वृद्धौ भक्तव्यौ क्षेत्रकालौ ॥

आवागळोम्मे कालवृद्धियक्कुमागळु द्रव्यक्षेत्रकालभावंगळनाल्कर वृद्धिगळक्कुं क्षेत्रवृद्धियागुत्तं विरलु कालमोंदे भजनीयमक्कुं। द्रव्यभावंगळ वृद्धियोळु क्षेत्रकालद्वयवृद्धिगळु विकल्पनीयंगळप्पुवेंबुदु युक्तियुक्तमेयक्कुं।

कार्मणवर्गणा एकवार ध्रुवहारेण भक्ता देशावध्युत्कृष्टद्रव्य भवति व/९ तदुत्कृष्टक्षेत्र पुनः सपूर्णलोको भवति ≡ ॥४१०॥

काले देशावधेरुत्कृष्ट समयोनपल्यं भवति प—१। भावेन पुनः असख्यातलोकमात्रं भवति ≡a कालभावशब्दद्वयवाच्यास्ते द्रव्यस्य पर्याया वरदेशावधिज्ञानस्य स्फुट विषया भवन्ति ॥४११॥

यदा कालवृद्धिस्तदा द्रव्यादीना चतुर्णां वृद्धयो भवन्ति। यदा क्षेत्रवृद्धिस्तदा कालवृद्धि स्याद्वा न वेति भजनीया। यदा द्रव्यभाववृद्धी तदा क्षेत्रकालवृद्धी अपि भजनीये इत्येतत्सर्वं युक्तियुक्तमेव ॥४१२॥ अथ परमावधिज्ञानप्ररूपणमाह—

कार्मणवर्गणाको एक बार ध्रुवहारसे भाजित करनेपर देशावधिका उत्कृष्ट द्रव्य होता है और उत्कृष्ट क्षेत्र सम्पूर्ण लोक है ॥४१०॥

देशावधिका उत्कृष्ट काल एक समयहीन पल्य है और भाव असंख्यात लोकप्रमाण है। काल और भावशब्दसे द्रव्यकी पर्याय उत्कृष्टदेशावधिज्ञानके विषय होती हैं। ऐसा जानना।

विशेषार्थ—एक समयहीन एक पल्य प्रमाण अतीतकालमें हुई और उतने ही प्रमाण आगामी कालमें होनेवाली द्रव्यकी पर्यायोंको उत्कृष्ट देशावधि जानता है। भावसे असंख्यात लोकप्रमाण पर्यायोंको जानता है ॥४११॥

अवधिज्ञानके विषयमें जब कालकी वृद्धि होती है तब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चारोंकी वृद्धि होती है। जब क्षेत्रकी वृद्धि होती है तब कालकी वृद्धि भजनीय है, हो या न हो। जब द्रव्य और भावकी वृद्धि होती है तब क्षेत्र और कालकी वृद्धि भजनीय है। यह सब युक्तियुक्त ही है ॥४१२॥

---

१. स्वविषयस्कंधगतानंतवर्णादिविकल्पो भाव इति राजवार्त्तिके उक्तत्वात् द्रव्यस्य पर्याया एव कालभावशब्दवाच्या भूतभावि पर्य्यायाणा वर्त्तमानपर्य्यायाणा च कालभावत्वख्यापनात् इति टिप्पण।

अनंतरं परमावधिज्ञान प्ररूपणमं पेळदपं :—

देसावहिवरदव्वं धुवहारेणवहिदे हवे णियमा ।
परमावहिस्स अवरं दव्वपमाणं तु जिणदिट्ठं ॥४१३॥

देशावधिवरद्रव्यं ध्रुवहारेणापहृते भवेन्नियमात् । परमावधेरवरद्रव्यप्रमाणं तु जिनदिष्टं ॥

सर्व्वोत्कृष्टदेशावधिज्ञानविषयोत्कृष्टद्रव्यमं पूर्व्वोक्त ध्रुवहारैकवार भक्तकार्म्मणवर्गणाप्रमाणमं व/९ ध्रुवहारदिदं भागिसुत्तिरलु व/९९ तु मत्ते परमावधिविषयजघन्यद्रव्यप्रमाणं नियमदिदमक्कुमेंदु जिनर्राळिदं पेळल्पट्टुदु । इन्ना परमावधियुत्कृष्टद्रव्यप्रमाणमं पेळदपं :—

परमावहिस्स भेदा सग ओगाहणवियप्पहदतेऊ ।
चरिमे हारपमाणं जेट्ठस्स य होदि दव्वं तु ॥४१४॥

परमावधेर्भेदाः स्वकावगाहनविकल्पहततेजसः । चरमे हारप्रमाणं ज्येष्ठस्य भवेत् द्रव्यं तु ॥

परमावधिज्ञानविकल्पंगळेनितप्पुवें दोडे स्वावगाहनविकल्पंगळिदं गुणिसल्पट्ट तेजःस्कायिकजीवंगळ संख्ये यावत्तावत्प्रमाणंगळप्पुवुं ≡ a६a/प/a ई परमावधिज्ञानसर्व्वविकल्पंगळोळु सर्व्वोत्कृष्टचरमविकल्पदोळु तु मत्ते द्रव्यमुत्कृष्टपरमावधिगे ध्रुवहारप्रमाणमेयक्कुं ॥ ९ ॥

सव्वावहिस्स एक्को परमाणू होदि णिव्वियप्पो सो ।
गंगामहाणइस्स पवाहोव्व धुवो हवे हारो ॥४१५॥

सर्व्वावधेरेकः परमाणुः भवेन्निर्व्विकल्पः । सः गंगामहानद्याः प्रवाहवत् ध्रुवो भवेद्धारः ॥

देशावधेरुत्कृष्टद्रव्यमिद व/९ तु—पुनः ध्रुवहारेण भक्त तदा व/९९ परमावधिविषयजघन्यद्रव्यं नियमेन भवतीति जिनैरुक्त ॥४१३॥ इदानी परमावधेरुत्कृष्टद्रव्यप्रमाणमाह—

परमावधिज्ञानविकल्पाः स्वावगाहनविकल्पगुणिततेजस्कायिकजीवसंख्या भवन्ति ≡a६/प/a । a । तेषु पुन. सर्वोत्कृष्टचरमविकल्पेषु पुन. द्रव्य ध्रुवहारप्रमाणमेव ९ भवेत् ॥४१४॥

अब परमावधिज्ञानका कथन करते हैं—

देशावधिके उत्कृष्ट द्रव्यको ध्रुवहारसे भाग देनेपर परमावधिके विषयभूत जघन्य द्रव्यका प्रमाण होता है ऐसा जिनदेवने कहा है ॥४१३॥

अब परमावधिके उत्कृष्ट द्रव्यका प्रमाण कहते हैं—

तेजस्कायिक जीवोंकी अवगाहनाके भेदोंसे तेजस्कायिक जीवोंकी संख्याको गुणा करनेपर जो प्रमाण आता है उतने परमावधिज्ञानके भेद हैं। उनमें-से सबसे उत्कृष्ट अन्तिम भेदके विषयभूत द्रव्य ध्रुवहार प्रमाण ही होता है। अर्थात् ध्रुवहारका जितना परिमाण है उतने परमाणुओंके समूहरूप सूक्ष्म स्कन्धको जानता है ॥४१४॥

मत्तमा परमावधिसर्व्वोत्कृष्टद्रव्यमं ध्रुवहारप्रमितमं । ९ । तु मत्ते ध्रुवहारदिदं भागिसिदोडों दे परमाणवक्कुमा द्रव्यं सर्व्वावधिज्ञानविषयद्रव्यमक्कुमा सर्व्वावधिज्ञानमुं निर्व्विकल्पमेयक्कुमितु देशावधिज्ञानविषयमप्प जघन्यद्रव्यराशियोळ् मध्यमयोगार्ज्जितनोकर्म्मौदारिकशरीरसंचयसविस्रसोपचयलोकविभक्तप्रमितद्रव्यस्कंधदोळ् देशावधिज्ञानद्वितीयविकल्पं मोदल्गों डु परमावधिज्ञानसर्व्वोत्कृष्टद्रव्यपर्य्यंतमवमोळ पोप्दु गंगानदीमहाप्रवाहमें तु हिमाचलदोळ्पुट्टि पूर्व्वोदधिपर्य्यंतमविच्छिन्नरूपदिदं परिदु पोगि तदुदधिप्रविष्टमादुदंते ध्रुवहारमुमविच्छिन्नरूपदिदं प्रवेशिसि प्रवेशिसि परमाणुद्रव्यपर्य्यवसानमागि निंदुदेके दोडे विषयभूतपरमाणुवुं विषयियप्पसर्व्वावधिज्ञानमुं निर्व्विकल्पकंगळप्पुदरिंद ।

परमोहिदव्वभेदा जेत्तियमेत्ता हु तेत्तिया होंति ।
तस्सेव खेत्तकालवियप्पा विसया असंखगुणिदकमा ॥४१६॥

परमावधिद्रव्यभेदाः यावन्मात्राः खलु तावन्मात्रा भवंति । तस्यैव क्षेत्रकालविकल्पाः विषया असंख्यगुणितक्रमाः ॥

परमावधिज्ञानविषयद्रव्यविकल्पंगळु यावन्मात्रंगळु तावन्मात्रंगळेयप्पुवु । परमावधिज्ञानविषयंगळप्प क्षेत्रविकल्पंगळुं कालविकल्पंगळुं तावन्मात्रविकल्पंगळागुत्तलुं तंतम्म जघन्यविकल्पं मोदल्गों डु तंतम्मुत्कृष्टपर्य्यंतमसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवेंतप्पऽसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवें दोडे पेळ्वपं ।

पुनस्तत्परमावधिसर्वोत्कृष्टं द्रव्यं ९ ध्रुवहारेणैकवारं भक्त एकपरमाणुमात्रं सर्वावधिज्ञानविषयं द्रव्यं भवति । तज्ज्ञानं निर्विकल्पकमेव स्यात् । स च ध्रुवहारः गङ्गामहानद्याः प्रवाहवद्भवति—यथा गङ्गामहानदीप्रवाहः हिमाचलादविच्छिन्नं प्रवह्य पूर्वोदधौ गत्वा स्थितस्तथायं हारोऽपि देशावधिविषयजघन्यद्रव्यात्परमावधिसर्वोत्कृष्टद्रव्यपर्यन्तं प्रवह्य परमाणुपर्यवसाने स्थितः विषयस्य परमाणोः, विषयिणः परमावधेश्च निर्विकल्पकत्वात् ॥४१५॥

परमावधिज्ञानविषयद्रव्यविकल्पा यावन्मात्राः तावन्मात्रा एव भवन्ति तस्य विषयभूतक्षेत्रकालविकल्पाः । तावन्मात्रा अपि स्वस्वजघन्यात् स्वस्वोत्कृष्टपर्यन्तं असंख्यातगुणितक्रमा भवन्ति ॥४१६॥ कीदृगसंख्यातगुणितक्रमाः ? इत्युक्ते प्राह—

उस परमावधिके सर्वोत्कृष्ट द्रव्यको एक बार ध्रुवहारसे भाग देनेपर एक परमाणु मात्र सर्वावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्य होता है। यह ज्ञान निर्विकल्प ही होता है इसमें जघन्य-उत्कृष्ट भेद नहीं है। वह ध्रुवहार गंगा महानदीके प्रवाहकी तरह है। जैसे गंगा महानदीका प्रवाह हिमाचलसे अविच्छिन्न निरन्तर बहता हुआ पूर्व समुद्रमें जाकर ठहरता है वैसे ही यह ध्रुवहार भी देशावधिके विषयभूत जघन्य द्रव्यसे सर्वावधिके उत्कृष्ट द्रव्य पर्यन्त बहता हुआ परमाणुपर आकर ठहरता है। सर्वावधिका विषय परमाणु और सर्वावधि ये दोनों ही निर्विकल्प हैं ॥४१५॥

परमावधिज्ञानके विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा जितने भेद कहे हैं उतने ही भेद उसके विषयभूत क्षेत्र और कालकी अपेक्षा होते हैं। फिर भी अपने-अपने जघन्यसे अपने-अपने उत्कृष्ट पर्यन्त क्रमसे असंख्यात गुणित क्षेत्र व काल होते हैं ॥४१६॥

किस प्रकार असंख्यात गुणित होते हैं यह कहते हैं—

आवलिअसंखभागा इच्छिदगच्छधणमाणमेत्ताओ।
देसावहिस्स खेत्ते काले वि य होंति संवग्गे ।।४१७।।

आवल्यसंख्यभागा ईप्सितगच्छधनमानमात्राः। देशावधेः क्षेत्रे कालेऽपि च भवंति संवर्गे ।।

परमावधिज्ञानविषयंगळप्प क्षेत्रकालंगळु तंतम्म जघन्यं मोदल्गोंडु असंख्यातगुणितक्रमदिदं परमावधिज्ञानसर्व्वोत्कृष्टपर्य्यंतमविच्छिन्नरूपदिदं नडेववंतु नडेव क्षेत्रकालविकल्पंगळावेडेयोळु विवक्षितंगळप्पुवल्लि देशावधिज्ञानविषयोत्कृष्टक्षेत्रकालमात्रगुण्यंगळगे आवल्यसंख्यातभागगुणकारंगळु तद्विवक्षितगच्छधनमानमात्रंगळु संवर्गंगळागुत्तिरलु तावन्मात्राऽसंख्यातगुणितक्रमंगळेंदरियल्पडुवदें तेंदोडे परमावधिज्ञानप्रथमविकल्पदोळु आवल्यसंख्यातभागगुणकारंगळु तद्गच्छमोंदर संकलितधनमात्रंगळु $\frac{१२}{२१}$ अप्पुवें दल्लियोंदे गुणकारमक्कु $\equiv ८_{ə}$ प− । $८_{ə}$ मंते विवक्षितद्वितीयविकल्पदोळु तद्गच्छसंकलनधनमानमात्रंगळप्पुवु $\frac{२३}{२१}$। मूरु मूरु गुणकारंगळप्पुवु $\equiv ८८८_{əəə}$ । प−$१८८८_{əəə}$ अंते विवक्षिततृतीयविकल्पदोळु तद्गच्छसंकलनधनमानमात्रंगळप्पुवु $\frac{३ । ४}{२ । १}$ वेंदारारप्पुवु $\equiv ८८८८८८_{əəəəəə}$ । प−$१८८८८८८_{əəəəəə}$ मी प्रकारदिंदं विवक्षितचतुर्थविकल्पदोळु तद्गच्छसंकलनधनमानमात्रंगळप्पुवु $\frac{४ । ५}{२ । १}$ वेंदु पत्तु पत्तु गुणकारंगळप्पुवु $\equiv ८_{ə}$ । १० ब−१ । $८_{ə}$ । १० मिते पंचमविकल्पदोळु तद्गच्छसंकलनधनमात्रंगळप्पु $\frac{२६}{२१}$ वेंदु

परमावधेर्विवक्षितक्षेत्रविकल्पे विवक्षितकालविकल्पे च तद्विकल्पस्य यावत्संकलितधनं तावत्प्रमाणमात्रा आवल्यसंख्येयभागाः परस्पर संवर्गे देशावधेरुत्कृष्टक्षेत्रे उत्कृष्टकालेऽपि च गुणकारा भवन्ति। ततस्ते गुणकाराः प्रथमविकल्पे एकः। द्वितीयविकल्पे त्रयः। तृतीयविकल्पे षट्। चतुर्थविकल्पे दश। पञ्चमविकल्पे पञ्चदश एवं

परमावधिके विवक्षित क्षेत्र और विवक्षित कालके भेदमें उस भेदका जितना संकलित धन हो, उतने प्रमाण आवलीके असंख्यातवें भागोंको परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतना देशावधिके उत्कृष्ट क्षेत्र और उत्कृष्ट कालमें गुणकार होते हैं। वे गुणकार प्रथम भेदमें एक, दूसरे भेदमें तीन, तीसरे भेदमें छह, चतुर्थ भेदमें दस, पंचम भेदमें पन्द्रह इस प्रकार अन्तिम भेद पर्यन्त जानना।

विशेषार्थ—जिस नम्बरके भेदकी विवक्षा हो, एकसे लगाकर उस भेद पर्यन्तके एक-एक अधिक अंकोंको जोड़नेसे जो प्रमाण आवे उतना ही उसका संकलित धन होता है। जैसे प्रथम भेदमें एक ही अंक है अतः उसका संकलित धन एक जानना। दूसरे भेदमें एक और दोको जोड़नेपर संकलित धन तीन होता है। तीसरे भेदमें एक, दो तीनको जोड़नेसे संकलित धन छह होता है। चौथे भेदमें उसमें चार जोड़नेसे संकलित धन दस होता है। पाँचवें भेदमें पाँचका अंक और जोड़नेसे संकलित धन पन्द्रह होता है। सो पन्द्रह जगह आवलीके असंख्यातवें भागोंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो परिमाण हो वही पाँचवें भेदका गुणकार होता है। इस गुणकारसे उत्कृष्ट देशावधिके क्षेत्र लोकको गुणा करनेपर जो

पदिनैदु पदिनैदुं गुणकारंगळप्पुवु ≡८।१५ प–१।८।१५ ई प्रकारदिदं षष्ठादिपरमावधि-
a a
चरमविकल्पपर्य्यंतं सैकपदाहतपदवलचयाहतमात्रगुणकारंगळावल्यसंख्यातंगळु पूर्व्वोक्तगुण्यंगळगे गुणकारंगळप्पुवेंबी व्याप्तियरियल्पडुगुं ।

मत्तमी गुणकारंगळुत्पत्तिक्रममं प्रकारांतरदिदं पेळ्दपरु :—

गच्छसमा तक्कालियतीदे रूऊणगच्छधणमेत्ता ।
उभये वि य गच्छस्स य धणमेत्ता होंति गुणगारा ॥४१८॥

गच्छसमा तात्कालिकातीते रूपोनगच्छधनमात्राः । उभयस्मिन्नपि गच्छस्य च धनमात्राः भवंति गुणकाराः ॥

अथवा गच्छसमासगुणकाराः विवक्षितपदमात्रा गुणकारंगळुं तात्कालिकातीते तद्विवक्षितस्थानानंतराधस्तनविकल्पदोळु रूपोनगच्छधनमात्राः तद्विवक्षितरूपोनगच्छधनमात्रंगळुं उभयस्मिन् मिलिते ई रूपोनगच्छधनमात्रंगळु विवक्षितगच्छमात्रंगळुमं कूडुत्तिरलु गच्छस्य च धनमात्रा भवंति मुं पेळ्दंते विवक्षितगच्छधनमात्रंगळप्पुवु । अदेंतेंदोडे विवक्षितचतुर्थविकल्पदोळु गुणकाराः गुणकारंगळु गच्छसमाः विवक्षितगच्छसमानंगळु ४ तात्कालिकातीते तद्विवक्षितस्थानानंतराधस्तनविकल्पदोळु रूपोनगच्छधनमात्राः तद्विवक्षितरूपोनगच्छधन ४।४/२।१ मात्रंगळु ६ उभयस्मिन्मिलितेपि च ई रूपोनगच्छधनमात्रंगळं विवक्षितगच्छमात्रंगळुमं ४ कूडुत्तिरलु गच्छस्य धनमात्रा भवंति मुं पेळ्दंते विवक्षितगच्छधनमात्रंगळु पत्तु गुणकारंगलप्पुवु ≡८।१०।प–१।८।१०
a a
अंते पंचमविकल्पदोळु गुणकाराः गुणकारंगळु गच्छसमाः विवक्षितगच्छसमानंगळु ५ तात्कालिकातीते तद्विवक्षितस्थानानंतराधस्तनविकल्पदोळु रूपोनगच्छधनमात्राः तद्विवक्षितरूपोनगच्छधन ५।५/१।१ मात्रंगळुं १० । उभयस्मिन्मिलितेपि च ई रूपोनगच्छधनमात्रंगळक्कं १० । विवक्षितगच्छमात्रंगळमं ५ कूडुत्तिरलु गच्छस्य च धनमात्रा भवंति मुंपेळ्दंते विवक्षितगच्छधनमात्रंगळु पदिनैदु

षष्ठादिचरमपर्यन्तं नेतव्यम् ॥४१७॥ पुनः प्रकारान्तरेण तानेव गुणकारान् उत्पादयति—

गच्छसमाः—गच्छमात्राः यथा चतुर्थविकल्पे चत्वारः, तात्कालिकातीते च तृतीयविकल्पे रूपोनगच्छ-

---

प्रमाण आवे उतना परमावधिके पाँचवें भेदके विषयभूत क्षेत्रका परिमाण होता है । तथा इसी गुणकारसे देशावधिके विषयभूत उत्कृष्ट काल एक समय हीन एक पल्यमें गुणा करनेपर पाँचवें भेदमें कालका परिमाण होता है । इसी तरह सब भेदोंमें जानना ॥४१७॥

पुनः प्रकारान्तरसे उन्हीं गुणकारोंको कहते हैं—

गच्छके समान धन और गच्छसे तत्काल अतीत जो विवक्षित भेदसे पहला भेद, सो विवक्षित गच्छसे एक कम गच्छका जो संकलित धन, इन दोनोंको मिलानेसे गच्छका संकलित धन प्रमाण गुणकार होता है। उदाहरण कहते हैं—जितनेवाँ भेद विवक्षित हो

गुणकारंगळप्पुवु ≡८। १५। प–१। ८। १५। इंतेल्लेडेयोळं व्याप्तियरियल्पडुगुं।
ə ə

परमावहिवरखेत्तेणवहिदउक्कस्स ओहिखेत्तं तु।
सव्वावहिगुणगारो काले वि असंखलोगो दु ॥४१९॥

परमावधिवरक्षेत्रेणापहृतोत्कृष्टावधिक्षेत्रं तु। सर्व्वावधिगुणकारः कालेप्यसंख्यातलोकस्तु।

परमावधिज्ञानविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणदिदं अवधिनिबद्धोत्कृष्टक्षेत्रमं भागिसुत्तिरलावुदों दु लब्धमदु तु मत्ते सर्व्वावधिज्ञानविषयक्षेत्रगुणकारमक्कुमावगुण्यक्किवुगुणकारमक्कुमें दोडे परमावधिज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रमक्कुमा गुण्यगुणकारंगळं गुणिसिद लब्धं सर्व्वावधिज्ञानविषयक्षेत्रमक्कुमें बुदत्थं। अंतावोडा अवधिनिबद्धोत्कृष्ट क्षेत्रप्रमाणमेनितें दोडे।

घणलोगगुणसलागा वग्गट्ठाणा कमेण छेदणया।
तेजक्कायस्स ठिदी ओहिणिबद्धं च खेत्तं ॥
अज्झवसाणणिगोदसरीरे तेसु वि य कायठिदी जोगा।
अविभागपडिच्छेदो लोगेवग्गे असंखेज्जे।

एंबी यागमप्रमाणदिदं घनघनाधारियोळ्पेळल्पट्ट अवधिनिबद्धोत्कृष्टमसंख्यातलोकसंवर्गसंजनितलब्धराशियक्कुमी राशियं परमावधिज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रदिदं भागिसुत्तिरलु ≡ ≡ ə ≡ ə ≡ ə ≡ ə ≡ ə लब्धं यावत्तावत्प्रमाणं ≡ ə ≡ ə गुणकारप्रमाणमक्कुमी ≡ ≡ ə ≡ ə ≡ ə गुणकारदिदं परमावधिज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रमं ≡ ≡ ə ≡ ə ≡ ə गुणिसिदोडे सर्वावधिज्ञानविषयक्षेत्रमे अवधिनिबद्धोत्कृष्टक्षेत्रमक्कुमें बुदत्थं ≡ ≡ ə ≡ ə ≡ ə ≡ ə ≡ ə। तु मत्ते

धनमात्रा. षट्. ते उभये मिलित्वा गच्छधनमात्रा दशगुणकारा भवन्ति। एवं सर्वबिकल्पेषु ज्ञातव्यम् ॥४१८॥

उत्कृष्टावधिक्षेत्रं तावद् द्विरूपघनाधनधाराया लोकगुणकारशलाकावर्गशलाकार्धच्छेदशलाकातेजस्कायिकस्थित्यवधिनिबद्धोत्कृष्टक्षेत्राणां प्रत्येकमसंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा गत्वोत्पन्नत्वात् पञ्चासंख्यातलोकगुणितलोकमात्र तदेव परमावधिज्ञानविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणेन भक्तं सत्—≡। ≡ ə ≡ ə ≡ ə ≡ ə ≡ ə सर्वाव-
≡। ≡ ə ≡ ə ≡ ə

उसके प्रमाणको गच्छ कहते हैं। जैसे विवक्षित भेद चौथा सो गच्छका प्रमाण चार हुआ। और तत्काल अतीत तीसरा भेद तीन, उसका गच्छ धन छह हुआ। पहला गच्छ चार और यह छह मिलकर दस होते हैं। इतना ही विवक्षित गच्छ चारका संकलित धन होता है। यही चतुर्थ भेदका गुणकार होता है। इसी प्रकार सब भेदोंमें जानना ॥४१८॥

उत्कृष्ट अवधिज्ञानका क्षेत्र कहते हैं। द्विरूपघनाघनधारामें लोक, गुणकारशलाका, वर्गशलाका, अर्धच्छेदशलाका, अग्निकायकी स्थितिका परिमाण और अवधिज्ञानके उत्कृष्ट क्षेत्रका परिमाण, ये स्थान असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जानेपर उत्पन्न होते हैं। इसलिए पाँच बार असंख्यात लोक प्रमाण परिमाणसे लोकको गुणा करनेपर सर्वावधिज्ञानके विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रका परिमाण आता है। उसमें उत्कृष्ट परमावधिज्ञानके विषयभूत क्षेत्रका भाग देनेपर जो परिमाण आवे वह सर्वावधिज्ञानके विषयभूत क्षेत्रका परिमाण लानेके लिए गुणकार होता है। इससे परमावधिज्ञानके विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रको गुणा करनेपर सर्वावधिज्ञानके विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रका परिमाण आता है। तथा सर्वावधिके

सर्व्वावधिज्ञानविषयकालदोळु परमावधिज्ञानविषयोत्कृष्टकालगुण्यक्केयुमसंख्यातलोकं । ≡ a गुणकारमक्कुमा परमावधिज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रकालंगळ प्रमाणंगळता मेनितें बोडे तदानयनविधानकरणसूत्रद्वयमं पेळ्दपं ।

इच्छिदरासिच्छेदं दिण्णच्छेदेहि भाजिदे तत्थ ।
लद्धमिददिण्णरासीणब्भासे इच्छिदो रासी ।।४२०।।

ईप्सितराशिच्छेदं देयच्छेदैर्भाजिते तत्र । लब्धमितदेयराशीनामभ्यासे ईप्सितो राशिः ।

इदु साधारणसूत्रमप्पुदरिदमिल्लियंकसंदृष्टि मुन्नं तोरिसल्पडुगुमवें तें बोडे परमावधिज्ञानविषयक्षेत्रकालंगळोळावल्यसंख्यातभागगुणकारंगळु पूर्व्वोक्तक्रमदिदं विवक्षितगच्छधनप्रमितंगळें ब व्याप्तियुंटप्पुदरिदं परमावधिज्ञान तृतीयविकल्पमं विवक्षितं माडिकों डु ईप्सितराशियुमं बेसदछप्पण्णनं माडि २५६ अदक्के गुणकारभूतावल्यसंख्यातक्के चतुःषष्टि चतुर्थांशमं $\frac{६४}{४}$ संदृष्टियं माडिदीयावलियऽसंख्यातगुणकारंगळा तृतीयविकल्पदोळु गच्छधनप्रमितंगळप्पुवु $\frac{३ । ४}{२ । १}$ लब्ध-

घिविषयक्षेत्रानयने गुणकारो भवति ≡ a ≡ a अनेन परमावधिज्ञानविषयसर्वोत्कृष्टक्षेत्रे गुणिते सर्वावधिज्ञानविषयक्षेत्रं स्यात् इत्यर्थः । तु—पुनः सर्वावधिविषयकालानयने परमावधिविषयसर्वोत्कृष्टकालस्य प–१ ≡a≡a≡a असंख्यातलोकः ≡a गुणकारो भवति ।।४१९।। तत्परमावधिविषयोत्कृष्टक्षेत्रकालप्रमाणानयनविधाने करणसूत्रद्वयमाह—

अस्य साधारणसूत्रत्वात् ईप्सितराशेः वेसदछप्पण्णस्य अर्धच्छेदाः अष्टौ ८ । एषु देयस्य आवल्यसंख्येयभागसंदृष्टिचतु षष्टिचतुर्थांशस्य $\frac{६४}{४}$ अर्धच्छेदैः भागहारार्धच्छेदन्यूनभाज्यार्धच्छेदमात्रैः ६–२ भाजितेषु सत्सु $\frac{८}{६–२}$ तत्र यावल्लब्ध २ तावन्मात्रदेयराशीनां $\frac{६४}{४}$ $\frac{६४}{४}$ अभ्यासे परस्परगुणने कृते सति ईप्सितराशिरुत्पद्यते । २५६ एवं पल्यसूच्यङ्गुलजगच्छ्रेणिलोकानामपीप्सितराशीनामर्धच्छेदेषु देयस्यावल्यसंख्येयभागस्यार्धच्छे-

विषयभूत कालका परिमाण लानेके लिए असंख्यात लोक गुणकार है । इस असंख्यात लोक प्रमाण गुणकारसे परमावधिके विषयभूत सर्वोत्कृष्ट कालको गुणा करनेपर सर्वावधिज्ञानके विषयभूत कालका परिमाण होता है ।।४१९।।

अब परमावधिके विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र और उत्कृष्ट कालका प्रमाण लानेके लिए दो करणसूत्र कहते हैं—

यह करणसूत्र होनेसे सब जगह लग सकता है । इसका अर्थ—इच्छित राशिके अर्धच्छेदोंको देयराशिके अर्धच्छेदोंसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसको एक-एक करके पृथक्-पृथक् स्थापित करे । और उस एक-एकके ऊपर जिस देयराशिके अर्धच्छेदोंसे भाग दिया था उसी देयराशिको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर इच्छितराशिका प्रमाण आता है । जैसे इच्छित राशि दो सौ छप्पन २५६ के अर्धच्छेद आठ ८ । देयराशि चौसठका चौथा भाग $\frac{६४}{४}$ सोलह । उसके अर्धच्छेद चार । क्योंकि भाज्यराशि चौसठके अर्धच्छेद छह है । उसमें-से भागहार चारके अर्धच्छेद दो घटानेसे शेष चार अर्धच्छेद बचते हैं । इन चार अर्धच्छेदोंका भाग आठ अर्धच्छेदोंमें देनेसे दो लब्ध आया । सो दोका विरलन करके एक-एकपर देयराशि चौसठके चतुर्थ भाग सोलह रखकर परस्परमें गुणा करनेसे इच्छितराशि

भाग ६। एतावन्मात्र गुणकारंगळप्पुवु ६४।६४।६४।६४।६४।६४ / ४ ४ ४ ४ ४ ४ मिल्कि ईप्सितराशिच्छेदं विवक्षितराशियदु बेसदछप्पण्णनवर च्छेदराशियें दु ८। इवनु देयच्छेदेः देयमावल्यसंख्यातकसंदृष्टि ६४/४ इवरर्द्धच्छेदंगळेनितप्पुवें दोडे भज्जस्सद्धच्छेदा भाज्यवर्द्धच्छेदंगळाद ६। हारद्धच्छेदणाहि परिहीणा हारदर्द्धच्छेदंगळिदं परिहीनंगळादोडे। ६।२। नाल्कु। लद्धस्सद्धछेवा तल्लब्धंराशिगर्द्धच्छेदशलाकंगळप्पुवप्पुवरिदमी देयराशियर्द्धच्छेदंगळिदं भागंगोळुत्तिरलु १ ८ / ६-२ लब्धं यावन्मात्रं २ तावन्मात्रदेयरासीणब्भासे देयराशिगळगन्योन्याभ्यासमागुत्तिरलु ६४।६४ / ४ ४ तन्न विवक्षितराशियप्प बेसद छप्पण्णं पुट्टुगुमित। पल्य। सूच्यगुल। जगच्छ्रेणिलोकंगळीप्सितराशिगळादोडं तत्तदर्द्धच्छेदंगळना देयमप्पावल्यसंख्यातवर्द्धच्छेदंगळिदं भागिसि

पल्यच्छेद	सूच्यंगुलच्छेद	जगच्छ्रेणीच्छेद	लोकच्छेद
छे	छे छे	वि	वि छे छे ९
१६—४	१६—४	१६—छे छे ३ १।६—४ / ४	

तत्तल्लब्धमात्रमावल्यसंख्यातंगलं गुणिसुत्तिरलु तत्तत्पल्यसूच्यंगुल जगच्छ्रेणिलोकंगळं पुट्टुगुमें दरिवुदु।

दिण्णच्छेदेणवहिदलोगच्छेदेण पदधणे भजिदे।

लद्धमिदलोगगुणणं परमावहिचरमगुणगारो ॥४२१॥

देयच्छेदनापहृत लोकच्छेदेन पदधने भक्ते। लब्धमितलोकगुणनं परमावधिचरमगुणकारः।

देयच्छेदंगळिदं भागिसलपट्ट लोकच्छेदंगळिदं ८ / ६—२ पदधने मुन्नं विवक्षित तृतीयपद धनमं ३।४ / २।१ भजिदे भागिसुत्तिरलु ३।४ / २।१।८ / ६—२ यल्लब्धं तल्लब्धमपवर्तितं मूरु ३। तावन्मात्र

दैर्भक्तेषु—	पल्यच्छेद	सूच्यङ्गुलच्छेद	जगच्छ्रेणिच्छेद	लोकच्छेद	तत्र यल्लब्धं तत्तन्मात्रा-
	छे	छे छे	वि छे छे ३	वि छे छे ९	
	१६—४	१६—४	१६—४	१६—४	

वल्यमसंख्येयभागानामभ्यासे कृते ते पल्यादीप्सितराशयः उत्पद्यन्ते ॥४२०॥

देयच्छेदभक्तलोकच्छेदैः ८ / ६—२ पदधने विवक्षिततृतीयपदस्य धने ३।४ / २।१ भक्ते ३।४ / २।१।८ / ६—२

---

२५६ उत्पन्न होती है। इसी प्रकार पल्य प्रमाण या सूच्यंगुल प्रमाण या जगतश्रेणी प्रमाण अथवा लोकप्रमाण जो भी इच्छित राशि हो उसके अर्धच्छेदोंमें देयराशि आवलीके असंख्यातवें भागके अर्धच्छेदोंसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसका एक-एकके रूपमें विरलन करके प्रत्येकके ऊपर आवलीका असंख्यातवाँ भाग रखकर परस्परमें गुणा करनेपर इच्छित राशि पल्य आदि उत्पन्न होती है ॥४२०॥

देयराशिके अर्धच्छेदोंका भाग लोकराशिके अर्धच्छेदोंमें देनेपर जो प्रमाण आवे

बेसवछप्पण्णंगळं संवर्गं माडिद लब्धं तृतीयपदवोळु परमावधिक्षेत्रकालंगळगे गुणकारप्रमाणमक्कु ≡ ६५ । ≡ २५६ । प—१ । ६५ = २५६ । मिते चरमवोळं देयमावल्यसंख्यातभागमक्कु ८ / ə मी राशिगर्द्धच्छेदंगळेनितप्पुवें दोडे संख्यातरूपहीनावलिच्छेदमात्रंगळप्पुवु १६—४ वदें तें दोडे—

विरळिज्जमाणराशी दिण्णस्सद्धच्छिदीहि संगुणिदे ।

अद्धच्छेदसलागा होंति समुप्पण्णरासिस्स ।

एंदितावलियें बुदु परिमितासंख्यातजघन्यराशियं विरळिसि प्रतिरूपमा राशियने कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडे संजनितराशियप्पुदरिंदमा परिमितासंख्यातजघन्यराश्यर्द्धच्छेदंगळु संख्यातरूपंगळिदं गुणिसल्पट्ट परीतासंख्यातजघन्यराशिप्रमाणमावलियर्द्धच्छेदंगळप्पुवु । १६ ।—७ । गुणिसिदोडे सव्वधारादि तद्योग्यधारिगळोळु परीतासंख्यातमध्यपतितासंख्यातराशियक्कुमदक्के संदृष्टि पदिनारुं १६ इवरोळु हारभूतासंख्यातार्द्धच्छेदंगळु संख्यातरूपंगळप्पुवुववं ४ कळेदोडे शेषमावल्यसंख्यातराशिगळर्द्धच्छेदंगळप्पुवु १६–४ । इंतु त्रैराशिकं माडल्पडुगुं प्र वि छे ८/ə वि छे १ । ६–४ छे ९ । फ ≡ । इ ≡ə ६ ə / प २ / ə छे ८/ə ≡ə ६ ə / प । १ / ə ई त्रैराशिकमं कटाक्षिसि पेळदपं । देयच्छेदे-

यल्लब्धं तन्मात्र ३ वेमदछप्पणाना गणने परस्परसंवर्गसंजनितराशिः तृतीयपदे परमावधिक्षेत्रकालयोर्गुणकारप्रमाण भवति ≡ ६५ = २५६ । प–१ । ६५ = २५६ एवं चरमेऽपि देयमावल्यसंख्येयभागः तस्य अर्धच्छेदाः भागहारार्धच्छेदन्यूनभाज्यार्धच्छेदमात्रत्वात् सख्यातरूपन्यूनपरीतासंख्यातमध्यमभेदमात्रा. संदृष्टया एतावन्त. १६–४ एभि देयार्धच्छेदैर्भक्तेन लोकार्धच्छेदराशिना पदधने—परमावधिज्ञानचरमविकल्पसंकलितसर्वधने भक्ते सति यल्लब्धं तन्मात्रलोकाना परस्परगुणने परमावधिचरमगुणकारो भवति । यद्येतावता देयरूपावल्यसंख्येयभागाना दे ८/ə परस्परगुणने लोक उत्पद्यते फ ≡ तदा एतावता देयरूपावल्यसंख्येय-

प्र । वि छे छे ९ / १६—४

उससे विवक्षित पदके संकलित धनमें भाग दें । उससे जो प्रमाण आवे उतनी जगह लोकराशिको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे वह विवक्षित पद सम्बन्धी क्षेत्र या कालका गुणकार होता है । इसी प्रकार परमावधिके अन्तिम भेदमें गुणकार जानना । जैसे देयराशि चौंसठका चौथा भाग अर्थात् सोलह, उसके अर्धच्छेद चार, उसका भाग दो सौ छप्पनके अर्धच्छेद आठमें देनेपर दो लब्ध आया । उसका भाग विवक्षित पद तीनके संकलित धन छहमें देनेसे तीन आया । सो तीन जगह दो सौ छप्पन रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो प्रमाण होता है वही तीसरे स्थानमें गुणकार जानना । इसी तरह यथार्थमें देयराशि आवलीका असंख्यातवाँ भाग, उसके अर्धच्छेद आवलीके अर्धच्छेदोंमें-से भाजक असंख्यातके अर्धच्छेदोंको घटानेपर जो प्रमाण रहे, उतने हैं । सो वे संख्यातहीन परीतासंख्यातके मध्यमभेद प्रमाण होते हैं । इनका भाग लोकराशिके अर्धच्छेदोंमें देनेपर जो प्रमाण आवे, उसका भाग परमावधिके विवक्षित भेदके संकलित धनमें देनेसे जो प्रमाण

नापहृतलोकच्छेदेन पदधने भक्ते। देयच्छेदंगळिदं भागिसल्पट्ट लोकच्छेदराशियिदं प्रमाणराशियप्पुदरिदं पदधने भक्ते इच्छाराशियप्प पदधनमं भागिसुत्तिरलु लब्धं यावत्तावत्प्रमितलोकंगळं वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलु संजनितलब्धराशियदु ≡ ə ≡ ə ≡ ə परमावधिज्ञानविषयमप्प चरमक्षेत्रदोळु गुण्यमागिर्द्द लोकक्के गुणकारप्रमाणमक्कुं ≡ ≡ ə ≡ ə ≡ ə कालदोळं पल्य—१ ≡ ə ≡ ə ≡ ə इनितक्कु।

आवलि असंखभागा जहण्णदव्वस्स होंति पज्जाया।
कालस्स जहण्णादो असंखगुणहीनमेत्ता हु ॥४२२॥

आवल्यसंख्यभागाः जघन्यद्रव्यस्य भवंति पर्य्यायाः। कालस्य जघन्यादसंख्यगुणहीनमात्राः खलु ॥

आवल्यसंख्यातभागमात्रंगळु देशावधिज्ञानजघन्यद्रव्यद पर्य्यायंगळप्पुवादोडमा जघन्य-

---

भागानां—दे ८ / ə परस्परगुणने कियन्तो लोका उत्पद्यन्ते इति त्रैराशिकलब्धमात्राणां

इ ≡ ə ६ ə ≡ ə ६ ə
प २ प १
ə ə

लोकानां ≡ ə ≡ ə ≡ ə परमावधिविषयचरमक्षेत्रकालानयने लोकसमयोनपल्ययोर्गुणकारो भवति। ≡ । ≡ ə । ≡ ə । ≡ ə प—१ । ≡ ə ≡ ə ≡ ə ॥४२१॥

आवल्यसंख्यातभागमात्रा देशावधिजघन्यद्रव्यस्य पर्याया भवन्ति तथापि तद्विषयजघन्यकालात् ८ / ə

आवे, उतनी जगह लोकराशिको स्थापित करके परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे सो उस भेदमें गुणकार होता है। उस गुणकारसे देशावधिके उत्कृष्ट क्षेत्र लोकप्रमाणको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतना उस भेदमें क्षेत्रका परिमाण होता है। तथा इसी गुणकारसे देशावधिके उत्कृष्ट काल समयहीन पल्यको गुणा करनेपर उसी भेदसम्बन्धी कालका परिमाण आता है। इसी तरह परमावधिज्ञानके अन्तिम भेदमें आवलीके असंख्यातवें भागके अर्धच्छेदोंका भाग लोकके अर्धच्छेदोंमें देनेसे जो प्रमाण आवे उसका भाग परमावधिज्ञानके अन्तिम भेदके संकलित धनमें देनेपर जो लब्ध आवे उतनी जगह लोकराशिको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर परमावधिका अन्तिम गुणकार होता है। सो इस प्रकार त्रैराशिक करना—आवलीके असंख्यातवें भागके अर्धच्छेदोंका लोकके अर्धच्छेदोंमें भाग देनेसे जो प्रमाण आता है उतने आवलीके असंख्यातवें भागोंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे यदि एक लोक होता है तो यहाँ अन्तिम भेदके संकलित धन प्रमाण आवलीके असंख्यातवें भागोंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे कितने लोक होंगे। ऐसा त्रैराशिक करनेपर जितना प्रमाण आवे उतने लोकप्रमाण अन्तिम भेदका गुणकार होता है। इससे देशावधिके उत्कृष्ट क्षेत्र लोकको अथवा उत्कृष्टकाल समयहीन पल्यको गुणा करनेपर परमावधिके उत्कृष्ट क्षेत्र और कालका परिमाण होता है ॥४२१॥

जघन्य देशावधि ज्ञानके विषयभूत द्रव्यकी पर्याय आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण

वेशावधिज्ञानविषयजघन्यकालमं नोडलु ८/a मसंख्यातगुणहीनमात्रंगळप्पुवु ८/aa स्फुटमागि ।

सव्वोहित्ति य कमसो आवलियसंखभागगुणिदकमा ।
दव्वाणं भावाणं पदसंखा सरिसगा होंति ॥४२३॥

सर्व्वावधिज्ञानपर्य्यंतं क्रमशः आवल्यसंख्यभागगुणितक्रमाः । द्रव्याणां भावानां पदसंख्याः सदृशाः भवंति ॥

देशावधिज्ञानविषयजघन्यद्रव्यदपर्य्यायंगळप्प भावंगळु जघन्यदेशावधिज्ञानं मोदल्गोंडु सर्व्वावधिज्ञानपर्य्यंतं क्रमदिदं आवल्यसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुववु कारणमागि द्रव्यंगळ्गं भावंगळगं स्थानसंख्येगळु समानंगळेयप्पुवु ।

अनंतरं नरकगतियोळ् नारकर्गवधिविषयक्षेत्रमं पेळ्दपरु—

सत्तमखिदिम्मि कोसं कोसस्सद्धं पवड्ढदे ताव ।
जाव य पढमे णिरये जोयणमेक्कं हवे पुण्णं ॥४२४॥

सप्तमक्षितौ क्रोशः क्रोशस्यार्द्धं प्रवर्द्धते तावत् । यावत्प्रथमे नरके योजनमेकं भवेत्पूर्णं ॥

सप्तमक्षितिमाघवियोळु नारकर्गवधिविषयमप्प क्षेत्रमेकक्रोशमात्रमक्कुं । षष्टक्षितियोळु क्रोशार्द्धं पेर्च्चुगुं । पंचमक्षितियोळु मत्तमदं नोडे क्रोशार्द्धं पेर्च्चुगुं । चतुर्थक्षितियोलहर मेले क्रोशार्द्धं पेर्च्चुगुं । तृतीयक्षेत्रदोळदर मेले क्रोशार्द्धं पेर्च्चुगुं । द्वितीयपृथ्वियोळमंते क्रोशार्द्धं पेर्च्चुगुं । प्रथमक्षितियोळु क्रोशार्द्धं पेर्च्चि संपूर्णं योजनप्रमाणमक्कुं । मा क्रोश १ । म ३/२ । अ । क्रोश २ । अं क्रोश ५/२ । मे क्रोश ३ । वं क्रो ७/२ । घ क्रो ४ ।

असंख्यातगुणहीनभावाः स्फुटं भवन्ति ८/aa ॥४२२॥

देशावधिजघन्यद्रव्यस्य पर्यायरूपभावाः जघन्यदेशावधितः सर्वावधिज्ञानपर्यन्तं क्रमेण आवल्यसंख्यातगुणितक्रमाः स्युः । तेन द्रव्याणां भावानां च स्थानसंख्या समाना एव ॥४२३॥ अथ नरकगतावधिविषयक्षेत्रमाह—

सप्तमक्षितौ अवधिविषयक्षेत्रं एकक्रोशः । तत उपरि प्रतिपृथ्वि तावत् क्रोशस्यार्धार्धं प्रवर्धते यावत्प्रथमे

हैं । तथापि उसके विषयभूत जघन्य कालसे असंख्यातगुणा हीन हैं ॥४२२॥

देशावधिके विषयभूत द्रव्यके पर्यायरूप भाव जघन्य देशावधिसे सर्वावधिज्ञान पर्यन्त क्रमसे आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाणसे गुणित हैं । अर्थात् देशावधिके विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा जहाँ जघन्य भेद है वहाँ ही द्रव्यके पर्यायरूप भावकी अपेक्षा आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण भावको जाननेरूप जघन्य भेद है । जहाँ द्रव्यकी अपेक्षा दूसरा भेद है वहीं भावकी अपेक्षा उस प्रथम भेदको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उस प्रमाण भावको जानने रूप दूसरा भेद है । इसी प्रकार सर्वावधिपर्यन्त जानना । इस तरह अवधिज्ञानके जितने भेद द्रव्यकी अपेक्षा हैं उतने ही भावकी अपेक्षा हैं । अतः द्रव्य और भावकी अपेक्षा स्थान संख्या समान है ॥४२३॥

अब नरकगतिमें अवधिज्ञानका विषयक्षेत्र कहते हैं—

सातवीं पृथ्वीमें अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र एक कोस है । उससे ऊपर प्रत्येक

अनंतरं तिर्य्यग्मनुष्यगतिगळोळवधिविषयक्षेत्रमं पेळवपं ।

तिरिए अवरं ओघो तेजालंबे (तेजोयंते) होदि उक्कस्सं ।
मणुए ओघं देवे जहाकमं सुणुह वोच्छामि ।।४२५।।

तिर्य्यक्ष्यवरमोघः तेजोऽवलंबे च भवत्युत्कृष्टं। मनुजे ओघः देवे यथाक्रमं श्रुणुत वक्ष्यामि ।।

तिर्य्यंग्गतिय तिर्य्यंचरोळु देशावधिज्ञान जघन्यमक्कुं । मेले तेजः शरीरपर्य्यंतं सामान्योक्त द्रव्यक्षेत्रकालभावंगळुत्कृष्टविदमल्लिपर्य्यंतं विषयमप्पुवु ।

मनुजरोळु देशावधिजघन्यं मोदल्गोंडु सर्व्वावधिज्ञानपर्य्यंतं सामान्योक्तसर्व्वमुमप्पुवु । देवगतियोळु देवर्क्कळगे यथाक्रमदिदं पेळवे केळि :—

पणुवीसजोयणाइं दिवसंतं च य कुमारभोम्माणं ।
संखेज्जगुणं खेत्तं बहुगं कालं तु जोइसिगे ।।४२६।।

पंचविंशतिर्य्योजनानि दिवसस्यांतश्च कुमारभौमानां। संख्येयगुणं क्षेत्रं बहुकःकालस्तु ज्योतिष्के ।।

भावनरोळं व्यंतरोळं जघन्यदिदमिप्पत्तैदु योजनंगळुमोंदु दिनदोळगे विषयमक्कुं । ज्योतिष्करोळु भवनवासिव्यंतररुगळ जघन्यविषयक्षेत्रमं नोडलु संख्यातगुणितं क्षेत्रमक्कुं बहुकालमक्कुं ।

नरके योजनं सपूर्णं भवति ।।४२४।। अथ तिर्यग्मनुष्यगत्योराह—

तिर्यग्जीवे देशावधिज्ञान जघन्यादारभ्य उत्कृष्टतः तेज.शरीरविषयविकल्पपर्यन्तमेव सामान्योक्तद्रव्यादिविषयं भवति। मनुजे देशावधिजघन्यादारभ्य सर्वावधिज्ञानपर्यन्तं सामान्योक्तं सर्वं भवति ।।४२५।।

देवगतौ यथाक्रम वक्ष्यामि शृणुत—

भावनव्यन्तरयोर्जघन्येन पञ्चविंशतियोजनानि किंचिदूनदिवसश्च विषयो भवति। ज्योतिष्के क्षेत्रं तत. संख्यातगुण, कालस्तु बहुकः ।।४२६।।

पृथिवीमें आधा-आधा कोस बढ़ता जाता है। इस तरह प्रथम नरकमें सम्पूर्ण योजन क्षेत्र होता है ।।४२४।।

अब तिर्यंचगति और मनुष्यगतिमें कहते हैं—

तिर्यंचजीवमें देशावधिज्ञान जघन्यसे लेकर उत्कृष्टसे तैजसशरीर जिस भेदका विषय है उस भेद पर्यन्त होता है। सामान्य अवधिज्ञानके वर्णनमें वहाँ तक द्रव्यादि विषय जो कहे हैं वे सब होते हैं। मनुष्यमें देशावधिके जघन्यसे लेकर सर्वावधिज्ञान पर्यन्त जो सामान्य कथन किया है वह सब होता है। आगे यथाक्रम देवगति में कहूँगा। उसे सुनो ।।४२५।।

अब देवगतिमें कहते हैं—

भवनवासी और व्यन्तरोंमें अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र जघन्यसे पचीस योजन है और काल कुछ कम एक दिन है। तथा ज्योतिषी देवोंमें क्षेत्र तो इससे संख्यातगुणा है और काल बहुत है ।।४२६।।

असुराणमसंखेज्जा कोडीओ सेसजोइसंताणं ।
संखातीदसहस्सा उक्कस्सोहीण विसओ दु ॥४२७॥

असुराणामसंख्येया कोटयः शेषज्योतिष्कांतानां । संख्यातीतसहस्रमुत्कृष्टावधीनां विषयस्तु ॥

असुररुगळिगुत्कृष्टक्षेत्रमसंख्यातकोटिगळक्कुं । शेषनवविधभावनदेवर्क्कळं व्यंतरज्योतिष्कदेवर्क्कळगं असंख्यातसहस्रमुत्कृष्टावधिज्ञानविषयमक्कुं ।

असुराणमसंखेज्जा वरिसा पुण सेसजोइसंताणं ।
तस्संखेज्जदिभागं कालेण य होदि णियमेण ॥४२८॥

असुराणामसंख्येयानि वर्षाणि पुनः शेषज्योतिष्कांतानां । तत्संख्येयभागः कालेन च भवति नियमेन ॥

असुरकुलद भवनामररिगुत्कृष्टकालमसंख्येयवर्षंगळप्पुवु । तु मत्ते शेषनवविधभावनदेवर्क्कळगं व्यंतरज्योतिष्कदेवर्क्कळगं असुरकुलसंभूतग्गें पेळ्दकालमं नोडलु संख्यातैकभागमक्कुमुत्कृष्टकालं ।
व a ।
१

भवणतियाणमधोधो थोवं तिरिएण होदि बहुगं तु ।
उड्ढेण भवणवासी सुरगिरिसिहरोत्ति पस्संति ॥४२९॥

भवनत्रयाणामधोधः स्तोकं तिर्य्यग्बहुकं भवति तु ऊर्ध्वतो भवनवासिनः सुरगिरिशिखरपर्य्यंतं पश्यंति ॥

भवनत्रयामरर्गेल्लं केळगे केळगे अवधिविषयक्षेत्रं स्तोकस्तोकमक्कुं । तिर्य्यक्कागि बहुक्षेत्रं विषयमक्कुं । तु मत्ते भवनवासिदेवक्कळु तम्मिर्द्देडेयिंदवि मेगे सुरगिरिशिखरपर्य्यंतम-

---

असुराणा उत्कृष्टविषयक्षेत्रं असख्यातकोटियोजनमात्रम् । शेषनवविधभावनव्यन्तरज्योतिष्काणा च असख्यातसहस्रयोजनानि ॥४२७॥

असुरकुलस्योत्कृष्टकाल. असंख्येयवर्षाणि पुनः शेषनवविधभावनव्यन्तरज्योतिष्काणा तस्य संख्यातैकभागः व a ॥४२८॥
१

भवनत्रयामराणामधोधोऽवधिविषयक्षेत्रं स्तोक भवति । तिर्यग्रूपेण बहुकं भवति । तु—पुनः, भवनवासिन.

असुरकुमार जातिके भवनवासी देवोंके अवधिज्ञानका उत्कृष्ट विषयक्षेत्र असंख्यात कोटि योजन प्रमाण है। शेष नौ प्रकारके भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषीदेवोंके असंख्यात हजार योजन है ॥४२७॥

असुरकुमारोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात वर्ष है । शेष नौ प्रकारके भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका काल उक्त कालके संख्यातवें भाग है ॥४२८॥

भवनवासी, व्यन्तरों और ज्योतिषी देवोंके नीचेकी ओर अवधिज्ञानका विषयक्षेत्र थोड़ा है किन्तु तिर्यक् रूपसे बहुत है। भवनवासी अपने निवासस्थानसे ऊपर मेरुपर्वतके

वधिदर्शनविदं काण्बरं ।

जघन्य	जघन्य	उ	उ
भवनव्यंतर	जोयिसि	असुर	भ ९ । ०ग्नं । जो
यो २५	२५१	को ०	१००० । ०
दि १	बहुकाल	व ०	व ० / १

सक्कीसाणा पढमं बिदियं तु सणक्कुमारमाहिंदा ।
तदियं तु बम्ह लांतव सुक्कसहस्सारया तुरियं ॥४३०॥

शक्रेशानौ प्रथमां द्वितीयां तु सनत्कुमारमाहेंद्रौ । तृतीयां तु ब्रह्मलांतवौ शुक्रसहस्रारजौ तुर्य्यां ॥

सौधर्म्मैशानकल्पजरुगळु प्रथमपृथ्वीपर्य्यंतं काण्बरु । सनत्कुमारमाहेंद्रकल्पसंभूतरु तु मत्ते द्वितीयपृथ्वीपर्य्यंतं काण्बरु । ब्रह्मलांतवकल्पजरु तृतीयपृथ्वीपर्य्यंतं काण्बरु । शुक्रशतारकल्पजरु चतुर्त्थपृथ्वीपर्य्यंतं काण्बरु ।

आणदपाणदवासी आरण तह अच्चुदा य पस्संति ।
पंचमखिदिपेरंतं छट्ठिं गेवेज्जगा देवा ॥४३१॥

आनतप्राणतवासिनः आरणास्तथाऽच्युताश्च पश्यंति पंचमक्षितिपर्य्यंतं षष्ठिं ग्रैवेयका देवाः ॥

आनतप्राणतवासिगळु आरणाच्युतकल्पजरुमंते पंचमक्षितिपर्य्यंतं काण्बरु । नवग्रैवेयकदहमिंद्ररु षष्ठपृथ्वीपर्य्यंतं काण्बरु ।

सव्वं च लोयनालिं पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा ।
सक्खेत्ते य सकम्मे रूवगदमणंतभागं च ॥४३२॥

सर्वां च लोकनाडीं पश्यंत्यनुत्तरेषु ये देवाः । स्वक्षेत्रे स्वकर्म्मणि रूपगतमनंतभागं च ॥

स्वकीयावस्थितस्थानादुपरि सुरगिरिशिखरपर्यन्तं अवधिदर्शनेन पश्यन्ति ॥४२९॥

सौधर्मेशानजाः प्रथमपृथ्वीपर्यन्तं पश्यन्ति । सनत्कुमारमाहेन्द्रजाः पुनर्द्वितीयपृथ्वीपर्यन्तं पश्यन्ति । ब्रह्मलान्तवजास्तृतीयपृथ्वीपर्यन्तं पश्यन्ति । शुक्रशतारजाः चतुर्थपृथ्वीपर्यन्तं पश्यन्ति ॥४३०॥

आनतप्राणतवासिनः तथा आरणाच्युतवासिनश्च पञ्चमपृथ्वीपर्यन्तं पश्यन्ति, नवग्रैवेयकजा देवाः षष्ठपृथ्वीपर्यन्तं पश्यन्ति ॥४३१॥

शिखरपर्यन्त अवधिदर्शनके द्वारा देखते है ॥४२९॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्गोंके देव अवधिज्ञानके द्वारा प्रथम नरक पृथ्वीपर्यन्त देखते हैं। सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गोंके देव दूसरी पृथ्वीपर्यन्त देखते हैं। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर और लान्तव-कापिष्ठ स्वर्गोंके देव तीसरी पृथ्वी पर्यन्त देखते हैं। शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्रार स्वर्गोंके देव चतुर्थ पृथ्वीपर्यन्त देखते हैं ॥४३०॥

आनत-प्राणत तथा आरण-अच्युत स्वर्गोंके वासी देव पाँचवीं पृथ्वीपर्यन्त देखते हैं तथा नौ ग्रैवेयकोंके देव छठी पृथ्वीपर्यन्त देखते हैं ॥४३१॥

सर्व्वलोकनाडियं नवानुद्दिशपंचानुत्तरविमानवासिगळप्पहमिंद्ररु काण्बरु अदेंतेंदोडे सौधर्म्मादिसमस्तदेवर्क्कळु मेगे स्वस्वस्वर्ग्गविमानध्वजदंडशिखरपर्य्यंत काण्बरु। नवानुदिशविमानवासिगळप्पहमिंद्ररं पंचानुत्तरविमानवासिगळप्पहमिंद्ररं मेले तं तम्म विमानशिखरं मोदल्गोंडु केळगेल्लिवरं बहिर्व्वातवलयमल्लिवरं पंचविंशत्युत्तरचतुःशतधनूरहितैकविंशतियोजनरहितमप्पुदरिदं किंचिदून चतुर्द्दशरज्वायतरज्जुविस्तारसर्व्वलोकनाडियनाउदोंदु अवधिदर्शनदिदं काण्बरु। तदवधिदर्शनदिदं यथासंख्यमागि साधिकत्रयोदशरज्जुगळुमं किंचिदूनचतुर्द्दशरज्जुगळं काण्बरेंबुदत्थं। इदुवुं क्षेत्रपरिमाणनियामकमल्तु। तत्र तत्रतननियामकमक्कुमेकेंदोडे अच्युतकल्पपर्य्यंतमाद देवर्क्कळिवहारमात्रदिवमोंदानोंदडेगे पोदर्ग्गळ्गे तावत्क्षेत्रदोळे तदवधिगुत्पत्यभ्युपगमदिदं। स्वक्षेत्रे तंतम्म विषयक्षेत्रप्रदेशप्रचयदोळेकप्रदेशं गळेयल्पडुवुदु। स्वकर्म्मणि तंतम्मवधिज्ञानावरणकर्म्मद्रव्यदोळेकवारं ध्रुवहारं दातव्यमक्कुमेन्नेवरं तत्प्रदेशप्रचयं परिसमाप्तियक्कुमन्नेवरमिदरिदं तदवधिविषयद्रव्यभेदं सूचिसल्पट्टुदु। ईयर्त्थमने विशदं माडिदपं :—

नवानुदिशपञ्चानुत्तरेषु ये देवाः, ते सर्वां लोकनालिं पश्यन्ति अयमर्थः। सौधर्मादिदेवाः उपरि स्वस्वस्वर्गविमानध्वजदण्डशिखरपर्यन्तं पश्यन्ति। नवानुदिशपञ्चानुत्तरदेवास्तु उपरि स्वस्वविमानशिखरमधो यावद्बहिर्वातवलयं तावत् साधिकत्रयोदशरज्ज्वायतां पञ्चविंशत्युत्तरचतुःशतधनुरूनैकविंशतियोजनैर्न्यूनचतुर्दशरज्ज्वायतां च रज्जुविस्तारां सर्वलोकनालिं पश्यन्तीति ज्ञातव्यम्। इदं क्षेत्रपरिमाणनियामकं न किन्तु तत्रतत्रतनस्थाननियामकं भवति कुतः? अच्युतान्तानां बिहारमार्गेण अन्यत्र गतानां तत्रैव क्षेत्रे तदवध्युत्पत्त्यभ्युपगमात्। स्वक्षेत्रे स्वस्वविषयक्षेत्रप्रदेशप्रचये एकप्रदेशोऽपनेतव्यः। स्वकर्मणि स्वस्वावधिज्ञानावरणकर्मद्रव्ये एकवारं ध्रुवहारो दातव्यः यावत्प्रदेशप्रचयपरिसमाप्तिः स्यात्तावत्, अनेन तदवधिविषयद्रव्यभेदः सूचितः ॥ ४३२ ॥

नौ अनुदिशों और पाँच अनुत्तरोंमें जो देव हैं वे समस्त लोकनाली अर्थात् त्रसनालीको देखते हैं। सौधर्म आदिके देव अपने-अपने स्वर्गके विमानके ध्वजादण्डके शिखरपर्यन्त देखते हैं। नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तरोंके देव ऊपर अपने-अपने विमानके शिखरपर्यन्त और नीचे बाह्य तनुवातवलयपर्यन्त देखते हैं। सो अनुदिश विमानवाले तो कुछ अधिक तेरह राजू लम्बी एक राजू चौड़ी समस्त लोकनालीको देखते हैं और अनुत्तर विमानवाले चार सौ पचीस धनुष कम इक्कीस योजनसे हीन चौदह राजू लम्बी एक राजू चौड़ी समस्त त्रसनालीको देखते हैं। यह कथन क्षेत्रके परिमाणका नियामक नहीं है किन्तु उस-उस स्थानका नियामक है। क्योंकि अच्युत स्वर्ग तकके देव विहार करके जब अन्यत्र जाते हैं तो उतने ही क्षेत्रमें उनके अवधिज्ञानकी उत्पत्ति मानी गयी है। अर्थात् अन्यत्र जानेपर भी अवधिज्ञान उसी स्थान तक जानता है जिस स्थान तक उसके जाननेकी सीमा है। जैसे अच्युत स्वर्गका देव अच्युत स्वर्गमें रहते हुए पाँचवीं पृथ्वी पर्यन्त जानता है वह यदि विहार करके नीचे तीसरे नरक जावे तो भी वह पाँचवीं पृथ्वीपर्यन्त ही जानता है उससे आगे नहीं जानता। अस्तु, अपने क्षेत्रमें अर्थात् अपने-अपने विषयभूत क्षेत्रके प्रदेशसमूहमेंसे एक प्रदेश घटाना चाहिए और अपने-अपने अवधिज्ञानावरण कर्मद्रव्यमें एक बार ध्रुवहारका भाग देना चाहिए। ऐसा तबतक करना चाहिए जबतक प्रदेशसमूहकी समाप्ति हो। इससे देवोंमें अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्यमें भेद सूचित किया है अर्थात् सब देवोंके अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्य समान नहीं हैं ॥४३२॥

कप्पसुराणं सगसग ओहीखेत्तं विविस्ससोवचयं।
ओहीदव्वपमाणं संठाविय धुवहारेण हरे ॥४३३॥
सगसगखेत्तपदेससलायपमाणं समप्पदे जाव।
तत्थतणचरिमखंडं तत्थतणोहिस्स दव्वं तु ॥४३४॥

कल्पसुराणां स्वकस्वकावधिक्षेत्रं विविस्रसोपचय—मवधिद्रव्यप्रमाणं संस्थाप्य ध्रुवहारेण हरेत् ॥

स्वस्वक्षेत्रप्रदेशशलाकाप्रमाणं समाप्यते यावत्। तत्रतनचरमखंडं तत्रतनावधेर्द्रव्यं तु।

कल्पजरप्प देवर्कळ स्वस्वावधिक्षेत्रमुमं विगतविस्रसोपचयावधिज्ञानावरणद्रव्यमुमं स्थापिसि—

≡क्षेत्र३ ३४३।२	≡४क्षेत्र ३४३।	≡११ ३४३७	≡६ ३४३	≡१५ ३४३।२	≡१८ ३४३।	≡१९ ३४३।२	≡१० ३४३	≡११ ३४३	≡१३ ३४३	≡१४– ३४३
सa१२ ७१४ द्रव्य	सa१–२ ७१४ द्रव्य	सa१–२ ७१४	सa१–२ ७१४	सa१–२ ७१४	सa१–२ ७१४	सa१–२ ७१४	सa१–२ ७१४	सa१–२ ७१४	सa१–२ ७१४	सa१–२ ७१४

अमुमेवार्थं विशदयति—

कल्पवासिनां स्वस्वावधिक्षेत्रं विगतविस्रसोपचयावधिज्ञानावरणद्रव्य च सस्थाप्य—

≡३ ३४३।२	≡४ ३४३।	≡११ ३४३।२	≡६ ३४३।	≡१५ ३४३।२	≡८ ३४३।	≡१९ ३४३।२	≡१० ३४३	≡११ ३४३।	≡१३। ३४३	≡१४- ३४३
सa१२- ७१४	सa१२- ७१४	सa१२- ७१४	सa१२- ७१४	सa१२- ७१४	सa१२- ७१४	सa१२- ७१४	सa१२- ७१४	सa१२- ७१४	सa१२- ७१४	सa१२- ७१४

इसी बातको आगे स्पष्ट करते हैं—

कल्पवासी देवोंके अपने-अपने अवधिज्ञानके क्षेत्रको और अपने-अपने विस्रसोपचय-रहित अवधिज्ञानावरण द्रव्यको स्थापित करके क्षेत्रमें से एक प्रदेश कम करना और द्रव्यमें एक बार ध्रुवहारका भाग देना। ऐसा तबतक करना चाहिए जबतक अपने-अपने अवधिज्ञानके क्षेत्र सम्बन्धी प्रदेशोंका परिमाण समाप्त हो। ऐसा करनेसे जो अवधिज्ञानावरण कर्मद्रव्यका अन्तिम खण्ड शेष रहता है उतना ही उस अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्यका परिमाण होता है।

विशेषार्थ—जैसे सौधर्म ऐशान स्वर्गवालोंका क्षेत्र प्रथम नरक पृथ्वीपर्यन्त कहा है। सो पहले नरकसे पहला दूसरा स्वर्ग डेढ़ राजू ऊँचा है। अतः अवधिज्ञानका क्षेत्र उनका एक राजू लम्बा-चौड़ा और डेढ़ राजू ऊँचा हुआ। इस घनरूप डेढ़ राजू क्षेत्रके जितने प्रदेश हों उन्हें एक जगह स्थापित करें। और जिस देवका जानना हो उस देवके अवधिज्ञानावरण कर्मद्रव्यको एक जगह स्थापित करें। इसमें विस्रसोपचयके परमाणु नहीं मिलाना। इस अवधिज्ञानावरण कर्मद्रव्यके परमाणुओंमें एक बार ध्रुवहारका भाग दें और प्रदेशोंमें-से एक कम कर दें। भाग देनेसे जो प्रमाण आया उसमें दुबारा ध्रुवहारका भाग दें

स्वविषयक्षेत्रदोळु ओंदु प्रदेशमं तेगदोम्में ध्रुवहारदिदं भागिसुवुदु । स्वस्वावधिविषयक्षेत्रप्रदेशप्रमाणं परिसमाप्तियक्कुमन्नेवरमन्नेवरं ध्रुवहारदिदं द्रव्यमं भागिसुवुदंतु भागिसुत्तिरलु तत्रतन चरमखंडं तत्रतनावधिज्ञानविषयद्रव्यप्रमाणमक्कुं । स्वस्वावधिविषक्षेत्रप्रदेशप्रचयप्रमित ध्रुवहारंगळिदं स्वस्वावधिज्ञानावरणद्रव्यमं विस्रसोपचयमं भागिसुत्तिरलु स्वस्वावधिज्ञानविषयद्रव्यमक्कुमें बुदु तात्पर्य्यात्थं ।

सोहम्मीसाणाणमसंखेज्जा ओ हु वस्सकोडीओ ।
उवरिमकप्पचउक्के पल्लासंखेज्जभागो दु ॥४३५॥

सौधर्म्मैशानानां असंख्येयाः खलु वर्षकोट्यः । उपरितनकल्पचतुष्के पल्यासंख्यातभागस्तु ।

तत्तो लांतवकप्पप्पहुडी सव्वट्ठसिद्धिपेरंतं ।
किंचूणपल्लमेत्तं कालपमाणं जहाजोग्गं ॥४३६॥

ततो लांतवकल्पप्रभृति सर्व्वार्त्थसिद्धिपर्य्यंतं । किंचिदूनपल्यमात्रं कालप्रमाणं यथायोग्यं ।

सौधर्म्मैशानकल्पजर्ग्गवधिज्ञानविषयकालमसंख्यात वर्षकोटिगळप्पुवु । वर्ष को a । खलु स्फुटमागि । तु मत्ते उपरितनकल्पचतुष्के सनत्कुमार-माहेंद्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-कल्पचतुष्टयवासिदेवक्कंळगे कालं यथायोग्यमप्पपल्यासंख्यातभागमात्रमक्कु प मेगे लांतवकल्पं मोदलगोंडु सर्व्वार्त्थसिद्धिपर्य्यंतं कल्पजर्ग्गं कल्पातीतजर्ग्गं कालं यथायोग्यमप्प किंचिदूनपल्यप्रमाणमक्कुं ।
a

क्षेत्रे एकप्रदेशमपनीय द्रव्यमेकवारं ध्रुवहारेण भजेत् यावत्स्वस्वावधिक्षेत्रप्रदेशप्रमाणं परिसमाप्यते तावत् । तत्रतनचरमखण्डं तत्रतनावधिज्ञानविषयद्रव्यप्रमाणं भवति । स्वस्वावधिविषयक्षेत्रप्रदेशप्रचयप्रमितध्रुवहारभक्तविविस्रसोपचयस्वस्वावधिज्ञानावरणद्रव्य स्वस्वावधिविषयद्रव्यं स्यादित्यर्थः ॥४३३–४३४॥

सौधर्मैशानजानामवधिविषयकालः असंख्यातवर्षकोट्यः खलु वर्षको a । तु–पुनः, उपरितनकल्पचतुष्क-

और प्रदेशोंमें एक कम कर दें । इस तरह तबतक भाग दें जबतक सब प्रदेश समाप्त हों। अन्तिम भाग देनेपर जो सूक्ष्म पुद्गलस्कन्ध शेष रहे उतने प्रमाण पुद्गलस्कन्धको सौधर्म ऐशान स्वर्गका देव जानता है । इसी प्रकार सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गके देवोंके घनरूप चार राजू प्रमाण क्षेत्रके प्रदेशोंका जितना प्रमाण है उतनी बार उनके अवधिज्ञानावरण द्रव्यमें ध्रुवहारका भाग देते-देते जो प्रमाण रहे उतने परमाणुओंके स्कन्धको उनका अवधिज्ञान जानता है । ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्गके देवोंके साढ़े पाँच राजू, लान्तव-कापिष्ठवालोंके छह राजू, शुक्र-महाशुक्रवालोंके साढ़े सात राजू, शतार-सहस्रारवालोंके आठ राजू, आनत-प्राणतवालोंके साढ़े नौ राजू, आरण-अच्युतवालोंके दस राजू, ग्रैवेयकवालोंके ग्यारह राजू, अनुदिशवालोंके कुछ अधिक तेरह राजू, अनुत्तर विमानवालोंके कुछ कम चौदह राजू क्षेत्रका परिमाण जानकर पूर्वोक्त विधान करनेपर उन देवोंके अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्यका परिमाण होता है । अर्थात् सबके अवधिज्ञानके विषयभूत क्षेत्रके प्रदेशोंका जो प्रमाण हो उतनी बार अवधिज्ञानावरण द्रव्यमें ध्रुवहारका भाग देते-देते जो प्रमाण रहे उतने परमाणुओंके स्कन्धको वे-वे देव अवधिज्ञान द्वारा जानते हैं ॥४३३–४३४॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंके अवधिज्ञानका विषयभूत काल असंख्यात वर्ष कोटी है । उनसे ऊपर चार कल्पोंमें अर्थात् सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गोंके

जोइसियंताणोही खेत्ता उत्ता ण होंति घणपदरा ।
कप्पसुराणं च पुणो विसरित्थं आयदं होदि ॥४३७॥

ज्योतिष्कांतानामवधिक्षेत्राण्युक्तानि न भवंति घनप्रतराणि । कल्पसुराणां च पुनर्विसदृशमायतं भवति ॥

ज्योतिषिकांतानामुक्तान्यवधिक्षेत्राणि भावनव्यंतरज्योतिष्करिगेल्लग्गं पेरगे पेळल्पट्टवधिविषयक्षेत्रंगळु समचतुरस्र घनक्षेत्रंगळल्लु एकें दोडे अवर्ग्गळवधिविषयक्षेत्रंगळ्गे सूत्रदोळु विसदृसत्वकथनमुंटप्पुदरिं । इदरिं पारिशेष्यदि तद्योग्यस्थानदोळु नारकतिर्य्यंचरुगळवधिविषयक्षेत्रमे समघनक्षेत्रमें बुदत्थं । कल्पामररुगें ल्लं पुनः मत्ते तंतम्मवधिज्ञानविषयक्षेत्रं विसदृशमायतमक्कुं । आयतचतुरस्रक्षेत्रमें बुदत्थंमवधिज्ञानं समाप्तमाय्तु ।

चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं ।
मणपज्जवं ति उच्चइ जं जाणइ तं खु णरलोए ॥४३८॥

चिंतितमचिंतितं वा अर्द्धं चिंतितमनेकभेदगतं । मनःपर्य्यय इत्युच्यते यत् जानाति तत्खलु नरलोके ।

चिंतितं परविंदं चिंतिसल्पट्टुदं । अचिंतितं वा मुंदे चिंतिसल्पड्वुदं । मेणु अर्द्धंचिंतितं चिंताविषयमं संपूर्णमागि चिंतिसदे अर्द्धं चिंतिसल्प ड्वुवुमं । अनेकभेदगतं इंतनेकप्रकारदिदं पेरर मनदोळिद्दुदं यत् आवुदों बु ज्ञानं जानाति अरिगुमा ज्ञानं खलु स्फुटमागि मनःपर्य्ययज्ञानमें दितु

जाना यथायोग्य पल्यासख्यातभागः प तत उपरि लान्तवादिसर्वार्थसिद्धपर्यन्ताना यथायोग्य किंचिदूनपल्यं
a
प—॥४३५–४३६॥

ज्योतिष्कान्तत्रिविधदेवाना उक्तावधिविषयक्षेत्राणि समचतुरस्रघनरूपाणि न भवन्ति, सूत्रे तेषा विसदृशत्वकथनात् । अनेन पारिशेष्यात् तद्योग्यस्थाने नरनारकतिर्यगवधिविषयक्षेत्रमेव समघनमित्यर्थः । कल्पामराणा पुनर्विसदृशमायातं आयतचतुरस्रमित्यर्थ. ॥४३७॥

चिन्तितं—चिन्ताविषयीकृतं, अचिन्तितं—चिन्तयिष्यमाणं, अर्धचिन्तित—असपूर्णचिन्तित वा इत्यनेकभेदगत अर्थं परमनस्यवस्थितं यज्ज्ञानं जानाति तत् खलु मन पर्यय इत्युच्यते । तस्योत्पत्तिप्रवृत्ती नरलोके

देवोंके अवधिज्ञानका विषयभूत काल यथायोग्य पल्यके असंख्यातवें भाग हैं। उनसे ऊपर लान्तव स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त देवोंके यथायोग्य कुछ कम पल्य प्रमाण हैं ॥४३५–४३६॥

ज्योतिषी देव पर्यन्त तीन प्रकारके देवोंके अर्थात् भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके जो अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र कहा है वह समचतुरस्र अर्थात् बराबर चौकोर घनरूप नहीं है क्योंकि आगममें उसकी लम्बाई चौड़ाई ऊँचाई बराबर एक समान नहीं कही है। इससे शेष रहे जो मनुष्य नारक, तिर्यंच उनके अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र समान चौकोर घनरूप है यह अर्थ निकलता है। कल्पवासी देवोंके अवधिज्ञानका विषयक्षेत्र विसदृश आयत है अर्थात् लम्बा बहुत और चौड़ा कम है ॥४३७॥

॥ अवधिज्ञान प्ररूपणा समाप्त ॥

चिन्तित—जिसका पूर्वमें चिन्तन किया था। अचिन्तित—जिसका आगामी कालमें चिन्तन करेगा, अर्धचिन्तित—जिसका पूर्णरूपसे चिन्तन नहीं किया, इत्यादि अनेक प्रकार-

पेळल्पट्टुवु। नरलोके तवुत्पत्तिप्रवृत्तिगळेरडुं मनुष्यक्षेत्रदोळेयक्कुं। मनुष्यक्षेत्रदिंदं पोरगे मनःपर्य्यंयज्ञानक्कुत्पत्तियुं प्रवृत्तियुमिल्लेंबुदत्थं।

परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्त्थः मन इत्युच्यते। मनः पर्येति गच्छति जानातीति मनःपर्य्ययः एंदितु परमनोगतार्त्थग्राहकं मनःपर्य्ययज्ञानमक्कुमा परमनोगतार्त्थमुं चिंतितमचिंतितमर्द्धचिंतितमेंदितनेकभेदमप्पुददं मनुष्यक्षेत्रदोळु मनःपर्य्ययज्ञानमरिगुमेंबुदं तात्पर्य्यं।

मणपज्जवं च दुविहं उजुविउलमदित्ति उजुमदी तिविहा।
उजु मणवयणे काये गदत्थविसयत्ति णियमेण ॥४३९॥

मनः पर्य्ययश्च द्विविधः ऋजुविपुलमती इति। ऋजुमतिस्त्रिविधः ऋजु मनोवचने काये गतार्त्थविषय इति नियमेन।

सामान्यदिदं मनःपर्य्ययज्ञानमोंदु अदं भेदिसिदोडे ऋजुमतिमनःपर्य्ययमेंदु विपुलमतिमनःपर्य्ययमेंदितु मनःपर्य्ययज्ञानं द्विविधमक्कु–। मल्लि ऋज्वी ऋजुकायवाक्मनस्कृतार्त्थस्य परकीयमनोगतस्य विज्ञानान्निर्व्वर्त्तिता निष्पन्ना मतिर्य्यस्य सः ऋजुमतिः स चासौ मनःपर्य्ययश्च ऋजुमतिमनःपर्य्ययः। विपुला कायवाग्मनस्कृतार्त्थस्य परकीयमनोगतस्य विज्ञाना निर्वृत्तिताऽनिर्व्वर्तिता कुटिला च मतिर्य्यस्य सः विपुलमतिः। स चासौ मनःपर्य्ययश्च विपुलमतिमनःपर्य्ययः। एंदितु निरुक्तिसिद्धंगळप्पुवल्लि ऋजुश्च विपुला च ऋजु विपुले। ते मती ययोस्तौ ऋजुविपुलमती। ऋजुमनोगतार्त्थविषयमनःपर्य्ययमेंदु ऋजुवचनगतार्त्थविषयमनःपर्य्ययमेंदुं ऋजुकायगतार्त्थविषयमनःपर्य्ययमुमेंदितु ऋजुमतिमनःपर्य्ययं नियम-

---

मनुष्यक्षेत्र एव न तद्बहिः। परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्थः मनः तत् पर्येति गच्छति जानातीति मनःपर्ययः ॥४३८॥

स मनःपर्ययः सामान्येनैकोऽपि भेदविवक्षया ऋजुमतिमनःपर्ययः विपुलमतिमनःपर्ययश्चेति द्विविधः। तत्र ऋज्वी-ऋजुकायवाङ्मनःकृतार्थस्य—परकीयमनोगतस्य विज्ञानान्निर्वर्तिता-निष्पन्ना मतिर्यस्य स ऋजुमतिः स चासौ मन पर्ययश्च ऋजुमतिमनःपर्ययः। विपुला कायवाग्मन कृतार्थस्य—परकीयमनोगतस्य विज्ञानान्निर्वर्तिता अनिर्वर्तिता कुटिला च मतिर्यस्य स विपुलमतिः स चासौ मनःपर्ययश्च विपुलमतिमनःपर्ययः। अथवा ऋजुश्च विपुला च ऋजुविपुले ते मती ययोस्तौ ऋजुविपुलमती तौ च तौ मनःपर्ययौ च ऋजुविपुलमतिमनःपर्ययौ। तत्र ऋजुमतिमन.पर्ययः ऋजुमनोगतार्थविषयः, ऋजुवचनगतार्थविषय, ऋजुकायगतार्थविषयश्चेति नियमेन

का जो अर्थ दूसरेके मनमें स्थित है, उसको जो ज्ञान जानता है वह मनःपर्यय कहा जाता है। दूसरेके मनमें स्थित अर्थ मन हुआ, उसे जो जानता है वह मनःपर्यय है। इस ज्ञानकी उत्पत्ति और प्रवृत्ति मनुष्यक्षेत्रमें ही होती है, उसके बाहर नहीं ॥४३८॥

वह मनःपर्यय सामान्यसे एक होनेपर भी भेदविवक्षासे ऋजुमतिमनःपर्यय विपुलमतिमनःपर्यय इस तरह दो प्रकार है। सरल काय, वचन और मनके द्वारा किया गया जो अर्थ दूसरेके मनमें स्थित है उसको जाननेसे निष्पन्न हुई मति जिसकी है वह ऋजुमति है और ऋजुमति और मनःपर्यय ऋजुमतिमनःपर्यय है। तथा सरल अथवा कुटिल काय-वचन-मनके द्वारा किया गया जो अर्थ दूसरेके मनमें स्थित है उसको जाननेसे निष्पन्न या अनिष्पन्न मति जिसकी है वह विपुलमति है। विपुलमति और मनःपर्यय विपुलमति मनःपर्यय है। अथवा ऋजु और विपुला मति जिनकी है वे ऋजुमति, विपुलमति मनःपर्यय हैं। ऋजुमतिमनःपर्यय नियमसे तीन प्रकारका है—सरल मनके द्वारा चिन्तित मनोगत

दिदं त्रिविधमक्कुं ।

विउलमदीवि य छद्धा उजुगाणुजुवयणकायचित्तगयं ।
अत्थं जाणदि जम्हा सद्दत्थगया हु ताणत्था ॥४४०॥

विपुलमतिरपि च षड्धा ऋज्वनृजुवचनकायचित्तगतमर्त्थं जानाति यस्मात् शब्दार्त्थगताः खलु तयोरर्त्थाः ।

विपुलमतिमनःपर्य्ययमुं षट्प्रकारमप्पुददे तें दोडे ऋजुमनोगतार्त्थविषयमनःपर्य्ययमें दुं ऋजुवचनगतार्त्थविषयमनपर्य्ययमें दुं ऋजुकायगतार्त्थविषयमनःपर्य्ययमें दितु । अनृजुमनोगतार्त्थविषयमनःपर्य्ययमें दुं अनृजुवचनगतार्त्थविषयमनःपर्य्ययमें दुं अनृजुकायगतार्त्थविषयमनःपर्य्ययमें दितिल्लि । यस्मात् ऋज्वनृजुमनोवचनकायगतार्त्थविषयत्वात्कारणात् । तयोरर्त्थाः आवुदों दु ऋज्वनृजुमनोवचनकायगतार्त्थविषयत्वकारणवर्त्तणिदमा ऋजुविपुलमतिमनःपर्य्ययंगळ अर्त्थाः विषयंगळु शब्दगतार्त्थंगळें दुं खलु स्फुटमागि द्विप्रकारंगळप्पुवु । अदें तें दोडे ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानं वोर्व्वं ऋजुमनदिदं निर्व्वर्त्तितमागि निष्पंन्नमागि त्रिकालविषयंगळप्प पदार्त्थंगळं चिंतिसिदं । ऋजुवचनदिदं निष्पन्नमागि त्रिकालविषयंगळप्पर्त्थंगळं नुडिदं । ऋजुभूतकार्यदिदं निष्पन्नमागि त्रिकालविषयार्त्थंगळं कायव्यापारदिदं माडिदनवंमरेदु । कालांतरदिदं नेनेयलारदे बंदु बेसगोंडोडं बेसगोळदिद्दों डमरिगुं एंवितु शब्दगतार्त्थंगळुमर्त्थगतार्त्थंगळु में बु द्विप्रकारंगळप्पुवु । विपुलमतिमनःपर्य्ययक्कमिते ऋज्वनृजुमनोवचनकायंगळिदं निर्व्वर्त्तितमागि निष्पन्नमागि त्रिकालविषयपदार्त्थंगळं चिंतिसिदुवं नुडिदुवं माडिदुवं मरेदु कालांतरदिदं नेनेयलारदे बंदु बेसगों-

त्रिविधः ॥४३९॥

विपुलमतिमनःपर्ययोऽपि यस्मात् ऋज्वनृजुमनोवचनकायगतार्थं जानाति तस्मात्कारणात् ऋजुमनोगतार्थविषय. ऋजुवचनगतार्थविषयः ऋजुकायगतार्थविषयः अनृजुमनोगतार्थविषय. अनृजुवचनगतार्थविषयः अनृजुकायगतार्थविषयश्चेति षोढा । तयोः ऋजुविपुलमतिमनःपर्यययोः अर्था.—विषया शब्दगता अर्थगताश्च स्फुटं भवन्ति । तद्यथा—कश्चिज्जीवः ऋजुमनसा निर्वर्तित—निष्पन्नः त्रिकालविषयपदार्थान् चिन्तितवान् ऋजुवचनेन निर्वर्तितस्तानुक्तवान् ऋजुकायेन निष्पन्नस्तान् कृतवान्, विस्मृत्य कालान्तरेण स्मर्तुमशक्तः, आगत्य पृच्छति वा तूष्णीं तिष्ठति तदा ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानं जानाति । तथा ऋज्वनृजुमनोवचनकायैर्निर्वर्तितः

अर्थको जाननेवाला, सरल वचनके द्वारा कहे गये मनोगत अर्थको जाननेवाला और सरलकायसे किये गये मनोगत अर्थको जाननेवाला ॥४३९॥

विपुलमति मनःपर्यय छह प्रकारका है—क्योंकि वह सरल और कुटिल मन-वचन-कायसे किये गये मनोगत अर्थको जानता है । अतः ऋजु मनोगत अर्थको विषय करनेवाला, ऋजु वचनगत अर्थको विषय करनेवाला, ऋजुकायगत अर्थको विषय करनेवाला तथा कुटिल मनोगत अर्थको विषय करनेवाला, कुटिल वचनगत अर्थको विषय करनेवाला, कुटिल कायगत अर्थको विषय करनेवाला इस तरह छह प्रकारका है । उन ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्ययके विषय शब्दगत और अर्थगत होते हैं । यथा—किसी सरलमनसे निष्पन्न व्यक्तिने त्रिकालवर्ती पदार्थोंके विषयमें चिन्तन किया, सरल वचनसे निष्पन्न होते हुए उन पदार्थोंका कथन किया और सरलकायसे निष्पन्न होकर उनको किया । फिर भूल गया, कालका अन्तराल पड़नेपर स्मरण नहीं कर सका । आ करके पूछता है अथवा चुप बैठता है । तब ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जान लेता है । तथा सरल या कुटिल मन-वचन-

डोडं बेसगोळविद्दोडि विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानमरिगुमें दितिल्लियुं शब्दगतार्त्थंगळुमर्त्थगतार्त्थंगळुमेंदितु द्विप्रकारांगळप्पुवु ।

तियकालविसयरूविं चिंतंतं वट्टमाणजीवेण ।
उजुमदिणाणं जाणदि भूदभविस्सं च विउलमदी ।४४१॥

त्रिकालविषयरूपिणं चित्यमानं वर्त्तमानजीवेन । ऋजुमतिज्ञानं जानाति भूतभविष्यंतौ च विपुलमतिः ।

त्रिकालविषयपुद्गलद्रव्यमं वर्त्तमानजीवनिंदं चिंतिसल्पडुत्तिद्दुदं ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानमरिगुं । भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालविषयंगळप्प चिंतितमं चिन्तयिष्यमाणमं चिंत्यमानमं विपुलमतिः मनःपर्य्ययज्ञानमरिगुं ॥

सव्वंगअंगसंभवचिण्हादुप्पज्जदे.जह्वा ओही ।
मणपज्जवं च दव्वमणादो उप्पज्जदे णियमा ॥४४२॥

सर्व्वांगांगसंभवचिह्नादुत्पद्यते यथावधिः । मनःपर्य्ययश्च द्रव्यमनसः उत्पद्यते नियमात् ॥

सर्व्वांगदोळमंगसंभवशंखादिशुभचिह्नंगळोळं यथा यें तीगळवधिज्ञानं पुट्टुगुमंते मनःपर्य्ययज्ञानमुं द्रव्यमनदिदं पुट्टुगुं नियमदिदं । नियमशब्दं द्रव्यमनदोळल्लदे मत्तेल्लियुमंगप्रदेशदोळु मनःपर्य्ययं पुट्टदेंबवधारणार्त्थमक्कुं ॥

हिदि होदि हु दव्वमणं वियसिय अट्ठच्छदारविंदं वा ।
अंगोवंगुदयादो मणवग्गणखंददो णियमा ॥४४३॥

हृदि भवति खलु द्रव्यमनो विकसिताष्टच्छदारविन्दवत् । अंगोपांगोदयात् मनोवर्गणास्कन्धतो नियमात् ॥

त्रिकालविषयपदार्थान् चिन्तितवान् वा उक्तवान् वा कृतवान् विस्मृत्य कालान्तरेण स्मर्तुमशक्तः आगत्य पृच्छति वा तूष्णीं तिष्ठति तदा विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानं जानाति ॥४४०॥

त्रिकालविषयपुद्गलद्रव्यं वर्तमानजीवेन चिन्त्यमानं ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानं जानाति । भूतभविष्यद्वर्तमानकालविषयं चिन्तितं चिन्तयिष्यमाणं चिन्त्यमानं च विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानं जानाति ॥४११॥

सर्वाङ्गे अङ्गसंभवशङ्खादिशुभचिह्ने च यथा अवधिज्ञानमुत्पद्यते तथा मनःपर्ययज्ञानं द्रव्यमनसि एवोत्पद्यते नियमेन नान्यत्राङ्गप्रदेशेषु ॥४४२॥

कायसे किये गये त्रिकालवर्ती पदार्थोंको विचार किया कहा या शरीरसे किया। पीछे भूल गया और समय बीतनेपर स्मरण नहीं कर सका। आकर पूछता है या चुप बैठता है तब विपुलमति मनः पर्ययज्ञानी जानता है ॥४४०॥

त्रिकालवर्ती पुद्गल द्रव्य वर्तमान जीवके द्वारा चिन्तनवन किया गया हो तो उसे ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जानता है। और त्रिकालवर्ती पुद्गलद्रव्य भूतकालमें चिन्तवन किया गया हो, भविष्यत् कालमें चिन्तन किया जानेवाला हो या वर्तमानमें चिन्तवन किया जाता हो तो उसे विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान जानता है ॥४४१॥

जैसे भवप्रत्यय अवधिज्ञान सर्वांगसे उत्पन्न होता है और गुणप्रत्यय अवधिज्ञान शरीरमें प्रकट हुए शंख आदि शुभ चिह्नोंसे उत्पन्न होता है वैसे ही मनःपर्ययज्ञान द्रव्यमनसे ही उत्पन्न होता है ऐसा नियम है, शरीरके अन्य प्रदेशोंमें उत्पन्न नहीं होता ॥४४२॥

अंगोपांगोदयात्कारणात् अंगोपांगनामकर्म्मोदयकारणदिंदं मनोवर्गणास्कंधंगळिदं विकसिताष्टच्छदारविंददंते द्रव्यमनं हृदयदोळप्पुदु खलु स्फुटमागि ।

णोइंदियत्ति सण्णा तस्स हवे सेसइंदियाणं वा ।

वत्तत्ताभावादो मण मणपज्जं च तत्थ हवे ।।४४४।।

नो इंद्रियमिति सञ्ज्ञा तस्य भवेत् शेषेंद्रियाणामिव व्यक्तत्वाभावात् मनो मनःपर्य्ययश्च तत्र भवेत् ।।

मनः आ द्रव्यमनं शेषेंद्रियाणामिव स्पर्शनादींद्रियंगळगे तु संस्थाननिर्द्देशंगळगे व्यक्तत्वमुंटंते । तस्य आ द्रव्यमनक्के व्यक्तत्वाभावात् कर्णनासिकानयनादिवत् व्यक्तत्वाभावदिदं नोइंद्रियमिति संज्ञा भवेत् । ईषदिंद्रियं नोइंद्रियमेंदितन्वर्थसंज्ञेयुमक्कुं । तत्र आ द्रव्यमनदोळु मनः भावमनोज्ञानमुं मनःपर्य्ययश्च भवेत् मनःपर्य्ययज्ञानं पुट्टुगुं ।

मणपज्जवं च णाणं सत्तसु विरदेसु सत्तइड्ढीणं ।

एगादिजुदेसु हवे वड्ढंतविसिट्ठचरणेसु ।।४४५।।

मनःपर्य्ययज्ञानं सप्तसु विरतेषु सप्तर्द्धीनामेकादियुतेषु भवेद् वर्द्धमानविशिष्टाचरणेषु ।।

सप्तसु विरतेषु प्रमत्तसंयतादिक्षीणकषायांतमाद सप्तगुणस्थानवर्त्तिगळप्प विरतरोळु सप्तर्द्धीनामेकादियुतेषु बुद्धितपोवैकुर्व्वणौषधरसबलाक्षीणमेंब सप्तऋद्धिगळोळेक द्वित्र्यादियुतरोळु वर्द्धमानविशिष्टाचरणेषु पेर्च्चुत्तिप्पं विशिष्टाचारमनुळ्ळ महामुनिगळोळु मनःपर्य्ययश्च ज्ञानं भवेत् मनःपर्य्ययज्ञानं पुट्टुदें बुदु तात्पर्य्यं ।

इंदियणोइंदियजोगादि पेक्खित्तु उजुमदी होदि ।

णिरवेक्खिय विउलमदी ओहिं वा होदि णियमेण ।।४४६।।

इंद्रियनोइंद्रिययोगादीनपेक्ष्य तु ऋजुमतिर्भवति । निरपेक्ष्य च विपुलमतिरवधिवद्भवति नियमेन ।।

अङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयकारणात् मनोवर्गणास्कन्धैर्विकसिताष्टच्छदारविन्दसदृशं द्रव्यमनो हृदये उत्पद्यते स्फुटम् ।।४४३।।

तस्य द्रव्यमनसः शेषस्पर्शनादीन्द्रियाणामिव स्थाननिर्देशाभ्यां व्यक्तत्वाभावात् ईषदिन्द्रियत्वेन नोइन्द्रियमित्यन्वर्थनाम भवेत् । तत्र द्रव्यमनसि भावमनो मनःपर्ययश्चोत्पद्यते ।।४४४।।

प्रमत्तादिसप्तगुणस्थानेषु बुद्धितपोविकुर्वणौषधरसबलाक्षीणनामसप्तर्धिमध्ये एकद्वित्र्यादियुतेष्वेव वर्धमानविशिष्टाचरणेषु मनःपर्ययज्ञानं भवति, नान्यत्र ।।४४५।।

अंगोपांग नामकर्मके उदयसे मनोवर्गणारूप स्कन्धोंके द्वारा हृदयस्थानमें मनकी उत्पत्ति होती है । वह खिले हुए आठ पाँखुड़ीके कमलके समान होता है ।।४४३।।

उस द्रव्यमनका नो इन्द्रिय नाम सार्थक है क्योंकि जैसे स्पर्शन आदि इन्द्रियोंका स्थान और विषय प्रकट है वैसा मनका नहीं है । इसलिए ईषत् अर्थात् किंचित् इन्द्रिय होनेसे उसका नाम नोइन्द्रिय है । उस द्रव्यमनमें भावमन और मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होते हैं ।।४४४।।

प्रमत्तसंयतसे क्षीणकषाय पर्यन्त सात गुणस्थानोंमें, बुद्धि-तप-विक्रिया-औषध-रस-बल और अक्षीण नामक सात ऋद्धियोंमें-से एक-दो-तीन आदि ऋद्धियोंके धारी तथा जिनका विशिष्ट चारित्र वर्धमान होता है उन महामुनियोंमें ही मनःपर्ययज्ञान होता है, अन्यत्र नहीं ।।४४५।।

स्पर्शनादींद्रियंगळुमं नोइंद्रियमुमं मनोवचनकाययोगमुमें दिवं तन्न पेरर संबंधिगळुमन-पेक्षिसिये ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानं संजनिसुगुं। तु मत्ते इंद्रियनोइंद्रिययोगादिगळं स्वपरसंबंधि-गळनपेक्षिसये विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानं चक्षुरिंद्रियमोगळें तु रसादिगळं परिहरिसि रूपमों दने परिच्छेदिसुगुमंते मनःपर्य्ययज्ञानमुं भवविषयाशेषानंतपर्य्यायंगळं परिहरिसि आवुदों दु कारण-दिदं भवसंज्ञितद्वित्रिव्यंजनपर्य्यायंगळं परिच्छेदिसुगुमदु कारणदिदमिदवधिज्ञानदंते नियमदिदं संजनिसुगुं।

पडिवादी पुण पढमा अप्पडिवादी हु होदि बिदिया हु।
सुद्धो पढमो बोहो सुद्धतरो बिदियबोहो दु ॥४४७॥

प्रतिपाती पुनः प्रथमोऽप्रतिपाती खलु भवति द्वितीयः। शुद्धः प्रथमो बोधः शुद्धतरो द्वितीय-बोधस्तु ॥

प्रथमः मोदल ऋजुमतिमनःपर्य्यायं प्रतिपाती प्रतिपातियक्कुं। प्रतिपतनं प्रतिपातः उपशांतकषायंगे चारित्रमोहोद्रेकदिदं प्रच्युतसंयमशिखरंगे प्रतिपातमक्कुं। क्षीणकषायंगे प्रतिपात-कारणाभावदिदं अप्रतिपातमक्कुं। तदपेक्षेयिदं प्रतिपातोऽस्यास्तीति प्रतिपाती। पुनः मत्ते द्वितीयः विपुलमतिमनःपर्य्ययं अप्रतिपाती खलु प्रतिपातरहितमक्कुं। न प्रतिपाती अप्रतिपाती। शुद्धः प्रथमो बोधः मोदल ऋजुमतिमनःपर्य्ययं विशुद्धबोधमक्कुं। प्रतिपक्षकर्म्मक्षयोपशमदिंटागुत्तिरलु आत्मन प्रसादमं विशुद्धियें बुदु। तदस्यास्तीति विशुद्धः शुद्धतरो द्वितीयबोधस्तु। तु मत्ते अतिशय-दिदं विशुद्धमक्कुं विपुलमतिमनःपर्य्ययं।

परमणसिट्ठियमट्ठं ईहामदिणा उजुट्ठियं लहिय।
पच्छा पच्चक्खेण य उजुमदिणा जाणदे णियमा ॥४४८॥

परमनसि स्थितमर्थं इहामत्या ऋजुस्थितं लब्ध्वा। पश्चात्प्रत्यक्षेण च ऋजुमतिना जानीते नियमात् ॥

ऋजुमतिमनःपर्ययः स्पर्शनादीन्द्रियाणि नोइन्द्रियं मनोवचनकाययोगाश्च स्वपरसंबन्धिनोऽपेक्ष्यैवोत्पद्यते। विपुलमतिमनःपर्ययस्तु अवधिज्ञानमिव ताननपेक्ष्यैवोत्पद्यते नियमेन ॥४४६॥

प्रथमः ऋजुमतिमनःपर्ययः प्रतिपाती भवति। क्षीणकषायस्याप्यप्रतिपातेऽपि, उपशान्तकषायस्य चारित्रमोहोद्रेकात्तत्संभवात्। पुनः द्वितीयो विपुलमतिमनःपर्ययः अप्रतिपाती खलु। ऋजुमतिमनःपर्ययो विशुद्धः, प्रतिपक्षकर्मक्षयोपशमे सति आत्मप्रसादरूपविशुद्धेः संभवात्। तु पुनः विपुलमतिमनःपर्ययः अतिशयेन विशुद्धो भवति ॥४४७॥

ऋजुमतिमनःपर्यय अपने और अन्य जीवोंके स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ, मन, और मन-वचन-काय योगोंकी अपेक्षासे ही उत्पन्न होता है। और विपुलमतिमनःपर्यय अवधिज्ञानकी तरह उनकी अपेक्षाके बिना ही उत्पन्न होता है ॥४४६॥

प्रथम ऋजुमति मनःपर्यय प्रतिपाती होता है। जो ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी क्षपक-श्रेणीपर आरोहण करके क्षीणकषाय हो जाता है यद्यपि वह वहाँसे गिरता नहीं है किन्तु जो उपशम श्रेणीपर आरोहण करके उपशान्त कषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती होता है, चारित्रमोहका उद्रेक होनेसे उसका प्रतिपात होता है। किन्तु दूसरा विपुलमतिमनःपर्यय अप्रतिपाती है। ऋजुमति मनःपर्यय विशुद्ध है क्योंकि प्रतिपक्षी कर्मका क्षयोपशम होनेपर

पेरर मनवोळिर्द्दर्त्थमं ऋजुस्थितं ऋजु यथा भवति तथा स्थितं इहामविणा ईहामतिज्ञान-दिवं मुन्नं लब्ध्वा पडेदु पश्चात् बळिकं ऋजुमतिना ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानदिवं प्रत्यक्षेण च प्रत्यक्षमागि मनःपर्य्ययज्ञानी जानीते अरिगुं नियमात् नियमदिवं।

चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं।
ओहिं वा विउलमदी लहिऊण विजाणए पच्छा ॥४४९॥

चिंतितमचिंतितं वा अर्द्धचिंतितमनेकभेदगतं। अवधिवद्विपुलमतिर्लब्ध्वा विजानाति पश्चात् ॥

चिंतितमुमचिंतितमुमं मेणर्द्धचिंतितमुमनितनेकभेदवोळिर्द्द परकीयमनोगतार्त्थमं मुन्नं पडेदु बळिकं विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानमवधिज्ञानमंतंत प्रत्यक्षमागरिगुं।

दव्वं खेत्तं कालं भावं पडि जीवलक्खियं रूविं।
उजुविउलमदी जाणदि अवरवरं मज्झिमं च तहा ॥४५०॥

द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं प्रति जीवलक्षितं रूपिणं। ऋजु-विपुलमती जानीतः अवरवरं मध्यमं च तथा ॥

द्रव्यं प्रति क्षेत्रं प्रति कालं प्रति भावं प्रति प्रत्येकं जीवलक्षितं जीवर्निदं चिंतिसल्पट्टुदं रूपिणं पुद्गलं पुद्गलद्रव्यमं तत्संबंधिजीवद्रव्यमं। अवरवरं जघन्यमुमनुत्कृष्टमुमं। तथा अंते मध्यमं च मध्यममुमं ऋजुविपुलमतो ऋजुविपुलमतिमनःपर्य्ययंगळेरडुं जानीतःअरिववु।

परस्य मनसि ऋजुतया स्थितमर्थं ईहामतिज्ञानेन पूर्वं लब्ध्वा पश्चात् ऋजुमतिज्ञानेन प्रत्यक्षतया मनःपर्ययज्ञानी जानीते नियमात् ॥४४८॥

चिन्तित अचिन्तित अथवा अर्धचिन्तितं इत्यनेकभेदगतं परमनोगतार्थं पूर्वं लब्ध्वा पश्चाद्विपुलमतिमनः-पर्ययः अवधिरिव प्रत्यक्ष जानाति ॥४४९॥

द्रव्य प्रति क्षेत्रं प्रति कालं प्रति भावं प्रति प्रत्येकं जीवलक्षितं–जीवचिन्तित, रूपि–पुद्गलद्रव्यं तत्संबन्धिजीवद्रव्य च जघन्य उत्कृष्ट तथा मध्यमं च ऋजुविपुलमतिमन पर्ययौ जानीत. ॥४५०॥

आत्माकी निर्मलता रूप विशुद्धिसे उत्पन्न होता है। किन्तु विपुलमतिमनःपर्यय अतिशय विशुद्ध होता है ॥४४७॥

दूसरेके मनमें सरलता रूपसे विचार किया गया जो अर्थ स्थित है उसे पहले ईहामतिज्ञानके द्वारा प्राप्त करके पीछे ऋजुमतिज्ञानसे मनःपर्ययज्ञानी नियमसे प्रत्यक्ष जानता है ॥४४८॥

चिन्तित, अचिन्तित, अथवा अर्धचिन्तित इत्यादि अनेक भेद रूप दूसरेके मनोगत अर्थको पहले प्राप्त करके पीछे विपुल मति मनःपर्यय अवधिज्ञानकी तरह प्रत्यक्ष जानता है ॥४४९॥

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको लेकर जीवके द्वारा चिन्तित पुद्गल द्रव्य और उससे सम्बद्ध जीवद्रव्यको जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदको लिए हुए ऋजुमति और विपुलमति मनः-पर्यय जानते हैं ॥४५०॥

अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्जिण्णसमयबद्धं तु ।
चक्खिदियणिज्जिण्णं उक्कस्सं उजुमदिस्स हवे ।।४५१।।

अवरं द्रव्यमौदारिकशरीरनिर्ज्जीर्ण्णसमयप्रबद्धस्तु । चक्षुरिंद्रियनिर्ज्जीर्ण्णमुत्कृष्टं ऋजुमते भवेत् ।

ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानक्के विषयमप्प जघन्यद्रव्यमौदारिकशरीरनिर्ज्जीर्ण्णसमयप्रबद्धमक्कुं । स ə १६ ख । तु मत्ते । उत्कृष्टं द्रव्यं चक्षुरिंद्रियनिर्ज्जीर्ण्णद्रव्यमक्कुं । अदर प्रमाणमेनितें दोडे त्रैराशिकदिंदं साधिसल्पडुगुं ।

अा त्रैराशिकविधानमेनितेंदोडे संख्यातघनांगुलप्रमितमौदारिकशरीरावगाहनप्रदेशंगळोळेल्लमेत्तलानुं सविस्रसोपचयौदारिकशरीरसमयप्रबद्धंगळोळेल्लमेत्तलानुं सविस्रसोपचयौदारिकशरीरसमयप्रबद्धंगळेयिसुवागळु चक्षुरिंद्रियाभ्यंतरनिर्वृत्तिप्रदेशप्रचयमिनितरोळिनितु द्रव्यंगळेयिसुगुमेंदितु त्रैराशिकमं माडि प्र ६ । १ । फ स ə १६ ख इ ६ प / प १ १ ə प / ə ə आद्यंतशदृशं त्रैराशिकं मध्यम नाम फलं भवेत् एंदु बंद लब्धं चक्षुरिंद्रियनिर्ज्जीर्णद्रव्यमिदु ऋजुमतिमनःपर्य्ययक्कुत्कृष्टद्रव्यमक्कुं स ə १६ ख ६ प / ə / ६ । १ प १ १ प

तत्र ऋजुमतिमनःपर्यय. जघन्यद्रव्य औदारिकशरीरनिर्जीर्णसमयप्रबद्ध जानाति स ə १६ ख । तु—पुनः, उत्कृष्टद्रव्यं चक्षुरिन्द्रियनिर्जीर्णमात्र जानाति। तत्कियत् ? औदारिकशरीरावगाहने संख्यातघनाङ्गुले सविस्रसोपचयौदारिकशरीरसमयप्रबद्धो गलति तदा चक्षुरिन्द्रियाभ्यन्तरनिर्वृत्तिप्रदेशप्रचये कियदिति त्रैराशिकेन प्र ६ १ । फ स ə १६ ख । इ ६ प / प १ १ प / ə ə लब्धमात्रं भवति—स ə १६ ख । ६ । प / ə / ६ १ प १ १ प / ə ə ।।४५१।।

ऋजुमति मनःपर्यय औदारिक शरीरके निर्जीर्ण समय प्रबद्धरूप जघन्य द्रव्यको जानता है और उत्कृष्टद्रव्यके रूपमें चक्षु इन्द्रियके निर्जीर्णद्रव्यको जानता है। वह कितना है सो कहते हैं—औदारिक शरीरकी अवगाहना संख्यात घनांगुल है। उसके विस्रसोपचय सहित औदारिक शरीरके समय प्रबद्ध परमाणुओंकी निर्जरा होती है। तब चक्षु इन्द्रियकी अभ्यन्तर निर्वृत्तिके प्रदेश प्रचयमें कितनी निर्जरा हुई, ऐसा त्रैराशिक करनेपर जितना परिमाण आवे उतने परमाणुओंके स्कन्धको ऋजुमति उत्कृष्ट रूपसे जानता है ।।४५१।।

मणदव्ववग्गणाणमणंतिमभागेण उजुगउक्कस्सं ।
खंडिदमेत्तं होदि हु विउलमदिस्सावरं दव्वं ॥४५२॥

मनोद्रव्यवर्गणानामनंतैकभागेन ऋजुमतेरुत्कृष्टं । खंडितमात्रं भवति खलु विपुलमतेरवरं द्रव्यं ॥

मनोद्रव्यवर्ग्गणेगळनंतैकभागं ध्रुवहारप्रमाणमक्कु ज १ / ख ख मी ध्रुवहार भागिदिं ऋजुमतिपर्य्ययज्ञानविषयोत्कृष्टद्रव्यमं खंडिसुत्तिरलावुदोंदेकखंडं तावन्मात्रं खलु स्फुटमागि विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयजघन्यद्रव्यमक्कुं स ० १६ ख ६ प

६ । १ । प १ १ प ० ९
० ०

अट्ठण्हं कम्माणं समयपबद्धं विविस्ससोवचयं ।
धुवहारेणिगिवारं भजिदे बिदियं हवे दव्वं ॥४५३॥

अष्टानां कर्म्मणां समयप्रबद्धो विविस्रसोपचयो । ध्रुवहारेणैकवारं भाजिदे द्वितीयं भवेद्द्रव्यं ।

ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्म्मसामान्यसमयप्रबद्धं विगतविस्रसोपचयमदेकवारं ध्रुवहारदिदं भागिसल्पडुतिरलेकखंडमात्रं विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयद्वितीयद्रव्यविकल्पमक्कुं स ०—ख ख / ९ ० ०

मनोद्रव्यवर्गणाविकल्पानामनन्तैकभागेन ध्रुवहारेण ज १ / ख ख ऋजुमतिविषयोत्कृष्टद्रव्ये खण्डिते यावन्मात्र तत्स्फुटं विपुलमतिविषयजघन्यद्रव्यं भवति स ० १६ ख । ६ प / ० ॥४५२॥

६ १ प १ १ प । ९
० ०

अष्टकर्मसामान्यसमयप्रबद्धे विविस्रसोपचये ध्रुवहारेण एकवारं भक्ते यदेकखण्डं तद्विपुलमतिविषयद्वितीयद्रव्यं भवति— स ० ० / ९ ० ख ख ॥४५३॥

मनोद्रव्य वर्गणाके विकल्पोंके अनन्तवें भागरूप ध्रुवहारसे ऋजुमतिके विषय उत्कृष्टद्रव्यमें भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतना विपुलमतिके विषयभूत जघन्यद्रव्यका परिमाण होता है ॥४५२॥

आठों कर्मोंके विस्रसोपचय रहित सामान्य समय प्रबद्धमें ध्रुवहारसे एक बार भाग देनेपर जो एक खण्ड आता है वह विपुलमतिका विषय द्वितीयद्रव्य होता है ॥४५३॥

तब्बिदियं कप्पाणमसंखेज्जाणं च समयसंखसमं ।
धुवहारेणवहरिदे होदि हु उक्कस्सयं दव्वं ॥४५४॥

तद्द्वितीयं कल्पानामसंख्यातानां च समयसंख्यासमं ध्रुवहारेणापहृते भवति खलूत्कृष्टं द्रव्यं ।

तं द्वितीयं विपुलमनःपर्य्ययज्ञानविषयद्वितीयद्रव्यविकल्पमं असंख्यातकल्पंगळ समयंगळ संख्यासमानध्रुवहारंगळिंदं भागिसुत्तं विरलु यावत्प्रमाणं लब्धं तावत्प्रमाणं विपुलमतिमनःपर्य्यय-ज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टद्रव्यविकल्पमक्कुं खलु स्फुटमागि स ० ख ख / ९ क ० ९९९

गाउयपुधत्तमवरं उक्कस्सं होदि जोयणपुधत्तं ।
विउलमदिस्स य अवरं तस्स पुधत्तं वरं खु णरलोयं ॥४५५॥

गव्यूतिपृथक्त्वमवरमुत्कृष्टं भवति योजनपृथक्त्वं । विपुलमतेरवरं तस्य पृथक्त्वं खलु नरलोकः ॥

ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयजघन्यक्षेत्रं गव्यूतिपृथक्त्वमेरडुमूरु क्रोशंगळप्पुवु । क्रो २ । ३ । मवरुत्कृष्टक्षेत्रं योजनपृथक्त्वसप्ताष्टयोजनप्रमाणमक्कुं । यो ७ । ८ । विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञान विषयजघन्यक्षेत्रं तस्य पृथक्त्वमा योजनंगळ पृथक्त्वमष्टयोजननवयोजनप्रमाणमक्कुं । ८ । ९ । तदुत्कृष्टज्ञानविषयोत्कृष्टक्षेत्रं खलु स्फुटमागि । नरलोकः मनुष्यलोकमेनितनितु प्रमाणमक्कुं ।

णरलोएत्ति य वयणं विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स ।
जम्हा तग्घणपदरं मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठं ॥४५६॥

नरलोक इति वचनं विष्कंभनियामकं न वृत्तस्य । यस्मात्तद्घनप्रतरं मनःपर्य्यायक्षेत्रमुद्दिष्टं ॥

विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणदोळु नरलोक इति वचनं नरलोकमें बी शब्दं तन्मनुष्यक्षेत्रवृत्तविष्कंभनियामकमल्तेकें दोडे यस्मात् आवुदोंदु कारणदिदं तद्घनप्रतरमा

तस्मिन् विपुलमतिविषयद्वितीयद्रव्ये असंख्यातकल्पसमयसंख्यैर्ध्रुवहारैर्भक्ते विपुलमतिविषयं सर्वोत्कृष्ट-द्रव्यं भवति— स ० ० ० ख ख / ९ । क ० ९ ९ ९ ॥४५४॥

ऋजुमतिविषयजघन्यक्षेत्रं गव्यूतिपृथक्त्वं द्वित्रिक्रोशाः २ । ३ । उत्कृष्टं योजनपृथक्त्वं सप्ताष्टयोजनानि ७ । ८ । विपुलमतिविषयजघन्यक्षेत्रं योजनपृथक्त्वं अष्टनवयोजनानि । ८ । ९ । उत्कृष्टं स्फुटं नरलोकः ॥४५५॥

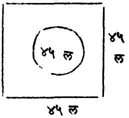
यद्विपुलमतिविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्ररूपणे नरलोक इति वचनमुक्तं तत् तद्गतविष्कम्भस्य नियामकं निश्चायकं

विपुलमतिके विषयभूत उस दूसरे द्रव्यमें असंख्यात कल्पकालके समयोंकी संख्या जितनी है उतनी बार ध्रुवहारसे भाग देनेपर विपुलमतिके विषयभूत सर्व उत्कृष्टद्रव्य आता है ॥४५४॥

ऋजुमतिका विषयभूत जघन्य क्षेत्र गव्यूति पृथक्त्व अर्थात् दो-तीन कोस है। और उत्कृष्ट क्षेत्र योजन पृथक्त्व अर्थात् सात-आठ योजन है। विपुलमतिका विषयभूत जघन्य क्षेत्र योजन पृथक्त्व अर्थात् आठ-नौ योजन है और उत्कृष्टक्षेत्र मनुष्यलोक है ॥४५५॥

विपुलमतिका विषय उत्कृष्टक्षेत्रका कथन करते हुए जो मनुष्यलोक कहा है वह

मनुष्यक्षेत्रद समचतुरस्रघनप्रतरप्रमितं विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणमें दु समुद्दिष्टं अनादिनिधनार्षदोळु पेळल्पट्टुदप्पुदे कारणमागि मानुषोत्तरपर्व्वताभ्यंतरविष्कंभं नाल्वत्तय्दुलक्षयोजनप्रमाणमदर समचतुरस्रक्षेत्रघनप्रतरप्रमाणं कैकोळल्पडुवुदेकें दोडे आ मानुषोत्तरपर्व्वतबिदं पोरगण नाल्कुं कोणंगळोळिर्द्द तिर्य्यंचरुममररुं चिंतिसिदुदं विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानमरिगुमप्पुदे कारणमागि ।

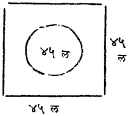


दुगतिगभवा हु अवरं सत्तट्ठभवा हवंति उक्कस्सं ।
अडणवभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं ॥४५७॥

द्वित्रिभवाः खलु जघन्यं सप्ताष्ट भवा भवंति उत्कृष्टं । अष्टनवभवाः खलु जघन्यमसंख्यातं विपुलोत्कृष्टं ॥

कालं प्रति ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयजघन्यं द्वित्रिभवंगळु खलु स्फुटमागि अप्पुवु उत्कृष्टदिदं सप्ताष्टभवंगळप्पुवु । विपुलमतिमनःपर्य्ययक्के जघन्यमष्टनवभवंगळुविषयमप्पुवु उत्कृष्टमसंख्यातसमयमप्पुदुमादोडं पल्यासंख्यातैकभागमात्रमक्कुं प/a

भवति न तु वृत्तस्य । कुत ? यतस्तत्पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमाणं समचतुरस्रघनप्रतरं मनःपर्ययविषयोत्कृष्टक्षेत्रं समुद्दिष्टं ततः कारणात् तदपि कुतः ? मानुषोत्तराद्बहिश्चतुःकोणस्थिततिर्यगमराणां परचिन्तितानां उत्कृष्टविपुलमतेः परिज्ञानात् ॥४५६॥



कालं प्रति ऋजुमतेर्विषयजघन्यं द्वित्रिभवाः स्युः । उत्कृष्टं सप्ताष्टभवाः स्युः । विपुलमतेर्विषयजघन्यं अष्टनवभवाः स्युः । उत्कृष्टं पल्यासंख्यातैकभागः स्यात् प/a ॥४५७॥

मनुष्यलोकके विष्कम्भका निश्चायक है गोलाईका नहीं । अर्थात् मनुष्यलोक तो गोलाकार है। वह नहीं लेना चाहिए। क्योंकि पैंतालीस लाख योजन प्रमाण समचतुरस्र घनप्रतर अर्थात् समान चौकोर घनप्रतर रूप मनःपर्ययका उत्कृष्ट विषयक्षेत्र कहा है। अर्थात् पैंतालीस लाख योजन लम्बा उतना ही चौड़ा लेना। क्योंकि मानुषोत्तर पर्वतके बाहर चारों कोनोंमें स्थित देवों और तिर्यंचोंके द्वारा चिन्तित अर्थको भी उत्कृष्ट विपुलमति जानता है ॥४५६॥

कालकी अपेक्षा ऋजुमतिका जघन्य विषय दो तीन भव होते हैं। और उत्कृष्ट सात-आठ भव होते हैं। विपुलमतिका जघन्य विषय आठ-नौ भव होते हैं और उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवाँ भाग है ॥४५७॥

आवलिअसंखभागं अवरं च वरं च वरमसंखगुणं।
तत्तो असंखगुणिदं असंखलोगं तु विउलमदी ॥४५८॥

आवल्यसंख्यभागो अवरश्च वरश्च वरोऽसंख्यगुणः ततोऽसंख्यगुणितः असंख्यलोकस्तु विपुलमतेः॥

भावं प्रति वक्ति। ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयजघन्यमावल्यसंख्यातैकभागमक्कुमुत्कृष्टमुमंते आवल्यसंख्यभागमक्कुमादोडे जघन्यमं नोडलसंख्यातगुणमक्कुं। ततः आ ऋजुमतिमन.पर्य्यज्ञानविषयोत्कृष्टभावप्रमाणमं नोडलु विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयजघन्यभावमसंख्यातगुणितमक्कुमा विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयोत्कृष्टभावं तु मत्ते असंख्यातलोकः असंख्यातलोकमात्रमक्कुं। ≡a।

मज्झिमदव्वं खेत्तं कालं भावं च मज्झिमं णाणं।
जाणदि इदि मणपज्जयणाणं कहिदं समासेण ॥४५९॥

मध्यमद्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं च मध्यमज्ञानं जानाति। इतिमनःपर्य्ययज्ञानं कथितं समासेन॥

ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानजघन्योत्कृष्टज्ञानंगळुं विपुलमतिमनःपर्य्ययजघन्योत्कृष्टज्ञानंगळुं ई पेळल्पट्ट तंतम्मजघन्योत्कृष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावंगळनरिववुमा मध्यमज्ञानविकल्पंगळुं तंतम्म मध्यमद्रव्यक्षेत्रकालं भावंगळनरिवर्वितु मनपर्य्ययज्ञानं संक्षेपदिदं पेळल्पट्टुदु। तद्द्रव्यक्षेत्रकालभावंगळगे संदृष्टि :—

भाव प्रति ऋजुमतेर्विषयजघन्य आवल्यसंख्यातैकभागः ८। उत्कृष्टं तदालापमपि जघन्यादसंख्यात-
a a a
गुणं ८ a। तत. विपुलमतेर्विषयजघन्यमसख्यातगुणं ८ a a उत्कृष्टं तु पुन· असख्यातलोक ।≡a॥४५८॥
a a a   a a a

ऋजुविपुलमत्यो· जघन्योत्कृष्टविकल्पौ उक्तस्वस्वजघन्योत्कृष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावान् जानीत.। मध्यमविकल्पास्तु स्वस्वमध्यमद्रव्यक्षेत्रकालभावान् जानन्ति इत्येवं मनःपर्ययज्ञान सक्षेपणोक्तम् ॥४५९॥

भावकी अपेक्षा ऋजुमतिका जघन्य विषय आवलीका असंख्यातवाँ भाग है। उत्कृष्ट भी उतना ही है किन्तु जघन्यसे असंख्यातगुणा है। उससे विपुलमतिका जघन्य विषय असंख्यातगुणा है और उत्कृष्ट असंख्यात लोक है ॥४५८॥

ऋजुमति और विपुलमतिके जघन्य और उत्कृष्ट भेद अपने-अपने जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावोंको जानते हैं। तथा मध्यमभेद अपने-अपने मध्यम क्षेत्र-काल-भावको जानते हैं। इस प्रकार मनःपर्ययज्ञानका संक्षेपसे कथन किया ॥४५९॥

स ‌ә ख ख ९ क ә ९ । ९ ९ ० ० ० ० ० ० ० ० ० स ә ख ख	४५००००० ० ० ० ०	प ० ә ० ० ०	भा≡ ә ० ० ०	उत्कृष्ट विपुलमति
स ә १६ ख ६ प ә ६ । १ । प ११ । प ९ ә ә	जोयण । ८ । ९	भव । ८ । ९	८ ә ә ә ә ә	जघन्य
स ә १६ ख ६ प ә ६ । १ । प । ११ प ә ० ә ० ०	जोयण । ७ । ८ ० ० ० ० ० ०	भव । ७ । ८ ० ० ० ० ०	८ ә ә ә ә ० ० ० ८	उत्कृष्ट ऋजुमति जघन्य ॥ ०
स ә १६ ख	गाउय । २ । ३	भव २ । ३	ә ә ә	
द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव	॥ ० ॥ ० ॥

संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त सव्वभावगयं ।
लोयालोयवितिमिरं केवलणाणं मुणेदव्वं ॥४६०॥

संपूर्णं तु समग्रं केवलमसपत्नसर्वभावगतं । लोकालोकवितिमिरं केवलज्ञानं मंतव्यं ॥

जीवद्रव्यद शक्तिगतज्ञानाविभागप्रतिच्छेदंगळॆनितोळवनितुं व्यक्तिगे बंदु (घु) वप्पुदे कारणमागि संपूर्णमुं मोहनीयवीर्य्यांतरायनिरवशेषक्षयदिंदमप्रतिहतशक्तियुक्तत्वदिंदमुं निश्चलत्वदिंदमुं समग्रमुं इंद्रियसहायनिरपेक्षमप्पुदरिंदं केवलमुं । सपत्नंगळप्प घातिचतुष्टयप्रक्षयदिंदं क्रमकरणव्यवधानरहितमागि सकलपदार्थगतमप्पुदु कारणदिंदमसपत्नमुं लोकालोकंगळोळ्विगततिमिरमुमितप्पुदु केवलज्ञानमेंदु मंतव्युं बगेयल्पडुवुदु ।

जीवद्रव्यस्य शक्तिगतसर्वज्ञानाविभागप्रतिच्छेदाना व्यक्तिगतत्वात्सपूर्णम् । मोहनीयवीर्यान्तरायनिरवशेषक्षयादप्रतिहतशक्तियुक्तत्वात् निश्चलत्वाच्च समग्रम् । इन्द्रियसहायनिरपेक्षत्वात् केवलम् । घातिचतुष्टयप्रक्षयात् क्रमकरणव्यवधानरहितत्वेन सकलपदार्थगतत्वात् असपत्नम् । लोकालोकयोर्विगततिमिरं तदिद केवलज्ञान

जीवद्रव्यके शक्तिरूप जो सब ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद है वे सब व्यक्त हो जानेसे केवलज्ञान सम्पूर्ण है । मोहनीय और वीर्यान्तरायका सम्पूर्ण क्षय होनेसे केवलज्ञानकी शक्ति बेरोक और निश्चल है इसलिए वह समग्र है । इन्द्रियोंकी सहायता न लेनेसे केवल है । चार घातिया कर्मोंका अत्यन्त क्षय हो जानेसे तथा क्रम और इन्द्रियोंके व्यवधानसे रहित होनेके कारण समस्त पदार्थोंको जाननेसे असपत्न है । लोक और अलोकको प्रकाशित करनेवाला ऐसा यह केवलज्ञान जानना ॥४६०॥

अनंतरं ज्ञानमार्ग्गणेयोळु जीवसंख्येयं पेळ्वपं ।

चदुगदिमदिसुदबोहा पल्लासंखेज्जया हु मणपज्जा ।
संखेज्जा केवलिणो सिद्धादो होंति अदिरित्ता ॥४६१॥

चतुर्गतिमतिश्रुतबोधाः पल्यासंख्येयमात्राः खलु मनःपर्य्ययज्ञानिनः संख्येयाः केवलिनः सिद्धेभ्यो भवंत्यतिरिक्ताः ॥

चतुर्गगतिय मतिज्ञानिगळुं श्रुतज्ञानिगळुं प्रत्येकं पल्यासंख्यातभागप्रमितरु स्फुटमागि । म । प/a । श्रु । प/a । मनःपर्य्ययज्ञानिगळु संख्यातप्रमितरेयप्पुवु । १ । केवलज्ञानिगळु सिद्धरं नोडे जिनर संख्येयिदं साधिकरप्परु १/३ ।

ओहिरहिदा तिरिक्खा मदिणाणि असंखभागगा मणुवा ।
संखेज्जा हु तदूणा मदिणाणी ओहिपरिमाणं ॥४६२॥

अवधिरहितास्तिर्य्यंचो मतिज्ञान्यसंख्यभागप्रमिता मानवाः । संख्येयाः खलु तदूना मतिज्ञानिनो अवधिज्ञानिनः परिमाणं ॥

अवधिज्ञानरहिततिर्य्यंचरु मतिज्ञानिगळ संख्येयं नोडलसंख्यातभागप्रमितरप्परु प १/a a अवधिरहितमनुष्यरु संख्यातप्रमितरप्परु । १ । मी येरडु राशिगळिदं प १/a १/a हीनमप्प मतिज्ञानिगळ संख्ये अवधिज्ञानिगळ परिमाणमक्कु प a/a a

---

मन्तव्यम् ॥४६०॥ अथ ज्ञानमार्गणायां जीवसंख्यामाह—

चतुर्गतिमतिज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्च प्रत्येकं पल्यासंख्यातैकभागमात्राः स्फुटं म प/a श्रु प/a । मनःपर्ययज्ञानिनः संख्याताः १ । केवलज्ञानिनः जिनसंख्यया समधिकसिद्धराशि ३ ॥४६१॥

अवधिज्ञानरहिततिर्यञ्चः मतिज्ञानिसंख्याया असंख्येयभागः प १/a a । अवधिरहितमनुष्याः संख्याताः १

एतद्राशिद्वयोना मतिज्ञानसंख्यैव चतुर्गत्यवधिज्ञानपरिमाणं भवति प a—१/a a ॥४६२॥

अब ज्ञानमार्गणामें जीवोंकी संख्या कहते हैं—

चारों गतियोंमें मतिज्ञानी पल्यके असंख्यातवें भाग हैं और श्रुतज्ञानी भी पल्यके असंख्यातवें भाग हैं। मनःपर्ययज्ञानी संख्यात हैं। और केवलज्ञानी सिद्धराशिमें तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानके जिनोंकी संख्या मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने हैं ॥४६१॥

अवधिज्ञानसे रहित तिर्यंच मतिज्ञानियोंकी संख्यासे असंख्यातवें भाग हैं। अवधिज्ञानसे रहित मनुष्य संख्यात हैं। मतिज्ञानियोंकी संख्यामें ये दोनों राशि घटा देनेपर चारों गतिके अवधिज्ञानियोंका प्रमाण होता है ॥४६२॥

पल्लासंखघणंगुलहदसेढितिरिक्खगदिविभंगजुदा ।
णरसहिदा किंचूणाचदुगदीवेभंगपरिमाणं ॥४६३॥

पल्यासंख्यातघनांगुलहतश्रेणितिर्य्यंग्गति विभंगयुताः । नरसहिता किंचिवूना चतुगतिविभंगज्ञानिपरिमाणं ॥

पल्यासंख्यातघनांगुलगुणित १ जगच्छ्रेणिमात्रं तिर्य्यंचविभंगज्ञानिगळप्परु –६ प (a) नरसहिता ई तिर्य्यंचविभंगज्ञानिगळोळु मनुष्यविभंगज्ञानिगळु संख्यातप्रमितरप्प १ रवर्गंळ संख्येयं साधिकं माडि – १ प (६ a) दी राशियमं सम्यग्दृष्टिगळिवं किंचिवूनघनांगुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितसामान्यनारकर संख्येयमं ।–२–। सम्यग्दृष्टिगळिदं किंचिदून ज्योतिष्कर संख्येयं नोडि साधिकयुप्प देवगतिजर संख्येयुमनितुं नाल्कुं गतिगळ विभंगज्ञानिगळ संख्येयं कूडिदोडे चतुर्गतिसमस्तविभंगज्ञानिगळ संख्येयक्कुं = १ ।

४ । ६५–१

सण्णाणरासिपंचयपरिहीणो सव्वजीवरासी हु ।
मदिसुद अण्णाणीणं पत्तेयं होदि परिमाणं ॥४६४॥

सद्ज्ञानराशिपंचकपरिहीनः सर्व्वजीवराशिः खलु । मतिश्रुताज्ञानिनां प्रत्येकं भवति परिमाणं ॥

पल्यासंख्यातघनाङ्गुलहतजगच्छ्रेणिमात्रतिर्यञ्च.–६ प (a) संख्यातमनुष्याः १ सम्यग्दृष्ट्यूनघनाङ्गुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रनारकाः—२—सम्यग्दृष्ट्यून[1]ज्योतिष्कसंख्यासाधिकदेवा । १—= १– ४ । ६५ = १ मिलित्वा चतुर्गतिविभङ्गज्ञानिसंख्या भवति ।॥ १— = १— ४ । ६५ = १ ॥४६३॥

पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणित घनांगुलसे जगतश्रेणिको गुणा करनेपर जितना प्रमाण हो उतने तिर्यंच, संख्यात मनुष्य तथा घनांगुलके द्वितीय मूलसे जगतश्रेणिको गुणा करनेपर जितना प्रमाण हो उतने नारकियोंके प्रमाणमें-से सम्यग्दृष्टी नारकियोंका प्रमाण घटानेसे जो शेष रहे उतने नारकी तथा ज्योतिषी देवोंके परिमाणमें भवनवासी, व्यन्तर और वैमानिक देवोंका प्रमाण मिलानेपर जो सामान्यदेव राशिका प्रमाण होता है उसमें सम्यक्-दृष्टि देवोंका परिमाण घटानेपर जो शेष रहे उतने देव । इन सब तिर्यंच, मनुष्य, नारकी और देवोंके प्रमाणको जोड़नेपर चारों गतिके विभंगज्ञानियोंकी संख्या होती है ॥४६३॥

---

1. ब °न साधिकज्योतिष्कसंख्यदेवाः ।

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलज्ञानिगळ संख्येगळनय्दु राशिगळं कूडिदोडे केवलज्ञानिगळ संख्येय मेले साधिकमक्कु ७ मी राशियं सर्व्वजीवराशियोळु १६ कळेयुत्तिरलुळिद शेषं १३– प्रत्येकं मत्यज्ञानिगळ संख्येयुं श्रुताज्ञानिगळ संख्येयुमक्कु १३।१३ । मितु पेळल्पट्ट संख्येगळ संदृष्टि चतुर्ग्गतियक्कु । मतिज्ञानिगळु १३–। चतुर्ग्गतियक्कु श्रुतज्ञानिगळु १३–। चतुर्गतिय विभंगज्ञानिगळु =१ / ४।६५=१ चतुर्ग्गतियमतिज्ञानिगळु प/a चतुर्ग्गतिय श्रुतज्ञानिगळु प/a चतुर्ग्गतिय अवधिज्ञानिगळु प a / a a मनुष्यगतियमनःपर्य्ययज्ञानिगळु १ केवलज्ञानिगळु सिद्धरुं जिनरुं १/३ तिर्य्यग्गतिय विभंगज्ञानिगळु ६ प/a मनुष्यगतिय विभंगज्ञानिगळु १ नारकविभंगज्ञानिगळु—२—। देवविभंगज्ञानिगळु =१ / ४।६५=१ संदृष्टिः—

कुमति	कुश्रुत	विभंग	मति	श्रुत	अवधि	मनः	केवल	तिरि=विभंग ।।
१३–	१३–	= १ / ४।६५=१	प/a	प/a	प a / a a	१	१/३	– ६ प/a

मनु=विभंग	नारक=विभंग	देव=विभंग
१	—२—	= १ / ४।६५=१

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित पुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरुमंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु द्वादशज्ञानमार्ग्गणामहाधिकारं समाप्तमाय्तु ।।

मत्यादिसम्यग्ज्ञानराशिपञ्चकेन साधिककेवलिराशिमात्रेण १/३ सर्वजीवराशि १६ हीनस्तदा १३–प्रत्येकं मतिश्रुताज्ञानिपरिमाणं स्यात् ।।४६४।।

मति आदि पाँच सम्यग्ज्ञानियोंकी संख्या केवलज्ञानियोंके संख्यासे कुछ अधिक है। इसको सर्वजीवराशिमें-से घटानेपर मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीवका परिमाण होता है ।।४६४।।

गंभीररचनेगळ परिरंभणेयं बिडिसि निरिसिदुदनेंबुद प्रा-। रंभिसि गोम्मटवृत्ति सुधांभोळियिनोडिगे मोहवज्राचलमं ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्ररचिताया गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्याया जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु ज्ञानमार्गणाप्ररूपणानाम द्वादशोऽधिकार. ॥१२॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से ज्ञानमार्गणा प्ररूपणा नामक बारहवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

संयममार्गणा ॥१३॥

ज्ञानमार्गणा स्वरूपमं पेळ्दनंतरं संयममार्ग्गणास्वरूपमं पेळल्वेडि मुंदण सूत्रमं पेळ्दपं—

वदसमिदिकसायाणं दंडाण तहिंदियाण पंचण्हं ।
धारण-पालणणिग्गहचागजओ संजमो भणियो ॥४६५॥

व्रतसमितिकषायाणां दंडानां तथेंद्रियाणां पंचानां । धारणपालननिग्रहत्यागजयः संयमो भणितः ॥

व्रतसमितिकषायदंडेंद्रियंगळेंबी अय्दु यथासंख्यमागि धारणपालननिग्रहत्यागजयं संयममेंबुदु परमागमदोळ्पेळल्पट्टुदु । व्रतधारणं समितिपालनं कषायनिग्रहं दंडत्यागमिंद्रियजयमेंबी पंचप्रकारमनुळ्ळुदु संयममेंबुदर्त्थं । सम् सम्यग्यमनं संयमः एंदिती निरुक्तिगनुरूपलक्षणं संयमक्के पेळल्पट्टुदेंबुदु तात्पर्य्यं ।

बादरसंजलणुदए सुहुमुदए समखए य मोहस्स ।
संजमभावो णियमा होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥४६६॥

बादरसंज्वलनोदये सूक्ष्मोदये उपशमे क्षये च मोहस्य । संयमभावो नियमात् भवतीति जिनैर्न्निर्द्दिष्टः ॥

बादरसंज्वलनोदयदोळं सूक्ष्मलोभोदयदोळं मोहनीयकर्म्मोपशमदोळं क्षयदोळं नियमदिदं संयमभावमक्कुमेंबु अर्हदादिगळिदं पेळल्पट्टुदु ।

विश्वं विमलयन्स्वीयैर्गुणैर्विश्वातिशायिभिः ।
विमलस्तीर्थकर्ता यो वन्दे तं तत्पदाप्तये ॥१३॥

अथ ज्ञानमार्गणा प्ररूप्येदानी संयममार्गणामाह—

व्रतसमितिकषायदण्डेन्द्रियाणां पञ्चानां यथासंख्यं धारणपालननिग्रहत्यागजयाः संयमो भणितः । व्रतधारणं समितिपालनं कषायनिग्रहः दण्डत्यागः इन्द्रियजय इति पञ्चधा संयम इत्यर्थः । सं–सम्यक्, यमनं संयमः ॥४६५॥

बादरसंज्वलनोदये सूक्ष्मलोभोदये मोहनीयोपशमे क्षये च नियमेन संयमभावः स्यात् । तथा हि–प्रमत्ता-

---

ज्ञानमार्गणाकी प्ररूपणा करके अब संयममार्गणाकी प्ररूपणा करते हैं—व्रत, समिति, कषाय, मन-वचन कायरूप दण्ड और इन्द्रियोंका यथाक्रम धारण, पालन, निग्रह, त्याग और जयको संयम कहा है । अर्थात् व्रतोंका धारण, समितियोंका पालन, कषायोंका निग्रह, दण्डोंका त्याग और इन्द्रियोंका जय इस प्रकार पाँच प्रकारका संयम है । 'सं' अर्थात् सम्यक्रूपसे यमको संयम कहते हैं ॥४६५॥

बादर संज्वलन कषायका उदय होते, सूक्ष्म लोभकषायका उदय रहते तथा मोहनीयका उपशम और क्षय होनेपर नियमसे संयमभाव होता है ऐसा जिनदेवने कहा है। इसका

प्रमत्ताप्रमत्तरोळु संज्वलनकषायंगळ्गे सर्वघातिस्पर्द्धकंगळुवयाभावलक्षणक्षयमुं उवयनिषेकव उपरितननिषेकंगळुवयाभावलक्षणमुपशममुमितु चारित्रमोहनीयक्षयोपशममुं बावरसंज्वलनदेशघातिस्पर्द्धकक्के संयमाविरोधिदिवमुवयवोळं सामायिकछेवोपस्थापनसंयमंगळप्पुवुमा गुणस्थानद्वयवोळे परिहारशुद्धिसंयममुमक्कुं। सूक्ष्मकृष्टिकरणानिवृत्तिपर्य्यंतं बादरसंज्वलनोवर्यादिवमपूर्व्वानिवृत्तिकरणवोळं सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमंगळप्पुवु । सूक्ष्मकृष्टिरूपदिनिर्द्द संज्वलनलोभोवर्यादिव सूक्ष्मसांपरायसंयममक्कुं । चारित्रमोहनीयसर्व्वोपशमदिंदमुं यथाख्यातसंयममक्कुं । चारित्रमोहनीयनिरवशेषक्षयदिवं यथाख्यातसंयमं क्षीणकषायादिगुणस्थानत्रयदोळं नियमदिंदमक्कुमें दितु अर्हदादिगळिव निरूपिसल्पट्टुवें बुवर्त्थमीयर्त्थमने मुंवणगाथासूत्रद्वयदिंदं विशदं माडिदपरु।

बादरसंजलणुदए बादरसंजमतियं खु परिहारो ।
पमदिदरे सुहुमुदए सुहुमो संजमगुणो होदि ॥४६७॥

बादरसंज्वलनोदये बादरसंयमत्रयं खलु परिहारः। प्रमत्तेतरयोः सूक्ष्मोदये सूक्ष्मः संयमगुणो भवति ॥

बादरसंज्वलनसंयमाविरोधिदेशघातिस्पर्द्धकोदयदोळु बादरंगळप्प सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसंयमंगळें ब संयमत्रयमक्कुमल्लि परिहारविशुद्धिसंयमं प्रमत्ताप्रमत्तरोळेयक्कुं उळिदेरडुमनिवृत्तिपर्य्यंतमप्पुवु । सूक्ष्मकृष्टिरूपसंज्वलनलोभोदयमागुत्तिरलु सूक्ष्मसांपरायसंयम-

प्रमत्तयो. सज्वलनकषायाणा सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणे क्षये उदयनिषेकादुपरितननिषेकाणा उदयाभावलक्षणे उपशमे बादरसज्वलनदेशघातिस्पर्धकस्य संयमाविरोधेनोदये सति सामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसयमा भवन्ति, सूक्ष्मकृष्ठिकरणानिवृत्तिपर्यन्तं बादरसंज्वलनोदयेनापूर्वानिवृत्तिकरणेऽपि सामायिकछेदोपस्थापनसंयमौ भवतः। सूक्ष्मकृष्टिगतसंज्वलनलोभोदयेन सूक्ष्मसापरायसंयम चारित्रमोहनीयसर्वोपशमेन उपशान्तकषाये निरवशेषक्षयेण क्षीणकषायादित्रये च यथाख्यातसंयमो भवतीत्यर्थ., इत्येतज्जिनैरेवोद्दिष्टम् ॥४६६॥ अमुमेवार्थं गाथाद्वयेनाह—

बादरसज्वलनसंयमाविरोधिदेशघातिस्पर्धकोदये बादरं सामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसंयमत्रयं भवति। तत्र परिहारविशुद्धिः प्रमत्ताप्रमत्तयोरेव, शेषद्वयं अनिवृत्तिपर्यन्तं भवति। सूक्ष्मकृष्टिगतसंज्वलनलोभोदये

स्पष्टीकरण इस प्रकार है—प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें संज्वलन कषायोंके सर्वघातीस्पर्धकोंके उदयका अभावरूप क्षय, तथा उदयरूप निषेकोंसे ऊपरके निषेकोंका उदयका अभावरूप उपशम तथा बादर संज्वलनके देशघाती स्पर्द्धकोंका संयमका विरोध न करते हुए उदय होनेपर सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि संयम होते हैं। किन्तु सूक्ष्मकृष्टि करनेरूप अनिवृत्तिकरण गुणस्थान पर्यन्त बादर संज्वलन कषायका उदय होनेसे अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणमें भी सामायिक और छेदोपस्थापना संयम होते हैं। सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त संज्वलन लोभका उदय होनेसे सूक्ष्म सम्पराय संयम होता है। सम्पूर्ण चारित्रमोहका उपशम होनेपर उपशान्तकषायमें और क्षय होनेपर क्षीणकषाय, सयोगकेवली और अयोगकेवली गुणस्थानोंमें यथाख्यातसंयम होता है ॥४६६॥

इसी अर्थको दो गाथाओंसे कहते हैं—

बादर संज्वलन कषायके देशघाती स्पर्धकोंका, जो संयमके विरोधी नहीं हैं, उदय होते हुए सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ये तीन संयम होते हैं। इनमें-से परिहारविशुद्धि तो प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें ही होता है। शेष दोनों अनिवृत्तिकरण

गुणमक्कुं ।

जहखादसंजमो पुण उवसमदो होदि मोहणीयस्स ।
खयदो वि य सो णियमा होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥४६८॥

यथाख्यातसंयमः पुनरुपशमाद्भवति मोहनीयस्य । क्षयतोपि च स नियमाद् भवति इति जिनैर्न्निद्दिष्टं ॥

यथाख्यातसंयमं मत्ते मोहनीयवुपशमदिंदमक्कुं । मोहनीयनिरवशेषक्षयदिंदमुं आ यथाख्यातसंयमं नियमदिंदमक्कुमेंदितु जिनरुगळिंदं पेळल्पट्टुदु ।

तदियकसायुदयेण य विरदाविरदो गुणो हवे जुगवं ।
बिदियकसायुदयेण य असंजमो होदि णियमेण ॥४६९॥

तृतीयकषायोदयेन च विरताविरतगुणो भवेद्युगपत् । द्वितीयकषायोदयेन च असंयमो भवति नियमेन ॥

प्रत्याख्यानावरणतृतीयकषायोदयदिंदं विरताविरतगुणमोम्मोंदलोळेयक्कुं । संयममुमसंयममुमोम्मोंदलोळेयक्कुमदुकारणमागि सम्यग्मिथ्यादृष्टियंतंते देशसंयतनुंमिश्रसंयमियक्कुमेंबुदत्थं । द्वितीयकषायोदयदोळप्रत्याख्यानकषायोदयदोळसंयमं नियमदिंदं मक्कुं ।

संगहिय सयलसंजममेयजममणुत्तरं दुरवगम्मं ।
जीवो समुव्वहंतो सामाइयसंजदो होदि ॥४७०॥

संगृह्य सकलसंयममेकयममनुत्तरं दुरवगम्यं । जीवःसुमुद्वहन् सामायिकसंयमो भवति ॥

संगृह्य सकलसंयमं व्रतधारणादिपंचविधमप्पसंयममं युगपत्सर्वसावद्याद्विरतोस्मि येंदितु संग्रहिसि संक्षेपिसि एकयमं भेदरहितसकलसावद्यनिवृतिस्वरूपमप्प एकयमुमं अनुत्तरं असदृशं

सूक्ष्मसापरायसयमगुणो भवति ॥४६७॥

स यथाख्यातसयम. पुनः मोहनीयस्योपशमतः निरवशेषक्षयतश्च नियमेन भवतीति जिनैरुक्तम् ॥४६८॥

प्रत्याख्यानकषायोदयेन विरताविरतगुणो युगपद् भवति, संयमासंयमयोर्युगपत्सभवात् । सम्यग्मिथ्यादृष्टिवद्देशमयतोऽपि मिश्रसंयमीत्यर्थ. । अप्रत्याख्यानकषायोदये असयमो नियमेन भवति ॥४६९॥

सकलसयम—व्रतधारणादिपञ्चविधं युगपत्सर्वसावद्याद्विरतोऽस्मीति संगृह्य–संक्षिप्य, एकयमं–भेदरहित-

---

पर्यन्त होते है । सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त संज्वलन लोभका उदय होते हुए सूक्ष्म साम्पराय नामक संयमगुण होता है ॥४६७॥

यथाख्यात संयम नियमसे मोहनीयके उपशमसे अथवा सम्पूर्ण क्षयसे होता है ऐसा जिनदेवने कहा है ॥४६८॥

तीसरी प्रत्याख्यान कषायके उदयसे एक साथ विरतअविरतरूप गुण होता है क्योंकि संयम और असंयम एक साथ होते हैं । अर्थात् जैसे तीसरे गुणस्थानमें सम्यक्त्व और मिथ्यात्व मिले-जुले होते हैं वैसे ही देशसंयत नामक पंचम गुणस्थानमें संयम और असंयम मिला हुआ होता है । दूसरी अप्रत्याख्यान कषायके उदयमें नियमसे असंयम होता है ॥४६९॥

व्रतधारण आदि रूप पाँच प्रकारके सकल संयमको एक साथ 'मैं समस्त सावद्यसे विरत हूँ' इस प्रकार संगृहीत करके एक यम रूपसे धारण करना सामायिक संयम है ।

मिगिंळिनिल्लदुवं दुगम्यं दुःखेन महता कष्टेन गम्यं प्राप्यं एवंविधमप्प सामायिकमं समुद्वहन् जीवः कैकोंडु नडसुवंतप्पासन्नभव्यजीवं सामायिकसंयमो भवति। सामायिकः संयमोऽस्यास्मिन्वा सामायिकसंयमः सामायिकसंयममनुळ्ळ सामायिकसंयमनेंबनक्कुं।

छेत्तूण य परियायं पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं।
पंचजमे धम्मे सो छेदोवट्ठावगो जीवो ॥४७१॥

छित्वा च पर्य्यायं पुराणं यः स्थापयति आत्मानं। पंचयमे धर्म्मे स च्छेदोपस्थापको जीवः॥

छित्वा पुराणं पर्य्यायं सामायिकसंयतनागिर्द्दु बळिकं सावद्यव्यापारंगळगे संदिर्द्दंतप्पजीवं प्राक्तनसावद्यव्यापारपर्य्यायमं प्रायश्चित्तंगळिदं छित्वा च्छेदिसि यः आवनोर्व्वं आत्मानं तन्नं पंचयमे धर्म्मे व्रतधारणादिपंचप्रकारसंयमरूपधर्म्मदोलु स्थापयति नेलेगोलिसुगुं सः जीवः आ जीवं च्छेदोपस्थापकः च्छेदोपस्थापनासंयतनक्कुं। च्छेदेनोपस्थापनं च्छेदोपस्थापनं। प्रायश्चित्ताचरणेनोपस्थापनं च्छेदोपस्थापनं यस्य स च्छेदोपस्थापकः एंदिनु निरुक्तिलक्षणसिद्धमक्कुं। अथवा प्रायश्चित्तंगळिदं ता माडिद दोषं पोगदोडे मुन्नं ता माडिद तपमनादोषक्केतक्कुदं च्छेदिसि किरियनागि तन्नं मत्ता निरवद्यसंयमदोळु स्थापिसुवातनुं च्छेदोपस्थापनसंयतनक्कुं। स्वतपसि च्छेदे सति उपस्थापनं यस्यासौ च्छेदोपस्थापकः एंदितिल्लि अधिकरणव्युत्पत्तियक्कुं।

पंचसमिदो तिगुत्तो परिहरइ सदा वि जो हु सावज्जं।
पंचेक्कजमो पुरिसो परिहारयसंजदो सो हु ॥४७२॥

पचसमितस्त्रिगुप्तः परिहरति सदापि यः खलु सावद्यं। पंचैकयमः पुरुषः परिहारसंयतः स खलु॥

सकलसावद्यनिवृत्तिरूपं, अनुत्तरं–असदृशं, संपूर्णं, दुरवगम्यं–दुःखेन प्राप्यं तत्सामायिकं समुद्वहन् जीव. सामायिकसयमः–सामायिकसयमसंयुक्तो भवति ॥४७०॥

सामायिकसंयतो भूत्वा प्रच्युत्य सावद्यव्यापारप्रतिपन्नो यो जीव. पुराण–प्राक्तनं सावद्यव्यापारपर्याय प्रायश्चित्तैश्छित्वा आत्मानं व्रतधारणादिपञ्चप्रकारसंयमरूपधर्मे स्थापयति स छेदोपस्थापनसंयतः स्यात्। छेदेन प्रायश्चित्ताचरणेन उपस्थापन यस्य स छेदोपस्थापन इति निरुक्ते.। अथवा प्रायश्चित्तेन स्वकृतदोषपरिहाराय पूर्वकृततपस्तद्दोषानुसारेण छित्वा आत्मान तन्निरवद्यसंयमे स्थापयति स छेदोपस्थापकसंयत, स्वतपसि छेदे सति उपस्थापनं यस्य स छेदोपस्थापन इत्यधिकरणव्युत्पत्ते ॥४७१॥

अर्थात् सामायिक संयम भेदरहित सकल पापोंसे निवृत्तिरूप है। यह अनुत्तर है अर्थात् इसके समान अन्य नहीं है, सम्पूर्ण है और दुरवगम्य है अर्थात् बड़े कष्टसे यह प्राप्त होता है। उस सामायिकको धारण करनेवाला जीव सामायिक संयमी होता है ॥४७०॥

सामायिक संयमको धारण करनेके पश्चात् उससे च्युत होकर सावद्य क्रियामें लगा जो जीव इस पुराने सावद्यव्यापाररूप पर्यायका प्रायश्चित्तके द्वारा छेदन करके अपनेको व्रतधारण आदि पाँच प्रकारके संयमरूप धर्ममें स्थापन करता है वह छेदोपस्थापना संयमवाला होता है। छेद अर्थात् प्रायश्चित्त करनेके द्वारा जिसका उपस्थापन होता है वह छेदोपस्थापन है ऐसी निरुक्ति है। अथवा प्रायश्चित्तके द्वारा अपने किये हुए दोषोंको दूर करनेके लिए पूर्वकृत तपको उसके दोषोंके अनुसार छेदन करके जो आत्माको निर्दोष संयममें स्थापित करता है वह छेदोपस्थापक संयमी है। अपने तपका छेद होनेपर जिसका उपस्थापन होता है वह छेदोपस्थापन है। इस प्रकार अधिकरणपरक व्युत्पत्ति है ॥४७१॥

पंचसमितयोऽस्यसंतीति पंचसमितः। पंचसमितियुक्तनुं तिस्रो गुप्तयोऽस्मिन्निति त्रिगुप्तः त्रिगुप्तिगळोळ्कूडिदनु सदापि सर्व्वदापि एल्ला कालमुं सावद्यं प्राणिवधमं परिहरति परिहरिसुगुं। यः आवनोव्वं पंचैकयमः पंचैकयमनुळ्ळ पुरुषः पुरुषनु सः आतं परिहारकसंयतः खलु परिहार-विशुद्धिसंयतनक्कुं स्फुटमागि।

तीसं वासो जम्मे वासपुधत्तं खु तित्थयरमूले।
पच्चक्खाणं पढिदो संझूणदुगाउयविहारो ॥४७३॥

त्रिंशद्वर्षो जन्मनि वर्षपृथक्त्वं खलु तीर्त्थंकरमूले। प्रत्याख्यानं पठितः संध्योनद्विगव्यूति-विहारः॥

जन्मदोळु त्रिंशद्वर्षमनुळ्ळं सर्व्वदा सुखियप्पं बदु दीक्षेगोंडु वर्षपृथक्त्वं बरं तीर्त्थंकर श्रीपादमूलदोळु प्रत्याख्यानमें बो भत्तनय पूर्व्वमं पठियिसिदातं परिहारविसुद्धिसंयममं कैकोंडु संध्यात्रयन्यूनसर्व्वकालदोळरडु क्रोशप्रमाणविहारमनुळ्ळं रात्रियोळ्विहाररहितनुं प्रावृट्काल-नियममिल्लदनुं परिहारविशुद्धिसंयमनक्कुं। परिहरणं परिहारः प्राणिवधान्निवृत्तिस्तेन परि-हारेण विशिष्टा शुद्धिर्य्यस्मिन् स परिहारविशुद्धिस्संयमो यस्य स परिहारविशुद्धिसंयमः एंदितु परिहारविशुद्धिसंयमंगे जघन्यकालमंतर्म्मुहूर्त्तमक्कुमेकेंदोडे परिहारविशुद्धिसंयममं पोर्द्दि जघन्य-कालपर्य्यंतमिर्द्दन्यगुणस्थानमं पोर्द्दिदंगे तदंतर्म्मुहूर्त्तकालसंभवमक्कुमप्पुदरिदं। उत्कृष्टदिदमष्ट-त्रिंशद्वर्षन्यूनपूर्व्वकोटिवर्षमक्कुमेकेंदोडे पुट्टिदविनं मोदल्गोंडु मूवत्तु वर्षबरं सर्व्वदा सुखियागि कालमं कळेदु संयममं पोर्द्दि मेले वर्षपृथक्त्वं बरं तीर्त्थंकरश्रीपादमूलदोळु प्रत्याख्यानामधेय-

पञ्चसमितिसमेतः त्रिगुप्तियुतः सदापि प्राणिवध परिहरति, यः पञ्चाना सामायिकादीनां मध्ये परिहार-विशुद्धिनामैकसयम पुरुष सः परिहारविशुद्धिसयत स्फुट भवति ॥४७२॥

जन्मनि त्रिशद्वार्षिक सर्वदा सुखी सन्नागत्य दीक्षा गृहीत्वा वर्षपृथक्त्वपर्यन्तं तीर्थंकरश्रीपादमूले प्रत्याख्यानं नवमपूर्वं पठित. स परिहारविशुद्धिसयमं स्वीकृत्य संध्यात्रयोनसर्वकाले द्विक्रोशप्रमाणविहारी रात्रौ विहाररहित. प्रावृट्कालनियमरहित· परिहारविशुद्धिसंयतो भवति। परिहरण परिहारः, प्राणिवधान्निवृत्ति, तेन विशिष्टा शुद्धिर्यस्मिन् स परिहारविशुद्धि, स सयमो यस्य स परिहारविशुद्धिसंयम·, तस्य जघन्यकालोन्त-र्मुहूर्त·, जघन्येन तावत्कालमेव तत्र स्थित्वा गुणस्थानान्तराश्रयणात्। उत्कृष्ट. अष्टत्रिंशद्वर्षोनपूर्वकोटि., उत्पत्ति-

जो पाँच समिति और तीन गुप्तियोंसे युक्त होकर सदा ही प्राणिवधसे दूर रहता है वह सामायिक आदि पाँच संयमोंमें-से परिहारविशुद्धि नामक एक संयमको धारण करनेसे परिहारविशुद्धि संयमी होता है ॥४७२॥

जन्म से तीस वर्ष तक सर्वदा सुखपूर्वक रहते हुए उसे त्याग दीक्षा ग्रहण करके वर्षपृथक्त्वपर्यन्त तीर्थंकरके पादमूलमें जिसने प्रत्याख्यान नामक नौवें पूर्वको पढ़ा है वह परिहारविशुद्धि संयमको स्वीकार करके सदा काल तीनों सन्ध्याओंको छोड़कर दो कोस प्रमाण विहार करता है, रात्रिमें विहार नहीं करता, वर्षाकालमें उसके विहार न करनेका नियम नहीं रहता, वह परिहारविशुद्धि संयमी होता है। परिहरण अर्थात् प्राणिहिंसासे निवृत्तिको परिहार कहते हैं। उनसे विशिष्ट शुद्धि जिसमें है वह परिहारविशुद्धि है। वह संयम जिसके होता है वह परिहारविशुद्धि संयमी है। उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है क्योंकि कमसे कम इतने काल पर्यन्त ही उस संयममें रहकर अन्य गुणस्थानोंमें चला जाता है। उत्कृष्ट काल अड़तीस वर्ष कम एक पूर्व कोटि है क्योंकि उत्पत्ति दिनसे लेकर तीस वर्ष

मनो भत्तनेय पूर्व्वमं पठियिसि मत्ते परिहारविशुद्धिसंयममं पोर्द्दिवंगे तदुत्कृष्टकालं संभविसुगुमप्पुर्वारिवं। 'परिहारर्द्धिसमेतः षड्जीवनिकायसंकुले विहरन्। पयसेव पद्मपत्रं न लिप्यते पापनिवहेन'।

अणुलोहं वेदंतो जीवो उवसामगो व खवगो वा।
सो सुहुमसंपराओ जहखाएणूणवो किंचि ॥४७४॥

अणुलोभं वेदयमानो जीवः उपशमको वा क्षपको वा। स सूक्ष्मसांपरायो यथाख्यातेनोनः किंचित् ॥

सूक्ष्मलोभकृष्टिगतानुभागमनावनोर्व्वननु भविसुत्तं जीवनु उपशमकनागलि मेणु क्षपकनागलि मेणु सः आ जीवं सूक्ष्मसांपरायनें बनक्कुं। सूक्ष्मः सांपरायः कषायो यस्य स सूक्ष्मसांपरायः एंदी यन्वर्त्थनामविशिष्टमहामुनि यथाख्यातसंयमिगलोडने किंचिदूननक्कुं।

उवसंते खीणे वा असुहे कम्मम्मि मोहणीयम्मि।
छदुमट्ठो व जिणो वा जहखादो संजदो सो दु ॥४७५॥

उपशांते क्षीणे वा अशुभे कर्म्मणि मोहनीये छद्मस्थो वा जिनो वा यथाख्यातसंयतः स तु ॥

अशुभमप्प मोहनीयकर्म्मंमुपशांतमागुत्तिरलु मेणु क्षीणमागुत्तं विरलावनोर्व्वं छद्मस्थं उपशांतकषायनागलि मेणु क्षीणकषायछद्मस्थनागलि मेणु जिनो वा सयोगकेवलियुमयोगकेवलियुं मेणागलि सः आ जीवं तु मत्ते यथाख्यातसंयतनें बनक्कुं। मोहस्य निरवशेषस्योपशमात्क्षयाच्चा-

---

दिवसादारभ्य त्रिंशद्वर्षाणि सर्वदा सुखेन नीत्वा संयम प्राप्य वर्षपृथक्त्वं तीर्थंकरपादमूले प्रत्याख्यान पठितस्य तदङ्गीकरणात् ॥

उक्तं च—

परिहारर्धिसमेतः षड्जीवनिकायसंकुले विहरन्।
पयसेव पद्मपत्रं न लिप्यते पापनिवहेन ॥४७३॥

सूक्ष्मलोभकृष्टिगतानुभागमनुभवन् यः उपशमकः क्षपको वा स जीवः सूक्ष्मसांपरायः स्यात्। सूक्ष्मःसांपरायः कषायो यस्येत्यन्वर्थनामा महामुनिः यथाख्यातसंयमिभ्यः किंचिन्न्यूनो भवति ॥४७४॥

अशुभमोहनीयकर्मणि उपशान्ते क्षीणे वा यः उपशान्तक्षीणकषायछद्मस्थः सयोगायोगजिनो वा, सः, तु—पुनः, यथाख्यातसंयतो भवति। मोहस्य निरवशेषस्य उपशमात् क्षयाद्वा आत्मस्वभावावस्थापेक्षालक्षणं

सदा सुखसे बिताकर संयम धारण करके वर्षपृथक्त्व तक तीर्थंकरके पादमूलमें प्रत्याख्यान पढ़नेके पश्चात् परिहारविशुद्धि संयम स्वीकार करना होता है। कहा है—'परिहारविशुद्धि ऋद्धिसे संयुक्त जीव छह कायके जीवोंसे भरे स्थानमें विहार करते हुए भी पाप समूहसे वैसे ही लिप्त नहीं होता जैसे कमलका पत्ता पानीमें रहते हुए भी पानीसे लिप्त नहीं होता' ॥४७३॥

सूक्ष्म कृष्टिको प्राप्त लोभ कषायके अनुभागको अनुभव करनेवाला उपशमक या क्षपक जीव सूक्ष्म साम्पराय होता है। सूक्ष्म साम्पराय अर्थात् कषाय जिसकी है वह सार्थक नामवाला महामुनि यथाख्यात संयमियोंसे किंचित् ही हीन होता है ॥४७४॥

अशुभ मोहनीय कर्मके उपशान्त या क्षय हो जानेपर उपशान्त कषाय और क्षीण कषाय गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ अथवा सयोगी और अयोगी जिन यथाख्यात संयमी होते हैं।

---

१. क °गलिदं कि°।

त्मस्वभावावस्थापेक्षालक्षणं यथाख्यातं चारित्रमित्याख्यायते ।

पंचतिहिचउविहेहि य अणुगुणसिक्खावएहि संजुत्ता ।
उच्चंति देसविरया सम्माइट्ठी झलियकम्मा ॥४७६॥

पंचत्रिचतुर्व्विधैश्च अणुगुणशिक्षाव्रतैः संयुक्ताः । उच्यंते देशविरताः सम्यग्दृष्टयो झटितकर्म्माणः ॥

पंचविधाणुव्रतंगळिदं त्रिविधगुणव्रतंगळिदं चतुर्व्विधशिक्षाव्रतंगळिदं संयुक्तरप्प सम्यग्दृष्टिगळु कर्म्मनिर्ज्जरेयोळ्कूडिदवर्गळु देशविरतरें दु परमागमदोळ्पेळल्पट्टरु ।

दंसणवदसामायियपोसहसचित्तराइभत्ते य ।
बम्हारंभपरिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदेदे ॥४७७॥

दर्शनिकव्रतिकसामायिकप्रोषधोपवाससचित्तविरत-रात्रिभक्तविरतब्रह्मचार्य्यारंभविरतपरिग्रहविरतानुमतिविरतोद्दिष्टविरताः देशविरता एते ॥

इल्लि नामैकदेशो नाम्नि वर्त्तते एंबी न्यायदिदं छाये माडल्पट्टुदु । आ देशविरतभेदंगळ्पंनों दप्पुवदें तें वोडे दर्शनिकनुं व्रतिकनुं सामायिकनुं प्रोषधोपवासनुं सचित्तविरतनुं रात्रिभक्तविरतनुं ब्रह्मचारियुं आरंभविरतनुं परिग्रहविरतनुमनुमतिविरतनुमुद्दिष्टविरतनुमें दितिल्लि दर्शनिकनेंबं ।

"पंचुंबरसहियाइं सत्तइ वसणाइ जो विवज्जेइ ।
सम्मत्तविसुद्धमई सो दंसणसावयो भणियो ॥" [वसु. श्रा ५७]

यथाख्यातचारित्रमित्याख्यायते ॥४७५॥

पञ्चत्रिचतुरणुगुणशिक्षाव्रतैः संयुक्तसम्यग्दृष्टयः कर्मनिर्जरावन्तः ते देशविरताः इति परमागमे उच्यन्ते ॥४७६॥

अत्र नामैकदेशो नाम्नि वर्तते इति नियमाद् गाथार्थो व्याख्यायते । दर्शनिको, व्रतिकः, सामायिकः, प्रोषधोपवासः, सचित्तविरत, रात्रिभक्तविरतः, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरतः, अनुमतिविरतः, उद्दिष्टविरतश्चेत्येकादशैते विरतभेदाः । तत्र–"पञ्चुबरसहियाइं सत्तइ वसणाणि जो विवज्जेई । सम्मत्तविसुद्धमई सो दंसणसावओ भणिओ ।" (वसु श्रा ५७) इत्यादिलक्षणानि ग्रन्थान्तरेऽवगन्तव्यानि ॥४७७॥

समस्त मोहनीय कर्मके उपशम अथवा क्षयसे आत्मस्वभावकी अवस्थारूप लक्षणवाला यथाख्यात चारित्र कहलाता है ॥४७५॥

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोंसे संयुक्त सम्यग्दृष्टी जो कर्मोंकी निर्जरा करते हैं उन्हें परमागममें देशविरत कहते हैं ॥४७६॥

यहाँ नामका एकदेश नामका वाचक होता है इस नियमके अनुसार गाथाका अर्थ कहते हैं—दर्शनिक, व्रतिक, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तविरत, रात्रिभक्तविरत, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत ये ग्यारह देशविरतके भेद हैं। पाँच उदुम्बरादिकके साथ सात व्यसनोंको जो छोड़ता है उस विशुद्ध सम्यक्त्वधारीको दर्शनिक श्रावक कहते हैं। इत्यादि इन भेदोंके लक्षण अन्य ग्रन्थोंसे जानना ॥४७७॥

इत्यादिलक्षणंगळु देशविरतरुगळगे ग्रंथांतरदोळरियल्पडुवुवु ।

जीवा चोद्दसभेया इंदियविसया तहट्ठवीसं तु ।
जे तेसु णेव विरया असंजदा ते मुणेयव्वा ॥४७८॥

जीवाश्चतुर्दशभेदाः इंद्रियविषयास्तथाष्टाविंशतिः तु । ये तेषु नैव विरताः असंयतास्ते मंतव्याः ॥

पदिनाल्कं जीवभेदंगळोळं तु मत्तं इंद्रियविषयंगळिप्पत्तें टुभेदं गळोळमार्क्केलंबरु विरतरल-दवर्ग्गळु असंयतरें दरियल्पडुवरु ।

पंचरस पंचवण्णा दो गंधा अट्ठफाससत्तसरा ।
मणसहिदट्ठावीसा इंदियविसया मुणेदव्वा ॥४७९॥

पंचरसाः पंचवर्णाः द्वौ गंधौ अष्टस्पर्शाः सप्तस्वराः । मनः सहिताष्टविंशतिरिंद्रियविषया मंतव्याः ॥

तिक्तकटुकषायाम्लमधुरमें ब पंचरसंगळुं श्वेतपीतहरितारुणकृष्णमें ब पंचवर्णंगळुं सुगंध-दुर्गंधमें बरडु गंधमुं मृदुकर्कशगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षमें ब अष्टस्पर्शंगळुं षड्जऋषभगांधार मध्यम-पंचमधैवतनिषादमें ब सरिगमपध निगळप्पसप्तस्वरंगळुं कूडिविंतिद्रियविषयगळिप्पत्तेळु मनोविषयमों दितु इंद्रियनोइंद्रियविषयंगळष्टाविंशतिप्रमितंगळें बु मंतव्यंगळक्कुं ।

अनंतरं संयममार्ग्गणेयोळु जीवसंख्येयं पेळवपं :—

पमदादिचउण्हजुदी सामाइयदुगं कमेण सेसतियं ।
सत्तसहस्सा णवसय णवलक्खा तीहि परिहीणा ॥४८०॥

प्रमत्तादिचतुर्णां युतिः सामायिकद्विकं क्रमेण शेषत्रयं । सप्तसहस्रं नवशतं नवलक्षं त्रिभिः परिहीनानि ॥

चतुर्दशजीवभेदाः, तु—पुनः इन्द्रियविषयाः अष्टाविंशतिः तेषु ये नैव विरतास्ते असयता इति मन्तव्याः ॥४७८॥

रसाः—तिक्तकटुककषायाम्लमधुरा पञ्च । वर्णाः—श्वेतपीतहरितारुणकृष्णाः पञ्च । गन्धौ सुगन्धदुर्गन्धौ द्वौ । स्पर्शाः मृदुकर्कशगुरुलघु-शीतोष्णस्निग्धरूक्षाः अष्टौ । स्वराः—षड्ज-ऋषभ-गान्धार-मध्यम-पञ्चम-धैवत-निषादाः सरिगमपधनिरूपाः सप्त एते इन्द्रियविषयाः सप्तविंशतिः । मनोविषय एकः, एवमष्टाविंशतिर्मन्तव्यः ॥४७९॥ अथ सयममार्गणायां जीवसख्यामाह—

चौदह प्रकारके जीव और अठाईस इन्द्रियोंके विषय, इनमें जो विरत नहीं हैं वे असंयमी जानना ॥४७८॥

तीता, कटुक, कसैला, खट्टा, मीठा ये पाँच रस हैं। श्वेत, पीला, हरा, लाल, काला ये पाँच वर्ण हैं। सुगन्ध, दुर्गन्ध ये दो गन्ध हैं। कोमल, कठोर, भारी, हल्का, शीत, उष्ण, चिकना, रूखा ये आठ स्पर्श हैं। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद ये सा रे ग म प ध नि रूप सात स्वर हैं। ये सत्ताईस इन्द्रियविषय हैं और एक मनका विषय है। इस प्रकार अठाईस विषय जानना ॥४७९॥

अब संयम मार्गणामें जीवोंकी संख्या कहते हैं—

प्रमत्तादिचतुर्णांयुतिः सामायिकद्विकं प्रमत्तर संख्ये ५९३९८२०६। अप्रमत्तरसंख्ये २९६९९१०३। उपशमकापूर्व्वकरणर। २९९। उपशमकानिवृत्तिकरणरु २९९। क्षपकापूर्व्वकरणरु ५९८। क्षपकानिवृत्तिकरणरु ५९८। इंतु प्रमत्तादिचतुर्ग्गुणस्थानवर्त्तिगळ युति प्रत्येकसामायिक-संयमिगळसंख्येयुं च्छेदोपस्थापनसंयमिगळ संख्ययक्कुमेकेंदोडे सामायिकसंयमिगळेनिबरनिबरे च्छेदोपस्थापनसंयमिगळप्पुदरिंदं। ८२०९९१०३। ८९०२९१०३। क्रमदिद शेषत्रयं परिहार-विशुद्धिसंयमिगळ संख्येयु सूक्ष्मसांपरायसंयमिगळ संख्येयुं यथाख्यातसंयमिगळ संख्येयुं त्रिरूपोन-सप्तसहस्रमुं ६९९७। त्रिरूपोननवशतमुं ८९७। त्रिरूपोननवलक्षमुमक्कुं। ८९९९९७।

पल्लासंखेज्जदिमं विरदाविरदाण दव्वपरिमाणं।
पुव्वुत्तरासिहीणो संसारी अविरदाण पमा ॥४८१॥

पल्यासंख्येयभागो विरताविरतानां द्रव्यप्रमाणं। पूर्व्वोक्तराशिहीनः संसारी अविरतानां प्रमा॥

पल्यासंख्यातैकभागं देशसंयतजीवद्रव्यप्रमाणमक्कु $\frac{प}{a\ a\ ४\ a}$ मी पूर्व्वोक्तषट्राशिविहीन-

प्रमत्ताः ५, ९३, ९८, २०६ अप्रमत्ताः २, ९६, ९९, १०३, उपशमकाऽपूर्वकरणाः २९९, उपशम-कानिवृत्तिकरणा. २९९, क्षपकापूर्वकरणाः ५९८, क्षपकानिवृत्तिकरणाः ५९८, एषा चतुर्णां युतिः प्रत्येकं सामायिकछेदोपस्थापनसयमिसख्या भवति उभयत्र समसख्यात्वात् ८, ९०, ९९, १०३। ८, ९०, ९९, १०३। परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसापराययथाख्यातसयमिसख्या क्रमेण त्रिरूपोनसप्तसहस्रं ६९९७ त्रिरूपोननवशतं ८९७, त्रिरूपोननवलक्षं ८९९९९७ भवति ॥४८०॥

पल्यासख्यातैकभागो देशसयतजीवद्रव्यप्रमाणं भवति $\frac{प}{a\ a\ ४\ a}$ एतत्पूर्वोक्तषड्राशिविहीनससारिराशिरेव

प्रमत्तादि चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका जितना जोड़ है उतने ही सामायिक और छेदोपस्थापना संयमी होते हैं। सो प्रमत्तसंयत पाँच करोड़ तिरानबे लाख, अठानबे हजार दो सौ छह ५९३ ९८ २०६, अप्रमत्तसंयत दो करोड़ छियानबे लाख, निन्यानबे हजार एक सौ तीन २९६९९१०३, उपशम श्रेणीवाले अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती दो सौ निन्यानबे २९९, उपशम श्रेणिवाले अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती दो सौ निन्यानबे २९९, उपशम श्रेणिवाले अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती दो सौ निन्यानबे २९९, क्षपक श्रेणिवाले अपूर्वकरण पाँचसौ अठानबे, क्षपक-श्रेणिवाले अनिवृत्तिकरण पाँचसौ अठानबे ५९८ इन सबका जोड़ आठ करोड़, नब्बे लाख, निन्यानबे हजार एक सौ तीन ८९०९९१०३ इतने जीव सामायिक संयमी और इतने ही छेदोपस्थापना संयमी होते हैं। दोनोंकी संख्या समान होती है। परिहार विशुद्धि संयतोंकी संख्या तीन कम सात हजार ६९९७ है। सूक्ष्मसाम्पराय संयमियोंकी संख्या तीन कम नौ सौ ८९७ है। यथाख्यात संयतोंकी संख्या तीन कम नौ लाख ८९९९९७ है ॥४८०॥

पल्यके असंख्यातवें भाग देश संयमी जीवोंका प्रमाण है। इन छहों राशियोंको

संसारिराशिअविरतप्रमाणमक्कु :—

सामायिक	छेदोपस्थापन	परिहार	सूक्ष्म	यथाख्यात	देशसंय =	संय =
८९०९९१०३	८२०९९१०३	६९९७	८९७	८९९९९७	प a a ४ a	१३ —

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित पुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु मंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटवृत्तिजीवतत्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु त्रयोदशं संयममार्गणाधिकारं निगदितमाय्तु ॥

अविरतानां प्रमाण भवति । १३–॥४८१॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु संयममार्गणाप्ररूपणा नाम त्रयोदशोऽधिकारः ॥१३॥

संसारी जीवोंकी राशिमें भाग देनेपर जो शेष रहे उतना ही असंयमियोंका प्रमाण होता है ॥४८१॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से संयममार्गणा प्ररूपणा नामक तेरहवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

१ म प्रतौ गद्यमिदं नास्ति ।

दर्शन-मार्गणा ॥१४॥

संयममार्गणानंतरं दर्शनमार्गणेयं पेळ्दपं :—

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णये समये ॥४८२॥

यत्सामान्यग्रहणं भावानां नैव कृत्वाऽऽकारमविशेष्यार्थान्दर्शनमिति भण्यते समये ॥

भावानां सामान्यविशेषात्मकबाह्यपदार्थंगळ आकारं नैव कृत्वा भेदग्रहणमं माडदे यत्सामान्यग्रहणं आवुदोंदु स्वरूपमात्रमं कैकोळ्वुददु दर्शनमेंदितु परमागमदोळु पेळल्पट्टुदु । वस्तुस्वरूपमात्रग्रहणमेंतेंदोडे अर्त्थाविशेष्य बाह्यार्त्थंगळं जातिक्रियागुणप्रकारंगळिंदं विकल्पिसदे स्वपरसत्तावभासनं दर्शनमेंदितु पेळल्पट्टुदें बुदत्थं । मत्तमीयर्त्थमने विशदं माडिदपं—

भावाणं सामण्णविसेसयाणं सरूवमेत्तं जं ।
वण्णणहीणग्गहणं जीवेण य दंसणं होदि ॥४८३॥

भावानां सामान्यविशेषात्मकानां स्वरूपमात्रं यद्वर्णनहीनग्रहणं जीवेन च दर्शनं भवति ॥

सामान्यविशेषात्मकंगळप्प पदार्त्थंगळ आवुदोंदु स्वरूपमात्रं विकल्परहितमागि जीवनिंदं स्वपरसत्तावभासनमदु दर्शनमें बुदक्कुं । पश्यति दृश्यतेऽनेन दर्शनमात्रं वा दर्शनमेंदितु कर्तृकरण-

---

अनन्तानन्दससारसागरोत्तारसेतुकम् ।
अनन्तं तीर्थकर्तारं वन्देऽनन्तमुदे सदा ॥१४॥

अथ सयममार्गणा व्याख्याय दर्शनमार्गणा व्याख्याति—

भावाना सामान्यविशेपात्मकबाह्यपदार्थाना आकारं—भेदग्रहण, अकृत्वा यत्सामान्यग्रहण—स्वरूपमात्रावभासन तद् दर्शनमिति परमागमे भण्यते । वस्तुस्वरूपमात्रग्रहणं कथम् ? अर्थान्—बाह्यपदार्थान् अविशेष्य—जातिक्रियाग्रहणविकारैरविकल्प्य स्वपरसत्तावभासन दर्शनमित्यर्थ ॥४८२॥ अमुमेवार्थं विशदयति—

भावाना सामान्यविशेषात्मकपदार्थाना यत्स्वरूपमात्रं विकल्परहित यथा भवति तथा जीवेन स्वपर-

---

संयममार्गणाको कहकर दर्शन मार्गणाको कहते हैं—

भाव अर्थात् सामान्य विशेषात्मक पदार्थोंके आकार अर्थात् भेदग्रहण न करके जो सामान्य ग्रहण अर्थात् स्वरूपमात्रका अवभासन है, उसे परमागममें दर्शन कहते हैं। वस्तु-स्वरूपमात्रका ग्रहण कैसे करता है ? अर्थात् पदार्थोंके जाति, क्रिया, गुण आदि विकारोंका विकल्प न करते हुए अपना और अन्यका केवल सत्तामात्रका अवभासन दर्शन है ॥४८२॥

इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं—

सामान्य विशेषात्मक पदार्थोंका विकल्परहित स्वरूपमात्र जैसा है वैसा जीवके साथ स्वपर सत्ताका अवभासन दर्शन है। जो देखता है, जिसके द्वारा देखा जाता है या देखना

भावसाधनं दर्शनमरियल्पडुवुदु ।

अनंतरं चक्षुर्दर्शन अचक्षुदर्शनंगळ स्वरूपमं पेळदपं :—

चक्खूण जं पयासइ दिस्सइ तं चक्खुदंसणं वेंति ।
सेसिंदियप्पयासो णायव्वो सो अचक्खु त्ति ।।४८४।।

चक्षुषा यत्प्रकाशते दृश्यते तच्चक्षुर्दर्शनं ब्रुवंति । यः शेषेंद्रियप्रकाशो ज्ञातव्यः सोऽचक्षुदर्शनमिति ॥

नयनंगळावुदोंदु प्रतिभासिसुतमिर्द्दपुदु काणल्पडुत्तिर्द्दपुदु तद्विषयप्रकाशनमे चक्षुर्द्दर्शनमेंदितु गणधरदेवादिदिव्यज्ञानिगळु पेळ्वरु । शेषेंद्रियंगळावुदोंदु तोरुत्तिर्द्दपुददु अचक्षुदर्शनमेंदितु ज्ञातव्यमक्कुं ।

परमाणु आदियाइं अंतिमखंधंति मुत्तिदव्वाइं ।
तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइ पच्चक्खं ।।४८५।।

परमाण्वादिकान्यंतिमस्कंधपर्य्यंतानि मूर्त्तद्रव्याणि । तदवधिदर्शनं पुनर्यत्पश्यति तानि प्रत्यक्ष ॥

परमाणुवादियागि महास्कंधपर्य्यंतमप्प मूर्त्तद्रव्यंगळवेनितनितुमनावुदोंदु दर्शनं मरे प्रत्यक्षमागि काणुमदवधिदर्शनमेंबुदक्कुं ।

बहुविहबहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्मि खेत्तम्मि ।
लोगालोगवितिमिरो जो केवलदंसणुज्जोओ ।।४८६।।

बहुविधबहुप्रकारा उद्योताः परिमिते क्षेत्रे । लोकालोकवितिमिरो यः केवलदर्शनोद्योतः ॥

सत्तावभासन तद्दर्शन भवति । पश्यति दृश्यते अनेन दर्शनमात्रं वा दर्शनम् ।।४८३।। अथ चक्षुरचक्षुर्दर्शने लक्षयति—

चक्षुषो—नयनयो सबन्धि यत्सामान्यग्रहण प्रकाशते पश्यति तद्वा दृश्यते जीवेनानेन कृत्वा तद्वा तद्विषयप्रकाशनमेव तद्वा चक्षुर्दर्शनमिति गणधरदेवादयो ब्रुवन्ति । यश्च शेषेन्द्रियप्रकाशः स अचक्षुर्दर्शनमिति ।।४८४।।

परमाणोरारभ्य महास्कन्धपर्यन्त मूर्तद्रव्याणि पुन यद्दर्शन प्रत्यक्ष पश्यति तदवधिदर्शन भवति ।।४८५।।

मात्र दर्शन है ।।४८३।।

अब चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनके लक्षण कहते हैं—

दोनों नेत्र सम्बन्धी सामान्य ग्रहणको जो देखता है अथवा इस जीवके द्वारा देखा जाता है अथवा सामान्य मात्रका प्रकाशन दर्शन है, यह गणधरदेव आदि कहते हैं। शेष इन्द्रियोंका जो प्रकाश है वह अचक्षु दर्शन है ।।४८४।।

परमाणुसे लेकर महास्कन्ध पर्यन्त सब मूर्तिक द्रव्योंको जो प्रत्यक्ष देखता है वह अवधिदर्शन है ।।४८५।।

बहुविधंगळु बहुप्रकारंगळुमप्पबेळगुगलु चंद्रसूर्य्यरत्नादिप्रकाशंगळु लोकदोळपरिमितक्षेत्र दोळेयप्पुवाव बेळगुगळिदं पवणिसल्पडद लोकालोकंगळोळावुदोंदु विगततिमिरमप्पुददु केवल-दर्शनोद्योतमक्कुं ।

अनंतरं दर्शनमार्ग्गणेयोळु जीवसंख्येयं गाथाद्वयदिदं पेळदपं :—

जोगे चउरक्खाणं पञ्चक्खाणं च खीणचरिमाणं ।
चक्खूणमोहिकेवलपरिमाणं ताण णाणं व ॥४८७॥

योगे चतुरक्षाणां पंचाक्षाणां च क्षीणकषायचरमाणां । चक्षुषामवधिकेवलपरिमाणं तयोर्ज्ञानवत् ।

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि क्षीणकषायावसानमाद गुणस्थानवर्त्तिगळु शक्तिचक्षुर्द्दर्शनिगळेंदुं व्यक्तिचक्षुर्द्दर्शनिगळेंदुं । चक्षुर्द्दर्शनिगळुसंख्येयोळु द्विप्रकारमप्परल्लि लब्ध्यपर्य्याप्तकचतुरिंद्रियजीवंगळ संख्येयोळु पंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवंगळ संख्येगे संयोगमागुत्तिरलु शक्तिगतचक्षुर्द्दर्शनिगळ संख्येयक्कुं । पर्य्याप्तकचतुरिंद्रियजीवंगळुमंपर्याप्तकपंचेंद्रियजीवंगळ संख्येयुमं संयोगमं माडुत्तिरलु व्यक्तिगतचक्षुर्द्दर्शनिगळ संख्येयक्कुं । तच्छक्तिव्यक्तिगतचक्षुर्द्दर्शनिगळ संख्येयंतप्पल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुवुददेंतेंदोडे द्विचतुःपंचेंद्रियजीवंगळगेल्लमीयावल्यसंख्यातभक्त-प्रतरांगुलभाजितजगत्प्रतरमात्रं फलराशियागुत्तिरलु चतुःपंचेन्द्रियद्वयक्केनितु जीवंगळक्कुमेंदु

बहुविधा —तीव्रमन्दमध्यमादिभावेन अनेकविधा बहुप्रकाराश्चोद्योता. चन्द्रसूर्यरत्नादिप्रकारा लोके-परिमितक्षेत्रे एव भवन्ति तैः प्रकाशैरनुपमेय लोकालोकयोर्विगततिमिरो य. स केवलदर्शनोद्योतो भवति ॥४८६॥

अथ दर्शनमार्गणाया जीवसंख्या गाथाद्वयेनाह—

मिथ्यादृष्ट्यादय क्षीणकषायान्ताः शक्तिगतचक्षुर्दर्शनिनः व्यक्तिगतचक्षुर्दर्शनिनश्च । तत्र लब्ध्यपर्याप्तचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रिया शक्तिगतचक्षुर्दर्शनिन , पर्याप्तकचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियाः व्यक्तिगतचक्षुर्दर्शनिनः । तद्यथा— द्वित्रिचतु पञ्चेन्द्रियप्रमाण सर्व यद्यावल्यसख्यातभक्तप्रतराङ्गुलभाजितजगत्प्रतर तदा चतु.पञ्चेन्द्रियप्रमाणं

तीव्र, मन्द, मध्यम आदिके भेदसे अनेक प्रकारके चन्द्र, सूर्य, रत्न आदि सम्बन्धी उद्योत परिमित क्षेत्रको ही प्रकाशित करनेवाले हैं। उन प्रकाशोंकी उपमा जिसे नहीं दी जा सकती ऐसा जो लोक-अलोक दोनोंको प्रकाशित करता है वह केवल दर्शनरूप उद्योत है ॥४८६॥

अब दर्शन मार्गणामें जीवोंकी संख्या दो गाथाओंसे कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त जीव दो प्रकारके हैं, शक्तिरूप चक्षुदर्शनवाले और व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनवाले। उनमें-से लब्ध्यपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तो शक्तिरूप चक्षुदर्शनवाले हैं और पर्याप्तक चतुरिन्द्रिय व्यक्तिरूप चक्षुदर्शन वाले हैं। यदि दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंका प्रमाण आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित प्रतरांगुल और उससे भाजित जगत्प्रतर प्रमाण है तो चतुरिन्द्रिय

१. भेदेनानेकप्रकारा उद्योताः प्रकाशविशेषा लोके परिमितक्षेत्र एव प्रकाशते। यो लोकालोकयोः सर्वसामान्याकारे वितिमिरः क्रमकरणव्यवधानराहित्येन सदावभासमानः स केवलदर्शनाख्य उद्योतो भवति इतोऽग्रेऽयमपि पाठो दृश्यते बपुस्तके।

त्रैराशिकं माडि प्र ४ । प = इ । २ बंदलब्धदोळु पर्य्याप्तकरं किंचिदूनं माडिदोडवु शक्तिगतचक्षु-
४
२ a
a

र्द्दर्शनिगळ संख्येयवकु = । २— मितु व्यक्तिगतचक्षुर्द्दर्शनिगल्गं त्रैराशिकमं माळ्पागळोंदु
४ ।
२ ४
a

विशेषमुंटदावुदें दोडे फलराशित्रसपर्य्याप्तराशियक्कु प्र = ४ प = इ । २ । मी बंद लब्धं व्यक्ति-
४
५

गतचक्षुर्द्दर्शनिगळ संख्येयक्कु = । २ अवधिदर्शनिगळ संख्येयवधिज्ञानिगळ प्रमाणमेनितनिते-
४ । ४
५

यक्कुं प a केवलदर्शनिगळसंख्ये केवलज्ञानिगळसंख्येयेनितनितेयक्कुं १ ।
९ a ३

कियत् ? इति त्रैराशिके कृते प्र ४ । फ = । इ २ लब्धं पर्याप्तकर्मन्यथा किंचिदून शक्तिगतचक्षुर्दर्शनिसंख्या
४
२
a

भवति = । २ = द्वितीयत्रैराशिके फलराशिः त्रसपर्याप्तकराशि प्र ४ । फ = । इ २ लब्धं व्यक्तिगतचक्षुर्दर्शनिसंख्या
४ । ४ ४
२ ५
a

भवति = २—अवधिदर्शनराशिरवधिज्ञानराशिवत् प a—१ केवलदर्शनिसंख्या केवलज्ञानिसंख्यावत् १ ॥४८७॥
४ । ४ a a ३
५

पंचेन्द्रियका कितना परिमाण है ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि चार, फलराशि त्रसजीवोंका प्रमाण, इच्छाराशि दो। सो इच्छाराशिको फलराशिसे गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवराशि है। उसमें-से पर्याप्त जीवोंके प्रमाणको घटानेपर जो प्रमाण आवे उसमें-से कुछ घटानेपर, क्योंकि दोइन्द्रिय आदि क्रमसे घटते हुए शक्तिगत चक्षुदर्शनवालोंका प्रमाण जानना। इसी तरह त्रसपर्याप्त जीवोंके प्रमाणको चारसे भाग देकर दोसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उसमें-से कुछ कम करनेपर व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनवालोंका प्रमाण होता है। अवधिदर्शनी जीवोंका प्रमाण अवधिज्ञानियोंके प्रमाणके समान जानना। और केवल दर्शनी जीवोंका प्रमाण केवलज्ञानी जीवोंके परिमाणके समान जानना ॥४८७॥

एइंदियपहुडीणं खीणकसायंतणंतरासीणं ।
जोगो अचक्खुदंसणजीवाणं होदि परिमाणं ।।४८८।।

एकेंद्रियप्रभृतीनां क्षीणकषायांताऽनंताराशीनां योगो चक्षुर्द्दर्शनजीवानां भवति परिमाणं ।
एकेंद्रियप्रभृति क्षीणकषायांताऽनंतानंतजीवंगलयोगं अचक्षुर्द्दर्शनजीवंगळ प्रमाणमक्कुं ।१३।

शक्तिचक्षु	व्यक्तिचक्षु	अचक्षु	अवधिदर्शन	केवलदर्शन
=	२	१ ३	प ‿—	७
४ २—	४	∂	∂ ∂	३
२ ४	५		∂	
∂				

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु मंडलाचार्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरि सिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजित ललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचित गोम्मटसारकर्णाटवृत्ति जीवतत्वप्रदीपिपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु चतुर्द्दशं दर्शनमार्ग्गणाधिकारं निगदितमाय्तु ।

एकेन्द्रियप्रभृतिक्षीणकषायान्तानन्तानन्तजीवानां योग अचक्षुर्दर्शनजीवप्रमाण भवति १३—।।४८८।।

एकेन्द्रियसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त अनन्त जीवोंका जो योग है उतना अचक्षुदर्शनी जीवोंका प्रमाण है ।।४८८।।

इस प्रकार सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र रचित गोम्मटसार अपर नाम
पंचसंग्रहकी केशववर्णी रचित कर्नाटक वृत्ति अनुसारिणी हिन्दी टीकामें
जीवकाण्डके अन्तर्गत दर्शन मार्गणा प्ररूपणा नामक चौदहवाँ
अधिकार समाप्त हुआ ॥१४॥

लेश्या-मार्गणा ॥१५॥

दर्शनमार्ग्गणानंतरं लेश्यामार्ग्गणेयं पेळलुपक्रमिसि निरक्तिपूर्व्वकं लेश्येगे लक्षणमं पेळवपं—

लिंपइ अप्पीकीरई एदीए णियअप्पुण्णपुण्णं च ।
जीवोत्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा ॥४८९॥

लिंपत्यात्मीकरोत्येतया निजाऽपुण्यं पुण्यं च जीव इति भवति लेश्या लेश्यागुणज्ञायकाख्याता ।

द्रव्यलेश्येयेंदुं भावलेश्येयेंदुं लेश्ये द्विप्रकारमप्पुदल्लि । भावलेश्यापेक्षेयिदं लिंपत्यात्मीकरोति निजापुण्यं पुण्यं च जीव एतयेति लेश्या । लेश्यागुणज्ञायकाऽऽख्याता भवति । जीवं निजपापमुमं पुण्यमुमं लिंपति तन्नं पोरेगुं आत्मीकरोति तन्नवागि माळ्पनिदरिंदमेंदितु लेश्या लेश्येंदु लेश्यागुणमनरिव श्रुतज्ञानिगळप्प गणधरदेवादिगळिंदं पेळल्पट्टुवक्कुं । अनया कर्म्मभिरात्मानं लिंपतीति लेश्या । कषायोदयानुरंजिता योगप्रवृत्तिर्वा लेश्या । कषायाणामुदयेनानुरंजिता कमप्यतिशयांतरमुपनीता भवतीत्यर्त्थः । ई यर्त्थमने विशदमागि माडिदपरु ।

य सद्धर्मसुधावर्षैर्भव्यसस्यानि प्रीणयन् ।
नीतवान् स्वेष्टसिद्धिं तं धर्मनाथघनं भजे ॥१५॥

अथ लेश्यामार्गणा वक्तुमना निरुक्तिपूर्वकं लेश्यालक्षणमाह—

लेश्या द्रव्यभावभेदाद् द्वेधा । तत्र भावलेश्या लक्षयितु इदं सूत्रम् । लिम्पति—आत्मीकरोति निजमपुण्यं पुण्यं च जीव एतयेति लेश्या लेश्यागुणज्ञायकैर्गणधरदेवादिभिराख्याता । अनया कर्मभिरात्मानं लिम्पतीति लेश्या । कषायोदयानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिर्वा लेश्या कषायाणामुदयेन अनुरञ्जिता कमप्यतिशयान्तरमुपनीता योगप्रवृत्तिर्वा लेश्या ॥४८९॥ अमुमेवार्थं स्पष्टयति—

लेश्या मार्गणाको कहनेकी भावनासे निरुक्तिपूर्वक लेश्याका लक्षण कहते हैं—

लेश्या द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारकी है। उनमें-से भावलेश्याका लक्षण कहनेके लिए यह सूत्र है। 'लिम्पति' अर्थात् इसके द्वारा जीव अपने पुण्य-पापको अपनाता है, लेश्याका यह लक्षण लेश्याके गुणोंके ज्ञाता गणधर देव आदिने कहा है। जिसके द्वारा जीव आत्माको कर्मोंसे लिप्त करता है वह लेश्या है। कषायके उदयसे अनुरंजित मन वचन कायकी प्रवृत्ति लेश्या है। अथवा कषायोंके उदयसे अनुरंजित अर्थात् किसी भी अतिशयान्तरको प्राप्त योग प्रवृत्ति लेश्या है ॥४८९॥

इसीको स्पष्ट करते हैं—

जोगपउत्ती लेस्सा कसायउदयाणुरंजिया होइ ।
तत्तो दोण्णं कज्जं बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं ॥४९०॥

योगप्रवृत्तिर्लेश्या कषायोदयानुरंजिता भवति । ततो द्वयोः कार्यं बंधचतुष्कं समुद्दिष्टं ॥

कायवाङ्मनःप्रवृत्तियं लेश्येयें बुदवुं कषायोदयानुरंजितमक्कुं । ततः अदु कारणदत्तणिंदं द्वयोः कार्य्यं योगकषायंगळ कार्य्यमप्प बंधचतुष्कं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपबंधचतुष्टयं लेश्येय कार्य्यमक्कुमेंदु समुद्दिष्टं परमागमदोळ्पेळल्पट्टुदु । योगदिदं प्रकृतिप्रदेशबंधमक्कुं । कषायदिदं स्थित्यनुभागबंधमक्कुमप्पुदरिदं कषायोदयानुरंजितयोगप्रवृत्तिये लेश्येयप्पुदरिदमा लेश्र्येयिदं चतुर्व्विधबंधं युक्तियुक्तमेयक्कुमेंबुदु तात्पर्य्यं ।

लेश्यामार्ग्गणेगधिकारनिर्द्देशमं माडिदपं गाथाद्वयदिदं :—

णिद्देसवण्णपरिणामसंकमो कम्मलक्खणगदी य ।
सामी साहणसंखा खेत्तं फासं तदो कालो ॥४९१॥
अंतरभावप्पबहू अहियारा सोलसा हवंतित्ति ।
लेस्साण साहणट्ठं जहाकमं तेहि वोच्छामि ॥४९२॥

निर्द्देशवर्णपरिणामसंक्रमकर्म्मलक्षणगतयश्च । स्वामी साधनसंख्याक्षेत्रं स्पर्शं ततः कालः ॥ अंतरभावाल्पबहवोऽधिकाराः षोडश भवंतीति । लेश्यानां साधनार्थं यथाक्रमं तैर्वक्ष्यामि ॥

निर्द्देशमुं वर्णमुं परिणाममुं संक्रममुं कर्म्ममुं लक्षणमुं गतियुं स्वामियुं साधनमुं संख्येयुं क्षेत्रमुं स्पर्शमुं बळिक्कं कालमुं अंतरमुं भावमुं अल्पबहुत्वमुमेंबितु अधिकारंगळपवि-

कायवाङ्मन प्रवृत्ति लेश्या, सा च कषायोदयानुरञ्जितास्ति ततः कारणात् द्वयोः—योगकषाययोः कार्यं बन्धचतुष्कं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूप तद् लेश्याया एव स्यादिति परमागमे समुद्दिष्टम् । योगात् प्रकृतिप्रदेश-बन्धौ कषायस्योदयाच्च स्थित्यनुभागबन्धौ स्याताम् । तेन कषायोदयानुरञ्जितयोगप्रवृत्तिलक्षणया लेश्यया चतुर्विधबन्धो युक्तियुक्त एवेत्यर्थः ॥४९०॥ अथ गाथाद्वयेन अधिकारान्निर्दिशति—

निर्देश वर्णः परिणाम सक्रम. कर्मलक्षण गतिः स्वामी साधनं संख्या क्षेत्र स्पर्शः ततः कालः

काय, वचन और मनकी प्रवृत्ति लेश्या है । वह मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति कषायके उदयसे अनुरंजित है । इस कारणसे दोनों योग और कषायोंका कार्य प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप चार बन्ध लेश्याके ही कार्य परमागममें कहे हैं । योगसे प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध और कषायके उदयसे स्थितिबन्ध अनुभागबन्ध होते हैं । इसलिए कषायके उदयसे अनुरंजित योगप्रवृत्ति जिसका लक्षण है उस लेश्यासे चार प्रकारका बन्ध कहना युक्तियुक्त ही है ॥४९०॥

दो गाथाओं से अधिकारोंको कहते हैं—

निर्देश, वर्ण, परिणाम, संक्रम, कर्म, लक्षण, गति, स्वामी, साधन, संख्या, क्षेत्र, स्पर्श,

१. म ततः आलेश्येयिदं । २ म चतुष्टयमक्कुमेंदु ।

नारप्पुवेकें दोडे लेश्यानां साधनात्थं लेश्येगळ भेदप्रभेदंगळं साधिससल्वेडि अदुकारणमागि तैरधिकारैः आपदिनारुमधिकारंगळिवं यथाक्रमं क्रममनतिक्रमिसदे लेश्येयं वक्ष्यामि पेळवें ॥

किण्हा णीला काऊ तेऊ पम्मा य सुक्कलेस्सा य ।
लेस्साणं णिद्देसा छच्चेव हवंति णियमेण ॥४९३॥

कृष्णा नीला कापोती तेजः पद्मा च शुक्ललेश्या च। लेश्यानां निर्द्देशाः षट् चैव भवंति नियमेन ॥

कृष्णलेश्येयें बु नीललेश्येयें दुं कपोतलेश्येयें दुं तेजोलेश्येयें दुं पद्मलेश्येयें दुं शुक्ळलेश्येयें दुमितु लेश्येगळ निर्द्देशंगळारेयप्पुवु। नियमदिदं। इल्लि षट्चैव एंदितु नैगमनयाभिप्रायदिदं पेळल्पट्टुदु। पर्य्यायवृत्तियिदं मत्तमसंख्येयलोकमात्रंगळु लेश्येगळप्पुवें दितु नियमशब्ददिदं सूचिसल्पट्टुदु। निर्द्देशं निगदितमाय्तु ॥

वण्णोदयेण जणिदो सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।
सा सोढा किण्हादी अणेयभेया सभेयेण ॥४९४॥

वर्णोदयेन जनितः शरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या। सा षोढा कृष्णादयोऽनेकभेदाः स्वभेदेन ॥

वर्णनामकर्म्मोदयदिदं जनितः पुट्टल्पट्ट शरीरवर्णस्तु शरीरदबण्णं द्रव्यतो लेश्या द्रव्यदिदं लेश्येयक्कुमा द्रव्यलेश्येयुं षोढा षट्प्रकारमक्कुमा षट्प्रकारंगळुं कृष्णादयः कृष्णादिगळक्कुं। अनेकभेदाः स्वभेदेन स्वस्वभेदाः स्वभेदाः तैः स्वभेदैरनेकभेदाः स्युः तंतम्म भेददिदमनेकभेदंगळप्पुवबें तें दोडे ॥

अन्तरं भावः अल्पबहुत्वं चेति षोडशाधिकारा लेश्याभेदप्रभेदसाधनार्थं भवन्तीति तैर्यथाक्रमं लेश्या वक्ष्यामि ॥४९१–४९२॥

कृष्णलेश्या नीललेश्या कपोतलेश्या तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या चेति लेश्यानिर्देशाः–लेश्यानामानि षडेव भवन्ति नियमेन। अत्र एवकारेणैव नियमस्य अवगमात् पुनरनर्थकं नियमशब्दोपादानं नैगमनयेन लेश्या षोढा पर्यायार्थिकनयेन असंख्यातलोकधेत्याचार्यस्य अभिप्रायं ज्ञापयति ॥४९३॥ इति निर्देशाधिकारः।

वर्णनामकर्मोदयजनितशरीरवर्णस्तु द्रव्यलेश्या भवति। सा च षोढा–षट्प्रकारा। ते च प्रकाराः कृष्णादयः स्वस्वभेदैरनेकभेदाः स्युः ॥४९४॥ तथाहि—

काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व ये सोलह अधिकार लेश्याके भेद-प्रभेदोंके साधनके लिए हैं। उनके द्वारा क्रमानुसार लेश्याको कहूँगा ॥४९१–९२॥

कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कपोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या ये छह ही लेश्याओंके नाम नियमित हैं। यहाँ एवकार (ही) से ही नियमका ज्ञान हो जानेसे पुनः नियम शब्दका ग्रहण निरर्थक ही है। अतः वह नैगम नयसे लेश्या छह हैं और पर्यायार्थिक-नयसे असंख्यातलोक हैं, इस आचार्यके अभिप्रायको सूचित करता है ॥४९३॥ निर्देशाधिकार समाप्त हुआ।

वर्णनाम कर्मके उदयसे उत्पन्न शरीरका वर्ण तो द्रव्य लेश्या है। उसके भी छह भेद हैं। वे कृष्ण आदि भेद अपने-अपने अवान्तर भेदोंसे अनेक भेद वाले हैं ॥४९४॥

छप्पयणीलकवोदसुहेमंबुजसंखसंणिहा वण्णे ।
संखेज्जाऽसंखेज्जाऽणंतवियप्पा य पत्तेयं ॥४९५॥

षट्पदनीलकपोतसुहेमांबुजशंखसन्निभा वर्णे । संख्येयासंख्येया अनंतविकल्पाश्च प्रत्येकं ॥

तुंबिय, नीलरत्नद, कपोतपक्षिय, सुहेमद, अंबुजद, शंखद सन्निभंगळु यथाक्रमदिदमप्पुवु । कृष्णलेश्यादिगळु वर्णदोळु यिंद्रियव्यक्तिगळिदं प्रत्येकं संख्यातंगळप्पुवु । कृ १ नी १ क १ ते १ प १ शु १ ॥ स्कंधभेदर्दिदं प्रत्येकमसंख्यातंगळप्पुवु । कृ ० नील ० क ० ते ० प ० शु ० ॥ परमाणुभेददिदं प्रत्येकमनंतानंतगळप्पुवु । कृ ख नी ख क ख ते ख प ख शु ख ॥

णिरया किण्हा कप्पा भावाणुगया हु तिसुरणरतिरिये ।
उत्तरदेहे छक्कं भोगे रविचंदहरिदंगा ॥४९६॥

नारकाः कृष्णाः कल्पजा भावानुगता खलु त्रिसुरनरतिर्य्यक्षु । उत्तरदेहे षट्कं भोगे रविचंद्रहरितांगाः ॥

नारकरेल्लरुं कृष्णरुगळेयप्परु कल्पजरेल्लरु भावलेश्यानुगतरप्परु । भवनत्रयदेवक्कळुं मनुष्यरुं तिर्य्यंचरुगळुं उत्तरदेहंगळु देवक्कळ वैकुर्व्वण शरीरंगळु अवुं षड्वर्णंगळप्पुवु यथाक्रममुत्तममध्यमजघन्यभोगभूमिजरप्प नरतिर्य्यंचरुगळ शरीरंगळु रविचंद्रहरिद्वर्णंगळप्पुवु ॥

कृष्णादिलेश्या वर्णे षट्पद–नीलरत्न–कपोत–सुहेम–अम्बुज–शङ्खसंनिभा भवन्ति । पुनस्ता इन्द्रियव्यक्तिभिः प्रत्येकं संख्याताः कृ १ । नी १ । क १ । ते १ । प १ । शु १ । स्कन्धभेदैनासंख्याताः कृ ० । नी ० क ० । ते ० । प ० । शु ० । परमाणुभेदेन अनन्तानन्ताश्च[1] भवन्ति । कृ ख । नी ख । क ख । ते ख । प ख । शु ख ॥४९५॥

नारकाः सर्वे कृष्णा एव, कल्पजाः सर्वे स्वस्वभावलेश्यानुगा एव । भवनत्रयदेवाः मनुष्यास्तिर्यञ्चो देवविकुर्वणदेहाश्च सर्वे षड्वर्णाः । उत्तममध्यमजघन्यभोगभूमिजनरतिर्यञ्चः क्रमशः रविचन्द्रहरिद्वर्णा एव ॥४९६॥

वर्णके रूपमें कृष्ण आदि लेश्या भौरे, नीलम, कबूतर, स्वर्ण, कमल और शंखके समान होती हैं। अर्थात् भौरेके समान जिनके शरीरका रंग काला है, उनके द्रव्यलेश्या कृष्ण है। नीलमके समान नील रंग वालोंकी द्रव्यलेश्या नील होती है। कबूतरके समान शरीरके वर्णवालोंकी द्रव्यलेश्या कापोत होती है। स्वर्णके समान पीत वर्ण वालोंकी द्रव्यलेश्या पीत होती है। कमलके समान शरीरके वर्णवालोंकी द्रव्यलेश्या पद्म होती है। और जिनका शरीरका रंग शंखके समान सफेद होता है उनकी द्रव्यलेश्या शुक्ल होती है। इन्द्रियोंके द्वारा प्रतीत होनेकी अपेक्षा प्रत्येक लेश्याके संख्यात भेद होते हैं। स्कन्धोंके भेदसे असंख्यात भेद है और परमाणुओंके भेदसे अनन्त भेद हैं ॥४९५॥

सब नारकी कृष्णवर्ण ही होते हैं। सब कल्पवासी देव अपनी-अपनी भावलेश्याके अनुसार ही द्रव्यलेश्यावाले होते है। अर्थात् जैसी उनकी भावलेश्या होती है उसीके अनुसार उनके शरीरका वर्ण होता है। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषीदेव, मनुष्य, तिर्यंच और देवोंके विक्रियासे बना शरीर ये सब छहों वर्णवाले होते हैं। उत्तम, मध्यम और जघन्य

---

१. ब अनन्ताश्च ।

बादरआऊतेऊ सुक्कातेऊ य वाउकायाणं ।
गोमुत्तमुग्गवण्णा कमसो अव्वत्तवण्णा य ॥४९७॥

बादराप्कायिकतेजस्कायिकाः शुक्लास्तेजसश्च वातकायानां । गोमूत्रमुद्गवर्णौ क्रमशोऽव्यक्तवर्णाश्च ॥

बादराप्कायिकतेजस्कायिकंगळु यथाक्रमदिदं शुक्लाः शुक्लवर्णंगळु तेजसश्च पीतवर्णंगळुमप्पुवु । वातकायंगळ शरीरवर्णंगळु घनोदधिघनानिलंगळगे गोमूत्रमुद्गवर्णंगळु यथाक्रमदिदमप्पुवु । तनुवातकायिकंगळ शरीरवर्णमव्यक्तवर्णमक्कुं ॥

सव्वेसिं सुहुमाणं कावोदा सव्वविग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कवोदवण्णो हवे णियमा ॥४९८॥

सर्व्वेषां सूक्ष्माणां कापोताः सर्व्वविग्रहे शुक्लाः । सर्व्वो मिश्रो देहः कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ॥

सर्वसूक्ष्मजीवंगळ देहंगळु कपोतवर्णदेहंगळेयप्पुवु सर्वजीवंगळु विग्रहगतियोळु शुक्लवर्णंगळेयप्पुवु । सर्वजीवंगळु शरीरपर्य्याप्तिनेरिवन्नेवरं कपोतवर्णंरेयप्परु नियमदिदं ॥ वर्णाधिकारं द्वितीयं ॥ अनंतरं लेश्यापरिणामाधिकारमं गाथापंचकदिदं पेळदपं:—

लोगाणमसंखेज्जा उदयट्ठाणा कसायगा होंति ।
तत्थ किलिट्ठा असुहा सुहा विसुद्धा तदालावा ॥४९९॥

लोकानामसंख्येयान्युदयस्थानानि कषायगाणि भवंति । तत्र क्लिष्टान्यशुभानि शुभानि विशुद्धानि तदालापानि ।

बादराप्तेजस्कायिकौ क्रमेण शुक्लपीतवर्णावेव, वातकायिकेषु घनोदधिवातघनवातशरीराणि क्रमेण गोमूत्रमुद्गवर्णानि तनुवातशरीराणि अव्यक्तवर्णानि ॥४९७॥

सर्वसूक्ष्मजीवदेहाः कपोतवर्णा एव । सर्वे जीवा विग्रहगतौ शुक्लवर्णा एव । सर्वे जीवाः स्वस्वपर्याप्तप्रारम्भप्रथमसमयाच्छरीरपर्याप्तिनिष्पत्तिपर्यन्त कपोतवर्णा एव नियमेन ॥४९८॥ इति वर्णाधिकारः । अथ परिणामाधिकारं गाथापञ्चकेनाह—

भोगभूमिके मनुष्य और तिर्यंच क्रमसे सूर्यके समान, चन्द्रमाके समान तथा हरित वर्णवाले होते है ॥४९६॥

बादर तैजस्कायिक और बादर जलकायिक क्रमसे पीतवर्ण और शुक्लवर्ण ही होते है। बादरवायुकायिकोंमें घनोदधि वातका शरीर गोमूत्रके समान वर्णवाला है। घनवातका शरीर मूँग के समान वर्णवाला है और तनुवातके शरीरका वर्ण अव्यक्त है ॥४९७॥

सब सूक्ष्मजीवोंका शरीर कपोतके समान वर्णवाला ही होता है। सब जीवोंका विग्रहगतिमें शुक्लवर्ण ही होता है। सब जीव अपनी-अपनी पर्याप्तिके प्रारम्भ होनेके प्रथम समयसे लेकर शरीरपर्याप्तिकी पूर्णता पर्यन्त कपोतवर्ण ही नियमसे होते हैं ॥४९८॥

वर्णाधिकार समाप्त हुआ। आगे पाँच गाथाओंसे परिणामाधिकार कहते हैं—

कषायगतोदयस्थानंगळु असंख्यातलोकमात्रंगळप्पुववरोळु संक्लेशस्थानगळप्प अशुभलेश्यास्थानंगळु तद्योग्यासंख्यातलोकभक्तबहुभागंगळागुत्तलुमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु । तदेकभागमात्रंगळुमवुंडं शुभलेश्याविशुद्धिस्थानंगळुमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु । संक्ले । ≡ ∂ । ८ विशु≡∂ १ ।
९ ९

तिव्वतमा तिव्वतरा तिव्वा असुहा सुहा तहा मंदा ।
मंदतरा मंदतमा छट्ठाणगया हु पत्तेयं ॥५००॥

तीव्रतमानि तीव्रतराणि तीव्राण्यशुभानि शुभानि तथा मंदानि । मंदतराणि मंदतमानि षट्स्थानगतानि खलु प्रत्येकं ।

मुन्नं पेळ्द असंख्यातलोकबहुभागमात्रंगळप्प अशुभलेश्या संक्लेशस्थानंगळु कृष्णनीलकपोतभेदंदिदं त्रिप्रकारं गळप्पुवल्लि कृष्णलेश्यातीव्रतमसंक्लेशस्थानंगळु सामान्याशुभसंक्लेश स्थानंगळ ≡∂ ८ निवं मत्तं तद्योग्यासंख्यातलोकदिदं खंडिसिदल्लि बहुभागमात्रस्थानंगळप्पुवु ≡∂ । ८ । ८ । नीललेश्यातीव्रतरसंक्लेशस्थानंगळु तदेकभागबहुभागमात्रंगळप्पुवु ≡∂ । ८ ८ । कपोतलेश्यातीव्रसंक्लेशस्थानंगळु तदेकभागमात्रंगळप्पुवु ≡∂ । ८ । १
९ । ९ । ९ ९ ९ । ९ ९ १

मत्तं शुभलेश्याविशुद्धिस्थानंगळु मुंपेळ्द असंख्यातलोकभक्तैकभागमात्रंगळोळु ≡∂ १ तेजोलेश्या-
९

कपायगतोदयस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि भवन्ति । तेषु संक्लेशस्थानानि अशुभलेश्यास्थानानि तद्योग्यासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राण्यपि असंख्यातलोकमात्राण्येव । तदेकभागमात्राणि शुभलेश्याविशुद्धिस्थानान्यप्यसंख्यातलोकमात्राण्येव । संक्ले ≡∂ । ८ । विशु ७ ≡ ∂ । १ ॥४९९॥
९ ९

प्रागुक्तासंख्यातलोकबहुभागमात्राणि अशुभलेश्यासंक्लेशस्थानानि कृष्णनीलकपोतभेदास्त्रिविधानि । तत्र कृष्णलेश्यातीव्रतमसंक्लेशस्थानानि सामान्याशुभसंक्लेशस्थानेषु ≡ ∂ । ८ तद्योग्यासंख्यातलोकभक्तेषु बहुभागमात्राणि ≡ ∂ । ८ । ८ । नीललेश्यातीव्रतरसंक्लेशस्थानानि तदेकभागबहुभागमात्राणि ≡ ∂ । ८ । ८ । कपोतलेश्यातीव्रसंक्लेशस्थानानि तदेकभागमात्राणि ≡ ∂ । ८ । १ पुन. शुभलेश्याविशुद्धिस्थानेषु पूर्वोक्तासंख्यात-
९ । ९ ९ । ९ । ९ । ९ । ९ । ९ । ९

कषायोंके अनुभागरूप उदय स्थान असंख्यात लोक मात्र होते हैं। उनमें यथायोग्य असंख्यात लोकसे भाग देनेपर बहुभाग प्रमाण संक्लेश स्थान हैं, वे भी असंख्यात लोक प्रमाण ही हैं। और शेष एक भाग प्रमाण विशुद्धिस्थान हैं, वे भी असंख्यात लोक मात्र हैं। संक्लेशस्थान तो अशुभ लेश्याओंके स्थान हैं और विशुद्धि स्थान शुभ लेश्याओंके स्थान हैं ॥४९९॥

पहले कहे असंख्यात लोकके बहुभाग मात्र अशुभ लेश्या सम्बन्धी स्थान कृष्ण, नील, कपोतके भेदसे तीन प्रकारके हैं। उन सामान्य अशुभ लेश्या सम्बन्धी स्थानोंमें यथायोग्य असंख्यातलोकसे भाग देनेपर बहुभाग प्रमाण कृष्णलेश्या सम्बन्धी तीव्रतम कषायरूप संक्लेश स्थान हैं। शेष रहे एक भागमें पुनः असंख्यात लोकसे भाग देनेपर बहुभाग मात्र

मंदसंक्लेशस्थानंगळु तदसंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रंगळप्पुवु ≡ a ८ / ९ ९ पद्मलेश्याविशुद्धिस्थानंगळु मंदतरसंक्लेशस्थानंगळु तदेकभागबहुभागमात्रंगळप्पुवु ≡ a ८ / ९ ९ ९ शुक्ललेश्याविशुद्धिस्थानंगळु मंदतमसंक्लेशस्थानंगळु शेषैकभागमात्रंगळप्पुवु ≡ a १ / ९ ९ ९ ई कृष्णलेश्यादियादारुं स्थानंगळोळु प्रत्येकमशुभंगळोळुत्कृष्टदिदं जघन्यपर्य्यंतं शुभंगळोळुं जघन्यदिदमुत्कृष्टपर्य्यंतमसंख्यातलोकमात्र-षट्स्थानपतितहानिवृद्धियुक्तस्थानंगळप्पुवु खलु नियमदिदं ।

असुहाणं वरमज्झिमअवरंसे किण्हणीलकाउतिए ।

परिणमदि कमेणप्पा परिहाणीदो किलेसस्स ॥५०१॥

अशुभानां वरमध्यमावरांशे कृष्णनीलकपोतत्रये परिणमति क्रमेणात्मा परिहानितः संक्लेशस्य ।

कृष्णनीलकपोतत्रिस्थानंगळ अशुभंगळप्पुत्कृष्टमध्यमजघन्यांशंगळोळु जीवं संक्लेशहानि-यिदं क्रमदिदं परिणमिसुगुं ।

लोकभक्तैकभागमात्रेषु ≡ a । १ / ९ तेजोलेश्यामन्दसंक्लेशस्थानानि तदसंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि ≡ a । ८ / ९ । ९ पद्मलेश्याविशुद्धिस्थानानि मन्दतरसंक्लेशस्थानानि तदेकभागबहुभागमात्राणि ≡ a । ८ / ९ । ९ । ९ शुक्ललेश्याविशुद्धि-स्थानानि मन्दतमसंक्लेशस्थानानि शेषैकभागमात्राणि ≡ a । १ / ९ । ९ । ९ । एतेषु कृष्णलेश्यादिषट्स्थानेषु प्रत्येकमशुभेषु उत्कृष्टाज्जघन्यपर्यन्तं शुभेषु च जघन्यादुत्कृष्टपर्यन्तं असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानपतितहानिवृद्धिस्थानानि भवन्ति खलु–नियमेन ॥५००॥

कृष्णनीलकपोतत्रिस्थानेषु अशुभरूपोत्कृष्टमध्यमजघन्यांशेषु जीवः संक्लेशहानितः क्रमेण परिण-मति ॥५०१॥

नीललेश्या सम्बन्धी तीव्रतर संक्लेश स्थान हैं। शेष रहे एक भाग प्रमाण कपोतलेश्या सम्बन्धी तीव्र संक्लेश स्थान हैं। पहले कषायोंके उदय स्थानोंमें असंख्यात लोकसे भाग देकर जो एक भाग प्रमाण शुभ लेश्या सम्बन्धी स्थान कहे थे वे तेज, पद्म और शुक्लके भेदसे तीन प्रकारके है। उनमें असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण तेजोलेश्या सम्बन्धी मन्द संक्लेश स्थान हैं। शेष बचे एक भागमें पुनः असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण पद्मलेश्या सम्बन्धी मन्दतर संक्लेशस्थान हैं। शेष रहे एक भाग प्रमाण शुक्ल लेश्या सम्बन्धी मन्दतम संक्लेश स्थान हैं। इन कृष्णलेश्या आदि सम्बन्धी छह स्थानोंमें-से प्रत्येकमें अशुभमें तो उत्कृष्टसे जघन्य पर्यन्त और शुभ लेश्याओंमें जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यन्त असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान पतित हानि-वृद्धि स्थान नियमसे होते हैं ॥५००॥

यदि जीवके संक्लेश परिणामोंमें हानि होती है तो वह अशुभ कृष्ण नील और कपोत लेश्याओंके उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य अंशोंमें क्रमसे परिणमन करता है अर्थात् उस लेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मध्यममें और मध्यमसे जघन्यरूप परिणमन करता है ॥५०१॥

काऊ णीलं किण्हं परिणमदि किलेसवड्ढिदो अप्पा ।
एवं किलेसहाणीवड्ढीदो होदि असुहतियं ॥५०२॥

कपोतं नीलं कृष्णं परिणमति क्लेशवृद्धित आत्मा । एवं क्लेशहानिवृद्धितोऽशुभत्रयं भवति ।

संक्लेशवृद्धियिंदमात्मं कपोतनीलकृष्णलेश्यारूपमं तप्पुदंते परिणमदि परिणमिसुगुमितु संक्लेशहानिवृद्धिगळिंदमशुभत्रयरूपनक्कुं ।

तेऊ पम्मे सुक्के सुहाणमवरादि अंसगे अप्पा ।
सुद्धिस्स य वड्ढीदो हाणीदो अण्णहा होदि ॥५०३॥

तेजसि पद्मे शुक्ले शुभानामवराद्यंशके आत्मा विशुद्धेश्च वृद्धितो हानितोऽन्यथा भवति ।

शुभंगळप्प तेजःपद्मशुक्ललेश्येगळ जघन्याद्यंशंगळोळात्मं विशुद्धिवृद्धियिंदं भवति परिणमिसुगुं । हानितोऽन्यथा भवति विशुद्धिय हानियिंदं शुक्ललेश्योत्कृष्टं मोदल्गोंडु तेजोलेश्याजघन्यांशपर्य्यंतं भवति परिणमिसुगुं । संदृष्टि :—

≡ अशुभलेश्या	स्थानानि ९ a ८	सव्वंघनं ≡ a	शुभलेश्या	स्थानानि	≡ ९ a । १
तीव्रतमकृष्ण	तिव्वतरणीळ	तिव्वकओत	मंदतेज	मंदतरपद्म	मंदतमशुक्ल
उ ००००० ज	उ ०००००० ज	उ ०००००० ज	ज ००००० उ	ज ००००० उ	ज ००००० उ
≡ a ८ ८ / ९ ९	≡ a । ८ । ८ / ९ ९ ९	≡ a । ८ । १ / ९ ९ ९	≡ a ८ । / ९ ९	≡ a ८ / ९ ९ ९	≡ a । १ / ९ ९ ९

परिणामाधिकारं तृतीयं समाप्तमाय्तु ।

अनंतरं संक्रमणाधिकारमं गाथात्रयदिंदं स्वस्थानपरस्थानसंक्रमणमनि परिणामपरावृत्तिरचनेयं कटाक्षिसिकोंडु पेळ्वपं ।

संक्लेशवृद्ध्यात्मा कपोतनीलकृष्णलेश्यारूपेण परिणमति इति संक्लेशहानिवृद्धिभ्यामशुभत्रयरूपो भवति ॥५०२॥

शुभाना तेजःपद्मशुक्ललेश्यानां जघन्याद्यंशेषु आत्मा विशुद्धिवृद्धितो भवति परिणमति, हानितोऽन्यथा शुक्लोत्कृष्टात्तेजोजघन्यांशपर्यन्तं परिणमति ॥५०३॥ इति परिणामाधिकारः । उक्तपरिणामपरावृत्तिरचनां मनसिकृत्य संक्रमणाधिकारं गाथात्रयेणाह—

तथा संक्लेश परिणामोंमें वृद्धि होनेसे कपोत, नील और कृष्ण लेश्यारूपसे परिणमन करता है । इस प्रकार संक्लेश परिणामोंमें हानि, वृद्धि होनेसे तीन अशुभ लेश्या रूपसे परिणमन करता है ॥५०२॥

शुभ तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओंके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अंशोंमें आत्मा विशुद्धिकी वृद्धिसे परिणमन करता है । और विशुद्धिकी हानिसे अन्यथा अर्थात् शुक्ल लेश्याके उत्कृष्ट अंशसे तेजोलेश्याके जघन्य अंश तक परिणमन करता है ॥५०३॥

इस प्रकार परिणामाधिकार समाप्त हुआ ।

उक्त परिणामोंके परिवर्तनकी रचनाको मनमें रखकर तीन गाथाओंसे संक्रमण अधिकारको कहते हैं—

संकमणं सट्ठाणपरट्ठाणं होदित्ति किण्हसुक्काणं ।
वड्ढीसु हि सट्ठाणं उभयं हाणिम्मि सेसउभयेवि ।।५०४।।

संक्रमणं स्वस्थानं परस्थानं भवति । कृष्णशुक्लयोः । वृद्धयोः खलु स्वस्थानमुभयं हानौ शेषोभयेपि ।।

संक्रमणं स्वस्थानसंक्रमणमें दुं परस्थानसंक्रमणमें दुं द्विप्रकारमक्कुमल्लि कृष्णशुक्लयोः कृष्णशुक्ललेश्याद्वयद वृद्धयोः वृद्धिगळोळु स्वस्थानसंक्रमणमेयक्कुं खलु नियमदिदं । आकृष्णशुक्ल-लेश्येगळु हानौ हानियोळु उभयं स्वस्थानसंक्रमणमुं परस्थानसंक्रमणमुमें बेरडुमक्कुं । शेषोभयेपि शेषनीलपद्मकपोततेजोलेश्याचतुष्टयंगळु हानियोळं वृद्धियोळं अपि अपिशब्ददिदं स्वस्थानसंक्रमणमुं परस्थानसंक्रमणमुमें बेरडुमक्कुं ।।

लेस्साणुक्कस्सादो वरहाणी अवरगादवरवड्ढी ।
सट्ठाणे अवरादो हाणी णियमा परट्ठाणे ।।५०५।।

लेश्यानामुत्कृष्टादवरहानिरवरस्मादवरवृद्धिः, स्वस्थाने अवरस्माद्धानिर्नियमात्परस्थाने ।।

संक्रमण—स्वस्थानसंक्रमणं परस्थानसंक्रमणं चेति द्विविधम् । तत्र कृष्णशुक्ललेश्याद्वयस्य वृद्धौ स्वस्थान-संक्रमणमेव खलु–नियमेन, हानौ पुनः स्वस्थानसंक्रमणं परस्थानसंक्रमणं चेत्युभयं भवति । शेषनीलपद्मकपोत-तेजोलेश्याचतुष्टयस्य हानौ वृद्धौ च अपिशब्दादुभयसंक्रमणं भवति ।।५०४।।

संक्रमणके दो प्रकार हैं—स्वस्थान संक्रमण और परस्थान संक्रमण । उनमें-से कृष्ण-लेश्या और शुक्ल लेश्याका वृद्धिमें नियमसे स्वस्थान संक्रमण ही होता है । हानिमें स्वस्थान और परस्थान दोनों होते हैं । शेष नील, कपोत, तेज, पद्म लेश्याओंमें हानि और वृद्धिमें दोनों संक्रमण होते हैं ।।५०४।।

विशेषार्थ—एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेको संक्रमण कहते हैं । यदि वह उसी लेश्यामें होता है तो स्वस्थान संक्रमण है और यदि एक लेश्यासे दूसरीमें होता है तो पर-स्थान संक्रमण है । वृद्धिमें कृष्ण और शुक्ल लेश्यामें स्वस्थान संक्रमण ही होता है क्योंकि संक्लेशकी वृद्धि कृष्ण लेश्याके उत्कृष्ट अंश पर्यन्त ही होती है तथा विशुद्धिकी वृद्धि शुक्ल लेश्याके उत्कृष्ट अंश तक ही होती है । अतः जो जीव कृष्ण लेश्या या शुक्ल लेश्यामें वर्तमान है वह संक्लेश या विशुद्धिकी वृद्धिमें उन्हीं लेश्याओंके उत्कृष्ट अंशमें जायेगा । किन्तु हानिमें दोनों संक्रमण होते हैं। क्योंकि उत्कृष्ट कृष्ण लेश्यासे संक्लेशकी हानि होनेपर उसी लेश्याके उत्कृष्टसे मध्यममें और मध्यमसे जघन्य अंशमें आता है और जघन्य अंशसे भी हानि होनेपर नील लेश्यामें चला जाता है। इसी तरह विशुद्धिकी हानि होनेपर शुक्ल लेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मध्यममें और मध्यमसे जघन्य अंशमें आता है। तथा और भी हानि होनेपर पद्म लेश्यामें जाता है। इस तरह हानिमें दोनों संक्रमण होते हैं। शेष मध्यकी चारों ही लेश्याओंमें हानि वृद्धि दोनोंमें ही दोनों संक्रमण होते हैं ।।५०४।।

लेश्यानां कृष्णादिसर्व्वंळेश्येगळ उत्कृष्टात् उत्कृष्टवर्त्तणिदं अनंतरस्वलेश्यास्थानविकल्पदोळु अवरहानिः अनंतैकभागहानियक्कुं । एकें दोडुत्कृष्टलेश्योदयस्थानकमप्पुदरिंदमनंतरोर्व्वंकस्थानदोळनंतैकभागहानियक्कुमप्पुदरिंदं । अवरस्मात् सर्वलेश्येगळ जघन्यस्थानवर्त्तणिदं स्वस्थाने स्वस्थानदोळु अवरवृद्धिः अनंतभागवृद्धिये अक्कुमेकें दोडे लेश्याजघन्यस्थानंगळनितुमष्टांकंगळप्पुदरिंदमनंतरस्थानंगळोळु अनंतभागवृद्धिये नियमदिदमक्कुमेकें दोडा जघन्यमा षट्स्थानादियप्पुदरिंदं । उत्तरस्थानमनंतैकभागवृद्धिस्थानमक्कुमप्पुदरिंदं । अवरस्मात् सर्व्वलेश्येगळ जघन्यस्थानवर्त्तणिदं परस्थाने परस्थानसंक्रमणदोळु अनंतरस्थानदोळु हानिः अनंतगुणहानिये नियमाद् भवति नियमदिमक्कुमेकेंदोडे शुक्ललेश्याजघन्यदिदमनंतरपद्मलेश्यास्थानदोळनंतगुणहानि नियमदिमें तक्कुमंते कृष्णालेश्याजघन्यदिदमनंतरनीललेश्यास्थानदोळमनंतगुणहानियक्कुमितेल्ला लेश्येगळामक्कुं ॥

संकमणे छट्ठाणा हाणिसु वड्ढीसु होंति तण्णामा ।
परिमाणं च य पुव्वं उत्तकमं होदि सुदणाणे ॥५०६॥

संक्रमणे षट्स्थानानि हानिषु वृद्धिषु भवंति तन्नामानि । परिमाणं च पूर्व्वमुक्तक्रमो भवति श्रुतज्ञाने ॥

ई संक्रमणदोळु हानिगळोळं वृद्धिगळोळं षड्वृद्धिगळुं षड्हानिगळुं मप्पुवु । तद्वृद्धिहानिगळ पेसर्गळुमवर प्रमाणंगळुमं मुन्नं श्रुतज्ञानमार्ग्गणेयोळ्पेळ्द क्रममेयक्कुमें दरिवुदवें तें दोडे अनंत-

कृष्णादिसर्वलेश्योत्कृष्टादनन्तरस्वलेश्यास्थानविकल्पे अवरहानिः अनन्तैकभागहानिर्भवति, कुतः ? तदनन्तरस्योर्वङ्कात्मकत्वात् । सर्वलेश्यानां जघन्यात्पुनः स्वस्थाने अवरवृद्धिः अनन्तैकभागवृद्धिरेव भवति । कुतः ? तज्जघन्यानामष्टांकरूपत्वात् । सर्वलेश्याजघन्यस्थानात् परस्थानसंक्रमणेऽनन्तरस्थाने अनन्तगुणहानिरेव नियमाद्भवति । कुतः ? शुक्ललेश्याजघन्यादनन्तरपद्मलेश्यास्थानवत्कृष्णलेश्याजघन्यादनन्तरनीललेश्यास्थानेऽपि तद्धानेरेव संभवात् । एवं सर्वलेश्याना भवति ॥५०५॥

अस्मिन् सक्रमणे हानिषु वृद्धिषु च षड्वृद्धयः षड्हानयश्च भवन्ति । तासा नामानि प्रमाणानि च पूर्वं

कृष्ण आदि सब लेश्याओंके उत्कृष्ट स्थानमें जितने परिणाम होते हैं उनसे उत्कृष्ट स्थानके समीपवर्ती उसी लेश्याके स्थानमें 'अवरहानि' अर्थात् उत्कृष्ट स्थानसे अनन्त भाग हानिको लिये हुए परिणाम होते हैं क्योंकि उत्कृष्टके अनन्तरवर्ती परिणाम उर्वंकरूप होता है और अनन्त भागकी संदृष्टि उर्वंक है। तथा सब लेश्याओंके जघन्य स्थानसे उसी लेश्यामें उसके समीपवर्ती स्थानमें अनन्तवें भागवृद्धि ही होती है क्योंकि उनके जघन्य अष्टांकरूप होते हैं। सब लेश्याओंके जघन्य स्थानसे परस्थानसंक्रमण होनेपर उसके अनन्तरवर्ती स्थानमें अनन्त गुणहानि ही नियमसे होती है। क्योंकि शुक्ललेश्याके जघन्य स्थानके अनन्तर जो पद्मलेश्याका उत्कृष्ट स्थान है उसीकी तरह कृष्णलेश्याके जघन्य स्थानके अनन्तर जो नीललेश्याका उत्कृष्ट स्थान है उनमें भी अनन्त गुणहानि ही सम्भव है। इसी प्रकार सब लेश्याओंमें जानना ॥५०५॥

इस संक्रमणमें हानि और वृद्धिमें छह हानियाँ और छह वृद्धियाँ होती हैं। उनके

१. म अकस्मात् अवरवृद्धि स. । २. म हानिः हानिये ।

भागमसंख्यातभागं संख्यातभागं संख्यातगुणमसंख्यातगुणमनंतगुणमें ब हानिवृद्धिगळ नामंगळु-मुत्कृष्टसंख्यातमुमसंख्यातलोकमुं सर्व्वजीवराशियुमें ब प्रमाणंगळु भागक्रमदोळं गुणितक्रमदोळ-मिवेयप्पुवें बु श्रुतज्ञानमार्ग्गणेयोळु पेळ्व क्रमममिल्लियुमरियल्पडुगुमें बुदु तात्पर्य्यं ॥ नाल्कनेय संक्रमणाधिकारंतिद्दुवुं बु ॥ अनंतरं कर्म्माधिकारमं गाथाद्वयदिवं पेळ्वपं :—

श्रुतज्ञानमार्गणाया उक्तक्रमेणैव भवन्ति। तत्र अनन्तभाग. असख्यातभागः संख्यातभागः संख्यातगुणः असंख्यातगुण अनन्तगुणश्चेति नामानि। उत्कृष्टसख्यातमसंख्यातलोक. सर्वजीवराशिश्चेति भागक्रमे गुणितक्रमे च प्रमाणानि भवन्ति ॥५०६॥ इति संक्रमणाधिकारश्चतुर्थः ॥ अथ कर्माधिकारं गाथाद्वयेनाह—

नाम और उनका प्रमाण पहले श्रुतज्ञानमार्गणामें जैसा कहा है वैसा ही जानना। उनके नाम अनन्तभाग, असंख्यात भाग, संख्यात भाग, संख्यात गुण, असंख्यात गुण और अनन्त गुण हैं। उनका प्रमाण जीवराशि, असंख्यात लोक और उत्कृष्ट संख्यात क्रमसे हैं। यह भाग और गुणका प्रमाण है ॥५०६॥

विशेषार्थ—अनन्त भाग, असंख्यात भाग, संख्यात भाग, संख्यात गुण, असंख्यात गुण, अनन्त गुण ये छह स्थानोंके नाम हैं। इनका प्रमाण गुणकार और भागहारमें पूर्ववत् जानना। पूर्वमें वृद्धिका अनुक्रम कहा है हानिमें उससे उलटा अनुक्रम है। वही कहते है। कपोतलेश्याके जघन्यसे लगाकर कृष्णलेश्याके उत्कृष्ट पर्यन्त विवक्षा हो तो क्रमसे संक्लेशकी वृद्धि होती है। यदि कृष्णलेश्याके उत्कृष्टसे लगाकर कपोतलेश्याके जघन्य पर्यन्त विवक्षा हो तो संक्लेशकी हानि होती है। तथा पीतके जघन्यसे लगाकर शुक्लके उत्कृष्ट पर्यन्त विवक्षा हो तो क्रमसे विशुद्धिकी वृद्धि होती है। यदि शुक्लके उत्कृष्टसे लगाकर पीतके जघन्य पर्यन्त विवक्षा हो तो क्रमसे विशुद्धिकी हानि होती है। सो वृद्धिमें षट्स्थानपतित वृद्धि और हानिमें षट्स्थानपतित हानि जानना।

पूर्वमें कहा था कि सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र बार अनन्त भागवृद्धि होनेपर एक बार अनन्त गुणवृद्धि होती है। उसमें अनन्त गुणवृद्धिरूप स्थान नवीन पट्स्थान पतित वृद्धिका प्रारम्भरूप प्रथम स्थान है। उसके पहले जो अनन्त भाग वृद्धिरूप स्थान है वह विवक्षित षट्स्थानपतित वृद्धिका अन्तस्थान है। नवीन षट्स्थानपतित वृद्धिके अनन्त गुणवृद्धिरूप प्रथम स्थानके आगे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र अनन्त भागवृद्धिरूप स्थान होते हैं उसके आगे पूर्वोक्त अनुक्रम जानना।

यहाँपर कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट स्थान षट्स्थानपतितका अन्त स्थानरूप होनेसे पूर्वस्थानसे अनन्तभाग वृद्धिरूप है। और कृष्णलेश्याका जघन्य स्थान षट्स्थान पतितका प्रारम्भरूप प्रथम स्थान है। उसके पूर्व नीललेश्याका उत्कृष्ट स्थान उससे अनन्त गुण वृद्धिरूप है। तथा कृष्णलेश्याके जघन्यका समीपवर्ती स्थान उस जघन्य स्थानसे अनन्त भाग वृद्धिरूप है। हानिकी अपेक्षा कृष्णलेश्याके उत्कृष्ट स्थानसे उसके समीपवर्ती स्थान अनन्त भाग हानिको लिये है। कृष्णलेश्याके जघन्य स्थानसे नीललेश्याका उत्कृष्ट स्थान अनन्त गुण हानिको लिये है। इसी प्रकार अन्य स्थानोंमें भी जानना ॥५०६॥

चतुर्थ संक्रमण अधिकार समाप्त हुआ। अब कर्माधिकार दो गाथाओंसे कहते हैं—

पहिया जे छप्पुरिसा परिभट्ठारण्णमज्झदेसम्मि ।
फलभरियरुक्खमेगं पेक्खित्ता ते विचिंतंति ॥५०७॥

पथिका ये षट्पुरुषाः परिभ्रष्टाः अरण्यमध्यदेशे, फलभरितमेकं वृक्षं प्रेक्ष्य ते विचिंतयंति ॥

णिम्मूलखंधसाहुवसाहं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं ।
खाउं फलाइं इदि जं मणेण वयणं हवे कम्मं ॥५०८॥

निर्म्मूलस्कंधशाखोपशाखाश्छित्वा उच्चित्य पतितानि । खादितुं फलानीति यन्मनसा वचन भवेत्कर्म्म ॥

मुंपेळ्द पथिकरवरं तोळल्दुत्तमरण्यमध्यदोळों दु फलभरितमाकंवदवृक्षमं कंडु तत्फलभक्षणोपायमं कृष्णलेश्यादिपरिणामजीवंगळितें दु चिंतिसिवपरु । मरनं निर्म्मूलमप्पंतु कडिवुं, स्कंधमने कडिदुं, शाखेयने कडिवुं, उपशाखेयने कडिवुं, मरनं नोयिसवे पणाळने तिरिवु, इल्लि बिद्दिर्द्दवने मेलुवेमें बितावुदों दु मनदिनाळापमदा कृष्णलेश्यादि षट्प्रकारद जीवंगळगे यथाक्रमदिदं कर्म्ममें बुदक्कुं । अयिदनेयक कर्म्माधिकारं तीर्द्दुदु ॥

अनंतरं लक्षणाधिकारमं गाथानवकर्दिदं पेळ्दपं ॥

चंडो ण मुचइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ ।
दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स ॥५०९॥

चंडो न मुंचति वैरं भंडनशीलश्च धर्म्मदयारहितः । दुष्टः न चैति वशं लक्षणमेतत्तु कृष्णस्य ॥

चंडः तीव्रकोपनुं न मुंचति वैरं वैरमं बिडुवनल्लं । भंडनशीलश्च युद्धशीळनुं धर्म्मदयारहितः धर्म्ममुं दयेयुमिल्लदनुं दुष्टः दुष्टनुं न चैति वशं वशवर्त्तियप्पनुमल्लं । एतल्लक्षणं इंतप्प लक्षणमनुळं तु

कृष्णाद्येकैकलेश्यायुक्तषट्पथिकाः पुरुषाः पथः परिभ्रष्टाः अरण्यमध्यदेशे फलभरितमेकं वृक्षं दृष्ट्वा ते विचिन्तयन्ति । तत्र आद्यः—वृक्षं निर्मूलं छित्त्वा, अन्यः स्कन्धं छित्त्वा, परः शाखां छित्त्वा, अन्यः उपशाखां छित्त्वा, परो वृक्षावाधं फलान्येव छित्त्वा, अन्यः पतितान्येव गृहीत्वा च फलान्यश्नोति यन्मनःपूर्वकं वचः तत्क्रमशस्तासां कर्म भवति ॥५०७-५०८॥ इति कर्माधिकारः ॥ अथ लक्षणाधिकारं गाथानवकेनाह—

चण्डनस्तीव्रकोपनः वैरं न मुञ्चति, भण्डनशीलश्च युद्धशीलश्च धर्मदयारहितः दुष्टः निर्दयो वशं नैति

कृष्ण आदि एक-एक लेश्यावाले छह पथिक मार्ग भूल गये । वनके मध्यमे फलोंसे लदे हुए एक वृक्षको देखकर वे विचार करते हैं—कृष्णलेश्यावाला विचारता है कि वृक्षको जड़से उखाड़कर इसके फल खाऊँगा । नीललेश्यावाला विचारता है कि इस वृक्षके स्कन्धको काटकर फल खाऊँगा । कपोतलेश्यावाला विचारता है, इसकी बड़ी डाल काटकर फल खाऊँगा । तेजो लेश्यावाला विचारता है इसकी छोटी डाल काटकर फल खाऊंगा । पद्मलेश्यावाला विचारता है वृक्षको हानि न पहुँचाकर केवल फल ही तोड़कर खाऊँगा । शुक्ललेश्यावाला विचारता है गिरे हुए फलोंको ही खाऊँगा । इस प्रकार मनपूर्वक जो वचन होता है वह क्रमसे उन लेश्याओंका कार्य होता है ॥५०७-५०८॥

अब नौ गाथाओंसे लक्षणाधिकार कहते हैं—

तीव्र क्रोधी हो, वैर न छोड़े, लड़ाई-झगड़ा करनेका स्वभाव हो, दया-धर्मसे रहित

मत्ते कृष्णलेश्येयनुळ्ळ जीवनक्कुं ॥

मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य ।
माणी माई य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य ॥५१०॥

मंदो बुद्धिविहीनो निर्व्विज्ञानो च विषयलोलश्च । मानी मायी च तथा आलस्यश्चैव भेद्यश्च ॥

मंदः स्वच्छंदसंज्ञिकनुं क्रियेगळोळुमंदं मेणु बुद्धिविहीनः वर्त्तमानकार्य्यानभिज्ञनुं । निर्व्विज्ञानो च विज्ञानविहीननुं । विषयलोलश्च विषयंगळोळु स्पर्शादिबाह्येंद्रियार्त्थंगळोळु लंपटनुं । मानी अहंकारियुं । मायी च कुटिलवृत्तियुं तथा आलस्यश्चैव क्रियेगळोळु कर्त्तव्यंगळोळु कुंठनुं । भेद्यश्च पेररिंदमोळगरियल्पडुवनुमें दिनितुं कृष्णलेश्येय जीवलक्षणमक्कुं ॥

णिद्दावंचणबहुलो धणधण्णे होदि तिव्वसण्णा य ।
लक्खणमेयं भणियं समासदो णीललेस्सस्स ॥५११॥

निद्रावंचनाबहुलः धनधान्ये भवति तीव्रसंज्ञश्च । लक्षणमेतद् भणितं समासतो नीललेश्यस्य ॥

निद्राबहुलनु वंचनाबहुलनुं धनधान्यंगळोळु तीव्रसंज्ञेयनुळ्ळनुं धनधान्यंगळोळुतीव्रसंज्ञेयनुळ्ळनुं एंबिती लक्षणं संक्षेपदिदं नीललेश्येयेयनुळ्ळ जीवंगे पेळल्पट्टुदु ॥

रूसइ णिंदइ अण्णे दूसइ बहुसो य सोयभयबहुलो ।
असुयइ परिभवइ परं पसंसये अप्पयं बहुसो ॥५१२॥

रोषति निंदत्यन्यान् दुष्यति बहुशश्च शोकभयबहुलः । असूयति परिभवति परं प्रशंसये-दात्मानं बहुशः ।

एतल्लक्षणं तु–पुनः कृष्णलेश्यस्य भवति ॥५०९॥

मन्दः–स्वच्छन्दक्रियासु मन्दो वा, बुद्धिविहीन वर्तमानकार्यानभिज्ञ., निर्विज्ञानी च–विज्ञानरहितश्च विषयलोलश्च–स्पर्शादिबाह्येन्द्रियार्थेषु लम्पटश्च, मानी–अभिमानी, मायी च–कुटिलवृत्तिश्च तथा आलस्यश्चैव–क्रियासु कर्तव्येषु कुण्ठश्चैव भेद्यश्च परेणानवबोध्याभिप्रायश्च एतदपि कृष्णलेश्यस्य लक्षणं भवति ॥५१०॥

निद्राबहुल. वञ्चनबहुलः धनधान्येषु तीव्रसञ्ज्ञश्च इत्येतल्लक्षण सक्षेपेण नीललेश्यस्य भणितम् ॥५११॥

हो, दुष्ट और निर्दय हो, किसीके वशमें न आता हो, ये कृष्णलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥५०९॥

स्वच्छन्द अथवा कार्य करनेमें मन्द हो, बुद्धिहीन हो—वर्तमान कार्यको न जानता हो, अज्ञानी हो, स्पर्शन आदि इन्द्रियोंके विषयमें लम्पट हो, अभिमानी हो, कुटिल वृत्तिवाला मायाचारी हो, कर्तव्य कर्ममें आलसी हो, दूसरोंके द्वारा जिसका अभिप्राय न जाना जा सके ये सब भी कृष्ण लेश्याके लक्षण हैं ॥५१०॥

बहुत सोता हो, दूसरोंको खूब ठगता हो, धन्य-धान्यकी तीव्र लालसा हो ये संक्षेपसे नीललेश्यावालेके लक्षण हैं ॥५११॥

पेररं कोपिसुगुं बहुप्रकारदिदं पेररं निंदिसुगुं। बहुप्रकारदिदं पेररं दूषिसुगुं। शोकबहुलनुं भयबहुलनुं परनं सैरिसनुं परनं परिभविसुगुं तन्न बहुप्रकारदिदं प्रशंसेयं माडिकोळ्गुं।

ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं यिव परं पि मण्णंतो।
थूसइ अभित्थुवंतो ण य जाणइ हाणि वड्ढि वा ॥५१३॥

न च विश्वसिति परं सः आत्मानमिव परमपि मन्यमानः। तुष्यत्यभिष्टुवतो न च जानाति हानिं वृद्धिं वा।

सः अंतप्प जीवं परनं नंबुवनल्लं तन्नंतेये एंदु परनं बगेगुं। तन्न पोगळुत्तिरलु संतोषिसुगुं तनगं परगं हानियुमं वृद्धियुमं न जानाति अरियं।

मरणं पत्थेइ रणे देइ सुबहुगंपि थुव्वमाणो दु।
ण गणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स ॥५१४॥

मरणं प्रार्थयति रणे ददाति सुबहुकमपि स्तुवतः। न गणयति कार्य्याकार्य्यं लक्षणमेतत्कपोतलेश्यस्य।

काळगदोळु मरणमं बयसुगुं स्तुतिमाळ्पंगे बहुधनमनीगुं। कार्य्यमुमनकार्य्यमुमं गणिइसुवनल्लनितिदु कपोतलेश्येयमनुळ्ळंगे लक्षणमक्कुं।

जाणइ कज्जाकज्जं सेयमसेयं च सव्वसमपासी।
दयदाणरदो य मिदू लक्खणमेयं तु तेउस्स ॥५१५॥

जानाति कार्य्याकार्य्यं सेव्यमसेव्यं च सर्व्वसमदर्शी। दयादानरतश्च मृदुर्ल्लक्षणमेतत्तेजोलेश्यस्य।

परस्मै[3] कुप्यति, बहुधा परं निन्दति, बहुधा परं दुष्यति, च शोकबहुल, भयबहुल, पर न सहते परं परिभवति आत्मानं बहुधा प्रशसति ॥५१२॥

स परं न प्रत्येति—न विश्वसिति आत्मानमिव परमपि मन्यमान अभिष्टुवत. परस्योपरि तुष्यति स्वपरयोर्हानिवृद्धी न च—नैव जानाति ॥५१३॥

रणे मरणं प्रार्थयते, स्तुति कुर्वतो बहुधन (स्तूयमानस्तु बहुकमपि धनं) ददाति, कार्यमकार्य च न गणयति इत्येतत्कपोतलेश्यस्य लक्षण भवति ॥५१४॥

दूसरोंपर बहुत क्रोध करता हो, दूसरोंकी बहुत निन्दा करता हो, दूसरोंको बहुधा दोष लगाता हो, बहुत शोक करता हो, बहुत डरता हो, दूसरोंको अच्छा न देख सकता हो, अन्यकी निन्दा और अपनी बहुत प्रशंसा करता हो, दूसरोंका विश्वास न करता हो, दूसरोंको भी अपनी ही तरह अविश्वास करनेवाला मानता हो, प्रशंसा करनेवालेपर परम प्रसन्न हो, अपनी और परकी हानि-वृद्धिकी परवाह न करता हो, युद्धमें मरनेको तैयार हो, अपनी स्तुति करनेवालेको बहुत कुछ दे डालता हो, कार्य-अकार्यको न जाने, ये सब कपोतलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥५१२-५१४॥

---

१. म. धनमं कुडुगं। २. म. समदंसी। ३. ब. अन्यस्मै रुष्यति।

काय्यंमुमनकाय्यंमुमं सेव्यमुमनसेव्यमुमनरिगुं । सर्व्वसमर्दाशयुं दयेयोळं दानदोळं प्रीतिय-नुळ्ळनुं मनोवचनकायंगळोळु मृदुवुं एंबिवु तेजोलेश्येयनुळ्ळंगे लक्षणमक्कुं ।

चागी भद्दो चोक्खो उज्जुवकम्मो य खमदि बहुगंपि ।
साहुगुरुपूजणरदो लक्खणमेयं तु पम्मस्स ॥५१६॥

त्यागो भद्रः सौकर्य्यशीलः उद्युक्तकर्म्मा च क्षमते बहुकमपि साधुगुरुपूजारतो लक्षणमेतत्पद्म-लेश्यस्य ।

त्यागियुं भद्रपरिणामियुं सौकर्य्यशीलनुं शुभोद्युक्तकर्म्मनुं कष्टानिष्टंगळं पलवं सैरिसुवनुं मुनिजनगुरुजनपूजाप्रीतनुमेंबिवु पद्मलेश्येयनुळ्ळंगे लक्षणमक्कुं ।

ण य कुणइ पक्खवायं णवि य णिदाणं समो य सव्वेसि ।
णत्थि य रायद्दोसा णेहोवि य सुक्कलेस्सस्स ॥५१७॥

न च करोति पक्षपातं नापि निदानं समश्च सर्व्वेषां न स्तश्च रागद्वेषौ स्नेहोपि च शुक्ललेश्यस्य ।

पक्षपातमं माडं । निदानमुमं माडं । सर्व्वजनंगळगे समनप्पं । रागद्वेषमें बेरडुमिष्टानिष्टंगे-ळोळिल्लदनुं । पुत्रकलत्रादिगळोळु स्नेहमुमिल्लदनुं[2] इदु शुक्ललेश्येय जीवंगे लक्षणमक्कुं । आरनेय लक्षणाधिकारं तिदुर्दुदु । अनंतरं गत्यधिकारमं येकादशगाथासूत्रंगळिदं पेळदपं ।

कार्यमकार्यं च सेव्यमसेव्यं च जानाति, सर्वसमदर्शी दयायां दाने च प्रीतिमान्, मनोवचनकायेषु मृदुः इत्येतत्तेजोलेश्यस्य लक्षणं भवति ॥५१५॥

त्यागी भद्रपरिणामी सौकर्यशीलः शुभोद्युक्तकर्मा च कष्टानिष्टोपद्रवान्[3] सहते, मुनिजनगुरुजनपूजाप्रीति-मान् इत्येतत्पद्मलेश्यस्य लक्षणं भवति ॥५१६॥

पक्षपातं निदानं च न करोति सर्वजनानां समानश्च इष्टानिष्टयोः रागद्वेषरहितः पुत्रमित्रकलत्रादिषु स्नेहरहितः इत्येतत् शुक्ललेश्यस्य लक्षणं भवति ॥५१७॥ इति लक्षणाधिकारः षष्ठः ॥ अथ गत्यधिकारं एकादशभिः गाथासूत्रैराह—

कार्य-अकार्यको तथा सेवनीय-असेवनीयको जानता हो, सबको समान रूपसे देखता हो, दया और दानमें प्रीति रखता हो, मन-वचन-कायसे कोमल हो ये तेजोलेश्याके लक्षण हैं ॥५१५॥

त्यागी हो, भद्र परिणामी हो, सरल स्वभावी हो, शुभ कार्यमें उद्यमी हो, कष्ट तथा अनिष्ट उपद्रवोंको सह सकता हो, मुनिजन और गुरुजनकी पूजामें प्रीति रखता हो, ये पद्म-लेश्यावालेके लक्षण हैं ॥५१६॥

न पक्षपात करता हो, न निदान करता हो, सबमें समान भाव रखता हो, इष्ट-अनिष्टमें राग-द्वेष न करता हो, पुत्र, मित्र, स्त्रीमें रागी न हो, ये सब शुक्ललेश्यावालेके लक्षण है ॥५१७॥

छठा लक्षणाधिकार समाप्त ।

---

१. म गळोळेल्लवु । २. म °ल्ल यिदु । ३. ब. °नपि क्षमते ।

लेस्साणं खलु अंसा छव्वीसा होंति तत्थ मज्झिमया ।
आउगबंधणजोग्गा अट्ठट्ठवगरिसकालभवा ।।५१८।।

लेश्यानां खल्वंशाः षड्विंशतिर्भवंति तत्र मध्यमगाः । आयुर्बंधनयोग्याः अष्टाऽष्टापकर्ष-कालभवाः ।

शिला भेदसमान	पृथ्वी भेदसमान	धूळीरेखासमान	जल रेखासमान
उ ००००००० ज	उ ००००००००० ज	उ ०००००००००००ज	उ ००००००० ज
	कउ	तेउ	
कृ १	१।२।३।४।५।६।	६।५।४।३।२।१।	शु १
० ।१	१।१।१।४।४।४	४।१।१।१।०।०।	०
	२।	३	
	३	२० ष्ट ८	

आरुं लेश्येगळगे अंशंगळनितुं कूडि षड्विंशतिगळप्पुवु २६ । अवेंतेंदोडे कृष्णाद्यशुभलेश्या-त्रयक्कं जघन्यमध्यमोत्कृष्टंगळु प्रत्येकं मूरुमूरागलोंभत्तंशंगळप्पुवु । शुक्ललेश्यादि शुभलेश्यात्रय-क्कमंतयोंभत्तंशंगळप्पुवु-।मा कपोतलेश्येय उत्कृष्टांशदिदं मुंदे तेजोलेश्येय उत्कृष्टांशदिदं पिंदे कषायोदयस्थानंगळ नडु वणारुं लेश्येगल यथासंभवंगळायुर्बंधयोग्यमध्यमां·

लेश्या
४।५।६।६।५।४
४।४।४।४।१।१
स्थिति

षड्लेश्यानामंशा जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदादष्टादश । पुनः कपोतलेश्योत्कृष्टांशादग्रे तेजोलेश्योत्कृष्टांशात्प्राक्-कषायोदयस्थानेषु मध्यमांशा आयुर्बन्धयोग्या अष्टौ । एवं षड्विंशतिर्भवन्ति । तेषु—

शिला	पृथ्वी	धूलि	जल
उ ०००००० ज	उ ०००००० ज	उ ०००००० ज	उ०००००० ज
कृ १	१ २ ३ ४ ५ ६	६ ५ ४ ३ २ १	शु १
० १	१ १ १ ४ ४ ४	४ १ १ १ ० ०	०
	२	३ ०	
	३	२	
	० ० ० ०	० ० ० ०	
	मध्य	माशाः	

मध्यमा अष्टौ अष्टापकर्षकाले संभवन्ति । तद्यथा—भुज्यमानायुरपकृष्यापकृष्य परभवायुर्बध्यते इत्यपकर्षः । अपकर्षाणा[1] स्वरूपमुच्यते-कर्मभूमितिर्यग्मनुष्याणां भुज्यमानायुर्जघन्यमध्यमोत्कृष्टं विवक्षितमिदं ६५६१ अत्र

छह लेश्याओंके उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्यके भेदसे अठारह अंश होते हैं। पुनः कपोतलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे आगे और तेजोलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे पहले कषायके उदयस्थानोंमें आठ मध्यम अंश हैं जो आयुबन्धके योग्य होते हैं। इस प्रकार छब्बीस अंश होते हैं। आठ मध्यम अंश अपकर्ष कालमें होते हैं। जो इस प्रकार हैं—भुज्यमान अर्थात् वर्तमानमें जिसे भोग रहे हैं उस आयुका अपकर्षण कर-करके परभवकी आयुका बन्ध

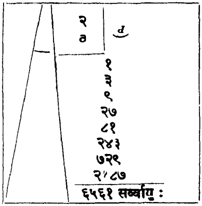
१. ब. तत्स्वरूप ।

शंगळें दु । ८ । अंतु लेश्यांशंगळनितुं षड्विंशत्यंशगलप्पुववरोळा मध्यमांशंगळप्पायुर्बंधयोग्यांशंगळें टुमष्टापकर्षकालसंभवंगळप्पुववें तें दोडे भुज्यमानायुष्यमनपकर्षिसियपकर्षिसि परायुष्यमं कट्टुवुदनपकर्षमें बुदु पूर्वायुरपकृष्यापकृष्यैव परायुर्बध्यत इति अपकर्षः एंबती निरुक्तिलक्षणसिद्धमप्पुदरिंदमी यॆंटुमपकर्षंगळगे स्वरूपमें तें दोडोर्व्वं कर्म्मभूमिजं मनुष्यनागल्मेण्तिर्य्यंचनागलु भुज्यमानायुष्यं जघन्यमध्यमोत्कृष्टमं विवक्षितमनदं ६५६१ त्रिभागं माडिदेकभागद २१८७ प्रथमसमयं मोदलगों डंतर्म्मुहुर्त्तकालमायुबंधयोग्यमक्कुमल्लि परभवायुष्यमं कट्टुगुमल्लि कट्टिदोडे अदं त्रिभागं माडिदेकभागद ७२९ प्रथमकालदंतर्म्मुहूतदोळु बंधमिल्लदोडदं त्रिभागं माडिदेकभागद २४३ प्रथमकालांतर्म्मुहूर्त्तदोळ्कट्टदोडदं त्रिभागं माडिदेकभागद ८१ प्रथमकालदोळ्बंधमिल्लदोडदं त्रिभागं माडिदेकभागद २७ प्रथमसमयदोळु परभवायुष्यमं कट्टल्मोदलगोळ्ळदिद्दों डदं त्रिभागं माडिदेकभागद ९ प्रथमांतर्मुहूर्त्तक्के परभवायुष्यमं कट्टदोडदं त्रिभागं माडिदेकभागदोळु ३। प्रथमकालदोळ्कट्टदिद्दों डदं त्रिभागं माडिदेकभागद १ प्रथमकालदोळु परभवायुष्यमं कट्टुगुमितुंटेयपकर्षंगळुप्पुवा एंटनेय अपकर्षदोळायुर्बंधमक्कुमेंब नियममुमिल्लं । मत्तपकर्षमुमिल्लमंतादोडायुबंधमें तक्कुमें दोडे आ आ संक्षेपाद्धे भुज्यमानायुष्यदोळुळिदुदें बागळपरभवायुष्मंतर्म्मुहूर्त्तमात्रसमयप्रबद्धंगळनियमदिंदं कट्टि समाप्तमागले वेळकुमें बिदु नियममक्कुमें दरिवुदु । आ संक्षेपाद्धि यें बदुं भुज्यमानायुष्यद कडेयोळावल्यसंख्यातैकभागमक्कुं ।

भागद्वयेऽतिक्रान्ते तृतीयभागस्य २१८७ प्रथमान्तर्मुहूर्तः परभवायुर्बन्धयोग्य, तत्र न बद्धं तदा, तदेकभागतृतीयभागस्य ७२९ प्रथमान्तर्मुहूर्त । तत्रापि न बद्धं तदा तदेकभागतृतीयभागस्य २४३ प्रथमान्तर्मुहूर्तं । एवमग्रे नेतव्यमष्टवारं यावत् । इत्यष्टैवापकर्षाः । नाष्टमापकर्षे[1]ऽप्यायुर्बन्धनियम, नाप्यन्योऽपकर्ष. तर्हि आयुर्बन्ध' कथं ? असंक्षेपाद्धा भुज्यमानायुषोऽन्त्यावल्यसंख्येयभाग तस्मिन्नवशिष्टे प्रागेव अन्तर्मुहूर्तमात्रसमयप्रबद्धान् परभवायुर्नियमेन बद्ध्वा समाप्नोतीति नियमो ज्ञातव्य'—

होता है इसे ही अपकर्ष कहते हैं। अपकर्षोंका स्वरूप कहते हैं—किसी कर्मभूमिके तिर्यंच या मनुष्योंकी भुज्यमान आयु जघन्य अथवा मध्यम अथवा उत्कृष्ट ६५६१ पैंसठ सौ इकसठ वर्ष है। इसमें-से दो भाग बीतनेपर तृतीय भाग इक्कीस सौ सत्तासी २१८७ का प्रथम अन्तर्मुहूर्त परभवकी आयुबन्धके योग्य है। यदि उसमें बन्ध नहीं हुआ तो उस इक्कीस सौ सत्तासीके दो भाग बीतनेपर तृतीय भाग सात सौ उनतीस ७२९ का प्रथम अन्तर्मुहूर्त परभवकी आयुबन्धके योग्य होता है। उसमें भी यदि बन्ध नहीं हुआ तो सात सौ उनतीसमें-से दो भाग बीतनेपर तीसरे भाग दो सौ तैंतालीसका प्रथम अन्तर्मुहूर्त आयुबन्धके योग्य है। इसी प्रकार आगे-आगे आठ बार तक ले जाना चाहिए। इस प्रकार आठ ही अपकर्ष होते हैं। आठवें अपकर्षमें भी आयुबन्ध नियमसे नहीं होता और अन्य अपकर्ष भी नहीं होता। तब आयुबन्ध कैसे होता है? उत्तर है-'आसंक्षेपाद्धा' अर्थात् भुज्यमान आयुके अन्तिम आवलीका असंख्यातवाँ भाग अवशेष रहनेसे पहले ही अन्तर्मुहूर्त मात्र समयप्रबद्धोंको लेकर परभवकी आयु नियमसे बाँधकर समाप्त करता है यह नियम जानना। यहाँ विशेष

१ ब °कर्षेणायु°।



इल्लि बिशेषनिर्णयं माडल्पडुगुमदें तें दोडे आवनोर्व्वं सोपक्रमायुष्यनप्प जीवं सोपक्रमायुष्यनें दें बुदेनें दोडे कदलीघातायुष्यमनुळ्ळनें बवर्त्थमदु कारणमागि देवनारकरुं भोगभूमिजरुमनुपक्रमायुष्यरें बुदर्त्थं । आ सोपक्रमायुष्यजीवंगळु तंतम्म भुज्यमानायुष्यस्थितियोळु द्वित्रिभागमतिक्रांतमागुत्तिरलु शेषत्रिभागद प्रथमसमयं मोदल्गों डु अंतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतं परभवायुर्ब्बंधप्रायोग्यरप्परु । मुंपेळ्दा संक्षेपाद्धिपर्य्यंतमल्लि आयुस्तोकबंधाद्धा कालाभ्यंतरदोळायुर्बंधप्रायोग्यपरिणामंगळिद केलवु जीवंगळु अष्टवारंगळं केलवु जीवंगळु सप्तवारंगळं केलवु जीवंगळु षड्वारंगळं केलवु जीवंगळु पंचवारंगळं केलवु जीवंगळ् चतुर्व्वारंगळं केलवु जीवंगळु त्रिवारंगळं केलवु जीवगळुं द्विवारंगळं केलवु जीवंगळेकवारंगळं परिणमिसुववेकें दोडे स्वभावदिदमेतद्बंधप्रायोग्यपरिणमनमा जीवंगळगे कारणांतरनिरपेक्षमें बुदर्त्थं । संदृष्टिरचने ॥

२
a
१
३
९
२७
८१
२४३
७२९
२१८७
६५६१

अत्र विशेषनिर्णयः क्रियते । सोपक्रमायुष्काः कदलीघातायुष्काः; तेन देवनारकभोगभूमिजा अनुपक्रमायुष्का भवन्ति । सोपक्रमायुष्का उक्तरीत्या आयुर्बध्नन्ति । तत्रायुस्तोकबन्धाद्धाभ्यन्तरे तद्योग्यपरिणामैः केचिदष्टवारं केचित्सप्तवारं केचित् षड्वारं केचित्पञ्चवारं केचित् चतुर्वारं केचित्त्रिवारं केचिद् द्विवारं केचिदेकवारं परिणमन्ति । स्वभावादेव तद्बन्धप्रायोग्यपरिणमनं जीवाना कारणान्तरनिरपेक्षमित्यर्थः । संदृष्टिः—

निर्णय करते हैं। जिनका बिषादिके द्वारा कदलीघातमरण होता है वे सोपक्रम आयुवाले होते हैं। अतः देव, नारकी और भोगभूमिया निरुपक्रम आयुवाले होते हैं। सोपक्रम आयुवाले उक्त रीतिसे आयुबन्ध करते हैं। उन अपकर्षोंमें आयुबन्धके कालमें आयुबन्धके योग्य परिणामोंसे कोई आठ बार, कोई सात बार, कोई छह बार, कोई पाँच बार, कोई चार बार, कोई तीन बार, कोई दो बार, कोई एक बार परिणमन करते हैं। अपकर्ष कालमें ही जीवोंके आयुबन्धके योग्य परिणमन स्वभावसे होता है। उसका कोई अन्य कारण नहीं है। आयुके

अष्टापकर्षं							
ज००उ ८।८।८	सप्तापकर्षं						
ज००उ ८।७।७	ज००उ ७।७।७	षडपकर्षं					
ज००उ ८।६।६	ज००उ ७।६।६।	ज००उ ६।६।६।	पंचापकर्षं				
ज००उ ८।५।५।	ज००उ ७।५।५।	ज००उ ६।५।५।	ज००उ ५।५।५।	चतुरपकर्षं			
ज००उ ८।४।४।	ज००उ ७।४।४।	ज००उ ६।४।४।	ज००उ ५।४।४।	ज००उ ४।४।४।	त्रिकापकर्षं		
ज००उ ८।३।३।	ज००उ ७।३।३।	ज००उ ६।३।३।	ज००उ ५।३।३।	ज००उ ४।३।३।	ज००उ ३।३।३।	द्विकापकर्षं	
ज००उ ८।२।२।	ज००उ ७।२।२।	ज००उ ६।२।२।	ज००उ ५।२।२।	ज००उ ४।२।२।	ज००उ ३।२।२।	ज००उ २।२।२।	एकापकर्षं
ज००उ ८।१।१	ज००उ ७।१।१।	ज००उ ६।१।१।	ज००उ ५।१।१	ज००उ ४।१।१	ज००उ ३।१।१	ज००उ २।१।१	ज००उ १।१।१

तृतीयभागप्रथमसमयदोळावर्केलंबरिदं परभवायुष्यबंधप्रारब्धमादोडवर्ग्गळंतर्म्मुहूर्त्तदोळे-बंधमं निष्ठापिसुवरु अल्लदोडे द्वितीयवारदोळु सर्वायुष्यदोळु नवमांशमवशेषमावल्लियुं परभवायुबंध-प्रायोग्यरप्परु। अथवा तृतीयवारदोळु सर्वायुस्थितियोळु सप्तविंशतिभागावशेषमादल्लियुं परभवा-युर्ब्बंधप्रायोग्यरप्परितु शेषत्रिभागत्रिभागावशेषमागुत्तिरलु परभवायुर्ब्बंधप्रायोग्यरप्परें दितु नड-

अष्टापकर्ष							
ज उ	सप्तापकर्ष						
८ ८ ८	ज उ	षष्टापकर्ष					
८ ७ ७	७ ७ ७	ज उ	पचापकर्ष				
८ ६ ६	७ ६ ६	६ ६ ६	ज उ	चतुरपकर्ष			
८ ५ ५	७ ५ ५	६ ५ ५	५ ५ ५	ज उ	त्र्यपकर्ष		
८ ४ ४	७ ४ ४	६ ४ ४	५ ४ ४	४ ४ ४	ज. उ	द्वयपकर्ष	
८ ३ ३	७ ३ ३	६ ३ ३	५ ३ ३	४ ३ ३	३ ३ ३	ज उ	एकापकर्ष
८ २ २	७ २ २	६ २ २	५ २ २	४ २ २	३ २ २	२ २ २	ज उ
८ १ १	७ १ १	६ १ १	५ १ १	४ १ १	३ १ १	२ १ १	१ १ १

तृतीयभागप्रथमसमये यैः परभवायुर्बन्ध. ते अन्तर्मुहूर्ते एव बन्धं निष्ठापयन्ति। अथवा द्वितीयवारे सर्वायुर्नवमांशावशेषेऽपि तद्बन्धप्रायोग्या भवन्ति। अथवा तृतीयवारे सर्वायुःसप्तविंशतिभागावशेषेऽपि प्रायोग्या

तीसरे भागके प्रथम समयमें जिन्होंने परभवकी आयुके बन्धका प्रारम्भ किया वे अन्तर्मुहूर्त-में ही बन्धको पूर्ण करते हैं। अथवा दूसरी बार पूरी आयुका नौवाँ भाग शेष रहनेपर भी आयुबन्धके योग्य होते हैं। अथवा तीसरी बार पूरी आयुका सत्ताईसवाँ भाग शेष रहनेपर भी आयुबन्धके योग्य होते हैं। इस प्रकार आठ अपकर्ष पर्यन्त जानना। किन्तु प्रत्येक

सल्पडुवुवु। यावदष्टमापकर्षमन्नेवरं त्रिभागावशेषमागुत्तिरलायुष्यमं कट्टुवरें बेंबेकांतमिल्लों वुं टु आ आ एडेयोळु परभवायुर्ब्बंधप्रायोग्यरप्परें बुं पेळल्पट्टुदक्कुं। निरुपक्रमायुष्यरनपवर्तितायुष्यरु मत्ते देवनारकरु भुज्यमानायुष्यं षण्मासावशेषमागुत्तिरलु परभवायुर्बंधप्रायोग्यरप्परल्लियुमष्टापकर्षंगळप्पुवु। समयाधिकपूर्व्वकोटियं मोदल्माडि त्रिपलितोपमायुष्यपर्य्यंतमाद संख्यातासंख्यातवर्षायुष्यरुगळप्प तिर्य्यग्मनुष्यभोगभूमिजरुगळं निरुपक्रमायुष्यरें बु केकोळ्वुदु।

इल्लि अष्टापकर्षमं माडि परभवायुर्बंधमं माळ्प जीवंगळु सर्वतः स्तोकंगळु अवं नोडलु सप्ताकर्षंगळिंदमायुर्बंधमंमाळ्प जीवंगळु संख्यातगुणंगळवं नोडलु षडपकर्षंगळिंदमायुर्ब्बंधमं माळ्प जीवंगळु संख्यातगुणंगळवं नोडलु पंचापकर्षंगळिंदमायुर्ब्बंधमं माळ्प जीवंगळु संख्यातगुणंगळवं नोडलु चतुरपकर्षंगळिंदमायुर्ब्बंधमं माळ्प जीवंगळु संख्यातगुणंगळवं नोडलु त्र्यपकर्षंगळिंदमायुर्ब्बंधमं माळ्प जीवंगळु संख्यातगुणंगळवं नोडलु द्वयपकर्षंगळिंदमायुर्ब्बंधमं माळ्प जीवंगळु संख्यातगुणंगळु अवं नोडलेकापकर्षदिंदमायुर्ब्बंधमं माळ्प जीवंगळु संख्यातगुणंगळप्पुववक्के संदृष्टिरचने।

१३-२-१	१३-२-१	१३-२-१	१३-२-१	१३-२-१	१३-२-१	१३-२-१	१३-२-१
२	२ १	२ २ २	२ २ २ २	२२२२२	२२२२२२	२२२२२२२	२२२२२२२२
१	२	३	४	५	६	७	८

भवन्ति। एवमष्टमापकर्षपर्यन्तं ज्ञातव्यं। [1]त्रिभागत्रिभागावशेषे सत्यायुर्बध्नन्ति एव इत्येकान्तो नास्ति तत्र तत्र परभवायुर्बन्ध प्रायोग्या भवन्तीति कथितं भवति। निरुपक्रमायुष्काः अनपवर्तितायुष्का देवनारका भुज्यमानायुषि षड्मासावशेषे सति परभवायुर्बन्धप्रायोग्या भवन्ति। अत्राप्यष्टापकर्षाः स्युः। समयाधिकपूर्वकोटिप्रभृतित्रिपलितोपमपर्यन्तं संख्यातासंख्यातवर्षायुष्कभोगभूमितिर्यग्मनुष्या अपि निरुपक्रमायुष्का इति ग्राह्यम्। अत्र च अष्टापकर्षे परभवायुर्बन्ध कुर्वाणा जीवा सर्वत. स्तोकाः, ततः सप्तापकर्षे. कुर्वाणाः सख्यातगुणाः। ततः

त्रिभागके शेष रहनेपर आयुबन्ध करते ही हैं ऐसा एकान्त नहीं है। हाँ, त्रिभागोंमें आयुबन्धके योग्य होते है। निरुपक्रम आयुवाले देव और नारकी भुज्यमान आयुमें छह मास शेष रहनेपर परभवकी आयुबन्धके योग्य होते हैं। यहाँ भी छह महीनेमें त्रिभाग करके आठ अपकर्ष होते हैं। उनमें ही आयुबन्ध होता है। एक समय अधिक एक पूर्व कोटिसे लेकर तीन पल्य पर्यन्त संख्यात और असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमिया, तिर्यंच और मनुष्य भी निरुपक्रम आयुवाले होते हैं। इनके आयुका नौ मास शेष रहनेपर आठ अपकर्षके द्वारा परभवके आयुका बन्ध होनेके योग्य है। इतना ध्यानमें रखना चाहिए कि जिस गतिसम्बन्धी आयुका बन्ध प्रथम अपकर्षमें होता है पीछे यदि द्वितीयादि अपकर्षोंमें आयुका बन्ध होता है तो उसी गतिसम्बन्धी आयुका बन्ध होता है। यदि प्रथम अपकर्षमें आयुका बन्ध नहीं होता तो दूसरे अपकर्षमें जिस-किसी आयुका बन्ध होता है, तीसरे अपकर्षमें यदि बन्ध हो तो उसी आयुका बन्ध होता है। इस प्रकार कितने ही जीवोंके आयुका बन्ध एक ही अपकर्षमें होता है, कितनोंके दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात या आठ अपकर्षोंमें होता है। यहाँ आठ अपकर्षोंके द्वारा परभवकी आयुका बन्ध करनेवाले जीव सबसे थोड़े होते

१. ब. त्रिभागावशेषे।

मत्तेंटपकर्षंगळिदमायुर्बंधमं माळ्पंगे अष्टमापकर्षदोळायुर्बंधाद्धि जघन्यं स्तोकमक्कु ।२१। मदरुत्कृष्टबंधाद्धि विशेषाधिकमक्कु २१।५ मदं नोडलं मत्तेयुमष्टापकर्षंगळिदमायुर्बंधमं
४
माळ्पंगे सप्तमापकर्षदोळायुर्बंध जघन्याद्धि संख्यातगुणमक्कु २१५४ मदं नोडलदरुत्कृष्टबंधाद्धा
४
विशेषाधिकमक्कु २१।५।४।५। मदं नोडलु सप्तापकर्षदोळायुर्बंधमं माळ्पंगे सप्तमापकर्ष-
४।४
दोळायुर्बंधजघन्याद्धि संख्यातगुणमकु २१।५।४।५।४ मदं नोडलदरुत्कृष्टं विशेषाधिकमक्कु
४।४
२१।५।४।५।४।५ मदं नोडलुमष्टापकर्षंगळिद मायुर्बंधमं माळ्पन षष्ठापकर्षदोळायुर्बंधाद्धि
४।४।४
जघन्यं संख्यातगुणमक्कु २७।५।४५।४।५४ मदं नोडलदरुत्कृष्टं विशेषाधिकमक्कु
४४४
२१।५।४।५।४।५।४।५ मदं नोडलु सप्तापकर्षंगळिदमायुबंधमं माळ्पन षष्ठापकर्षदोळु
४४४४

षडपकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततः पञ्चापकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततश्चतुरपकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततस्त्र्यपकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततो द्वयपकर्षाभ्यां कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततः एकापकर्षेण कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । संदृष्टिः—

१३—१—१	१३—१—१	१३—१—१	१३—१-१	३१—१—१	१३—१—१	१३—१—१	१३—१—१
१११११११११	११११११११	१११११११	११११११	१११११	११११	११	१
८	७	६	५	४	३	२	१

पुनरष्टापकर्षैरायुर्बध्नतोऽष्टमापकर्षे आयुर्बन्धाद्धाजघन्यं स्तोकं २ १ । ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं २१५ ।
४
ततोऽष्टापकर्षैरायुर्बध्नतः सप्तमापकर्षे आयुर्बन्धाद्धाजघन्यं संख्यातगुणं २ १ । ५ ४ । ततस्तदुत्कृष्टं विशेषा-
४
धिक २१।५।४।५ । ततः सप्तापकर्षैरायुर्बध्नतः सप्तमापकर्षे आयुर्बन्धाद्धा जघन्यं संख्यातगुणं २१।५।४।५।४
४।४ ४।४
ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं २१।५।४।५।४।५। ततोऽष्टापकर्षैरायुर्बध्नतः षष्ठापकर्षे आयुर्बन्धाद्धा
४।४।४

हैं। सात अपकर्षोंमें आयुबन्ध करनेवाले उनसे संख्यात गुणे हैं। छह अपकर्षोंमें करनेवाले उनसे भी संख्यातगुणे हैं। पाँच अपकर्षोंमें करनेवाले उनसे भी संख्यातगुणे हैं। चार अपकर्षोंमें करनेवाले उनसे संख्यातगुणे हैं। तीन अपकर्षोंमें करनेवाले उनसे संख्यातगुणे हैं। दो अपकर्षोंमें करनेवाले उनसे संख्यातगुणे हैं और एक अपकर्षमें करनेवाले उनसे संख्यातगुणे हैं। आठ अपकर्षोंके द्वारा आयुका बन्ध करनेवाले जीवके आठवें अपकर्षमें आयुबन्धका जघन्यकाल थोड़ा है। उससे उसका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। आठ अपकर्षोंके द्वारा आयुबन्ध करनेवाले जीवके सातवें अपकर्षमें आयुबन्धका जघन्य काल उससे संख्यातगुणा है। उससे उसका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। उससे सात अपकर्षोंके द्वारा आयुबन्ध करनेवाले जीवके सातवें अपकर्षमें आयुबन्धका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उससे उसका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। उससे आठ अपकर्षों

आयुर्ब्बंधमं माळ्प जघन्याद्धि संख्यातगुणमक्कु २१ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ मदं
४ । ४ । ४ । ४
नोडलदरुत्कृष्टं विशेषाधिकमक्कु २१ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४५ मदं नोडलुं षडपकर्ष-
४ ४ ४ ४ ४
गळिंदमायुर्ब्बंधमं माळ्पन षष्ठापकर्षदोळायुर्बंधमं माळ्पंगे जघन्यबंधाद्धि संख्यातगुणमक्कुं
२१ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ मदं नोडलदरुत्कृष्टबंधाद्धि विशेषाधिकमक्कु—
४ ४ ४ ४ ४
२१ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ मी प्रकारदिंदमेकापकर्षदुत्कृष्टपर्य्यंतं
४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।
नडसल्पडुगुमंतु नडसुत्तिरलु आयुर्बंधाद्धि विकल्पंगळेप्पत्तेरडुप्पुवु—। ७२। मितायुर्ब्बंधयोग्यंगळु

जघन्यं सख्यातगुणं २ १ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिक २१।५।४।५।४।५।४।५ । ततः
४ । ४ । ४ ४ ।४।४।४
सप्तापकर्षैरायुर्बध्नतः षष्ठापकर्षे आयुर्बन्धाद्धा जघन्यं संख्यातगुणं २१ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४
४ । ४ । ४ । ४
ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं—२१ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ ततः षडपकर्षैरायुर्बध्नतः षष्ठापकर्षे
४ । ४ । ४ । ४ । ४
आयुर्बन्धाद्धा जघन्यं संख्यातगुणं—२१ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ ततस्तदुत्कृष्ट विशेषा-
४ । ४ । ४ । ४ । ४

द्वारा आयुबन्ध करनेवाले जीवके छठे अपकर्षमें आयुबन्धका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उससे उसका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। उससे सात अपकर्षोंके द्वारा आयुबन्ध करनेवाले जीवके छठे अपकर्षमें आयुबन्धका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उससे उसका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। उससे छह अपकर्षोंके द्वारा आयुबन्ध करनेवाले जीवके छठे अपकर्षमें आयुबन्धका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उससे उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। इस प्रकार एक अपकर्षके उत्कृष्ट पर्यन्त ले जानेपर बहत्तर ७२ विकल्प होते हैं ॥५१८॥

विशेषार्थ—ऊपर टीकामें इन बहत्तर भेदोंकी रचना दिखायी है। उसमें आठ अपकर्षोंके द्वारा आयुबन्धकी रचनामें पहली पंक्तिके कोठोंमें जो आठ-आठका अंक रखा है वह यह बतलाता है कि यहाँ आठ अपकर्षोंके द्वारा आयु बाँधनेवालोंका ग्रहण जानना। दूसरी-तीसरी पंक्तिमें जो आठसे लेकर एक तक अंक लिखे है, उनसे यह बतलाया है कि आठ अपकर्षोंके द्वारा बन्ध करनेवाले जीवके आठवें आदि अपकर्षोंका ग्रहण किया गया है। जिसमें-से दूसरी पंक्तिमें जघन्य कालको लेकर और तीसरी पंक्तिमें उत्कृष्ट कालको लेकर ग्रहण किया है। इसी प्रकार सातसे लेकर एक अपकर्ष तक आयुबन्धकी रचनाका अर्थ जानना। आठों रचनाओंके दूसरी और तीसरी पंक्तिके सब कोठे जिनके ऊपर ज और उ लिखा है बहत्तर हैं। इन बहत्तर स्थानोंमें आयुबन्धके कालका अल्पबहुत्व इस प्रकार जानना। विवक्षित जघन्यमें संख्यातका भाग देनेपर जो प्राप्त हो उतना विशेषका प्रमाण जानना। उसको जघन्यमें जोड़नेपर उत्कृष्टका प्रमाण होता है, उत्कृष्टसे आगेका जघन्य संख्यातगुणा जानना। सामान्यसे सबका काल अन्तर्मुहूर्त है।

लेश्यामध्यमांशंगळें टप्पुवष्टापकर्षंगळिनवरुत्पत्तिक्रममं पेळ्दनंतरं शेषाष्टादशांशंगळु चतुर्गति-गमनकारणंगळें दु पेळ्वपं ।

सेसट्ठारस अंसा चउगइगमणस्स कारणा होंति ।
सुक्कुक्कस्संसमुदा सव्वट्ठं जांति खलु जीवा ॥५१९॥

शेषाष्टादशांशाश्चतुर्गतिगमनस्य कारणानि भवंति । शुक्लोत्कृष्टांशमृताः सर्व्वार्त्थं यांति खलु जीवाः ।

आयुर्ब्बंधनयोग्यलेश्यामध्यमांशंगळनेंटं कळेदुळिदष्टादशलेश्यांशंगळु चतुर्गतिगमनकारणंगळप्पुववरोळु शुक्ललेश्योत्कृष्टांशदिदं मृतराद जीवंगळु सर्व्वार्त्थसिद्धींद्रकदोळु यांति पुट्टुवरु खलु नियमदिदं ।

अवरंसमुदा होंति सदारदुगे मज्झिमंसगेण मुदा ।
आणदकप्पादुवरिं सव्वट्ठाइल्लगे होंति ॥५२०॥

अवरांशमृता भवंति शतारद्विके मध्यमांशेन मृताः । आनतकल्पादुपरि सर्व्वार्त्थविमके भवंति ।

शुक्ललेश्या जघन्यांशदिदं मृतराद जीवंगळु शतारसहस्रारकल्पद्विकदोळु भवंति पुट्टुवरु । शुक्ललेश्यामध्यमांशदिदं मृतराद जीवंगळु आनतकल्पदिदं मेले सर्व्वार्त्थसिद्धींद्रकक्कादियागिर्द्द विजयादिविमानावसानमादुववरोळु यथासंभवमागि भवंति पुट्टुवरु।

पम्मुक्कस्संसमुदा जीवा उवजांति खलु सहस्सारं ।
अवरंसमुदा जीवा सणक्कुमारं च माहिंदं ॥५२१॥

पद्मोत्कृष्टांशमृताः जीवा उपयांति खलु सहस्रारं । अवरांशमृता जीवाः सनत्कुमारं च माहेंद्रं ॥

धिकं २१ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ एवमेकापकर्षस्योत्कृष्टपर्यन्त नीते द्वासप्तति-
४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४

विकल्पा भवन्ति ७२ एवमायुर्बन्धयोग्ये लेश्यामध्यमांशानामष्टानामष्टापकर्षैरुत्पत्तिक्रम उक्त. ॥५१८॥

तेभ्यो मध्यमांशेभ्य. शेषा. अष्टादशांशा चतुर्गतिगमनकरणानि भवन्ति । तेषु मध्ये शुक्ललेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः सर्वार्थसिद्धीन्द्रके यान्ति—उत्पद्यन्ते खलु नियमेन ॥५१९॥

शुक्ललेश्याजघन्यांशेन मृता जीवाः शतारसहस्रारकल्पद्विके भवन्ति—उत्पद्यन्ते । शुक्ललेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः आनतकल्पादुपरिसर्वार्थसिद्धीन्द्रकस्यादिमविजयादिविमानपर्यन्तेषु यथासंभवमुत्पद्यन्ते ॥५२०॥

इस प्रकार आयुबन्धके योग्य लेश्याके आठ मध्यम अंशोंकी आठ अपकर्षोंके द्वारा उत्पत्तिका क्रम कहा ॥५१८॥

उन मध्यम अंशोंसे शेष रहे अठारह अंश चारों गतियोंमें गमनके कारण होते हैं । उनमें-से शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे जीव सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमानमें नियम-से उत्पन्न होते है ॥५१९॥

शुक्ललेश्याके जघन्य अंशसे मरे जीव शतार सहस्रार कल्पोंमें उत्पन्न होते हैं । शुक्ल-लेश्याके मध्यम अंशसे मरे जीव आनतकल्पसे ऊपर और सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रकके विजयादि विमान पर्यन्त यथासम्भव उत्पन्न होते हैं ॥५२०॥

पद्मलेश्योत्कृष्टांशदिदं मृतराद जीवंगळु सहस्रारमुपयांति सहस्रारकल्पदोळु पुट्टुवरु खलु स्फुटमागि। पद्मलेश्याजघन्यांशदिदं मृतराद जीवंगळु सनत्कुमारं च माहेंद्रमुपयांति सनत्कुमार कल्पदोळं माहेंद्रकल्पदोळं पुट्टुवरु।

मज्झिमअंसेण मुदा तम्मज्झं जांति तेउजेट्ठमुदा।
साणक्कुमारमाहिंदंतिमचक्किंदसेढिम्मि ॥५२२॥

मध्यमांशेन मृताः तन्मध्यं यांति तेजोज्येष्ठमृताः सानत्कुमारमाहेंद्रांतिमचक्रेंद्रकश्रेण्यां।

पद्मलेश्यामध्यमांशदिदं मृतराद जीवंगळु तन्मध्यं यांति सहस्रारकल्पदिदं केळगे सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पंगळिदं मेले यथासंभवरागि पुट्टुवरु। तेजोलेश्योत्कृष्टांशदिदं मृतराद जीवंगळु सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पंगळ चरमपटलचक्रेंद्रकप्रणिधिगतश्रेणीबद्धविमानंगळोळ्पुट्टुवरु।

अवरंसमुदा सोहम्मीसाणादिमउडुम्मि सेढिम्मि।
मज्झिम अंसेण मुदा विमलविमानादिबलभद्दे ॥५२३॥

अवरांशमृताः सौधर्म्मेशानादिभूतऋत्वींद्रके श्रेण्यां। मध्यमांशेन मृताः विमलविमानादिबलभद्रे।

तेजोलेश्याजघन्यांशदिदं मृतराद जीवंगळु सौधर्मेशानकल्पंगळादिभूतऋत्वींद्रकदोळं श्रेणीबद्धदोळं पुट्टुवरु। तेजोलेश्यामध्यमांशदिदं मृतराद जीवंगलु सौधर्मेशानकल्पद्वितीयपटलदिंद्रकं विमलविमानमदु मोदलागि सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पंगळ द्विचरमपटलदिंद्रकं बलभद्रविमानमक्कु मल्लि पर्य्यंतं पुट्टुवरु।

पद्मलेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः सहस्रारकल्पमुपयान्ति खलु स्फुटम्। पद्मलेश्याजघन्यांशेन मृता जीवाः सानत्कुमारं माहेन्द्रं चोपयान्ति ॥५२१॥

पद्मलेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः सहस्रारकल्पादधः सानत्कुमारमाहेन्द्रद्वयादुपरि यथासंभवमुत्पद्यन्ते। तेजोलेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः सानत्कुमारमाहेन्द्रकल्पयोश्चरमपटलचक्रेन्द्रकप्रणिधिगतश्रेणीबद्धविमाने-षूत्पद्यन्ते ॥५२२॥

तेजोलेश्याजघन्यांशेन मृता जीवाः सौधर्मेशानकल्पयोरादिभूतऋत्विन्द्रके श्रेणीबद्धे चोत्पद्यन्ते। तेजोलेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः सौधर्मेशानकल्पद्वितीयपटलस्येन्द्रकं विमलनामकमादि कृत्वा सानत्कुमारमाहेन्द्रद्विचरमपटलस्येन्द्रकं बलभद्रनामकं तत्पर्यन्तम् उत्पद्यन्ते ॥५२३॥

पद्मलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे जीव सहस्रारकल्पमें उत्पन्न होते हैं। पद्मलेश्याके जघन्य अंशसे मरे जीव सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें उत्पन्न होते हैं ॥५२१॥

पद्मलेश्याके मध्यम अंशसे मरे जीव सहस्रारकल्पसे नीचे और सानत्कुमार माहेन्द्रसे ऊपर यथासम्भव उत्पन्न होते हैं। तेजोलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे जीव सानत्कुमार माहेन्द्र कल्पके अन्तिम पटल चक्रेन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानोंमें उत्पन्न होते हैं ॥५२२॥

तेजोलेश्याके जघन्य अंशसे मरे जीव सौधर्म ऐशान कल्पके प्रथम ऋतु नामक इन्द्रकके श्रेणिबद्ध विमानोंमें उत्पन्न होते हैं। तेजोलेश्याके मध्यम अंशसे मरे जीव सौधर्म ऐशान कल्पके द्वितीय पटलके विमल नामक इन्द्रकसे लेकर सानत्कुमार माहेन्द्रके द्विचरम पटलके बलभद्र नामक इन्द्रक पर्यन्त उत्पन्न होते हैं ॥५२३॥

किण्हवरंसेण मुदा अवधिट्ठाणम्मि अवरअंसमुदा ।
पंचमचरिमतिमिस्से मज्झे मज्झेण जायंते ॥५२४॥

कृष्णवरांशेन मृताः अवधिस्थाने अवरांशमृताः । पंचमचरमतिमिश्रे मध्ये मध्येन जायंते ॥५२४॥

कृष्णलेश्योत्कृष्टांशदिद मृतराद जीवंगळु सप्तमपृथ्वियोळोंदे पटलमक्कुमवरवधिस्थानेंद्रकबिलदोळु जायंते पुट्टुवरु। कृष्णलेश्याजघन्यांशदिदं मृतराद जीवंगळु पंचमपृथ्विय चरमपटलद तिमिश्रेंद्रकबिलदोळु जायंते पुट्टुवरु। कृष्णलेश्यामध्यमांशदिदं मृतराद जीवंगळु सप्तमपृथ्विय अवधिस्थानेंद्रकदे चतुःश्रेणिबद्धंगळोळं आ बिलदिदं मेलण षष्ठपृथ्विमघवियेंबुवदर पटलत्रयंगळोळु तत्तद्योग्यमागि जायंते पुट्टुवरु।

णीलुक्कस्संसमुदा पंचमअंधिंदयम्मि अवरमुदा ।
वालुकसंपज्जलिदे मज्झे मज्झेण जायंते ।।५२५।।

नीलोत्कृष्टांशमृताः पंचम अंध्रेंद्रके अवरमृताः । बालुकासंप्रज्वलिते मध्ये मध्येन जायंते ।।

नीललेश्योत्कृष्टांशदिदं मृतराव जीवंगळु पंचमपृथ्वियपटलपंचकदोळु द्विचरमपटलद अंध्रेंद्रकबिलदोळु जायंते पुट्टुवरु। पंचमपटलदोळं केलंबरु पुट्टुवरदु कारणमागि पंचमारिष्टेयोळु चरमपटलदोळु कृष्णलेश्याजघन्यांशदिदं नीललेश्योत्कृष्टांशदिदमुं, मृतराद केलवु जीवंगळु पुट्टुवरेंबी विशेषमरियल्पडुगुं। नीललेश्याजघन्यांशदिदं मृतराद जीवंगळु वालुकाप्रभेयनवपटलं-

कृष्णलेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः सप्तमपृथिव्यामेकमेव पटलं तस्यावधिस्थानेन्द्रके जायन्ते। कृष्णलेश्याजघन्यांशेन मृता जीवा पञ्चमपृथ्वीचरमपटलस्य तिमिस्रेन्द्रके जायन्ते। कृष्णलेश्यामध्यमांशेन मृता जीवा. तदवधिस्थानेन्द्रकस्य चतुःश्रेणीबद्धेषु षष्टपृथ्वीपटलत्रये पञ्चमपृथ्वीचरमपटले च तत्तद्योग्यतया जायन्ते ॥५२४॥

नीललेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवा. पञ्चमपृथ्वीद्विचरमपटलस्यान्ध्रेन्द्रके जायन्ते। केचित् पञ्चमपटलेऽपि जायन्ते। ततोऽरिष्टाचरमपटले कृष्णलेश्याजघन्यांशेन नीललेश्योत्कृष्टांशेनापि मृताः केचिज्जीवा उत्पद्यन्ते।

कृष्णलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे जीव सातवीं पृथिवीमें एक ही पटल है उसके अवधिस्थान नामक इन्द्रक बिलमें उत्पन्न होते हैं। कृष्णलेश्याके जघन्य अंशसे मरे जीव पाँचवीं पृथ्वीके अन्तिम पटल सम्बन्धी तिमिस्र नामक इन्द्रक बिलमें उत्पन्न होते हैं। कृष्णलेश्याके मध्यम अंशसे मरे जीव अवधिस्थान नामक इन्द्रकके चारों दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिलोंमें, छठी पृथ्वीके तीनों पटलोंमें और पाँचवीं पृथ्वीके अन्तिम पटलमें अपनी-अपनी योग्यतानुसार उत्पन्न होते हैं ॥५२४॥

नीललेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे जीव पाँचवीं पृथ्वीके द्विचरम पटलके आन्ध्रेन्द्रकमें उत्पन्न होते हैं। कोई-कोई पाँचवें पटलमें भी उत्पन्न होते हैं। अरिष्ट पृथ्वीके अन्तिम पटलमें कृष्णलेश्याके जघन्य अंशसे और नीललेश्याके उत्कृष्ट अंशसे भी मरे कोई-कोई जीव उत्पन्न होते हैं इतना विशेष जानना। नीललेश्याके जघन्य अंशसे मरे जीव बालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वीके नौ पटलोंमें-से अन्तिम पटल सम्बन्धी संप्रज्वलित इन्द्रकमें उत्पन्न

१ म°क बिलदिद मेले षष्ठपृथ्वि मघवियोलु पंचमपृथ्वि, अरिष्टेयेंबुददर पटल पंचकदोलु चरमपटलदिदं केलगे षष्ठ।

गळोळु चरमपटलद संप्रज्वलितेंद्रकविलिबदोळु जायंते पुट्टुवरु। नीललेश्यामध्यमांशदोळु मृतराव जीवंगळु तृतीयपृथ्विमेघेयनवपटलद संप्रज्वलितेंद्रकबिलदिदं केळगे चतुर्त्थपृथ्वि अंजनेय पटल-सप्तकंगळोळु पंचमपृथ्विअरिष्टेय पटलपंचकंगळोळु चतुर्त्थपटलद अंधेंद्रकबिलदिलदिदं मेले मध्यदोळु यथायोग्यमागि जायंते पुट्टुवरु।

वरकाओदंसमुदा संजलिदं जांति तदियणिरयस्स।
सीमंतं अवरमुदा मज्झे मज्झेण जायंते ॥५२६॥

उत्कृष्टकपोतांशमृताः संज्वलितं यांति तृतीयनरकस्य। सीमंतं अवरमृताः मध्ये मध्येन जायंते ॥

कपोतलेश्योत्कृष्टांशदिदं मृतराद जीवंगळु तृतीयपृथ्विमेघेय नवपटलंगळोळु द्विचरमाष्टमपटलद संज्वलितेंद्रकदोळ्पुट्टुवरु। केलंबरुगळु चरमसंप्रज्वलितेंद्रकबिलदोळं पुट्टुवरें बी विशेषमरियल्पडुगुं। कापोतलेश्याजघन्यांशदिदं मृतराद जीवंगळु सीमंतं यांति घर्म्मेय प्रथमपटलद सीमंतेंद्रकबिलदोळ्पुट्टुवरु।

कापोतलेश्यामध्यमांशदिदं मृतराद जीवंगळु सीमंतेंद्रकदिंद केळगण पन्नेरडु पटलंगळोळं मेघेय द्विचरमसंज्वलितेंद्रकबिलदिद मेलण पटलंगळोळेळरोळु द्वितीयपृथ्विवंशेय पन्नोंदु पटलंगळोळं यथायोग्यमागि पुट्टु वरु।

इति विशेषो ज्ञातव्यः। नीललेश्याज[2]घन्यांशेन मृता जीवाः बालुकाप्रभानवपटलेषु चरमपटलस्य संप्रज्वलितेन्द्रके जायन्ते। नीललेश्यामध्यांशेन मृताः जीवाः तृतीयपृथ्वीनवमपटलस्य संप्रज्वलितेन्द्रकादधश्चतुर्थपृथ्वीपटलसप्तके पञ्चमपृथ्वीचतुर्थपटलस्यान्ध्रेन्द्रकादुपरि यथायोग्यं जायन्ते ॥५२५॥

कापोतलेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः तृतीयपृथ्वीनवपटलेषु द्विचरमाष्टमपटलस्य संज्वलितेन्द्रके उत्पद्यन्ते। केचित् चरमसंप्रज्वलितेन्द्रकेऽपीति विशेषोऽवगन्तव्यः। कापोतलेश्याजघन्यांशेन मृता जीवा घर्माप्रथमपटलस्य सीमन्तेन्द्रके उत्पद्यन्ते। कापोतलेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः सीमन्तेन्द्रकादधस्तनद्वादशपटलेषु मेघाया द्विचरमसंज्व[3]लितेन्द्रकादुपरितनसप्तमपटलेषु द्वितीयपृथ्व्येकादशपटलेषु च यथायोग्यमुत्पद्यन्ते ॥५२६॥

होते हैं। नीललेश्याके मध्यम अंशसे मरे जीव तीसरी पृथ्वीके नौवें पटलके संप्रज्वलित इन्द्रक बिलेसे नीचे और चतुर्थ पृथ्वीके सातों पटलोंमें तथा पंचम पृथ्वीके चतुर्थ पटल सम्बन्धी आन्ध्रेन्द्रकसे ऊपर यथायोग्य उत्पन्न होते हैं ॥५२५॥

कापोतलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे जीव तीसरी पृथ्वीके नौ पटलोंमें-से द्विचरम आठवें पटलके संज्वलित इन्द्रक बिलेमें उत्पन्न होते हैं। कोई-कोई अन्तिम संप्रज्वलित इन्द्रकमें भी उत्पन्न होते हैं यह विशेष जानना। कापोतलेश्याके जघन्य अंशसे मरे जीव घर्मा नामक प्रथम पृथ्वीके प्रथम पटल सम्बन्धी सीमन्त इन्द्रकमें उत्पन्न होते हैं। कापोतलेश्याके मध्यम अंशसे मरे जीव सीमन्त इन्द्रकसे नीचेके बारह पटलोंमें मेघा नामक तीसरी पृथ्वीके द्विचरम संज्वलित इन्द्रकसे ऊपरके सात पटलोंमें और दूसरी पृथ्वीके ग्यारह पटलोंमें यथायोग्य उत्पन्न होते हैं ॥५२६॥

---

१ म °लेगलेलरोलं। २ जघन्यांशेनापि मृता। मु.। ३. ल. संप्रज्व°।

किण्हचउक्काणं पुण मज्झंसमुदा हु भवणगादितिये ।
पुढवी-आउवणप्फइजीवेसु हवंति खलु जीवा ॥५२७॥

कृष्णचतुष्काणां पुनः मध्यमांशमृताः खलु भवनगादित्रये । पृथिव्यप्वनस्पतिजीवेषु भवंति खलु जीवाः ॥

कृष्णनीलकापोततेजोलेश्याचतुष्टयद मध्यमांशंगळिवं मृतराद कर्म्मभूमितिर्य्यग्मनुष्यरुं भोगभूमितिर्यग्मनुष्यरु भवनत्रयदोळु भवंति परिणमंति पुट्टुवरु । खलु यथायोग्यमागि भोगभूमिजतिर्य्यग्मनुष्यमिथ्यावृष्टिगळु तेजोलेश्यामध्यमांशदिदं मृतरादवर्ग्गळु भवनत्रयदोळु पुट्टुव कारणदिवं तेजोलेश्यासंभवमुमरियल्पडुगुं । तु मत्ते कृष्णादिचतुर्लेश्यामध्यमांशंगळिदं मृतराद तिर्य्यग्मनुष्यरुं भवनवानज्योतिषिकरुं सौधर्म्मैशानकल्पजरुगळुमप्प मिथ्यादृष्टिजीवंगळु बादरपर्य्याप्तपृथ्वीकायिकजीवंगळोळं बादरपर्य्याप्ताप्कायिकजीवंगळोळं पर्य्याप्तवनस्पतिकायिकजीवंगळोळं भवंति—परिणमंति पुट्टुवरु । भवनत्रयादि जीवंगळपेक्षेयिनिल्लियुं तेजोलेश्यासंभवमरियल्पडुगुं ।

किण्हतियाणं मज्झिमअसंमुदा तेउवाउवियलेसु ।
सुरणिरया सगलेस्सहि णरतिरियं जांति सगजोगं ॥५२८॥

कृष्णत्रयाणां मध्यमांशमृताः तेजोवायुविकलेषु । सुरनारकाः स्वलेश्याभिर्न्नरतिरश्चो यांति स्वयोग्यं ॥

कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयंगळ मध्यमांशदिदं मृतराद तिर्य्यग्मनुष्यरुगळु तेजस्कायिकवायुकायिकविकलत्रय असंज्ञिपंचेंद्रियसाधारणवनस्पतिगळेंबी जीवंगळोळु जांति जायंते पुट्टुवरु ।

अत्र पुन शब्दो विशेषप्ररूपकोऽस्ति। तेन कृष्णादित्रिलेश्यामध्यमांशमृताः कर्मभूमितिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टय. तेजोलेश्यामध्यमांशमृताः भोगभूमितिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टयश्च भवनत्रये खलु उत्पद्यन्ते इति ज्ञातव्यम् । तु पुन, कृष्णादिचतुर्लेश्यामध्यमांशमृततिर्यग्मनुष्यभवनत्रयसौधर्मैशानमिथ्यादृष्टय बादरपर्याप्तपृथ्व्यप्कायिकेषु पर्याप्तवनस्पतिकायिकेषु चोत्पद्यन्ते । भवनत्रयाद्यपेक्षया अत्रापि तेजोलेश्यासंभवो बोद्धव्य ॥५२७॥

कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयस्य मध्यमांशमृततिर्यग्मनुष्या तेजोवायुविकलत्रयासंज्ञिसाधारणवनस्पतिजीवेषु

इस गाथामें 'पुनः' शब्द विशेष कथनका सूचक है। अतः कृष्ण आदि तीन लेश्याओंके मध्यम अंशसे मरे कर्मभूमिके मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य तथा तेजोलेश्याके मध्यम अंशसे मरे भोगभूमि या मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषीदेवोंमें उत्पन्न होते हैं यह जानना। तथा कृष्ण आदि चार लेश्याके मध्यम अंशसे मरे तिर्यंच, मनुष्य, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म ऐशान स्वर्गके देव ये सब मिथ्यादृष्टि बादर पर्याप्तक पृथ्वीकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिकोंमें उत्पन्न होते हैं। भवनत्रिककी अपेक्षा यहाँ भी तेजोलेश्या सम्भव है यह जानना ॥५२७॥

कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याओंके मध्यम अंशसे मरे तिर्यंच और मनुष्य तेजः-

१. क पर्याप्तबादरप्रत्येकवनᵒ । २. म ᵒत्रयंगळेबी । ३ ब. अत्रापि तेजोलेश्या भवनत्रयाद्यपेक्षयैव । ४ ब ᵒवयमᵒ ।

भवनत्रयं मोदलागि सर्व्वार्त्थसिद्धिजखसानमाद सुररुं घर्म्मे मोदलागि अवधिस्थानावसानमाद नारकरुं स्वस्वलेश्यानुगमप्प नरत्वमुमं तिर्य्यक्त्वमुमं यांति येय्दुवरु। एंतनेय गत्यधिकारं तिद्दुं ॥

अनंतरं स्वाम्याधिकारमं गाथासप्तकविंदं पेळ्दपं—

काऊ काऊ काऊ णीला णीला य णीलकिण्हा य।
किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा पढमादिपुढवीणं ॥५२९॥

कापोती कापोती तथा कापोती नीले नीला च नीलकृष्णे च। कृष्णा च परमकृष्णा लेश्याः प्रथमादिपृथ्वीनां ॥

घर्म्मादिसप्तपृथ्विगळ नारकर्गे यथासंख्यमागि घर्म्मेय नारकर्गे कपोतलेश्याजघन्यमक्कुं। वंशेयनारकर्गे कपोतलेश्यामध्यमांशमक्कुं। मेघेय नारकर्गे कपोतलेश्योत्कृष्टमुं नीललेश्याजघन्यांशमुमक्कुं। अंजनेय नारकर्गे नीललेश्यामध्यमांशमक्कुं। अरिष्टेय नारकर्गे नीललेश्योत्कृष्टमुं कृष्णलेश्याजघन्यांशमुमक्कुं। मघविय नारकर्गे कृष्णलेश्यामध्यांशमक्कुं। माघविय नारकर्गे कृष्णलेश्योत्कृष्टांशमुमक्कुं।

णरतिरियाणं ओघो इगिविगले तिण्णि चउ असण्णिस्स।
सण्णि-अपुण्णगमिच्छे सासणसम्मे वि असुहतियं ॥५३०॥

नरतिरश्चामोघ एकविकले तिस्रः चतस्रोऽसंज्ञिनः संज्ञ्यपूर्णमिथ्यादृष्टौ सासादनसम्यग्दृष्टावप्यशुभत्रयी ॥

नरतिरश्चामोघः नरतिर्य्यंचरुगळ्गे प्रत्येकं सामान्योक्त षड्लेश्यगळप्पुववरोळु तिर्य्यंचरोळु एकविकलेषु एकेंद्रियजीवंगळ्गं विकलत्रयजीवंगळ्गं तिस्रः कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयमेयक्कुं।

उत्पद्यन्ते। भवनत्रयादि सर्वार्थसिद्धयन्तसुरा धर्माद्यवधिस्थानान्तनारकाश्च स्वस्वलेश्यानुगं नरतिर्यक्त्वं यान्ति ॥५२८॥ इति गत्यधिकार ॥ अथ स्वाम्यधिकार गाथासप्तकेनाह—

प्रथमादिपृथ्वीनारकाणा च लेश्योच्यते–तत्र घर्माया कापोतजघन्याशः। वंशाया कापोतमध्यमाश.। मेघाया कापोतोत्कृष्टाशनीलजघन्याशौ। अजनाया नीलमध्यमाश.। अरिष्टाया नीलोत्कृष्टाशकृष्णजघन्याशौ। मघव्या कृष्णमध्यमाशः। माघव्या कृष्णोत्कृष्टाशः ॥५२९॥

नरतिरश्चा प्रत्येक ओघ सामान्योत्कृष्टषट्लेश्या. स्युः। तत्र एकेन्द्रियविकलत्रयजीवेषु तिस्र कृष्णा-

कायिक, वायुकायिक, विकलत्रय, असंज्ञिपंचेन्द्रिय और साधारण वनस्पति जीवोंमें उत्पन्न होते हैं। भवनत्रिकसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त देव और घर्मा पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तकके नारकी अपनी-अपनी लेश्याके अनुसार मनुष्य और तिर्यंच होते हैं ॥५२८॥

गतिअधिकार समाप्त हुआ।

आगे सात गाथाओंसे स्वामी अधिकार कहते हैं—

प्रथम पृथ्वी आदिके नारकियोंको लेश्या कहते हैं—घर्मामें कपोतलेश्याका जघन्य अंश है। वंशामें कपोतका मध्यम अंश है। मेघामें कपोतका उत्कृष्ट अंश और नीलका जघन्य अंश है। अंजनामें नीलका मध्यम अंश है। अरिष्टामें नीलका उत्कृष्ट अंश और कृष्णका जघन्य अंश है। मघवीमें कृष्णका मध्यम अंश है। माघवीमें कृष्णका उत्कृष्ट अंश है ॥५२९॥

मनुष्यों और तिर्यंचोंमें-से प्रत्येकमें 'ओघ' अर्थात् सामान्यसे छहों लेश्या होती हैं।

घतलोऽसंज्ञिनः असंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवंगे कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयमुं तेजोलेश्येयुमक्कुमेकें दोडा असंज्ञिजीवं कपोतलेश्येयिवं मृतनागि घर्मेयोळ्पुट्टुगुं । तेजोलेश्येयिदं मृतनागि भवनव्यंतरदेवगतिद्वयदोळ्पुट्टुगुमशुभलेश्यात्रर्यादिदं मृतनागि नरतिर्य्यग्गतिद्वयदोळ्पुट्टुवनप्पुदरिदं । संज्ञ्यपूर्णमिथ्यादृष्टौ संज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकनोळं मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकनोळं अपि शब्दर्दिदमसंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकनोळं सासादनसम्यग्दृष्टौ निवृत्त्यपर्याप्तकसासादननोळमासासादननु ।

[[1]णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदित्ति य ण तस्स णिरयाणू । एंदु,
"णहि सासादणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे ।।" एंदितु]

लब्ध्यपर्य्याप्तकरोळं साधारणजीवंगळोळं नारकरोळं सूक्ष्मजीवंगळोळं तेजस्कायिकंगळोळं वातकायिकंगळोळं संभविसनप्पुदरिदं भवनत्रयापर्य्याप्तकरोळं शेषतिर्य्यग्मनुष्यरोळं संभविसुगुमा निर्वृत्यपर्य्याप्तकसासादननोळं अशुभत्रयी कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयमेयक्कुं । तिर्य्यग्मनुष्योपशमसम्यग्दृष्टिगळु तत्कालाभ्यंतरदोळु सुष्ठु संक्लिष्टरादोडमवर्गळ्गे देशसंयतरोळें तंतें कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयंगळागवें दितु तद्विराधकसासादननोळु पर्य्याप्तविषयदोळशुभलेश्यात्रयमेयक्कुमें दरिवुदु ।

भोगापुण्णगसम्मे काउस्स जहण्णियं हवे णियमा ।
सम्मे वा मिच्छे वा पज्जत्ते तिण्णि सुहलेस्सा ।।५३१।।

भोगापूर्णसम्यग्दृष्टौ कापोतस्य जघन्यं भवेन्नियमात् । सम्यग्दृष्टौ वा मिथ्यादृष्टौ वा पर्य्याप्ते तिस्रः शुभलेश्याः ।।

द्यशुभलेश्या एव । असज्ञिपर्याप्तस्य तत्त्रयं तेजोलेश्या च, कुत ? तस्य कपोतमृतस्य घर्माया तेजोमृतस्य भवनव्यन्तरयोरशुभत्रयमृतस्य संज्ञिनरतिर्यग्गत्योश्च उत्पादात् । संज्ञिलब्ध्यपर्याप्तकतिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टौ अपिशब्दादसज्ञिलब्ध्यपर्याप्तके तिर्यग्मनुष्यभवनत्रयनिर्वृत्यपर्याप्तकसासादने च कृष्णाद्यशुभत्रयमेव । तिर्यग्मनुष्योपशमसम्यग्दृष्टीना सम्यक्त्वकालाभ्यन्तरे सुष्ठु संक्लेशेऽपि देशसंयतवत् तत्त्रय नास्ति तथापि तद्विराधकसासादनापर्याप्तानामस्तीति ज्ञातव्यम् ।।५३०।।

उनमें-से एकेन्द्रिय और विकलत्रय जीवोंमें कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या ही होती है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके कृष्णादि तीन और तेजोलेश्या होती है। क्योंकि यदि वह कपोतलेश्यासे मरता है तो घर्मा नरकमें उत्पन्न होता है। तेजोलेश्यासे मरता है तो भवनवासी और व्यन्तरोंमें उत्पन्न होता है। और यदि तीन अशुभ लेश्याओंसे मरता है तो मनुष्यगति, तिर्यंच गतिमें उत्पन्न होता है। संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यादृष्टिमें 'अपि' शब्दसे असंज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचमें तथा सासादन गुणस्थानवर्ती निर्वृत्यपर्याप्त तिर्यंच, मनुष्य और भवनत्रिकमें कृष्णादि तीन अशुभलेश्या ही होती हैं। उपशम सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्योंके सम्यक्त्वकालके भीतर अतिसंक्लेशमें भी देशसंयतकी तरह तीन अशुभ लेश्या नहीं होती है। तथापि उपशम सम्यक्त्वके विराधक सासादन सम्यग्दृष्टिके अपर्याप्त अवस्थामें अशुभ लेश्या होती है ।।५३०।।

---

१. म प्रतौ कोष्ठान्तर्गतपाठो नास्ति ।

निर्वृत्यपर्य्याप्तकनप्प भोगभूमिजसम्यग्दृष्टियोळु कापोतस्य जघन्यं कापोतलेश्याजघन्यांशमक्कुमेकें दोडे कर्म्मभूमिजरप्प नरतिर्य्यंचरु प्राग्बद्धायुष्यरु पश्चात् क्षायिकसम्यक्त्वमनागलु वेदकसम्यक्त्वमनागलु स्वीकरिसि तदत्यजनदिवं तत्रोत्पत्तिसंभवमप्पुदरिदं तद्योग्यसंक्लेशपरिणामपरिणतरें बुदर्त्थं ।

आ भोगभूमियोळु पर्य्याप्तियिदं मेले सम्यग्दृष्टियोळं मेणिमिथ्यादृष्टियोळं मेणु शुभलेश्यात्रयमेयक्कुं ।

अयदोत्तिछलेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये ।
तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥५३२॥

असंयतपर्य्यंतं षड् लेश्याः शुभत्रयलेश्याः खलु देशविरतत्रये ततः शुक्ललेश्याऽयोगिस्थानमलेश्य तु ।

असंयतपर्य्यंतं वोलु, नाल्कुं गुणस्थानंगळोळारुं लेश्येगळप्पुवु । देशविरतादित्रयवोळु शुभलेश्यात्रयमक्कुं । ततः मेले सयोगकेवलिपर्य्यंतमारुं गुणस्थानंगळोळु शुक्ललेश्येयो देयक्कुं । अयोगिगुणस्थानं लेश्यारहितमक्कुमेकें दोडे योगकषायरहितमप्पुदरिदं ।

णट्ठकसाये लेस्सा उच्चदि सा भूदपुव्वगदिणाया ।
अहवा जोगपउत्ती मुक्खोत्ति तहिं हवे लेस्सा ॥५३३॥

नष्टकषाये लेश्या उच्यते सा भूतपूर्व्वगतिन्यायात् । अथवा योगप्रवृत्तिर्मुख्येति तस्मिन्भवेल्लेश्या ।

भोगभूमौ निर्वृत्यपर्याप्तकसम्यग्दृष्टौ कपोतलेश्याजघन्यांशो भवति । कुत. ? कर्मभूमिनरतिरश्चा प्राग्बद्धायुषा क्षायिकसम्यक्त्वे वा वेदकसम्यक्त्वे वा स्वीकृते तदन्यजघन्येन तत्रोत्पत्तिसंभवात्—तद्योग्यसंक्लेशपरिणामपरिणता इत्यर्थ । तस्या पर्याप्तेरुपरि सम्यग्दृष्टौ मिथ्यादृष्टौ वा शुभलेश्यात्रयमेव ॥५३१॥

असंयतान्तचतुर्गुणस्थानेषु षड्लेश्याः खलु । देशविरतादित्रये शुभलेश्यात्रयमेव । ततः उपरि सयोगपर्यन्तं षड्गुणस्थानेषु एका शुक्ललेश्यैव । अयोगिगुणस्थान अलेश्य लेश्यारहितं तत्र योगकषाययोरभावात् ॥५३२॥

भोगभूमिमें निर्वृत्यपर्याप्तक सम्यग्दृष्टिमें कपोतलेश्याका जघन्य अंश होता है। क्योंकि जिस कर्मभूमिया तिर्यंच अथवा मनुष्यने पहले तिर्यंच या मनुष्य आयुका बन्ध किया, पीछे क्षायिक सम्यक्त्व या वेदक सम्यक्त्वको स्वीकार करके मरा तो उसकी उत्पत्ति वहाँ कपोतलेश्याके जघन्य अंशसे होती है। अर्थात् उसके योग्य संक्लेश परिणाम होते हैं। पर्याप्त होनेपर भोगभूमिमें सम्यग्दृष्टि हो अथवा मिथ्यादृष्टि, तीन शुभ लेश्या ही होती हैं ॥५३१॥

असंयत पर्यन्त चार गुणस्थानोंमें छहों लेश्या होती हैं। देशविरत आदि तीन गुणस्थानोंमें तीन शुभ लेश्या ही होती हैं। उससे ऊपर सयोगकेवली पर्यन्त छह गुणस्थानोंमें एक शुक्ललेश्या ही होती है। अयोगि गुणस्थानमें लेश्या नहीं होती क्योंकि वहाँ योग और कषायका अभाव है ॥५३२॥

१. ब. °जनेन । 'तदत्यजन'—कर्नाटवृत्तौ ।

उपशांतकषायादित्रिगुणस्थानत्रयदोळु कषायोदयरहितमागुत्तिरलुमवरोळु पेळल्पट्ट आवुदो दु लेश्येयक्कु । तु मत्ते भूतपूर्व्वंगतिन्यायात् उपशांतकषायवीतरागछद्मस्थनोळं क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थनोळं सयोगिकेवलिजिननोळं भूतपूर्व्वगतिन्यायदिदमेयक्कुमथवा योगप्रवृत्तिर्म्मुख्येति योगप्रवृत्तिर्लेश्या ये दितु योगप्रवृत्तिप्रधानत्वदिदं तस्मिन्भवे लेश्यातदकषायरोळमितु लेश्यासंभवमक्कुं ।

> तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च ।
> एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं ॥५३४॥

त्रयाणां द्वयोर्द्वयोः, षण्णां द्वयोश्च त्रयोदशानां च इतश्चतुर्द्दशानां लेश्या भावनादिदेवानां ।

> तेऊ तेऊ तह तेऊपम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य ।
> सुक्का य परमसुक्का भवणतिया पुण्णगे असुहा ॥५३५॥

तेजस्तेजस्तथा तेजःपद्मे पद्मा च पद्मशुक्ले च । शुक्ला च परमशुक्ला भवनत्रया पूर्णके अशुभाः ।

भवनत्रयद भवनादित्रिधामरग्गें पर्य्याप्तापेक्षेयिं तेजोलेश्याजघन्यमक्कुं । सौधर्मैशानद्वयद वैमानिकरग्गें तेजोलेश्यामध्यमांशमक्कुं । सनत्कुमारमाहेंद्रद्वयद कल्पजरग्गें तेजोलेश्योत्कृष्टांशमुं पद्मलेश्याजघन्यमुमक्कु । ब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रंगळे बारुकल्पंगळ कल्पजरग्गें पद्मलेश्यामध्यमांशमक्कुं । शतारसहस्रारकल्पद्वयद वैमानिकरग्गें पद्मलेश्योत्कृष्टमुं शुक्ललेश्याजघन्यमुमक्कुं । आनतप्राणत आरणाच्युतंगळुं नवग्रैवेयकंगळुमें दितु पदिमूरर सुररग्गें शुक्ललेश्यामध्यमांशमक्कुमिल्लिदं मेले अनुदिशानुत्तरविमानंगळपदिनाल्कर कल्पातीतजरग्गें शुक्ललेश्योत्कृष्टांश-

उपशान्तकषायादिनष्टकषायगुणस्थानत्रये कषायोदयाभावेऽपि या लेश्या उच्यते सा भूतपूर्वगतिन्यायादेव । अथवा योगप्रवृत्तिर्लेश्येति योगप्रवृत्तिप्राधान्येन तत्र लेश्या भवति ॥५३३॥

भवनत्रयादिदेवाना लेश्योच्यते । तत्र पर्याप्तापेक्षया भवनत्रयस्य तेजोजघन्यांश । सौधर्मैशानयोः तेजोमध्यमांश । सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः तेजउत्कृष्टांशपद्मजघन्यांशौ । ब्रह्मब्रह्मोत्तरादिषट्कस्य पद्ममध्यमांश । शतारसहस्रारयोः पद्मोत्कृष्टांशशुक्लजघन्यांशौ । आनतादिचतुर्णां नवग्रैवेयकाणां च शुक्लमध्यमांश । अत उपरि

उपशान्त कषाय आदि तीन गुणस्थानोंमें यद्यपि कषायका उदय नहीं है और बारहवें-तेरहवेंमें तो कषाय नष्ट ही हो गयी है । फिर भी वहाँ जो लेश्या कही जाती है वह भूतपूर्व गतिन्यायसे ही कही जाती है । अथवा योगकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं और योगकी प्रवृत्तिकी प्रधानता है इसलिए वहाँ लेश्या है ॥५३३॥

भवनत्रय आदि देवोंके लेश्या कहते हैं । पर्याप्तकी अपेक्षा भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके तेजोलेश्याका जघन्य अंश है । सौधर्म ऐशानमें तेजोलेश्याका मध्यम अंश है । सानत्कुमार माहेन्द्रमें तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंश और पद्मलेश्याका जघन्य अंश है । ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर आदि छह स्वर्गोंमें पद्मलेश्याका मध्यम अंश है । शतार-सहस्रारमें पद्मका उत्कृष्ट अंश और शुक्लका जघन्य अंश है । आनत आदि चार स्वर्गोंमें और नौ ग्रैवेयकोंमें शुक्लका मध्यम अंश है । उससे ऊपर अनुदिश और अनुत्तर सम्बन्धी चौदह विमानोंमें

मक्कुं । भवनत्रयद निर्वृत्यपर्य्याप्तकर्गं अशुभलेश्यात्रयमेयक्कुमिदरिंदमे शेषवैमानिकनिर्वृत्यपर्य्याप्तकर्गं पर्य्याप्तकर्गं ततम्म लेश्येगळेयप्पुवेंदु सूचितमरियल्पडुगुं । एंटनेय स्वाम्यधिकारं तीदुर्दुदु । अनंतरं साधनाधिकारमनों दे गाथासूत्रदिदं पेळदपं ।

वण्णोदयसंपादिद सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।
मोहुदयखओवसमोवसमखयजजीवफंदणं भावो ॥५३६॥

वर्णोदयसंपादितशरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या । मोहोदयक्षयोपशमोपशमक्षयजीवस्पंदनं भावः ॥

वर्णनामकर्म्मोदयसंपादितसंजनितशरीरवर्णमदु द्रव्यलेश्येयक्कुं । असंयतरोळु मोहोदयदिंदं देशविरतत्रयदोळु मोहक्षयोपशमदिदं उपशमकरोळु मोहोपशमदिंदं क्षपकरोळु मोहक्षयदिंदं संजनितसंस्कारं जीवस्पंदमेंदु ज्ञेयमक्कुमदु भावलेश्येयक्कु । मा जीवनपरिणामप्रदेशस्पंदनदिंद भावलेश्ये माडल्पट्टुदेंबुदत्थं । अदु कारणदिंदं योगकषायंगळिदं भावलेश्ये एंदितु पेळल्पट्टुदक्कुं । ओंभत्तनेय साधनाधिकारं तिद्दुदु ॥

अनंतरं संख्याधिकारमं गाथा षट्कदिदं पेळदपं :—

अनुदिशानुत्तरचतुर्दशविमानाना शुक्लोत्कृष्टांशो भवति । भवनत्रयदेवाः अपर्याप्तकाले अशुभत्रिलेश्या एव, अनेन वैमानिका अपर्याप्तिकाले स्वस्वलेश्या एवेति सूचितं ज्ञातव्यम् ॥५३४–५३५॥ इति स्वाम्यधिकारोऽष्टमः ॥ अथ साधनाधिकारमाह––

वर्णनामकर्मोदयेन संपादित-संजनित शरीरवर्णो द्रव्यलेश्या भवति । असंयतान्तगुणस्थानचतुष्के मोहस्य उदयेन, देशविरतत्रये क्षयोपशमेन, उपशमके उपशमेन, क्षपके क्षयेण च संजनितसंस्कारो जीवस्पन्दनसंज्ञः स भावलेश्या जीवपरिणामप्रदेशस्पन्दनेन कृतेत्यर्थः । तेन कारणेन योगकषायाभ्यां भावलेश्येत्युक्तम् ॥५३६॥ इति साधनाधिकारो नवमः ॥ अथ संख्याधिकारं गाथाषट्केनाह—

शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट अंश होता है। भवनत्रिकके देव अपर्याप्त अवस्थामें तीन अशुभ लेश्यावाले ही होते हैं। इससे यह सूचित किया जानना कि वैमानिक देवोंके अपर्याप्तकालमें अपनी-अपनी लेश्या ही होती है ॥५३४–५३५॥

आठवाँ स्वामिअधिकार समाप्त हुआ।

अब साधनाधिकार कहते हैं—

वर्णनाम कर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ शरीरका वर्ण द्रव्यलेश्या है। असंयत पर्यन्त चार गुणस्थानोंमें मोहके उदयसे, देशविरत आदि तीन गुणस्थानोंमें मोहनीयके क्षयोपशमसे, उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें मोहनीयके उपशमसे, क्षपक श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें मोहनीयके क्षयसे जो संस्कार उत्पन्न होता है जिसे जीवका स्पन्द कहते हैं वह भावलेश्या है। अर्थात् जीवके परिणामों और प्रदेशोंका चंचल होना भावलेश्या है। परिणामोंका चंचल होना कषाय है और प्रदेशोंका चंचल होना योग है। इसीसे योग और कषायसे भावलेश्या कही है ॥५३६॥

नौवाँ साधनाधिकार समाप्त हुआ।

आगे छह गाथाओंसे संख्याअधिकार कहते हैं—

किण्हादिरासिमावलिअसंखभागेण भजिय पविभत्ते ।
हीणकमा कालं वा अस्सिय दव्वा दु भजिदव्वा ॥५३७॥

कृष्णादिराशिमावल्यसंख्यातभागेन भक्त्वा प्रविभक्ते। हीनक्रमात् कालं वा आश्रित्य द्रव्याणि तु भक्तव्यानि ॥

कृष्णादिराशि कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयजीवसामान्यराशियं शुभलेश्यात्रयजीवराशिहीनसंसारिराशियं १३–/९ आवल्यसंख्यातभागेन भक्त्वा आवल्यसंख्यातैकभागदिदं भागिसि १३–/९ बहुभागमं १३–८/९ प्रविभक्ते मूरु लेश्येगळ्गे समानमागि मूररिदं भागिसिकोट्टु १३–८/९।३ १३–८/९।३ १३–८/९।३ शेषैकभागमं मत्तमावल्यसंख्यातदिदं खंडिसि बहुभागमं कृष्णलेश्येगे कोट्टु शेषैकभागमं मत्तमावल्यसंख्यातदिदं भागिसि बहुभागमं नीललेश्येगे कोट्टु शेषैकभागमं कपोतलेश्येगे कोट्टोडा मूरु राशिगळिंतिक्कुं

१३–८/९।३	१३–८/९।३	१३–८/९।३
१३–८/९।९	१३–८/९९९	१३–८/९९९

ई मूरु राशिगळं समच्छेदं माडिदोडितिक्कुं कृष्ण १३–८६४/९।९।९।३ नील १३–६७२/९।९।९।३ कपोत १३–६५१/९।९।९।३ ई मूरु राशिगळु किंचिदूनत्रिभागंगळागुत्तं किंचिदूनक्रममप्पुवु क्र १३–/३– नी १३–/३। क १३–/३। इंतु कृष्णलेश्याद्यशुभलेश्यात्रयजीवंगळ्गे द्रव्यतः प्रमाणं पेळल्पट्टुदु । मत्तं वा अथवा कालं वा आश्रित्य द्रव्याणि भक्तव्यानि

कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयजीवसामान्यराशि शुभलेश्यात्रयजीवराशिहीनसंसारिराशिमात्र १३– आवल्यसंख्यातेन भक्त्वा १३–/९ बहुभाग १३–८/९ त्रिभिर्भक्त त्रिस्थाने देय – १३–८/९।३, १३–८/९।३, १३–८/९।३, शेषैकभागे पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभाग कृष्णलेश्याया देय । शेषैकभागे पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागो नीललेश्याया देय । शेषैकभागे कपोतलेश्याया दत्ते त्रयो राशयोऽमी—१३–८/९।३, १३–८/९।३, १३–८/९।३, १३–८/९।९। १३–८/९।९।९। १३–१/९९९ समच्छेदेन मिलिता—क्र १३–८६४/९।९।९।३, नी १३–।६७२/९।९।९।३, क १३–।६५१/९।९।९।३, किंचिदूनक्रमा भवन्ति– क्र १३–।/३– नी १३–।/३– क १३–॥/३– इति कृष्णादित्रिलेश्याजीवाना द्रव्यत. प्रमाणमुक्तम् । पुनः—वा अथवा

संसारी जीवराशिमें-से तीन शुभलेश्यावाले जीवोंकी राशि घटानेपर जो शेष रहे उतना कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्यावाले जीवोंकी सामान्यराशि होती है। उस राशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करके बहुभागको तीन समान भागोंमें विभाजित करके एक-एक भाग तीनों लेश्यावालोंको दे दो। शेष एक भागमें पुनः आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग कृष्णलेश्याको दो। शेष एक भागमें पुनः आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग नीललेश्याको दो। शेष एक भाग कपोतलेश्याको दो। अपने-अपने

कालसंचयदिंदं द्रव्यतः प्रमाणमरियल्पडुगुमदेंतेंदोडे ई मूरुमशुभलेश्येगळ कालं कूडि सामान्यदिंदमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रमक्कु ॥ २१ । मिदनावल्यसंख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं समभागं माडि मूररिदं भागिसि कृष्णनीलकपोतंगळ्गे कोट्टु मिक्केक कालभागमं मत्तमावलियसंख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं कृष्णलेश्येगे कोट्टु शेषैकभागमं मत्तमावल्यसंख्यातभागदिंदं खंडिसि बहुभागमं नीललेश्येगे कोट्टु शेषैकभागमं कपोतलेश्येगे कोट्टोडा मूरुं कालंगळितिप्पुंवु।

कृ	नी	कपोत	प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंड इत्यादियिं
$\frac{२१।८६४}{२।९।९।३}$	$\frac{२१६७२}{९।९।९।३}$	$\frac{२१६५१}{९।९।९।३}$	

मूरुं राशिगळं कूडिदोडिदु $\frac{२१।२१८७}{९।९।९।३}$ इदर भाज्यभागहारंगळं सरियेंदपर्वात्तसिदोडिदु २१ इंतु

त्रैराशिकं माडल्पडुगुं प्र २१ फ १३–। इ $\frac{२१८६४}{९।९।९।३}$ बंद लब्धं कृष्णलेश्याजीवंगळ प्रमाणमक्कुं

$\frac{१३–८६४}{९९९।३}$ इदनपर्वात्तसिदोडे किंचिदूनत्रिभागमक्कुं कृ $\frac{१३–}{३–}$ | नी $\frac{१३–}{३}$ कपो $\frac{१३}{३}$ इंतु काल-

कालमाश्रित्य द्रव्याणि भक्तव्यानि। तद्यथा—कृष्णनीलकपोतलेश्याः संस्थाप्य तासां कालो मिलित्वापि अन्तर्मुहूर्तः २१ आवल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागं त्रिभिर्भक्त्वा प्रत्येकं देयः। शेषैकभागे पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभाग. कृष्णलेश्यायां देय.। शेषैकभागे पुनः आवल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागो नीललेश्याया देय । शेषैकभागे कपोतलेश्याया दत्ते त्रयो राशय एवं– कृ $\frac{२१।८६४}{९।९।९।३}$, नी $\frac{२१।६७२}{९।९।९।३}$, क $\frac{२१।६५१}{९।९।९।३}$, एषां योगः $\frac{२१ २१८७}{९।९।९।३}$ अपवर्तितः २१। अधुना त्रैराशिकं प्र २१। फ १३– इ $\frac{२१।८६४}{९।९।९।३}$ लब्ध कृष्णलेश्याजीवप्रमाण $\frac{१३—८६४}{९।९।९३}$ अपवर्तिते किंचिदूनत्रिभागो भवति एवं नील-

समान भागोंमें इन भागोंको जोड़नेपर कृष्ण आदि लेश्यावाले जीवोंकी संख्या होती है। यह क्रमसे कुछ-कुछ कम होती है। इस प्रकार कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले जीवोंका द्रव्यकी अपेक्षा प्रमाण कहा। अथवा कालका आश्रय लेकर द्रव्योंका विभाग करना चाहिए। वह इस प्रकार है—कृष्ण, नील और कपोतलेश्याको स्थापित करो। उनका काल मिलकर भी अन्तर्मुहूर्त है। उस कालको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभागको तीनसे विभाजित करके प्रत्येक लेश्यामें एक-एक भाग दो। शेष एक भागमें पुनः आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग कृष्णलेश्यामें दो। पुनः शेष एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दो। बहुभाग नीललेश्यामें दो। शेष एक भाग कपोतलेश्याको दो। तीनोंको मिले दोनों भागोंको जोड़नेपर प्रत्येक लेश्याका अपना-अपना कालका प्रमाण होता है। अब त्रैराशिक करो। तीनों लेश्याओंका सम्मिलित काल तो प्रमाण राशि। अशुभ लेश्यावाले जीवोंका प्रमाण कुछ कम संसारी जीवराशि मात्र फलराशि। कृष्णलेश्याके कालका प्रमाण इच्छाराशि। फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर लब्धराशि प्रमाण कृष्णलेश्यावालोंकी राशि जानना। सो कुछ कम तीनका भाग अशुभ लेश्यावाले

संचयमनाश्रयिसि द्रव्यतः प्रमाणं पेळल्पट्टुदु ।

खेत्तादो असुहतिया अणंतलोगा कमेण परिहीणा ।
कालादोतीदादो अणंतगुणिदा कमा हीणा ॥५३८॥

क्षेत्रतोऽशुभत्रयाः अनंतलोकाः क्रमेण परिहीनाः । कालावतीतादनंतगुणाः क्रमाद्धीनाः ॥

क्षेत्रप्रमाणदिवं अशुभत्रया जीवाः अशुभलेश्यात्रयद जीवंगळु अणंतळोगा अनंतलोक
≡ ≡
प्रमितंगळागुत्तं क्रमदिवं परिहीनंगळप्पुवु किंचिदूनक्रमंगळप्पुवु क्षेत्र कृ = ख नी ख – क ख = इल्लियु त्रैराशिकं माडल्पडुगुं प्र ≡ फ श १ । इ १३ लब्ध शला । ख । प्रमा श १ । फ ≡ इ ख ।
३
लब्ध ≡ ख । कालावतीतात् कालप्रमाणदिवं अशुभलेश्यात्रय जीवंगळु अतीतकालमं नोडलु अनंतगुणिताः अनंतगुणितंगळागुत्तलुं क्रमाद्धीनाः क्रमहीनंगळप्पुवु । का । कृ । अ ख । नी अ ख – का अ ख = इल्लियु त्रैराशिकं माडल्पडुगुं । प्र अ । फ अ १ । इ १३ – लब्ध शलाका । ख । मत्तं
३ –
प्र श १ । फ अ । इ । श ख । लब्ध अ ख ।

कपोतयोरपि ज्ञातव्यम् । कृ १३– । नी १३– । क १३– । इति कालसंचयमाश्रित्य द्रव्यत प्रमाणमुक्तम् ॥५३७॥
। ॥
३– ३– ३–

क्षेत्रप्रमाणेन अशुभत्रिलेश्याजीवाः अनन्तलोका अपि क्रमेण परिहीनाः किंचिदूनक्रमा भवन्ति । कृ≡ख । नी≡ख- । क≡ख≡ । अत्र त्रैराशिक प्र≡फ श १ । इ १३– लब्धशलाकाः ख । पुन. प्र । श १ ।
३–
फ≡। इ श ख । लब्धं≡ख । कालप्रमाणेनाशुभत्रिलेश्या जीवा अतीतकालादनन्तगणिता अपि क्रमहीना भवन्ति । का कृ अ ख । नी अ ख– । क अ ख = । अत्रापि त्रैराशिकं–प्र अ फ श । १ इ १३– लब्धशलाकाः
३–
ख । पुन प्र श १ । फ अ । इ श ख । लब्धं अ ख ॥५३८॥

जीवोंके प्रमाणमें देनेपर जो लब्ध आवे उतना है। इसी तरह नील और कापोतलेश्यावालोंका प्रमाण लाना चाहिए। इस तरह कालकी अपेक्षा अशुभलेश्यावाले जीवोंका प्रमाण कहा ॥५३७॥

क्षेत्रप्रमाणकी अपेक्षा तीन अशुभलेश्यावाले जीव अनन्तलोक प्रमाण हैं किन्तु क्रमसे कुछ-कुछ हीन हैं। यहाँ प्रमाणराशि लोक, फलराशि एक शलाका, इच्छा राशि अपने-अपने जीवोंका प्रमाण। ऐसा करनेपर लब्धराशि मात्र अनन्त शलाका हुई। तथा प्रमाण एक शलाका, फल एक लोक, इच्छा अनन्त शलाका। ऐसा करनेपर लब्धराशि अनन्त लोकमात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवोंका प्रमाण होता है। तथा काल प्रमाणसे तीन अशुभ लेश्यावाले जीव अतीतकालके समयोंसे अनन्तगुणे हैं। किन्तु क्रमसे हीन हैं। यहाँ भी त्रैराशिक करना। प्रमाणराशि अतीतकाल, फलराशि एक शलाका, इच्छराशि अपने-अपने जीवोंका प्रमाण। ऐसा करनेपर लब्धराशिमात्र अनन्त शलाका हुई। फिर प्रमाण एक शलाका, फल एक अतीत काल, इच्छा अनन्त शलाका। ऐसा करनेपर लब्धराशि अनन्त अतीतकाल प्रमाण कृष्णादि लेश्यावाले जीव होते हैं ॥५३८॥

केवलणाणणंतिमभागा भावादु किण्हतियजीवा ।
तेउतियासंखेज्जा संखासंखेज्जभागकमा ॥५३९॥

केवलज्ञानानंतैकभागाः भावात् कृष्णत्रयजीवाः । तेजस्त्रयोऽसंख्येयाः संख्यासंख्यातभागक्रमाः ॥

भावप्रमाणदिदं कृष्णादित्रयलेश्याजीवंगळु प्रत्येकं केवलज्ञानानंतैकभागमात्रंगळप्पुवंतागुत्तलुं किंचिदूनक्रमंगळेयप्पुवु । भा । कृ । के/ख । नी ख । क । के/ख = इल्लियुं त्रैराशिकं माडल्पडुगुं

प्र १३–/३– फ श १ । इ के । लब्ध श के/(१३–/३) मत्तं प्र के/(१३–/३–) फ के । इ श १ लब्ध के/ख । तेजोलेश्यादित्रयजीवंगळु द्रव्यप्रमाणदिदमसंख्यातंगळप्पुवुमंतागुत्तं संख्यातभागमुमसंख्यातभागक्रममुमप्पुवु ।

ते = ∂ ∂ १ । प ∂ ∂ (२ with ० above) । शु ∂ ।

जोइसियादो अहिया तिरिक्खसण्णिस्स संखभागो दु ।
सूइस्स अंगुलस्स य असंखभागं तु तेउतियं ॥५४०॥

ज्योतिषिकादधिकास्तिर्य्यक्संज्ञिनः संख्यभागस्तु । सूच्यंगुलस्य चासंख्यभागस्तु तेजस्त्रयः ॥

भावप्रमाणेन कृष्णादिलेश्या जीवाः प्रत्येकं केवलज्ञानानन्तैकभागमात्राः अपि किंचिदूनक्रमा भवन्ति । भा कृ के/ख । नी के–/ख । क के=/ख । अत्रापि त्रैराशिकं प्र १३–/३– । फ श १ । इ के । लब्ध के अपवर्तिते ख/(१३–/३–) । पुनः प्र श ख । फ के । इ श १ । लब्ध के/ख । तेजोलेश्यादित्रयजीवाः द्रव्यप्रमाणेन असंख्याता अपि सख्यातासंख्यातभागक्रमा भवन्ति । ते ∂ ∂ १ । प ∂ ∂ । शु ∂ ॥५३९॥

भावप्रमाणकी अपेक्षा प्रत्येक कृष्णादि लेश्यावाले जीव केवलज्ञानके अनन्तवें भागमात्र होनेपर भी क्रमसे कुछ हीन होते हैं। यहाँ भी त्रैराशिक करना। प्रमाणराशि अपने-अपने लेश्यावाले जीवोंका प्रमाण, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान। ऐसा करनेपर लब्धराशिमात्र अनन्त प्रमाण हुआ। पुनः इसीको प्रमाणराशि, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान करनेपर केवलज्ञानके अनन्तवें भाग मात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवोंका प्रमाण होता है। तेजोलेश्या आदि तीन शुभ लेश्यावाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात होनेपर भी तेजोलेश्यावालोंके संख्यातवें भाग पद्मलेश्यावाले और पद्मलेश्यावालोंके असंख्यातवें भाग शुक्ललेश्यावाले हैं ॥५३९॥

तेजोलेश्याजीवंगळु ज्योतिषिकजीवराशियं नोडलु साधिकमप्पर्वेतेंदोडे ज्योतिष्करुं भवनवासिगळुं व्यंतररुं सौधर्म्मद्वयकल्पजरुं संज्ञिपंचेंद्रियजीवंगळोळु केलवु जीवंगळुं मनुष्यरोळु[1]-केलवु जीवंगळुं एंदितादप्रकारद जीवराशिगळं कूडिदोडे तेजोलेश्या जीवंगळप्पुवल्लि ज्योतिष्करु पण्णट्ठिप्रमितप्रतरांगुलभक्तजगत्प्रतरप्रमितरप्परु = ४ । ६५= भवनवासिगळु घनांगुलप्रथममूलगुणितजगच्छ्रेणीमात्ररप्परु ।-१ । व्यंतररु त्रिशतयोजनभक्तजगत्प्रतरप्रमितरप्परु । = ४६५=८१=१० सौधर्म्मद्वयद कल्पजरु घनांगुलतृतीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितरप्परु ।—३ ॥ संज्ञिपंचेंद्रियतेजोलेश्याजीवंगळुं :—

"जोइसियवाणजोणिणितिरिक्खपुरिसा य सण्णिणो जीवा ।
तत्तेउपम्मलेस्सा संखगुणूणा कमेणेदे ॥"

एंदितु पंचेंद्रियसंज्ञिजीवराशियं नोडलु संख्यातगुणहीनरप्परु = ४ । ६५=१ १ १ ११ मनुष्यरुं संख्यातरप्परिंतीयारुं राशिगळुं कूडिदोडे ज्योतिषिकरं नोडलु साधिकमक्कु ≡ १ / ४ । ६५ = १ वितुक्षेत्रप्रमाणदिदं तेजोलेश्याजीवंगळोरेळेपट्टवु । पद्मलेश्येय जीवंगळुमा तेजोलेश्याजीवंगळं नोडलुं संख्यातगुणहीनमागियुं संज्ञितेजोलेश्याजीवंगळं नोडलु संख्यातगुणहीनरप्परुमा राशियोळु पद्मलेश्येय कल्पजरुमं मनुष्यरुमं साधिकं माडिदोडे प्रतरासंख्येयभागमेयक्कु । संदृष्टि—

तेजोलेश्याजीवाः ज्योतिष्कजीवराशितः साधिका भवन्ति । = = = १ / ४ । ६५ = १ कथं? पण्णट्ठिप्रतराङ्गुलभक्तजगत्प्रतरमात्रज्योतिष्क— = / ४ । ६५ = घनाङ्गुलप्रथममूलगुणितजगच्छ्रेणिभावना.—१ त्रिशतयोजनकृतिभक्तजगत्प्रतरमात्रव्यन्तराः = / ४ । ६५ = ८१ । १० घनाङ्गुलतृतीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रसौधर्मद्वयजा.—३ पद्मसंख्यातपण्णट्ठीप्रतराङ्गुलभक्तजगत्प्रतरमात्रतादृक्संज्ञितिर्यंचः = / ४ । ६५=११११ तादृक्संख्यातमनुष्याः[2] एतेषां मिलितत्वात् । पद्मलेश्याजीवाः तेजोलेश्येभ्यः संख्यातगुणहीनत्वेऽपि[3] संज्ञितिर्यक्तेजोलेश्येभ्योऽपि

तेजोलेश्यावाले जीव ज्योतिषी देवोंकी राशिसे कुछ अधिक होते हैं। इसका हेतु यह है कि पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो लब्ध आवे उतने तो ज्योतिषी देव हैं। घनांगुलके प्रथम वर्गमूलसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाण भवनवासी देव हैं। तीन सौ योजनके वर्गका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो लब्ध आवे उतने व्यन्तर देव हैं। घनांगुलके तृतीय वर्गमूलसे गुणित जगतश्रेणिमात्र सौधर्म ऐशान स्वर्गके देव हैं। पाँच बार संख्यातसे गुणित पण्णट्ठि (६५५३६) प्रमाण प्रतरांगुलसे भाजित जगत्प्रतर प्रमाण तेजोलेश्यावाले संज्ञी तिर्यंच हैं। तथा संख्यात तेजोलेश्यावाले मनुष्य। इन सबको जोड़नेसे जो प्रमाण हो उतने तेजोलेश्यावाले जीव हैं। पद्मलेश्यावाले जीव तेजोलेश्यावाले जीवोंसे

१. म °रोळेल्लवु । २. ब. संख्याततादृग्म° । ३. ब. °हीना अपि ।

≡ / ४ । ६५ = १ १ १ १ १ १ इंतु क्षेत्रप्रमाणदिंदं पद्मलेश्येय जीवंगळु पेळल्पट्टुवु। शुक्ल-लेश्याजीवंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रमप्परु २ सू / a । इंतु तेजोलेश्यादिशुभलेश्याजीवंगळु क्षेत्रप्रमाणदिंदं पेळल्पट्टरु।

बेसदछप्पण्णंगुल कदिहिद पदरं तु जोइसियमाणं ।
तस्स य संखेज्जदिमं तिरिक्खसण्णीण परिमाणं ॥५४१॥

षट्पंचाशदधिकद्विशतांगुलकृतिहृतप्रतरस्तु ज्योतिष्काणां मानं। तस्य च संख्येयं तिर्यक्संज्ञिनां मानं ॥

इल्लि तेजोलेश्याजीवंगळ प्रमाणमं पद्मलेश्याजीवंगळ प्रमाणमं पेरगणनंतरसूत्रदोळ्पेळ्वुदं विशदं माडल्वेडि ज्योतिष्कर प्रमाणमुमं संज्ञिजीवंगळ प्रमाणमुमनी सूत्रदिं पेळ्दपरल्लि ज्योतिष्क प्रमाणमं षट्पंचाशदुत्तरद्विशतांगुलकृतिहृतजगत्प्रतरप्रमितमक्कुं।

संज्ञिजीवंगळ प्रमाणमुमदर संख्येय भागमक्कु ॥ = / ४ । ६५ = = / ४ । ६५ = १

तेउदु असंखकप्पा पल्लासंखेज्जभागया सुक्का ।
ओहि असंखेज्जदिमा तेउतिया भावदो होंति ॥५४२॥

तेजोद्वयमसंख्यकल्पाः पल्यासंख्येयभागाः शुक्लाः। अवधेरसंख्यभागास्तेजस्त्रयो भावतो भवंति ॥

संख्यातगुणहीना भवन्ति। पद्मलेश्यातिर्यग्राशौ स्वकल्पजमनुष्यैः साधिकमात्रत्वात्- सदृष्टि.≡ / ४ । ६५ = १ १ १ १ १ १ ॥ शुक्ललेश्या जीवाः सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रा भवन्ति। २ सू / a १ इति तेजस्त्रयजीवा: क्षेत्रप्रमाणेनोक्ताः ॥५४०॥

प्रागुक्तं तेज.पद्मलेश्याजीवप्रमाण स्पष्टीकर्तुमाह—ज्योतिष्कप्रमाण बेसदछप्पण्णङ्गुलकृतिभक्तजगत्प्रतरमात्र = / ४।६५= संज्ञितिर्यक्प्रमाण च तत्संख्येयभाग. = / ४।६५=१ ॥५४१॥

संख्यातगुणा हीन होनेपर भी तेजोलेश्यावाले संज्ञि तिर्यंचोंसे भी संख्यातगुणा हीन होते हैं क्योंकि पद्मलेश्यावाले तिर्यंचोंकी राशिमें पद्मलेश्यावाले कल्पवासीदेव और मनुष्योंका प्रमाण मिलनेसे पद्मलेश्यावाले जीवोंका प्रमाण होता है। शुक्ललेश्यावाले जीव सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं। इस प्रकार क्षेत्र प्रमाणसे तीन शुभलेश्यावाले जीवोंका प्रमाण कहा ॥५४०॥

पहले जो तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवोंका प्रमाण कहा उसे स्पष्ट करते हैं—ज्योतिष्कदेवोंका प्रमाण दो सौ छप्पन अंगुलके वर्गसे अर्थात् पण्णट्ठी प्रमाण प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो प्रमाण आवे उतना है और इनके संख्यातवें भाग संज्ञी तिर्यंचोंका प्रमाण है ॥५४१॥

तेजोलेश्याजीवंगळु पद्मलेश्याजीवंगळुं प्रत्येकमसंख्येयकल्पंगळागुत्तं तेजोलेश्याजीवंगळं नोडलु पद्मलेश्याजीवंगळु संख्यातगुणहीनंगळप्पुवु। ते क १। पद्म क ०। शुक्लाः शुक्ललेश्याजीवंगळु पल्यासंख्येयभागाः पल्यासंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवु प इतु कालप्रमाणदिदं शुभलेश्यात्रयजीवंगळु
०
पेळल्पट्टुवु। अवधेरसंख्येयभागास्तेजस्त्रयो भावतो भवंति अवधिज्ञानविकल्पंगळ असंख्येयभागंगळु प्रत्येकमागुत्तमा मूरु लेश्येगळ जीवंगळु संख्यातगुणहीनंगळुमसंख्यातगुणहीनंगळुमप्पुवु। ते ओ(१)।
०
प ओ (१)। शु ओ (१) इंतु भावप्रमाणदिदं शुभलेश्यात्रयजीवंगळु पेळल्पट्टुवु :—
० ० १ ०

१३— कृ ३—	१३— नी ३।	१३— क ३।	ते ० ० १	प ० ०	शु ०
≡ख	≡ख —	≡ख =	≡ १ / ४६५१	≡ ४६५ = १।१।१।१।१।१।सू	२ / ०
अ ख	अ ख	अ ख =		क ०	प / ०
के ख	के ख	के ख		ओ १ / ०	ओ / ० १ ०

इंतु पत्तनेय संख्याधिकारतिद्दुदु।

अनंतरं क्षेत्राधिकारमं पेळ्दपं :—

तेजोद्वयजीवाः प्रत्येकमसंख्येयकल्पा अपि तेजोलेश्येभ्य. पद्मलेश्या संख्यातगुणहीना ते क ० १। प क ०। शुक्ललेश्या. पल्यासंख्यातैकभागमात्रा भवन्ति प इति कालप्रमाणेन शुभलेश्यात्रयजीवा उक्ताः।
०
तेजस्त्रयजीवा. प्रत्येकं अवधिज्ञानविकल्पानामसंख्येयभागाः तथापि संख्यातासंख्यातगुणहीना भवन्ति ते ओ प ओ शु ओ इति भावप्रमाणेन शुभलेश्यात्रयजीवा उक्ता ॥५४२॥ इति संख्याधिकार. ॥
० ० १ ० १ ०

अथ क्षेत्राधिकारमाह—

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीव प्रत्येक असंख्यात कल्पप्रमाण हैं फिर भी तेजोलेश्यावालोंसे पद्मलेश्यावाले संख्यातगुणा हीन हैं। शुक्ललेश्यावाले पल्यके असंख्यातवें भाग मात्र होते हैं। इस प्रकार काल प्रमाणसे तीन शुभलेश्यावाले जीवोंका प्रमाण कहा। तेजोलेश्या आदि तीन लेश्यावाले जीव प्रत्येक अवधिज्ञानके भेदोंके असंख्यातवें भाग है तथापि तेजोलेश्यावालोंसे पद्मलेश्यावाले संख्यातगुणे हीन हैं और पद्मलेश्यावालोंसे शुक्ललेश्यावाले असंख्यातगुणे हीन हैं। इस प्रकार भावप्रमाणसे तीन शुभलेश्यावाले जीवोंका प्रमाण कहा ॥५४२॥

इस प्रकार संख्याधिकार समाप्त हुआ। अब क्षेत्राधिकार कहते हैं—

१. म प्रतौ सदृष्टिर्न।

सट्ठाणसमुग्घादे उववादे सव्वलोयमसुहाणं ।
लोयस्सासंखेज्जदिभागं खेत्तं तु तेउतिये ॥५४३॥

स्वस्थाने समुद्घाते उपपादे सर्व्वलोकोऽशुभानां । लोकस्यासंख्येयभागं क्षेत्रं तु तेजस्त्रितये ॥

अशुभानां कृष्णनीलकापोताशुभलेश्यात्रयद स्वस्थानदोळं समुद्घातदोळं उपपाददोळमितु त्रिस्थानकदोळं क्षेत्रं सव्वलोकमेयक्कुं ≡। तेजस्त्रितये तेजःपद्मशुक्लशुभलेश्यात्रयद स्वस्थानदोळं समुद्घातदोळं उपपाददोळमितो त्रिस्थानदोळं तु मत्ते क्षेत्रं क्षेत्रवु लोकस्यासंख्येयभागः सव्वलोकद असंख्यातैकभागमक्कुमितु सामान्यदिदमशुभलेश्येगळगं शुभलेश्यगळगं त्रिस्थानकदोळु क्षेत्रं पेळल्पट्टुदु। विशेषदिदं षड्लेश्यगळगे दशस्थानंगळोळु क्षेत्रं पेळल्पडुगुमल्लि क्षेत्रमेंबुदेनें दोडे विवक्षितलेश्याजीवंगळिदं वर्त्तमानकालदोळु विवक्षितपदविशिष्टत्वदिदमवष्टब्धाकाशप्रदेशंगळं क्षेत्रमेंबुदर्थमेंबुदिल्लि सामान्यदिदं स्वस्थानमुं समुद्घातमुमुपपादमुमेंदु त्रिपदंगळोळु लेश्येगळगे क्षेत्रं पेळल्पट्टुदु। विशेषदिदं दशस्थानंगळोळु षट्लेश्येगळगें क्षेत्रं पेळल्पडुगुमल्लि स्वस्थानं सामान्यदिदमोंदवं भेदिसिदोडे स्वस्थानस्वस्थानमेंदुं विहारवत्स्वस्थानमेंदु द्विविधमक्कुं।

सामान्यदिदं समुद्घातमोंदवं भेदिसिदोडे वेदनासमुद्घातमेंदुं कषायसमुद्घातमेंदुं वैक्रियिकसमुद्घातमेंदुं मारणांतिकसमुद्घातमेंदुं तेजःसमुद्घातमेंदुमाहारकसमुद्घातमेंदुं केवलिसमुद्घातमेंदितु समुद्घातं सप्तविधमक्कुमुपपादमेकप्रकारमेयक्कुं।

विवक्षितलेश्याजीवैर्वर्तमानकाले विवक्षितपदविशिष्टत्वेनावष्टब्धाकाशः क्षेत्रम् । तच्च स्वस्थाने समुद्घाते उपपादे च त्र्यशुभलेश्याना सर्वलोक ≡ । तेजोलेश्यादित्रयस्य तु पुन लोकस्यासख्यातैकभाग. सामान्येन भवति विशेषेण तु तत्र दशपदेषूच्यते । तत्र तावत् उत्पन्नपुरग्रामादिक्षेत्रं तत् स्वस्थानस्वस्थान, विवक्षितपर्यायपरिणतेन परिभ्रमितुमुचितक्षेत्र तद्विहारवत्स्वस्थानमिति स्वस्थान द्वेधा । वेदनादिवशेन निजशरीराज्जीवप्रदेशाना बहिःप्रदेशे तत्प्रायोग्यविसर्पणं समुद्घात । स च वेदनाकषायवैक्रियिकमारणान्तिकतैजसाहारककेवलिभेदात् सप्तधा । परित्यक्तपूर्वभवस्य उत्तरभवप्रथमसमये प्रवर्तनमुपपाद इति दशपदानि । तेषु स्वस्थानस्वस्थाने वेदनासमुद्घाते कषायसमुद्घाते मारणान्तिकसमुद्घाते उपपादे चेति पञ्चपदेषु कृष्णलेश्याजीवक्षेत्र सर्वलोकः ≡।

विवक्षित लेश्यावाले जीव वर्तमान कालमें विवक्षित स्वस्थानादि पदसे विशिष्ट होते हुए जितने आकाशमें पाये जाते हैं उसका नाम क्षेत्र है। वह क्षेत्र स्वस्थान, समुद्घात और उपपादमें तीन अशुभ लेश्यावालोंका सर्वलोक है। तेजोलेश्या आदि तीनका क्षेत्र सामान्यसे लोकका असंख्यातवाँ भाग है। विशेष रूपसे दस स्थानोंमें कहते हैं—स्वस्थानके दो भेद हैं—स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान। उत्पन्न होनेके ग्राम-नगर आदि क्षेत्रको स्वस्थानस्वस्थान कहते हैं। और विवक्षित पर्यायसे परिणत होते हुए परिभ्रमण करनेके उचित क्षेत्रको विहारवत्स्वस्थान कहते हैं। वेदना आदिके कारणसे अपने शरीरसे जीवके प्रदेशोंके उसके योग्य बाह्य प्रदेशमें फैलनेको समुद्घात कहते हैं। उसके सात भेद हैं—वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक, तैजस, आहारक और केवली समुद्घात। पूर्वभवको छोड़कर उत्तरभवके प्रथम समयमें प्रवर्तनको उपपाद कहते हैं। इस प्रकार ये दस स्थान हैं। उनमें-से स्वस्थानस्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद इन पाँच पदोंमें कृष्णलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र सर्वलोक है। अब

इंतु विशेषदिदं दशपदंगळप्पुवल्लि स्वस्थानस्वस्थानमें बुदेनें दोडे उत्पन्नपुरग्रामादि क्षेत्रं स्वस्थानस्वस्थानमें बुदु, विवक्षितपर्यायपरिणतनिंदं परिभ्रमिसल्कुचितक्षेत्रं विहारवत्स्वस्थानमें- बुदु। वेदनादिवशदिदं निजशरीरवर्त्तणिदं जीवप्रदेशंगळगे बहिःप्रदेशदोळु तत्प्रायोग्यविसर्प्पणं समुद्घातमें बुदु । परित्यक्तपूर्व्वभवंगे उत्तरभवप्रथमसमयदोळु प्रवर्त्तनमनुपपादमें बुदु । इंती स्वस्थानस्वस्थानादिदशपदंगळोळु स्वस्थानस्वस्थानदोळं वेदनासमुद्घातदोळं कषायसमुद्घातदोळं मारणांतिकसमुद्घातदोळमुपपाददोळमिती पंचपदंगळोळं कृष्णलेश्याजीवंगळगे क्षेत्रं सर्व्वलोक- मेयक्कुमेयप्पुदु पदंगळोळं मुन्नं संख्याधिकारदोळपेळद कृष्णलेश्याजीवंगळु सर्व्वसंसारिजीव- राशिय किंचिदूनत्रिभागंगळप्पुववं संख्यातदिदं भागिसि बहुभागंगळु स्वस्थानस्वस्थानदोळप्पुवें दु कोट्टु शेषैकभागमं मत्तं संख्यातदिदं भागिसि बहुभागमं वेदनासमुद्घातदोळप्पुवें दु कोट्टु शेषैकभागमं मत्तं संख्यातदिदं भागिसि बहुभागमं कषायसमुद्घातपददोळित्तु शेषैकभागमं फलराशियं माडि एकनिगोदजीवन एकभवायुःस्थितिप्रमाणमुच्छ्वासाष्टादशैकभागमक्कुमदुवुमंत- र्म्मुहूर्त्तमेयक्कु २१ ॥ मा कालमं प्रमाणराशियं माडिवोंदु समयमनिच्छाराशियं माडि प्र २१। प १३-१। इ स १ बंद लब्धमात्रं कृष्णलेश्याजीवंगळु उपपादपददोळप्पुवु १३
३-५।५।५ ३-५।५५।२१

तत्र कृष्णलेश्याजीवराशि १३- संख्यातेन भक्त्वा बहुभाग १३-।४ स्वस्थानस्वस्थाने देयः। शेषैकभागस्य
३- ३-।५।
संख्यातभक्तबहुभाग १३-।४ वेदनासमुद्घाते देय.। शेषैकभागस्य सख्यातभक्तबहुभाग. -१३-।४ कषा-
३-।५।५ ३-५।५।५।
यसमुद्घाते देय। शेषैकभाग फलराशि कृत्वा, एकनिगोदभवायुरुच्छ्वासाष्टादशैकभागान्तर्मुहूर्तं २१ प्रमाणराशि कृत्वा एल सलयमिच्दाराशिकृत्वा प्र २१ फ १३-१। इ स १ लब्धमुपपादपदे देय १३ एतस्मिन्नेव
३-५५।५ ३-५।५।५।२१
पुनः मारणान्तिकसमुद्घातकालान्तर्मुहूर्तेन गुणिते प्र स १। फ १३-। इ २१। लब्ध मूलराशिसंख्यातै-
३-।५।५५।२१
=
कभाग मारणान्तिकसमुद्घाते दद्यात् १३—पुनःकृष्णलेश्यात्रय सपर्याप्तराशि ४। ३- सख्यातेन भक्त्वा बहु-
३-१ ५-

इन जीवोंका प्रमाण कहते हैं—कृष्णलेश्यावाले जीवोंकी पूर्वोक्त संख्यामें संख्यातसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थानवाले हैं। शेष एक भागमें संख्यातसे भाग देनेपर जो बहुभाग आवे उतने वेदना समुद्घातवाले हैं। शेष एक भागमें पुनः संख्यातसे भाग देनेपर जो बहुभाग आवे उतने कषाय समुद्घातवाले जीव है। शेष एक भागको फलराशि बनाकर और एक निगोदियाकी आयु उच्छ्वासके अठारहवें भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्त, उसके समयोंको प्रमाणराशि बनाकर तथा एक समयको इच्छाराशि करके फलको इच्छाराशिसे गुणा कर उसमें प्रमाणराशिका भाग देनेसे जितना प्रमाण आवे उतने जीव उपपादवाले है। उपपादवाले जीवोंके इस प्रमाणको मारणान्तिक समुद्घातके काल अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करने- पर जो प्रमाण आवे उतने मूलराशिके संख्यातवें भाग जीव मारणान्तिक समुद्घातवाले हैं। ये जीव सर्वलोकमें पाये जाते हैं इससे इनका क्षेत्र सर्वलोक है। पुनः कृष्णालेश्यावाले पर्याप्त-

मोयुपपावपद कृष्णलेश्याजीवंगळ संख्येयं फल राशियं माडि मारणांतिकसमुद्घातकालप्रमाणमंतर्म्मुहूर्त्तमवनिच्छाराशियं माडि गुणियिसुत्तं विरलु प्र स १ फ = १३ – इच्छे २७। लब्ध-
३—५।५५।२१

राशियं मूलराशिय संख्यातैकभागमक्कुमा मारणांतिकसमुद्घातपददोळु कृष्णलेश्याजीवंगळप्पुवु
१३ मत्तं कृष्णलेश्यात्रसपर्य्याप्तराशियं संख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं =४ स्वस्थान-
३—१ ३—४।५
५

स्वस्थानदोळित्तु शेषैकभागमं मत्तं संख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं =४ विहारवत्स्वस्थान- ५
३—४।५।५
५—

पददोळित्तु शेषैकभागमं =४।३—।५।५ शेषपदंगळोळु यथायोग्यमागि दातव्यमप्पुदु।
१ / ५

त्रसपर्य्याप्तमध्यमावगाहनजनितसंख्यातघनांगुलंगळं फलराशियंमाडि विहारवत्स्वस्थानकृष्णलेश्याजीवराशियनिच्छाराशियं माडि प्र १ फ ६१ इ =४ लब्धराशियनपवर्त्तिसिदोडे संख्यात-
३—४।५।५

सूच्यंगुलगुणितजगत्प्रतरमात्रं विहारवत्स्वस्थानदोळु क्षेत्रमक्कुं। = सू २१। मत्तं पल्यासंख्यात-

---

=४ ==४
भागः—४।३—५। स्वस्थानस्वस्थानेऽस्तीति[3] देयः। शेषैकभागस्य संख्यातभक्तबहुभागो ४।३-५।५ विहार- १०
५— ५—

= १
वत्स्वस्थाने देयः। शेषैकभाग ४।३ ५।५ शेषपदेषु यथायोग्यं पतितोऽस्तीति ज्ञातव्यः। त्रसपर्याप्तमध्य-
५—

मावगाहन संख्यातघनाङ्गुलं फलराशिं कृत्वा विहारवत्स्वस्थानकृष्णलेश्याजीवराशिमिच्छा कृत्वा—

प्र १। फ ६१। इ =४
४।३—५।५ लब्धमपवर्तितं संख्यातसूच्यङ्गुलगुणितजगत्प्रतरो विहारवत्स्वस्थाने क्षेत्र
५—

त्रस जीवोंके प्रमाणको संख्यातसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थानवाले जीव हैं। शेष एक भागमें संख्यातका भाग देकर बहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थानवाले जीव हैं। शेष एक भाग रहा सो शेष स्थानोंमें यथायोग्य जानना। त्रसपर्याप्त जीवोंकी मध्यम अवगाहनाके अनेक प्रकार हैं। उसे बराबर करनेपर एक त्रसपर्याप्त जीवकी मध्यम अवगाहना संख्यात घनांगुल है। उसे फलराशि करके और विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा कृष्ण-लेश्यावाले जीवोंकी राशिको इच्छाराशि करो। तथा एक जीवको प्रमाणराशि करो। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाण राशिका भाग देनेपर संख्यात सूच्यंगुलसे गुणित जगत्प्रतर प्रमाण विहारवत्स्वस्थानका क्षेत्र आता है।

---

१. म °भागसंख्यात पहुभाग°। २. म °व्यंगलप्पुवु। ३. ब. °ति ज्ञातव्यः।

मात्रघनांगुलगुणितजगच्छ्रेणीमात्रकृष्णलेश्यावैक्रियिकराशियं —६ प / ३ a संख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं —६ प ४ / ३—a ५ स्वस्थानस्वस्थानदोळित्तु मत्तमिते शेषद शेषद संख्यातद बहुभाग-बहुभागंगळं विहारवत्स्वस्थानदोळं —६ प ४ / a / ३—५ । ५ वेदनासमुद्घातदोळं —६ प ४ / a / ३—५ । ५५ कषायसमुद्घातदोळं —६ प ४ / a / ३—। ५५५५ वातव्यंगळप्पुवु शेषैकभागं वैक्रियिकसमुद्घातदोळुवातव्य-मक्कु —६ प १ / a / ३—। ५५५५ मिदं यथायोग्यवैकुर्वणावगाहनोत्पन्न संख्यातघनांगुलंगळिदं गुणिसुत्तं विरलु घनांगुलवर्गगुणितासंख्यातश्रेणीमात्रं वैक्रियिकसमुद्घातपदवोळु क्षेत्रमक्कुं ।=a ६ । ६ । इंती दशपदंगळ रचनासंदृष्टियं स्थापिसि रचनेयिदु :

भवति = सू २ १ । पुनः पल्यासंख्यातमात्रघनाङ्गुलगुणितजगच्छ्रेणि कृष्णलेश्यावैक्रियिकराशिं — ६ प / ३— a असंख्यातेन भक्त्वा बहुभागं[1] — ६ प ४ / ३—a । ५ स्वस्थानस्वस्थाने[2] दत्त्वा शेषशेषस्य संख्यातबहुभागसंख्यातबहुभागो विहार-वत्स्वस्थाने—६ प ४ / ३— a ५ ५ वेदनासमुद्घाते — ६ प ४ / ३— a ५ ५ ५ कषायसमुद्घाते च ६ । प ४ / ३—a५५५५ पतितोऽस्तीति-ज्ञात्वा शेषैकभागो वैक्रियिकसमुद्घाते देयः—६ प । १ / ३— a ५ ५ ५ ५ अयमेव यथायोग्यवैगुर्वाणावगाहनोत्पन्नसंख्यात-घनाङ्गुलैर्गुणितः—घनाङ्गुलवर्गगुणितासंख्यातश्रेणिमात्रं वैक्रियिकसमुद्घाते क्षेत्रं भवति—a ६ । ६ । पुनः सामान्याध ऊर्ध्वतिर्यग्मनुष्यलोकान् पञ्च संस्थाप्यालापः क्रियते—

वैक्रियिक समुद्घातमें क्षेत्र घनांगुलके वर्गसे गुणित असंख्यात जगतश्रेणि प्रमाण है। वह इस प्रकार है—कृष्णलेश्यावाले वैक्रियिक शक्तिसे युक्त जीवोंके प्रमाणको संख्यातसे भाग दो। बहुभाग प्रमाण जीव स्वस्थानस्वस्थानमें हैं। शेष एक भागमें पुनः संख्यातसे भाग दो। बहुभाग प्रमाण जीव विहारवत्स्वस्थानमें हैं। शेष एक भागमें पुनः संख्यातसे भाग दो। बहुभाग प्रमाण जीव वेदना समुद्घातमें हैं। शेष एक भागमें संख्यातसे भाग दो। बहुभाग प्रमाण जीव कषाय समुद्घातमें हैं। शेष एक भाग प्रमाण जीव वैक्रियिक समुद्घातमें हैं। इस प्रकार जो वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवोंका प्रमाण है उसको ही यथायोग्य एक जीव सम्बन्धी वैक्रियिक समुद्घातके क्षेत्र संख्यात घनांगुलसे गुणा करनेपर घनांगुलके वर्गसे गुणित असंख्यात श्रेणिमात्र वैक्रियिक समुद्घातका क्षेत्र होता है।

१ ब °भागः । २ ब °नेऽस्तीतिज्ञात्वाशे° ।

क्षे	स्वस्थान स्वस्थान	विहार	वेदना-समुद्घात	कषाय समुद्घात	वैक्रियिक समुद्घात	मारणांति समुद्घात	तेज	आ	के	उपपाद	सामान्यलोक≡
कृ	≡१३-४ ३ – ५	≡४।६७ ४।५५ ५–	≡१३-४ ३ – ५५	≡१३-४ ३-५५५	–६पा६७ a ३-५५५५	≡१३- ३ – ७	०	०	०	१३-≡ ३-२७।७	अधोलोक≡४ ७
	≡१३-४	≡४।६७	≡१३-४	≡१३-४	–६पा६७ a	≡३-				१३-≡	ऊर्ध्वलोक≡३ ७
नी	। ३ ५	। ३४।५५ ५–	। ३।५।५	। ३-५५५	। a५५५५	३ ७	०	०	०	। ३२७।७	तिर्य्यग्लोक=१ ३ ४९
	≡१३-४	= ४।६७	≡१३-४	≡१३-४	–६पा६७ a	≡१३-				१३-≡	
क	॥ ३ – ५	॥ ३४५५ ५–	। ३।५५	॥ ३-५५५	॥ ३५५५५	॥ ३ ७	०	०	०	॥ ३२७।७	मनुष्यलोक

मत्तं सामान्यलोकमं अधोलोकमुमनूर्ध्वलोकमुमं तिर्य्यग्लोकमुमं मनुष्यलोकमुमं संस्थापिसि· बळिक माळापं माडल्पडुगुमदें तें दोडे स्वस्थानस्वस्थान - वेदनाकषाय - मारणांतिकोपपावंगळें ब पंचपवंगळोळु कृष्णलेश्याजीवंगळु कियत्क्षेत्रदोळिरुत्तविर्प्पुवें दोडुत्तरं कुडल्पडुगुं सर्व्वलोकदोळि-रुत्तिर्प्पुवु विहारवत्स्वस्थानदोळु कृष्णलेश्याजीवंगळु कियत्क्षेत्रदोळिरुत्तिर्पुवें दोडुत्तरं पेळल्पडुगुं सामान्यदि मूरुं लोकंगळ असंख्यातैकभागदोळं तिर्य्यग्लोकद संख्येयभागदोळमिरुत्तिर्प्पुवेकें दोडे एकलक्षयोजनोत्सेधमं नोडलेकजीवशरीरोत्सेधक्के संख्यातगुणहीनत्वदिदं मनुष्यलोकमं नोडलुम-संख्यातगुणक्षेत्रदोळिरुतिर्प्पुवु। वैक्रियिकपददोळु कृष्णलेश्येय जीवंगळु एनितु क्षेत्रंगळोळिरुतिर्प्पु-वें दोडे सामान्यदि नाल्कुं लोकंगळऽसंख्यातैकभागदोळं मनुष्यलोकमं नोडलुमसंख्यातगुणक्षेत्रदोळि-

तद्यथा—कृष्णलेश्याजीवाः स्वस्थानस्वस्थानवेदनाकषायमारणान्तिकोपपादपदेषु कियत्क्षेत्रे तिष्ठन्ति ? सर्वलोके तिष्ठन्ति। विहारवत्स्वस्थानपदे पुन सामान्यादिलोकत्रयस्यासंख्यातैकभागे तिर्यग्लोकस्य लक्षयोजनो-त्सेधादेकजीवशरीरोत्सेधस्य सख्यातगुणहीनत्वात् सख्यातैकभागे मनुष्यलोकादसख्यातगुणे च क्षेत्रे तिष्ठन्ति। वैक्रियिकसमुद्घातपदे च सामान्यादिचतुर्लोकानामसंख्यातैकभागे मनुष्यलोकादसख्यातगुणे च क्षेत्रे तिष्ठन्ति।

पुनः सामान्य लोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और मनुष्यलोक इन पांचकी स्थापना करके कथन करते हैं—कृष्णलेश्यावाले जीव स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपाद स्थानोंमें कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्वलोकमें रहते हैं। किन्तु विहारवत्स्वस्थानमें सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोकके असंख्यातवे भागमें रहते हैं। तिर्यक्लोक एक लाख योजन ऊँचा होनेसे तथा एक जीवके शरीरकी ऊँचाई उससे संख्यात-गुणा हीन होनेसे तिर्यक्लोकके संख्यातवे भागमें रहते हैं। तथा मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। वैक्रियिक समुद्घात स्थानमें जीव सामान्य आदि चार लोकोंके असंख्यातवें

१. म दोलिर्प्पुवेकेंदोडे।

रतिप्पुवेके वोडसंख्यातघनांगुलवर्गमात्रजगच्छ्रेणीमात्रं तज्जीवक्षेत्रमप्पुदरिंदं । ई प्रकारविं नीललेश्ययं कापोतलेश्ययं वक्तव्यमक्कुं ।

मत्तं तेजोलेश्या राशियं ≡ ।।। १ (१) / ४ ६५ = १ संख्यातदिवं भागिसि बंद बहुभागमं स्वस्थानस्वस्थानदोळित्तु शेषैकभागमं मत्तं संख्यातदिदं भागिसि बहुभागमं विहारवत्स्वस्थानदोळित्तु

(७)

≡ ।।। १ । ४ / ४।६५ = १५५ शेषैकभागमं मत्तं संख्यातदिदं भागिसि बहुभागमं वेदनासमुद्घातदोळित्तु—

(७)

≡ ।।। १ । ४ / ४६५ = १ ५५५ शेषैकभागमं मत्तं संख्यातदिवं भागिसि बहुभागमं कषायसमुद्घात दोळित्तु—

(७)

≡ ।।। १ । ४ / ४६५ = १ ५५५५ शेषैकभागमं वैक्रियिकपददोळीवुवु ।—

कुतः ? असंख्यातघनाङ्गुलवर्गमात्रजगच्छ्रेणीना तत्क्षेत्रत्वात् । एवं नीलकपोतयोरपि वक्तव्यम् । पुनस्तेजोलेश्या जीवराशिं ≡ ।।। १— १ / ४ । ६५ = १ संख्यातेन भक्त्वा भक्त्वा बहुभागं स्वस्थानस्वस्थाने— ≡ ।।। १— १ ४ / ४ । ६५ = १ ५ विहारवत्स्वस्थाने ≡ ।।। १— १ ४ / ४ । ६५ = १ । ५ । ५ । वेदनासमुद्घाते— ≡ ।।। १— १ ४ / ४ । ६५ = १ । ५ । ५ । ५

भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। क्योंकि वैक्रियिक समुद्घातवालोंका क्षेत्र असंख्यात घनांगुलके वर्गसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाण है। इसी प्रकार नील और कपोतलेश्याका भी कहना चाहिए।

अब तेजोलेश्याका क्षेत्र कहते हैं—तेजोलेश्यावाले जीवोंकी राशिमें संख्यातसे भाग देकर बहुभाग विहारवत्स्वस्थानमें जानना। शेष रहे एक भागमें संख्यातसे भाग देकर बहुभाग वेदना समुद्घातमें जानना। पुनः शेष रहे एक भागमें संख्यातसे भाग देकर बहुभाग कषाय समुद्घातमें जानना। शेष रहा एक भाग सो वैक्रियिक समुद्घातमें जानना। इस

1/(७)

॥। १ = ४ । ६५ = १५५५५ इल्लि सप्तधनुरुत्सेधमं ७ तद्दशमभागमुखविस्तारमुं ७/१० अप्प देवावगाहनंगळोळुः—

"वासो तिगुणो परिही वासचउत्थाहवो दु खेत्तफळं, ७ । ३ । ७ । ७ / १० । १० । ४ खेत्तफळं वेहगुणं ७ । ३ । ७ । ७ / १० । १० । ४ खादफळं होइ सव्वत्थ ।"

एंदी देवावगाहनमं घनात्मकंगळप्प धनुगळंमंगुळंगळं माडल्वेडि तोंभत्तारर घनात्मकदिदं गुणिसि मत्तमायंगुलंगळं प्रमाणांगुलंगळं माडल्वेडि पंचशतदिदं घनात्मकदिदं भागिसि स्थापिसि— ७ । ३ । ७ । ७ । ९६ । ९६ । ९६ / १० । १० । ४ । ५०० । ५०० । ५०० अपवर्त्तिसिदोडे देवावगाहनं प्रमाणघनांगुलसंख्यातैकभाग-मक्कुमवरिदं स्वस्थानस्वस्थानराशियं गुणियिसि ॥। 1/(७) ≡ १ । ४ । ६ / ४ । ६५ । = ७५७ । मत्तमी येकावगाहनद एकादि-

---

कषायसमुद्घाते च दत्त्वा ॥। १— = १ ४ ४ । ६५ = १ । ५ । ५ । ५ । ५ शेषैकभागो वैक्रियिकसमुद्घाते देय.

॥। १— = १ १ ४ । ६५ = १ ५ । ५ । ५ । ५ तत्र स्वस्थानस्वस्थानराशिः सप्तधनुरुत्सेध ७ तद्दशाशमुखविस्तारविस्तार ७/१० देवावगाहनेन वासोत्तिगुणेत्याद्यानीतघनरूपखातफलेन ७ । ३ । ७ । ७ / १० । १० । ४ घनाङ्गुलीकर्तुं षण्णवतिघनगुणितेन पुनः प्रमाणाङ्गुलीकर्तुं पञ्चशतघनभक्तेन ७ । ३ । ७ । ७ । ९६ । ९६ । ९६ / १० । १० । ४ । ५०० । ५०० । ५०० । अपवर्तिते जातघनाङ्गुल-

---

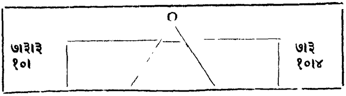
प्रकार जीवोंका प्रमाण कहा। स्वस्थानस्वस्थान अपेक्षा क्षेत्रका प्रमाण लानेके लिए कहते हैं—तेजोलेश्या मुख्य रूपसे भवनत्रिक आदि देवोंमें होती है। उनमें एक देवकी अवगाहना-का प्रमाण सात धनुष ऊँचा और सात धनुषके दसवें भाग चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल लानेके लिए सात धनुषके दसवें भाग चौड़ाईको तिगुना करनेपर परिधि होती है क्योंकि चौड़ाईसे तिगुनी परिधि कही है। इस परिधिको चौड़ाईके चतुर्थ भागसे गुणा करनेपर क्षेत्रफल होता है। इसको ऊँचाई सात धनुषसे गुणा करनेपर घनरूप क्षेत्रफल होता है। घनरूप राशिके गुणकार भागहार घनरूप ही होते हैं। सो यहाँ घनांगुल करनेके लिए एक धनुषके छियानबे अंगुल होते हैं अतः घनरूप क्षेत्रफलको छियानबेके घनसे गुणा करना। यहाँ कथन प्रमाणां-गुलसे है और देवोंके शरीरका प्रमाण उत्सेधांगुलसे होता है अतः पाँच सौके घनसे भाग

---

१. म॰ गलुमनंगुलं॰ ।

प्रदेश विसर्प्पणक्रमदिदं वृद्धियुत्कृष्टदिदं त्रिगुणितविस्तारदिदं पुट्टिद राशि[1] मूलराशियं नोडलु नवगुण-

१।२
मक्कु ६।६।६।००।६।९ मा[2] नवगुणमूलराशियं मुखभूमि समासार्द्धं मध्यफलमें—
७ ७७ ७



डु मुखं शून्यमक्कुमेके दोडे द्वितीयविकल्पं मोदल्गोंडु प्रदेशवृद्धिक्रममप्पुदरिंदमा शून्यमं कूडिद- ळियिसिदोडे समीकरणदिं पुट्टिद मध्यमावगाहनं नवार्द्धंघनांगुलसंख्यातैकभागमक्कुमदरिंदं वेदना-

॥।₆-।-
समुद्घातराशियमं कषायसमुद्घातराशियुमं गुणिसुवुदु वेद = १ ४ ६ । ९ कषाय
४ । ६५ = ५५५२

॥ ₆ ।
= १ ४ ६ । ९ मत्तं संख्यातयोजनायाममुं सूच्यंगुलसंख्यातभागविष्कंभोत्सेधमुमागि मूल-
४ । ६५ । ५५५ । २

संख्येयभागेन ६ हतस्तत्क्षेत्र स्यात् । वेदनाकषायराशी द्वौ तत्समुद्घातयोर्मूलशरीरात्प्रदेशोत्तरवृद्धया उत्कृष्ट-
१
विकल्पस्य त्रिगुणितव्यासस्य वासो त्तिगुणो परिहीत्याद्यानीत–७ । २ । ३ । ७ । ३ । ७ घनफलस्य नव-
१० । १० । ४

देना। ऐसा करनेसे प्रमाणरूप घनांगुलके संख्यातवें भाग एक देवके शरीरकी अवगाहन हुई। इस अवगाहनासे पहले जो स्वस्थानस्वस्थानमें जीवोंका प्रमाण कहा था उसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना स्वस्थानस्वस्थानका क्षेत्र जानना।

वेदना समुद्घात और कषाय समुद्घातमें आत्माके प्रदेश मूल शरीरसे बाहर निकलकर एक प्रदेश क्षेत्रको रोकें या एक-एक प्रदेश बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट क्षेत्रको रोकें तो चौड़ाईमें मूल शरीरसे तिगुने क्षेत्रको रोकते हैं और ऊँचाई मूल शरीर प्रमाण ही है। इसका घनरूप क्षेत्रफल करनेपर मूल शरीरके क्षेत्रफलसे नौगुणा क्षेत्रफल होता है। सो जघन्य एक प्रदेश और उत्कृष्ट मूल शरीरसे नौगुणा क्षेत्र हुआ। इनका समीकरण करनेसे एक जीवके मूलशरीरसे साढ़े चार गुना क्षेत्र हुआ। शरीरका प्रमाण पहले घनांगुलके संख्यातवें भाग कहा था। सो उसे साढ़े चार गुना करनेपर एक जीव सम्बन्धी क्षेत्र होता है। उससे वेदना समुद्घातवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर वेदना समुद्घात सम्बन्धी क्षेत्र आता है। तथा कषाय समुद्घातवाले जीवोंके प्रमाणसे गुणा करनेपर कषाय समुद्घात सम्बन्धी क्षेत्र आता है। विहार करते हुए देवोंके मूलशरीरसे बाहर आत्माके प्रदेश फैलें तो वे प्रदेश एक जीवकी अपेक्षा संख्यात योजन तो लम्बे और सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग प्रमाण चौड़े व ऊँचे क्षेत्रको रोकते हैं। उसका क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण होता है। इससे पूर्वमें कहे विहारवत्स्वस्थानवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर सब जीवोंके विहारवत्स्वस्थान

१ म राशि ७ । ३ । ३ । ७ । ३ । ७ मूलं । २ म मा मूलं ।
१० । १० । ४

शरीरदिदं पोरमट्टु निमिर्द्दात्मप्रदेशावष्टब्धक्षेत्रजनित २।२ / १।१ / यो १ संख्यातघनांगुलदिदं विहारवत्स्व-स्थान-राशियं गुणिसुवु $\overset{\equiv}{=}$ १ ४ । ६७ / ४ । ६५ = ७५५ स्वस्वेच्छावशदिदं विगुर्व्विसिद गजादिशरीरावगाहनोपलब्धसंख्यातघनांगुलदिदं वैक्रियिक समुद्घातराशियं गुणिसुवुदु— $\overset{\equiv}{=}$ १ । ६ । ७ / ४६५ = ७५५५५ इंतु गुणिसुत्तं विरलु तंतम्म क्षेत्रंगळक्कुं। मत्तं व्यंतरराशियं एकदेवस्थितिप्रमाणसंख्यातवर्षं । १०००० । शुद्धशलाकेगळपूर्व्वोक्तंगळिदं ७ ११ भा १२= गि सुवुदंतु भागिसुत्तं विरलेकसमयदोळु म्रियमाणराशियक्कु = / ४६५ = ८१ । १० । ७११ मवरोळु ऋजुगतिय जीवंगळ तेगेयल्वेडि पल्यासंख्यातैकभागदिदं भागिसि एकभागमं कळेदोडे बहुभागं विग्रहगतिय जीवंगळप्पुवु ४६५ = ८१ । १० । ७११ प / ७ / प / ७ अवरोळु मारणांतिकसमुद्घातरहित-

---

गुणितमात्रत्वात् सर्वविकल्पसमीकरणलब्धेन तदर्धमात्रेण ६ । ९ / १ । २ हतौ तत्क्षेत्रे स्याताम्। विहारवत्स्वस्थानराशिः संख्यातयोजनायामसूच्यङ्गुलसंख्येयभागविष्कम्भोत्सेधक्षेत्र २ । २ / १ १ / यो १ जनितसंख्यातघनाङ्गुलैः ६ १ हतस्तत्क्षेत्रं स्यात्। वैक्रियिकसमुद्घातराशिः स्वेच्छावशाद्विकुर्वितगजादिशरीरावगाहनोत्पन्नसंख्यातघनाङ्गुलैः ६ १ हतस्तत्क्षेत्रं स्यात्। व्यन्तरराशिः एकदेवस्थितिप्रमाणसंख्यातवर्ष-१०००० शुद्धशलाकाभिः ७ १ १ भक्तः एकसमये म्रियमाणराशिः स्यात् = ० / ४ । ६५ = ८१ । १० । ७ १ १ अत्र ऋजुगतिजीवानपनेतु पल्यासंख्यातेन भक्त्वैकभागं

सम्बन्धी क्षेत्रका प्रमाण आता है। वैक्रियिक समुद्घातके सम्बन्धमें यह ज्ञातव्य है कि देवोंके मूलशरीर तो अन्य क्षेत्रमें रहते हैं और विहार करते हुए विक्रियारूप शरीर अन्य क्षेत्रमें होते हैं। दोनोंके बीचमें आत्माके प्रदेश सूच्यंगुलके संख्यातवें भागमात्र ऊँचे चौड़े फैले हैं। और ऊपर मुख्यताकी अपेक्षा संख्यात योजन लम्बे कहे हैं। तथा देव अपनी इच्छावश हाथी, घोड़ा इत्यादि रूप विक्रिया करते हैं। उसकी अवगाहना एक जीवकी अपेक्षा संख्यात घनांगुल प्रमाण है। इससे पूर्वमें कहे वैक्रियिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर सर्वजीव सम्बन्धी वैक्रियिक समुद्घातमें क्षेत्रका परिमाण आता है। पीतलेश्यावालोंमें व्यन्तर देवोंका मरण अधिक होता है अतः उनकी मुख्यतासे यहाँ मारणान्तिक समुद्घात सम्बन्धी कथन करते हैं। व्यन्तर देवोंकी संख्यामें एक व्यन्तर देवकी

---

१ ब. °त्सेधमूलशरीराद् बहिर्निसृतात्मप्रदेशावष्टब्धक्षेत्र २ २ / १ १ जनितसंख्यातघनाङ्गुलै ६ १ हतस्तत्क्षेत्रं।

जीवंगळं तेगेयल्वेडि पल्यासंख्यातदिंदं भागिसि एकभागमं कळेदु बहुभागं मारणांतिकसमुद्घात-

सहितजीवंगळप्पुवु । ४।६५ = । ८१।१० । ७१२ प प / ० ० मर वरोळु समीपमारणांतिकसमुद्घातजीवं-

गळं कळेयल्वेडि पल्यासंख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं कळेदु शेषैकभागं दूरमारणांतिकसमुद्घात-

जीवंगळप्पुवु ४।६५ = । ८१ । १० । ७१२ प / ० । प / ० । प १ / प प / ० ० ई राशियं मारणांतिकसमुद्घातकालांतर्मु-

हूर्तदोळु संभविसुव शुद्धशलाकेगळनिच्छाराशियं माडि मारणांतिकसमुद्घातजीवंगळं

फलराशियं माडि एकसमयमं प्रमाणराशियं माडि प्र स १ । फ = ४।६५। = ८ १।१०।७१२ प / प / ० । प / प / ० । १ / प / ०

इ २१ बंद लब्धं समस्तमारणांतिकसमुद्घातजीवंगळप्पुवु ४६५।८१।१०।७१२१ प / ० / प / ० । प / ० / प / ० । १।७१ / प / ०

त्यक्त्वा शेषबहुभागो विग्रहगतिजीवराशिर्भवति = ४ । ६५ = ८१ । १० । ७ १ १ प / ० अत्र मारणान्तिकसमु-

द्घातरहितानयनेतु पल्यासंख्यातेन भक्त्वैकभाग त्यक्त्वा शेषबहुभागो मारणान्तिकसमुद्घातजीवराशिर्भवति—

= ४ । ६५ = ८१ । १० ७ १ १ प प / ० ० अत्र समीपमारणान्तिकसमुद्घातजीवानयनेतु पल्यासंख्यातेन भक्त्वा

संख्यात वर्ष—दस हजार वर्षकी स्थितिके समयोंकी संख्यासे भाग देनेपर जितना प्रमाण आवे उतने जीव एक समयमें मरते हैं। इन मरनेवाले जीवोंकी संख्यामें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर एक भाग प्रमाण जीवोंकी ऋजुगति होती है और शेष बहुभाग प्रमाण जीव विग्रह गतिवाले होते हैं। विग्रहगतिवाले जीवोंके प्रमाणमें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दें। एक भाग प्रमाण जीवोंके मारणान्तिक नहीं होता, बहुभाग प्रमाण जीवोंके मारणान्तिक समुद्घात होता है। मारणान्तिक समुद्घातवाले जीवोंके प्रमाणमें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दे। बहुभाग प्रमाण समीप क्षेत्रमें मारणान्तिक समुद्घात करने-

१ म. सर्वमा॰ ।

ई राशियं रज्जुसंख्यातैकभागायामसूच्यंगुलसंख्यातैकभागविष्कंभोत्सेधक्षेत्रव २ २ / १ १ / १ घनफलभूत-
प्रतरांगुलसंख्यातैकभागगुणितजगच्छ्रेणिसंख्यातैकभागदिदं गुणिसुत्तं विरलु मारणांतिकसमुद्घात-
क्षेत्रमक्कुं ४। ६५ = । ८१ । १०a । ११ प प a१-४ / a a / प प प १११ / a a a मत्तं द्वादश योजनायामनवयोजनविष्कंभ-
सूच्यंगुलसंख्यातैकभागोत्सेध २ ९ / १ / यो १२ क्षेत्रघनफलमसंख्यातघनांगुलप्रमितमं संख्यातजीवंगळिंदगुणि-

---

बहुभागं त्यक्त्वा एकभागो दूरमारणान्तिकजीवराशिर्भवति—= प प १ / a a ० / ४। ६५=८१ । १० । a १ १ प प प / a a a

अस्मिन्मारणान्तिकसमुद्घातकालान्तर्मुहूर्तसंभविशुद्धशलाकाभिः a १ संगुण्य एकसमयेन भक्ते सर्वदूरमारणान्तिकसमुद्घातजीवप्रमाणं भवति ।= प प १ । a १ / a a ० / ४। ६५=८१ । १० । a १ १ प प प / a a a अस्मिन् रज्जुसंख्यातैकभागायामसूच्यङ्गुलसंख्यातैकभागविष्कम्भोत्सेधक्षेत्रस्य २ । २ / १ । १ / ७ । १ घनफलेन प्रतराङ्गुलसंख्यातैकभागगुणितजगच्छ्रेणिसंख्यातैकभागेन— ४ / ७ । १ । १ गुणिते दूरमारणान्तिकसमुद्घातस्य क्षेत्रं भवति—

वाले जीव हैं और एक भाग प्रमाण दूरवर्ती क्षेत्रमें समुद्घात करनेवाले जीव हैं। मारणान्तिक समुद्घातका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है। दूर मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंकी राशिमें अन्तर्मुहूर्तके समयोंसे गुणा करनेपर सब दूर मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है। दूर मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले एक जीवके प्रदेश शरीरसे बाहर फैलें तो मुख्य रूपसे एक राजूके संख्यातवें भाग लम्बे और सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग प्रमाण चौड़े व ऊँचे क्षेत्रको रोकते हैं। इसका घनक्षेत्रफल प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे जगतश्रेणिके संख्यातवें भागको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है। इससे दूर मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले सब जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर सब जीवोंके दूर मारणान्तिक समुद्घातका क्षेत्र होता है। अन्य मारणान्तिक समुद्घातका क्षेत्र थोड़ा होनेसे मुख्य रूपसे इसीका ग्रहण किया है। तैजस समुद्घातमें आत्मप्रदेश शरीरसे बाहर निकलनेपर बारह योजन लम्बे, नौ योजन चौड़े और सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग प्रमाण ऊँचे क्षेत्रको रोकते हैं। इसका घनक्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण होता है। इससे तैजस समुद्घात

सुत्तिरलु तेजःसमुद्घातक्षेत्रमक्कुं[1] ६२।७। मत्तं सूच्यंगुलसंख्यातैकभागविष्कंभोत्सेधमुं संख्यात-योजनायामक्षेत्रघनफलमं २ २ लब्धसंख्यातघनांगुलप्रमितमं संख्यातजीवंगळिदं गुणिसुत्तं विरलु
१ १
योे १

आहारसमुद्घातक्षेत्रमक्कुं ६।१।१।

मरदि असंखेज्जदिमं तस्सासंखाय विग्गहे होंति ।
तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं ।।५४४।।

ई सूत्राभिप्रायमें तें दोडे उपपादक्षेत्रमं तरल्वेडि सौधर्म्मैशानकल्पद्वयद जीवराशिघनांगुल-तृतीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितमक्कु ३ ।।

ई राशियं पल्यासंख्यातदिदं खंडिसिदेकभागं प्रतिसमयं म्रियमाणराशियक्कुं –३ मत्तमदं
प
a

– प। प।१।a१। — ४ पुनर्द्वादशयोजनायामनवयोजनविष्कंभसूच्यङ्गुल-
a a ७।११

४।६५=८१।१०।a११।पपप
aaa

संख्यातैकभागोत्सेध २।९ यो क्षेत्रघनफल सख्यातघनाङ्गुलप्रमित ६ १ संख्यातजीवैर्गुणित तैजससमुद्घातक्षेत्रं
१।
यो १२

भवति।६।१।१। पुनः सूच्यङ्गुलसंख्यातैकभागविष्कम्भोत्सेधसंख्यातयोजनायामक्षेत्रस्य २।२ घनफल
१।१
यो १

संख्यातघनाङ्गुलप्रमितं ६ १ संख्यातजीवैर्गुणितं आहारकसमुद्घातक्षेत्र भवति ६ १।१ ।।५४३।।

अस्यार्थः उपपादक्षेत्रमानेतु सौधर्मद्वयजीवराशौ घनाङ्गुलतृतीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमिते – ३ पल्या-

करनेवालोंके प्रमाण संख्यातको गुणा करनेपर तैजस समुद्घात सम्बन्धी क्षेत्र आता है। आहारक समुद्घातमें एक जीवके प्रदेश शरीरसे बाहर निकलनेपर संख्यात योजन प्रमाण लम्बे और सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग चौड़े ऊँचे क्षेत्रको रोकते हैं। इसका घनक्षेत्रफल संख्यात घनांगुल होता है। इससे आहारक समुद्घातवाले जीवोंके प्रमाण संख्यातको गुणा करनेपर आहारक समुद्घातका क्षेत्र होता है ।।५४३।।

इस गाथाका अभिप्राय उपपादक्षेत्र लाना है। पीतलेश्यावाले सौधर्म ईशानवर्ती जीव मध्यलोकसे दूर क्षेत्रवर्ती हैं। अतः उनके कथनमें क्षेत्रका परिमाण बहुत आता है। अतः

१. म ६७।७।

पल्यासंख्यातदिंदं खंडिसिद बहुभागं विग्रहगतियोळप्पुवु –३ प ममिदं पल्यासंख्यातदिंदं
प प
a a

भागिसिद बहुभागंगळु मारणांतिकसमुद्घातमुळ्ळवप्पुवु – ३ प प इवर पल्यासंख्यातैकभाग-
a a
प प प
a a a

मात्रंगळु दूरमारणांतिकसमुद्घातजीवंगळप्पुवु –३ प प ई दूरमारणांतिकसमुद्घातजीव-
a a
प प प प
a a a a

राशिय द्वितीयदीर्घदंडस्थितमारणांतिकपूर्व्वोपपादजीवागमनार्थं पल्यासंख्यातदिंदं भागिसिदेक-

भागमुपपादजीवंगळप्पुवु –३ प प ईयुपपादजीवराशियं समीकरणकृततिर्य्यग्जीवमुखप्रमाण-
a a
प प प प प
a a a a a

संख्यातेन भक्ते एकभाग. प्रतिसमय म्रियमाणराशिर्भवति—३ तस्मिन् पल्यासंख्यातेन भक्ते बहुभागो विग्रहगतौ
प
a

भवति—३ प तस्मिन् पल्यासंख्यातेन भक्ते बहुभागो मारणान्तिकसमुद्घाते भवति
प प a
a a

—३ प प अस्य पल्यासंख्यातैकभागो दूरमारणान्तिके जीवा भवन्ति —३ । प प १
प प प a a प प प प a a
a a a a a a a

अस्मिन् द्वितीयदीर्घदण्डस्थितमारणान्तिकपूर्वोपपादजीवानानेतुं पल्यासंख्यातेन भक्ते एकभाग उपपादजीव-

उनकी मुख्यतासे कहते हैं। सो सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंकी राशि घनांगुलके तीसरे वर्गमूलसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाण है। इसमें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर एक भाग प्रमाण प्रतिसमय मरनेवाले जीवोंकी राशि होती है। उसमें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर बहुभाग प्रमाण विग्रहगतिवाले जीवोंका प्रमाण होता है। उस प्रमाणमें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर बहुभाग प्रमाण मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है। उसमें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर एक भाग प्रमाण दूर मारणान्तिक करनेवाले जीव होते हैं। इसमें द्वितीय दीर्घदण्डमें स्थित मारणान्तिक समुद्घातसे पूर्व होनेवाले उपपादसे युक्त जीवोंका प्रमाण लानेके लिए पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर एक भाग प्रमाण उपपाद जीवोंका प्रमाण होता है। यहाँ तिर्यंचोंके उत्पन्न होने-

संख्यातसूच्यंगुलविष्कंभोत्सेधद्व्यर्द्धरज्ज्वायतक्षेत्र २१ २१ / ३ / २ घनफलदिदं संख्यातप्रतरांगुलगुणित-द्व्यर्द्धरज्जुगळिदं – ३ । ४ १ / ७ २ गुणिसुत्तं विरलु उपपादक्षेत्रमक्कुं – ३ प प – ३ । ४ १ / प प प प प । ७ २ पद्म-लेश्येयोळु पद्मलेश्याजीवराशिय संख्यातदिदं भागिसि बहुभागमं स्वस्थानस्वस्थानपददोळिक्कु = ४ / ४ । ६५ = १ । ६ । ५ शेषैकभागमं मत्त संख्यातदिदं भागिसि बहुभागमं विहारवत्स्वस्थानदोळिक्कु = ४ । / ४ । ६५ = १ । ६ । ५ । ५ शेषैकभागमं मत्तं संख्यातदिदं भागिसि बहुभागमं वेदनासमुद्घातपद-दोळिक्कु = ४ / ४ । ६५ = १६।५।५।५ शेषैकभागमं कषायसमुद्घातपददोळिक्कु = १ / ४ । ६५ = १६।५ । ५ । ५

बळिकमल्लि प्रथमराशिय द्वितीयं द्वितीयराशियुमं क्रोशायाम तन्नवमभागमुखविष्कंभतिर्य्यग्जीवा-

---

राशिर्भवति—३ । प प ११ / प प प प प अस्मिन् समीकरणकृततिर्यग्जीवमुखप्रमाणसंख्यातसूच्यङ्गुलविष्कम्भोत्से-धद्व्यर्धरज्ज्वायतक्षेत्रघनफलेन २ १ । २ १ / —३ / ७ । २ संख्यातप्रतराङ्गुलगुणितद्व्यर्धरज्जुप्रमितेन —३ । ४ । १ / ७ । २ गुणितं उपपादक्षेत्रं भवति—३ प प – ३ । ४ । १ / ७ २ / प प प प प । पद्मलेश्याया तज्जीवराशे संख्यातभक्तबहुभाग- स्वस्थान-स्वस्थाने देयः = ॥ ४ / ४ । ६५ = १ ६ । ५ शेषैकभागस्य संख्यातभक्तबहुभागो विहारवत्स्वस्थाने देय — ॥ = ४ / ४ । ६५ = १ ६ । ५ । ५ शेषैकभागस्य संख्यातभक्तबहुभागो वेदनासमुद्घाते देयः = ॥ ४ / ४।६५=१६ । ५ । ५ । ५

की मुख्यतासे एक जीव सम्बन्धी प्रदेश फैलनेकी अपेक्षा डेढ़ राजू लम्बा संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौड़ा ऊँचा क्षेत्र है। इसका घनक्षेत्रफल संख्यात प्रतरांगुलसे डेढ़ राजूको गुणा करने-पर जो प्रमाण है उतना है। इससे उपपाद जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर उपपाद सम्बन्धी क्षेत्र आता है। यह पीतलेश्यामें क्षेत्रका कथन किया। अब पद्मलेश्यामें करते है—

पद्मलेश्यावाले जीवोंकी संख्यामें संख्यातका भाग देकर बहुभाग स्वस्थानस्वस्थानमें जानना। एक भागमें पुनः संख्यातसे भाग देकर बहुभाग विहारवत्स्वस्थानमें जानना। शेष एक भागमें संख्यातसे भाग देकर बहुभाग वेदना समुद्घातमें जानना। शेष रहा एक

वगाहनमं वासो तिगुणो परिहीत्यादि २००० / ९ | ३ | २००० २००० / ९ । ४ लब्धं संख्यातघनांगुलंगळिदं

गुणिसि स्व = स्व = = ४ । ६१ / ४ । ६५ = १ । ६ । ५ विहारवत्स्वस्थान = ४ । ६ । १ / ४ । ६५ = १ । ६ । ५५

मत्तमान वार्द्धमात्रविदं ६ १ । ९ / २ तृतीयचतुर्थराशिगळुमं गुणियिसु वेद = ४६ । ७१९ / ४।६५=१।६ । ५ । ५ । ५ कषा = ६ । १ । ९ / ४ । ६५=१ । ६ । ५ । ५ । ५ । २ इंतु गुणिसुत्तं विरलु स्वस्थानस्वस्थानादि चतुःपदंगळोळु क्षेत्रंगळप्पुवु । मत्तं सनत्कुमारमाहेंद्र देवराशियं निजैकादशमूलभाजितजगच्छ्रेणिप्रमितमं संख्यातविदं भागिसि बहुबहुभागमं स्वस्थानस्वस्थानदोळित्तु देंदरिवुदु —४ / ११ ५ शेषैकभागमं संख्यातविदं खंडिसिद बहुभागमं विहारवत् स्वस्थानदोळित्तुदेंदिदरिवुदु —४ / ११ । ५ । ५ शेषैकभागं संख्यातबहुभागं

शेषैकभागं कषायसमुद्घाते देय = १ / ४ । ६५ = १ ६ । ५ । ५ । तत्र प्रथमद्वितीयराशी क्रोशायामतन्नवमभागमुखविष्कम्भतिर्यग्जीवावगाहनेन वासो तिगुणो परहीत्याद्या २००० / ९ । ३ । २००० । २००० / ९ । ४ नीतसंख्यातघनाङ्गुलेन । ६ १ । गुणयेत् । स्व स्व = ४ । ६ १ / ४।६५=१६ । ५ वि = ४ । ६ १ / ४ । ६५ =१ ६ । ५ । ५ तृतीयचतुर्थराशी च तन्नवार्धमात्रेण ६ १ । ९ / २ गुणयेत् । वेद = ४ । ६ १ । ९ / २ / ४ । ६५=१६ । ५५५ कषा = ६ १ । ९ / २ / ४ । ६५ = १ ६ । ५ । ५ । ५ तथा सति स्वस्थानादिचतुष्पदेषु क्षेत्राणि भवन्ति । पुनः सनत्कुमारमाहेन्द्रदेवराशौ निजैकादशमूलभाजितजगच्छ्रेणिप्रमिते — / ११ संख्यातेन भक्तभक्तस्य बहुभागबहुभाग स्वस्थानस्वस्थाने —४ / ११ । ५ । विहारवत्स्वस्थाने —४ / ११।५।५

भाग कषाय समुद्घातका जानना। इस प्रकार जीवोंकी संख्या जानना। पद्मलेश्यावाले तियँच जीवोंकी अवगाहना बहुत है। अतः यहाँ उनकी मुख्यतासे क्षेत्रका कथन करते हैं— स्वस्थान-स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानमें एक तियँच जीवकी अवगाहना एक कोस लम्बी और उसके नौवें भाग मुखका विस्तार है। इसका क्षेत्रफल 'वासोतिगुणो परिही' इत्यादि सूत्रके अनुसार संख्यात घनांगुल होता है। इससे स्वस्थानस्वस्थानवाले जीवोंकी संख्याको गुणा करनेपर स्वस्थानस्वस्थान सम्बन्धी क्षेत्र होता है। इसे विहारवत्स्वस्थानवाले जीवोंकी संख्यासे गुणा करनेपर विहारवत्स्वस्थानका क्षेत्र होता है। उक्त अवगाहनासे पूर्वोक्त प्रकारसे साढ़े चार गुना क्षेत्र एक जीवकी अपेक्षा वेदना और कषाय समुद्घातमें होता है। इससे पूर्वोक्त वेदना और कषाय समुद्घातवाले जीवोंकी संख्यामें गुणा करनेसे वेदना और कषाय समुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्र होता है।

वैक्रियिक समुद्घातमें पद्मलेश्यावाले जीव सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गमें बहुत हैं इसलिए उनकी अपेक्षा कथन करते है—सानत्कुमार माहेन्द्रमें देवोंकी संख्या जगतश्रेणीके

वेदनासमुद्घातपददोळ् वरिवुवु —४ / ११।५।५।५। शेषैकभाग संख्यातबहुभागं कषायसमुद्घातपददोळ्- दरिवुवु —४ / ११।५।५।५।५ शेषैकभागं वैक्रियिकसमुद्घातपददोळक्कु —१ / ११।५।५।५।५ मा राशि- यना जीवंगळु विगुर्व्विसिद गजादिशरीरावगाहनसंख्यातघनांगुलंगळिं गुणिसुत्तं विरलु वैक्रियिक- समुद्घातपददोळु क्षेत्रमक्कु —६१ / ११।५५५५ मी राशियने "मरदि असखेज्जदिमं तस्सासंखाय विग्गहे होंति तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं॥" एंदितु पल्यासंख्यातभागदिदं भागिसुत्तं विरलेकभागं प्रतिसमयं म्रियमाणजीवप्रमाणमक्कु =१ / ११।प / a मत्तं पल्यासंख्यातदिदं भागिसिद बहु- भागं विग्रहगतिय जीवप्रमाणमक्कुं — प / a / ११ प प / a a मत्तमिदं पल्यासंख्यातदिदं भागिसिद बहुभागं मारणां-

वेदनासमुद्घाते —४ / ११।५।५।५ कषायसमुद्घाते च पतितोऽस्तीति ज्ञात्वा —४ / ११।५।५।५।५ शेषैकभागो वैक्रियिकसमुद्घाते देय ——१ / ११।५५५५ अस्मिन् तज्जीवविकुर्वितगजादिशरीरावगाहनसंख्यातघनाङ्गुलैर्गुणिते तत्समुद्घातक्षेत्र भवति —६१ / ११।५५५५ पुनस्तस्मिन्नेव सनत्कुमारमाहेन्द्रदेवराशौ—

मरदि असंखेज्जदिम तस्सासंखा य विग्गहे होति। तस्सासख दूरे उववादे तस्स खु असख॥

इति पल्यासंख्यातभक्तैकभागः प्रतिसमयं म्रियमाणजीवप्रमाण भवति —१ / ११।प। पुन पल्यासंख्यातभक्त- बहुभागो विग्रहगतिजीवप्रमाण भवति — प / ११ a। प प / a a पुन. पल्यासंख्यातभक्तबहुभागो मारणान्तिकसमुद्घातजीवप्रमाण

ग्यारहवें वर्गमूलसे जगतश्रेणिको भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतनी है। इस राशिमें संख्यातसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थानमें जीव जानना। शेष रहे एक भागमें पुनः संख्यातसे भाग देकर बहुभाग विहारवत्स्वस्थानमें जीव जानने। शेष रहे एक भागमें पुनः संख्यातसे भाग देकर बहुभाग वेदना समुद्घातमें जानना। शेष रहे एक भागमें पुनः संख्यातसे भाग देकर बहुभाग कषाय समुद्घातमें जानना। शेष रहे एक भाग प्रमाण वैक्रियिक समुद्घातमें जीव जानना। इतने-इतने जीव इनमें होते हैं। इन वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवोंके प्रमाणको एक जीव सम्बन्धी हाथी-घोड़ेरूप विक्रियाकी अवगाहना संख्यात घनांगुलसे गुणा करनेपर वैक्रियिक समुद्घातका क्षेत्र आता है। मारणान्तिक समुद्घात और उपपादमें भी क्षेत्र सानत्कुमार माहेन्द्रकी अपेक्षासे बहुत है अतः इनका कथन भी उनकी ही अपेक्षा करते हैं—

तिकसमुद्घातमुळ्ळ जीवप्रमाणमक्कुं — प प / ११ । प प प (a a / a a a) मत्तमिदं पल्यासंख्यातदिदं भागिसिदेकभागं

दूरमारणांतिकसमुद्घातजीवप्रमाणमक्कुं — प प / ११ प प प प (a a / a a a a) मत्तं पल्यासंख्यातदिदमीराशियं भागि-

सुत्तंविरलु तदेकभागमुपपाददंडस्थितजीवप्रमाणमक्कुं — प प / ११ । प प प प प (a a / a a a a a) मी येरडु राशिगळं त्रिर-

ज्वायत सूच्यंगुलसंख्यातभागविष्कंभोत्सेधद सनत्कुमारमाहेंद्रकल्पजदेवक्कळिंदं क्रियमाणमारणांतिकदंडक्षेत्रघनफलदिदं प्रतरांगुलसंख्यातैकभागगुणितरज्जुत्रयमात्रदिदं मारणांतिकसमुद्घातजीव-

a — प प / ११ a a / प प प / a a a पुन पल्यासख्यातभक्तैकभागो दूरमारणान्तिकसमुद्घातजीवप्रमाणं — प प १ / ११ a a / प प प प / a a a a पुनः

पल्यासंख्यातभक्तैकभाग उपपाददण्डस्थितजीवप्रमाणं — प प / ११ a a / प प प प प / a a a a a अत्र दूरमारणान्तिकराशौ त्रिरज्ज्वा-

यतसूच्यङ्गुलसंख्यातभागविष्कम्भोत्सेधस्य सनत्कुमारद्वयदेवैः क्रियमाणमारणान्तिकदण्डस्य घनफलेन प्रतराङ्गुल-

'मरदि असंखेज्जदिमं' इत्यादि गाथासूत्रके अनुसार सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गके देवोंके प्रमाणमें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दें। एक भाग प्रमाण देव प्रतिसमय मरते हैं। इस राशिमें भी पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दें। बहुभाग प्रमाण विग्रहगतिवाले जीव होते हैं। इस राशिको पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दें। बहुभाग प्रमाण मारणान्तिक समुद्घातवाले जीव हैं। इस राशिको भी पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दें। एक भाग प्रमाण दूर मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीव हैं। इस राशिको भी पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दें। एक भाग प्रमाण उपपाददण्डस्थित जीवोंका प्रमाण है। सानत्कुमार माहेन्द्रके देवोंके द्वारा किये गये मारणान्तिक दण्डका क्षेत्र तीन राजू लम्बा और सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग चौडा व ऊँचा है। उसका घनक्षेत्रफल प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे तीन राजुको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है। इस घनक्षेत्रफलसे दूर मारणान्तिक समुद्घातवाले जीवोंकी राशिमें गुणा करनेपर मारणान्तिक समुद्घातमें क्षेत्रका प्रमाण होता

१. ब °सति तच्चतुः ।

राशियं गुणिसिदोडे तन्मारणांतिकसमुद्घातपदवोळु क्षेत्रमक्कुं — प प । १ ७ ३ । ४ मत्तं
ə ə
११ प प प प
ə ə ə ə

त्रिरज्वायतसंख्यातसूच्यंगुलविष्कंभोत्सेधद सनत्कुमारद्वयमं कुरुत्तु तिर्य्यग्जीवंगळिदं मुक्तोपपाददंड-क्षेत्रघनफलदिदं संख्यातप्रतरांगुलहतत्रिरज्जुमात्रंगळिदं गुणिसिदोडे उपपाददोळु क्षेत्रमक्कुं

— प प । १ । ३ । ४ । १ तैजससमुद्घातदोळं आहारकसमुद्घातदोळं—क्षेत्रंगळु तेजो-
ə ə
११ प प प प प
ə ə ə ə ə

लेश्येयोळुं पेळ्दंते संख्यातघनांगुलगुणितसंख्यातजीवप्रमाणराशिगळप्पुवु तै १ । ६ । १ । आहार १ । ६ । १ । मत्तं शुक्ललेश्येयोळु—शुक्ललेश्याजीवराशियं पल्यासंख्यातप्रमितमं संख्यातदिद

संख्यातैकभागगुणितरज्जुत्रयेण — ३ । ४ गुणिते तत्क्षेत्रं स्यात्— प प ७ । ३ । ४ पुनः उपपाददण्डराशौ
७ १ ११ ə ə १
प प प प
ə ə ə ə

त्रिरज्ज्वायतसंख्यातसूच्यङ्गुलविष्कम्भोत्सेधस्य सनत्कुमारद्वय प्रति तिर्यग्जीवमुक्तोपपाददण्डस्य घनफलेन संख्यातप्रतराङ्गुलहतत्रिरज्जुमात्रेण—३ । ४ १ गुणिते तत्तत्क्षेत्रं भवति— प प — ३ । ४ १
७ ११ । ə ə ७
प प प प प
ə ə ə ə ə

तैजसाहारकसमुद्घातयोः क्षेत्रं तेजोलेश्यावत्संख्यातघनाङ्गुलगुणितसंख्यातजीवराशिर्भवति—
१ ६ १ । १ ६ १ पुनः शुक्ललेश्याया तज्जीवराशि पल्यासंख्यातभागं संख्यातेन भक्त्वा भक्त्वा बहुभागबहुभागं स्वस्थानस्वस्थाने प ४ विहारवत्स्वस्थाने प । ४ वेदनासमुद्घाते प ४ कषायसमुद्घाते च प ४ दत्वा शेषैकभागं
ə ५ ə ५ ५ ə ५ ५ ५ ə ५ ५ ५ ५

है। उपपादमें तिर्यंच जीवोंके द्वारा सानत्कुमार माहेन्द्रमें उत्पन्न होनेके लिए किया गया उपपादरूप दण्ड तीन राजू लम्बा और संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौड़ा व ऊँचा है। इसका घनक्षेत्रफल संख्यात प्रतरांगुलसे गुणित तीन राजू मात्र होता है। इससे उपपादवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर उपपाद सम्बन्धी क्षेत्रका प्रमाण होता है। तैजस और आहारक समुद्घातमें क्षेत्र जैसे तेजोलेश्याके कथनमें कहा है वैसे ही यहाँ भी संख्यात घनांगुलसे गुणित संख्यात जीव राशि प्रमाण जानना। आगे शुक्ललेश्यामें क्षेत्र कहते हैं— शुक्ललेश्यावाले जीवोंकी राशिमें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग स्वस्थान-स्वस्थानवाले जीव हैं शेष एक भागमें पल्यके असंख्यातवे भागसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थानमें जीव हैं। इस तरह शेष रहे एक-एक भागमें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण जीव क्रमसे वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घातमें जानना।

१. म. कृष्ण ।

भागिसि भागिसि बहुभागबहुभागंगळं स्वस्थानस्वस्थानदोळं प ४ / a ५ विहारवत् स्वस्थानदोळं प ४ / a ५५ वेदनासमुद्घातदोळं प ४ / a ५५५ कषायसमुद्घातदोळं प ४ / a ५५५५ कोट्टु शेषैकभागमं वैक्रियिकसमुद्घातदोळीवुदु प १ / a ५५५५ बळिक्कमी पंचराशिगळोळु प्रथमराशियं तृतीयराशियं चतुर्त्थराशियुमं यथासंख्यमागि त्रिहस्तोत्सेध तद्दशमभागमुखव्यासदिदं "व्यासत्रिगुणः परिधिर्व्यासचतुर्थाहतस्तु क्षेत्रफलम् । क्षेत्रफलं वेदगुणं खातफलं भवति सर्व्वत्र ।" एंदी सूत्राभिप्रायदिदं ह । ३ । ३ । ह ३ । ह ३ / १० । १० । ४ जनितदेवावगाहनप्रमाणवृंदांगुलसंख्यातैकभागदिदं मत्तं नवार्द्धघनांगुलसंख्यातभागदिदं मत्तं तावन्मात्रदिदं गुणिसिदोडे यथाक्रमदिं स्वस्थानपरस्थानवेदनासमुद्घातकषायसमुद्घातक्षेत्रंगळप्पुवु । स्व = स्व = प ४ । ६ / a ५ । १ वेद प ४ । ६ । ९ / a ५५५१ । २ कषाय— प ४ । ६ । ९ / a ५५५५१ । २ मत्तं विहारवत्स्वस्थानद्वितीयपदजीवराशियं संख्यात-योजनायामसूच्यंगुलसंख्यातभागविष्कंभोत्सेध २ १ २ १ / यो १ क्षेत्रघनफलं संख्यातघनांगुलगळिदं गुणिसि-

---

वैक्रियिकसमुद्घाते दद्यात्—प १ / a ५५५५५ अत्र प्रथमराशौ त्रिहस्तोत्सेधतद्दशमभागमुखव्यासैकदेवावगाहनस्य वासो तिगुणो परिहीत्याद्यानीत ह ३ । ३ ह । ३ ह ३ / १० । १० । ४ । घनफलेन घनाङ्गुलसंख्यातैकभागेन ६ / १ पुनस्तृतीयराशौ नवार्धघनाङ्गुलसंख्यातभागेन ६ । ९ / १ । २ पुनश्चतुर्थराशौ तावतैव च ६ । ९ / १ । २ गुणिते सति क्रमेण स्वस्थानस्वस्थानवेदनासमुद्घातक्षेत्राणि भवन्ति—स्व = प । ४ । ६ / a ५ । १ वेद =प ४ । ६ । ९ / a ५५५ १ । २ कषा = प ४ ६ । ९ / १ ५५५५१ २ पुन. द्वितीयराशौ संख्यातयोजनायामसूच्यङ्गुलसंख्यातभागविष्कम्भोत्सेध—२१ । २१ / यो १

शेष एक भाग प्रमाण जीव वैक्रियिक समुद्घातमें जानना। शुक्ललेश्यावाले देवोंकी मुख्यता होनेसे एक देवकी अवगाहना तीन हाथ ऊँची और उसके दसवें भाग मुखकी चौड़ाई है। 'वासो तिगुणो परिही' इत्यादि सूत्रके अनुसार क्षेत्रफल घनांगुलका संख्यातवाँ भाग होता है। इससे स्वस्थानस्वस्थानवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर स्वस्थानस्वस्थान सम्बन्धी क्षेत्रका परिमाण होता है। एक जीवका मूलशरीरकी अवगाहनासे साढ़े चार गुणा क्षेत्र वेदना तथा कषाय समुद्घातमें होता है। इस साढ़े चार गुणा घनांगुलके संख्यातवें भागसे वेदना और कषाय समुद्घातवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर वेदना और कषाय समुद्घातमें क्षेत्र होता है। एक देवके विहार करते हुए अपने मूलशरीरसे बाहर निकल उत्तर विक्रियासे उत्पन्न हुए शरीर पर्यन्त आत्माके प्रदेश संख्यात योजन लम्बे और सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग चौड़ा व ऊँचा क्षेत्र रोकते हैं। इसका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल होता है। इससे विहारवत्स्वस्थान जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर

वोडे द्वितीयपदवोळु क्षेत्रमक्कुं प ४ । ६ । १ वैक्रियिकसमुद्घातपंचमजीवराशियं स्वस्वयोग्य-
ə ५५
मागिविगुर्व्विसिद शरीरावगाहनंगळिवं लब्धसंख्यातघनांगुलंगळिवं गुणिसिदोडे वैक्रियिकसमुद्घात-
पदवोळु क्षेत्रमक्कुं प ६ १ मत्तं मारणांतिकसमुद्घातषष्ठपदवोळु रज्जुषट्कायामसूच्यंगुल-
ə ५५५५
संख्यातभागविष्कंभोत्सेध २ २ क्षेत्रघनफलमिदे —६ । ४ कजीवप्रतिबद्धमक्कुमी क्षेत्रमु-
१ १ ७ । १
७ ६
मानतादिदेवरुगळ्गे मनुष्यरोळेयुत्पत्तिनियममप्पुदरिदं च्युतकल्पदोळु संख्यातजीवंगळे मरण-मनेय्दुवुवदु कारणमागि संख्यातजीवंगळिदं गुणिसिदोडे मारणांतिकसमुद्घातक्षेत्रपदमक्कु[1]
१ ७ । ६ । ४ तेजससमुद्घातपदवोळं आहारकसमुद्घातपदवोळं पद्मलेश्ययोळ्पेळदंते क्षेत्रंगळप्पुवु
१ १
तै १ । ६ । १ । आ १ । ६ । १ । केवलिसमुद्घातपददोलु क्षेत्रं पेळल्पडुगु मदंते वोडल्लि दंडसमु-

---

क्षेत्रघनफलसंख्यातघनाङ्गुलैः ६ १ गुणिते विहारवत्स्वस्थाने क्षेत्रं भवति प । ४ । ६ १ । पुनः पञ्चमराशौ
ə ५ ५ ।
स्वस्वयोग्यतया विकुर्वितशरीरावगाहलब्धसंख्यातघनाङ्गुलैः ६ १ गुणिते वैक्रियिकसमुद्घातपदे क्षेत्र भवति प । ६ १
ə ५ । ५ । ५ ५

पुन रज्जुषट्कायामसूच्यङ्गुलसंख्यातभागविष्कम्भोत्सेध २ । २ क्षेत्रघनफलमेकजीवप्रतिबद्ध भवति
१ १
७ ६
— ६ । ४ अस्मिन्नानतादिदेवाना मनुष्येष्वेवोत्पत्तेस्तत्र संख्यातैरेव म्रियमाणैर्गुणिते मारणान्तिकसमुद्घातक्षेत्र
७ । १

भवति १ । ७ ६ । ४ तैजसाहारकसमुद्घातक्षेत्रं पद्मलेश्यावत् ।—तै १ । ६ १ । आ १ । ६ १ केवलि-
१

विहारवत्स्वस्थान सम्बन्धी क्षेत्र होता है। तथा अपने-अपने योग्य विक्रियारूप बनाये गये हाथी आदिके शरीरकी अवगाहना संख्यात घनांगुल है। उससे वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर वैक्रियिक समुद्घातमें क्षेत्रका प्रमाण आता है। शुक्ललेश्या आनतादि स्वर्गोंमें होती है। सो आरण अच्युतकी मुख्यतासे वहाँसे मध्यलोक छह राजू है। अतः वहाँसे मारणान्तिक समुद्घात करनेपर एक जीवके प्रदेश छह राजू लम्बे और सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग चौड़े-ऊँचे होते हैं। उसका जो क्षेत्रफल एक जीवको अपेक्षा हुआ उसको संख्यातसे गुणा करना, क्योंकि आनतादिकसे मरकर देव मनुष्य ही होता है। इसलिए मारणान्तिक समुद्घातवाले जीव संख्यात ही होते हैं। अतः संख्यातसे गुणा करनेपर मारणान्तिक समुद्घात सम्बन्धी क्षेत्र आता है। तैजस और आहारक समुद्घात सम्बन्धी क्षेत्र पद्मलेश्यामें जैसा कहा है वैसा ही जानना। अब केवलि समुद्घातमें क्षेत्र कहते हैं—

---

१. म तपदक्षेत्रमं ।

द्घातमं दुं कवाटसमुद्घातमें दुं प्रतरसमुद्घातमं दुं लोकपूरणसमुद्घातमें दितु केवलिसमुद्घातं चतुः-प्रकारमक्कुमल्लि स्थितदंडमें दुमुपविष्टदंडमें दु दंडं द्विविधमक्कुं। पूर्व्वाभिमुखोत्तराभिमुखस्थितकवाटद्वयमें दु, पूर्व्वाभिमुखोत्तराभिमुखोपविष्टकवाटद्वयमें दितु कवाटसमुद्घातं चतुःप्रकारमक्कुं।

प्रतरसमुद्घातमेकप्रकारमेयक्कुं। लोकपूरणसमुद्घातमुमेकप्रकारमेयक्कुमवरोळु प्रथमोद्दिष्टस्थितदंडसमुद्घातमें तें दोडे वातवलयरहितत्वदिंदं किंचिदून चतुर्द्दशरज्जूत्तुंगद्वादशांगुलरुंद्रक्षेत्रं वासो तिगुणो परिहीत्यादि १२। ३ १२।-१४- ॥=॥ लब्धं षोडशाभ्यधिकद्विशतप्रतरांगुलप्रमितें-
४। ७

जगच्छ्रेणिमात्रमक्कु —४। २१६ मिदं जीवगुणकारदिदं गुणिसुतं विरलु ४० अष्टसहस्रषट्शतचत्वारिंशत् प्रतरांगुलसंगुणितजगच्छ्रेणिमात्रं स्थितदंडसमुद्घातक्षेत्रमक्कुं ॥—४। ८६४०। ई क्षेत्रमने नवगुणं माडिदोडे षष्टिसमधिकसप्तशतसमन्वितसप्तसप्ततिसहस्रमात्रप्रतरांगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रमुपविष्ट दंडसमुद्घातक्षेत्रमक्कु—४। ७७७६०। किंचिदूनचतुर्द्दशरज्ज्वायामसप्तरज्जुविष्कंभद्वादशांगुलरुंद्रक्षेत्रफलमं जीवगुणकारदिदं ४० गुणिसुत्तं विरलु नवशतषष्टिसूच्यंगुलगुणितजगत्प्रतरप्रमितं पूर्व्वाभिमुखस्थितकवाटसमुद्घातक्षेत्रमक्कु = सू २। ९६०॥ मी क्षेत्रमे त्रिगुणित

समुद्घात दण्डकवाटप्रतरलोकपूरणभेदाच्चतुर्धा। दण्डसमुद्घातः स्थितोपविष्टभेदाद्द्वेधा। कवाटसमुद्घातोऽपि पूर्वाभिमुखोत्तराभिमुखभेदाभ्यां स्थितः उपविष्टश्चेति चतुर्धा। प्रतरलोकपूरणसमुद्घातावेकैकावेव। तत्र वातवलयरहितत्वात् किंचिदूनचतुर्दशरज्जूत्तुगद्वादशाङ्गुलरुंद्रक्षेत्रस्य वासो तिगुणो परिहीत्यागतं १२। ३। १२।—१४—षोडशाभ्यधिकद्विशतप्रतराङ्गुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रं —४। २१६ जीवगुणकारेण ४०
४ ७

गुणितं, अष्टसहस्रषट्शतचत्वारिंशत्प्रतराङ्गुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रं स्थितदण्डसमुद्घातक्षेत्रं —४। ८६४० एतदेव नवगुणितं सप्तसप्ततिसहस्रसप्तशतषष्टिप्रतराङ्गुलहतजगच्छ्रेणिमात्रमुपविष्टदण्डसमुद्घातक्षेत्रं भवति—४। ७७७६० किंचिदूनचतुर्दशरज्ज्वायामसप्तरज्जुविष्कम्भद्वादशाङ्गुलरुंद्रक्षेत्रफलं जीवगुणकारेण ४० गुणितं

केवलि समुद्घात दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरणके भेदसे चार प्रकारका है। दण्ड समुद्घात स्थित और उपविष्टके भेदसे दो प्रकारका है। कपाट समुद्घात भी पूर्वाभिमुख, उत्तराभिमुखके भेदसे तथा स्थित और उपविष्टके भेदसे चार प्रकारका है। प्रतर और लोकपूरण समुद्घात एक-एक ही है। इनमें-से स्थितदण्ड समुद्घातमें एक जीवके प्रदेश वातवलयसे रहित होनेसे कुछ कम चौदह राजू ऊँचे और बारह अंगुल प्रमाण चौड़े गोलाकार होते हैं। 'वासो तिगुणो परिही' इस सूत्रके अनुसार इसका क्षेत्रफल दो सौ सोलह प्रतरांगुलसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाण होता है, क्योंकि बारह अंगुल गोल क्षेत्रका क्षेत्रफल एक सौ आठ प्रतरांगुल होता है, उसको ऊँचाई दो श्रेणिसे गुणा करनेपर इतना ही होता है। एक समयमें इस समुद्घातवाले जीव चालीस होते हैं अतः इसे चालीससे गुणा करनेपर आठ हजार छह सौ चालीस प्रतरांगुलसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाण स्थितदण्ड समुद्घात सम्बन्धी क्षेत्र होता है। इसको नौसे गुणा करनेपर सतहत्तर हजार सात सौ साठ प्रतरांगुलसे गुणित जगतश्रेणिप्रमाण उपविष्ट दण्ड समुद्घात क्षेत्र होता है, क्योंकि स्थित दण्ड समुद्घातमें बारह अंगुल चौड़ाई कही है। उपविष्टमें उससे तिगुनी चौड़ाई होनेसे क्षेत्रफल नौगुणा होता है

१. म. प्रमितजगच्छ्रेणिमात्रमक्कु—४। २१६। तिसहस्रसप्तशत्रमात्रप्रतरांगुलगुणित। जगं°।

माडुवुदादोडे[1] अशीत्युत्तराष्टशतद्विसहस्रसूच्यंगुलगुणितजगत्प्रतरमात्रं निष्षण्णपूर्व्वाभिमुखकवाट-समुद्घातक्षेत्रमक्कुं = सू २। २८८०। किंचिदूनचतुर्द्दशरज्जुदीर्घं पूर्व्वापरदिदं सप्तैकपंचैकरज्जु विष्कंभं द्वादशांगुलरुंद्रसमीकृतक्षेत्रफलं मुख $-\frac{१}{७}$। भूमि$-\frac{७}{७}$ जोग ८ वळे$-\frac{४}{७}$ प–७ गुणिदे $=\frac{४}{७}$ पदधणं होदि एंदिदधोलोकक्षेत्रफलमक्कुं $=\frac{४}{७}$। मत्तं। मुख$-\frac{१}{७}$ भूमि$-\frac{५}{७}$ जोग$-\frac{६}{७}$ दळे–३ पद$-\frac{७}{७}$ गुणिदे$=\frac{२१}{७।७।२}$ पदधणं होदि। अपवर्त्तितं $=\frac{३}{७२}$ इदं द्विगुणिसिदोडूर्ध्वलोकक्षेत्रफलमक्कुमीयूर्ध्वलोकक्षेत्रफल-मुमं $=\frac{३}{७}$ अधोलोकक्षेत्रफलमुमं $=\frac{४}{७}$ कूडि जगत्प्रतरमितमक्कुमदं द्वादशांगुलरुंद्रदिद गुणि-सिदो = १२ डेकजीवप्रतिबद्धक्षेत्रमक्कुमदं जीवगुणकारदिदं ४०गुणिसिदोडे चतुःशताशीति सूच्यंगुल-गुणितजगत्प्रतरमात्रमुत्तराभिमुखस्थितकवाटसमुद्घातक्षेत्रमक्कु = सू २। ४८०। मिदं त्रिगुणितं माडिदोडे चत्वारिंशदुत्तरचतुःशतैकसहस्रसूच्यंगुलसंगुणितजगत्प्रतरमात्रमुत्तराभिमुखासीनकवाट-समुद्घातक्षेत्रमक्कुं = सू २। १४४०। ई कवाटसमुद्घातक्षेत्रमं नोडलसंख्यातगुणमप्पुदु सर्व्व-लोकमं नोडलुमसंख्यातभागहीनमुमप्पुदु प्रतरसमुद्घातक्षेत्रमक्कुमवेंतेंदोडे :—

नवशतषष्टिसूच्यङ्गुलहतजगत्प्रतरं पूर्वाभिमुखस्थितकवाटसमुद्घातक्षेत्रं भवति— = सू २। ९६० एतदेव त्रिगुणित द्विसहस्राष्टशताशीतिसूच्यङ्गुलहतजगत्प्रतरं निषण्णपूर्वाभिमुखकवाटसमुद्घातक्षेत्रं भवति सू २। २८८० किंचिदूनचतुर्दशरज्जुदीर्घस्य पूर्वापरेण सप्तैकपञ्चैकरज्जुविष्कम्भस्य मुख$—\frac{१}{७}$ भूमि$—\frac{}{७७}$ जोग$—\frac{८}{७}$ दले$—\frac{४}{७}$ पद$—\frac{}{७७}$ गुणिदे $=\frac{४}{७}$ पदधणं होदीत्यधोलोकफलं $=\frac{४}{७}$ मुख$—\frac{१}{७}$ भूमि$—\frac{५}{७}$ जोग$—\frac{६}{७}$ दले$—\frac{३}{७}$ पद$—\frac{}{७७२}$ गुणिदे $=\frac{२१}{७७।२}$ पदधण होदीत्यपवर्त्य $=\frac{३}{७२}$ द्विहते ऊर्ध्वलोकफल $=\frac{३}{७}$ अस्मिन्नधोलोकफले मिलिते जगत्प्रतरद्वादशाङ्गुलं रुद्रेण गुणितः = १२ एकजीवप्रतिबद्ध तदेव जीवगुणकारेण ४० गुणितं चतुःशताशीतिसूच्यङ्गुलहतजगत्प्रतरमुत्तराभिमुखस्थितकवाटसमुद्घातक्षेत्र भवति = सू २। ४८० एतदेव त्रिहत एकसहस्रचतु-

इससे नौसे गुणा किया है। पूर्वाभिमुख स्थित कपाट समुद्घातमें एक जीवके प्रदेश वातवलय बिना लोक प्रमाण अर्थात् कुछ कम चौदह राजू लम्बे हैं। उत्तर-दक्षिण दिशामें लोककी चौड़ाई सात राजु, सो उतने चौड़े हैं। बारह अंगुल प्रमाण पूरब पश्चिममें ऊँचे हैं। इसका क्षेत्रफल चौबीस अंगुलसे गुणित जगत्प्रतर प्रमाण होता है। चूँकि एक समयमें इस समुद्घात करनेवाले जीवोंका प्रमाण चालीस है अतः चालीससे गुणा करनेपर नौ सौ साठ सूच्यंगुलसे गुणित जगत्प्रतर प्रमाण पूर्वाभिमुख स्थित कपाट समुद्घातका क्षेत्र होता है। इसीको तिगुणा करनेपर दो हजार आठ सौ अस्सी सूच्यंगुलसे गुणित जगत्प्रतर प्रमाण पूर्वाभिमुख स्थित कपाट समुद्घातका क्षेत्र होता है। उत्तराभिमुख स्थित कपाट समुद्घातमें एक जीवके प्रदेश वातवलय बिना लोक प्रमाण अर्थात् कुछ कम चौदह राजू प्रमाण लम्बे होते है। और पूरब-पश्चिममें लोककी चौड़ाई प्रमाण चौड़े होते हैं। सो लोक

1. म. मादुदादोडे।

सत्तासीदिचदुस्सदसहस्सतिसीदिलक्खउणवीसं ।
चउवीसधियं कोडीसहस्सगुणिदं तु जगपदरं ॥
सट्ठीसत्तसएहिं णवयसहस्सेगलक्खभजिदं तु ।
सव्वं वादारुद्धं गुणिधं भणिदं समासेण ॥ —त्रिलोक. १३९–१४० गा. ।

एंदी सूत्रद्वयदिदं पेळल्पट्ट सर्व्ववातावरुद्धक्षेत्रयुतियं = १०१२४१९८३४८७ / १०१९७ २० सर्व्वलोकासंख्यातैकभागमं ≡ १ / ə कळेवुळिद सर्व्वलोकमेकजीवप्रतिबद्धप्रतरसमुद्घातक्षेत्रमक्कु ≡ ᵨ— / ə ə लोकपूरणसमुद्घातदोळमेकजीवप्रतिबद्धक्षेत्रमुं सर्व्वलोकमक्कु = । मिल्लि आरोह-

शतचत्वारिंशत्सूच्यङ्गुलहतजगत्प्रतरमुत्तराभिमुखासीन[1]कवाटसमुद्घातक्षेत्रं भवति = मू २ । १४४० प्रतरसमुद्घातस्य बहिर्वातत्रयाभ्यन्तरे सर्वलोके व्याप्तत्वात् तद्वातक्षेत्रफलेन लोकासंख्यातैकभागेन ≡ । १ / ə ऊनं लोकमात्रमेकजीवप्रतिबद्धक्षेत्रं भवति ≡ ᵨ⁀— ə / ə लोकपूरणसमुद्घाते एकजीवप्रतिबद्धक्षेत्रं सर्वलोको भवति ≡ अत्र

अधोलोकके नीचे सात राजू चौड़ा है। क्रमसे घटते-घटते मध्यलोकमें एक राजू चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल निकालनेके लिए करणसूत्रके अनुसार मुख एक राजू, भूमि सात राजू दोनोंको जोड़नेपर आठ हुए। उसका आधा चारको अधोलोककी ऊँचाई सातसे गुणा करनेपर अठाईस राजू अधोलोकका प्रतररूप क्षेत्रफल होता है। मध्यलोकमें एक राजू चौड़ा है। वहाँसे बढ़ते-बढ़ते ब्रह्मस्वर्गके निकट पाँच राजू चौड़ा है। सो यहाँ मुख एक राजू, भूमि पाँच राजू। दोनोंको जोड़नेपर छह हुए। उसका आधा तीनसे मध्य लोकसे ब्रह्मस्वर्ग तक की ऊँचाई साढ़े तीन राजूसे गुणा करनेपर आधे ऊर्ध्वलोकका क्षेत्रफल साढ़े दस राजू होता है। इतना ही क्षेत्रफल ऊपरके आधे ऊर्ध्वलोकका होता है। इसमें अधोलोकका फल मिलानेपर जगत्प्रतर होता है। बारह अंगुल प्रमाण उत्तर-दक्षिण दिशामें ऊँचा है। सो जगत्पतरको बारह सूच्यंगुलसे गुणा करनेपर एक जीव-सम्बन्धी क्षेत्र बारह अंगुल गुणित जगत्प्रतर प्रमाण होता है। इसको चालीससे गुणा करनेपर चार सौ अस्सी अंगुलसे गुणित जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख कपाट समुद्घातका क्षेत्र होता है। स्थितमें ऊँचाई बारह अंगुल कही, उपविष्टमें (बैठनेपर) उससे तिगुणी छत्तीस अंगुल ऊँचाई होती है। अतः उक्त प्रमाणको तीनसे गुणा करनेपर एक हजार चार सौ चालीस सूच्यंगुलसे गुणित जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख बैठे हुए कपाट समुद्घातसम्बन्धी क्षेत्र होता है। प्रतरसमुद्घातमें तीन वातवलयको छोड़कर सर्वलोकमें प्रदेश व्याप्त होते हैं। सो तीन वातवलयका क्षेत्रफल लोकका असंख्यातवाँ भाग है। इसे लोकमें घटानेपर जो शेष रहे उतना एक जीव सम्बन्धी

१. ब. °मुखस्थितक ।

कावरोहकदंडद्वयदोळं कवाटचतुष्टयदोळं प्रत्येकमुत्कृष्टदिदं विंशतिविंशतिप्रमितजीवंगळु घटिइसुवरेंदु जीवगुणकारं ४० नाल्वत्तक्कुमेंदु कैकोळल्पडुवुदु ।

सुक्कस्स समुग्धादे असंख भागा य सव्वलोगो य ॥५४४॥

एंदितु सूत्रार्द्धदोळु केवलिसमुद्घातापेक्षेयिदं लोकासंख्यातबहुभागेगळुं लोकमुं शुक्ललेश्येगे क्षेत्रमेंदु पेळल्पट्टुदु । रज्जुषट्कायामसंख्यातसूच्यंगुलविष्कंभोत्सेधवुपपाद ंडतिर्य्यंचप्रतिबद्धमप्प संख्यातप्रतरांगुलगुणितरज्जुषट्कमात्रमेकजीवप्रतिबद्धक्षेत्रमक्कु मा क्षेत्रमुमच्युतकल्पदोळु संख्यातजीवंगळे सावुवुवनितें तिर्य्यग्जीवंगळल्लि पुट्टुववेंदितु संख्यातजीवंगळिदं गुणिसिदोडे उपपादसर्व्वक्षेत्रमक्कुं– १—६।४।१/७ मत्तमी शुभलेश्येगळिल्लियुं सर्व्वत्र गुणकारभागहारंगळं निरोक्षिसियपवर्त्तिसि पंचलोकंगळं स्थापिसियवरमेलेयाळापं माडल्पडुगुं । पनोंदनेयक्षेत्राधिकारंतीदुर्दुंदु ।

आरोहकावरोहकदण्डद्वयकवाटचतुष्के प्रत्येकमुत्कृष्टतो विंशतिविंशतिजीवसंभवाज्जीवगुणकारः ४० चत्वारिंशत् ।

इति सूत्रार्धेन केवलिसमुद्घातापेक्षया लोकस्यासंख्यातबहुभागा. लोकश्च शुक्ललेश्याक्षेत्रमुक्तं रज्जुषट्कायामसंख्यातसूच्यङ्गुलविष्कम्भोत्सेधैकतिर्यग्प्रतिबद्धोपपाददण्डक्षेत्रफलं संख्यातप्रतराङ्गुलहतरज्जुषट्कमात्रम् । अच्युतकल्पे संख्यातानामेव मरणात् तावतामेव तत्रोत्पत्तेः संख्यातेन गुणितं उपपादपदसर्वक्षेत्र भवति १—।६।४।१/७ अत्रापि प्राग्वत् सर्वत्र गुणकारभागहारानपवर्त्य पञ्चलोकान् संस्थाप्य आलापः कर्तव्यः ॥५४४॥ इति क्षेत्राधिकार. ॥ अथ स्पर्शाधिकारं सार्धगाथाषट्केनाह—

प्रतरसमुद्घातमें क्षेत्र होता है। लोकपूरण समुद्घातमें सर्वलोकमें प्रदेश व्याप्त होते हैं। अतः लोकपूरणमें लोकप्रमाण एक जीव सम्बन्धी क्षेत्र होता है। प्रतर और लोकपूरणमें बीस जीव तो करनेवाले और बीस जीव संकोचनेवाले होनेसे एक समयमें चालीस जीव समुद्घात करनेवाले होते हैं। किन्तु क्षेत्र सबका पूर्वोक्त ही रहता है अतः चालीससे गुणा नहीं किया। दण्ड और कपाटमें भी बीस-बीस जीव करनेवाले और समेटनेवाले होनेसे चालीस होते हैं किन्तु इनका क्षेत्र भिन्न-भिन्न भी होता है इससे वहाँ एक जीव सम्बन्धी क्षेत्रको चालीससे गुणा किया है। यह संख्या उत्कृष्ट है ॥५४४॥

इस आधे गाथासूत्रसे केवली समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्व लोक शुक्ललेश्याका क्षेत्र कहा है। उपपादमें मुख्य रूपसे अच्युत स्वर्गकी अपेक्षा एक जीवके प्रदेश छह राजू लम्बे और असंख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौड़े व ऊँचे होते हैं। अच्युत स्वर्गमें एक समयमें संख्यात ही उत्पन्न होते हैं और संख्यात ही मरते हैं। अतः संख्यात प्रतरांगुलसे गुणित छह राजू मात्र उपपाददण्ड क्षेत्रफलको संख्यातसे गुणा करनेपर उपपादका सर्व क्षेत्र होता है। यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार पाँच लोकोंकी स्थापना करके गुणकार भागहारका यथायोग्य अपवर्तन करके कथन करना चाहिए। क्षेत्राधिकार समाप्त हुआ ॥

क्षे	स्वस्थानस्वस्थान	विहा. स्वस्थान	वेदना समुद्घात	कषाय समुद्घात	वैक्रि. समुद्घात	मारणांति. समुद्घात	तैजस	आहार.
ते	≡ ९।४।६ ४६५=७।५।७	≡ ९।४।६।७ ४।६५=७।५५	≡ ९।४।६।९ ७२ ४६५=७५५५	≡ ९। ४।६।९ ७२ ४६५=७५५५५	≡ ९।४।६।७ ४।६।५=७।५५५५	≡ प प १a८-४ a a ७७७ ४६५=८१।१०३७ प प प a a a	७।६।७	७६७
प	=६७।४ ४।६५=७६५	=४।६७ ४।६५=७६५५	=४६।७।९ ४।६५=७६५५५२	=६।७।९ ४।६५=७६।५५५२	-६७ ११।५५५५	प प ९ ३।४ a a ११ प प प प ७ a a a a	७।६।७	७६७
शु	प ४।६ a ५।७	प ४।६७ a ५५	प ४।६९ a ५५५७२	प ४।६।९ a ५५५५।७२	प ६७ a ५५५५	७-६।४ ७ ७	७।६।७	७६७

५

केवलि स वं	उपपाद				
	—प प a a प प प प प a a a a a	७२	३१४७		
	प प ७ a a ११ प प प प प a a a a a	३१४१७			७-६४१७ ७
स्थित दंड −४१८६४०	पू स्थि = क = =सू २१९६०	उत्थित क= =२१४८०	प्रतर ≡ ० a a		
आसीन दंड —४१७७६०	पू आसीन क =सू२१२८८०	आसीन क =२११४४०	लोकपूर ≡		

स्पर्शाधिकारमं सार्द्धगाथाषट्कदिवं पेळ्वपं :—

फासं सव्वं लोयं तिट्ठाणे असुहलेस्साणं ॥५४५॥

स्पर्शः सव्वलोकत्रिस्थाने अशुभलेश्यानां ॥

अशुभलेश्यात्रयक्कं स्वस्थानमें दुं समुद्घातमें दुं उपपादमें दितु सामान्यदिदं त्रिस्थानमक्कुमल्लिया त्रिस्थानदोळं स्पर्शः स्पर्शं सर्व्वलोकः सर्व्वलोकमक्कुं । ≡ विशेषदिं स्वस्थानस्वस्थानादिदशपदंगळोळं स्पर्शं पेळल्पडुगुं ।

स्पर्शमें बुदेनें दोडे स्वस्थानस्वस्थानादिदशपदंगळोळु विवक्षितपदपरिणतंगळप्प जीवंगळिदं वर्त्तमानक्षेत्रसहितमागियतीतकालदोळु स्पृष्टक्षेत्रं स्पर्शमेंबुदक्कुमल्लि अन्नेवरं कृष्णलेश्याजीवंगळगे स्वस्थानस्वस्थानवेदना कषाय मारणान्तिक उपपादमें ब पंचपदंगळोळु स्पर्शं सर्व्वलोकमक्कुं≡ विहार-

अशुभलेश्यात्रयस्य स्वस्थानसमुद्घातोपपादसामान्यस्थानत्रये स्पर्शः विवक्षितपदपरिणतैर्वर्तमानक्षेत्रसहितातीतकालस्पृष्टक्षेत्रलक्षणः सर्वलोकः ≡ विशेषेण तु दशपदेषु उच्यते। तत्र कृष्णलेश्याजीवानां स्वस्थानस्वस्थानवेदनाकषायमारणान्तिकोपपादेषु पञ्चपदेषु सर्वलोकः ≡ विहारवत्स्वस्थाने संख्यातसूच्यङ्गुलो-

आगे साढ़े छह गाथाओंसे स्पर्शाधिकार कहते हैं—

क्षेत्रमें तो केवल वर्तमान कालमें रोके गये क्षेत्रका ही ग्रहण होता है किन्तु स्पर्शमें वर्तमान क्षेत्र सहित अतीत कालमें स्पृष्ट क्षेत्रका ग्रहण होता है। अतः तीन अशुभ लेश्याओंका स्पर्श स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद इन तीन सामान्य स्थानोंमें सर्वलोक होता है। विशेष रूपसे दस स्थानोंमें कहते हैं—उनमें-से स्वस्थान स्वस्थान, वेदना-समुद्घात, कषाय-समुद्घात, मारणान्तिक और उपपाद इन पाँच स्थानोंमें कृष्णलेश्यावाले जीवोंका स्पर्श सर्वलोक है। विहारवत्स्वस्थानमें एक राजू लम्बा व चौड़ा और संख्यात सूच्यंगुल ऊँचा तिर्यक् लोक

वत् स्वस्थानदोळु संख्यातसूच्यंगुलोत्सेधरज्जुप्रतरमात्रतिर्य्यग्लोकक्षेत्रफलं संख्यातसूच्यंगुलगुणित-जगत्प्रतरमात्रस्पर्शनमक्कुं ४९ सू २ १ सुरशैलमूलं मोदल्गोंडु सहस्रारपर्य्यंतं त्रसनाळियोळु वातपुद्गलंगळु संच्छन्नमागिरुतिर्क्कु मल्लिसर्व्वत्रातीतकालदोळु बादरवातकायिकंगळु विकुर्व्विसुववेंदितु रज्जुविस्तारविष्कंभपंचरज्जूदयक्षेत्रफलं लोकसंख्यातभागमात्रं स्पर्शमक्कु = ५/३४३ तैजससमुद्घाताहारकसमुद्घातकेवलिसमुद्घातपदत्रयंगळु[1] वि कृष्णादिलेश्येगळोळु संभविसवु। इल्लियं पंचलोकंगलं संस्थापिसि

सामान्यलोक ≡
अधोलोक ≡ ४/७
ऊर्ध्वलोक ≡ ३/७
तिर्य्यग्लोक ≡ १ ल/४९
मनुष्यलोक ६७

यवरमेलेळ्यलापं माडल्पडुगुं

स्प	स्व=स्व	वि=स	वे	क	वै	मा	ते	आ	के	उ	प
कृ	≡	=२७/४९	≡	≡	≡ ५/३४३	≡	०	०	०	≡	
नी	≡	=२७/४९	≡	≡	≡ ५/३४३	≡	०	०	०	≡	
क	≡		≡	≡	≡ ५/३४३	≡	०	०	०	≡	

स्वस्थानस्वस्थान वेदना कषाय मारणांतिकोपपादमेंब पंचपदंगळोळु कृष्णलेश्याजीवंगळिंदं कियत् क्षेत्रं स्पृष्टं सर्व्वलोकं विहारवत्स्वस्थानदोळु कृष्णलेश्याजीवंगळिंदंकियत् क्षेत्रं स्पृष्टं सामान्यलोक मोदलागि मूरुं लोकंगळ असंख्यातैकभागं तिर्य्यग्लोकद संख्यातैकभागमेकें बोडे लक्षयोजनप्रमाण-तिर्य्यग्लोकबाहल्यदत्तणिदं विहारवत्स्वस्थानक्षेत्रोत्सेधक्के संख्यातगुणहीनत्वदिदं मनुष्यलोकमं

त्सेधरज्जुप्रतर २ १/७ तिर्यग्लोकक्षेत्रफल संख्यातसूच्यङ्गुलहतजगत्प्रतरं स्यात् = सू २ १/४९ वैक्रियिकसमुद्घाते
७

सुरशैलमूलादारभ्य सहस्रारपर्यन्तत्रसनाल्या वातपुद्गलाना संच्छन्नरूपेण अवस्थानात्। तत्र सर्वत्रातीतकाले वादरवातकायिकानां विकुर्वणाद् रज्जुव्यासायामपञ्चरज्जूदय ७।५।७ —क्षेत्रफलं लोकसंख्यातभागमात्रं
७

क्षेत्र है। इसका क्षेत्रफल संख्यात सूच्यंगुलसे गुणित जगत्प्रतर प्रमाण होता है। वही विहार-वत्स्वस्थानमें स्पर्श जानना। वैक्रियिक समुद्घातमें मेरुके मूलसे लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त त्रसनालीमें वायुकायरूप पुद्गल संच्छन्न रूपसे भरे हैं। वायुकायिक जीवोंमें विक्रिया पायी जाती है। सो अतीत कालकी अपेक्षा वहाँ सर्वत्र विक्रियाका सद्भाव है। अतः एक राजू

१. म°लु निकृष्टले°।

नोडलुमसंख्यातगुणं क्षेत्रं स्पृष्टं वैक्रियिकपददोळु कृष्णलेश्याजीवंगळिंदं कियत् क्षेत्रं स्पृष्टं मूरुं लोकंगळ संख्यातैकभागं । तिर्य्यग्लोकमुमं मनुष्यलोकमुमं नोडलुमसंख्यातगुणं क्षेत्रं स्पृष्टं । इंते नीललेश्येयोळं कपोतलेश्येयोळं वक्तव्यमक्कुं ।

तेजोलेश्यात्रिस्थानदोळु सामान्यदिदं स्पर्शमं पेळ्दपं गाथाद्वयदिदं :—

तेउस्स य सट्ठाणे लोगस्स असंखभागमेत्तं तु ।
अड चोद्दस भागा वा देसूणा होंति णियमेण ।।५४६।।

तेजोलेश्यायाः स्वस्थाने लोकस्यासंख्यभागमात्रं तु । अष्ट चतुर्दशभागा वा देशोना भवंति नियमेन ।।

तेजोलेश्येय स्वस्थानदोळु स्पर्शं स्वस्थानस्वस्थानापेक्षेयिं लोकद असंख्यातभागमात्रमक्कुं । तु मत्ते अष्टचतुर्द्दशभागंगळु मेणु किंचिदूनंगळप्पुवु नियमदिंद विहारवत्स्वस्थानादिचतुःपदंगळं विवक्षिसि :—

एवं तु समुद्घादे नवचोद्दसभागयं च किंचूणं ।
उववादे पढमपदं दिवड्ढचोद्दस य किंचूणं । ५४७।।

एवं तु समुद्घाते नव चतुर्द्दशभागकं च किंचिदूनं । उपपादे प्रथमपदं द्व्यर्द्धचतुर्द्दश-भागः किंचिदूनः ।।

समुद्घातदोळं स्वस्थानदोळ्पेळ्दंते किंचिदून अष्टचतुर्द्दशभागमुं किंचिदूननवचतुर्द्दश-भागमु स्पर्शमक्कुं । मारणांतिकसमुद्घातापेक्षेयिदं उपपाददोळु प्रथमपदं द्व्यर्द्धचतुर्द्दशभागं किंचिदूनं स्पर्शमक्कुं इंतु सामान्यदिदं तेजोलेश्येगे त्रिस्थानदोळु स्पर्शं पेळल्पट्टुदु ।

भवति $\frac{\equiv ५}{३४३}$ अत्र तैजसाहारककेवलिसमुद्घाता पुन न संभवन्ति । अत्रापि पञ्च लोकान् संस्थाप्य आलापः कर्तव्य । एवं नीलकपोतयोरपि वक्तव्यम् ।।५४५।। अथ तेजोलेश्याया गाथाद्वयेनाह—

तेजोलेश्याय स्वस्थाने स्पर्श स्वस्थानात् स्वस्थानापेक्षया लोकस्यासंख्येयभाग । तु—पुन., अष्टचतु-र्दशभागा अथवा किंचिदूना भवन्ति नियमेन विहारवत्स्वस्थानापेक्षया ।।५४६।।

समुद्घाते स्वस्थानवत् किंचिदूनाष्टचतुर्दशभाग. किंचिदूननवचतुर्दशभागश्च स्पर्शो भवति मारणान्तिक-समुद्घातापेक्षया । उपपादपदे द्व्यर्धचतुर्दशभाग किंचिदूनः इति सामान्येन तेजोलेश्यायास्त्रिस्थाने स्पर्श

लम्बा-चौड़ा तथा पाँच राजू ऊँचा क्षेत्र हुआ । उसका क्षेत्रफल लोकके संख्यातवें भाग हुआ । वही वैक्रियिक समुद्घातमें स्पर्श जानना । इस कृष्णलेश्यामें आहारक, तैजस और केवलि समुद्घात नहीं होते । यहां भी पांच लोकोंकी स्थापना करके यथासम्भव गुणकार भागहार जानना । कृष्णलेश्याकी ही तरह नीललेश्या और कपोतलेश्यामें भी कथन करना ।।५४५।।

तेजोलेश्यामें दो गाथाओंसे कहते हैं—

तेजोलेश्याका स्वस्थानमें स्पर्श स्वस्थानस्वस्थान अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग है । और विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा नियमसे त्रसनालीके चौदह भागोंमें-से कुछ कम आठ भाग स्पर्श होता है ।।५४६।।

समुद्घातमें स्वस्थानकी तरह त्रसनालीके चौदह भागोंमें-से कुछ कम आठ भाग स्पर्श है । मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमें-से कुछ कम नौ भाग प्रमाण

विशेषदिवं स्वस्थानस्वस्थानादिदशपदंगळोळु स्पर्शं पेळल्पडुगुमदें तेंदोडे तिर्य्यग्लोकद रज्जुप्रतरक्षेत्रदोळु ७ (□/७) जलचरसहितंगळप्प लवणोदकालोदस्वयंभूरमणसमुद्रमें बी समुद्रत्रय-रहितसर्व्वसमुद्रक्षेत्रफलमं कळेयुत्तिरलु शेषक्षेत्रं शुभत्रयलेश्यास्वस्थानस्वस्थानस्पर्शक्षेत्रमक्कुं। तदानयनक्रमं पेळल्पडुगुमदें तेंदोडे जंबूद्वीपमादियागि स्वयंभूरमणसमुद्रपर्य्यंतमाद सर्व्वद्वीपसमुद्रंगळु द्विगुणद्विगुण विस्तीर्णंगळागिरुतिप्पुंवु १ ल। २ ल। ४ ल। ८ ल। १६ ल। ३२ ल। ६४ ल। १२८ ल। २५६ ल। ५१२ ल। इल्लि लक्षयोजनविष्कंभमप्प जंबूद्वीपसूक्ष्मक्षेत्रफलं :—

सत्त णव सुण्ण पंच य छण्णव चउरेक्क पंच सुण्णं च।
जंबूदीवस्सेदं गुणिदफळं होदि णादव्वं ॥

७९०५६९४१५० एतावन्मात्रं जंबूद्वीपगुणितफलमक्कुमिदनोंदु खंडमेंदु माडल्पडुवुदु। १। मत्तं लवणसमुद्रदोळु तत्प्रमाणखंडंगळु चतुर्व्विंशतिगळप्पुवु। २४। घातकीषंडद्वीपदोळु चतुरुत्तरचत्वारिंशच्छतप्रमितंगळप्पुवु। १४४।

काळोदकसमुद्रदोळु षट्छतद्वासप्ततिप्रमाणंगळप्पुवु ६७२। पुष्करवरद्वीपदोळु अशीत्युत्तराष्टाविंशतिशतप्रमितंगळप्पुवु २८८०। तत्समुद्रदोळु एकादशसहस्रनवशतचतुःप्रमितखंडंगळप्पुवु

उक्तः। विशेषेण तु दशपदेषु उच्यते—तिर्यग्लोकस्य रज्जुप्रतरस्य क्षेत्रे ७ (□/७) जलचरसहितलवणोदककालोदकस्वयंभूरमणसमुद्रेभ्य शेषसर्वसमुद्रक्षेत्रफलेऽपनीते शेषं शुभत्रयलेश्या[1]स्वस्थानस्वस्थाने स्पर्शो भवति। तद्यथा जम्बूद्वीपादय स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यन्ता सर्वे द्वीपसमुद्राः द्विगुणद्विगुणविस्ताराः सन्ति। तत्र लक्षयोजनविष्कम्भो जम्बूद्वीपः तस्य सूक्ष्मक्षेत्रफलं—

सत्तणवसुण्णपंचयछण्णवचउरेक्कपचसुण्णं च।

इत्येतावत् ७९०५६९४१५० इदमेकखण्डं कृत्वा लवणसमुद्रे तादृशानि चतुर्विंशतिः २४। घातकीखण्डे शतचतुश्चत्वारिंशत् १४४। कालोदके समुद्रे षट्शतद्वासप्तति ६७२। पुष्करद्वीपे द्विसहस्राष्टशताशीतिः। २८८०।

स्पर्श है। उपपादस्थानमें त्रसनालीके चौदह भागोंमें-से कुछ कम डेढ़ भाग प्रमाण स्पर्श है। यह सामान्यसे तेजोलेश्याके तीन स्थानोंमें स्पर्श कहा। विशेषसे दस स्थानोंमें स्पर्श कहते हैं—तिर्यग्लोक एक राजू लम्बा व चौड़ा है। इसमें लवणोदक, कालोदक और स्वयम्भूरमण समुद्रमें ही जलचर जीव पाये जाते हैं शेष समुद्रोंमें नहीं। सो तिर्यग्लोकके क्षेत्रमें-से जिन समुद्रोंमें जलचर जीव नहीं हैं उन समुद्रोंका क्षेत्रफल घटानेपर जितना शेष रहे उतना तीन शुभ लेश्याओंका स्वस्थानस्वस्थानमें स्पर्श जानना। उसीको कहते हैं— जम्बूद्वीपसे लेकर स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यन्त सब द्वीपसमुद्र दूने-दूने विस्तारवाले हैं। उनमें-से जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है। उसका सूक्ष्म क्षेत्रफल इस प्रकार है—सात नौ शून्य पाँच छह नौ चार एक पाँच और शून्य ७९०५६९४१५०। इसे एक खण्ड मानकर लवण समुद्रमें इतने

१. ब. °याः स्वस्थाने।

११९०४। वारुणिवरद्वीपदोळु चतुरशीतित्रिशताष्टचत्वारिंशत्सहस्रंगळप्पुवु ४८३८४। तत्समुद्रदोळु द्वासप्तत्युत्तर पंचनवतिसहस्रैकलक्षप्रमितंगळप्पुवु १९५०७२। क्षीरवरद्वीपदोळु सप्तलक्षत्र्यशीतिसहस्रत्रिशतषष्टिमात्रंगळप्पुवु ७८३३६०। तदर्णवदोळु एकत्रिंशल्लक्षैकोनचत्वारिंशत्सहस्रपंचशतचतुरशीतिप्रमितंगळप्पुवु। ३१३९५८४। एवं स्वयंभूरमणसमुद्रपर्य्यंतं नेतव्यंगळप्पुवु।

३१३९५८४। स   ई खंडंगळं साधिसुवकरण सूत्रत्रयं :—

७८३३६० क्षे

१९५०७२। स

४८३८४ वा

११९०४। स

२८८०। घ

६७२। स

१४४। दा

२४ ल ल

१। ज

बाहिरसूईवग्गं अब्भंतरसूइवग्गपरिहीणं।
जंबूवासविभत्ते तत्तियमेत्ताणि खंडाणि ॥ —त्रि सा. ३१६ गा.।

बाहिरसूई ५ ल। वग्गं ५ ल। ५ ल। गुणिते। २५ ल ल। अब्भंतरसूइ १ ल। वग्ग १ ल। १ ल। परिहीणं। २४। ल ल। जंबूवास १ ल ल। विभत्ते $\frac{२४ \text{ ल ल}}{१ \text{ ल ल}}$ तत्तियमेत्ताणि खंडाणि २४।

रूऊण सला बारस सळागगुणिदे दु वळयखंडाणि।
बाहिर सूइ सलागा कदी तदंता खिला खंडा ॥

तत्समुद्रे एकादशसहस्रनवशतचत्वारि ११९०४। वारुणीद्वीपे अष्टचत्वारिंशत्सहस्रत्रिशतचतुरशीतिः ४८३८४। तत्समुद्रे एकलक्षपञ्चनवतिसहस्रद्वासप्तति. १९५०७२। क्षीरवरद्वीपे सप्तलक्षत्र्यशीतिसहस्रत्रिशतषष्टि ७८३३६०। तदर्णवे एकत्रिंशल्लक्षैकोनचत्वारिंशत्सहस्रपञ्चशतचतुरशीति। ३१३९५८४ एवं स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यन्तमानेतव्यानि। तदानयनसूत्रत्रय बाहिरसूई ५ ल, वर्ग ५ ल ५ ल, गुणिते पच्चीस ल ल, अब्भन्तरसुई १ ल, वग्ग १ ल १ ल, गुणिते लल परिहीण २४ ल ल, जंबूवास १ ल ल, विभक्ते $\frac{२४ \text{। ल ल}}{१ \text{। ल ल}}$ अपवर्तिते तत्तियमेत्ताणि

प्रमाण वाले चौबीस खण्ड होते हैं। धातकी खण्डमें एक सौ चवालीस खण्ड होते हैं। कालोद समुद्रमें छह सौ बहत्तर खण्ड होते हैं। पुष्कर द्वीपमें दो हजार आठ सौ अस्सी खण्ड होते हैं। पुष्कर समुद्रमें ग्यारह हजार नौ सौ चार खण्ड होते हैं। वारुणी द्वीपमें अड़तालीस हजार तीन सौ चौरासी खण्ड होते हैं। वारुणी समुद्रमें एक लाख पनचानबे हजार बहत्तर खण्ड होते हैं। क्षीरवर द्वीपमें सात लाख तिरासी हजार तीन सौ साठ खण्ड होते हैं। क्षीरवर समुद्रमें इकतीस लाख उनतालीस हजार पाँच सौ चौरासी खण्ड होते हैं। इस प्रकार स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त लाना चाहिए। इसके लानेके लिए तीन सूत्र हैं। तदनुसार लवणसमुद्रकी बाह्य सूची पाँच लाख योजन, उसका वर्ग पचीस लाख लाख योजन। लवण समुद्रकी अभ्यन्तर सूची एक लाख योजन। उसका वर्ग एक लाख लाख योजन। घटानेपर

रूऊणसळा २ । बारस । १२ । सळाग २ । गुणिवे दु २ । १२ । २ । वळयखंडाणि । २४ । बाहिरसूइ सळागा ५ कवी २५ । तवंताखिळा खंडा ।

बाहिरसूईवलयवासूणा चउगुणिट्ठवासहवा ।
इगिलक्खवग्गभजिवा जंबूसमवलयखंडाणि ॥ —त्रि. सा. ३१८ गा ।

बाहिरसूई ५ ल । वळयं । वास २ ल । ऊणा ३ ल । चउगुण ३ ल । ४ । इट्ठवास २ ल । हवा २४ ल ल । इगिलक्खवग्ग १ ल ल भजिवा २४ ल ल / १ ल ल जंबूसमवलयखंडाणि २४ । इल्लि सर्व्वद्वीपखंडंगळं बिट्टु समुद्रखंडंगळने याग्रुकोंडु प्रकृतं पेळल्पडुगुमवें तेंदोडे लवणसमुद्रदोळु जंबूद्वीपोपमानखंडंगळु चतुर्विंशतिप्रमितग २४ । ळवनोंदु लवणसमुद्रखंडमें दु माडि १ । या चतुर्व्विंशतिखंडंगळिंदं काळोवकसमुद्रद जंबूद्वीपसमानव सर्व्वखंडंगळं भागिसिदोडे ६७२ / २४ लवणसमुद्रोपमानलब्धखंडंगळप्पुवुविप्पत्तेंटु २८ । मतमा चतुर्व्विंशतिखंडंगळिंदं पुष्करसमुद्रद जंबूद्वीप-

---

खण्डाणि २४ । रूऊणसला २ बारस १२ सलाग २ । गुणिदे दु २ १२ । २ बलयखण्डाणि २४ । वाहिरसुई सलागा ५ कदी २५ तदन्ताखिलाखण्डा । वहिरसूई ५ ल वलयव्वासू २ ल, णा ३ ल, चउगुणिट्ठवास ४२ ल, हदा २४ ल ल, इगिलक्खवग्गभजिदा २४ ल ल / १ ल ल जम्बूसमवलयखण्डाणि २४ । अत्र सर्वद्वीपखण्डानि त्यक्त्वा सर्वसमुद्रखण्डेषु जम्बूद्वीपसमचतुर्विंशतिखण्डैर्भक्तेषु लवणसमुद्रे लवणसमुद्रसमखण्डमेकं १ । कालोदकेखण्डेषु भक्तेषु ६७२ / २४ अष्टाविंशतिः २८ । पुष्करसमुद्रखण्डेषु भक्तेषु ११९०४ / २४ चतुःशतषण्णवति- ४९६,

---

शेप रहे चौबीस लाख लाख योजन। इस तरह बाह्य सूचीके वर्गमें-से अभ्यन्तर सूचीके वर्गको घटाना। फिर उसे जम्बूद्वीपके व्यास लाख योजनके वर्गसे भाग देनेपर चौबीस लब्ध आया। उतने ही खण्ड लवणसमुद्रमें होते है। तथा लवणसमुद्रका व्यास दो लाख होनेसे उसकी शलाका दो हैं। उसमें-से एक घटानेपर एक रहा। उसको बारह और शलाका दोसे गुणा करनेपर चौबीस वलयखण्ड होते हैं। तथा लवणसमुद्रकी बाह्य सूची पाँच लाख योजन है अतः शलाकाका प्रमाण पाँच, उसका वर्ग पचीस। सो लवण समुद्र पर्यन्त पचीस खण्ड होते हैं। तथा लवण समुद्रकी बाह्य सूची पाँच लाख योजन, उसमें-से उसका व्यास दो लाख योजन घटानेपर तीन लाख शेष रहे। इनको चौगुणे व्यास आठ लाख योजनसे गुणा करनेपर चौबीस लाख हुए। इसमें एक लाखके वर्गसे भाग देनेपर चौबीस आये। उतने ही जम्बूद्वीपके समान वलयाकार खण्ड लवण समुद्रमें होते हैं।

सो यहाँ सर्वद्वीप सम्बन्धी खण्डोंको छोड़कर सर्वसमुद्र सम्बन्धी खण्ड ही लेना। तथा जम्बूद्वीप समान चौबीस खण्डोंका भाग समुद्रके खण्डोंमें देना। तब लवणसमुद्रमें लवणसमुद्रके समान एक खण्ड होता है। कालोदके छह सौ बहत्तर खण्डोंमें चौबीससे भाग देनेपर कालोद समुद्रमें लवणसमुद्रके समान अठाईस खण्ड होते हैं। पुष्कर समुद्रके ग्यारह

---

१. ब. कालोदके अष्टावि° । २. ब. °समुद्रे चतु. ।

समानखंडंगळं पेळणिसुत्तं विरलु पुष्करसमुद्रखंडंगळु षण्णवत्युत्तरचतुःशतप्रमितंगळप्पुवु ४९६। मत्तमा चतुर्विंशतिखंडंगळिदं वारुणिसमुद्रद जंबूद्वीपसमानसर्व्वखंडंगळं प्रमाणिसुत्तं विरलु १९५०७२ / २४ अष्टाविंशतिशतोत्तराष्टसहस्रप्रमितंगळप्पुवु ८१२८। मत्तमा चतुर्विंशतिखंडंगळिदं क्षीरसमुद्रद जंबूद्वीपसदृक्षखंडंगळ ३१३९५८४ / २४ प्रमाणिसुत्तं विरलु मेकलक्षत्रिंशत्सहस्राष्टशतषोडशप्रमितखंडंगळप्पुवु १३०८१६।

ई प्रकारदिंदमरिदु स्वयंभूरमणसमुद्रपर्य्यंतं नडसल्पडुवुवु १३०८१६ मत्तमल्लि

८१२८
४९६
२८
१

सर्व्वत्र प्रभवोत्तरोत्पत्तिनिमित्तमेकादिचतुर्ग्गुणोत्तरमवरप्रमाणऋणखंडंगळं प्रक्षेपिसुत्तं विरलु द्व्यादिषोडशोत्तरगुणसंकलितक्रममागि नडेवुवल्लि प्रकृतक्षेत्रफलसमुत्पत्तिनिमित्तं पुष्करसमुद्रद्विगुणषोडशवर्ग्गखंडप्रमाण माडि

	वि १ छे ३ छे ३/२	वि १ छे ३ छे ३/२
क्षी	२।१६।१६।१६।१६	१ ४ ४ ४ ४
वा	२।१६।१६।१६।	१ ४ ४ ४
पु	२।१६।१६।	१ ४ ४
का	२।१६।काल	१ ४।
ल	२।१	१
	धन	ऋण

वारुणीसमुद्रखण्डेषु भक्तेषु-१९५०७२ / २४ अष्टसहस्रैकशताष्टाविंशति ८१२८। क्षीरसमुद्रखण्डेषु भक्तेषु ३१३९५८४ / २४ एकलक्षत्रिंशत्सहस्राष्टशतषोडश १३०८१६ एवं स्वयम्भूरमणसमुद्रपर्यन्तं गन्तव्यं १३०८१६ पुनरत्र

८१२८
४९६
२८
१

सर्वत्रैकादिचतुर्गुणोत्तरक्रमेण ऋणे प्रक्षिप्ते द्व्यादिषोडशोत्तरगुसंकलितक्रमो गच्छति—

```
            ०                    ०
         ।  ३                 ।  ३            ०
  वि– १ छे छे ३         वि– १ छे छे ३          ०
      ३      २               ३                ०
```

हजार नौ सौ चार खण्डोंमें चौबीससे भाग देनेपर चार सौ छियानवें खण्ड होते हैं। वारुणी समुद्रके खण्ड एक लाख पिचानबे हजार बहत्तरमें चौबीससे भाग देनेपर आठ हजार एक सौ अठाईस खण्ड होते हैं। क्षीर समुद्रके खण्ड इकतीस लाख उनतालीस हजार पाँच सौ चौरासीमें चौबीससे भाग देनेपर एक लाख तीस हजार आठ सौ सोलह खण्ड होते हैं।

१. म परसुत्तं। २. ब समुद्रे अष्ट॰। ३ ब. समुद्रे एकलक्ष॰।

षोडशवर्ग्गखंड गुणोत्तरमक्कुं । मत्ते सर्व्वद्वीपसागरंगळनर्द्धिसुत्तं विरलु सर्व्वसमुद्रप्रमाणमक्कुमल्लि लवणोदकाळोदस्वयंभूरमणसमुद्रशलाकात्रयमं कळेदोडे प्रकृतगच्छमक्कुमीयाद्युत्तरगच्छंगळिदं:—

पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणिय रूव परिहीणे ।
रूऊणगुणेणहिये मुहेण गुणियंमि गुणगणियं ।।

२	१६	१६	१६	१६	१	४	४	४	४	क्षी
२	१६	१६	१६		१	४	४	४		वा
२	१६	१६			१	४	४			पु
२	१६				१	४				का
२	१				१					ल
धन					ऋण					

अत्र प्रकृतक्षेत्रफलोत्पत्तिनिमित्तं पुष्करसमुद्रस्य द्विगुणषोडश[1]वर्गखण्डानि आदिः षोडशगुणोत्तरसर्वद्वीप-समुद्रसंख्यार्धं समुद्रत्रयशलाकोन गच्छः धनमानीयते । 'पदमेत्ते गुणयारे अण्णोणं गुणियं,' अत्र गच्छो द्वीपसागर-

इस प्रकार स्वयंभूरमण पर्यन्त जानना चाहिए। सो सर्वत्र एकको आदि लेकर चतुर्गुणा उत्तरोत्तर ऋण और दो को आदि लेकर सोलहगुणा उत्तरोत्तर धन करनेसे लवण समुद्र समान खण्ड आते हैं।

लवण समुद्र समान खण्डोंका प्रमाण लानेके लिए रचना—

समुद्र	धनराशि					ऋणराशि				
क्षीरवर	२	१६	१६	१६	१६	१	४	४	४	४
वारुणीवर	२	१६	१६	१६		१	४	४	४	
पुष्कर	२	१६	१६			१	४	४		
कालोद	२	१६				१	४			
लवणोद	२	१				१				

यहाँ दो आदि सोलह सोलह गुणा तो धन जानना और एक आदि चौगुना चौगुना ऋण जानना। धनमें से ऋणको घटाने पर जो प्रमाण रहे उतने ही लवण समुद्र समान खण्ड जानना। जैसे प्रथम स्थानमें धन दो और ऋण एक। सो दो में-से एक घटाने पर एक रहा।

१. ब. °वर्गः आदिः ।

मेंबो गुणसंकलनसूत्रेष्टविंदं धनमं तंदु चतुर्व्विशतिखंडंगळिदं जंबूद्वीपक्षेत्रफलविंदमं गुणियिसियपर्वात्तसि पूर्व्वं निक्षिप्तसंख्यातसूच्यंगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रऋणसंकलितधनमं किंचिदूनं माडुत्तिरलु दगरयभाजित १ २ ३ ९ जगत्प्रतरमात्रं ऋणक्षेत्रमक्कु $\frac{\doteq}{१२६९}$ १ मिदें तावुदें तेंदोडे पेळल्पडुगुं ।

इल्लि गच्छप्रमाणं द्वीपसागरंगळ [1]संख्यार्धमेयप्पुदरिंदं गुणोत्तरद १६ मूलमे ग्राह्यमक्कु ४ । मदुकारणविंदं । पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणियं एंदु गच्छमात्रद्विकगळं वग्गितसंवग्गं माडिदोडे

संख्यार्धमिति गुणोत्तरस्य १६ मूलं ४ गृहीत्वा गच्छतात्रद्विकद्वयेषु परस्परं गुणितेषु रज्जुवर्गः स्यात् । $\frac{= \; =}{७ \mid ७}$

सो लवण समुद्रमें एक खण्ड हुआ। दूसरे स्थानके दो को सोलहसे गुणा करने पर बत्तीस धन हुआ। और एकको चारसे गुणा करने पर चार ऋण हुआ। बत्तीसमें-में चार घटाने पर अठाईस रहा। सो दूसरे कालोदक समुद्रमें लवण समुद्र समान अठाईस खण्ड है। तीसरे स्थानके बत्तीसको सोलहसे गुणा करनेपर पाँचसौ बारह धन हुआ। और चारको चारसे गुणा करनेपर सोलह ऋण हुआ। पाँच सौ बारह में से सोलह घटाने पर चार सौ छियानबे रहे। सो इतने ही पुष्कर समुद्रमें लवण समुद्र समान खण्ड हैं। अब जलचर रहित समुद्रोंका क्षेत्रफल कहते हैं—

जो द्वीप समुद्रोंका प्रमाण है उसमें-से यहाँ समुद्रोंका ही ग्रहण होनेसे आधा करें। उसमें-से जलचर सहित तीन समुद्र घटानेपर जलचर रहित समुद्रोंका प्रमाण होता है। वही यहाँ गच्छ जानना। सो दो आदि सोलह सोलह गुणा धन कहा था। सो जलचररहित समुद्रोंके धनमें कितना क्षेत्रफल हुआ उसे कहते हैं—

'पदमेत्ते गुणयारे' सूत्रके अनुसार गच्छ प्रमाण गुणकारको परस्परमें गुणा करके उसमें-से एक घटाओ। तथा एक हीन गुणकारके प्रमाणसे भाग दो। तथा मुख अर्थात् आदिस्थानसे गुणा करो। तब गुणकाररूप राशिमें सबका जोड़ होता है। यहाँ गच्छका प्रमाण तीन कम द्वीपसागरके प्रमाणसे आधा है। सो सब द्वीप समुद्रोंका प्रमाण कितना है यह कहते हैं—

एक राजूके जितने अर्द्धच्छेद हैं उनमें एक लाख योजनके अर्द्धच्छेद, एक योजनके साठ लाख अड़सठ हजार अंगुलोंके अर्द्धच्छेद और सूच्यंगुलके अर्धच्छेद तथा मेरुके ऊपर प्राप्त हुआ एक अर्धच्छेद, इतने अर्धच्छेद घटानेपर जितना शेष रहे उतने सब द्वीप समुद्र हैं। और गुणोत्तरका प्रमाण सोलह है। सो गच्छ प्रमाण गुणोत्तरको परस्परमें गुणा करो। सो एक राजूकी अर्धच्छेद राशिसे आधे प्रमाण मात्र स्थानोंमें सोलह-सोलह रखकर परस्परमें गुणा करनेसे राजूका वर्ग होता है। सो कैसे है यह कहते हैं—

१ म संख्यातमेयप्पुदॆ।

रज्जुवर्गं पुट्टुगुं। रूवपरिहीणे। रूपमेकप्रदेशमदरिंदं हीनमादोडिदु $\frac{=}{७ । ७}$ रूऊणगुणेणहियं $\frac{=}{७ । ७ । १५}$ मुहेण गुणियम्मि गुणगणियं $\frac{= २ । १६ । १६}{७ । ७ । १५}$ मुखं पुष्करसमुद्रमक्कु। मत्त-मिदं संकलितधनमं चतुर्विंशतिखंडंगळिदमुं जंबूद्वीपक्षेत्रफलदिंदमुं योजनांगुलंगळ वर्गदिंदमुं

रूवपरिहीणे $\frac{=}{७७}$ रूऊणगुणेणहियं $\frac{=}{७७ । १५}$ मुहेण गुणयम्मि गुणगणियं $\frac{= २ । १६ । १६}{७ । ७ । १५}$ पुनरिदं चतुर्विंशति-

विवक्षित गच्छके आधा प्रमाणमात्र विवक्षित गुणकारको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है वही प्रमाण विवक्षित गच्छ प्रमाण मात्र विवक्षित गुणकारका वर्गमूल रखकर परस्परमें गुणा करनेपर होता है। जैसे विवक्षित गच्छ आठके आधे प्रमाण चार जगह विवक्षित गुणकार नौको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पैंसठ सौ इकसठ होते हैं। वही विवक्षित गच्छमात्र आठ जगह विवक्षित गुणकार नौका वर्गमूल तीन रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पैंसठ सौ इकसठ होते हैं।

इसी प्रकार यहाँ विवक्षित गच्छ एक राजूके अर्धच्छेदके अर्धच्छेद प्रमाण मात्र जगह सोलह-सोलह रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है वही राजूके अर्धच्छेद मात्र सोलहका वर्गमूल चार-चार रखकर परस्परमें गुणा करनेपर प्रमाण होता है। सो राजूके अर्धच्छेद मात्र जगह दो-दो रखकर गुणा करनेपर राजू होता है और उतनी ही जगह दो-दो बार दो रखकर परस्परमें गुणा करनेपर राजूका वर्ग होता है। सो जगत्प्रतरको दो बार सातका भाग देनेपर इतना ही होता है। उसमें एक घटानेपर जो प्रमाण हो उसको एक हीन गुणकारके प्रमाण पन्द्रहसे भाग दें। यहाँ आदिमें पुष्कर समुद्र है उसमें लवणसमुद्र समान खण्डोंका प्रमाण दोको दो बार सोलहसे गुणा करे जो प्रमाण हो उतना है, वही मुख है। उससे गुणा करे। ऐसा करनेपर एक हीन जगत्प्रतरको दो सोलह-सोलहका गुणकार और सात सात पन्द्रहका भागहार हुआ। अथवा राजूके अर्धच्छेद प्रमाण सोलहका वर्गमूल चार-को रखकर परस्परमें गुणा करनेसे भी राजूका वर्ग होता है। अथवा राजूके अर्धच्छेद प्रमाण स्थानोंमें दो-दो रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेसे राजूका प्रमाण होता है और राजू प्रमाण स्थानोंमें दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेसे राजूका वर्ग होता है। सो ही जगत्प्रतरमें दो बार सातसे भाग देनेपर भी इतना ही होता है। इसमें एक घटानेपर जो प्रमाण हो उसे एक हीन गुणकार पन्द्रहसे भाग दो। इसको मुखसे गुणा करो। सो यहाँ आदिमें पुष्कर समुद्र है उसमें लवणसमुद्रके समान खण्डोंका प्रमाण दोको दो बार सोलहसे गुणा करो २×१६×१६ उतना है। वही यहाँ मुख है उसीसे गुणा करो। ऐसा करनेसे एक कम जगत्प्रतरको दो, सोलह-सोलहसे गुणा और सात, सात, पन्द्रहसे भाग हुआ यथा $=\frac{२×१६×१६}{७।७।१५}$। एक लवण समुद्रमें जम्बूद्वीपके समान चौबीस खण्ड होते हैं। अतः इस राशिमें चौबीससे गुणा करना। और जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे गुणा करना। एक योजनके सात लाख अड़सठ हजार अंगुल होते हैं। यहाँ राशि वर्गरूप है और वर्गराशिका भागहार

प्रतरांगुलंविदं गुणिसि बळिक्कं :—

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदे हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

एंदु लक्षयोजनच्छेदमात्रद्विकद्वयंगळ संवर्गंजनितलक्षयोजनवर्गीदिदमुं येकयोजनांगुलच्छेदमात्रद्विकद्वयसंवर्गंजनितएकयोजनांगुलंगळ वर्गीदिदमुं मेरुमध्यच्छेदमों दर द्विकवर्गीददमुं जलचरसहितसमुद्रत्रयशलाकात्रयद गुणोत्तरगुणितघनप्रमितदिदमुं १६ । १६ । १६ गुणिसल्पट्ट प्रतरांगुलदिदं भागिसि भाज्यभागहारंगळं निरीक्षिसि :—

जम्बूद्वीपक्षेत्रफलयोजनाङ्गुलवर्गप्रतराङ्गुलैः सगुण्य पश्चात्—

विरलिदरासीदो पण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसि अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ।

इति लक्षयोजनछेदमात्रद्विकद्वयैर्जातलक्षयोजनवर्गेण एकयोजनाङ्गुलछेदमात्रद्विकद्वयैर्जनितैकयोजनाङ्गुलवर्गेण मेरुमध्यच्छेदस्य द्विकवर्गेण जलचरसमुद्रशलाकात्रयस्य गुणोत्तरघनेन च १६ । १६ । १६ हतप्रतराङ्गुलेन

गुणकार वर्गरूप होता है अतः सात लाख अड़सठ हजारका दो बार गुणा करना होता है। सूच्यंगुलके वर्गको प्रतरांगुल कहते हैं अतः इतने प्रतरांगुलोंसे उक्त राशिको गुणा करना। पश्चात् 'विरलिदरासीदो' इत्यादि करणसूत्रके अनुसार द्वीप समुद्रोंके प्रमाणमें-से राजूके अर्धच्छेदोंमें-से जितने अर्धच्छेद घटाये हैं उनके आधे प्रमाणमात्र गुणकार सोलहको परस्परमें गुणा करनेसे जो प्रमाण हो उसे उक्त राशिका भागहार जानना। सो यहाँ जिसका आधा ग्रहण किया उस सम्पूर्ण राशि प्रमाण सोलहके वर्गमूल चारको परस्परमें गुणा करनेसे भी वही राशि आती है। सो अपने अर्धच्छेद प्रमाण दो-दोके अंकोंको परस्परमें गुणा करनेसे विवक्षित राशि होती है। यहाँ चार कहे हैं अतः उतने ही मात्र दो बार दो-दोके अंकोंको परस्परमें गुणा करनेसे विवक्षित राशिका वर्ग आता है। तदनुसार यहाँ लाख योजनके अर्धच्छेद प्रमाण दो बार दो-दोके अंकोंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे एक लाखका वर्ग आता है। एक योजनके अंगुलके अर्धच्छेद मात्र दो बार दो-दोको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे एक योजनके अंगुल सात लाख अड़सठ हजारका वर्ग आता है। मेरुके ऊपर आनेवाले एक अर्धच्छेद मात्र दो दुओंको परस्परमें गुणा करनेसे चार हुआ। सूच्यंगुलके अर्धच्छेदमात्र दो-दोको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे प्रतरांगुल हुआ। ये सब भागहार होते हैं। तथा जलचरवाले तीन समुद्र गच्छमें-से कम किये हैं अतः गुणोत्तर सोलहका तीन बार भाग होता है। इस प्रकार जगत्प्रतरमें प्रतरांगुल, दो, सोलह, चौबीस और सात सौ नब्बे करोड़ छप्पन लाख, चौरानबे हजार, एक सौ पचास तथा सात लाख अड़सठ हजार, सात लाख अड़सठ हजार तो गुणकार हुआ। तथा प्रतरांगुल, सात, सात, पन्द्रह, एक लाख, एक लाख, तथा सात लाख अड़सठ हजार, सात लाख अड़सठ हजार और चार और सोलह-सोलह-सोलह भागहार हुआ। इनमें-से प्रतरांगुल, दो बार सोलह, दो बार सात लाख अड़सठ हजार ये गुणकार और भागहारमें समान हैं अतः इनका अपवर्तन हो जाता है। गुणकारमें दो और चौबीसको परस्परमें गुणा करनेसे अड़तालीस होते हैं, तथा भाग-

---

१. म छेदंगल।

=४ । २ । १६ । १६ । २४ । ७९०५६९४१५० । ७६८००० । ७६८०००
४ । ७ । ७ । १५ । १ ल । १ ल । ७६८००० । ७६८००० । ४ । १६ । १६ । १६

अपवर्त्तितं =७९०५६९४१५० / ७ । ७ । १ ल १ ल । ४।५ हारंगळं गुणिसिदोडिदु =७९०५६९४१५० / ९८०००००००००० इदनपवर्त्तिसुव क्रममें तें दोडे भाज्यदि भागहारमं भागिसिद शेषमे भागहारमक्कुं मंतु भागिसुत्तिरलु धगरय भक्त-जगत्प्रतरप्रमितमक्कु = / १२ । ३९ । १। ई संकलनधनदोळिर्प्प ऋणं पदमेंते इत्यादिद्दंदं गच्छार्द्धनिमित्तं गुणोत्तरद मूलं ग्राह्यमप्पुदरिंदं गुणोत्तरं नाल्कदर मूलमेरडरिंदं रज्जुछेदंगळ विरळिसि वर्गित-संवर्गं माडिदोडे रज्जु पुट्टुगुं। रूवपरिहीणे रूपमेकप्रदेशमदरिंदं परिहीन माडिदोडिदु ७ रू ऊणगुणेणहिए ७ । ३ मुहेण गुणियंमि गुणगणियं। मुखं पुष्करसमुद्रमप्पुदरिं पदिनारिरं गुणिसि-दोडिदु -/७ १६/३ इदं चतुर्विंशतिखंडंगळिदंमुं जंबूद्वीपक्षेत्रफलदिदमुं एकयोजनांगुलंगळ

भक्त्वा भाज्यभागहारान् निरीक्ष्य=४ । २ । १६ । १६ । २४ । ७९०५६९४१५० । ७६८००० । ७६८०००
४।७।७।१५ । १ल । १ल । ७६८००० । ७६८०० । ४ । १६ । १६ । १६

अपवर्त्य = ७९०५६९४१५० / ७ । ७ । १ ल । १ ल । ४ । ५ हारान् परस्परं गुणयित्वा = ७९०५६९४१५० / ९८००००००००००

भक्ते साधिकधगरयभक्तजगत्प्रतरं स्यात् = १ / १२३९ । अत्रत्य ऋणमानीयते 'पदमेते गुणयारे अण्णोण्णं गुणिय' अत्रापि गच्छार्धत्वाद् गुणोत्तरचतुष्कस्य मूलं गृहीत्वा गच्छमात्रद्विकेषु परस्पर गुणितेषु रज्जु —/७ रूवपरिहीणे —/७ रूऊण

हारमें पन्द्रह और सोलहको परस्परमें गुणा करनेसे दो सौ चालीस होते हैं। इसे अड़तालीस-से अपवर्तित करनेपर भागहारमें पाँच रहे। इस प्रकार करनेसे स्थिति इस प्रकार रही—

= ४ । २ । १६ । १६ । २४ । ७९०५६९४१५० । ७६८००० । ७६८००० / ४।७।७।१५।१ ल., १ल. । ७६८००० । ७६८००० । ४ । १६ । १६ । १६ अपवर्तन करनेपर

७९०५६९४१५० / ७।७।१ल. । १ ल. ।४।५। सब भागहारोंको परस्परमें गुणा करनेपर और उनको गुणकारके अंकोंसे भाग देनेपर धनराशिमें सर्वक्षेत्र फल 'साधिक धगरय' अर्थात् कुछ अधिक बारह सौ उनतालीससे भाजित जगत्प्रतर प्रमाण होता है। अब ऋण लाना है। सो जलचर सहित समुद्रोंका ऋणरूप क्षेत्रफल लाते हैं—'पदमेत्ते गुणयारे' इत्यादि सूत्रके अनुसार गच्छमात्र गुणकार चारका परस्परमें गुणा करना चाहिए। सो राजूके अर्धच्छेदोंके आधे प्रमाण चारको परस्परमें गुणा करनेसे एक राजू होता है। यहाँ गच्छ सर्वद्वीप समुद्रोंके प्रमाणसे आधा है। अतः गुणकार चारका वर्गमूल दो ग्रहण करना। सम्पूर्ण गच्छमें एक राजूके अर्धच्छेद कहे हैं। अतः एक राजूके अर्धच्छेद मात्र दोको परस्परमें गुणा करनेसे एक राजूका प्रमाण होता है वह जगतश्रेणीका सातवाँ भाग है। उसमें एक घटानेपर जो प्रमाण हो उसको एकहीन गुणकार तीनसे भाग दें। तथा पुष्कर समुद्रकी अपेक्षा आदि स्थानमें प्रमाण सोलह है

वर्ग्गीदिदमुं प्रतरांगुलदिदमुं गुणिसि बळिक्कं "विरळिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि। तेसि अण्णोण्णहदे हारो उप्पण्णरासिस्स" एंदु ओंदु लक्षयोजनंगळिदमुं एकयोजनांगुलंगळिदमुं मेरुमध्यच्छेददद्विकदिंदमुं जलचरसहितसमुद्रशलाकात्रयजनितगुणोत्तरघनदिंदमुं ।४।४। गुणिसल्पट्ट सूच्यंगुलं भागहारमक्कु १६।४।२४।७९०५६९४१५०।७६८०००।७६८००० मिदन-
७३।२।१ ल।७६८०००।२।४।४।४।
पवर्त्तिसिदोडे संख्यातसूच्यंगुलप्रमितजगच्छ्रेणिगळप्पुवव २१ किंचिदूनं माडिदोडिदु =१
१२३९

गुणेण हिये – ३ मुहेण १६। गुणयम्मि गुणगणिय – ३। १६। इदं चतुर्विंशतिखण्डजम्बूद्वीपक्षेत्रफलैकयोज-
७ ७
माङ्गुलवर्गप्रतराङ्गुलैः संगुण्य पश्चात्—

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूपाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

इति लक्षयोजनैरेकयोजनाङ्गुलैर्मेरुच्छेदस्य द्विकेन समुद्रशलाकात्रयजगुणोत्तरघनेन च।४।४।४।

हतसूच्यङ्गुलेन भक्त्वा—।१६।४।२४।७९०५६९४१५०।७६८०००।७६८००० अपवर्तिते संख्यात-
७ ३।२।१ ल।७६८०००।२।४।४।४
सूच्यङ्गुलप्रमितजगच्छ्रेणिमात्रं भवति – २१। अनेन किंचिदूनितं =१ पूर्वोक्तं साधिकधगरयभक्तजगत्प्रतरमात्रं
१२३९

उससे गुणा करें। ऐसा करनेसे एक कम जगतश्रेणिको सोलहका गुणकार व सात और तीनका भागहार हुआ। इसको पूर्वोक्त प्रकारसे चौबीस खण्ड, जम्बूद्वीपके क्षेत्रफल रूप योजनोंके प्रमाण और एक योजनके अंगुलोंके वर्ग तथा प्रतरांगुलोंसे गुणा करो। पश्चात् 'विरलितरासीदो' इत्यादि सूत्रके अनुसार गच्छमेंसे जितने राजूके अर्धच्छेद घटायें हैं उसका आधा प्रमाण चारके अंकोंको परस्परमें गुणा करनेसे जो प्रमाण हो उतना भागहार जानना। जिस राशिका आधा प्रमाण लिया उस राशिमात्र चारके वर्गमूल दोको परस्परमें गुणा करनेपर एक लाख योजनके अर्धच्छेद प्रमाण दुओंको परस्परमें गुणा करनेसे एक लाख हुए। एक योजनके अंगुलोंके अर्धच्छेद प्रमाण दुओंको परस्परमें गुणा करनेसे सात लाख अड़सठ हजार अंगुल हुए। मेरुके मध्यमें एक अर्धच्छेदके दूने दो हुए। सूच्यंगुलके अर्धच्छेद प्रमाण दुओंको परस्परमें गुणा करनेसे सूच्यंगुल हुआ। ये सब भागहार हुए। तीन समुद्र घटाये थे सो तीन बार गुणोत्तर चारका भी भागहार जानना। इस तरह एकहीन जगतश्रेणिको सोलह, चार, चौबीस, और सात सौ नब्बे करोड़ छप्पन लाख चौरानबे हजार एक सौ पचास तथा सात लाख अड़सठ हजार और सात लाख अड़सठ हजारका तो गुणकार हुआ। तथा सात, तीन, और सूच्यंगुल और एक लाख, और सात लाख अड़सठ हजार तथा दो, चार, चार, चारका भागहार हुआ।
१ हीन ज. श्रे.।१६।४।२४।७९०५६९४१५०।७६८०००।७६८००० । अपवर्तन करनेपर संख्यात-
७।३।२।१ ल.।७६८०००।२।४।४।४

१. ब. मेरुमवध्यच्छे।

पूर्व्वोक्तदगरय भक्तजगत्प्रतरमात्रऋणक्षेत्रं सिद्धमावुदा ऋणक्षेत्रमं रज्जुप्रतरमात्रक्षेत्रदोळ् $\frac{=}{४९}$ समच्छेदं माडिकळिदोडे शेषमिदु $\frac{=११९०}{४९।१२३९}$ इदंनपवर्त्तिसलेंदु भाज्यदिं भागहारमं भागिसिदोडे साधिककाम ५१ भक्तजगत्प्रतरमात्रं विवक्षितक्षेत्रद तलस्पर्शमक्कुं $\frac{=१}{५१}$ इदनूर्ध्वस्पर्शग्रहणात्थं मागि जीवोत्सेधजनितसंख्यातसूच्यंगुलंगळिदं गुणिसिदोडे शुभलेश्यगळगे स्वस्थानस्वस्थानस्पर्शमक्कुं $\frac{=२१}{५१}$ इदं कटाक्षिसि तेजोलेश्येगे स्वस्थानस्वस्थानापेक्षेयिदं लोकासंख्यातभागं स्पर्शमेंदु पेळल्पट्टुदु। विहारवत् स्वस्थानदोळं वेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घातदोळं तेजोलेश्येगे अष्टचतुर्द्दशभागंगळ् किंचिदूनंगळागि $\frac{८=}{१४}$ प्रत्येकं नाल्कंडेयोळुमक्कुमी किंचिदूनाष्टचतुर्द्दशभागं

ऋणक्षेत्र सिद्धम्। इद रज्जुप्रतरे $\frac{=}{४९}$ समच्छेदेनापनीय $\frac{=११९०}{४९।१२३९}$ अपवर्तनार्थं भाज्येन भागहारं भक्त्वा साधिककाम ५१ भक्तजगत्प्रतरं विवक्षितक्षेत्रस्य तलस्पर्शो भवति $\frac{=१}{५१}$। इदमूर्ध्वस्पर्शग्रहणार्थं जीवोत्सेधजनितसंख्यातसूच्यङ्गुलैर्गुणितं शुभलेश्याना स्वस्थानस्वस्थानस्पर्शो भवति $\frac{=२१}{५१}$। इदं दृष्ट्वा तेजोलेश्यायाःस्वस्थानस्वस्थानापेक्षया लोकासंख्येयभाग. स्पर्श. इत्युक्तम्। विहारवत्स्वस्थाने वेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घाते च तेजोलेश्याया अष्टचतुर्दशभागः किंचिदूनः स्यात्। $\frac{८-}{१४}$ कुत.? सनत्कुमारमाहेन्द्रजाना तेजोलेश्योत्कृष्टाशाना

सूच्यंगुलसे गुणित जगतश्रेणि मात्र क्षेत्रफल हुआ। इसे पूर्वोक्त धनराशिरूप क्षेत्रफलमें-से घटाना चाहिए। सो किंचित्‌हीन साधिक बारह सौ उनतालीससे भाजित जगत्प्रतर प्रमाण सर्वजलचर रहित समुद्रोंका ऋणरूप क्षेत्रफल हुआ। इसको एक राजू लम्बा चौड़ा तथा जगत्प्रतरका उनचासवाँ भाग मात्र रज्जू प्रतरक्षेत्रमें-से समच्छेद करके घटाइए। तब जगत्प्रतरमें ग्यारह सौ नब्बेका गुणकार और उनचास गुणा बारह सौ उनतालीसका भागहार हुआ। $\frac{\text{ज. प्र.}\times ११९०}{४९\times १२३९}$। अपवर्तन करनेके लिए भाज्यसे भागहारमें भाग देनेपर साधिक इक्यावनसे भाजित जगत्प्रतर प्रमाण विवक्षित क्षेत्रका प्रतररूप तलस्पर्श होता है। इसको ऊँचाईका स्पर्श ग्रहण करनेके लिए जीवोंकी ऊँचाईके प्रमाण संख्यात सूच्यंगुलसे गुणा करनेपर कुछ अधिक इक्यावनसे भाजित संख्यात सूच्यंगुल गुणित जगत्प्रतर मात्र शुभलेश्याओंका स्वस्थान-स्वस्थान सम्बन्धी स्पर्श होता है। इसको देखकर तेजोलेश्याका स्वस्थान-स्वस्थानकी अपेक्षा स्पर्श लोकका असंख्यातवाँ भाग मात्र कहा है।

त्रैराशिकसिद्धमक्कुमदें तें दोडे सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पजदेवक्कंळगे तेजोलेश्योत्कृष्टांशं संभविसुगुमप्पुदरिंदमवग्गंळगे विहारं मेगच्युतकल्पपर्य्यंतमक्कुं केळगे तृतीयपृथ्वीपर्य्यंतमक्कुमदु कारणमागि अष्टरज्जूत्सेधमुं एकरज्जुप्रतरमुमक्कु ≡८=/३४३ मंतागुत्तं विरलुं तृतीयपृथ्विय पटलरहिताधस्तनसहस्रयोजनर्दिदं किंचिदूनाष्टरज्जूत्सेधमक्कु प्र≡१४/३४३ फ श १। इ ≡८–/३४३ लब्धं किंचिदूनाष्टचतुर्द्दशभागमक्कुमें दरिवुदु। भवनत्रयसंभूतर्गमिंतेयक्कुमेकें दोडे :—

"भवणतियाण विहारो णिरयति सोहम्मजुगळ पेरंतं।
उवरिमदेवपयोगेणच्चुदकप्पोत्ति णिद्दिट्ठो॥"

एंदितु पेळल्पट्टुदप्पुदरिदं भवनत्रयसंजातर्गेल्लं केळगे तृतीयपृथ्वीपर्य्यंतं मेगे सौधर्म्मयुगलपर्य्यंतं स्वैरविहारमक्कुं। मेगणदेवप्रयोगदिंदमच्युतकल्पपर्य्यंतं विहारमक्कुं। मारणसमुद्घातपदवोळु तेजोलेश्येगे किंचिदूननवचतुर्द्दशभागक्षेत्रं स्पर्शमक्कुमेकें दोडे तेजोलेश्याजीवंगळु भवनत्रयसंभूतर्मेण् सौधर्म्मैशानसानत्कुमारमाहेंद्रकल्पजर्म्मेण् तृतीयपृथ्वीयोळिर्द्दवर्गळगे ईषत्प्राग्भाराष्टम-

उपर्यधोऽच्युतान्ततृतीयपृथ्व्यन्तं विहारसंभवात्। पृथ्वीपटलरहिताधस्तनयोजनानामपनयनात् प्र≡१८/३४३ फ श १ इ≡८–/३४३ इति त्रैराशिकलब्धस्य च तत्प्रमाणत्वात्। अथवा भवनत्रयस्य उपर्यध स्वैरं सौधर्मद्वयतृतीयपृथ्व्यन्तं देवप्रयोगेन अच्युतान्तं च विहारसद्भावात् तावान् संभवति। मारणान्तिकसमुद्घाते तेजोलेश्याया किंचिदूननवचतुर्दशभागः भवनत्रयसौधर्मचतुष्कजाना तृतीयपृथिव्या स्थित्वा अष्टमपृथ्वीगबन्धिवादरपर्याप्तपृथ्वीकायेषु उत्पत्तु मुक्ततत्समुद्घातदण्डाना संभवति। ९/१४–तैजसाहारकसमुद्घाते संख्यातघनाङ्गुलानि ६ ९ केवलिसमुद्घा-

तेजोलेश्याका विहारवत्स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात और वैक्रियिक समुद्घातमें स्पर्श कुछ कम चौदह भागमें आठ भाग है। सो कैसे है यह बतलाते हैं—सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गके उत्कृष्ट तेजोलेश्यावाले देव ऊपर सोलहवें अच्युत स्वर्ग पर्यन्त गमन करते हैं और नीचे तीसरी नरक पृथ्वीपर्यन्त गमन करते हैं। अच्युतस्वर्गसे तीसरा नरक आठ राजू है। इससे चौदह भागमें-से आठ भाग कहे हैं। तथा तीसरी पृथ्वीकी मोटाईमें जहाँ नरकपटल नहीं है उस हजार योजनको कम करनेसे कुछ कम कहा है। जो चौदह घनरूप राजूकी एक शलाका हो तो आठ घनरूप राजूकी कितनी शलाका होगी ऐसा त्रैराशिक करनेपर आठ बटे चौदह आता है। अथवा भवनत्रिकदेव स्वयं तो ऊपर सौधर्म ऐशान स्वर्ग पर्यन्त और नीचे तीसरे नरक पर्यन्त गमन करते हैं। दूसरे देव द्वारा ले जानेपर सोलहवे स्वर्गपर्यन्त विहार करते है। इससे भी पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श है। तेजोलेश्याका स्पर्श मारणान्तिक समुद्घातमें चौदह भागमें-से कुछ कम नौ भाग प्रमाण होता है। वह इस प्रकार है—भवनत्रिकदेव अथवा सौधर्मादि चार स्वर्गोंके वासी देव तीसरे नरक गये। वहाँ ही मारणान्तिक समुद्घात किया, और ऊपर आठवीं पृथ्वीमें बादर पृथ्वीकायमें उत्पन्न होनेके लिए वहाँ तक प्रदेशोंका विस्तार किया। उस आठवीं पृथ्वीसे तीसरा नरक नौ राजू है तथा पूर्ववत् तीसरी पृथ्वीकी पटलरहित मोटाई कम करनेसे कुछ कम नव

पृथ्वीय बादरपर्य्याप्तपृथ्वीकायंगळोळु पुट्टल्वेडि मुक्तमारणांतिकसमुद्‌घातदंडमनुळ्ळरोळु किंचिदून-नवचतुर्द्दश भागं स्पर्शसंभवमप्पुदरिदं तैजससमुद्‌घातदोळं आहारकसमुद्‌घातदोळं तेजोलेश्येगे स्पर्शं प्रत्येकं संख्यातघनांगुलप्रमितमक्कुं। केवलिसमुद्‌घातं तेजोलेश्येयोळसंभवमप्पुदरिनापददोळिल्ल। उपपादपददोळु तेजोलेश्यंगे प्रथमपदं स्पर्शं किंचिदूनद्व्यर्द्धचतुर्द्दशभागमक्कुमेकेंदोडे तेजोलेश्येय उपपादपरिणतजीवंगळिंदं सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पपर्य्यंतं क्षेत्रं स्पृष्टमप्पुदंतागुत्तं त्रिरज्जूत्सेधमदक्के किंचिदूनत्रिचतुर्द्दशभागमागदे द्व्यर्द्धचतुर्द्दशभागप्ररूपणमाचार्य्यांतराभिप्रायदिदं मावुदवगंळ पक्ष-दोळु सौधर्म्मैशानकल्पद्वयदिंद मेगे संख्यातयोजनंगळिदं पोगि सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पप्रारंभमागि द्व्यर्द्धरज्जुद्वयदोळु परिसमाप्तियक्कुमा चरमदोळु तेजोलेश्याजीवंगळु एनिल्लवे एंदोडिल्ल, तत्कल्पद्वयाधस्तनविमानंगळोळे तेजोलेश्यासंभवमें बुपदेशमवर्गळ पक्षदोळप्पुदरिदं, अथवा चित्राव-नियोळिर्द्द तिर्य्यग्मनुष्यरुगळिगे ईशानपर्य्यंतमुपपादसंभवविदं। च शब्दिदं तेजोलेश्योत्कृष्टमृत-रुगळिगे सनत्कुमारमाहेंद्रांतिमचक्रेंद्रकप्र[1]णिधियोळुमुपपादमें दाक्कंलंबरु पेळ्वरवर्गळभिप्रायदिदं यथासंभवमागि इदु ३-/१४ संभविपुगु[2]मेंदरिंद ३-२/१४२ दनियममक्कुं॥

तोऽत्र न संभवति। उपपादपदे किंचिदूनद्व्यर्धचतुर्दशभागः। ननु तेजोलेश्यतत्पदपरिणतैः सानत्कुमारमाहेन्द्रान्तं क्षेत्रे स्पृष्टे त्रिरज्जूत्सेधात् किंचिदूनत्रिचतुर्दशभागः कथं नोच्यते सौधर्मद्वयादुपरि संख्यातयोजनानि गत्वा सानत्कुमारद्वयप्रारम्भो द्व्यर्धरज्जुद्वये परिसमाप्तिः तच्चरमे च तेजोलेश्या नास्तीति केषांचिदुपदेशाश्रयणात् चित्रास्थिततिर्यग्मनुष्याणां ईशानपर्यन्तमुपपादसंभवाद्वा। चशब्दात्तेजोलेश्योत्कृष्टांशभूतानां सनत्कुमारमाहेन्द्रान्तिमचक्रेन्द्रकप्रणिधावुपपादं वदतां अभिप्रायेण यथासंभवं तस्यापि संभवादनियमः ॥५४७॥

बटे चौदह स्पर्श होता है। तैजस समुद्‌घात और आहारक समुद्‌घातमें संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श है। तेजोलेश्यामें केवलि समुद्‌घात नहीं होता। उपपाद स्थानमें चौदह राजूमें-से डेढ राजूसे कुछ कम स्पर्श होता है।

शंका—तेजोलेश्यावाले जीव उपपाद करते हुए सानत्कुमार माहेन्द्रके अन्त तक क्षेत्र-का स्पर्श करते है और सानत्कुमार माहेन्द्रके अन्त तक तीन राजूकी ऊँचाई है अतः चौदह राजूमें-से कुछ कम तीन राजू स्पर्श क्यों नहीं कहा?

समाधान—सौधर्म ऐशान स्वर्गसे ऊपर संख्यात योजन जाकर सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंके प्रारम्भमें डेढ़ राजूकी ऊँचाई समाप्त होती है। उसके आगे डेढ राजू जानेपर सानत्कुमार माहेन्द्रका अन्तिम पटल है। उसमें तेजोलेश्या नहीं है ऐसा किन्हीं आचार्योंका उपदेश है। उसीके अनुसार उक्त कथन किया है। अथवा चित्रा पृथ्वीपर स्थित तिर्यंच और मनुष्योंका उपपाद ऐशान स्वर्ग पर्यन्त होता है। इससे किंचित् न्यून डेढ़ राजु मात्र स्पर्श कहा है। गाथामें आये 'च' शब्दसे तेजोलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे हुओंका उपपाद सानत्कुमार माहेन्द्रके अन्तिम चक्रनामा इन्द्रकके श्रेणीबद्ध विमानोंमें होता है ऐसा कहने-वाले आचार्योंके अभिप्रायसे यथासम्भव तीन भाग भी स्पर्श सम्भव होनेसे कोई नियम नहीं है ॥५४७॥

१. म °योलाक्केंलंबर्। २. म °रिदुवदनिं°।

पद्मलेश्येयजीवंगळ्गे स्पर्शं पेळल्पडुगुं :—

पम्मस्स य सट्ठाणसमुग्घाददुगेसु होदि पढमपदं ।
अडचोद्दस भागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥५४८॥

पद्मलेश्यायाः स्वस्थानसमुद्घातद्विकेषु भवति प्रथमपदं । अष्टचतुर्दश भागा वा देशोना भवंति नियमेन ॥

पद्मलेश्याजीवंगळ्गे वाशब्दविदं स्वस्थानस्वस्थानपददोळुमुंपेळ्द लोकासंख्यातैकभागं स्पर्शमक्कुं = २१ / ५१ विहारदत्स्वस्थानदोळु प्रथमपदं स्पर्शं किंचिदूनाष्टचतुर्दशभागमक्कुमंते वेदनाकषायवैक्रियकसमुद्घातपदंगळोळमष्टचतुर्दशभागं किंचिदूनमागियक्कुं । मारणांतिकसमुद्घातदोळं किंचिदूनाष्टचतुर्दशभागमेयक्कुमेकेंदोडे पद्मलेश्याजीवंगळु पृथिव्यब्वनस्पतिगळोळु पुट्टरप्पुवरिदं । तैजससमुद्घातदोळं आहारकसमुद्घातदोळं पद्मलेश्याजीवंगळ्गे प्रत्येकं संख्यातघनांगुलमे स्पर्शमक्कुं केवलिसमुद्घातमा लेश्याजीवंगळोळ संभवमप्पुदरिंदमिल्लि :—

उववादे पढमपदं पणचोद्दसभागयं देसूणं ।

उपपादे प्रथमपदं पंचचतुर्दशभागा देशोनाः ।

उपपाददोळु प्रथमपदं स्पर्शं शतारसहस्रारपर्य्यंतं पद्मलेश्याजीवं संभवमप्पुदरिं पंचचतुर्दशभागंगळु किंचिदूनंगळप्पुवु ५– / १४ । शुक्ललेश्याजीवंगळ्गे स्पर्शमं पेळ्वपं :—

सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो छच्चोद्दसा हीणा ॥५४९॥

शुक्ललेश्यायाः त्रिस्थाने प्रथमः षट्चतुर्द्दश भागाः हीनाः ॥

पद्मलेश्याना वाशब्दात्स्वस्थानस्वस्थानपदे प्रागुक्तलोकासंख्यातैकभाग स्पर्शो भवति ≡ २१ / ५१ । विहारवत्स्वस्थाने वेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घातेषु च किंचिदूनाष्टचतुर्दशभाग । मारणान्तिकसमुद्घातेऽपि तथैव पद्मलेश्यजीवानां पृथिव्यब्वनस्पतिपूत्पत्तिसंभवात् । तैजसाहारकसमुद्घातयो संख्यातघनाङ्गुलानि ६ १ केवलिसमुद्घातोऽत्र नास्ति ॥५४८॥

उपपादपदे स्पर्श. शतारसहस्रारपर्यन्तं पद्मलेश्यासंभवात् पञ्चचतुर्दशभागा किंचिदूना भवन्ति । ५ – / १४ ।

पद्मलेश्यावाले जीवोंका स्वस्थानस्वस्थानपदमें पूर्वोक्त प्रकारसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श होता है। विहारवत्स्वस्थानमें और वेदना कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातोंमें कुछ कम आठ भाग स्पर्श होता है। मारणान्तिक समुद्घातमें भी चौदहमें-से कुछ कम आठ भाग स्पर्श होता है क्योंकि पद्मलेश्यावाले जीव पृथिवीकाय, जलकाय और वनस्पतिकायमें उत्पन्न होते हैं। तैजस और आहारक समुद्घातमें स्पर्श संख्यात घनांगुल है। केवली-समुद्घात इस लेश्यामें नहीं होता ॥५४८॥

पद्मलेश्यावालोंका उपपाद शतार सहस्रार स्वर्गपर्यन्त सम्भव होनेसे उपपादपदमें स्पर्श चौदह भागोंमें-से कुछ कम पाँच भाग होता है।

शुक्ललेश्याजीवंगळ्गे स्वस्थानस्वस्थानदोळु मुन्नं तेजोलेश्येयोळ्पेळ्व लोकासंख्यात भागमक्कुं = २१ / ५१ विहारवत्स्वस्थानमादियागि वेदनाकषायवैक्रियिकमारणांतिकसमुद्घात-पर्य्यंतं पंचपदंगळोळु प्रथमपदं स्पर्शं देशोन षट्चतुर्द्दशभागं प्रत्येकमक्कुं। तैजससमुद्घातदोळं आहारकसमुद्घातदोळं प्रथमपदं स्पर्शं प्रत्येकं संख्यातघनांगुलप्रमितमक्कु। ६१॥ केवलिसमुद्घात-पददोळ्पेळ्वपं।

णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा।
सव्वो वा खलु लोगो फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो ॥५५०॥

विशेषोऽस्ति समुद्घाते च संख्यातीता भवंति भागा वा। सर्व्वो वा खलु लोकः स्पर्शो भवति इति निर्द्दिष्टः॥

केवलिसमुद्घातदोळु विशेषमुंटदावुदेंदोडे स्वस्थानदोळं विहारमक्कुं दंडसमुद्घातदोळु स्पर्शं क्षेत्रदोळ्पेळ्वंते संख्यातप्रतरांगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रमक्कु। १॥ भवनारोहणावतरण-विवक्षेयिदं द्विगुणिसिदोडे दंडसमुद्घातदोळु स्पर्शमक्कुं —४।१।२। पूर्व्वाभिमुखस्थितोपविष्ट-कवाटसमुद्घातदोळु स्पर्शं संख्यातसूच्यंगुलप्रमितजगत्प्रतरमक्कु = २१। भवनारोहणावरोहण-निमित्तं द्विगुणिसिदोडे पूर्व्वाभिमुखस्थितोपविष्टकवाटसमुद्घातारोहणावतरणस्पर्शमक्कुं =२१२।

शुक्ललेश्याजीवाना स्पर्शः स्वस्थानस्वस्थाने तेजोलेश्यावल्लोकासंख्यातैकभागः = २ १ / ५१ विहारवत्स्वस्थाने वेदनाकषायवैक्रियिकमारणान्तिकसमुद्घातेषु च देशोनषट्चतुर्दशभागः ६ / १४ तैजसाहारकसमुद्घातयोः संख्यात-घनाङ्गुलानि ६ १ ॥५४९॥

केवलिसमुद्घाते विशेषः, स कः? दण्डसमुद्घाते स्पर्शः क्षेत्रवत् संख्यातप्रतराङ्गुलहतजगच्छ्रेणिः —४।१ स च द्विगुणितः आरोहणावरोहणदण्डयोर्भवति। —४।१।२। पूर्वाभिमुखस्थितोपविष्टकवाट-समुद्घाते संख्यातसूच्यङ्गुलमात्रजगत्प्रतरः =२ १ स च द्विगुणितः आरोहणावरोहणयोर्भवति =२ १।२

शुक्ललेश्यावाले जीवोंका स्पर्श स्वस्थान-स्वस्थानमें तेजोलेश्याकी तरह लोकका असंख्यातवाँ भाग है। विहारवत्स्वस्थानमें वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घातमें चौदह भागोंमें-से कुछ कम छह भाग स्पर्श है। तैजस और आहारक समुद्घातमें संख्यात घनांगुल स्पर्श है ॥५४९॥

केवली समुद्घातमें विशेष है। वह इस प्रकार है—दण्डसमुद्घातमें स्पर्श क्षेत्रकी तरह संख्यात प्रतरांगुलसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाण है। सो वह विस्तारने और संकोचनेकी अपेक्षा दूना होता है। पूर्वाभिमुख स्थित या बैठे हुए कपाट समुद्घातमें संख्यात सूच्यंगुल

स्प	स्व =	वि =	वे	क	वै	मा	ते	आ	केवलि समुद्घात				उपपाद	
ते	=२१ ५१	८= १४	८= १४	८- १४	८- १४	८- १४	६१	६१						३- २८
प	=२१ ५१	८- १४	८- १४	८- १४	८- १४	८- १४	६१	६१						५- १४
शु	=२१ ५१	६- १४	६- १४	६- १४	६- १४	६- १४	६१	६१	दं -४१२	पू=क= =२१२	उ=क= =२१२	≡ ० प्र ०	लो ≡	६- १४

मत्तं अंतेयुत्तराभिमुखस्थितोपविष्टकवाटसमुद्घातदोळु स्पर्शं आरोहणावतरणविवक्षेयिदं द्विगुणसंख्यातसूच्यंगुलप्रमितजगत्प्रतरमात्रमक्कुं । =२१२ । प्रतरसमुद्घातदोळु स्पर्शं लोकासंख्यात बहुभागमक्कु ≡ ० मेकें दोडे वातावरुद्धक्षेत्रदिदं लोकासंख्यातैक ≡ १ भागदिदं हीनमादुदप्पुदरिदं । लोकपूरणसमुद्घातदोळु सर्व्वलोकं ≡ स्पर्शमक्कुमें दु पेळल्पट्टुदु । खलु नियमदिदं उपपाददोळु स्पर्शं किंचिदून षट्चतुर्द्दशभागमक्कु ६-/१४ मेकें दोडे शुक्ललेश्येयोळु आरणाच्युतावसानं विवक्षितमप्पुदरिदं पन्नेरडनेय स्पर्शाधिकारंतीदुदुदु ।

अनंतरं कालाधिकारमं गाथाद्वयदिदं पेळ्दपं ।—

कालो छल्लेस्साणं णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।
अंतोमुहुत्तमवरं एयं जीवं पडुच्च हवे ॥५५१॥

कालः षड्लेश्यानां नानाजीवं प्रतीत्य सर्व्वाद्धा । अंतर्म्मुहूर्तोऽवरः एकं जीवं प्रतीत्य भवेत् ॥

तथैवोत्तराभिमुखस्थितोपविष्टकवाटस्यापि = २ १ । २ प्रतरसमुद्घाते लोकासंख्यातबहुभागः ≡ ० । वातावरुद्धक्षेत्रेण लोकसंख्यातैक ≡ १ भागेन न्यूनत्वात् । लोकपूरणसमुद्घाते सर्वलोकः ≡ खलु नियमेन । उपपादपदे किंचिदून- षट्चतुर्दशभाग. ६-/१४ आरणाच्युतावसानस्यैव विवक्षितत्वात् ॥ ५५० ॥ इति स्पर्शाधिकारः । अथ कालाधिकारं गाथाद्वयेनाह—

मात्र जगत्प्रतर प्रमाण है। वह भी विस्तारने और संकोचनेकी अपेक्षा दूना होता है। ऐसा ही उत्तराभिमुख स्थित और उपविष्ट कपाट समुद्घातका भी होता है। प्रतर समुद्घातमें लोकका असंख्यात बहुभाग प्रमाण स्पर्श है क्योंकि वातवलयके द्वारा रोका गया क्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग है और वह भाग प्रतर समुद्घातमें नहीं आता। लोकपूरण समुद्घातमें नियमसे सर्वलोक स्पर्श है। उपपाद पदमें चौदह भागोंमें-से कुछ कम छह भाग स्पर्श है क्योंकि यहाँ आरण-अच्युत पर्यन्तकी ही विवक्षा है ॥५५०॥

कृष्णलेश्याप्रभृति षड्लेश्येगळगं कालं नानाजीवापेक्षेयिदं सर्व्वाद्धियक्कुमेकजीवापेक्षेयिदं जघन्यकालमंतर्म्मुहूर्त्तमक्कुं।

उवहीणं तेत्तीसं सत्तर सत्तेव होंति दो चेव।
अट्ठारस तेत्तीसा उक्कस्सा होंति अदिरेया ॥५५२॥

उदधीनां त्रयस्त्रिंशत् सप्तदश सप्तैव भवंति द्वावेवाष्टादश त्रयस्त्रिंशत् उत्कृष्टा भवंत्यतिरेकाः॥

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमंगळुं ३३। सप्तदशसागरोपमंगळुं १७। सप्तसागरोपमंगळु ७। यथासंख्यमागि कृष्णलेश्याप्रभृत्यशुभलेश्यात्रयंगळगुत्कृष्टकालंगळप्पुवु। तेजोलेश्याप्रभृति शुभलेश्यात्रयंगळगे यथासंख्यमागियुत्कृष्टकालमेरडुसागरोपमंगळुं पदिनेंटु सागरोपमंगळुं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमंगळुं साधिकमधिकमागप्पुवें तेंदोडे षड्लेश्येगळगे व्याघातविषयविवक्षेयिदं जघन्यकालमंतर्म्मुहूर्त्तंगळिदं समधिकमाद कृष्णलेश्याप्रभृतिषड्लेश्येगळोळु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमादिगळुत्कृष्टकालंगळप्पुवुविते-केरडेरडुमंतर्म्मुहूर्त्तंगळिदं समधिकंगळादुवें दोडे नारकदेवभवंगळत्तणिदं पूर्व्वभवचरमकालदोळं उत्तरभवप्रथमसमयदोळमंतर्म्मुहूर्त्तांतर्म्मुहूर्त्तकालमा लेश्येगळेयप्पुदरिदं मत्तमिल्लिविशेषमुंटदावुदें दोडे तेजःपद्मलेश्येगळगे किंचिदून सागरोपमार्द्धमतिरेकमक्कुमेकें दोडे सौधर्म्मकल्पं मोदल्गोंडु सहस्रारकल्पपर्य्यंतं स्वस्वोत्कृष्टस्थितिगळ मेले घातायुष्कजीवापेक्षेयिदमंतर्म्मुहूर्त्तोनार्द्धसागरोपमं सम्यग्दृष्टिगळगे पलितोपमासंख्यातैकभागं मिथ्यादृष्टिगळगभ्यधिकमक्कुमप्पुदरिदं संदृष्टि :—

कृष्णादिषड्लेश्यानां कालः नानाजीवं प्रति सर्वाद्धा सर्वकालः। एकजीवं प्रति जघन्येन अन्तर्मुहूर्तो भवति ॥५५१॥

उत्कृष्टस्तु सागरोपमाणि कृष्णायास्त्रयस्त्रिंशत् ३३। नीलायाः सप्तदश १७। कपोतायाः सप्त ७। तेजोलेश्याया द्वे २। पद्माया अष्टादश १८। शुक्लायास्त्रयस्त्रिंशत् ३३। साधिकानि भवन्ति अव्याघातविषये। तदाधिक्यं तु देवनारकभवेभ्यः पूर्वभवचरमान्तर्मुहूर्तः उत्तरभवप्रथमान्तर्मुहूर्तश्च षण्णां[1]। तेजःपद्मयोः पुनः किंचिदूनसागरोपमार्धमपि, कुतः सौधर्मादिसहस्रारपर्यन्तं स्वस्वोत्कृष्टस्थितेरुपरि घातायुष्कस्य सम्यग्दृष्टेरन्त-

इस प्रकार स्पर्शाधिकार समाप्त हुआ। अब दो गाथाओंसे कालाधिकार कहते हैं—कृष्ण आदि छह लेश्याओंका काल नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल है और एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ॥५५१॥

उत्कृष्टकाल कृष्णका तैंतीस सागर है, नीलका सतरह सागर है, कपोतका सात सागर है, तेजोलेश्याका दो सागर है। पद्मका अठारह सागर है और शुक्लका तैंतीस सागर है। यह काल कुछ अधिक-अधिक होता है। इसका कारण यह है कि यह काल देव और नारकियोंकी अपेक्षा कहा है। सो उनके पूर्वभवके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें और उत्तरभवके प्रथम अन्तर्मुहूर्तमें वही लेश्या होती है इस तरह छहों लेश्याओंका उक्त काल दो-दो अन्तर्मुहूर्त अधिक होता है। किन्तु तेजोलेश्या और पद्मलेश्यामें कुछ कम आधा सागर भी अधिक होता है क्योंकि घातायुष्क सम्यग्दृष्टिके सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्गपर्यन्त अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे अन्तर्मुहूर्त कम आधा सागर प्रमाण स्थिति अधिक होती है। और मिथ्यादृष्टिके पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक होती है।

१. ब °भवात्पूर्वोत्तरभवयोः चरमप्रथमान्तर्मुहूर्तौ षण्णां।

कृ=कृ=	नो	क	ते	प	शु
उ २ १ २ सा ३ ३	२१ । २ सा १७	२१ । २ सा ७	२१ । २ सा ५ – २	२१।२ सा ३७– २	२१ । २ सा ३ ३
ज २ १	२१	२१	२१	२१	२१
णाणा जीवाणं	सव्व	काळो ।			।०।०।।

परिमूरनेय कालाधिकारं तीद्दुदु ।

अनंतरमंतराधिकारमं गाथाद्वयदिवं पेळ्दपं :—

अंतरमवरुक्कस्सं किण्हतियाणं मुहुत्तअंतं तु ।
उवहीणं तेत्तीसं अहियं होदित्ति णिद्दिट्ठं ।।५५३।।

अंतरमवरोत्कृष्टं कृष्णत्रयाणां मुहूर्त्तो तस्तु । उदधीनां त्रयस्त्रिंशदधिकं भवतीति निर्दिष्टं ।।

तेउतियाणं एवं णवरि य उक्कस्सविरहकालो दु ।
पोग्गलपरियट्टा हु असंखेज्जा होंति णियमेण ।।५५४।।

तेजस्तिसृणामेवं विशेषोऽस्ति उत्कृष्टविरहकालस्तु । पुद्गलपरिवर्त्तनान्यसंख्येयानि भवंति नियमेन ।।

अंतरमें बुदेनें दोडे विरहकालमें बुदत्थमल्लि कृष्णादिलेश्यात्रयक्कं जघन्यांतरमंतर्म्मुहूर्त्तमक्कुमुत्कृष्टांतरमा लेश्यात्रयक्कं प्रत्येकं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमं साधिकमक्कुमें दितु परमागमदोळ्पेळल्पट्टुदवें तें दोडे कृष्णलेश्ययोळं तत्रोत्पत्तिक्रममिदु पूर्वकोटिवर्षायुष्यमनुळ्ळ मनुष्यं

मुहूर्तोनार्धसागरोपमेण मिथ्यादृष्टेस्तु पल्यासख्यातैकभागेन चाधिक्यात् ।।५५२।। इति कालाधिकार. । अथान्तराधिकारं गाथाद्वयेनाह—

अन्तरं विरहकाल. कृष्णादित्रयस्य जघन्येनान्तर्मुहर्तः । उत्कृष्टेन त्रयस्त्रिशत्सागरोपमाणि साधिकानि

विशेषार्थ—वैसे सौधर्म-ऐशानमें उत्कृष्ट आयु दो सागर होती है किन्तु आयुका अपवर्तन घात करनेवाले सम्यग्दृष्टीके अन्तर्मुहूर्त कम ढाई सागर आयु होती है। इसी तरह सहस्रार स्वर्गपर्यन्त जानना क्योंकि घातायुष्कको उत्पत्ति सहस्रार स्वर्गपर्यन्त ही होती है। इसी प्रकार घातायुष्क मिथ्यादृष्टिके पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर आदिकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।।५५२।।

कालाधिकार समाप्त हुआ। अब दो गाथाओंसे अन्तराधिकार कहते हैं—

अन्तर विरहकालको कहते हैं। कृष्ण आदि तीन लश्याओंका जघन्य अन्तर-अन्तमुहूर्त है। उत्कृष्ट अन्तर साधिक तैंतीस सागर है। वह इस प्रकार होता है—एक पूर्वकोटि

गर्भाद्यष्टवर्षचरमदोळंतर्म्मुहूर्त्तषट्कमुळिदुदें बागळु कृष्णलेश्येयोळे अंतर्म्मुहूर्त्त कालदोळिद्दु नीललेश्येयं पोद्दिदं। तदा कृष्णलेश्यांतरं प्रारब्धमादुदु । आ नीललेश्येयोळंतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतमिद्दु कपोतलेश्येयं पोद्दिदनल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतमिद्दु । तेजोलेश्येयं पोद्दिदनल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तमिद्दु पद्मलेश्येयं पोद्दिदनल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तमिद्दु शुक्ललेश्येयं पोद्दिदनल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तमिद्दु अष्टवर्षचरमसमयदोळु संयममं कैकोंडु देशोनपूर्व्वकोटिवर्षं संयममननुपालिसि सर्व्वार्त्थसिद्धियोळ्पुट्टि अल्लिय त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितियं समाप्तिमाडि बंदु मनुष्यनागि तद्भवप्रथमसमयं मोदल्गोंडु अंतर्म्मुहूर्त्तकालपर्य्यंतं शुक्ललेश्येयोळिद्दु पद्मलेश्येयं पोद्दि अल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतमिद्दु तेजोलेश्येयं पोद्दि अल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तमिद्दु कपोतलेश्येयं पोद्दि अल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तकालमिद्दु नीललेश्येयं पोद्दि अल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तमिद्दु कृष्णलेश्येयं पोद्दिदनितुदशांतर्म्मुहूर्त्तगळिनभ्यधिक अष्टवर्षोनपूर्व्वकोटिवर्षाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमंगळु कृष्णलेश्येयोळंतरमक्कुं मितें नीलकपोतलेश्येगळमंतरं पेळल्पडगुमिदु विशेषं नीललेश्येयोळष्टांतर्म्मुहूर्त्तगळु कपोतलेश्येयोळु षडंतर्म्मुहूर्त्तंगळभ्यधिकंगळें दु वक्तव्यमक्कुं । तेजोलेश्येयोळुत्कृष्टांतोत्पत्तिक्रममिदु । कश्चिज्जीवं मनुष्यं तिर्य्यंचं मेणु तेजोलेश्येयोळिदं बंदु कपोतलेश्येयं पोद्दिदं तदा तेजोलेश्येयंतरं प्रारब्धमादुदु पश्चात् कपोतनीलकृष्णलेश्येगळोळु प्रत्येकमंतर्मुहुर्त्तांतर्म्मुहूर्त्तंगळनिद्दु एकेंद्रियजीवनादनल्लि आवलिय संख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरिवर्त्तनंगळं परिभ्रमिसि विकलेंद्रियजीवनादनल्लि संख्यातसहस्रवर्ष-

भवन्तीति निर्दिष्टम् । तत्र कृष्णाया पूर्वकोटिवर्षायुर्मनुष्यो गर्भाद्यष्टवर्षचरमेऽन्तर्मुहूर्तषट्के अवशिष्टे कृष्णा गत, अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा नीला गतस्तदा कृष्णान्तरं प्रारब्धम् । ततः नीला कपोता तैजसी पद्मां शुक्ला च प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा अष्टवर्षचरमसमये सयमं स्वीकृत्य देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि प्रतिपाल्य सर्वार्थसिद्धिं गतः । तत्र त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि नीत्वा मनुष्यो भूत्वा तद्भवप्रथमसमयादन्तर्मुहूर्तं शुक्ला पद्मा तैजसी कपोता नीला च प्रत्येकं स्थित्वा कृष्णा गच्छति । इति दशान्तर्मुहूर्ताधिकानि अष्टवर्षोनपूर्वकोटिवर्षाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कृष्टान्तरं भवति । एवं नीलकपोतयोरपि किन्तु अधिकान्तर्मुहूर्ताः नीलायामष्टौ, कपोताया षडेव भवन्ति । तेजोलेश्याया कश्चिन्मनुष्यः तिर्यग् वा स्थित्वा कपोता गतस्तदा तेजोलेश्यान्तरं प्रारब्धम् । पश्चात्कपोतनीलकृष्णलेश्यासु एकैकान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा एकेन्द्रियो भूत्वा आवल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि भ्रान्त्वा

वर्षकी आयुवाला मनुष्य गर्भसे लेकर आठ वर्षकी आयु पूरी होनेमें जब छह अन्तर्मुहूर्त शेष रहे तो कृष्णलेश्यामें चला गया। अन्तर्मुहूर्त तक रहकर नीललेश्यामें चला गया। तब कृष्णलेश्याका अन्तर प्रारम्भ हुआ। उसके पश्चात् नील, कापोत, तेज, पद्म, शुक्लमें-से प्रत्येकमें अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहरकर आठ वर्षोंके अन्तिम समयमें संयमी हो गया। कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्ष तक संयमका पालन करके मरकर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुआ। वहाँ तैंतीस सागर बिताकर मनुष्य हुआ। मनुष्यभवके प्रथम समयसे शुक्ल, पद्म, तेज, कापोत और नीलमें-से प्रत्येकमें अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता हुआ कृष्णलेश्यामें चला जाता है। इस प्रकार दस अन्तर्मुहूर्त अधिक और आठ वर्ष कम पूर्वकोटि वर्ष अधिक तैंतीस सागर कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी तरह नील और कपोतका भी उत्कृष्ट अन्तर होता है। किन्तु अधिक अन्तर्मुहूर्त नीलमें आठ और कपोतमें छह ही होते हैं। कोई मनुष्य या तिर्यंच तेजोलेश्यामें रहकर कपोतलेश्यामें चला गया। तेजोलेश्याका अन्तर प्रारम्भ हो

गळनिद्दुंबंदु पंचेंद्रियजीवनावनल्लि भवप्रथमसमयप्रभृतिकृष्णनीलकपोतलेश्यंगळोळु प्रत्येकमंतर्म्मुहूर्त्ततंतर्म्मुहूर्त्तंगळनिद्दुं बंदु तेजोलेश्येय पोद्दिदनितु षडंतर्म्मुहूर्त्तंगळिंदमधिकमप्प संख्यातसहस्रवर्षंगळिनभ्यधिकमप्पावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्त्तंगळु तेजोलेश्येयोळुत्कृष्टांतरमक्कुं। पद्मलेश्येयोळंतरं पेळल्पडुगुं। कश्चिज्जीवनु पद्मलेश्येयिं बंदु तेजोलेश्येयं पोद्दिदनागळु पद्मलेश्येयंतरं प्रारंभमादुदु। आ तेजोलेश्येयोळंतर्म्मुहूर्त्तकालमिद्दुं सौधर्मकल्पद्वयदोळु पल्यासंख्यातैकभागाभ्यधिकद्विसागरोपमस्थितिकदेवनागियल्लि बळिचि बंदु मुन्निनंते एकेंद्रियविकलेंद्रियपंचेंद्रियजीवंगळोळु पुट्टि क्रमदिदं आवलियसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्त्तनंगळं संख्यातसहस्रवर्षंगळनिद्दुं पंचेंद्रियदोळुद्भविसिद प्रथमसमयं मोदलगोंडु कृष्णनीलकपोततेजोलेश्यंगळोळंतर्म्मुहूर्त्तांतर्म्मुहूर्त्तंगळनिद्दुं पद्मलेश्येयं पोद्दिदं इंतु पंचांतर्म्मुहूर्त्तंगळिंदमधिकमाद संख्यातसहस्रवर्षंगळिनधिकमप्प पल्यासंख्यातैकभागाभ्यधिकसागरोपमद्वयाभ्यधिकमप्पावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्त्तनंगळु पद्मलेश्येयोळुत्कृष्टांतरमक्कुं। शुक्ललेश्येयोळुमिते वक्तव्यमक्कुमादोडमिदु विशेषं। शुक्ललेश्येयिंदं बंदु पद्मलेश्येयं पोद्दियल्लियंतर्म्मुहूर्त्तमिद्दुं तेजोलेश्येयं पोद्दि अल्लियुमंतर्म्मुहूर्तमिद्दुं मुन्निनंते सौधर्म्मद्वयदोळु पल्यासंख्यातैकभागदिंदमधिकमप्प सागरोपमद्वयमनल्लिय स्वस्थितियनिद्दुं बळिचि एकेंद्रियंगळोळावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्त्तनंगळं

विकलेन्द्रियो भूत्वा संख्यातसहस्रवर्षाणि भ्रान्त्वा पञ्चेन्द्रियो भूत्वा तद्भवप्रथमसमयात्कृष्णनीलकपोतलेश्यासु एकैकान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा तेजोलेश्यां गच्छति। इति षडन्तर्मुहूर्तसंख्यातसहस्रवर्षावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनान्युत्कृष्टान्तरं भवति। पद्मायां कश्चित्स्थित्वा तेजोलेश्यां गतस्तदा पद्मान्तरं प्रारब्धं तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा सौधर्मद्वये पल्यासंख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वयं स्थितः च्युत्वा प्राग्वदेकविकलेन्द्रियेषु क्रमेणावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनसंख्यातसहस्रवर्षाणि स्थित्वा पञ्चेन्द्रियभवप्रथमसमयात् कृष्णनीलकपोततेजोलेश्यासु एकैकान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पद्मां गच्छति। इति पञ्चान्तर्मुहूर्तसंख्यातसहस्रवर्षपल्यासंख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वयावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि उत्कृष्टान्तरं भवति। एवं शुक्लायामपि, किन्तु शुक्लात् पद्मां

गया। पश्चात् कपोत, नील और कृष्णलेश्यामें एक-एक अन्तर्मुहूर्त रहकर एकेन्द्रिय हो गया। आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गल परावर्तन काल एकेन्द्रियोंमें भ्रमण करके विकलेन्द्रिय हुआ। विकलेन्द्रियोंमें संख्यात हजार वर्ष तक भ्रमण करके पंचेन्द्रिय हुआ। पंचेन्द्रियके भवके प्रथम समयसे कृष्ण, नील, कापोतलेश्यामें एक-एक अन्तर्मुहूर्त ठहरकर तेजोलेश्यामें चला जाता है। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्त संख्यात हजार वर्ष तथा आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र पुद्गल परावर्तन तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अन्तर है। पद्मलेश्यामें रहकर कोई जीव तेजोलेश्यामें चला गया। तब पद्मलेश्याका अन्तर प्रारम्भ हुआ। वहाँ अन्तर्मुहूर्त तक रहकर सौधर्म युगलमें पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर तक रहा। वहाँसे च्युत होकर पहलेकी तरह एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियोंमें क्रमसे आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र पुद्गल परावर्तन तथा संख्यात हजार वर्ष तक रहकर पंचेन्द्रिय हुआ। भवके प्रथम समयसे कृष्ण, नील, कपोत और तेजोलेश्यामें एक-एक अन्तर्मुहूर्त ठहरकर पद्मलेश्यामें जाता है। इस प्रकार पाँच अन्तर्मुहूर्त संख्यात हजार वर्ष, पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर, आवलीके असंख्यातवें भाग पुद्गल परावर्तन

माडि बंदु विकलत्रयदोळ्पुट्टि संख्यातसहस्रवर्षंगळनिद्दु बंदु पंचेंद्रियजीवनागि तद्भवप्रथम समयं मोदल्गोंडु कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्येगळोळु प्रत्येकमंतर्म्मुहूर्त्तांतर्म्मुहूर्त्तंगळनिद्दु शुक्ल-लेश्येयं पोद्दिदोडदुत्कृष्टांतरं शुक्ललेश्येगे सप्तांतर्म्मुहूर्त्ताधिकसंख्यातवर्षसहस्राधिकमप्प पळितोपमा संख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वयाभ्यधिकावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्त्तनप्रमितमक्कुं ।

अंत=कृ	नील	कपोत	तेजो	पद्मलेश्या	शुक्ललेश्या
२१ । १० अ पू-व ८ सा ३३	२१ । ८ पू व ८ सा ३३	२१ । ६ पू व-८ सा ३ ३	२१ । ६ व ७००० पु द २ a a	२१ । ५ व ६००० प a सागरोप २ a पुद्गल प २ a	२१ । ७ व ७००० प a सागरोप १ a पुद्गल परा २ a
ज २१	२१	२१	२१	२१	२१

पदिनाल्कनेय अंतराधिकारंतिद्दुदु ।

अनंतरं भावाधिकारमुम अल्पबहुत्वाधिकारमुमंनोंदे सूत्रदिदं पेळ्दपं :—

भावादो छल्लेस्सा ओदयिया होंति अप्पबहुगं तु ।
दव्वपमाणे सिद्धं इदि लेस्सा वण्णिदा होंति ।।५५५।।

भावतः षड्लेश्या औदयिका भवंति अल्पबहुकं तु । द्रव्यप्रमाणे सिद्धं इति लेश्या वर्णिता भवंति ।।

तैजसी च प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा प्राग्वत् सौधर्मद्वये पल्यासंख्यातैकभागाधिकद्विसागरोपमस्थितिं एकेन्द्रियेण आवल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि विकलेन्द्रियेषु संख्यातसहस्रवर्षाणि च नीत्वा पञ्चेन्द्रियभवप्रथमसमयात् कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यासु एकैकान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा शुक्लां गच्छति तदासप्तान्तर्मुहूर्तसंख्यातवर्षसहस्रपलितोपमासंख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वयावल्य- संख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि उत्कृष्टान्तरं भवति ।।५५३-५५४।। इत्यन्तराधिकारः ।।१३।। अथ भावाल्पबहुत्वाधिकारावाह—

इतना उत्कृष्ट अन्तर पद्मलेश्याका होता है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यामें भी जानना। किन्तु शुक्लसे पद्म और तेजमें एक-एक अन्तर्मुहूर्त ठहरकर पहलेकी तरह सौधर्म युगलमें पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरकी स्थिति बिताकर एकेन्द्रियोंमें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गल परावर्तन और विकलेन्द्रियोंमें संख्यात हजार वर्ष बिताकर पंचेन्द्रिय होता है। वहाँ भवके प्रथम समयसे कृष्ण, नील, कपोत, तेज, और पद्मलेश्यामें एक अन्तर्मुहूर्त ठहरकर शुक्ललेश्यामें जाता है। तब सात अन्तर्मुहूर्त, संख्यात हजार वर्ष, पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर, और आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गल परावर्तन उत्कृष्ट अन्तर होता है ।।५५४।।

भावदिवमारु लेश्येगळु मौदयिकंगळेयप्पुवेकें दोडे कषायोदयावष्टंभसंभूतयोगप्रवृत्तिलक्षणंगळप्पुदरिदं । तु मत्ते अल्पबहुत्वमं मुन्नं संख्याधिकारदोळपेळ्द द्रव्यप्रमाणदोळे सिद्धमक्कुमेकें दोडा द्रव्यप्रमाणदोळु सर्व्वतः स्तोकंगळु शुक्ललेश्याजीवंगळसंख्यातंगळु । ↄ । अवं नोडल्पद्मलेश्याजीवंगळुमसंख्यातगुणितंगळप्पु ↄ ↄ ववं नोडल्केतेजोलेश्याजीवंगळु संख्यातगुणितंगळप्पु ↄ ↄ १ ववं नोडल्कपोतलेश्याजीवंगळनंतानंतगुणितंगळु १२– ॥ ३ ववं नोडलु नीललेश्याजीवंगळप्पु १३ – / ३ – ववं नोडलु कृष्णलेश्याजीवंगळसाधिकंगळप्पु १३ – / ३ – वें दितु सिद्धंगळितारुं लेश्येगळपदिनारुमधिकारंगळिदं वर्णितंगळप्पुवु ।

अनंतरं लेश्यारहितजीवंगळं पेळ्दपं :—

किण्हादिलेस्सरहिया संसारविणिग्गया अणंतसुहा ।
सिद्धिपुरं संपत्ता अलेस्सिया ते मुणेदव्वा ॥५५६॥

कृष्णादिलेश्यारहिताः संसारविनिर्गताः अनंतसुखाः । सिद्धिपुरं संप्राप्ता अलेश्यास्ते मंतव्याः ॥

भावेन षडपि लेश्याः औदयिका एव भवन्ति । कुतः ? कषायोदयावष्टम्भसंभूतयोगप्रवृत्तेरेव तल्लक्षणत्वात् । तु–पुनः, तासामल्पबहुत्वं पूर्वसंख्याधिकारे द्रव्यप्रमाणे एव सिद्धम् । तथाहि–शुक्ललेश्याजीवाः सर्वतः स्तोका अप्यसंख्याताः ↄ । तेभ्यः पद्मलेश्या असंख्यातगुणाः ↄ ↄ । तेभ्यस्तेजोलेश्याः संख्यातगुणाः ↄ ↄ १ । तेभ्यः कपोतलेश्या अनन्तानन्तगुणाः १३– ॥ ३– तेभ्यः नीललेश्याः साधिकाः १३ । ३ । तेभ्यः कृष्णलेश्याः साधिकाः १३– / ३– । इति षडपि लेश्याः षोडशाधिकारैर्वर्णिता भवन्ति ॥५५५॥ अथालेश्यजीवानाह—

अन्तराधिकार समाप्त हुआ । अब भाव और अल्पबहुत्व अधिकार कहते हैं—

भावसे छहों लेश्या औदयिक ही होती हैं, क्योंकि कषायके उदयसे संयुक्त योगकी प्रवृत्ति ही लेश्याका लक्षण है । उनका अल्पबहुत्व तो पहले संख्या अधिकारमें जो द्रव्यप्रमाण कहा है उसीसे ही सिद्ध है, जो इस प्रकार है—शुक्ललेश्यावाले जीव सबसे थोड़े होनेपर भी असंख्यात हैं । उनसे पद्मलेश्यावाले जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे तेजोलेश्यावाले जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे कपोतलेश्यावाले जीव अनन्तानन्तगुणे हैं । उनसे नील लेश्यावाले जीव कुछ अधिक हैं । उनसे कृष्णलेश्या वाले जीव कुछ अधिक हैं । इस प्रकार सोलह अधिकारोंसे छहों लेश्याका वर्णन किया ॥५५५॥

अब लेश्यारहित जीवोंको कहते हैं—

आवुवु केलवु जीवंगळ्गे कषायस्थानोदयंगळुं योगप्रवृत्तियुमिल्लमा जीवंगळु कृष्णादि-लेश्यारहितरप्परु। संसारविनिर्ग्गताः अदुकारणदिदं पंचविधसंसारवाराशिविनिर्ग्गतरुं अनंत-सुखाः अतींद्रियानंतसुखसंतृप्तरुं सिद्धिपुरं संप्राप्ताः स्वात्मोपलब्धि लक्षणसिद्धियें ब परमं पोर्द्दल्पट्टरुं अलेश्यास्ते मंतव्याः अंतप्प जीवंगळु लेश्यारहिताऽयोगिकेवलिगळुं सिद्धपरमेष्ठिगळुमोळरें दु बगेयल्पडुवरु।

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरुमंडला-चार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिगळुं श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितगोम्मटसारकर्णाटवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपि-केयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु पंचदशं लेश्यामार्ग्गणामहाधिकारं निगदितमाय्तु ॥

ये जीवाः कषायोदयस्थानयोगप्रवृत्त्यभावात् कृष्णादिलेश्यारहिताः तत एव पञ्चविधसंसारवाराशि-विनिर्गता अतीन्द्रियानन्तसुखसंतृप्ता स्वात्मोपलब्धिलक्षणं सिद्धिपुरं सप्राप्ताः ते अयोगकेवलिनः सिद्धाश्च अलेश्या जीवा इति ज्ञातव्या ॥५५६॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु लेश्याप्ररूपणा नाम पञ्चदशोऽधिकारः ॥१५॥

जो जीव कषायोंके उदयस्थानसे युक्त योगोंकी प्रवृत्तिके अभावसे कृष्ण आदि लेश्याओंसे रहित हैं और इसीसे पाँच प्रकारके संसार समुद्रसे निकल गये हैं, अतीन्द्रिय अनन्तसुखसे तृप्त हैं, तथा अपने आत्माकी उपलब्धि लक्षणवाले मुक्तिनगरको प्राप्त हो चुके हैं वे अयोगकेवली और सिद्ध जीव लेश्यासे रहित जानना ॥५५६॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से लेश्यामार्गणा प्ररूपणा नामक पन्द्रहवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥

भव्यमार्गणाधिकार ॥१६॥

अनंतरं भवमार्गणाधिकारमं गाथाचतुष्टयदिदं पेळवपं :—

भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा ।
तव्विवरीयाभव्वा संसारादो ण सिज्झंति ॥५५७॥

भव्या सिद्धिर्य्येषां ते भव्यसिद्धाः अथवा भाविनी सिद्धिर्य्येषां ते भव्यसिद्धाः । तद्विपरीता अभव्याः संसारतो न सिद्ध्यंति ॥

मुंदे संभविसुवंतप्प अनंतचतुष्टयस्वरूपयोग्यतेयाक्के लंबरुगळिगभंव्यसिद्धरु । तद्विपरीतलक्षणमनुळ्ळ जीवंगळऽभव्यरु । अदु कारणमागि अभव्यजीवंगळु संसारदत्तणिंदं पिंगि सिद्धियं पडेयल्पडुवरु ।

भव्वत्तणस्स जोग्गा जे जीवा ते हवंति भवसिद्धा ।
ण हु मलविगमो णियमा ताणं कणयोवलाणमिव ॥५५८॥

भव्यत्वस्य योग्याः ये जीवास्ते भवंति भव्यसिद्धाः । न खलु मलविगमो नियमास्तेषां कनकोपलानामिव ॥

यस्य नाम्नापि नश्यन्ति निश्शेषानिष्टराशय. ।
फलन्ति वाञ्छितार्थाश्च शान्तिनाथं तमाश्रये ॥१६॥

अथ भव्यमार्गणाधिकारं गाथाचतुष्टयेनाह—

भव्या भवितु योग्या भाविनी वा सिद्धिः अनन्तचतुष्टयरूपस्वस्वरूपोपलब्धिर्येषां ते भव्यसिद्धा । अनेन सिद्धेर्लब्धियोग्यताभ्यां भव्याना द्वैविध्यमुक्तम् । तद्विपरीताः उक्तलक्षणद्वयरहिताः, ते अभव्या भवन्ति । अतएव ते अभव्या न सिद्धयन्ति संसारान्निःसृत्य सिद्धि न लभन्ते ॥५५७॥ एव द्विविधानामपि भव्याना सिद्धिलाभप्रसक्तौ तद्योग्यतामात्रवतामुपपत्तिपूर्वकं ता परिहरति—

अब चार गाथाओंसे भव्य मार्गणाधिकारको कहते हैं—

भव्य अर्थात् होनेके योग्य अथवा जिनकी सिद्धि—अनन्त चतुष्टयरूप आत्मस्वरूपकी उपलब्धि भाविनी—होनेवाली है वे जीव भव्यसिद्ध होते हैं। इससे सिद्धिकी प्राप्ति और योग्यताके भेदसे भव्योंके दो भेद कहे हैं। उक्त दोनों लक्षणोंसे रहित जीव अभव्य होते हैं। वे संसारसे निकलकर सिद्धिको प्राप्त नहीं होते ॥५५७॥

इस प्रकार दोनों ही प्रकारके भव्योंको मुक्तिलाभका प्रसंग प्राप्त होनेपर जिनके मात्र सिद्धि प्राप्तिकी योग्यता है, उपपत्तिपूर्वक उनको मुक्ति प्राप्तिका निषेध करते हैं—

सम्यग्दर्शनादिसामग्रियनेय्दियनंतचतुष्टयस्वरूपर्तीयदं परिणमिसल्के योग्यरप्प जीवंगळु- नियमदिवं भव्यसिद्धरुगळप्परवर्गळ्गे मलविगमदोळु नियवमिल्ल । कनकोपलंगळ्गे तंते केलवु- जीवंगळु भव्यरुगळागियु रत्नत्रयप्राप्तिरूपमप्प स्वसामग्रियं पडेयलारदिरुत्तिप्पुवु । अभव्यसमानरप्प भव्यजीवंगळुमोळवे बुदत्थं ।

> ण य जे भव्वाऽभव्वा मुत्तिसुहातीदणंतसंसारा ।
>
> ते जीवा णादव्वा णेव य भव्वा अभव्वा य ॥५५९॥

न च ये भव्याः अभव्याश्च मुक्तिसुखाः अपगतानंतसंसाराः ते जीवा ज्ञातव्याः नैव च भव्या अभव्याश्च ॥

आवकेलंबरु जीवंगळु भव्यरुगळुमल्लु अभव्यरुगळुमल्लु मुक्तिसुखाः कृत्स्नकर्म्मक्षयदोळं घातिकर्म्मक्षयदोळं संजनितातींद्रियानंतसुखमनुळ्ळरु अतीतानंतसंसाराः पेरगिक्कल्पट्ट संसार- मनुळ्ळ ते जीवाः आ जीवंगळु नैव भव्याः भव्यरुगळुमल्लु नैवाभव्याश्च अभव्यरुगळमल्लु ज्ञातव्याः एंदितरियल्पडुवरु ।

अनंतरं भव्यमार्गणेयोळु जीवसंख्येयं पेळ्दपं :—

> अवरो जुत्ताणतो अभव्वरासिस्स होदि परिमाणं ।
>
> तेण विहीणो सव्वो संसारी भव्वरासिस्स ॥५६०॥

अवरो युक्तानंतो भव्यराशेर्भवति परिमाणं । तेन विहीनः सर्व्वः संसारी भव्यराशेः। युक्ता- नंतजघन्यराशिप्रमाणमभव्यराशिय परिमाणमक्कुं । ज जु अ । मा अभव्यराशिहीनसर्व्वसंसारि·

ये भव्यजीवाः भव्यत्वस्य सम्यग्दर्शनादिसामग्री प्राप्यानन्तचतुष्टयस्वरूपेण परिणमनस्य योग्याः केवलयोग्यतामात्रयुक्ताः ते भवसिद्धा संसारप्राप्ता एव भवन्ति । कुतः ? तेषां मलस्य विगमे विनाशकरणे केषाञ्चित्कनकोपलानामिव नियमेन सामग्री न सभवतीति कारणात् ॥५५८॥

ये जीवा न च भव्याः नाप्यभव्याः मुक्तिसुखाः अतीतानन्तससाराः ते जीवा नैव भव्या भवन्ति, नाप्यभव्या भवन्ति इति ज्ञातव्याः ॥५५९॥ अत्र जीवसख्यामाह—

जघन्ययुक्तानन्तोऽभव्यराशिपरिमाण भवति । ज जु अ । तेन अभव्यराशिनोनः सर्वसंसारिराशिः

जो भव्यजीव भव्यत्वके अर्थात् सम्यग्दर्शन आदि सामग्रीको प्राप्त करके अनन्त- चतुष्टय स्वरूपसे परिणमनके योग्य हैं अर्थात् केवल योग्यतामात्र रखते हैं वे भवसिद्ध संसारी ही होते है। क्योंकि जैसे कुछ स्वर्णपाषाण ऐसे होते हैं जिनका मल दूर करना शक्य नहीं होता उस प्रकारकी सामग्री नहीं मिलती, उसी तरह उनके भी मलको विनाश करनेवाली सामग्री नियमसे नहीं मिलती ॥५५८॥

जो जीव न तो भव्य हैं और न अभव्य हैं, क्योंकि उन्होंने मुक्तिसुख प्राप्त कर लिया है और उनका अनन्त संसार अतीत हो चुका है। वे जीव न तो भव्य हैं और न अभव्य हैं ॥५५९॥

इनमें जीवोंकी संख्या कहते हैं—

अभव्यराशि जघन्य युक्तानन्त परिमाणवाली होती है। भव संसार राशिमें-से

१. म °ममिल्लदिरुत्तिरलु कन° ।

राशि भव्यराशिय परिमाणमक्कुं १३–। इल्लि संसारिजीवंगळ परिवर्त्तनं पेळल्पडुगुं। परिवर्त्तनं परिभ्रमणं संसरणमें बनर्त्थांतरमक्कुमदुवु द्रव्यक्षेत्रकालभवभावभेर्वाद पंचविधमक्कुमल्लि द्रव्यपरिवर्त्तनं नोकर्म्मकर्म्मपरिवर्त्तनभेर्दाददं द्विविधमक्कुमल्लि। नोकर्म्मपरिवर्त्तनमें बुदु मूरुं शरीरंगळगरुं पर्य्याप्तिगळगे योग्यंगळप्पुवावु केलवु पुद्गलंगळु वोव्वंजीवनिदमो ंदु समयदोळु कैकोळल्पट्ट स्निग्धरूक्षवर्णगंधादिगळिदं तीव्रमंदमध्यमभावदिदमुं यथास्थितंगळु द्वितीयादिसमयंगळोळु निर्ज्जीर्णंगळु। अगृहीतंगळनंतवारंगळं कळेदु मिश्रकंगळनू अनंतवारंगळं कळेदु मध्यदोळु गृहीतंगळनुमनंतवारंगळं पेरगिविकि आपुद्गलंगळे आ प्रकारदिंदमे आ जीवन नोकर्म्मभावमनय्दल्पडुवन्नेवरमा समुदितं कालं नोकर्म्मद्रव्यपरिवर्त्तनमक्कुमदें ते दोडा पुद्गलपरिवर्त्तनकालं अगृहीतग्रहणाद्धियें दुं मिश्रग्रहणाद्धियें दुं त्रिविधमक्कुमल्लि विवक्षितनोकर्म्मपुद्गलपरिवर्त्तनमध्यदोळु अगृहीतंगळ ग्रहणकालमनगृहीतग्रहणाद्धियें बुदु गृहीतंगळ ग्रहणकालं गृहीतग्रहणाद्धियें बुदु। युगपदुभयग्रहणकालं मिश्रग्रहणाद्धियें बुदक्कुमिवेल्लर परिवर्त्तनक्रममिदु। विवक्षितनोकर्म्मपुद्गलपरिवर्तनप्रथमसमयं मोदल्गो ंडु निरंतरमगृहीतंगळननंतवारंगळकळेदोम्में मिश्रग्रहणमक्कुं मत्तम-

भव्यराशिप्रमाणं भवति १३–अत्र संसारिणा परिवर्तनमुच्यते। परिवर्तनं परिभ्रमणं संसार इत्यनर्थान्तरम्। तत् द्रव्यक्षेत्रकालभवभावभेदात्पञ्चधा। तत्र द्रव्यपरिवर्तनं कर्मनोकर्मभेदाद्द्वेधा। तत्र नोकर्मपरिवर्तनं नाम शरीरत्रयस्य षट्पर्याप्तीनां च योग्याः पुद्गलाः केनचिज्जीवेन एकस्मिन् समये गृहीताः स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिः तीव्रमन्दमध्यमभावेन यथावस्थिताः द्वितीयादिसमयेषु निर्जीर्णाः, अगृहीताननन्तवारानतीत्य मिश्रकाननन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीताननन्तवारानतीत्य त एव पुद्गला तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावं गच्छेयुस्तावान् समुदितकालो नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं भवति। तद्यथा—तत्पुद्गलपरिवर्तनकालोऽगृहीतग्रहणाद्धा गृहीतग्रहणाद्धा मिश्रग्रहणाद्धेति त्रिविधः। तत्र अगृहीतग्रहणकालः अगृहीतग्रहणाद्धा। गृहीतग्रहणकालो गृहीतग्रहणाद्धा, युगपदुभयग्रहणकालो मिश्रग्रहणाद्धा। तेषां परिवर्तनक्रमोऽयं विवक्षितनोकर्मपुद्गलपरिवर्तनप्रथमसमयादारभ्य निरन्तरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं, पुनः निरन्तरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं

अभव्यराशिका परिमाण घटानेपर भव्यराशिका प्रमाण होता है। यहाँ संसारी जीवोंके परिवर्तन कहते हैं। परिवर्तन परिभ्रमण और संसार ये शब्द एकार्थक हैं। परिवर्तन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावके भेदसे पाँच प्रकारका है। उनमें-से द्रव्यपरिवर्तन कर्म और नोकर्मके भेदसे दो प्रकारका है। नोकर्म परिवर्तन इस प्रकार होता है—तीन शरीर छह पर्याप्तियोंके योग्य पुद्गल किसी जीवने एक समयमें ग्रहण किये। स्निग्ध रूक्ष वर्ण गन्ध आदि तथा तीव्र, मन्द या मध्यम भावसे जैसे ग्रहण किये दूसरे आदि समयोंमें उनकी निर्जरा हो गयी। उसके पश्चात् अनन्त बार अगृहीतको ग्रहण करके छोड़े, अनन्त बार मिश्रको ग्रहण करके छोड़े। मध्यमें अनन्त बार गृहीतको ग्रहण करके छोड़े। तब वे ही पुद्गल उसी प्रकारसे उसी जीवके नोकर्म भावको जब प्राप्त हों उतना सब काल नोकर्म द्रव्य परिवर्तन होता है।

पुद्गल परिवर्तनका काल अगृहीतग्रहणाद्धा, गृहीत ग्रहणाद्धा और मिश्र ग्रहणाद्धाके भेदसे तीन प्रकार है। अगृहीत ग्रहणके कालको अगृहीत ग्रहणद्धा कहते हैं। गृहीतग्रहणके कालको गृहीत ग्रहणद्धा कहते है और एक साथ गृहीत और अगृहीतके ग्रहणकालको मिश्रगृहणद्धा कहते है। उनके परिवर्तनका क्रम इस प्रकार है—विवक्षित नोकर्म पुद्गल परिवर्तनके प्रथम समयसे लेकर निरन्तर अनन्त बार अगृहीतको ग्रहण करके एक बार मिश्रको ग्रहण करता है। पुनः निरन्तर अनन्त बार अगृहीतको ग्रहण करके एक बार मिश्रको

गृहीतंगळननंतवारंगळं पेरगिक्कियोनिकम्मं मिश्रग्रहणमक्कुमितनंतंगळु मिश्रग्रहणंगळप्पुवु। बळिक्कं निरंतरमवगृहीतंगळननंतवारंगळं कळेदोम्में गृहीतग्रहणमक्कुमिते गृहीतंगळुमनंतंगळा-गुत्तं विरलु प्रथमपरिवर्त्तनमक्कुमर्मालिदं बळिक्कं निरंतरंमिश्रकंगलमनंतवारंगलकलिवुवोम्मों-गृहीतग्रहणमक्कुं मत्तं मिश्रकंगळननंतवारंगळं पेरगिक्कियोम्में अगृहीतग्रहणमक्कुमितनंतंगळु अगृहीतग्रहणंगळप्पुवु। मुंदे मत्तं निरंतरंमागि मिश्रकंगळननंतंगळं काळिपियोम्में गृहीतग्रहणमक्कुं मिते गृहीतंगळुमनंतंगळागुत्तं विरलु द्वितीयपरिवर्त्तनमक्कुं।

मत्तमल्लि बळिक्कं निरतरमागि मिश्रकंगळननतवारंगळं पेरगिक्किदोम्में गृहीतग्रहण-मक्कु। मत्तं निरंतरमिश्रकंगळननंतवारंगळं कळेदोम्में गृहीतग्रहणमक्कुमितुगृहीतग्रहणंगळुम-नंतंगळप्पुवुमल्लिबळिक्कं निरंतरमागि मिश्रकंगळ ननंतवारंगळं कळेदोम्में अगृहीतग्रहणमक्कुं मितु अगृहीतग्रहणंगळोलमनंतंगळागुत्तं विरलु तृतीयपरिवर्त्तनमक्कुं। अल्लि बळिक्कं निरंतरं

पुनः निरन्तरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रगहणम्। एवमनन्तानि मिश्रग्रहणानि। ततः निरन्तरम-गृहीताननन्तवारानतीत्य सकृत् गृहीतग्रहणम्। एवं गृहीतेष्वपि अनन्तेषु जातेषु प्रथमपरिवर्तनं भवति। ततोऽग्रे निरन्तरं मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणम्। पुन. निरन्तरं मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृद-गृहीतग्रहणम्। एवमनन्तानि अगृहीतग्रहणानि। ततः निरन्तरं मिश्रकानन्तवारानतीत्य सकृद्गृहीतग्रहणम्। एव गृहीतेष्वप्यनन्तेषु जातेषु द्वितीयपरिवर्तनं भवति। ततोऽग्रे निरन्तर मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृद्गृहीत-ग्रहणम्। पुन निरन्तर मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृद्गृहीतग्रहणम्। एव गृहीतग्रहणानि अनन्तानि। ततः निरन्तर मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणम्। एवमगृहीतग्रहणेष्वप्यनन्तेषु जातेषु तृतीयपरिवर्तन भवति।

ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्त बार मिश्रको ग्रहण करता है। उसके पश्चात् निरन्तर अनन्तवार अगृहीतको ग्रहण करके एक बार गृहीतका ग्रहण करता है। इस प्रकार गृहीतका भी ग्रहण अनन्त बार होनेपर प्रथम परिवर्तन होता है। इसकी संदृष्टि इस प्रकार है—

० ० +	० ० +	० ० +	० ० +	० ० +	० ० +
+ + ०	+ + ०	+ + १	+ + ०	+ + ०	+ + १
+ + १	+ + १	+ + ०	+ + १	+ + १	+ + १
१ १ +	१ १ +	१ १ ०	१ १ +	१ १ +	१ १ ०

इसमें अगृहीतका चिह्न शून्य है, मिश्रका हंसपद है और गृहीतका एक अंक है। दो बार अनन्त बारका सूचक है। प्रथम परावर्तनसे मतलब है प्रथम पंक्तिके कोठोंकी समाप्ति हो गयी, अब आगे चलिए।

आगे निरन्तर अनन्त बार मिश्रको ग्रहण करके एक बार अगृहीतका ग्रहण करता है। पुनः निरन्तर मिश्रको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार अगृहीतका ग्रहण करता है। इस तरह अनन्त बार अग्रहीतका ग्रहण करता है। उसके पश्चात् निरन्तर मिश्रको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार गृहीतका ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्त बार गृहीतका ग्रहण होनेपर द्वितीय परिवर्तन होता है। आगे निरन्तर मिश्रको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार गृहीतका ग्रहण करता है। पुनः निरन्तर मिश्रको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार गृहीतका ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्त बार गृहीतको ग्रहण करता है। फिर निरन्तर मिश्रको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार अगृहीतका ग्रहण करता है। इस प्रकार अगृहीतका ग्रहण अनन्त बार होनेपर तृतीय परिवर्तन होता है। आगे निरन्तर गृहीतको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार

गृहीतंगळनंतवारंगळं कळिपियोम्में मिश्रग्रहणमक्कुं। मत्तं गृहीतंगळनंतवारंगळं पेरगिक्कियोम्में मिश्रग्रहणमक्कुं मितुं मिश्रग्रहणंगळुमनंतंगळक्कुमल्लि बळिकं निरंतरं गृहीतंगळननंतंगळं पेरगिक्कियोम्में अगृहीतग्रहणमक्कुमितु अगृहीतंगळोलमनंतंगळागुत्तं विरलु चतुर्त्थपरिवर्त्तनमक्कं। तदनंतरसमयदोळु विवक्षितनोकर्म्मपुद्गलपरिवर्त्तनप्रथमसमयगृहीतंगळु द्वितीयादिसमयं निर्ज्जीर्णंगळावुवु केलवु नोकर्म्मसमयप्रबद्धपुद्गलंगळु अवेतादृशंगळे शुद्धंगळु बंदु पोद्दुवबु अविदेल्लमुं कूडि नोकर्म्मपुद्गलपरिवर्त्तनमक्कुं । कर्म्मपुद्गलपरिवर्त्तनं पेळल्पडुगुमोंदु समयदोळोर्व्वजीवनिंदमष्टविधकर्म्मभावदिदमावुवुकेलवु कैकोळल्पट्टुवु समयाधिकावलिकालप्रमितमं[2] आबाधेयं कळेदु द्वितीयादिसमयंगळोळु निर्जीर्णंगळु पूर्व्वोक्तक्रमदिंदमे अवे आ प्रकारदिंदमे आ जीवंगे कर्म्मरूपतेयनेय्दुववु एन्नेवरमनितु कालं कर्म्मपुद्गलपरिवर्त्तनमक्कुं उळिदंतेल्ला विशेषमुं नोकर्म्मपरावर्तनदोळपेळदंतेयक्कुमी यरडुं पुद्गलपरिवर्त्तनंगळ्गे कालंगळेरडुं समानंगळेयप्पुविल्लि अगृहीतग्रहणकालमनंतमागियुं सर्व्वतः स्तोकमक्कुमेकेंदोडे विनष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावसंस्कारंगळनुळ्ळ पुद्गलंगळ्गे बहुवारं ग्रहणं घटिसददु कारणमागि इदरिंदं विवक्षितपुद्गलपरिवर्त्तनमध्यदोळु

ततोऽग्रे निरन्तरं गृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणम् । पुन गृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणम् । एवं मिश्रग्रहणानि अनन्तानि । तत निरन्तर गृहीताननन्तवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणम् । एवमग्रहीतेष्वप्यनन्तेषु जातेषु चतुर्थपरिवर्तनं भवति । तदनन्तरसमये विवक्षितनोकर्मपुद्गलपरिवर्तनप्रथमसमयगृहीता अनन्ता द्वितीयादिसमयनिर्जीर्णा ये नोकर्मसमयप्रबद्धपुद्गलास्त एव तादृशा एव शुद्धा आगत्य आश्रयन्ति तदेतत्सर्वं मिलित नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन भवति । कर्मपुद्गलपरिवर्तनमुच्यते—एकस्मिन् समये केनचिज्जीवेन अष्टविधकर्मभावेन ये गृहीताः समयाधिकावलिकालमतीत्य द्वितीयादिसमयेषु निर्जीर्णाः पूर्वोक्तक्रमेणैव त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य कर्मभाव प्राप्नुवन्ति तावत्काल कर्मपुद्गलपरिवर्तन भवति । शेषसर्वविशेषो नोकर्मपरिवर्तनवत् ज्ञातव्यः । अनयोः कालौ समानौ । अत्रागृहीतग्रहणकालः अनन्तोऽपि सर्वत स्तोक । कुत, विनष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावसंस्कारपुद्गलानां बहुबारग्रहणाघटनात् । अनेन विवक्षितपुद्गलपरिवर्तनमध्ये गृहीतानामेव बहुबारग्रहणं

मिश्रको ग्रहण करता है। पुनः गृहीतको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार मिश्रको ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्त बार मिश्रको ग्रहण करता है। पुनः निरन्तर गृहीतको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार अगृहीतका ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्त बार अगृहीतका ग्रहण करनेपर चतुर्थ परिवर्तन होता है। उसके अनन्तर समयमें विवक्षित नोकर्म पुद्गल परिवर्तनके प्रथम समयमें जो अनन्त नोकर्म समयप्रबद्ध पुद्गल ग्रहण किये थे और द्वितीयादि समयमें जिनकी निर्जरा कर दी गयी थी, वे ही नोकर्म पुद्गल उसी रूपमें ग्रहण किये जाते हैं तो यह सब मिलकर नोकर्म पुद्गल परिवर्तन होता है।

अब कर्मपुद्गलपरिवर्तन कहते हैं—एक समयमें किसी जीवने आठ कर्मरूपसे जो पुद्गल ग्रहण किये और एक समय अधिक आवलीके बीतनेपर द्वितीयादि समयोंमें उनकी निर्जरा कर दी। पूर्वोक्त क्रमसे वे ही पुद्गल उसी प्रकारसे उसी जीवके कर्मपनेको प्राप्त हों तबतकका काल कर्मपुद्गलपरावर्तन कहलाता है। शेष सब विशेष कथन नोकर्म परिवर्तनकी तरह जानना। इन दोनों परिवर्तनोंके काल समान हैं। यहाँ अगृहीत ग्रहणकाल अनन्त होनेपर भी सबसे थोड़ा है। क्योंकि जिन पुद्गलोंका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावका संस्कार नष्ट हो

१. म °मितु गृहीतग्रहणंगलु। २. म °मं कलिदु।

गृहीतंगळोये बहुवारग्रहणं संभविसुगुमेंदितु पेळल्पट्टुदक्कुं ॥ उक्तं च :—

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं ।
पाएण एदि गहणं दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ [ ]

सूक्ष्मस्थितिसंयुक्तं आसन्नं कर्म्मनिर्ज्जरामुक्तं । प्रायेणेति ग्रहणं द्रव्यमनिर्द्दिष्टसंस्थानमिति ॥

अल्पस्थितिसंयुक्तमुं जीवप्रदेशंगळोळिद्दतिर्द्दुवु कर्म्मनिर्ज्जरेयिंदं कर्म्मस्वरूपमं बिडल्पट्टुदुं इंतप्प पुद्गलद्रव्यमनिर्द्दिष्टसंस्थानं विवक्षितपरावर्त्तनप्रथमसमयोक्तस्वरूपमल्लदुदु जीवनिंदं प्रचुरवृत्तियिंदं स्वीकरिसल्पडुगुमेकेंदोडे द्रव्यादिचतुर्व्विधसंस्कारसंपन्नमप्पुदरिंदं । अगृहीतग्रहणकालमं नोडलु मिश्रग्रहणकालमनंतगुणमक्कु । ख ख । मदं नोडलु जघन्यगृहीतग्रहणकालमनंतगुणमक्कु । ख ख ख । मदं नोडलु जघन्यपुद्गलपरिवर्त्तनकालं विशेषाधिकमक्कुमधिकप्रमाणमिदु ख ख ख / ख

इदनपवर्त्तिसि इल्लि कूडिदोडिदु ज = घ ख ख ख । अदं नोडलुत्कृष्ट गृहीतग्रहणकालमनंतगुणमक्कु । ख ख ख ख । मदं नोडलुत्कृष्टपुद्गलपरावर्त्तनकालं विशेषाधिकमक्कुमा विशेषप्रमाणमिदु ख ख ख ख / ख इदनपवर्त्तिसि कूडिदोडिदु । ख ख ख ख । इल्लि अगृहीतमिश्रग्रहणकालंगळो

संभवतीत्युक्तं भवति । उक्तं च —

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं ।
पाएण एदि गहणं दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ १ ॥ [ ]

अल्पस्थितिसंयुक्तं जीवप्रदेशेषु स्थितं निर्जरया विमोचितकर्मस्वरूपं पुद्गलद्रव्यं अनिर्दिष्टसंस्थानं विवक्षितपरावर्तनप्रथमसमयोक्तस्वरूपरहितं जीवेन प्रचुरवृत्त्या स्वीक्रियते । कुतः ? द्रव्यादिचतुर्विधसंस्कारसंपन्नत्वात् । अगृहीतग्रहणकालात् मिश्रग्रहणकालोऽनन्तगुणः । ख ख । ततो जघन्यगृहीतग्रहणकालोऽनन्तगुणः । ख ख ख । ततो जघन्यपुद्गलपरिवर्तनकालो विशेषाधिकः । अधिकप्रमाणमिदं ख ख ख / ख अपवर्त्य तत्र निक्षिप्ते एवं ज = पु । ख ख ख ततः उत्कृष्टगृहीतग्रहणकालः अनन्तगुणः ख ख ख ख । ततः उत्कृष्टपुद्गलपरावर्तनकालो

चुका है उनका बहुत बार ग्रहण नहीं होता है। इससे यह कहा गया है कि विवक्षित पुद्गलपरावर्तनके मध्यमें गृहीतोंका ही बहुत बार ग्रहण होता है। कहा भी है—जो कर्मरूप परिणत पुद्गल थोड़ी स्थितिको लिये हुए जीवके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाह रूपसे स्थित होते हैं और निर्जराके द्वारा कर्मरूपसे छूट जाते हैं, जिनका आकार कहनेमें नहीं आता तथा विवक्षित परावर्तनके प्रथम समयमें जो स्वरूप कहा है उस स्वरूपसे रहित हो वे ही जीवके द्वारा अधिकतर ग्रहण किये जाते हैं। क्योंकि वे द्रव्यादि रूप चार प्रकारके संस्कारसे युक्त होते हैं।

अगृहीत ग्रहणके कालसे मिश्र ग्रहणका काल अनन्तगुणा है। उससे गृहीत ग्रहणका जघन्य काल अनन्तगुणा है। उससे पुद्गल परिवर्तनका जघन्य काल विशेष अधिक है। जघन्य गृहीत ग्रहण कालको अनन्तसे भाजित करनेपर जो प्रमाण आवे उतना उसमें जोड़नेपर जघन्यपुद्गल परिवर्तन काल होता है। उससे उत्कृष्ट गृहीतग्रहणका काल अनन्तगुणा

जघन्योत्कृष्टभावमिल्लमें वितवधरिसल्पडुवुवेकें वोडेतद्विध परमगुरूपदेशाभावमप्पुदरिंदं संदृष्टि :—

ज = घ । ख ख ख उ घ ख ख ख ख
ज = गृ । ख ख ख उ = कृ ख ख ख ख
मिश्र । ख ख मिश्र ख ख
अगृ । ख अगृ । ख

इल्लि अगृहीतक्के संदृष्टिशून्यं मिश्रक्के हंसपदं गृहीतक्कंकमल्लियं शून्यद्वयमुं हंसपदद्वयमुं । अंकद्वयमुं क्रमदिदनंतंगळप्प अगृहीतवारंगळगं मिश्रवारगळगं गृहीतवारंगळगं संदृष्टियक्कुं :—

० ०+	० ० +	० ० १	० ० +	० ० +	० ० १
+ +०	+ + ०	+ + १	+ + ०	+ + ०	+ + १
+ +१	+ + १	+ + ०	+ + १	+ + १	+ + ०
११ +	११ +	११०	११ +	११ +	११०

इल्लिगुपयोगियक्कु मी गाथासूत्रं :—

अगहिदमिस्स य गहिदं मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च ।
मिस्सं गहिदागहिदं गहिदं मिस्सं अगहिदं च ॥

विशेषाधिकः । तद्विशेषप्रमाणमिदं ख ख ख $\frac{१}{ख}$ –, अपवर्त्य निक्षिप्ते एवं ख ख ख १– ख १– । अत्रागृहीतमिश्रग्रहण-कालयोर्जघन्योत्कृष्टभावौ न इत्यवधार्यम् । तथाविधपरमगुरूपदेशाभावात् । सदृष्टि

उ = गृ = ख ख ख १– ख   उ = पु = ख ख ख १– ख १–
ज = गृ = ख ख ख   ज = पु = ख ख ख १–
मिश्र ख ख   ०
अगृहीत ख   ०

अत्रागृहीतस्य संदृष्टिः शून्य मिश्रस्य हंसपदं, गृहीतस्यांकः, अनन्तवारस्य द्विचारः । तत्संदृष्टिः—

० ०+	० ०+	० ०१	० ०+	० ०+	० ०१
+ +०	+ +०	+ +१	+ +०	+ +०	+ +१
+ +१	+ +१	+ +०	+ +१	+ +१	+ +०
१ १+	१ १+	१ १०	१ १+	१ १+	१ १०

अत्रोपयोगिगाथासूत्र—

अगहिदमिस्स गहिद मिस्समगहिद तहेव गहिदं च ।
मिस्स गहिदमगहिद गहिदं मिस्स अगहिद च ॥२॥

है। उससे उत्कृष्ट पुद्गलपरावर्तन काल विशेष अधिक है। उत्कृष्ट गृहीत ग्रहणकालमें अनन्तसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतना उत्कृष्ट गृहीत ग्रहणकालमें मिलानेपर उत्कृष्ट पुद्गलपरावर्तन काल होता है। यहाँ अगृहीत ग्रहणकाल और मिश्रग्रहण कालमें जघन्य और उत्कृष्टपना नहीं है ऐसा जानना क्योंकि उस प्रकारके उपदेशका अभाव है। यहाँ उपयोगी गाथाका अर्थ इस प्रकार है जो द्रव्य परिवर्तनमें स्पष्ट कर आये हैं कि पहला अगृहीतमिश्र गृहीत, दूसरा मिश्र अगृहीत गृहीत, तीसरा मिश्र गृहीत अगृहीत और चतुर्थ गृहीत मिश्र अगृहीत है इस क्रमसे ग्रहण करता है।

१ १ ० ० "सर्व्वेपि पुद्‌गलाः खल्वेकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन। असकृदनंतकृत्वः पुद्गल-
+ ० १ +
० + + १
परिवर्त्तसंसारे।"

क्षेत्रपरिवर्त्तनमुं स्वक्षेत्रपरिवर्तनमेंदुं परक्षेत्रपरिवर्तनमेंदितु द्विविधमक्कुमल्लि। स्वक्षेत्र-परिवर्त्तनं पेळल्पडुगुं। वोंदानुमोव्वं जीवं सूक्ष्मनिगोदजघन्यावगाहनदिदं पुट्टिदातं स्वस्थितियं १/१८ जीविसि मृतनागि मत्तं प्रदेशोत्तरावगाहनदिदं पुट्टि इंतु द्व्यादिप्रदेशोत्तरक्रमदिदं महामत्स्याव-गाहनपर्य्यंतंगळु संख्यातघनांगुल ६१ प्रमितावगाहन विकल्पंगळा जीवनिंदमे येनेवरं स्वीकरि-सल्पडुवुवदेल्लं कूडि स्वक्षेत्रपरिवर्त्तनमक्कुं। परक्षेत्रपरिवर्त्तनमेंतेंदोडे सूक्ष्मनिगोदजीवनऽपर्य्याप्तकं सर्व्वजघन्यावगाहनशरीरमनुळ्ळं लोकमध्याष्टप्रदेशंगळं तन्न शरीरमध्याष्टप्रदेशंगळं माडि पुट्टि क्षुद्रभवकालमं जीविसि मृतनागि आजीवेन मत्तमा अवगाहनदिदमेरडु वारंगळक्कुमंते मूरु वारंगळुमंते

अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं

सर्वेऽपि पुद्‌गलाः खलु एकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन।
ह्यसकृत्त्वनन्तकृत्वा पुद्‌गलपरिवर्तसंसारे॥

१ + ० क्षेत्रपरिवर्तनमपि स्वपरभेदाद्द्वेधा तत्र स्वक्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते—कश्चिज्जीवः सूक्ष्मनिगोदजघ-
+ १ ०
+ ० १
० + १
न्यावगाहनेनोत्पन्नः स्वस्थितिं १/१८ जीवित्वा मृतः पुनः प्रदेशोत्तरावगाहनेन उत्पन्नः। एवं द्व्यादिप्रदेशोत्तरक्रमेण महामत्स्यागाहनपर्यन्ताः सख्यातघनाङ्गुल ६१ प्रमितावगाहनविकल्पाः तेनैव जीवेन यावत्स्वीकृताः तत् सर्वं समुदितं स्वक्षेत्रपरिवर्तनं भवति। परक्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते—सूक्ष्मनिगोद. अपर्याप्तक सर्वजघन्यावगाहनशरीरः लोकमध्याष्टप्रदेशान् स्वशरीरमध्याष्टप्रदेशान् कृत्वा उत्पन्नः। क्षुद्रभवकालं जीवित्वा मृतः। स एव पुनस्तेनैव

उपयोगी आर्याच्छन्दका अर्थ—पुद्‌गलपरिवर्तनरूप संसारमें एक जीवने अनन्त बार सब पुद्गलोंको ग्रहण करके छोड़ दिया है।

क्षेत्रपरिवर्तन भी स्व और परके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें-से स्वक्षेत्रपरिवर्तनको कहते हैं—कोई जीव सूक्ष्मनिगोदकी जघन्य अवगाहनासे उत्पन्न हुआ। अपनी स्थिति श्वासके अठारहवें भाग प्रमाण जीवित रहकर मर गया। पुनः एकप्रदेश अधिक उसी अवगाहनासे उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार दो आदि प्रदेश अधिक अवगाहनाके क्रमसे महामत्स्यकी अवगाहना पर्यन्त संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहनाके विकल्प उसी जीवने जबतक धारण किये वह सब मिलकर स्वक्षेत्र परिवर्तन होता है।

अब परक्षेत्र परिवर्तनको कहते हैं—सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक सबसे जघन्य अवगाहनावाले शरीरके साथ लोकके आठ मध्य प्रदेशोंको अपने शरीरके मध्य आठ प्रदेश बनाकर उत्पन्न हुआ। क्षुद्रभव काल तक जीकर मरा। वही पुनः उसी अवगाहनाके साथ दुबारा, तिबारा, चौबारा उत्पन्न हुआ। इस प्रकार घनांगुलके असंख्यातवें भाग बार वहीं उत्पन्न हुआ। पुनः एक-एक प्रदेश बढ़ाते-बढ़ाते समस्त लोकको अपना जन्मक्षेत्र बना लेता

नाल्कु बारियुमंते इं तेन्नवर घनांगुलासंख्येयभागप्रमिताकाशप्रदेशंगळु अनितु बारंगळं नल्लिये जनिसि मत्तमेकैकप्रदेशाधिकभावदिदं सर्व्वलोकमुं तनगे जन्मक्षेत्रभावमनेय्दिसल्पट्टुदक्कुमेन्नेवरमनितुकालमेल्लं कूडि परक्षेत्रपरिवर्त्तनमक्कुमिल्लिगुपयोगियप्प श्लोकं :—

सर्व्वत्र जगत्क्षेत्रे प्रदेशो न ह्यस्ति जंतुनाऽक्षुण्णः ।
अवगाहनानि बहुशो बंभ्रमता क्षेत्रसंसारे ॥

क्षेत्रसंसारदोळु बंभ्रमिसुवंतप्प जीवनिदं जगच्छ्रेणिघनप्रमितजगत्क्षेत्रदोळु स्वशरीरावगाहरूपदिद मुट्टल्पडद प्रदेशमिल्ल । अवगाहनंगळु बहुवारं कैकोळल्पडवुवुमिल्लि । कालपरिवर्त्तनं पेळल्पडुगुं । उत्सर्प्पिणिय प्रथमसमयदोळु पुट्टिदनावनानुमोर्व्व जीवं स्वायुः परिसमाप्तियोळु मृतनागि मत्तमा जीवने द्वितीयोत्सर्प्पिणिय द्वितीयसमयदोळ्पुट्टिस्वायुःक्षयवशदिदं मृतनागि आ जीवने मत्तमा तृतीयोत्सर्प्पिणिय तृतीयसमयदोळु पुट्टि मृतनागि मत्तमा चतुर्त्थोत्सर्प्पिणिय चतुर्त्थसमयदोळ्पुट्टिदनितु क्रमदिद मुत्सर्प्पिणियसमाप्तमक्कुमंते अवसर्प्पिणियुं समाप्तमादुदक्कुमितु जन्मनैरंतर्यं पेळल्पट्टुदु । मरणक्कमंते नैरंतर्य्यं कैकोळल्पडुगुमिदेल्लमं कूडि कालपरित्तंनमक्कं ।

अवगाहनेन द्विवारं तथा त्रिवारं तथा चतुर्वारं एवं यावत् घनाङ्गुलासंख्येयभाग तावद्वारं तत्रैवोत्पन्नः, पुनः एकैकप्रदेशाधिकभावेन सर्वलोकं स्वस्वजन्मक्षेत्रभावं नयति । तदेतत्सर्वं परक्षेत्रपरिवर्तनं भवति । अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं—

सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशो न ह्यस्ति जन्तुनाऽक्षुण्णः ।
अवगाहनानि बहुशो बभ्रमता क्षेत्रसंसारे ॥

क्षेत्रससारे बम्भ्रमता जीवेन जगच्छ्रेणिघनप्रमितजगत्क्षेत्रे स्वशरीरावगाहनरूपेणास्पृष्टप्रदेशो नास्ति । अवगाहनानि बहुवार यानि न स्वीकृतानि तानि न सन्ति ।

कालपरिवर्तनमुच्यते—कश्चिज्जीवः उत्सर्पिणीप्रथमसमये जातः स्वायुःपरिसमाप्तौ मृत , पुनर्द्वितीयोत्सर्पिणीद्वितीयसमये जातः स्वायुःपरिसमाप्त्या मृतः । पुनः तृतीयोत्सर्पिणीतृतीयसमये जातः तथा मृत., पुनः चतुर्थोत्सर्पिणीचतुर्थसमये जातः । अनेन क्रमेण उत्सर्पिणी समाप्नोति तथैवावसर्पिणीमपि समाप्नोति एवं

है । यह सब परक्षेत्र परिवर्तन है । इस विषयमें उपयोगी आर्याच्छन्दका अभिप्राय इस प्रकार है—क्षेत्र संसारमें भ्रमण करते हुए इस जीवने बहुत-सी अवगाहनाओंके द्वारा समस्त जगत्के क्षेत्रको अपना जन्मस्थान बनाया, कोई क्षेत्र उत्पन्न होनेसे शेष नहीं रहा। ऐसी कोई अवगाहना नहीं रही जो अनेक बार धारण नहीं की।

कालपरिवर्तन कहते हैं—कोई जीव उत्सर्पिणी कालके प्रथम समयमें उत्पन्न हुआ और अपनी आयु समाप्त होनेपर मर गया। पुनः दूसरी उत्सर्पिणीके दूसरे समयमें उत्पन्न हुआ और अपनी आयु समाप्त होनेसे मर गया। पुनः तीसरी उत्सर्पिणीके तीसरे समयमें उत्पन्न हुआ और उसी प्रकार आयु समाप्त होनेपर मरा। पुनः चतुर्थ उत्सर्पिणीके चतुर्थ समयमें उत्पन्न हुआ। इसी क्रमसे उत्सर्पिणीके सब समयोंमें उत्पन्न होकर उत्सर्पिणीको समाप्त करता है तथा इसी क्रमसे अवसर्पिणी कालके सब समयोंमें उत्पन्न होकर अवसर्पिणी समाप्त करता है। इस प्रकार निरन्तर जन्म लेनेका कथन किया। इसी प्रकार क्रमसे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके सब समयोंमें मरण भी करना चाहिए। यह सब काल-

इल्लिगुपयोगियप्पार्य्यावृत्तं :—

उत्सर्प्पणावसर्प्पणसमयावलिकासु निरवशेषासु ।
जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन्कालसंसारे ॥

उत्सर्प्पणावसर्प्पणगळ समयमालेयोळेनितोळवनितु समयंगळोळु यथाक्रमदिं पुट्टिदनुं पो'दिवनुमनंतवारं कालसंसारदोळु परिभ्रमिसुत्तं जीवनुं ।

भवपरिवर्त्तनं पेळल्पडुगुं—नरकगतियोळु सर्व्वजघन्यायुद्दशवर्षसहस्रप्रमितमक्कु मंतप्पायुष्यदिंदमल्लिये पुट्टि पोरमट्टु मत्तं संसारदोळु परिभ्रमिसि या जघन्यायुष्यदिदमल्लिये पुट्टिदनितु दशवर्षसहस्रंगळ समयंगळेनितोळवनितु वारंगळनल्लिये पुट्टिदनुं मृतमादनुं । बळिक्कैकसमयाधिकभावदिदं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमंगळु समाप्तं माडल्पट्टुवु । बळिक्कमा नरकगतियिदं बंदु तिर्य्यग्गतियोळु अंतर्म्मुहूर्त्तजघन्यायुष्यदिदं पुट्टि मुन्निनंतेयंतर्म्मुहूर्त्तसमयंगळेनितोळवनितु वारं पुट्टि मेले समयाधिकभावदिदं त्रिपल्योपमंगळुमा जीवनिंदं परिसमाप्ति माडल्पट्टुविते । मनुष्यगतियोळं त्रिपल्योपमंगळा जीवनिंदमे परिसमाप्ति माडल्पडुवुवु । नरकगतियोळ्पेळ्दंते देवगतियोळं दशवर्षसहस्रसमयसमाप्तियिदं मेले समयोत्तरक्रमायुष्यनागुत्तमेकत्रिंशत्सागरोपमंगळु परि-

---

जन्मनैरन्तर्यमुक्त । मरणस्याप्येवं नैरतर्यं ग्राह्यं । तदेतत्सर्वं कालपरिवर्तनं भवति । अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं—

उत्सर्पणावसर्पणसमयावलिकासु निरवशेषासु ।
जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन् कालसंसारे ॥

उत्सर्पणावसर्पणयो. सर्वसमयमालाया क्रमेण उत्पन्नः मृतश्च अनन्तवारकालसंसारे परिभ्रमन् जीवः ।

भवपरिवर्तनमुच्यते—नरकगतौ सर्वजघन्यायुर्दशसहस्रवर्षाणि तेनायुषा तत्रोत्पन्न पुनः संसारे भ्रान्त्वा तेनैव आयुषा तत्रैवोत्पन्नः । एवं दशसहस्रवर्षसमयवारं तत्रैवोत्पन्नो मृतः । पुनः एकैकसमयाधिकभावेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमाप्यन्ते । पश्चात् तिर्यग्गतौ अन्तर्मुहूर्तायुषा उत्पन्न. प्राग्वत् अन्तर्मुहूर्तसमयवारमुत्पन्न. उपरिसमयाधिकभावेन त्रिपल्योपमानि तेनैव जीवेन परिसमाप्यन्ते । एवं मनुष्यगतावपि त्रिपल्योपमानि तेनैव जीवेन परिसमाप्यन्ते । नरकगतिवद्देवगतावपि दशसहस्रवर्षसमयसमाप्तेरुपरि समयोत्तरक्रमेण एकत्रिंश-

---

परिवर्तन है । इस विषयमें उपयोगी आर्यावृत्तका आशय इस प्रकार है—काल संसारमें अनन्त बार भ्रमण करता हुआ जीव उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके सब समयोंमें क्रमसे उत्पन्न हुआ और मरा ।

भवपरिवर्तन कहते हैं—नरकगतिमें सबसे जघन्य आयु दस हजार वर्ष है । उस आयुसे नरकमें उत्पन्न हुआ । पुनः संसारमें भ्रमण करके उसी आयुसे वहीं उत्पन्न हुआ । इस प्रकार दस हजार वर्षके समयोंकी जितनी संख्या है उतनी बार वहीं उत्पन्न हुआ और मरा । पुनः एक-एक समय बढ़ाते-बढ़ाते तैंतीस सागर पूर्ण किये । फिर तिर्यंचगतिमें अन्तर्मुहूर्तकी आयु लेकर उत्पन्न हुआ । पहलेकी तरह अन्तर्मुहूर्तके जितने समय हैं उतनी बार अन्तर्मुहूर्तकी आयु लेकर उत्पन्न हुआ । फिर एक-एक समयकी आयु बढ़ाते-बढ़ाते उसी जीवने तीन पल्य तक सब आयु भोग डाली । इसी प्रकार मनुष्यगतिमें भी उसी जीवने तीन पल्य तककी सब आयु भोगकर समाप्त की । नरकगतिकी तरह देवगतिमें भी दस हजार वर्षके समयप्रमाण दस हजार वर्षकी आयुसे उत्पन्न होकर उसे भोगनेके पश्चात् एक-एक समयकी आयु क्रमसे बढ़ाते-बढ़ाते इकतीस सागरकी आयु पूर्ण की । इस प्रकार भ्रमण करनेके पश्चात् आकर पुनः पूर्वोक्त जघन्यस्थितिवाला नारकी होकर नया भवपरिवर्तन

समाप्तिमाडल्पट्टुविवु परिभ्रमिसि बंदा जीवं पूर्व्वोक्तजघन्यस्थितियनारकनार्दानितदेल्लमेकभवपरिवर्त्तनमक्कुं। इल्लिगुपयोगियप्पार्य्यावृत्तं।—

नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानेषु।
मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुशः ॥

नरकजघन्यायुष्यं मोदलगोंडु मेरो युपरिग्रैवेयकावसानमादायुष्यस्थितिगळोळु मिथ्यात्वोदयदोळ्कूडिदजीवनिंदं भवस्थितिगळनुभविसल्पट्टुवु बहुवारं हि स्फुटमागि। भावपरिवर्त्तनं पेळल्पडुगुं:—

पंचेंद्रियसंज्ञिपर्य्याप्तकं मिथ्यादृष्टि यावनानुमोव्वं जीवं स्वयोग्यसर्व्वजघन्यज्ञानावरणप्रकृतिस्थितियनंतकोटिकोटियं माळ्कुमा जीवंगे कषायाध्यवसायस्थानंगळसंख्यातलोकप्रमितंगळु षट्स्थानपतितंगळा जघन्यस्थितिगे योग्यंगळप्पुवल्लि सर्व्वजघन्यस्थितिबंधाध्यवसायस्थाननिमित्तंगळु अनुभागबंधाध्यवसायस्थानंगळसंख्यातलोकप्रमितंगळप्पुविवु सर्व्वजघन्यस्थितियनु सर्व्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थानमं सर्व्वजघन्यमनुभागबंधाध्यवसायस्थानमुमं पोर्द्दिदंगे तद्योग्यसर्व्वजघन्यं योगस्थानमक्कुमा स्थितिकषायाध्यवसायानुभागस्थानंगळ्गे द्वितीयमसंख्येयभागवृद्धियुक्तं योग-

त्सागरोपमाणि परिसमाप्यन्ते। एव भ्रान्त्वागत्य पूर्वोक्तजघन्यस्थितिको नारको जायते। तदा तदेतत्सर्वं भवपरिवर्तनं भवति। अत्रोपयोग्यार्यावृत्त—

नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानेषु।
मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुशः ॥

नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानायुष्या स्थितौ मिथ्यात्वोदयाश्रितजीवेन भवस्थितयोऽनुभविता बहुवार स्फुटम्।

भावपरिवर्तनमुच्यते--कश्चित्पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तकमिथ्यादृष्टिर्जीवः स्वयोग्यसर्वजघन्या ज्ञानावरणप्रकृतिस्थितिं अन्तःकोटाकोटिप्रमिता बध्नाति। सागरोपमैककोट्या उपरि द्विवारकोट्या मध्यं अन्तःकोटाकोटिरित्युच्यते। तस्य जीवस्य कषायाध्यवसायस्थानानि असंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि जघन्यस्थितियोग्यानि। तत्र सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थाननिमित्तानि अनुभागाध्यवसायस्थानानि असंख्येयलोकप्रमितानि। एवं सर्वजघन्यस्थितिं सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थानं सर्वजघन्यानुभागबन्धाध्यवसायस्थानं च प्राप्तस्य तद्योग्यसर्वजघन्यं योगस्थानं भवति। तेषामेव स्थितिकषायाध्यवसायानुभागस्थानानां द्वितीयं असंख्येय-

प्रारम्भ करता है। तब यह सब भवपरिवर्तन होता है। इस विषयमें उपयोगी आर्याच्छन्दका अभिप्राय—मिथ्यात्वके उदयसे जीवने नरककी जघन्य आयुसे लेकर उपरिमग्रैवेयक तककी आयुप्रमाण भवस्थितियाँ अनेक बार भोगी।

भावपरिवर्तन कहते हैं—कोई पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीव अपने योग्य सबसे जघन्य ज्ञानावरणकर्मकी अन्तःकोटाकोटी सागर प्रमाण स्थितिका बन्ध करता है। एक कोटि सागरके ऊपर और कोटाकोटी सागरके मध्यको अन्तःकोटिकोटी सागर कहते हैं। उस जीवके जघन्यस्थितिबन्धके योग्य छह प्रकारकी हानिवृद्धिको लिये असंख्यात लोक प्रमाण कषायाध्यवसाय स्थान होते हैं। तथा सर्वजघन्य कषायाध्यवसाय स्थानमें निमित्त असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागाध्यवसाय स्थान होते हैं। इस प्रकार सबसे जघन्य स्थिति, सबसे जघन्य कषायाध्यवसाय स्थान और सबसे जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानको प्राप्त जीवके उसके योग्य सबसे जघन्य योगस्थान होता है। पुनः उन्हीं स्थिति, कषायाध्यवसाय और अनुभागस्थानोंका असंख्यात भागवृद्धिको लिये हुए दूसरा योगस्थान

स्थानमक्कुमितसंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धियेंब चतुःस्थानवृद्धिपतितंगळु श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितंगळप्पुवंते आ स्थितियने या कषायाध्यवसायस्थानमने प्रतिपद्यमानंगे द्वितीयमनुभागबंधाध्यवसायस्थानमक्कुमदक्के योगस्थानंगळु पूर्व्वोक्तंगळेयरियल्पडुवुवु।

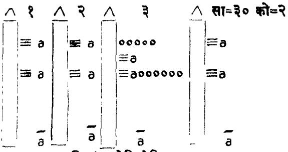
इंतु तृतीयादिगळोळमनुभागाध्यवसायस्थानंगळोळु असंख्यातलोकपरिसमाप्तिपर्य्यंतप्रत्येकं योगस्थानंगळु नडसल्पडुवुवुमिता स्थितिने प्रतिपद्यमानंगे द्वितीयस्थितिबंधाध्यवसायस्थानमक्कुमदक्के अनुभागबंधाध्यवसायस्थानंगळुं योगस्थानंगळुमुंनिनंतेयरियल्पडुवंवितु तृतीयादिस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळोळसंख्यातलोकमात्रपरिसमाप्तिपर्य्यंतमा वृत्तिक्रममरियल्पडुगुः—

भागयुक्तं योगस्थानं भवति। एवमसंख्यातभागवृद्धि-संख्यातभागवृद्धि-संख्यातगुणवृद्धि-असंख्यातगुणवृद्ध्याख्य-चतुःस्थानवृद्धिपतितानि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति। तथा तामेव स्थितिं तदेव कषायाध्यवसायस्थानमास्कन्दतो द्वितीयमनुभागबन्धाध्यवसायस्थानं भवति। तस्यापि योगस्थानानि पूर्वोक्तान्येव ज्ञातव्यानि। एव तृतीयादिष्वपि अनुभागाध्यवसायस्थानेषु असंख्यातलोकपरिसमाप्तिपर्यन्तेषु प्रत्येकं योगस्थानानि नेतव्यानि। एव तामेव स्थितिं बध्नतो द्वितीयं कषायाध्यवसायस्थान भवति। तस्यापि अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च प्राग्वत् ज्ञातव्यानि। एव तृतीयादिकषायाध्यवसायस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रपरिसमाप्तिपर्यन्तेषु आवृत्तिक्रमो ज्ञातव्यः। ततः समयाधिकस्थितेरपि स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि प्राग्वत् असंख्येयलोकमात्राणि भवन्ति। एव समयाधिकक्रमेण उत्कृष्टस्थितिपर्यन्तं त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटिप्रमितस्थितेरपि स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च ज्ञातव्यानि। एवं मूलप्रकृतीना उत्तरप्रकृतीना च परिवर्तनक्रमो ज्ञातव्यः। तदेतत्समुदितं भावपरिवर्तनं भवति। संदृष्टिः—

होता है। इस प्रकार असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि नामक चतुःस्थान वृद्धिको लिये हुए श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान होते हैं। इन समस्त योगस्थानोंके समाप्त होनेपर वही स्थिति, वही कषायाध्यवसाय स्थानको प्राप्त जीवके द्वितीय अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान होता है। उसके भी योगस्थान पूर्वोक्त ही जानना। इस प्रकार तृतीय आदि असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागस्थानोंके भी समाप्ति पर्यन्त प्रत्येक अनुभागस्थानके साथ सब योगस्थान लगाना चाहिए। उनके भी समाप्त होनेपर उसी स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके दूसरा कषायाध्यवसायस्थान होता है। उसके भी अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान और योगस्थान पूर्वकी तरह जानना। इस प्रकार तृतीय आदि असंख्यात लोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थानोंकी समाप्ति पर्यन्त अनुभागस्थानों और योगस्थानोंकी आवृत्ति करना चाहिए। इस प्रकार सबसे जघन्य स्थितिके साथ सबकी आवृत्ति होनेपर एक समय अधिक अन्तःकोटाकोटीकी स्थिति बाँधता है। उसके भी कषायाध्यवसायस्थान, अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान योगस्थान जानना। इस प्रकार एक-एक समय अधिकके क्रमसे उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त तीस कोटा-कोटी सागर प्रमाण स्थितिके भी स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान, अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान और योगस्थान जानना। इसी प्रकार आठों मूल कर्मों और उनकी उत्तर प्रकृतियोंका भी परिवर्तनक्रम जानना। **यह सब मिलकर भाव परिवर्तन है।**

सा = अं = को २
कषायज. ०००≡ə०००००० उ
अनुभागज. ०००≡ə००००० उ
योगस्थानज. ०००≡ə००००० उ

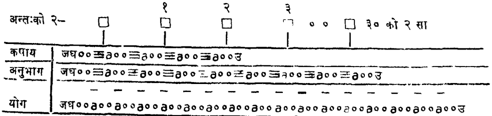
आबाध कालसूचनात्थं दंडस्तस्योपरिस्थितत्रिकोणः तद्ज्ञानावरणद्रव्यनिषेकविन्यासः।



एकसमयाद्यधिकांतःकोटिकोटिरचना

मी पेळल्पट्ट जघन्यस्थितिय समयाधिकमप्पुदर स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळु मुंनिनंतसंख्यातलोकमात्रमक्कुमिन्नु समाधिकक्रमदिदमुत्कृष्टस्थितिपर्य्यंतं त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोटिप्रमितस्थितिय स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळु मनुभागबंधाध्यवसायस्थानंगळु योगस्थानंगळु मरियल्पडुववितेल्ला मूलप्रकृतिगळगमुत्तरप्रकृतिगळगं परिवर्त्तनक्रममरियल्पडुगुमितवेल्लं कूडि भावपरिवर्त्तनमक्कुमिल्लिगुपयोगियप्पार्य्यावृत्तं :—

सर्व्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधयोग्यानि।
स्थानान्यनुभूतानि भ्रमता भुवि भावसंसारे॥



अत्रोपयोग्यार्यावृत्त—

विशेषार्थ—योगस्थान, अनुभाग बन्धाध्यवसायस्थान, कषायाध्यवसायस्थान और स्थितिस्थानोंके परिवर्तनसे भावपरिवर्तन होता है। आत्माके प्रदेशोंके परिस्पन्दको योग कहते हैं। यह प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धमें कारण होता है। इन योगोंके जघन्य आदि स्थानोंको योगस्थान कहते हैं। जिन कषाययुक्त परिणामोंसे कर्मोंमें अनुभागबन्ध होता है उनके जघन्य आदि स्थान अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान हैं। जिन कषाय परिणामोंसे स्थितिबन्ध होता है उनके जघन्य आदि स्थान कषायाध्यवसायस्थान हैं इन्हींको स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान भी कहते हैं। कर्मोंकी स्थितिके जघन्यादि स्थानोंको स्थितिस्थान कहते है। एक-एक स्थितिभेदके बन्धके कारण असख्यात लोक प्रमाण कषायाध्यवसायस्थान होते है। एक-एक कषायाध्यवसायस्थानके असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान होते हैं। एक-एक अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानके जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग योगस्थान होते हैं।

इस परिवर्तनके सम्बन्धमें उपयोगी आर्याछन्दका अभिप्राय इस प्रकार है—

समस्तप्रकृतिस्थितिअनुभागप्रदेशबंधयोग्यंगळप्प स्थितिबंधाध्यवसायानुभागबंधाध्यवसाययोगस्थानंगळेनितोळवनितुं पृथ्वियोळु भावसंसारदोळ्तोळल्व जीवनिंदमनुभविसल्पट्टुवु। इल्लि स्थितिबंधाध्यवसायजघन्यं मोदल्गोंडुत्कृष्टपर्य्यंतमंते अनुभागबंधाध्यवसायजघन्यस्थानमोदल्गोंडुत्कृष्टस्थानपर्य्यंतं योगस्थानंगळ जघन्यं मोदल्गोंडुत्कृष्टस्थानपर्य्यंतं सर्व्वजघन्यस्थितिसंबंधिगळमोदलागि सर्व्वोत्कृष्टस्थितिपर्य्यंतं तत्तत्संबंधिगळं स्थापिसि अक्षसंचारक्रमदिदं भावसंसारदोळनुभविसल्पट्ट स्थितिबंधाध्यवसायादिगळमं साधिसुवुदेंबुदर्थं।

इल्लि एकपुद्गलपरिवर्तनकालमनंतमक्कुमदं नोडलु क्षेत्रपरिवर्त्तनकालमनंतगुणं अदं नोडलु कालपरिवर्त्तनवारंगळनंतगुणमदं नोडलु भवपरिवर्त्तनकालमनंतगुणमदं नोडलुं भावपरिवर्त्तनकालमनंतगुणमक्कुमिल्लि संदृष्टिरचनेयिदु :—भाव। ख ख ख ख ख

भव। ख ख ख ख

काल। ख ख ख

क्षेत्र। ख ख

द्रव्य। ख

ओर्व्वं जीवंगे अतीतकालदोळु भावपरिवर्त्तनवारंगळु अनंतंगळु। ख। अदं नोडलु भवपरिवर्त्तनवारंगळनंतगुणंगळवं नोडलु कालपरिवर्तनवारंगळु अनंतगुणंगळवं नोडलु क्षेत्रपरिवर्त्तनवारंगळु अनंतगुणंगळवं नोडलु द्रव्यपरिवर्त्तनवारंगळनंतगुणंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धयोग्यानि।
स्थानान्यनुभूतानि भ्रमता भुवि भावसंसारे॥

अत्र स्थितिबन्धाध्यवसायजघन्यात्तदुत्कृष्टपर्यन्तानि पुनः अनुभागबन्धाध्यवसायजघन्यात्तदुत्कृष्टपर्यन्तानि योगस्थानजघन्यात्तदुत्कृष्टपर्यन्तानि च सर्वजघन्यस्थितिमंबन्धीनि आदिं कृत्वा सर्वोत्कृष्टस्थितिपर्यन्तं तत्तत्सबन्धीनि संस्थाप्य अक्षसंचारक्रमेण भावसंसारे अनुभूतस्थित्यादिस्थितिबन्धाध्यवसायादीन् साधयेदित्यर्थः। अत्रैकपुद्गलपरावर्तनकालः अनन्तः। ततः क्षेत्रपरिवर्तनकालः अनन्तगुणः। अतः कालपरिवर्तनकालः अनन्तगुण, ततो भवपरिवर्तनकालः अनन्तगुणः। ततो भावपरिवर्तनकालः अनन्तगुण.। संदृष्टिः—

भाव ख ख ख ख ख

भव ख ख ख ख

काल ख ख ख

क्षेत्र ख ख

द्रव्य ख

एकजीवस्य अतीतकाले भावपरिवर्तनवारा अनन्ताः। तेभ्यः भवपरिवर्तनवारा अनन्तगुणाः। तेभ्यः क्षेत्रपरिवर्तनवारा अनन्तगुणाः। तेभ्यः द्रव्यपरिवर्तनवारा अनन्तगुणाः। संदृष्टिः—

'भावसंसारमें भ्रमण करते हुए जीवने सब प्रकृतियोंके स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धके योग्य स्थानोंका अनुभव किया।'

सबसे जघन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त तत्सम्बन्धी स्थिति बन्धाध्यवसायस्थान, अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान और योगस्थान जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट पर्यन्त स्थापित करके जैसे पहले प्रमादोंमें अक्षसंचार कहा है उसी क्रमसे भावसंसारमें अनुभूत स्थिति आदि सम्बन्धी स्थिति बन्धाध्यवसाय आदिको साधना चाहिए।

यहाँ एक पुद्गलपरावर्तन काल सबसे थोड़ा अर्थात् अनन्त है। उससे क्षेत्रपरिवर्तन काल अनन्त गुणा है। उससे कालपरिवर्तनका काल अनन्त गुणा है। उससे भवपरिवर्तनका काल अनन्त गुणा है। उससे भावपरिवर्तनकाल अनन्त गुणा है। इसीसे एक जीवके अतीत

द्रव्य, ख ख ख ख ख
क्षेत्र, ख ख ख ख
काल, ख ख ख
भव, ख ख
भाव, ख

इल्लिगुपयोगियप्पार्य्यावृत्तमिदु ।

"पंचविधे संसारे कर्म्मवशाज्जैनर्दाशतं मुक्तेः ।
मार्ग्गमपश्यन् प्राणी नानादुःखाकुले भ्रमति ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरुमंडलाचार्य्यमहावादवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्तिजीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणेयोळु षोडशं भव्यमार्ग्गणाधिकार व्याकृतमाय्तु ॥

द्रव्य ख ख ख ख ख
क्षेत्र ख ख ख ख
काल ख ख ख
भव ख ख
भाव ख

अत्रोपयोगि आर्यावृत्तमाह—

पञ्चविधे संसारे कर्मवशाज्जैनर्दाशतं मुक्ते. ।
मार्गमपश्यन् प्राणी नानादुःखाकुले भ्रमति ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रकृतायां गोम्मटसारपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु भव्यमार्गणाप्ररूपणानाम षोडशोऽधिकारः ॥१६॥

कालमें भावपरिवर्तन सबसे थोड़े हुए अर्थात् अनन्त बार हुए। उनसे भवपरिवर्तन अनन्त गुणी बार हुए।

उनसे कालपरिवर्तन अनन्तगुणी बार हुए। क्षेत्रपरिवर्तन उनसे भी अनन्तगुणी बार हुए और द्रव्यपरिवर्तन उनसे अनन्त गुणी बार हुए। यहाँ उपयोगी आर्याछन्दका अभिप्राय कहते हैं—जिनमतके द्वारा दिखाये गये मुक्तिके मार्गका श्रद्धान न करता हुआ प्राणी अनेक प्रकारके दुःखोंसे भरे पाँच प्रकारके संसारमें भ्रमण करता है।

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डके अन्तर्गत भव्य प्ररूपणाओंमें-से भव्यमार्गणा प्ररूपणा नामक सोलहवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

अथ सम्यक्त्वमार्गणा ।।१७।।

अनंतरं सम्यक्त्वमार्ग्गणाप्ररूपणमं पेळ्दपं :—

छप्पंचणवविहाणं अट्ठाणं जिणवरोवइट्ठाणं ।
आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं ।।५६१।।

षट्पंचनवविधानामर्थानां जिनवरोपदिष्टानां । आज्ञयाधिगमेन च श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वं ।।

द्रव्यभेर्दाद षड्विधंगळप्प अस्तिकायभेर्दाददं पंचविधंगळप्प पदार्त्थभेर्दाददं नवविधंगळप्प सर्व्वज्ञवीतरागभट्टारकरुगळिद पेळल्पट्ट जीवादिवस्तुगळ श्रद्धानं रुचिः सम्यक्त्वमक्कुमा श्रद्धानमावतेर्रादंदमें दोडे आज्ञेयिदमाज्ञेयें बुदें तें दोडे "प्रमाणादिभिर्विना आप्तवचनाश्रयेणैष निर्णय आज्ञा" एंदें ब आज्ञेयिदं मेणधिगर्मादंदमधिगमें बुदें तें दोडे "प्रमाणनयनिक्षेपनिरुक्त्यनुयोगद्वारैर्विशेषनिर्णयोऽधिगमः" एंदितप्पधिगमर्नादंदं जिनवरोपदिष्ट जीवादिवस्तुश्रद्धानं सम्यक्त्वमक्कुमा सम्यक्त्वमुं

सरागवीतरागात्मविषयत्वात् द्विधा स्मृतं ।
प्रशमादिगुणं पूर्व्वं परं चात्मविशुद्धितः ।।" —[सो. उ. २२७ श्लो.]

कुन्थ्वादिजन्मिनां जन्मजरामृत्युविनाशिने ।
सद्बोधसिन्धुचन्द्राय नमः कुन्थुजिनेशिने ।।१७।।

अथ सम्यक्त्वमार्गणामाह—

द्रव्यभेदेन षड्विधानां अस्तिकायभेदेन पञ्चविधाना पदार्थभेदेन नवविधाना च सर्वज्ञोक्तजीवादिवस्तूनां श्रद्धानं रुचिः सम्यक्त्वम् । तच्छ्रद्धानं आज्ञया प्रमाणादिभिर्विना आप्तवचनाश्रयेण[1] ईषन्निर्णयलक्षणया, अथवा अधिगमेन प्रमाणनयनिक्षेपनिरुक्त्यनुयोगद्वारैः विशेषनिर्णयलक्षणेन भवति ।

सरागवीतरागात्मविषयत्वाद् द्विधा स्मृतम् । प्रशमादिगुण पूर्वं पर चात्मविशुद्धिजम् ।।१।।

सम्यक्त्व मार्गणाका कथन करते हैं—

द्रव्यभेदसे छह प्रकारके, पंचास्तिकायके भेदसे पाँच प्रकारके और पदार्थभेदसे नौ प्रकारके जो जीव आदि वस्तु सर्वज्ञदेवने कहे है, उनका श्रद्धान रुचि सम्यक्त्व है। उनका श्रद्धान आज्ञासे अर्थात् प्रमाण आदिके बिना आप्तके वचनोंके आश्रयसे किंचित् निर्णयको लिये हुए होता है अथवा प्रमाण नय निक्षेप निरुक्ति अनुयोगके द्वारा विशेष निर्णयरूप अधिगमसे होता है। सरागी आत्मा और वीतरागी आत्माके सम्बन्धसे सम्यग्दर्शनके दो भेद हैं—सराग और वीतराग। सराग सम्यग्दर्शनके गुण प्रशम संवेग अनुकम्पा आदि हैं और वीतराग सम्यग्दर्शन आत्माकी विशुद्धिरूप होता है। आप्तमें, व्रतमें, श्रुतमें और तत्त्वमें जो चित्त 'ये हैं' इस प्रकारके भावसे युक्त होता है उसे आस्तिकोंने सम्यक्त्वसे

1. ब प्रवचनाश्रयेण ।

तत्सम्यक्त्वं सरागवीतरागात्मविषयत्वदिदं द्विप्रकारदरिमें यल्पडुगुं। पूर्व्वं मोदल सरागात्मविषयसम्यक्त्वं प्रशमादिगुणं प्रशमसंवेगानुकंपास्तिक्याभिव्यक्तियोळ्कूडिवुदु । परं द्वितीयं वीतरागात्मविषयसम्यक्त्वं आत्मविशुद्धितः प्रतिपक्षप्रक्षयजनितजीवविशुद्धियिंदमादुदु। आस्तिक्यमें बुदेनें दोडे :—

'आप्ते व्रते श्रुते तत्त्वे चित्तमस्तित्वसंयुतं।
आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं सम्यक्त्वेन युते नरे ॥ —[सो उ. २३१ श्लो.]

अथवा तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं अथवा तत्वरुचिः सम्यक्त्वं ॥

"प्रदेशप्रचयात्कायाः द्रवणात् द्रव्यनामकाः।
परिच्छेद्यत्वतस्तेऽर्थास्तत्वं वस्तुस्वरूपतः ॥" —[ ]

एंदितिदु सामान्यदिं पंचास्तिकायषड्द्रव्य नवपदार्थंगळगे लक्षणमक्कुं।

अनंतरं षड्द्रव्यंगळगधिकारनिर्द्देशमं माडिदपं :—

छद्दव्वेसु य णामं उवलक्खणुवाय अत्थणे कालो।
अत्थणखेत्तं संखा ठाणसरूवं फलं च हवे ॥५६२॥

षड्द्रव्येषु च नामानि उपलक्षणानुवादः आसने कालः। आसनक्षेत्रं संख्यास्थानस्वरूपं फलं च भवेत् ॥

षड्द्रव्यंगळोळु नामंगळुमुपलक्षणानुवादमुं स्थितियुं क्षेत्रमुं संख्येयुं स्थानस्वरूपमुं फलममें बितु सप्ताधिकारंगळप्पुवु।

'यथोद्देशस्तथा निर्द्देशः' एंबी न्यायदिदं प्रथमोद्दिष्ट नामाधिकारमं पेळदपं :—

आप्ते व्रते श्रुते तत्त्वे चित्तमस्तित्वसंयुतम्। आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं सम्यक्त्वेन युते नरे ॥२॥
अथवा तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। अथवा तत्त्वरुचि· सम्यक्त्वम्।
प्रदेशप्रचयात्काया द्रवणाद् द्रव्यनामकाः। परिच्छेद्यत्वतस्तेऽर्थाः तत्त्वं वस्तुस्वरूपत· ॥१॥
इति सामान्येन पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यनवपदार्थानां लक्षणम् ॥५६१॥ अथ षड्द्रव्याणामधिकारान्निदिशति—

षड्द्रव्येषु नामानि उपलक्षणानुवादः स्थितिः क्षेत्रं संख्या स्थानस्वरूप फलं चेति सप्ताधिकारा भवन्ति ॥५६२॥ अथ प्रथमोद्दिष्टनामाधिकारमाह—

युक्त मनुष्यका आस्तिक्य गुण कहा है। अथवा तत्त्वार्थके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं अथवा तत्त्वोंमें रुचिको सम्यक्त्व कहते हैं। प्रदेशोंके समूह रूप होनेसे काय कहलाते हैं। गुण और पर्यायोंको प्राप्त करनेसे द्रव्य नामसे कहे जाते हैं। जीवके द्वारा जाननेमें आनेसे अर्थ कहलाते हैं और वस्तुस्वरूपके कारण तत्त्व कहलाते हैं। यह सामान्यसे पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य और नौ पदार्थोंका लक्षण है ॥ ५६१ ॥

छह द्रव्योंके अधिकारोंको कहते हैं—

छह द्रव्योंके सम्बन्धमें नाम, उपलक्षणानुवाद, स्थिति, क्षेत्र, संख्या, स्थान, स्वरूप और फल ये सात अधिकार होते हैं ॥ ५६२ ॥

प्रथम उद्दिष्ट नाम अधिकार को कहते हैं—

जीवाजीवं दव्वं रूवारूविंत्ति होदि पत्तेयं ।
संसारत्था रूवा कम्मविमुक्का अरूवगया ॥५६३॥

जीवाजीवद्रव्ये रूपारूपिणेति भवतः प्रत्येकं । संसारस्था रूपाः रूपाण्येषां संतीति रूपाः कर्म्मविमुक्ता अरूपगताः ॥

सामान्यदिदं संग्रहनयापेक्षेयिदं द्रव्यमों दु । अदं भेदिसिदोडे जीवद्रव्यमें दु अजीवद्रव्यमें दु द्विविधमक्कुमल्लि जीवद्रव्यं रूपि जीवद्रव्यमें दुमरूपिजीवद्रव्यमें दु द्विविधमप्पुवल्लि संसारस्थंगळु रूपिजीवद्रव्यंगळप्पुवु । कर्म्मविमुक्तसिद्धपरमेष्ठिजीवंगळु अरूपगतजीवद्रव्यंगळप्पुवु । अजीवद्रव्यमुं रूप्यजीवद्रव्यमें दुमरूप्यजीवद्रव्यमें दु द्विविधमक्कु ।

अज्जीवेसु य रूवी पोग्गलदव्वाणि धम्म इदरो वि ।
आगासं कालो वि य चत्तारि अरूविणो होंति ॥५६४॥

अजीवेषु च रूपीणि पुद्गलद्रव्याणि धर्म्मं इतरोपि च । आकाशं कालोपि च चत्वार्य्यरूपीणि भवंति ॥

अजीवद्रव्यंगळोळु पुद्गलद्रव्यंगळु रूपिद्रव्यंगळप्पुवु । इल्लि

"वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत् ।
कुर्व्वंति स्कंधवत्तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः ॥" [ ]

एंदितु परमाणुगळ्गं पुद्गलत्वमुंटागुत्तं विरलु द्विप्रदेशादि स्कंधंगळ्गेये ग्रहणमक्कुमेकें बोडे प्रदेशपूरणगलनरूपदिदं द्रवति द्रोष्यंति अदुद्रुवन्निति पुद्गलद्रव्यमें दितु द्व्यणुकादिस्कंधंगळ्गेये पुद्गलशब्दवाच्यत्वं यथावत्तागि संभविसुगुमप्पुदरिदं परमाणुविगे "षट्केन युगपद्योगात्परमाणोः

सामान्येन सग्रहनयापेक्षया द्रव्यमेकम् । तदेव भेदविवक्षया जीवद्रव्य अजीवद्रव्यं च । तत्र जीवद्रव्यं रूप्यरूपि च । तत्र संसारस्था. रूपिणः, कर्मविमुक्ताः सिद्धा अरूपिणो भवन्ति । अजीवद्रव्यमपि रूप्यरूपि च ॥५६३॥

अजीवेषु पुद्गलद्रव्याणि रूपीणि भवन्ति धर्मद्रव्यं तथा अधर्मद्रव्यं आकाशद्रव्यं कालद्रव्यं चेति चत्वारि अरूपीणि भवन्ति । अत्र "वर्णगन्धरसस्पर्शैः पूरणं गलन च यत् । कुर्वन्ति स्कन्धवत् तस्मात्पुद्गला. परमाणवः" इत्येव परमाणूना पुद्गलत्वे द्व्यणुकादीनामेव कथं ? प्रदेशपूरणगलनरूपेण द्रवन्ति द्रोष्यन्ति अदुद्रवन्निति ब्रूमः । ननु—

सामान्यसे संग्रहनयकी अपेक्षा द्रव्य एक है । भेदविवक्षासे दो प्रकारका है—जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य । उसमें जीव द्रव्यके दो प्रकार हैं—रूपी और अरूपी । संसारी जीव रूपी है और कर्मोंसे मुक्त सिद्ध अरूपी हैं । अजीव द्रव्य भी रूपी और अरूपी होता है ॥ ५६३ ॥

अजीवोंमें पुद्गल द्रव्य रूपी होते हैं । धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये चार अरूपी हैं ।

शंका—कहा है कि 'परमाणु स्कन्धकी तरह वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शके द्वारा पूरण गलन करते हैं अतः वे पुद्गल हैं' इस प्रकार परमाणुको पुद्गल कहनेपर द्व्यणुक आदिमें पुद्गलपना कैसे घटित होता है ?

समाधान—द्व्यणुक आदि प्रदेशोंके पूरण गलन रूपके द्वारा अन्य परमाणुओंको प्राप्त

षडंशता । षण्णां समानदेशित्वे पिंडं स्यादणुमात्रकम् ।।" [ ] एंदितु पूर्व्वपक्षमं माडुत्तिरलु द्रव्यार्त्थिकनयदिवं निरंशत्वमुं पर्य्यायार्त्थिकनयदिदं षडंशतेयक्कुमें दितु परिहारं पेळल्पट्टुदु ।

"आद्यंतरहितं द्रव्यं विश्लेषरहितांशकं ।
स्कंधोपादानमत्यक्षं परमाणुं प्रचक्षते ।।" [ ]

आद्यंतरहितं आवियुमवसानमुमिल्लदुदुं द्रव्यं गुणपर्य्यायंगळनुळ्ळुदुं विश्लेषरहितांशकं बेक्केयलिल्लद अंशमनुळ्ळुदुं स्कंधोपादानं स्कंधक्के कारणमप्पुदुं अत्यक्षं इंद्रियविषयमल्लदुदुं परमाणुं प्रचक्षते परमाणुवेंदुवक्तव्यमागि [1]परमागमज्ञरु पेळ्वरु । नामाधिकारं तिद्दुदु ।

उवजोगो वण्णचऊ लक्खणमिह जीवपोग्गलाणं तु ।
गदिठाणोग्गहवट्टणकिरियुवयारो दु धम्मचऊ ।।५६५।।

उपयोगो वर्णचतुष्कं लक्षणमिह जीवपुद्गलयोस्तु । गतिस्थानावगाहवर्त्तनक्रियोपकारस्तु धर्म्मचतुर्णां ।।

उपयोगमुं वर्णचतुष्कमुं यथासंख्यमागिह परमागमदोळु जीवंगळ्गं पुद्गलंगळ्गं लक्षणमक्कुं । तु मत्ते गतिस्थानावगाहवर्त्तनक्रियेगळेंबुपकारंगळु तु मत्ते यथासंख्यमागि धर्म्माधर्म्माकाशकालंगळेंब नाल्कुं द्रव्यंगळ लक्षणमक्कुं ।

षट्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता ।
षण्णां समानदेशित्वे पिण्डं स्यादणुमात्रकम् ॥

[2]सत्यं, द्रव्यार्थिकनयेन निरंशत्वेऽपि परमाणो पर्यायार्थिकनयेन षडंशत्वे दोषाभावात् ।

आद्यन्तरहितं द्रव्यं विश्लेषरहितांशकम् ।
स्कन्धोपादानमत्यक्षं परमाणुं प्रचक्षते ।।

।।५६४।। इति नामाधिकारः ।

उपयोगः जीवानां, तु—पुनः वर्णचतुष्कं पुद्गलानां, इह परमागमे लक्षणं भवति । गतिस्थानावगाहनवर्तनक्रियाख्याः उपकाराः । तु—पुनः यथासंख्यं धर्माधर्माकाशकालानां लक्षणं भवति ।।५६५।।

करते हैं, प्राप्त करेंगे और पहले प्राप्त कर चुके हैं इस व्युत्पत्तिके अनुसार द्वयणुकादिमें भी पुद्गलपना घटित होता है।

शंका—यदि परमाणु एक साथ छह दिशामें छह परमाणुओंसे सम्बन्ध करता है तो परमाणु छह अंशवाला सिद्ध होता है । यदि छहों समान देश वाले माने जाते हैं तो छह परमाणुओंका पिण्ड परमाणु मात्र सिद्ध होता है ?

समाधान—आपका कथन यथार्थ है, द्रव्यार्थिकनयसे यद्यपि परमाणु निरंश है किन्तु पर्यायार्थिकनयसे उसके छह अंशवाला होनेमें कोई दोष नहीं है। जो द्रव्य आदि और अन्तसे रहित है, जिसके अंश कभी भी अलग नहीं होते, जो स्कन्धका उपादान कारण तथा अतीन्द्रिय है उसे परमाणु कहते हैं ।। ५६४ ।।

इस प्रकार नामाधिकार समाप्त हुआ ।

परमागममें जीवका लक्षण उपयोग और पुद्गलोंका लक्षण वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श कहा है। तथा यथाक्रमसे गतिरूप उपकार, स्थानरूप उपकार, अवगाहनरूप उपकार और वर्तनाक्रियारूप उपकार धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्यका लक्षण है ।।५६५।।

१. म परमागमं पेळ्वुदु । २. ब सत्यं पर्या° ।

गदिठाणोग्गहकिरिया जीवाणं पोग्गलाणमेव हवे ।
धम्मतिये ण हि किरिया मुक्खा पुण साधगा होंति ॥५६६॥

गतिस्थानावगाहक्रियाः जीवानां पुद्गलानामेव भवेयुः । धर्म्मत्रये न हि क्रियाः मुख्या पुनः साधका भवंति ॥

गतिस्थानावगाहक्रियेगळें बी मूरुं जीवंगळ्गं पुद्गलंगळ्गेयप्पुवु । धर्म्मत्रये धर्म्माधर्म्माकाशंगळें बी मूरुं द्रव्यंगळोळु न हि क्रिया क्रियेयिल्लेकें दोडे स्थानचलनमुं प्रदेशचलनमुमिल्लमप्पुदरिंदं । पुनः मत्तेनें दोडे धर्म्मादिद्रव्यंगळु गत्यादिगळ्गे मुख्यसाधकंगळप्पुवु अवें तें दोडे :—

जत्तस्स पहं ठत्तस्स आसणं णिवसगस्स वसदी वा ।
गदिठाणोग्गहकरणे धम्मतियं साधगं होदि ॥५६७॥

गच्छतः पंथाः तिष्ठतः आसनं निवसकस्य वसतिरिव गतिस्थानावगाहकरणे धर्म्मत्रयं साधकं भवति ॥

नडेवंगे बट्टेयुं कुळ्ळिर्प्पवंगासनमुं इर्प्पवंगे निवासमुमें विंतु गतिस्थानावगाहकरणदोळु साधकंगळप्पुवंते धर्म्मत्रयमुं गमनादिकरणदोळु साधकमक्कुं । कारणमक्कुमें बुदर्थं ।

वत्तणहेदू कालो वत्तणगुणमविय दव्वणिचयेसु ।
कालाधारेणेव य वट्टंति सव्वदव्वाणि ॥५६८॥

वर्त्तनाहेतुः कालो वर्त्तनगुणोपि च द्रव्यनिचयेषु । कालाधारेणैव वर्त्तंते सर्व्वद्रव्याणि ॥

[1]णिजंतमप्प वृतु ई धातुविनत्तणिदं कम्मंदोळं भावदोळं स्त्रीलिंगदोळं वर्त्तना एंदितु शब्दस्थितियक्कु । वर्त्यते वर्त्तनमात्रं वा वर्त्तना । धर्म्मादिद्रव्यंगळगे स्वपर्यायनिर्वृत्तियं कुरुत्तु

गतिस्थानावगाहनक्रियास्तिस्रः जीवपुद्गलयोरेव भवन्ति, धर्माधर्माकाशेषु क्रिया नहि स्थानचलनप्रदेशचलनयोरभावात् । किं तर्हि ? धर्मादिद्रव्याणि गत्यादीनां मुख्यसाधिकानि भवन्ति ॥५६६॥ तद्यथा—

गच्छतः पन्थाः, तिष्ठतः आसने, निवसतो निवासो, यथा गतिस्थानावगाहकरणे साधका भवन्ति तथा धर्मादित्रयमपि साधकं कारणमित्यर्थः ॥५६७॥

णिजन्तात् वृतुञ्धातोः कर्मणि भावे वा वर्तनाशब्दव्यवस्थितिः वर्त्यते वर्तनमात्रं वेति । धर्मादि-

गति, स्थिति और अवगाह ये तीन क्रियाएँ जीव और पुद्गलमें ही होती हैं। धर्म, अधर्म और आकाशमें क्रिया नहीं है क्योंकि न तो ये अपने स्थानको छोड़कर अन्य स्थानमें जाते हैं और न इनके प्रदेशोंमें ही चलन होता है। किन्तु ये धर्मादि द्रव्य, गति आदि क्रियाओंमें मुख्य साधक होते हैं ॥ ५६६ ॥

वही कहते है—

जैसे जाते हुएको मार्ग, बैठनेवालेको आसन, निवास करनेवालेको निवासस्थान, चलने, ठहरने, अवगाह करनेमें साधक होता है उसी तरह धर्मादि तीन द्रव्य भी सहायक कारण होते हैं ॥ ५६७ ॥

णिजंत वृतञ् धातुसे कर्ममें अथवा भावमें वर्तना शब्द निष्पन्न होता है। सो वर्ते या वर्तन मात्र वर्तना है। धर्मादि द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायोंकी निर्वृतिके प्रति स्वयं ही

१. म वृत्तिगे णिजंतदत्तणिद ।

तम्मिदमे वर्त्तिसुत्तिर्प्पवक्के बाह्योपग्रहमिल्लदे तद्वृत्त्यसंभवमप्पुदरिंदमा द्रव्यंगळ प्रवर्त्तनोपलक्षितं कालमें दितु माडिवर्त्तने कालदुपकारमक्कुमें दरियल्पडुवुदु। इल्लि णिच्चिगर्त्थमावुदें दोडे वर्त्तते द्रव्यपर्य्यायस्तस्य वर्त्तयिता कालः एंदितु कालक्कर्त्थमादोडे कालक्के क्रियावत्वमागि बक्कुमें तीगळु अधीते शिष्यः उपाध्यायोध्यापयति एंबंते कर्तृत्वमक्कुमें दोडिल्लि दोषमिल्लेकें दोडे निमित्तमात्र-मादोडं हेतुकर्तृ व्यपदेशं काणल्पट्टुदुं। यें तीगळु कारिषोग्निरध्यापयति एंदितु कालक्के हेतुकर्तृ-तेयक्कुमंतादोडा कालमें तु निश्चयिसल्पडुगुमे दोडे समयाधिकक्रियाविशेषंगळ्गं समयादिनिर्व्वर्त्यं-गळप्प पाकादिगळ्गं समयमें वुं पाकमें दितित्येवमादि स्वसंज्ञारूढिसद्भावदोळं समयः कालः ओदनपाककालः एंदिलध्यारोपिसल्पडुत्तिर्द्दुदावुदों दु कालव्यपदेशनिमित्तमप्प मुख्यकालदस्तित्वमं पेळगुमेकें दोडे गौणक्के मुख्यापेक्षत्वमुंटप्पुदरिंदं। षड्द्रव्यंगळवर्त्तनाकारणं मुख्यकालमक्कुमा वर्त्तन-गुणमुं द्रव्यनिचयंगळोळे अक्कुमंतादोडमा कालाधारदिंदमे सर्व्वद्रव्यंगळुं वर्त्तंते। परिणमंति स्वपर्य्यायंगळिदं परिणमिसुतिर्प्पवु खलु नियमदिदं इल्लि खलुशब्दमवधारणात्र्थमक्कुं। इवरिंदं कालक्के परिणामक्रियापरत्वापरत्वोपकारगळुं पेळल्पट्टवु।

द्रव्याणा स्वपर्यायनिर्वृत्तिं प्रति स्वयमेव वर्तमानाना बाह्योपग्रहाभावे तद्वृत्त्यसभवात् तेषा प्रवर्तनोपलक्षितः काल इति कृत्वा वर्तना कालस्य उपकारो ज्ञातव्य.। अत्र णिचोऽर्थः क ? वर्वते द्रव्यपर्यायः तस्य वर्तयिता काल इति। तदा कालस्य क्रियावत्त्व प्रसज्यते अधीते शिष्य., उपाध्यायोऽध्यापयतीत्यादिवत्, तन्न-निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृत्वदर्शनात् कारीषोऽग्निरध्यापयतीत्यादिवत्। तर्हि स कथं निश्चीयते ? समयादिक्रिया-विशेषाणा समय इत्यादेः समयादिनिर्वर्त्यपाकादीना पाक इत्यादेश्च स्वसंज्ञाया. रूढिसद्भावेऽपि तत्र काल इति यदध्यारोप्यते तन्मुख्यकालास्तित्व कथयति गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात् इति षड् द्रव्याणा वर्तनाकारण मुख्यकालः। वर्तनगुणो द्रव्यनिचये एव, तथा सति कालाधारेणैव सर्वद्रव्याणि वर्तन्ते स्वस्वपर्यायैः परिणमन्ति खलु नियमेन। अत्र खलुशब्दोऽवधारणार्थ, अनेन कालस्यैव परिणामक्रियापरत्वापरत्वोपकारौ उक्तौ। तौ तु जीवपुद्गल-योर्दृश्येते धर्मादि-अमूर्तद्रव्येषु कथं ? इति चेदाह—

वर्तन करते है किन्तु बाह्य उपकारके बिना वह सम्भव नहीं है अतः उनकी वर्तनामें जो निमित्त मात्र होता है वह काल है। ऐसा करके वर्तना कालका उपकार जानना। यहाँ णिच् प्रत्ययका अर्थ है—द्रव्यकी पर्याय वर्तन करती है उसका वर्तन करानेवाला काल है।

शंका—तब तो कालको क्रियावान् होनेका प्रसंग आता है। जैसे शिष्य पढ़ता है और उपाध्याय पढ़ाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि निमित्त मात्रमें भी हेतुकर्तापना देखा जाता है, जैसे (रात्रिके समयमें) कण्डेकी आग पढ़ाती है।

शंका—उस कालके अस्तित्वका निश्चय कैसे होता है ?

समाधान—समय, घड़ी, मुहूर्त आदि जो क्रिया विशेष हैं उनमें जो समय आदिका व्यवहार किया जाता है, समय आदिसे होनेवाले पकाने आदिको जो समयपाक इत्यादि कहा जाता है इन रूढ़ संज्ञाओंमें जो कालका आरोप है वह मुख्य कालके अस्तित्वको कहता है क्योंकि उपचरित कथन मुख्य कथनकी अपेक्षा रखता है। इस प्रकार छह द्रव्योंकी वर्तना-का कारण मुख्यकाल है। यद्यपि वर्तना गुण द्रव्यसमूहमें ही वर्तमान है उन्हींमें वह शक्ति है तथापि कालके आधारसे ही सब द्रव्य वर्तन करते हैं अर्थात् अपनी-अपनी पर्याय रूपसे परिणमन करते हैं। यहाँ खलु अवधारणार्थक है। इससे परिणाम क्रिया और परत्व,

जीवपुद्गलंगळोळु परिणामादिपरत्वापरत्वंगळु काणलपडुगुं । धर्म्माद्यमूर्त्तद्रव्यंगळोळु परिणामादिगळें तें दोडे पेळ्दपं :—

धम्माधम्मादीणं अगुरुगलहुगं तु छहिहि वड्ढीहिं ।
हाणीहि वि वड्ढंतो हायंतो वट्टदे जम्हा ॥५६९॥

धर्म्माधर्म्मादीनां अगुरुलघुकस्तु षड्भिरपि वृद्धिभिर्हानिभिरपि वर्द्धमानो हीयमानो वर्त्तते यस्मात् ॥

आवुदों दु कारणर्दिदं धर्म्माधर्म्मादिद्रव्यंगळ अगुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदंगळु स्वद्रव्यत्वक्के निमित्तमप्प शक्तिविशेषंगळु षड्वृद्धिगळिदं षड्हानिगळिदं वर्द्धमानंगळु हीयमानगळुमागुत्तं परिणमिसुववु । कारणं मुख्यकालमेयक्कुं ।

ण य परिणमदि सयं सो ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहि ।
विविहपरिणामियाणं हवदि हु कालो सयं हेदू ॥५७०॥

न च परिणमति स्वयं सः न च परिणामयति अन्यदन्यैः । विविधपरिणामिकानां भवति हु कालः स्वयं हेतुः ॥

सः कालः आ कालं न च परिणमति संक्रमविधानर्दिदं स्वकीयगुणंगळिदं अन्यद्रव्यदोळ्परिणमिसदु । येंतीगळु परद्रव्यगुणंगळगे तन्नोळु संक्रमर्दिदं परिणमनमिल्लंतें मत्तं हेतु कर्तृत्वर्दिदं अन्यद्रव्यमनन्यगुणंगळोळ्कूडि न च परिणमयति परिणमनमं माडिसदु । मत्तेनें दोडे विविधपरिणामिकानां विविधपरिणामिगळप्प द्रव्यंगळ परिणमनक्के कालं तानें उदासीननिमित्तमक्कुं ।

कालं अस्सिय दव्वं सगसगपज्जायपरिणदं होदि ।
पज्जायावट्ठाणं सुद्धणए होदि खणमेत्तं ॥५७१॥

कालमाश्रित्य द्रव्य स्वस्वपर्य्यायपरिणतं भवति । पर्य्यायावस्थानं शुद्धनये भवति क्षणमात्रं ॥

यत' धर्माधर्मादीना अगुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदा स्वद्रव्यत्वस्य निमित्तभूतशक्तिविशेषाः षड्वृद्धिभिर्वर्धमाना षड्ढानिभिश्च हीयमाना' परिणमन्ति तत कारणात्तत्रापि च मुख्यकालस्यैव कारणत्वात् ॥५६९॥

स काल संक्रमविधानेन स्वगुणैरन्यद्रव्ये न परिणमति । न च परद्रव्यगुणान् स्वस्मिन् परिणामयति । नापि हेतुकर्तृत्वेन अन्यद् द्रव्यम् अन्यगुणैः सह परिणामयति । किं तर्हि ? विविधपरिणामिकाना द्रव्याणा परिणमनस्य स्वयमुदासीननिमित्त भवति ॥५७०॥

अपरत्व उपकार कालके ही कहे हैं। और ये जीव और पुद्गलमें ही देखे जाते हैं ॥५६८॥

तब धर्मादि अमूर्तद्रव्योंमें वर्तना कैसे होती है यह बतलाते हैं—

यतः धर्म, अधर्म आदिमें अपने द्रव्यत्वमें निमित्त भूत शक्ति विशेष अगुरुलघु नामक गुणके अविभागी प्रतिच्छेद छह प्रकारकी वृद्धिसे वर्धमान और छह प्रकारकी हानिसे हीयमान होकर परिणमन करते हैं। इस कारणसे वहाँ भी मुख्य काल ही कारण है ॥५६९॥

वह काल संक्रमविधानके द्वारा अपने गुणोंसे अन्य द्रव्यके रूपमें परिणमन नहीं करता। और अन्य द्रव्यके गुणोंको अपने रूपमें भी नहीं परिणमाता। हेतुकर्ता होकर अन्य द्रव्यको अन्य द्रव्यके गुणोंके साथ भी नहीं परिणमाता। किन्तु अनेक रूपसे स्वयं परिणमन करनेवाले द्रव्योंके परिणमनमें उदासीन निमित्त होता है ॥ ५७० ॥

कालमनाश्रयिसि जीवादिसर्व्वंद्रव्यं स्वस्वपर्य्यायपरिणतमक्कुं । आ पर्य्यायावस्थानमुं ऋजुसूत्रनयदोळु येकसमयमेयक्कुमर्त्थपर्य्यायापेक्षेयिदं ।

ववहारो य वियप्पो भेदो तह पज्जओत्ति एयट्ठो ।
ववहार अवट्ठाणट्ठिदी हु ववहारकालो दु ॥५७२॥

व्यवहारश्च विकल्पो भेदश्च तथा पर्य्याय इत्येकार्त्थः । व्यवहारावस्थानस्थितिः खलु व्यवहारकालस्तु ॥

व्यवहारमें दोडं विकल्पमें दोडं भेदमें दडमंते पर्य्यायमें दोडमेकार्त्थमक्कुमल्लि व्यंजनपर्य्यायापेक्षेयिंद व्यवहारावस्थानस्थितिः व्यवहारमें दोडे पर्य्यायमें बु पेळ्दुदरिंदमा पर्य्यायद अवस्थानदिदं वर्त्तमानतेयिंदमावुदों दु स्थितियक्कु तु मत्ते व्यवहारकालः व्यवहारकालमें बुदक्कुं ।

अवरा पज्जायठिदी खणमेत्तं होदि तं च समओत्ति ।
दोण्णमणूणमदिक्कमकालपमाणं हवे सो दु ।।५७३।।

अवरा पर्य्यायस्थितिः क्षणमात्रा भवति सैव समय इति । द्वयोरण्वोरतिक्रमकालप्रमाणो भवेत्स तु ॥

द्रव्यंगळ पर्य्यायंगळगे जघन्यस्थिति क्षणमात्रमक्कुमा स्थितिये समयमें ब संज्ञेयुळ्ळुदक्कुं । सः आ समयमुं तु मत्ते गमनपरिणतंगळप्पेरडुं परमाणुगळ परस्परातिक्रमकालप्रमाणमक्कुमिल्लि गुपयोगियप्प गाथासूत्रमिदु :—

णभएयपएसत्थो परमाणू मंदगइपवट्टंतो ।
बीयमणंतरखेत्तं जावदियं जादि तं समयकाळो ॥

कालमाश्रित्य जीवादि सर्वद्रव्यं स्वस्व-पर्यायपरिणतं भवति । तत्पर्यायावस्थान ऋजुसूत्रनयेन एकसमयो भवति अर्थपर्यायापेक्षया ॥५७१॥

व्यवहार विकल्प भेद तथा पर्यायः इत्येकार्थः तु पुनः तत्र व्यञ्जनपर्यायस्य अवस्थानतया स्थिति सैव व्यवहारकालो भवति ॥५७२॥

द्रव्याणा जघन्या पर्यायस्थिति क्षणमात्र भवति । सा च समय इत्युच्यते । स च समय द्वयोर्गमनपरिणतपरमाण्वोः परस्परातिक्रमकालप्रमाण स्यात् ॥५७३॥ अत्रोपयोगिगाथाद्वय—

णभएयपएसत्थो परमाणू मन्दगइपवट्टंतो ।
बीयमणंतरखेत्त जावदियं जादि तं समयकालो ॥१॥

कालका आश्रय पाकर जीव आदि सब द्रव्य अपना-अपनी पर्याय रूपसे परिणमन करते हैं। उस पर्यायके ठहरनेका काल ऋजू सूत्रनयसे अर्थपर्यायकी अपेक्षा एक समय होता है ॥ ५७१ ॥

व्यवहार, विकल्प, भेद तथा पर्याय ये सब एक अर्थवाले हैं। अर्थात् इन शब्दोंका अर्थ एक है। उनमें-से व्यंजन पर्यायकी वर्तमान रूपसे स्थिति व्यवहार काल है ॥५७२॥

द्रव्योंकी पर्यायकी जघन्य स्थिति क्षण मात्र होती है उसको समय कहते हैं। गमन करते हुए दो परमाणुओंके परस्परमें अतिक्रमण करनेमें जितना काल लगता है उतना ही समयका प्रमाण है ॥ ५७३ ॥

आकाशद एकप्रदेशदोळिर्द्द परमाणु मंदगतियिंदं परिणतमागुत्तु द्वितीयमनंतरक्षेत्रमं यावद्याति यिनितु पोळ्तिगेय्दुगुमदु समयमेंब कालमक्कुमा नभः प्रदेशमेंबुदेंतेंदोडे :—

जेत्ति वि खेत्तमेत्तं अणुणा रुद्धं खु गयणदव्वं च ।
तं च पदेसं भणियं अवरावरकारणं जस्स ॥ [ ]

आवुदोंदु परमाणुविंगे अपरापरकारणं पिंदु मुंदुमेंबी व्यवस्थितिगे निमित्तमप्प गगनद्रव्यमनितु क्षेत्रमात्रं परमाणुविंदं व्यापिसल्पट्टुदु खु स्फुटमागि सः अदु प्रदेशो भणितः प्रदेशमेंदु पेळल्पट्टुदु ।

अनंतरं व्यवहारकालमं पेळ्दपं :—

आवलि असंखसमया संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो ।
सत्थुस्सासो थोवो सत्तत्थोवो लवो भणियो ॥५७४॥

आवलिरसंख्यसमया संख्येयावलिसमूह उच्छ्वासः । सप्तोच्छ्वासा स्तोकः सप्तस्तोका लवो भणितः ॥

आवळि येंबुदु असंख्यातसमयंगळनुळ्ळुदक्कें दोडे युक्तासंख्यातजघन्यराशिप्रमाणमप्पुदरिदं। संख्यातावलिसमूहमुच्छ्वासमेंबुदक्कुमाउच्छ्वासमें तप्परोळें दोडे :—

अड्ढस्स अणलसस्स य णिरुवहदस्स य हवेज्ज जीवस्स ।
उस्सासो णिस्सासो एगो पाणोत्ति आहीदो ॥ [ ]

आकाशस्य एकप्रदेशस्थितपरमाणुः मन्दगतिपरिणतः सन् द्वितीयमनन्तरक्षेत्रं यावद्याति स समयाख्यकालो भवति ॥१॥ स च प्रदेशः कियान्—

जेत्तीवि खेत्तमेत्तं अणुणा रुद्धं खु गयणदव्वं च ।
त च पदेसं भणियं अवरावरकारणं जस्स ॥२॥

यस्य परमाणोः अपरपरकारणं गगनद्रव्यं यावत्क्षेत्रमात्रं परमाणुना व्याप्तं स्फुटं स प्रदेशो भणितः ॥२॥ अथ व्यवहारकालमाह—

जघन्ययुक्तासंख्यातसमयराशिः आवलिः । संख्यातावलिसमूह उच्छ्वासः । स च किंरूपः ?

अड्ढस्स अणलसस्स य णिरुवहदस्स य हवेज्ज जीवस्स ।
उस्सासणिस्सासो एगो पाणोत्ति आहीदो ॥१॥

यहाँ उपयोगी दो गाथाओंका अर्थ इस प्रकार है—

आकाशके एक प्रदेशमें स्थित परमाणु मन्द गतिसे चलता हुआ अनन्तरवर्ती दूसरे प्रदेशपर जितनी देर में जाता है वह समय नामक काल है। वह प्रदेश कितना है यह कहते हैं—आकाशके जितने क्षेत्रको एक परमाणु रोकता है उसे प्रदेश कहते हैं। वह दूर और निकट व्यवहारमें कारण होता है।

आगे व्यवहार कालको कहते हैं—

जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समयोंके समूहका नाम आवली है। संख्यात आवलीके समूहका नाम उच्छ्वास है। वह सुखी, निरालसी और नीरोगी जीवका उच्छ्वास-

आढ्यनप्प सुखितनप्प अनालस्यनप्प निरुपहतनप्प जीवंगक्कुमावुदों वुच्छ्वासनिश्वासमवों वु प्राणमें वितु पेळल्पट्टुवु । सप्तोच्छ्वासमों वु स्तोकमक्कुं । सप्तस्तोकंगळों वु लवमें बुदक्कुं ।

अट्ठत्तीसद्धलवा नाली बे नालिया मुहुत्तं तु ।
एगसमयेण हीणं भिण्णमुहुत्तं तदो सेसं ।।५७५।।

अष्टात्रिंशदर्द्धलवाः नाडी द्वे नाडिके मुहूर्त्तस्तु । एकसमयेन हीनो भिन्नमुहूर्त्तस्ततः शेषः ।।

मूवत्तें टुवरे लवेगळु घळिगे येंबुदक्कुं । द्विघळिगेगळों दु मुहूर्त्तमक्कुं । तु मत्ते एकसमयदिंद हीनमाद मुहूर्त्तं भिन्नमुहूर्त्तमंतर्म्मुहूर्त्तमुत्कृष्टमक्कुं । ततः मुंदे द्विसमयोनाद्यावल्यसंख्यातैकभागपर्य्यंतमाद शेषंगळनितुमंतर्म्मुहूर्त्तंगळेयप्पुवु ।

इल्लिगुपयोगियप्प गाथासूत्रमिदु :—

ससमयमावळि अवरं समऊण मुहुत्तयं तु उक्कस्सं ।
मज्झासंखवियप्पं वियाण अंतोमुहुत्तमिणं ।। [ ]

समयाधिकावलि जघन्यांतर्म्मुहूर्त्तमक्कुं । समयोनमुहूर्त्तमुत्कृष्टांतर्म्मुहूर्त्तमक्कुं । मध्यद-असंख्यातविकल्पमं मध्यमांतर्म्मुहूर्त्तंगळें दिवनरि ।

दिवसो पक्खो मासो उडु अयणं वस्समेवमादी हु ।
संखेज्जासंखेज्जाणंततवो होदि ववहारो ।।५७६।।

दिवसः पक्षो मास ऋतुरयनं वर्षमेवमादिः खलु । संख्यातासंख्यातानंततो भवति व्यवहारः ।।

सुखिन' अनलसस्य निरुपहतस्य यो जीवस्य उच्छ्वासनिश्वासः स एव एकः प्राण उक्तो भवेत् । सप्तोच्छ्वासाः स्तोकः । सप्तस्तोका लवः ।।५७४।।

सार्धाष्टा त्रिंशल्लवा नाली घटिका । द्वे नाल्यौ मुहूर्तः । स चैकसमयेन हीनो भिन्नमुहूर्त', उत्कृष्टान्तर्मुहूर्त इत्यर्थः । ततोऽग्रे द्विसमयोनाद्या आवल्यसंख्यातैकभागान्ताः सर्वेऽन्तर्मुहूर्ता' ।।५७५।। अत्रोपयोगि गाथासूत्रम्—

ससमयमावलि अवरं ममऊणमुहुत्तयं तु उक्कस्सं ।
मज्झासंखवियप्पं वियाण अन्तोमुहुत्तमिणं ।।१।।

सममयाधिकावलिः जघन्यान्तर्मुहूर्त' समयोनमुहर्तः उत्कृष्टान्तर्मुहूर्तः । मध्यमा असंख्यातविकल्पा मध्यमान्तर्मुहूर्ताः, इति जानीहि ।।१।।

निश्वास होता है । उसीको प्राण कहते हैं । सात उच्छ्वासका एक स्तोक और सात स्तोकका एक लव होता है ।। ५७४ ।।

साढ़े अड़तीस लवकी एक नाली होती है उसे घटिका कहते हैं । दो नालीका मुहूर्त होता है । एक समयहीन मुहूर्तको भिन्न मुहूर्त कहते हैं यह उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । इससे आगे दो समयहीन आदिसे लेकर आवलीके एक असंख्यात भाग पर्यन्त सब अन्तर्मुहूर्त होते हैं ।। ५७५ ।।

यहाँ उपयोगी गाथा सूत्रका अर्थ इस प्रकार है—

दिवसमें बुं पक्षमें बुं मासमें बुं ऋतुमें बुमयनमें दुं वर्षमें वित्यवमादिगळु स्फुटमागि आवल्यादिभेदविंदं संख्यातासंख्यातानंतपर्य्यंतं यथासंख्यमागि श्रुतावधिकेवलज्ञानविषयर्तायिदं विकल्पंगळप्पुववेल्लं व्यवहारकालमक्कुं ।

ववहारो पुण कालो माणुसखेत्तम्मि जाणिदव्वो दु ।
जोइसियाणं चारे ववहारो खलु समाणोत्ति ॥५७७॥

व्यवहारः पुनः कालो मनुष्यक्षेत्रे ज्ञातव्यस्तु । ज्योतिष्काणां चारे व्यवहारः खलु समान इति ॥

व्यवहारकालमें बुदु मत्ते मनुष्यक्षेत्रदोळु ज्ञातव्यमक्कुमेकें दोडे ज्योतिष्कचारदोळु व्यवहारकालं तु मत्ते खलु स्फुटमागि समानमें दितु कारणमागि ।

ववहारो पुण तिविहो तीदो वट्टंतगो भविस्सो दु ।
तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणं पमाणो दु ॥५७८॥

व्यवहारः पुनस्त्रिविधोऽतीतो वर्त्तमानो भविष्यंस्तु । अतीतः संख्यातावलिहतसिद्धानां प्रमाणं तु ॥

व्यवहारकालमें बुदु मत्ते त्रिविधमक्कुं । अतीतकालमें बुं वर्त्तमानकालमें बुं भविष्यत्कालमें दितु । अल्लि अतीतकालप्रमाणं तु मत्ते संख्यातावलियिदं गुणिसल्पट्ट सिद्धरुगळ प्रमाणमेनितनितेयक्कुमेकें दोडे त्रैराशिक सिद्धमप्पुदरिंदमा त्रैराशिकमें तें दोडे अरुनूर एंटु जीवंगळु मुक्तिगे सलुत्तिरलु अर्रादंगळमेलें टु समयकालमागुत्तिरलु सर्व्वजीवराशिय अनंतैकभागमात्रमप्प जीवंगळु

दिवसः पक्ष. मासः ऋतुः अयनं वर्प इत्यादय स्फुट आवल्यादिभेदतः संख्यातासंख्यातानन्तपर्यन्तं क्रमशः श्रुतावधिकेवलज्ञानविषयविकल्पाः सर्वे व्यवहारकालो भवति ॥५७६॥

व्यवहारकालः पुनः मनुष्यक्षेत्रे स्फुटं ज्ञातव्यः । कुतः ? ज्योतिष्काणा चारे स समान इति कारणात् ॥५७७॥

व्यवहारकालः पुनस्त्रिविधः अतीतोऽनागतो वर्तमानश्चेति । तु—पुन. अत्रातीत संख्यातावलिगुणितसिद्धराशिर्भवति, कुतः ? अष्टोत्तरषट्छतजीवानां मुक्तिगमनकालोऽष्टसमयाधिकषण्मासाः तदा, सर्वजीवराश्य-

एक समय अधिक आवली जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। एक समय कम मुहूर्त उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। दोनोंके मध्यमें असंख्यात भेद हैं वे सब अन्तर्मुहूर्त जानना।

दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष इत्यादि आवली आदिसे लेकर संख्यात, असंख्यात अनन्तपर्यन्त क्रमसे श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और केवलज्ञानके विषयभूत सब विकल्प व्यवहार काल हैं ॥५७६॥

व्यवहारकाल मनुष्यलोकमें ही जाना जाता है क्योंकि ज्योतिषी देवोंके चलनेसे ही व्यवहारकाल निष्पन्न होता है अतः ज्योतिषी देवोंके चलनेका काल और व्यवहार काल दोनों समान हैं ॥ ५७७ ॥

व्यवहारकाल तीन प्रकारका है—अतीत, अनागत और वर्तमान। अतीतकाल संख्यात आवलीसे गुणित सिद्धराशि प्रमाण है। क्योंकि छह सौ आठ जीवोंके मुक्ति जानेका काल आठ समय अधिक छह मास है। तब समस्त जीव राशिके अनन्तवें भाग मुक्त जीवोंका

मुक्तिगे संद कालमेंतप्पुवेंदितु त्रैराशिकं माडि प्र । ६०८ फल मासं $६^{८}$ । इ ३ बंद लब्धं संख्याता-वलिहतसिद्धराशिप्रमाणमप्पुदरिंदं ।

समयो हु वट्टमाणो जीवादो सव्वपोग्गलादो वि ।
भावी अणंतगुणिदो इदि ववहारो हवे कालो ॥५७९॥

समयः खलु वर्त्तमानो जीवात्सर्व्वपुद्गलादपि च । भावी अनंतगुणित इति व्यवहारो भवेत्कालः ॥

वर्त्तमानकालमेकसमयमेयक्कुं । सर्व्वजीवराशियं नोडलुं सर्व्वपुद्गलराशियं नोडलुं भावी भविष्यत्कालमनंतगुणितमक्कुमितु व्यवहारकालं त्रिविधमेंदु पेळल्पट्टुदु ।

कालोत्ति य ववएसो सब्भावपरूपओ हवदि णिच्चो ।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥५८० ।

काल इति व्यपदेशः सद्भावप्ररूपको भवति नित्यः । उत्पन्नप्रध्वंसी अपरो दीर्घान्तरस्थायी ॥

कालमेंबी यभिधानं मुख्यकालसद्भावप्ररूपकं । मुख्यकालास्तित्वमं पेळ्गु एंतेंदोडे मुख्यमिल्लदिरुत्तिरलु गौणक्कभावमक्कुमेंतोगळु सिंहक्कभावमागुत्तिरलु वटुः सिंहः एंबिदक्कभावप्रतीति न्यायमिल्लिगमंतुटेयक्कुमप्पुदरिंदमा मुख्यकालं नित्यमुं उत्पन्नप्रध्वंसियक्कुं येकेंदोडे द्रव्यत्वदिंद मुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमप्पुदरिंदमपरव्यवहारकालं वर्त्तमानकालापेक्षेयिंदमुत्पन्नप्रध्वंसि-

नन्तैकभागमुक्तजीवानां कियान् ? इति त्रैराशिकागतस्य तत्प्रमाणत्वात् । प्र ६०८ फ मा $६^{८}$ इ ३ लब्ध ३ । २ १ ॥५७८॥

वर्तमानकालः खल्वेकसमयः भावी सर्वजीवराशितः सर्वपुद्गलराशितोऽप्यनन्तगुणः, इति व्यवहारकालः त्रिविधो भणितः ॥५७९॥

काल इति व्यपदेशो मुख्यकालस्य सद्भावप्ररूपकः मुख्याभावे गौणस्याप्यभावात् सिंहाभावे वटुः सिंह इत्यादिवत् । स च मुख्यः नित्योऽपि उत्पन्नप्रध्वंसी भवति द्रव्यत्वेन उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तत्वात् । अपरः

कितना काल होगा। । इस प्रकार त्रैराशिक करना । सो प्रमाण राशि छह सौ आठ, फल राशि छह महीना आठ समय । इच्छाराशि सिद्धोंकी संख्या । फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके उसमें प्रमाणराशिसे भाग देनेपर लब्धराशि संख्यात आवलीसे गुणित सिद्धराशि आती है । वही अतीत कालका परिमाण है ॥ ५७८ ॥

वर्तमान कालका परिमाण एक समय है । भाविकाल सर्व जीवराशि और सर्व पुद्गलोंसे भी अनन्त गुणा है । इस प्रकार व्यवहार काल तीन प्रकारका कहा ॥ ५७९ ॥

लोकमें जो 'काल' ऐसा व्यवहार है वह मुख्यकालके सद्भावको कहता है क्योंकि मुख्यके अभावमें गौण व्यवहार भी नहीं होता । जैसे सिंहके अभावमें यह बालक सिंह है ऐसा कहनेमें नहीं आता । वह मुख्यकाल नित्य होनेपर भी उत्पत्ति और व्ययशील है क्योंकि द्रव्य होनेसे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यसे युक्त है । दूसरा व्यवहारकाल वर्तमानकी अपेक्षा उत्पादव्ययशील है और अतीत-अनागतकी अपेक्षा दीर्घकाल तक स्थायी होता है । इस विषयमें उपयोगी श्लोक इस प्रकार है—

युमतीतानागतकालापेक्षेयिदं दीर्घांतरस्थायियुमक्कुमिल्लिगुपयोगिश्लोकमिदु :—

"निमित्तमांतरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता ।
बहिर्न्निश्चयकालस्तु निश्चितं तत्त्वर्दाशिभिः ॥" [   ]

उपलक्षणानुवादाधिकारंतिदर्द्दु ।

छद्दव्वावट्ठाणं सरिसं तियकाल अट्ठपज्जाये ।
वेंजणपज्जाये वा मिलिदे ताणं ठिदित्तादो ॥५८१॥

षड्द्रव्यावस्थानं सदृशं त्रिकालात्र्थपर्य्यायान् । व्यंजनपर्य्यायान्वा मिलिते तेषां स्थितित्वात् ॥

षड्द्रव्यंगळगमवस्थानं सदृशमेयक्कुमेकें दोडे त्रिकालात्र्थपर्य्यायंगळमं मेणु व्यंजनपर्य्यायंगळमं कूडिदोडे या षड्द्रव्यंगळ्गे स्थितियक्कुमप्पुर्दारदं अत्र्थव्यंजनपर्य्यायंगळें बुवुमें तुर्टे दोडे "सूक्ष्माः अवाग्गोचराः अचिरकालस्थायिनोऽर्त्थपर्य्यायाः, स्थूलाः वाग्गोचराः चिरकालस्थायिनो व्यंजनपर्य्यायाः" एंदितप्प लक्षणमनुळ्ळुवप्पुवु ।

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वियणपज्जया चावि ।
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं ॥५८२॥

एकस्मिन् द्रव्ये ये अर्थपर्य्यायाः व्यंजनपर्य्यायाश्चापि । अतीतानागतभूताः तावत्तद्भवति द्रव्यम् ॥

व्यवहारकालः वर्तमानापेक्षया उत्पन्नप्रध्वंसी अतीतानागतापेक्षया दीर्घान्तरस्थायी भवति । अत्रोपयोगी श्लोकः—

निमित्तमान्तरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता ।
बहिर्निश्चयकालस्तु निश्चितं तत्त्वदर्शिभिः ॥१॥

इत्युपलक्षणानुवादाधिकार ॥५८०॥

षड्द्रव्याणा अवस्थानं सदृशमेव भवति त्रिकालभवेषु सूक्ष्मावाग्गोचराचिरस्थाप्यर्थपर्यायेषु तद्विपरीतलक्षणव्यंजनपर्यायेषु वा मिलितेषु तेषा स्थितत्वात् ॥५८१॥ इदमेव समर्थयति—

वस्तुमें रहनेवाली योग्यता तो अन्तरंग निमित्त है और निश्चय काल बाह्य निमित्त है ऐसा तत्त्वदर्शियोंने निश्चित किया है ॥ ५८० ॥

उपलक्षणानुवाद अधिकार समाप्त हुआ ।

छहों द्रव्योंका अवस्थान—ठहरनेका काल बराबर एक समान है क्योंकि तीनों कालोंमें होनेवाली सूक्ष्म, वचनके अगोचर और क्षणस्थायी अर्थपर्याय तथा उनसे विपरीत लक्षणवाली व्यंजन पर्यायोंके मिलनेपर उन द्रव्योंकी स्थिति होती है ॥ ५८१ ॥

इसीका समर्थन करते हैं—

वोंदु द्रव्यदोळावु केलवुवर्त्थपर्य्यायंगळुं व्यंजनपर्य्यायंगळुमतीतानागतकालंगळोळ्वर्त्तिसुवुवु वर्त्तिसल्पडुववुमपि शब्ददिदं वर्त्तमानपर्य्यायववेल्लमुं कूडि तत् अवु द्रव्यं भवति द्रव्यमक्कुं-स्थित्यधिकारंतिद्दुवु ।

आगासं वज्जित्ता सव्वे लोगम्मि चेव णत्थि बहिं ।
वावी धम्माधम्मा अवट्ठिदा अचलिदा णिच्चा ॥५८३॥

आकाशं विवर्ज्य सर्व्वे लोके चैव न संति बहिः । व्यापिनौ धर्म्माधर्म्मौ अवस्थितौ अचलितौ नित्यौ ॥

आकाशद्रव्यं पोरगागि शेषद्रव्यंगळनितुं लोकदोळेयप्पवु । लोकदिं पोरगिल्ल । आ द्रव्यंगळोळु धर्म्माधर्म्मद्रव्यंगळेरडुं व्यापिगळेकेंदोडे लोकप्रदेशंगळेनितोळवनितं व्यापिसिद्दुवु तिलदोळु तैलमें तंते । अवस्थितौ स्थानचलनरहितंगळप्पुदरिदमवस्थितंगळु, अचलितौ प्रदेशचलनरहितंगळप्पुदरिंदमचलितंगळु, त्रिकालदोळं नाशरहितंगळप्पुदरिंदं नित्यौ नित्यंगळप्पुवु । इल्लिगुपयोगियप्प श्लोकमिदु :—

"औपश्लेषिकवैषयिकावभिव्यापक इत्यपि ।
आधारः त्रिविधः प्रोक्तः कटाकाशतिलेषु च ॥ [ ]

एकस्मिन् द्रव्ये ये अर्थपर्याया व्यञ्जनपर्यायाश्च अतीतानागता अपिशब्दाद्वर्तमानाश्च सन्ति तावत् तद् द्रव्यं भवति ॥५८२॥ इति स्थित्यधिकार. ॥

आकाशं विवर्ज्य शेषसर्वद्रव्याणि लोके एव सन्ति न तद्बहिः । तेषु धर्माधर्मौ व्यापिनौ सर्वलोकव्याप्तत्वात् तिले तैलवत् , अवस्थितौ स्थानचलनाभावात् , अचलितौ प्रदेशचलनाभावात् , नित्यौ त्रैकाल्येऽपि विनाशाभावात् । अत्रोपयोगी श्लोकः—

औपश्लेषिकवैषयिकावभिव्यापक इत्यपि ।
आधारस्त्रिविधः प्रोक्त कटाकाशतिलेषु च ॥५८३॥

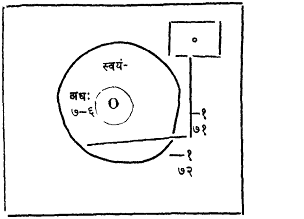
एक द्रव्यमें जितनी अतीत, अनागत और वर्तमान अर्थपर्याय तथा व्यंजनपर्याय होती है उतना ही वह द्रव्य होता है ॥५८२॥ स्थिति अधिकार पूर्ण हुआ ।

आकाशको छोड़कर शेष सब द्रव्य लोकमें ही हैं, बाहर नहीं हैं। उनमें धर्म और अधर्म तिलोंमें तेलकी तरह सब लोकमें व्याप्त होनेसे व्यापी हैं। तथा अवस्थित हैं क्योंकि अपने स्थानसे विचलित नहीं होते। प्रदेशों में हलन-चलन न होने से अचलित हैं और तीनों कालोंमें भी विनाश न होनेसे नित्य हैं। इस विषयमें उपयोगी श्लोक—आधार तीन प्रकारका कहा है—औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक। इसके तीन उदाहरण हैं—चटाई, आकाश और तेल। अर्थात् चटाईपर बालक सोता है, यहाँ चटाई औपश्लेषिक आधार है। आकाश में पदार्थ स्थित हैं, यहाँ आकाश वैषयिक आधार है। तिलोंमें तेल यहाँ अभिव्यापक आधार है। इसी तरह लोकाकाशमें धर्म-अधर्म व्यापी हैं यहाँ अभिव्यापक आधार है ॥५८३॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागप्पहुडिं तु सव्वलोगोत्ति ।
अप्पपदेसविसप्पणसंहारे वावदो जीवो ॥५८४॥

लोकस्यासंख्येयभागप्रभृतिस्तु सर्व्वलोकपर्य्यंतमात्मप्रदेशविसर्प्पणसंहारे व्यापृतो जीवः ॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तजघन्यावगाहं मोदल्गोंडु महामत्स्यावगाहपर्यंतं प्रदेशोत्तरवृद्धिक्रमंगळप्पुवु ६ ६ ६०००६११११ (प ७ । ७ / ७) वेदनायुतंगे एकप्रदेशोत्तरवृद्धिक्रमदिदं जघन्यदिदं मेले नडेवुत्कृष्टं त्रिगुणितमक्कुं ६ १ १ १ १ १ ३। मेले मत्ते मारणांतिकसमुद्घातजघन्यं मोदल्गोंडु ६ १ १ १ १ १ ३ पदेशोत्तरक्रमदिदं नडेवुत्कृष्टंस्वयंभूरमणसमुद्रबहिस्थितस्थंडिलक्षेत्रदोळिर्द्द महामत्स्यसंबंधि सप्तमपृथ्विय महारौरवनामश्रेणीबद्धरुं कुरुत्तु मारणांतिकसमुद्घातदंडमुत्कृष्टमक्कुं १५ । ४१ / १ २ मी क्षेत्रक्के संदृष्टि :—



सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तजघन्यात्मप्रदेशोत्तरेषु महामत्स्यपर्यन्तेषु तदुपरि प्रदेशोत्तरेषु वेदनासमुद्घातस्य त्रिगुणव्यासमहामत्स्यपर्यन्तेषु तदुपरि प्रदेशोत्तरेषु स्वयभूरमणसमुद्रबाह्यस्थण्डिलक्षेत्रस्थितमहामत्स्येन सप्तमपृथ्वीमहारौरवनामाश्रेणीबद्धं प्रति मुक्तमारणान्तिकसमुद्घातस्य पञ्चशतयोजनतदर्धविष्कम्भोत्सेधैकार्धषड्रज्ज्वायतप्रथमद्वितीयतृतीयचक्रोत्कृष्टपर्यन्तेषु तदुपरिलोकपूरणपर्यन्तेषु च अवगाहनविकल्पेषु आत्मप्रदेशविसर्पणसंहारे

सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनासे लेकर एक-एक प्रदेश बढ़ते-बढ़ते महामत्स्यपर्यन्त उत्कृष्ट अवगाहना होती है। उससे ऊपर एक-एक प्रदेश बढ़ते हुए वेदना समुद्घातवालेका क्षेत्र महामत्स्यकी अवगाहनासे तीन गुणा लम्बा, चौड़ा होता है पुनः एक-एक प्रदेश बढ़ते हुए स्वयंभूरमण समुद्रके बाहर स्थण्डिलक्षेत्रमें रहनेवाला महामत्स्य सप्तम पृथ्वीके महारौरव नामक श्रेणीबद्ध बिलेकी ओर मारणान्तिक समुद्घात करता है तब पाँच सौ योजन चौड़ा, अढ़ाई सौ योजन ऊँचा तथा प्रथम मोड़ेमें एक राजू, दूसरेमें आधा राजू और तीसरेमें छह राजू लम्बा उत्कृष्टक्षेत्र होता है। उसके ऊपर केवलिसमुद्घातमें लोकपूरण

इल्लि प्रथमवक्रदर्ध रज्जुवनू द्वितीयवक्रदरज्जुवनू कूडिदोडिदु $-\frac{३}{१२}$ केळगण तृतीयवक्रदारं रज्जुगळोळ्कूडिदोडिदु वे ५ ० २१ व्या ५०० २१ इंतु संख्यातप्रतरांगुलगुणितम १ १५ प्पेळुवरे रज्जुगळप्पुवु। इंते यथासंभवमागि मेले केवलिसमुद्घातवदंडकवाटप्रतरलोकपूरणवोळु सर्व्वलोकमक्कुमिल्लि पर्य्यंत=मात्मप्रदेशविसर्प्पणसंहारदोळु जीवद्रव्यं व्यापृतमक्कुं।

पोग्गलदव्वाणं पुण एयपदेसादि होंति भजणिज्जा।
एक्केक्को दु पदेसो कालाणूणं धुवो होदि ॥५८५॥

पुद्गलद्रव्याणां पुनरेकप्रदेशादयो भवंति भजनीयाः। एकैकस्तु प्रदेशः कालाणूनां ध्रुवं भवति ॥

पुद्गलद्रव्यंगळ्गे पुनः मत्तेएकप्रदेशमादियागि द्व्यणुकादिपुद्गलस्कंधंगळ्गे यथासंभवमागि प्रदेशंगळु विकल्पनीयंगळप्पुवु। अदें तेंदोडे द्व्यणुकमेकप्रदेशदोळं मेणु द्विप्रदेशदोळमिक्कुं। त्र्यणुकमेकप्रदेशदोळं द्विप्रदेशदोळं त्रिप्रदेशदोळं मेणिक्कुमित्यादि कालाणुगळ्गे तु मत्ते ओंदक्कोंदे प्रदेशक्रमं ध्रुवं नियमदिदमक्कुं।

संखेज्जासंखेज्जाणंता वा होंति पोग्गलपदेसा।
लोगागासेव ठिदी एक्कपदेसो अणुस्स हवे ॥५८६॥

संख्येयाऽसंख्येयाऽनंता वा भवंति पुद्गलप्रदेशाः। लोकाकाश एव स्थितिः एकप्रदेशोऽणोर्भवेत् ॥

द्व्यणुकादिपुद्गलस्कंधंगळु संख्यातासंख्यातानंतपरमाणुगळनुळ्ळवप्पुवु। अंतादोडं लोकाकाशदोळ वक्कं स्थितियक्कुमणुविगोंदे प्रदेशमक्कुं।

सति जीवद्रव्यं व्यापृतं प्रवृत्तं भवति, सर्वावगाहनोपपादसमुद्घातानामस्य संभवात् ॥५८४॥

पुद्गलद्रव्याणां पुनः एकप्रदेशादयो यथासंभवं भजनीया भवन्ति। तद्यथा—द्व्यणुकं एकप्रदेशे द्विप्रदेशे वा तिष्ठति। त्र्यणुकं एकप्रदेशे द्विप्रदेशे त्रिप्रदेशे वा तिष्ठतीति। तु-पुनः कालाणूना एकैकस्य एकैकप्रदेशक्रमो ध्रुवो भवति ॥५८५॥

द्व्यणुकादयः पुद्गलस्कन्धाः संख्यातासंख्यातानन्तपरमाणवः तथापि लोकाकाश एव तिष्ठन्ति। अणोरेक एव प्रदेशो भवेत् ॥५८६॥

पर्यन्त क्षेत्र होता है। इस प्रकार अपने प्रदेशोंके संकोच विस्तारसे जीवद्रव्यका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागसे लेकर सर्वलोक पर्यन्त होता है क्योंकि जीवके सब अवगाहना, उपपाद और समुद्घातके भेद होते हैं ॥५८४॥

पुद्गल द्रव्योंका क्षेत्र एक प्रदेशसे लेकर यथायोग्य भजनीय होता है। यथा—द्व्यणुक एक प्रदेश अथवा दो प्रदेशमें रहता है। त्र्यणुक एक प्रदेश, दो प्रदेश अथवा तीन प्रदेशमें रहता है। और कालाणु लोकाकाशके एक-एक प्रदेशमें एक-एक करके ध्रुव रूपसे रहते हैं ॥५८५॥

द्व्यणुक आदि पुद्गल स्कन्ध संख्यात, असंख्यात और अनन्त परमाणुओंके समूह रूप हैं फिर भी लोकाकाशमें ही रहते हैं। परमाणु एक ही प्रदेशी होता है ॥५८६॥

---

१. म °मागि विक°।

लोगागासपदेसा छद्दव्वेहि फुडा सदा होंति।
सव्वमलोगागासं अण्णेहि विवज्जियं होदि ॥५८७॥

लोकाकाशप्रदेशाः षड्द्रव्यैः स्फुटाः सदा भवंति। सर्व्वमलोकाकाशमन्यैर्व्विवर्ज्जितं भवति॥

लोकाकाशप्रदेशंगळंगनितोवनितुं षड्द्रव्यंगळिदं सर्व्वदा स्फुटंगळप्पुवु। आलोकाकाशंगळे-नितोळवनितुं अन्यद्रव्यंगळिदं विवर्ज्जितंगळप्पुवु। क्षेत्राधिकारंतिदुदुवु।

जीवा अणंतसंखाणंतगुणा पुग्गला हु तत्तो दु।
धम्मतियं एक्केक्कं लोगपदेसप्पमा कालो ॥५८८॥

जीवाः अनंतसंख्याः अनंतगुणाः पुद्गलाः खलु ततस्तु। धर्म्मत्रयमेकैकं लोकप्रदेशप्रमा कालः॥

सर्व्वजीवंगळु द्रव्यप्रमाणदिवमनंतंगळप्पुवु। पुद्गलंगळु सर्व्वजीवराशियं नोडलुमनंतानंत-गुणितंगळु। धर्म्माधर्म्माकाशद्रव्यंगळो दोंदेयप्पुवु एकं दोडखंडद्रव्यंगळप्पुदरिंदं। लोकप्रदेशंगळेनितो-ळवनिते कालाणुगळप्पुवु।

लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेदव्वा ॥५८९॥

लोकाकाशप्रदेशे एकैकस्मिन् ये स्थिताः खलु एकैके। रत्नानां राशिरिव ते कालाणवो मंतव्याः॥

एकैकलोकाकाशप्रदेशंगळोळु आवुवु केलवु इरल्पट्टुवु वोंदोंदुगळागि रत्नंगळ राशियंतु भिन्न-भिन्नव्यक्तियिंदिर्प्पुवंते अवु कालाणुगळें‍दु बग यल्पडुवुवु।

लोकाकाशप्रदेशाः सर्वे षड्द्रव्यैः सर्वदा स्फुटा भवन्ति। अलोकाकाशः सर्वोऽपि अन्यद्रव्यैर्विवर्जितो भवति ॥५८७॥ इति क्षेत्राधिकारः॥

सर्वे जीवा द्रव्यप्रमाणेन अनन्ताः स्युः। तेभ्यः पुद्गलाणवः खलु अनन्तगुणाः। तु—पुनः धर्माधर्माकाशाः एकैक एव अखण्डद्रव्यत्वात्। कालाणवो लोकप्रदेशमात्राः ॥५८८॥

एकैकलोकाकाशप्रदेशे ये एकैके भूत्वा रत्नाना राशिरिव भिन्नभिन्नव्यक्त्या तिष्ठन्ति ते कालाणवो मन्तव्याः ॥५८९॥

लोकाकाशके सब प्रदेश सर्वदा छह द्रव्योंसे व्याप्त रहते हैं। और अलोकाकाश पूराका पूरा अन्य द्रव्योंसे रहित होता है ॥५८७॥ क्षेत्राधिकार समाप्त हुआ।

द्रव्यप्रमाणसे सब जीव अनन्त हैं। उनसे पुद्गल परमाणु अनन्त गुणे हैं। धर्म-अधर्म और आकाश अखण्ड द्रव्य होनेसे एक-एक हैं। कालाणु लोकाकाशके प्रदेश जितने हैं उतने हैं ॥५८८॥

एक-एक लोकाकाशके प्रदेशपर जो एक-एक स्थित है जैसे रत्नोंकी राशिमें प्रत्येक रत्न भिन्न-भिन्न होता है, वे कालाणु जानना ॥५८९॥

ववहारो पुण कालो पोग्गलदव्वादणंतगुणमेत्तो ।
तत्तो अणंतगुणिदा आगासपदेसपरिसंखा ॥५९०॥

व्यवहारः पुनः कालः पुद्गलद्रव्यादनंतगुणमात्रः । ततोऽनंतगुणिताः आकाशप्रदेशपरिसंख्याः ॥

व्यवहारकालमें बुदु मत्ते पुद्गलद्रव्यमं नोडलुमनंतगुणमात्रमक्कुमदं नोडलुमनंतगुणंगळाकाशद्रव्यद प्रदेशपरिसंख्येगळु ।

लोगागासपदेसा धम्माधम्मेगजीवगपदेसा ।
सरिसा हु पदेसो पुण परमाणु अवट्ठिदं खेत्तं ॥५९१॥

लोकाकाशप्रदेशाः धर्म्माधर्म्मैकजीवप्रदेशाः सदृशाः खलु प्रदेशः पुनः परमाण्ववस्थितं क्षेत्रं ॥

लोकाकाशप्रदेशंगळुं धर्म्मद्रव्यप्रदेशंगळुमधर्म्मद्रव्यप्रदेशंगळुमेकजीवप्रदेशंगळुं सदृशंगळप्पुवु खलु स्फुटमागि । ई नाल्कुं द्रव्यंगळ प्रदेशंगळु प्रत्येकं जगच्छ्रेणीघनप्रमितंगळप्पुवु । प्रदेशमें बुदेनितु प्रमाणमें दोडे पुनः मत्ते पुद्गलपरमाण्ववष्टब्ध क्षेत्रमिनितें प्रमाणमक्कुमदुकारणदिदं जघन्यक्षेत्रमं जघन्यद्रव्यमुमविभागिगळप्पुवु । संदृष्टि :—

	जीव	पुद्गल	ध.	अ.	लो =	मु का	व्य-का	अलोकाकाश
द्र	१६	१६ ख	१	१	१	≡	१६ ख ख	१६ ख ख ख
क्षे	≡ ख	≡ ख ख	≡	≡	≡	≡	≡ ख ख ख	≡ ख ख ख ख
का	अ = ख	अ ख ख	क ७	क ७	क ७	क ७	अ ख ख ख	अ ख ख ख ख
भा	के ४ ख ख ख ख	के ३ ख ख ख	ओ. ७	ओ ७	ओ ७	ओ ७	के ख ख	के १ ख

व्यवहारकाल पुनः पुद्गलद्रव्यादनन्तगुणः । ततोऽनन्तगुणिता आकाशप्रदेशपरिसंख्या ॥५९०॥
लोकाकाशप्रदेशा धर्मद्रव्यप्रदेशा अधर्मद्रव्यप्रदेशा एकैकजीवद्रव्यप्रदेशाश्च सदृशाः खलु संख्यया समाना एव प्रत्येकं जगच्छ्रेणिघनमात्रत्वात् । प्रदेशप्रमाणं पुनः पुद्गलपरमाण्ववष्टब्धक्षेत्रमात्रं भवति । तेन जघन्यक्षेत्रं

व्यवहारकाल पुद्गल द्रव्यसे अनन्तगुणा है। और उससे अनन्तगुणी आकाशके प्रदेशोंकी संख्या है ॥५९०॥

लोकाकाशके प्रदेश, धर्मद्रव्यके प्रदेश, अधर्मद्रव्यके प्रदेश और एक-एक जीवद्रव्यके प्रदेश संख्याकी दृष्टिसे समान ही हैं क्योंकि प्रत्येकके प्रदेश जगत्श्रेणिके घन प्रमाण हैं। पुद्गलका परमाणु जितने क्षेत्रको रोकता है उतना ही प्रदेशका प्रमाण है। अतः जघन्यक्षेत्र अर्थात् प्रदेश और जघन्यद्रव्य परमाणु अविभागी हैं उनका विभाग नहीं हो सकता। अब

१. म °क्षेत्रमेनितनिते । २. म °गियप्पुवु ।

क्षेत्रप्रमाणदिं षड्द्रव्यंगळ प्रमाणं पेळल्पडुगुं। जीवद्रव्यंगळु प्र≡फ श १ इ १६ लब्ध शला १६ प्र श १। फ ≡a इ श १६ लब्धं लोकमुमं जीवराशियुमनपर्वात्तसिदोडिदनंत। ख।
≡a ≡

मिदरिंदं फलराशियप्प लोकमं गुणिसिदोडे अनंतलोकप्रमितंगळप्पुवु। ≡a ख। पुद्गलंगळुमनंत-गुणितंगळप्पुवु। ≡ख ख। धर्म्मद्रव्यमुमधर्मद्रव्यमुं लोकाकाशद्रव्यमुं कालद्रव्यमुं नाल्कुं प्रत्येकं लोक-
= ≡

मात्रप्रदेशंगळप्पुवु ≡a व्यवहारकालं पुद्गलद्रव्यमं नोडलनंतगुणितलोकप्रमितमक्कु। ख ख ख। मदं नोडलुमलोकाकाशप्रदेशंगळु अनंतगुणितलोकमात्रमक्कुं ≡ ख ख ख ख। कालप्रमाणदिंदं षड्द्रव्यंगळगे प्रमाणं पेळल्पडुगुं।

=
जीवद्रव्यंगळु प्र=अ। फल श १ इ १६। लब्धशला १६। प्र श १ फ अ। इ १६ लब्धम-
अ अ

तीतकालमुमं जीवराशियुमनपर्वात्तसिदोडिदु। ख। ईयनंतदिंदं फलराशियनतीतकालमं गुणिसि-दोडनंतातीतकालप्रमाणंगळप्पुवु। अ। ख। पुद्गलंगळुं व्यवहारकालंगळुमलोकाकाशमुमनंत-गुणितक्रमदिंदमतीतकालानंतगुणितंगळप्पुवु। पु अ। ख ख। व्य=का अ। ख ख ख। अलोका-

जघन्यद्रव्यं चाविभागिनी स्त। अथ क्षेत्रप्रमाणेन षट्द्रव्याणि मीयन्ते—जीवद्रव्याणि प्र ≡a। फ श १, इ १६ लब्धं शला १६। प्र श १ फ ≡ इ श १६ लोकजीवराश्यपवर्तनेऽनन्तः। ख। अनेन फलराशि—लोके
≡ ≡

गुणिते अनन्तलोका भवन्ति ≡a ख। पुद्गला—अनन्तगुणा ≡ ख ख। धर्मद्रव्यमधर्मद्रव्यं लोकाकाशद्रव्यं कालद्रव्यं च लोकमात्रप्रदेशं। ≡। व्यवहारकालः पुद्गलद्रव्यादनन्तगुणः ≡ ख ख ख। ततोऽलोकाकाश-प्रदेशा अनन्तगुणा ≡ ख ख ख ख। कालप्रमाणेन जीवद्रव्याणि प्र। अ १। फ श १। इ १६। लब्धशलाका १६। प्र श १ फ अ। इ १६। अतीतकालजीवराश्यपवर्तने। ख। अनेन फलराश्यतीतकाले गुणिते अनन्ता
अ अ

अतीतकाला भवन्ति। अ ख। पुद्गलो व्यवहारकालोऽलोकाकाशप्रदेशाश्च अनन्तगुणितक्रमेण अनन्तातीत-[1]

क्षेत्रप्रमाणसे छहों द्रव्योंका माप करते हैं—जीवद्रव्य अनन्तलोक प्रमाण हैं। अर्थात् लोका-काशके प्रदेशोंसे अनन्तगुने हैं। इसके लिए त्रैराशिक करना—प्रमाणराशि लोक, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि जीवद्रव्यका प्रमाण। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर शलाकाराशिका परिमाण आया। पुनः प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि लोक, इच्छाराशि पूर्वशलाका प्रमाण। सो पूर्वशलाका प्रमाण जीवराशिको लोकका भाग देनेपर अनन्त पाये वही यहाँ शलाका प्रमाण जानना। इस अनन्तको फलराशि लोकसे गुणा करके प्रमाणराशि एक शलाकासे भाग देनेपर लब्ध अनन्तलोक आया। इसीसे जीवद्रव्यको अनन्त-लोक प्रमाण कहा है। इसी प्रकार कालप्रमाण आदिमें भी त्रैराशिक द्वारा जान लेना चाहिए।

जीवोंसे पुद्गल अनन्तगुणे हैं। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य लोकमात्र प्रदेशवाले हैं। व्यवहारकाल पुद्गल द्रव्योंसे अनन्तगुणा है। उससे अलोकाकाशके प्रदेश अनन्तगुणे हैं। आगे कालप्रमाणसे जीवद्रव्योंका प्रमाण कहते हैं—प्रमाणराशि अतीत-

1. ब °ता जी अतीतकाला।

काश । अ । ख ख ख ख । धर्म्माधर्म्म लोकाकाशकालद्रव्यंगळु प्र । फ १ । प श १ । इ लब्धशलाके प १ प्र श १ फ क इ । श प १ लब्धं संख्यातपल्यंगळुमं लोकमुमनपवर्त्तिसिदोडे इदु a । इदरिंदं कल्पमं फलराशियं गुणिसुत्तिरलु प्रत्येकमसंख्यातकल्पंगळप्पुवु । क a । क a । क a । क a । भावप्रमाणदिदं षड्द्रव्यंगळगे प्रमाणमं [1]पेळगुं । जीवद्रव्यंगळु प्र १६ । फ श १ । इ । के । लब्धशलाकेगळु के/१६ इवनपवर्त्तिसिदोडे । ख । प्र । ख । इनितु शलाकेगळगे केवलज्ञानमागलु । प । के । वोंदु शलाकेगेनितेंदु । इ श । १ । बंद लब्धं केवलज्ञानानंतैकभागमात्रंगळप्पुवु । वंता-दोडे पुद्गलकालालोकाकाशंगळं कुरुत्तु भागहार[2]भूतानंतंगळु नाल्कप्पुवु के/ख ख ख ख पुद्गलंगळ-नंतगुणितंगळु के/ख ख ख व्यवहारकालमनंतगुणितमक्कु के/ख ख मलोकाकाशमनंतगुणं के/ख

काला भवन्ति । पु अ ख ख । व्य = का अ ख ख ख । अलोक अ ख ख ख ख । धर्माधर्मलोकाकाशकाल-द्रव्याणि प्र । प १ फ श १ इ ≡ लब्धशलाका—प १ ≡ प्र श १ फ क । इ श a संख्यातपल्य-लोकापवर्तने । a । अनेन कल्पफलराशौ गुणिते प्रत्येकं असंख्यातकल्पा भवन्ति क a । क a । क a । क a । भावप्रमाणेन जीवद्रव्याणि प्र १६ फ श १ इ के लब्धशलाकाः के/१६ अपवर्तिते ख । प्र ख एतावच्छलाकाभि- केवलज्ञानं क के तदैकशलाकया इ श १ किमिति लब्धं केवलज्ञानानन्तैकभागमपि पुद्गलकालालोकाकाशा-पेक्षया चतुरनन्तभागहारं भवति के/ख ख ख ख पुद्गलाः के/ख ख ख व्यवहारकाल के/ख ख अलोकाकाश के/ख

काल, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि जीवोंका परिमाण। सो लब्धराशि अनन्त शलाका हुई। पुनः प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि अतीतकाल, इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका प्रमाण। सो फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर लब्धराशि प्रमाण अतीतकालसे अनन्त-गुणा जीवोंका प्रमाण होता है। इनसे पुद्गलद्रव्य व्यवहारकालके समय और अलोकाकाशके प्रदेश क्रमसे अनन्तगुणे होते हुए अनन्त अतीतकाल प्रमाण होते हैं। पुनः धर्मादिका प्रमाण कहते हैं—प्रमाणराशि कल्पकाल, फल एक शलाका, इच्छा लोक प्रमाण। ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्ध असंख्यात शलाका हुई। पुनः प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि कल्पकाल, इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका प्रमाण। ऐसा करनेपर लब्धराशि असंख्यात कल्पप्रमाण धर्म, अधर्म, लोकाकाश और काल ये चारोंको जानना। अर्थात् बीस कोड़ा-कोड़ी सागरके संख्यात पल्य होते हैं। उतना एक कल्पकाल है इससे असंख्यातगुणे धर्म, अधर्म, लोकाकाश और कालके प्रदेश हैं। अब भावप्रमाणसे जीवद्रव्योंको बतलाते हैं—प्रमाणराशि जीवद्रव्यका प्रमाण, फलराशि एकशलाका इच्छाराशि केवलज्ञान। लब्धप्रमाण अनन्त शलाका। पुनः प्रमाणराशि शलाकाप्रमाण। फलराशि केवलज्ञान, इच्छाराशि एक शलाका। सो लब्धराशि प्रमाण केवल ज्ञानके अनन्तवें भाग जीवद्रव्य जानने। वे पुद्गल, काल और अलोकाकाशकी अपेक्षा चार बार अनन्तका भाग केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंमें देनेसे जो प्रमाण आवे

१. म पेळल्पडुगुं। २. म °भूतानंतं।

धर्म्माधर्म्मालोकाकाशकालद्रव्यंगळु प्र ≡ फ श १ । इ ≡ ə । लब्ध शलाके ≡ ə इल्लियु भागहार- ≡ भूतलोकमुमं अवधिज्ञानविकल्पंगळप्प भाज्यभूतासंख्यातलोकमुमनपवर्त्तिसिदोडिदु ə । मत्तं प्र श ə । फ । ओ । इ । श । १ । लब्धमवधिज्ञानविकल्पासंख्यातैकभागप्रमितं प्रत्येकमप्पुवु ओ । ओ । ओ । ओ इंतु संख्याधिकारंतिवदुंदु ।
ə ə ə ə

सव्वमरूवी दव्वं अवट्ठिदं अचलिया पदेसावि ।
रूवी जीवा चलिया तिवियप्पा होंति हु पदेसा ॥५९२॥

सर्व्वमरूपि द्रव्यमवस्थितमचलिताः प्रदेशा अपि । रूपिणो जीवाश्चलिताः त्रिविकल्पा भवंति प्रदेशाः ॥

सर्व्वमरूपि द्रव्यं मुक्तजीवद्रव्यमुं धर्म्मद्रव्यमुमधर्म्मद्रव्यमुमाकाशद्रव्यमुं कालद्रव्यमुमेंबी अरूपिद्रव्यंगळनितुं अवस्थितं स्थानचलनमिल्लदुवप्पुदरिंदमवस्थितंगळप्पुवु । प्रदेशा अपि अवर प्रदेशंगळं अचलिताः अचलितंगळप्पुवु । रूपिणो जीवाः रूपिजीवंगळु चलिताः चलितंगळप्पुवु-। मवर प्रदेशंगळु त्रिविकल्पा भवंति खलु । विग्रहगतियोळु चलितंगळु अयोगिकेवलियोळचलितंगळु शेषजीवंगळ अष्टप्रदेशंगळचलितंगळु ।

शेषप्रदेशंगळु चलितंगळप्पुर्वितु चलितमुमचलितमुं चलिताचलितमुमेंबितु प्रदेशंगळु त्रिविकल्पंगळप्पुवु ।

धर्माधर्मलोकाकाशकालद्रव्याणि । प्र ≡ । फ श १ । इ ≡ ə लब्धशलाका ≡ ə भागहारभूतलोकेन भाज्ये ≡ अवधिविकल्पासंख्यातलोके अपवर्तिते । ə । पुनः प्र श ə । फ ओ । इ श १ लब्धोऽवधिविकल्पासंख्यातैकभागः प्रत्येक भवति ओ ओ ओ ओ ॥ इति संख्याधिकारः ॥५९१॥
ə ə ə ə

अरूपि द्रव्यं मुक्तजीवधर्माधर्माकाशकालभेदं सर्वं अवस्थितमेव स्थानचलनाभावात् । तत्प्रदेशा अपि अचलिताः स्युः । रूपिणो जीवाश्चलिता भवन्ति । तत्प्रदेशा. खलु त्रिविकल्पाः विग्रहगतौ चलिताः, अयोगकेवलिन्यचलिताः शेषजीवानामष्टप्रदेशाः अचलिताः शेषाः चलिताः ॥५९२॥

उतने (जीवद्रव्य) हैं। उनसे अनन्तगुणे पुद्गल हैं। पुद्गलोंसे अनन्तगुणे कालके समय हैं, उनसे अनन्तगुणे अलोकाकाशके प्रदेश हैं। वे भी केवलज्ञानके अनन्तवें भाग ही हैं। धर्मादिका प्रमाण लानेके लिए प्रमाणराशि लोक, फलराशि एक शलाका, इच्छा अवधिज्ञानके विकल्प। लब्धप्रमाण असंख्यात शलाका हुई। पुनः प्रमाणराशि असंख्यात शलाका, फलराशि अवधिज्ञानके विकल्प, इच्छाराशि एक शलाका। ऐसा त्रैराशिक करनेपर अवधिज्ञानके विकल्पोंके असंख्यातवें भाग धर्म, अधर्म, लोकाकाश, कालमें-से प्रत्येकके प्रदेशोंका प्रमाण होता है ॥५९१॥ संख्याधिकार समाप्त हुआ।

सब अरूपी द्रव्य—मुक्तजीव, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश, काल अवस्थित ही है, वे अपने स्थानसे चलते नहीं हैं। उनके प्रदेश भी अचल हैं। रूपी जीव चलते हैं उनके प्रदेश तीन प्रकारके होते हैं—विग्रह गतिमें प्रदेश चल ही होते हैं।

अयोगकेवली अवस्थामें अचल ही होते हैं। शेष जीवोंके आठ प्रदेश अचल और शेष प्रदेश चल होते हैं ॥५९२॥

पोग्गलदव्वंहि अणू संखेज्जादी हवंति चलिदा हु ।
चरिममहक्खंधम्मि य चलाचला होंति हु पदेसा ।।५९३।।

पुद्गलद्रव्ये अणवः संख्यातादयो भवंति चलिताः खलु । चरममहास्कंधे च चलाचला भवंति प्रदेशाः ।।

पुद्गलद्रव्यदोळु अणुगळुं द्व्यणुकादि संख्यातासंख्यातानंतपरमाणुस्कंधंगळुं चलितंगळु खलु स्फुटमागि, चरममहास्कंधदोळं प्रदेशाः परमाणुगळु चलाचला भवंति चलावलंगळप्पुवु ।

अणुसंखासंखेज्जाणंता य अगेज्झगेहि अंतरिया ।
आहारतेजभासामणकम्मइया धुवक्खंधा ।।५९४।।

अणुसंख्यातासंख्यातानंताश्चाग्राह्यैरंतरिताः आहारतेजोभाषामनःकार्म्मण ध्रुवस्कंधाः ।।

सांतरणिरंतरेण य सुण्णा पत्तेयदेह धुवसुण्णा ।
बादरणिगोदसुण्णा सुहुमणिगोदा णभा महक्खंधा ।।५९५।।

सांतरणिरंतरेण च शून्य प्रत्येकदेहध्रुवशून्यानि । बादरनिगोदशून्यानि सूक्ष्मनिगोदाः नभांसि महास्कंधाः ।।

अणुवर्ग्गणेगळेंदुं संख्याताणुसमूहवर्ग्गणेगळेंदु[2]मसंख्याताणुसमूहवर्ग्गणेगळेंदु[3] मनंतपरमाणुसमूहवर्ग्गणेगळेंदुं[4] आहारवर्ग्गणेगळेंदु[5]मी याहारवर्ग्गणं मोदलादुमेल्लमुमनंतपरमाणुस्कंधंगळेयप्पुवु–। मग्राह्यवर्ग्गणेगळेंदु[6] तैजसशरीरवर्ग्गणेगळेंदु[7]मग्राह्यवर्ग्गणेगळेंदु[8] भाषावर्ग्गणेगळेंदु[9]मग्राह्यवर्ग्गणेगळेंदु[10] मनोवर्ग्गणेगळेंदु[11]मग्राह्यवर्ग्गणेगळेंदु[12] कार्म्मणवर्ग्गणेगळेंदु[13] ध्रुववर्ग्गणेगळेंदु[14] सांतरणिरंतरवर्ग्गणेगळेंदु[15] शून्यवर्ग्गणेगळेंदु[16] प्रत्येकशरीरवर्ग्गणेगळेंदु[17] ध्रुवशून्यवर्ग्गणेगळेंदु[18] बादरनिगोदवर्ग्गणेगळेंदु[19] शून्यवर्ग्गणेगळेंदु[20] सूक्ष्मनिगोदवर्ग्गणेगळेंदु[21] नभोवर्ग्गणेगळेंदु[22] महास्कंधवर्ग्गणेगळेंदितु[23] पुद्गलवर्ग्गणेगळु त्रयो-

पुद्गलद्रव्ये अणवः द्व्यणुकादिसंख्यातासंख्यातानन्ताणुस्कन्धाश्चलिता खलु स्फुटम् । चरममहास्कन्धे च प्रदेशाः परमाणवः चलाचला भवन्ति ।।५९३।।

अणुवर्गणा संख्याताणुवर्गणा असंख्याताणुवर्गणा अनन्ताणुवर्गणा आहारवर्गणा अग्राह्यवर्गणा तैजसशरीरवर्गणा अग्राह्यवर्गणा भाषावर्गणा अग्राह्यवर्गणा मनोवर्गणा अग्राह्यवर्गणा कार्मणवर्गणा ध्रुववर्गणा सान्तरनिरन्तरवर्गणा शून्यवर्गणा प्रत्येकशरीरवर्गणा ध्रुवशून्यवर्गणा बादरनिगोदवर्गणा शून्यवर्गणा सूक्ष्मनिगोदवर्गणा नभोवर्गणा महास्कन्धवर्गणा चेति पुद्गलवर्गणाः त्रयोविंशतिभेदा भवन्ति । अत्रोपयोगी श्लोक —

पुद्गल द्रव्यमें परमाणु और द्वयणुक आदि संख्यात, असंख्यात और अनन्त परमाणुओंके स्कन्ध चलित होते हैं । अन्तिम महास्कन्धमें प्रदेश चल-अचल हैं ।।५९३।।

अणुवर्गणा, संख्याताणुवर्गणा, असंख्याताणुवर्गणा, अनन्ताणुवर्गणा, आहारवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, तैजसशरीरवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, भाषावर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, मनोवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, कार्मणवर्गणा, ध्रुववर्गणा, सान्तरनिरन्तरवर्गणा, शून्यवर्गणा, प्रत्येकशरीरवर्गणा, ध्रुवशून्यवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, नभोवर्गणा, महास्कन्धवर्गणा ये तेईस प्रकारकी पुद्गलवर्गणाएँ होती हैं । इस विषयमें उपयोगी श्लोक

विंशतिभेदंगळप्पुवु । इल्लिगुपयोगिश्लोकमिदु :—

"मूर्त्तिमत्सु पदार्त्थेषु संसारिण्यपि पुद्गलाः ।
अकर्म्मकर्म्मं नोकर्म्मजातिभेदेषु वर्ग्गणाः ॥" [ ]

मूर्त्तिमंतंगळप्प पदार्त्थंगळोळं संसारिजीवनोळं पुद्गल[1]शब्दं, अकर्म्मजातिगळोळं कर्म्मजातिगळोळं नोकर्म्मजातिगळोळं वर्ग्गणे[2] यें‌ब शब्दं वर्त्तिसुगुं । इल्लियणुवर्ग्गणेगळु सुगमंगळु । संख्याताणुसमूह वर्ग्गणेगळु द्व्यणुक त्र्यणुकं मोदलादसदृश धनिकंगळु मेले मेलेकैक परमाणुविवर्धिकंगळु नडदु चरमदोळु संख्यातोत्कृष्टप्रमितपरमाणुस्कंधंगळु सदृशधनिकंगळु तद्योग्यंगळप्पुवु उ १५ । १५ । १५ । असंख्यातवर्ग्गणेगळोळु जघन्यवर्ग्गणेगळु सदृशधनिकंगळु । परि-

    ०
    ०
० ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३
ज २ । २ । २ । २ । २
अणु १ । १ । १ । १ । १ । १

मितासंख्यातजघन्याराशिप्रमितपरमाणुस्कंधंगळप्पुवु । मेलेकैकपरमाणुचयक्रमदिदं पोगि चरमदोळु द्विकवारासंख्यातोत्कृष्टराशिप्रमितपरमाणुगळ स्कंधंगळु सदृशधनिकंगळप्पुवु

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्गलः ।
अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेषु वर्गणाः ॥१॥

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिजीवे च पुद्गलशब्दो वर्तते । अकर्मजातिषु कर्मजातिषु नोकर्मजातिषु च वर्गणाशब्दो वर्तते । अत्राणुवर्गणा (सुगमा) एकैकपरमाणुरूपा स्यात् १ । १ । १ । १ । १ । अणुवर्गणा । संख्याताणुवर्गणा द्व्यणुकादयः एकैकाण्वधिकाः, उत्कृष्टसंख्याताणुकस्कन्धपर्यन्ताः—

उ १५ । १५ । ०० १५
   ०   ०   ०
   ०   ०   ०
म ३   ३ ०० ३
ज २   २ ०० २

असंख्याताणुवर्गणा जघन्यपरिमितासंख्याताणुकादयः एकैकाण्वधिका उत्कृष्टद्विकवारासंख्याताणुस्कन्धपर्यन्ताः—

है—पुद्गल शब्द मूर्तिमान् पदार्थोंका और संसारी जीवोंका वाचक है। और वर्गणाशब्द अकर्मजातिके, कर्म जातिके और नोकर्मजातिके पुद्गलोंको कहता है।

इनमें-से अणुवर्गणा सुगम है। एक-एक परमाणुको अणुवर्गणा कहते हैं। अन्य बाईस वर्गणाओंमें भेद है सो उनमें जघन्य और उत्कृष्ट भेद कहते हैं। द्व्यणुकसे लेकर एक-एक परमाणु बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट संख्यात परमाणुओंके स्कन्ध पर्यन्त संख्याताणुवर्गणा है। उसमें जघन्य दो अणुओंका स्कन्ध है और उत्कृष्ट-उत्कृष्ट संख्यात अणुओंका स्कन्ध है। जघन्य परिमितासंख्यात परमाणुओंसे लेकर एक-एक अणु बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात परमाणुओंके स्कन्ध पर्यन्त असंख्याताणुवर्गणा है। यहाँ जघन्य परीतासंख्यात परमाणुओंका स्कन्ध है और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात परमाणुओंका स्कन्ध है। संख्याताणुवर्गणा और असंख्याताणुवर्गणामें विवक्षितवर्गणाको लानेके लिए गुणकार नीचेकी वर्गणासे विवक्षित-

1. म पुद्गलंगलु । 2. म °णेगलेंबुवप्पुवु ।

उ २५५ । २५५ । ० । २५५
    ०
    ०
म १६ १६ ०० १६
ज १६ । १६ । ०० । १६

ई संख्यातासंख्यातवर्ग्गणेगळोळु तंतम्मधस्तनराशियिंदमनंतरोपरितनराशिगळं भागिसिदोडावुदोंदु लब्धमदु विवक्षितवर्ग्गणेगे गुणकारमक्कुमेंतेंदोडे संख्यातवर्ग्गणेगळोळु जघन्यवर्ग्गणेयिंद २ मुपरितनराशियं ३ भागिसि ३/२ बंद लब्धं द्वितीयवर्ग्गणेयोळु गुणकारमक्कुं गुण्यं जघन्यवर्ग्गणेयक्कु २ ३/२ मिदनपवर्त्तिसिदोडे त्र्यणुकमक्कु—३ । मंते द्विचरमवर्ग्गणेयिंदं चरमवर्ग्गणेयं भागिसिदोडिदु १५/१४ चरमवर्ग्गणेयोळु गुणकारमक्कुं । गुण्यं द्विचरमवर्ग्गणेयक्कु १४ १५/१४ मिदनपवर्त्तिसिदोडे चरमवर्ग्गणेयक्कु—१५ । मिंते असंख्यातवर्ग्गणेगळोळं द्विचरमवर्ग्गणेयिंदमुपरितनचरमवर्ग्गणेयं भागिसिदोडे चरमदोळु गुणकारमक्कुं गुण्यं द्विचरमवर्ग्गणेयक्कु २५४ । २५५/२५५ मिदनपवर्त्तिसिदोडे चरमवर्ग्गणेयक्कुं । २५५ । इल्लियोंदु परमाणुवं कूडिदोडे अनंतवर्ग्गणेगळोळु जघन्यवर्ग्गणे परिमितानंतजघन्यराशिप्रमाणमक्कुमेकेंदोडे द्विकवारासंख्यातोत्कृष्टदोळोंदु रूपं कूडिदोडे या स्कंधमनंतवर्ग्गणेगळोळु जघन्यवर्ग्गणेयप्पुर्दारिदं । आ जघन्यानंतवर्ग्गणेय मेलेकैक परमाणुविंदमधिकंगळागुत्तं पोगि तदुत्कृष्टवर्ग्गणे तज्जघन्यमं नोडलनंतगुणितमक्कुं उ २५६ ख मेलेयाहारजघन्यसदृशवर्ग्गवर्ग्गणेगळु एकपरमाणुविंदमधिकंगळ-
    ०
    ०
ज २५६

उ २५५ । २५५ ० ० २५५
  ०   ०   ०
  ०   ०   ०
म १६ । १६ । ० ० १६
ज १६ । १६ । ० ० १६

अत्र संख्याताणुवर्गणासु असंख्याताणुवर्गणासु च विवक्षितवर्गणामानेतुं गुणकारः तदधस्तनवर्गणाया अधस्तनवर्गणाभक्तविवक्षितवर्गणामात्रः यथा त्र्यणुकमानेतुं द्व्यणुकस्य द्व्यणुकभक्तत्र्यणुकमात्रः २ । ३/२ तदनन्तरोपरि-

वर्गणामें भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतना है। जैसे त्र्यणुक लानेके लिए द्व्यणुकका गुणकार द्व्यणुकसे त्र्यणुकमें भाग देनेपर जितना प्रमाण आवे उतना है। उसके अनन्तर उत्कृष्ट असंख्याताणुवर्गणामें एक परमाणु अधिक होनेपर अनन्ताणुवर्गणाका जघन्य होता है। उसे सिद्धराशिके अनन्तवें भाग प्रमाण अनन्तसे गुणा करनेपर अनन्ताणुवर्गणाका उत्कृष्ट होता है। उसमें एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी आहारवर्गणाका जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशिके अनन्तवें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे जघन्यमें मिलानेपर आहारवर्गणा

प्पुवुत्कृष्टं । तज्जघन्यानंतैकभागदिं विशेषाधिकमक्कुं उ २५६ ख ख मेलणऽग्राह्यवर्ग्गणेगळोळु
आ ००

ज २५६ ख

जघन्यमेकपरमाणुविंदमधिकमक्कुं । तदुत्कृष्टं जघन्यमं नोडलनंतगुणितमक्कु :—

उ २५६ ख १ ख ख तदनंतरोपरितनतेजःशरीरवर्ग्गणेगळोळु जघन्यवर्ग्गणे एकपरमाणु-
अग्रा ०० ख

ख

ज २५६ ख १ ख

विंदधिकमक्कुं तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागदिंदं विशेषाधिकमक्कुं उ २५६ ख १ ख १ ख ख
तेज ०० ख ख

जघ २५६ ख १ ख १ ख
ख

तनमनन्तवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तगुणं उ २५६ ख तदनन्तरोपरितनाहारवर्गणाजघन्य-
०
०
ज २५६

मेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनन्तैकभागेनाधिकं उ २५६ ख ख तदनन्तरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यमेकाणु-
० ख
आहा ००

ज २५६ ख

नाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तगुणं— उ २५६ ख १ ख ख तदनन्तरोपरितनतेजःशरीरवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं
० ख
अगेज्ज ००

ज २५६ ख १ ख
ख

उत्कृष्ट होता है। उत्कृष्ट आहारवर्गणामें एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी अग्राह्य-वर्गणाका जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशिके अनन्तवें भागसे भाग देकर जो लब्ध आवे उसे उसीमें मिला देनेपर अग्राह्यवर्गणाका उत्कृष्ट होता है। इसमें एक परमाणु अधिक होनेपर उससे

नंतरोपरितनाग्राह्यवर्गणेगळोळु जघन्यमेकपरमाणुविंदमधिकमक्कुं । तदुत्कृष्टं तज्जघन्यमं नोडलनंतगुणमक्कुं उ २५६ ख १ ख १ ख ख ख / अग्रा ० ख ख ; ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख / ख ख तदनंतरोपरितनभाषावर्गणेगळोळु जघन्यमेकपरमाणुविंदधिकमक्कुं, तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागदि विशेषाधिकमक्कुं उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख ख / भाषा ० ख ख ख तदनंतरोपरितनाग्राह्यवर्गणेगळोळु जघन्य- ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख / ख ख

---

५ तदुत्कृष्टं तदनन्तैकभागेनाधिकं—उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख / ० ख ख / तेजो ० ; ज २५६ ख १ ख १ ख / ख

तदनन्तरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तगुणं—उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख ख । / ० ख ख / अग्रेज्ज ० ; ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख / ख ख

तदनन्तरोपरितनभाषावर्गणाजघन्यं एकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनन्तैकभागेनाधिकं—

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख / ० ख ख ख / भाषा ० ; ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख / ख ख

ऊपरकी तैजसशरीरवर्गणाका जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशिके अनन्तवें भागसे भाग देनेसे जो लब्ध आवे उसे उसीमें मिलानेपर तैजसशरीरवर्गणाका उत्कृष्ट होता है। उसमें एक
१० परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी अग्राह्यवर्गणाका जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशिके अनन्तवें भागसे गुणा करनेपर उसका उत्कृष्ट होता है। उसमें एक परमाणु अधिक होनेपर

मेकपरमाणुविंदधिकमक्कुं तदुत्कृष्टमनंतगुणितमक्कुं उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख ख ख ख
अग्रा ꣸ ख ख ख

ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख
ख ख ख

तदनंतरोपरितनमनोवर्गणेगळोळु जघन्यमेकपरमाणुविंदधिकमक्कुं तदुत्कृष्टमनंतैकभागदिं विशेषाधिकमक्कुं उ २५६ ख ख ख ख १ ख १ ख १ ख १ ख तदनंतरोपरितना-
मनोवर्गणा ꣸ ख ख ख ख

ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख ख ख ख
ख ख ख

ग्राह्यवर्गणेगळोळु जघन्यमेकपरमाणुविंदधिकमक्कुं तदुत्कृष्टं तज्जघन्यमं नोडलनंतगुणितमक्कुः—

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख ख १ ख ख
अग्राह्य ꣸ ख ख ख ख

ज २५६ ख १ ख ख ख १ ख ख १ ख १ ख
ख ख ख ख

तदनन्तरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यं एकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तगुणं—

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख ख
० ख ख ख
अग्रेज्ञ ꣸

ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख
ख ख ख

तदनन्तरोपरितनमनोवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनन्तैकभागेनाधिकं—

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख
० ख ख ख ख
मनोव ꣸

ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख
ख ख ख

तदनन्तरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तगुणं—

उससे ऊपरकी भाषा वर्गणाका जघन्य है। उसमें सिद्धराशिके अनन्तवें भागसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसीमें मिलानेपर उसका उत्कृष्ट होता है। उसमें एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी अग्राह्यवर्गणाका जघन्य है। उससे अनन्तगुणा उसका उत्कृष्ट होता है। उसमें एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी मनोवर्गणाका जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशिके

तदनंतरोपरितनकार्म्मणवर्गणाजघन्यमेकपरमाणुविदधिकमक्कुं । अदरुत्कृष्टं तदनंतैकभागविदं विशेषाधिकमक्कुं

उ २५६ ख १ ख ख ख १ ख १ ख ख १ ख ख ख
कार्म्मण ० ख ख ख ख ख

ज २५६ ख १ ख ख ख ख १ ख ख १ ख १ ख
ख ख ख ख

तदनंतरोपरितनध्रुववर्गणेगळोळु जघन्यमेकपरमाणुविदधिकमक्कुं तदुत्कृष्टमनंतजीवराशिगुणितमक्कुं:—

उ २५६ ख १ ख ख ख १ ख १ ख १ ख ख १ ख ख १६ ख
ध्रुव ० ख ख ख ख ख

ज २५६ ख १ ख ख १ ख ख १ ख ख १ ख ख १ ख
ख ख ख ख ख

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख ख
० ख ख ख ख
अग्रेज्झ ०

ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख
ख ख ख ख ख

तदनन्तरोपरितनकार्मणवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनन्तैकभागेनाधिकं—

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख
० ख ख ख ख ख
कम्मव ०

ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख
ख ख ख ख

तदनन्तरोपरितनध्रुववर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तजीवराशिगुणं—

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १६ ख
० ख ख ख ख ख
ध्रुव ०

ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख
ख ख ख ख ख

अनन्तवें भागसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसीमें मिला देनेपर उसका उत्कृष्ट होता है। उससे एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी अग्राह्यवर्गणाका जघन्य है। उससे अनन्तगुणा उसका उत्कृष्ट है। उससे एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी कार्मणवर्गणाका जघन्य है। उसमें सिद्धराशिके अनन्तवें भागसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसीमें मिलानेपर उसका उत्कृष्ट होता है। उससे एक परमाणु अधिक उससे ऊपरकी ध्रुववर्गणाका

तवनंतरोपरितनसांतरनिरंतरवर्ग्गणेगळोळु जघन्यमेकपरमाणुविंदधिकमक्कुं । तदुत्कृष्ट तज्जघन्यमं नोडलनंतजीवराशिगुणितमक्कुमवक्के संदृष्टि :—

उ २५६ ख १ ख ख ख ख ख ख १ ख ख ख १६ ख १६ ख
सांतर नि ० ख ख ख ख ख

ज २५६ ख १ ख ख १ ख ख ख १ ख १ ख ख ख १६ ख
ख ख ख ख ख

इल्लि विशेषं पेळल्पडुगुं । परमाणुवर्ग्गणे मोदल्गोंडु ई सांतरनिरंतरवर्ग्गणेगळ उत्कृष्टवर्ग्गणे पर्य्यंतं पदिनैदुं वर्ग्गणेगळ सदृशधनिकवर्ग्गणेगळु अनंतपुद्गलवर्ग्गमूलमात्रंगळप्पुवु । पु = मुखवंतागुत्तं विशेषहीनक्रमंगळप्पुवल्लि प्रतिभागहारं सिद्धानंतैकभागमक्कुमें बिदु तदनंतरोपरितनशून्यवर्ग्गणेगळोळु जघन्यमेकरूपाधिकमक्कुमुत्कृष्टमनंतजीवराशि गुणितमक्कुं :—

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख ख ख ख ख १ ख ख १६ ख १६ ख १६ ख
शून्य ० ख ख ख ख ख

ज २५६ ख १ ख ख ख १ ख ख १ ख ख १ ख ख १ १६ ख १६ ख
ख ख ख ख ख

वितु पदिनारुं वर्ग्गणेगळेकप्रकारदिंदं सिद्धंगळप्पुवु ।

तदनन्तरोपरितनसान्तरनिरन्तरवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तजीवराशिगुणं—

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १६ ख १६ ख
ख ख ख ख ख

सान्तर ०
निरन्तर ०

ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १६ ख
ख ख ख ख ख

अत्रायं विशेषः—परमाणुवर्गणामादिं कृत्वा सान्तरनिरन्तरवर्गणापर्यन्तं पञ्चदशवर्गणानां सदृशधनिकानि अनन्तगुणपुद्गलवर्गमूलमात्राण्यपि विशेषहीनक्रमाणि भवन्ति । तत्र प्रतिभागहारः सिद्धानन्तैकभागः । तदनन्तरोपरितनशून्यवर्गणाजघन्यं एकरूपाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तजीवराशिगुणं—

जघन्य है। उसे अनन्तजीवराशिसे गुणा करनेपर उसका उत्कृष्ट होता है। उससे एक परमाणु अधिक उससे ऊपरकी सान्तरनिरन्तरवर्गणाका जघन्य है। उसे अनन्तजीवराशिसे गुणा करनेपर उसका उत्कृष्ट होता है। यहाँ इतना विशेष है कि परमाणुवर्गणासे लेकर सान्तरनिरन्तरवर्गणा पर्यन्त पन्द्रह वर्गणाओंका समानधन अनन्तगुणे पुद्गलोंके वर्गमूल प्रमाण होनेपर भी क्रमसे विशेषहीन है। उनका प्रतिभागहार सिद्धराशिका अनन्तवाँ भाग है।

तदनंतरोपरितनप्रत्येकशरीरवर्ग्गणे पेळल्पडुगुमदें तें दोडे ओव्वं जीवन वोंदु देहदोळुपचितकर्म्मनोकर्म्मस्कंधं प्रत्येकशरीरवर्ग्गणेयें बुदक्कुमदर जघन्यवर्ग्गणे यावजीवनोळक्कुमें दोडे आवनोर्व्व क्षपितकर्म्मांशलक्षणदिदं बंदु पूर्व्वकोटिवर्षायुर्म्मनुष्यजीवंगळोळ्पुट्टि मनुष्यनागियंतर्म्मुहूर्त्ताधिकाऽष्टवर्षंगळिदं मेले सम्यक्त्वमुमं संयममुमं युगपत्स्वीकरिसि सयोगकेवलियादोंडदेशोनपूर्व्वकोटियं औदारिकतैजसशरीरंगळ अस्थितिगणनेयोळु निर्ज्जरेयं माडि कार्म्मणशरीरक्कं गुणश्रेणिनिर्ज्जरेयं माडि चरमसमयभव्यसिद्धमप्प चरमसमयदयोगिकेवलिगे त्रिशरीरसंचयं नामगोत्रवेदनीयंगळ मेले आयुरौदारिकतैजसशरीरंगळिनधिकमाद त्रिशरीरसंचयं प्रत्येकशरीरजघन्यवर्ग्गणेयक्कुं । तदुत्कृष्टवर्ग्गणासंभवमावेडेयोळें देडे नंदीश्वरद्वीपद अकृत्रिममहाचैत्यालयंगळ धूपघटंगळोळं स्वयंभूरमणद्वीपदकर्म्मभूमिप्रतिबद्धक्षेत्रदोळु नेगेवकाळिकच्चुगळोळं बादर-

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १६ ख १६ ख १६ ख
० ख ख ख ख ख
सुण्णव ०
०
ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १६ ख १६ ख
ख ख ख ख ख

षोडशवर्गणा एवं सिद्धाः । तदनन्तरोपरितनप्रत्येकशरीरवर्गणा तु एकजीवस्य एकदेहोपचितकर्मनोकर्मस्कन्ध । तत्र कश्चिज्जीवः क्षपितकर्मांशलक्षणः पूर्वकोटिवर्षायुः मनुष्यो भूत्वा अन्तर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षोपरि सम्यक्त्वसंयमौ युगपत् स्वीकृत्य सयोगकेवली जातः देशोनपूर्वकोटिपर्यन्तमौदारिकतैजसशरीरयोरवस्थितिगणनया निर्जरा कुर्वन् कार्मणशरीरस्य च गुणश्रेणिनिर्जरा कुर्वन् चरमसमयायोगिकेवली स्यात् । तस्यायु औदारिकतैजसशरीराधिकनामगोत्रवेदनीयरूपत्रिशरीरसंचयः तज्जघन्यं भवति । नन्दीश्वरद्वीपस्य अकृत्रिममहाचैत्यालयाना धूपघटेषु स्वयंभूरमणद्वीपसंभूतदवाग्निषु च बादरपर्याप्ततैजस्कायिकाः एकबन्धनबद्धा असख्यातावलिवर्गमात्रा.

उत्कृष्ट सान्तरनिरन्तरवर्गणामें एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी शून्यवर्गणाका जघन्य होता है। उसे अनन्तगुणित जीवराशिके प्रमाणसे गुणा करनेपर उसका उत्कृष्ट होता है। इस प्रकार सोलह वर्गणा सिद्ध हुईं। उससे ऊपर प्रत्येक शरीर वर्गणा है। एक जीवके एक शरीरके विस्रसोपचय सहित कर्म-नोकर्मके स्कन्धको प्रत्येक शरीरवर्गणा कहते हैं। शून्यवर्गणाके उत्कृष्टसे एक परमाणु अधिक जघन्य प्रत्येक शरीरवर्गणा होती है। जिसके कर्मके अंश क्षयरूप हुए हैं ऐसा कोई क्षपितकर्मांश जीव एक पूर्वकोटि वर्ष आयु लेकर मनुष्य जन्म धारण करके अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षके ऊपर सम्यक्त्व और संयमको एक साथ स्वीकार करके सयोगकेवली हुआ। वह कुछ कम एक पूर्व कोटी पर्यन्त औदारिक शरीर और तैजसशरीरकी अवस्थिति गणनाके अनुसार निर्जरा करता हुआ और कार्मणशरीरकी गुणश्रेणिनिर्जरा करता हुआ अयोगकेवलीके चरमसमयको प्राप्त हुआ। उसके आयुकर्म औदारिक और तैजस शरीरके साथ नाम गोत्र वेदनीय कर्मके परमाणुओंका समूह रूप जो तीन शरीरोंका स्कन्ध होता है वह जघन्य प्रत्येक शरीरवर्गणा है। इस जघन्यको पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा होती है। नन्दीश्वर द्वीपके अकृत्रिम महाचैत्यालयोंके धूपघटोंमें और स्वयम्भूरमणद्वीपमें उत्पन्न दवाग्निमें असंख्यात

पर्य्याप्ततेजस्कायिकजीवंगळेकबंधनबद्धंगळऽसंख्यातावलिवर्ग्गप्रमितंगळवरोळु गुणितकर्म्मांशगळप्प जीवंगळु यदि सुष्ठु बहुकंगळप्पुवादोडमावल्यसंख्यातैकभागप्रमितंगळेयप्पुवुळिदवेल्लम गुणितकर्म्मांशंगळेयप्पुवा गुणितकर्म्मांशंगळेकबंधनबद्धंगळ् बादरपर्य्याप्ततेजस्कायिकंगळ सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयं औदारिकतैजसकार्म्मणशरीरसंचयं प्रत्येकदेहोत्कृष्टवर्ग्गणेयक्कुं :—

उ स ३२ ७ ७ ख ख १ २ १६ ख ८ ई प्रत्येकशरीरोत्कृष्टवर्ग्गणेये रूपाधिकमादोडे
प्रत्येक शरीर ≡ ७

ज स ७ ७ ख १२ – १६ ख ३

ध्रुवशून्यवर्ग्गणेगळोळु जघन्यवर्ग्गणेयक्कुं। बादरनिगोदजघन्यवर्ग्गणेयावेडेयोळ्संभविसुगुमें दोडे—

आवनोर्व्वं क्षपितकर्म्मांशलक्षणदिदं बंदु पूर्व्वकोटिवर्षायुर्म्मनुष्यनागि पुट्टि गर्ब्भाद्यष्टवर्षंमंतर्म्मुहूर्त्ताधिकंगळमेले सम्यक्त्वमुमं संयममुमं युगपत्कैकोंडु कर्म्मंक्कुत्कृष्टगुणश्रेणिनिर्ज्जरेयं देशोनपूर्व्वकोटिवर्षंबरं माडियंतर्म्मुहूर्त्तावशेषदोळु सिद्धितव्यनेंदितु क्षपकश्रेणियनेरिदोनुत्कृष्टकर्म्मनिर्ज्जरेयं क्रियमाणं क्षीणकषायनादोनातंगे शरीरदोळु जघन्यदिदमुत्कृष्टदिंदमुमेकबंधनबद्धंगळप्प

तेषु गुणितकर्मांशाः सुष्ठु बहुत्वेऽपि आवल्यसंख्यातैकभागमात्राः ८ तेषा सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयस्तदुत्कृष्टं

भवति— उ स ३२ ७ ७ ख ख १२– १६ ख ८ इदमेव रूपाधिकं ध्रुवशून्यवर्गणाजघन्यं
पत्तेयशरीर ० ० ० ७

ज स ७ ७ ख ख १२– १६ ख ३

भवति। कश्चित् क्षपितकर्मांशलक्षणो जीवः पूर्वकोटिवर्षायुः मनुष्यो भूत्वा अन्तर्मुहूर्ताधिकगर्भाद्यष्टवर्षोपरि सम्यक्त्वसंयमौ युगपत् स्वीकृत्य कर्मणामुत्कृष्टगुणश्रेणिनिर्जरा देशोनपूर्वकोटिवर्षपर्यन्तं कुर्वन् अन्तर्मुहूर्ते सिद्धितव्यमास्ते तदा क्षपकश्रेण्यारूढः उत्कृष्टकर्मनिर्जरा कुर्वन् क्षीणकषायो जातः, तच्छरीरे जघन्येन उत्कृष्टेन

आवलीके वर्ग प्रमाण बादर पर्याप्त तैजस्कायिक जीवोंके शरीरोंका एक स्कन्ध रूप हैं। उनमें गुणित कर्मांश जीव बहुत अधिक होनेपर भी आवलीके असंख्यातवें भागमात्र हैं। उनका औदारिक तैजस कार्मणशरीरोंका विस्रसोपचयसहित उत्कृष्ट संचय उत्कृष्ट प्रत्येक शरीरवर्गणा है। उसमें एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य ध्रुवशून्यवर्गणा होती है। इस जघन्यको सब मिथ्यादृष्टि जीवोंके प्रमाणको असंख्यात लोकसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उससे गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है। उससे एक परमाणु अधिक बादरनिगोद वर्गणा है। बादर निगोदिया जीवोंके विस्रसोपचय सहित कर्म-नोकर्म परमाणुओंके एक स्कन्धको बादरनिगोदवर्गणा कहते हैं। वह कहाँ पायी जाती है यह कहते हैं—क्षपितकर्मांश लक्षणवाला कोई जीव एक पूर्वकोटि वर्षकी आयुवाला मनुष्य हुआ। अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षके ऊपर सम्यक्त्व और संयमको एक साथ धारण करके कुछ कम पूर्व कोटिवर्ष पर्यन्त कर्मोंकी उत्कृष्ट गुणश्रेणि निर्जरा करते हुए जब सिद्ध पद प्राप्त करनेमें अन्तर्मुहूर्तकाल शेष रहा तब

पुळविगळु आवल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळेयप्पुवेकें दोडेल्ला स्कंधंगळोळमसंख्यातलोकमात्रपुळविगळें बुदिल्लेकें बोडे तद्विधप्ररूपणाभावमप्पुदरिंदं । तदावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुळविगळोळिर्द्द निगोदशरीरंगळु त्रैराशिकसिद्ध प्र पु १ फ ≡ a इ पु ८/a लब्धप्रमितंगळप्पु ≡a ८/a विल्लि । प्र । शरी १ । फ जी १३–/९ ≡ a ५ इ श ≡ a ८/a लब्धं बादरनिगोदजीवंगळिवु क्षीणकषायन शरीरस्थंगळप्पुवु १३– ≡ a ८/a /९ ≡ a ५ ई जीवंगळोळु क्षीणकषायन प्रथमसमयदोळु अनंतबादरनिगोदजीवंगळु मृतंगळप्पुवु । द्वितीयसमयदोळु प्रथमसमयदोळ्मृतमाद जीवराशियनावल्यसंख्यातैकभागदिदं भागिसिदेकभागमात्रविशेषाधिकंगळु मृतरप्पुवु ।

इंतु विशेषाधिकक्रमदिदं मृतमप्पुवेन्नेवरमावलिपृथक्त्वमन्नेवरमल्लि बळिकमावलिसंख्यातैकभागविशेषाधिकक्रमदिदं मृतंगळप्पु वेन्नेवरं क्षीणकषायगुणस्थानकालमावल्यसंख्यातैकभागमात्रावशेषमक्कुमन्नेवरमल्लिदं बळिकमुपरितनानंतरसमयदोळु पळितोपमासंख्येयभागगुणितजीवंगळु मृतंगळप्पुवल्लिदं मेले संख्यातपल्यगुणितक्रमदिदं मृतंगळप्पुवेन्नेवरं क्षीणकषायचरम-

च एकबन्धनबद्धपुलवय आवल्यसंख्यातैकभागमात्रा सन्ति । कुतः ? सर्वस्कन्धेषु असंख्यातलोकमात्रतत्प्ररूपणाभावात् तदावल्यसंख्यातैकभागपुलवीस्थितनिगोदशरीराणि प्र पु १ । फ ≡ a । इ पु ८/a इति त्रैराशिकसिद्धानि एतावन्ति ≡ a ८/a एतेषु पुनः प्र श १ । फ जी १३—/९ ≡ a ५ इ शरी ≡ a ८/a इति त्रैराशिकलब्धाः १३— ≡ a ८/a /९ ≡ a ५ बादरनिगोदजीवा एतावन्त. । एतेषु क्षीणकषायप्रथमसमये अनन्ता म्रियन्ते । द्वितीयसमयेऽनन्तमृतराशिमावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकभागाधिका म्रियन्ते । एवमावलिपृथक्त्वे गते आवलिसंख्यातैकभागाधिकक्रमेण म्रियन्ते यावत्तद्गुणस्थानकाल आवल्यसंख्यातैकभागमात्रोऽवशिष्यते । तदनन्तरसमये पलितो-

क्षपक श्रेणिपर आरोहण करके कर्मोंकी उत्कृष्ट निर्जरा करता हुआ क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती हुआ। उसके शरीरमें जघन्य और उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुलवी एक बन्धनबद्ध होती हैं। क्योंकि सब स्कन्धोंमें पुलवी असंख्यातलोकमात्र कहे हैं। एक-एक पुलवीमें असंख्यातलोकप्रमाण शरीर होते हैं। एक-एक शरीरमें सिद्धराशिसे अनन्तगुणे और संसार राशिके अनन्तवें भाग जीव होते हैं। सो आवलीके असंख्यातवें भागको असंख्यातलोकसे गुणा करनेपर शरीरोंका प्रमाण होता है। उस शरीरोंके प्रमाणको एक शरीरमें रहनेवाले निगोदिया जीवोंके प्रमाणसे गुणा करनेपर जितना प्रमाण हो उतना एक स्कन्धमें निगोदिया जीवोंका प्रमाण जानना। इनमें-से क्षीणकषाय गुणस्थानके प्रथम समयमें अनन्त जीव स्वयं आयु पूरी होनेसे मरते हैं। दूसरे समयमें पहले समयमें मरे हुए जीवोंके प्रमाणमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर जो प्रमाण आवे उतने अधिक जीव मरते हैं।

समयमन्नेवरमिल्लियावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुळविगळोळु पृथक् पृथगसंख्यातलोकमात्रशरीरंगळिदं समाकीर्णंगळोळु पल्यासंख्यातैकभागमृतजीवंगळ प्रमाणदिदं हीनमागि स्थिताऽऽगुणित कर्म्मांशानंतानंतजीवंगळ अनंतानंतविस्रसोपचयसहितत्रिसरीरसंचयं सर्व्वजघन्यबादरनिगोदवर्ग्गणेयक्कु मी बादरनिगोदजघन्यवर्ग्गणेये एकपरमाणुविदं हीनमावुदादोडा उत्कृष्टध्रुवशून्यवर्ग्गणेयक्कुं

उ = स ० ० ख ख १२–१६ ख १३ ≡ ० ८ प
० प ०
०
बादरनिगोदोत्कृष्टवर्ग्गणेयाबेडेयोळु संभविध्रुवशून्यवर्ग्गणा ० ९ ≡ ० ५

ज स ३२ ० ० ख ख १२ १६ ख ८
०

सुगुमेकें दोडे कर्म्मभूमिप्रतिबद्धस्वयंभूरमणद्वीपद मूलकादिशरीरंगळोळेकबंधनबद्धंगळप्प जगच्छ्रे-

पमासंख्यातैकभागगुणा म्रियन्ते। ततः संख्यातपल्यगुणितक्रमेण म्रियन्ते, यावत्क्षीणकषायचरमसमयस्तावत्। तत्रावल्यसंख्यातैकभागपुलविषु पृथक्पृथगसंख्यातलोकमात्रशरीराकीर्णेषु पल्यासंख्यातैकभागमृतजीवप्रमाणेनोना गुणितकर्मांशानन्तानन्तजीवानामनन्तानन्तविस्रसोपचयसहितत्रिशरीरसंचयो जघन्यबादरनिगोदवर्गणा भवति इयमेवैकाणुना हीना सती उत्कृष्टध्रुवशून्यवर्गणा भवति—

उ ० स ० ० ख ख १२—१६ ख १३—। ≡ ० ८ प
० ० ०
ध्रुवसुण्णा ० ९ ≡ ० ५ प
० ०

ज ० स ३२ ० ० ख ख १२—१६ ख ८
०

स्वयंभूरमणद्वीपस्य मूलकादिशरीरेष्वेकबन्धनबद्ध जगच्छ्रेण्यसंख्येयभागमात्रपुलविषु स्थितानां गुणित-

इस प्रकार क्षीणकषाय गुणस्थानके प्रथम समयसे लेकर आवली पृथक्त्वकाल तक आवलीके असंख्यातवें भाग अधिक जीव प्रतिसमय क्रमसे तबतक मरते हैं जबतक क्षीणकषाय गुणस्थानका काल आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र शेष रहता है। उसके अनन्तर समयमें पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणित जीव मरते हैं। उसके पश्चात् पूर्व-पूर्व समयमें मरे जीवोंको संख्यात पल्यसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने-उतने जीव क्षीणकषाय गुणस्थानके अन्तिम समयपर्यन्त प्रति समय मरते हैं। सो अन्तके समयमें अलग-अलग असंख्यातलोक मात्र शरीरोंसे युक्त आवलीके असंख्यातवें भाग पुलवियोंमें जो गुणितकर्मांश जीव मरे उनसे हीन शेष जो अनन्तानन्त जीव गुणित कर्मांश रहे उनके विस्रसोपचय सहित जो औदारिक, तैजस और कार्मण शरीरके परमाणुओंका स्कन्ध वह जघन्य बादरनिगोदवर्गणा है। इसमें

ण्यसंख्येयभागमात्र पुळविगळोळिरुतिर्दं गुणितकर्म्मांशानंतानंतजीवंगळ सविस्रसोपचय त्रिशरीरसंचयमं कोळुत्तिरलक्कुं :—

उ स ३२ a a ख ख १२-१६ ख १३ ≡ a ८ a
बादरनिगोद ९≡ a।५ a

ज स a a ख ख १२-१६ ख १३ ≡ a ८ प
९ ≡ a ५ प
a

ई बादरनिगोदोत्कृष्टवर्ग्गणेयोळेकरूपमनधिकं माडुत्तिरलु तृतीयशून्यवर्ग्गणेगळोळु जघन्यवर्ग्गणेयक्कुं

तृतीय शून्यः ०/०

अ स ३२ a a ख ख १२- १६ ख १३-≡ a ८ a
a
९≡a।५

सूक्ष्मनिगोदजघन्यवर्ग्गणेयावेडेयोळु संभविसुगुमें वोडे जलदोळु स्थलदोळमाकाशदोळमेणु

कर्मांशानन्तानन्तबादरनिगोदजीवाना सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयः उत्कृष्टबादरनिगोदवर्गणा भवति—

उ ० स ३२ a a ख ख १२—१६ ख १३— ≡ a ८ a
० a
बादरणिगोदसरीर ० ९ ≡ a ५

ज ० स a a ख ख १२—१६ ख १३— ≡ a ८ प
a a
९ ≡ a ५ प
a

इयमेकरूपाधिका तृतीयशून्यवर्गणाजघन्यं भवति—

तियसुण्णवग्गणा ज स ३२ a a ख ख १२—१६ ख १३— ≡ a ८ a
a
९ ≡ a ५

एक परमाणु हीन करनेपर उत्कृष्ट ध्रुव शून्यवर्गणा होती है। तथा इस जघन्यको जगत् श्रेणिके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा होती है। स्वयम्भूरमणद्वीपमें जो मूलक आदि सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतियोंके शरीर हैं उनमें एक बन्धनबद्ध जगत्श्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवियोंमें रहनेवाले गुणितकर्मांश अनन्तानन्त बादरनिगोद जीवोंका जो विस्रसोपचय सहित औदारिक तैजस कार्मणशरीरका उत्कृष्ट संचय है

एकबंधनबद्धावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुळविगळोळिर्दसिर्द्द क्षपितकर्मांशानंतानंतसूक्ष्मनिगोदंगळ सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयमं कोळुत्तिरलक्कु

सूक्ष्मनिगोद

ज स ३ ३ ख ख १२– १६ ख १३।८≡९।२।८-८२ ३
९≡३ ५– ३ ३

इवरोळेकरूपं कळेयुत्तिरलु तृतीयशून्यवर्गणेगळोळु उत्कृष्टवर्गणेयक्कुं :—

२

उ स ३ ३ ख ख १२ १६ ख १३ — ८ ≡ ३ ८ २ ३ इल्लिबोधकर्नितें दं बादरनिगोदोत्कृष्ट-
३ ३

तृतीयशून्यवर्ग ९ ≡ ३ ५

वर्गणेयोळु पुळविगळु श्रेण्यसंख्येयभागमात्रंगळु जघन्यसूक्ष्मनिगोदवर्गणेयोळु पुळविगळु आवल्य-संख्यातैकभागमात्रंगळवुकारणमागियुत्कृष्टबादरनिगोदवर्गणेयिंदं केळगे सूक्ष्मनिगोदजघन्यवर्गणेया-गलेवेळकुमें बनें दोडिदु दोषमल्तेकें दोडे बादरनिगोदवर्गणेगळ निगोदशरीरंगळं नोडलु सूक्ष्म-निगोदवर्गणाशरीरंगळ्गे सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रगुणकारोपलंभमप्पुदरिंदं । सूक्ष्मनिगोद-

---

जले स्थले आकाशे वा एकबन्धनबद्धावल्यसंख्यातैकभागपुलविषु स्थितानां क्षपितकर्मांशानन्तानन्तसूक्ष्म-निगोदानां सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयः सूक्ष्मनिगोदजघन्यवर्गणा भवति ।

ज स ३ ३ ख ख १२—१६ ख १३—८ ≡ ३ २ ८ ३ इयमेकरूपोना तृतीयशून्यवर्गणोत्कृष्टं भवति—
९ ≡ ३ ५ ३ ३

तिय उ ० स ३ ३ ख ख १२—१६ ख १३—८ ≡ ३ २ ८ ३ । ननु बादरनिगोदवर्गणोत्कृष्टे पुलवयः
सुण्णवग्गणा ९ ≡ ३ ५ ३ ३

श्रेण्यसंख्येयभागः सूक्ष्मनिगोदवर्गणाजघन्ये तु आवल्यसंख्यातैकभागः तेन तदधोऽनेन भाव्यम् इति, तन्न-बादर-निगोदवर्गणानिगोदशरीरेभ्यः सूक्ष्मनिगोदवर्गणाशरीराणां सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागगुणकारोपलम्भात् । सूक्ष्म-

---

वह उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा है। उसमें एक परमाणु अधिक होनेपर तीसरी शून्यवर्गणा-का जघन्य होता है। वह कैसे है सो कहते हैं—जल-थल अथवा आकाशमें एकबन्धनबद्ध आवलीके असंख्यातवें भाग पुलवियोंमें क्षपितकर्मांश अनन्तानन्त सूक्ष्मनिगोद जीव रहते हैं उनके विस्रसोपचय सहित औदारिक तैजस कार्मणशरीरका संचय सूक्ष्मनिगोद जघन्य वर्गणा है। उसमें एक परमाणु हीन करनेपर तीसरी शून्यवर्गणाका उत्कृष्ट होता है।

शंका—बादरनिगोदवर्गणाके उत्कृष्टमें पुलवियाँ श्रेणिके असंख्यातवें भाग कही हैं और सूक्ष्मनिगोदवर्गणाके जघन्यमें आवलीके असंख्यातवें भाग कही हैं। अतः बादरनिगोद वर्गणासे पहले सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होनी चाहिए। क्योंकि पुलवियोंका प्रमाण बहुत होनेसे परमाणुओंका प्रमाण बहुत होना सम्भव है?

---

१. म चोदक ।

त्कृष्टवर्ग्गणेगे संभवमावेडेयोळक्कुमें दोडे महामत्स्यशरीरदोळु एकबंधनबद्धावल्यसंख्यातैकभाग-मात्रपुळविगळोळिर्दतिर्द गुणितकर्मांशानंतानंतजीवंगळसविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयमं ग्रहि-

सुत्तिरलक्कुं :— उ स ३२ a a ख ख १२– १६ ख १३–८ ≡ a ८ सू २ a

a a

सूक्ष्मनिगोव ९ ≡ a ५

मेलणेरडुंवर्ग्गणेगळु सुगमंगळवें तें दोडे सूक्ष्मनिगोदुत्कृष्टवर्ग्गणेयोळेकरूपं कूडिदोडे नभोवर्ग्गणेगळोळु जघन्यवर्ग्गणेयक्कुं :—

ज स ३२ a a ख ख १२– १६ ख १३–८ ≡ a ८ सू २ a

नभोवर्ग्गणा ९ ≡ a ५ a

ई जघन्यवर्ग्गणेयं प्रतरासंख्येयभागदिदं गुणिसुत्तिरलु नभोवर्ग्गणगळोळुत्कृष्टवर्ग्गणेयक्कुं :—

उ स ३२ a a ख ख १२– १६ ख १३–८ ≡ a ८ सू २ a a

नभोवर्ग्गणा ९ ≡ a ५

निगोदवर्गणोत्कृष्टं महामत्स्यशरीरे एकबन्धनबद्धावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुलविस्थितगुणितकर्मांशानन्तानन्तजीवानां सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयो भवति—

सुहमणि उ० स ३२ a a ख ख १२—१६ ख १३—८ ≡ a ८ सू २ a

९ ≡ a ५ a a

इदं एकरूपयुतं नभोवर्गणाजघन्यं भवति—

णभवग्ग ज स ३२ a a ख ख १२—१६ ख १३—८ ≡ a ८ सू २ a

a a

९ ≡ a ५

इदं प्रतरासंख्येयभागगुणितं नभोवर्गणोत्कृष्टं भवति—

णभवग्ग उ स ३२ a a ख ख १२—१६ ख १३—८ ≡ a ८ सू २ a a

a a

९ ≡ a ५

समाधान—नहीं, क्योंकि बादरनिगोदवर्गणाके शरीरोंसे सूक्ष्मनिगोदवर्गणाके शरीरोंका प्रमाण सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गुणित है। इससे वहाँ जीव भी बहुत हैं। अतः उन जीवोंके तीन शरीर सम्बन्धी परमाणु भी बहुत हैं। जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणाको पल्यके

ई नभ उत्कृष्टवर्ग्गणेयोळेकरूपं कूडुत्तिरलु महास्कंधवर्ग्गणेगळोळु जघन्यवर्ग्गणेयक्कुं :—

ज स ३२ ‍ ‍ ख ख १२– १६ ख १३–८ ≡ ‍ ८ सू २ ‍ ‍
महास्कंधवर्ग्गणा ९ ≡ ‍ ५ ‍ ‍

ई महास्कंधवजघन्यवर्ग्गणेयोळु तज्जघन्यराशियं पल्यासंख्यातदिदं खंडिसिदेकभागमं कूडुत्तिरलु महास्कंधवर्ग्गणेगळोळुत्कृष्टवर्ग्गणेयक्कुं अप्पुदरिदं :—

उ स ३२ ‍ ‍ ख ख १२– १६ ख १३–८ ≡ ‍ ८–सू २ ‍ प
‍ ‍ ‍
महास्कंध ९ ≡ ‍ ५ ‍

इंतेकश्रेणियनाश्रयिसि त्रयोविंशतिवर्ग्गणेगळपेळल्पट्टुवु।

अत्रैकरूपे युते महास्कन्धवर्गणाजघन्यं भवति—

महास्कन्ध ज स ३२ ‍ ‍ ख ख १२—१६ ख १३—८ ≡ ‍ ८ सू २ ‍ ‍
‍ ‍
९ ≡ ‍ ५

अत्र अस्यैव पल्यासंख्यातैकभागे युते महास्कन्धवर्गणोत्कृष्टं भवति—

महास्कन्ध उ स ३२ ‍ ‍ ख ख १२—१६ ख १३—८ ≡ ‍ ८ सू २ ‍ ‍ प
‍ ‍ ‍
९ ≡ ‍ ५ प
‍

एवमेकश्रेणिमाश्रित्य त्रयोविंशतिवर्गणा उक्ताः ॥५९४–५९५॥

असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होती है। सो कैसे, यह कहते हैं—

महामत्स्यके शरीरमें एक बन्धनबद्ध आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुलवियोंमें स्थित गुणितकर्मांश अनन्तानन्त जीवोंके विस्रसोपचय सहित औदारिक, तैजस, कार्मण शरीरोंके परमाणुओंका स्कन्ध है वही उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होती है। उसमें एक परमाणु अधिक करनेपर नभोवर्गणाका जघन्य होता है। इसको जगत्प्रतरके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर नभोवर्गणाका उत्कृष्ट होता है। उसमें एक बढ़ानेपर महास्कन्धवर्गणाका जघन्य होता है। इसमें उसीका पल्यका असंख्यातवाँ भाग बढ़ानेपर महास्कन्धवर्गणाका उत्कृष्ट होता है। इस प्रकार एक श्रेणिके रूपमें तेईस वर्गणा कहीं ॥५९४–५९५॥

उक्तार्त्थोपसंहारमं माडुत्तं त्रयोविंशतिवर्ग्गणेगळोळजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्य भेदमुमं तदल्पबहुत्वमुमं गाथाषट्कदिदं पेळ्दपं :—

परमाणुवग्गणाम्मि ण अवरुक्कस्सं च सेसगे अत्थि ।
गेज्झमहाक्खंधाणं वरमहियं सेसगं गुणियं ॥५९६॥

परमाणुवर्ग्गणायां नावरोत्कृष्टं च शेषकेऽस्ति । ग्राह्यमहास्कंधानां वरमधिकं शेषकं गुणितं ॥

परमाणुवर्ग्गणेयोळु जघन्योत्कृष्टविशेषमिल्लेकेंदोडे परमाणुगळु निर्व्विकल्पंगळप्पुदरिंदं शेषसंख्यातवर्ग्गणादि महास्कंधावसानमाद द्वाविंशतिवर्ग्गणेगळोळु जघन्योत्कृष्टाविविशेषं अस्ति उंटु । आ द्वाविंशतिवर्ग्गणेगळोळू ग्राह्यमहास्कंधानां आहारतेजोभाषामनःकार्म्मणवर्ग्गणेगळु ग्राह्यमें बुदक्कुमवरुत्कृष्टवर्ग्गणेगळुं महास्कंधोत्कृष्टवर्ग्गणेयुमें बीयारु वर्ग्गणेगळु तंतम्म जघन्यमं नोडलु विशेषाधिकंगळु, वुळिद पदिनारुं वर्ग्गणेगळुत्कृष्टवर्ग्गणेगळु तंतम्म जघन्यमं नोडलु गुणितंगळप्पुवु ।

सिद्धाणंतिमभागो पडिभागो गेज्झगाण जेट्ठट्ठं ।
पल्लासंखेज्जदिमं अंतिमखंधस्स जेट्ठट्ठं ॥५९७॥

सिद्धानामनंतैकभागः प्रतिभागो ग्राह्याणां ज्येष्ठात्थं । पल्यासंख्येयभागोंतिमस्कंधस्य ज्येष्ठात्थं ॥

ई ग्राह्यवर्ग्गणापंचकोत्कृष्टवर्ग्गणानिमित्तमागि प्रतिभागहारं सिद्धानंतैकभागमात्रमक्कुमा भागहारदिदं तंतम्म जघन्यमं भागिसिदेकभागमना जघन्यद मेले कूडिदोडे तंतम्मुत्कृष्टवर्ग्गणेगळप्पुवेंबुदत्थं । अंतिममहास्कंधोत्कृष्टवर्ग्गणानिमित्तमागि प्रतिभागहारं पल्यासंख्यातैकभागमात्रमक्कुमावल्यासंख्यातैकभागदिदं जघन्यवर्ग्गणेयं भागिसिदेकभागमना जघन्यदोळु कूडिदोडे

उक्तार्थमुपसंहरन् तासामेव जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यानि तदल्पबहुत्व च गाथाषट्केनाह—

परमाणुवर्गणायां जघन्योत्कृष्टे न स्तः, अणूनां निर्विकल्पकत्वात् शेषद्वाविंशतिवर्गणाना तु स्तः। तत्र ग्राह्याणा आहारतेजोभाषामन.कार्मणवर्गणाना महास्कन्धवर्गणायाश्च उत्कृष्टानि स्वस्वजघन्याद्विशेषाधिकानि शेषषोडशवर्गणाना गुणितानि भवन्ति ॥५९६॥

तत्र पञ्चग्राह्यवर्गणानामुत्कृष्टनिमित्त प्रतिभागहारः सिद्धानन्तैकभागः, तेन स्वस्वजघन्यं भक्त्वा तत्रैव निक्षिप्ते स्वस्वोत्कृष्टं भवतीत्यर्थः। अन्तिममहास्कन्धोत्कृष्टनिमित्तं प्रतिभागहार. पल्यासंख्या-

---

उक्त कथनका उपसंहार करते हुए उन्हीं वर्गणाओंके जघन्य, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और अजघन्य भेदों तथा अल्पबहुत्वको छह गाथाओंसे कहते हैं—

परमाणुवर्गणामें जघन्य-उत्कृष्ट भेद नहीं है क्योंकि परमाणु निर्विकल्प–भेद रहित होते हैं। शेष बाईस वर्गणाओंमें तो जघन्य-उत्कृष्ट हैं। उनमें-से जो ग्राह्यवर्गणा, आहार-वर्गणा, तैजसशरीरवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, कार्मणवर्गणा तथा महास्कन्धवर्गणा हैं इनके उत्कृष्ट अपने-अपने जघन्यसे विशेष अधिक हैं, शेष सोलह वर्गणाओंके गुणित हैं ॥५९६॥

उनमें-से पाँच ग्राह्यवर्गणाओंका उत्कृष्ट लानेके लिए प्रतिभागहार सिद्धराशिका अनन्तवाँ भाग है। उससे अपने-अपने जघन्यमें भाग देकर जो लब्ध आवे उसे उसी

तम्महास्कंधोत्कृष्टवर्गणेयक्कुमेंबुदत्थं ।

संखेज्जासंखेज्जे गुणगारो सो दु होदि हु अणंते ।
चत्तारि अगेज्झेसु वि सिद्धाणमणंतिमो भागो ॥५९८॥

संख्यातासंख्यातयोर्व्वर्गणयोर्गुणकारो तौ तु भवतः खलु अनंते । चतुर्ष्वग्राह्येष्वपि सिद्धानामनंतैकभागः ॥

संख्यातवर्गणेयोळं असंख्यातवर्गणेयोळं तंतम्मुत्कृष्टवर्गणानिमित्तमागि गुणकारं यथासंख्यमागि तु मत्ते तौ आ संख्यातमुमसंख्यातमुं भवतः अप्पुवु । अदेंतेंदोडे संख्यातवर्गणाजघन्यराशियनुत्कृष्टसंख्याताद्धदिंदं गुणिसिदोडे संख्यातोत्कृष्टवर्गणेयक्कु २१५/२ अपवर्त्तितमिदु १५ । असंख्यातवर्गणाजघन्यराशियं परिमितासंख्यातजघन्यमं तद्राशिविभक्तद्विकवारासंख्यातोत्कृष्टराशियिदं गुणिसुत्तिरलु तदुत्कृष्टवर्गणेयक्कु १६।२५५/१६ मपवर्त्तितमिदु २५५ । अनंतदोळम-ग्राह्यचतुष्टयदोळं तदुत्कृष्टवर्गणानिमित्तं गुणकारं सिद्धानंतैकभागमात्रमक्कुमा गुणकारदिंदं तंतम्म जघन्यवर्गणेयं गुणिसुत्तिरलु तंतम्मुत्कृष्टवर्गणेगळप्पुवें बुदत्थं ।

जीवादोणंतगुणो धुवादितिण्हं असंखभागो दु ।
पल्लस्स तदो तत्तो असंखलोगवहिदो मिच्छो ॥५९९॥

जीवादनंतगुणो ध्रुवादितिसृणां असंख्यातभागस्तु पल्यस्य ततस्ततोऽसंख्यलोकापहृतमिथ्यादृष्टिः ॥

तैकभागः ॥५९७॥

तु—पुनः संख्याताsसंख्यातवर्गणयोरुत्कृष्टार्थं स्वस्वजघन्यस्य गुणकारः स संख्यातवर्गणाया स्वजघन्यभक्तस्वोत्कृष्टमात्रसंख्यातः १५/२ असंख्यातवर्गणायां स्वजघन्यभक्तस्वोत्कृष्टमात्रासंख्यातो भवति २५५/१६ ताभ्यां स्वस्वजघन्यं गुणयित्वा २ । १५/२ । १६ । २५५/१६ अपवर्तिते १५ । २५५ खलु स्फुटं तयोरुत्कृष्टे स्याताम् इत्यर्थः । अनन्तवर्गणाया अग्राह्यवर्गणाचतुष्के च उत्कृष्टार्थं गुणकारः सिद्धानन्तैकभागः ॥५९८॥

जघन्यमें मिलानेपर अपना-अपना उत्कृष्ट होता है। अन्तिम महास्कन्धका उत्कृष्ट लानेके लिए भागहार पल्यका असंख्यातवाँ भाग है ॥५९७॥

संख्याताणुवर्गणा और असंख्याताणुवर्गणामें अपने-अपने उत्कृष्टमें अपने-अपने जघन्यसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतना ही गुणकार होता है। उनसे अपने-अपने जघन्यको गुणा करनेपर अपना-अपना उत्कृष्ट होता है। अनन्ताणुवर्गणा और चार अग्राह्यवर्गणामें उत्कृष्ट लानेके लिए गुणकार सिद्धराशिका अनन्तवाँ भाग है ॥५९८॥

सर्व्वजीवराशियं नोडलनंतगुणितमप्प गुणकारं ध्रुवादि मूरु वर्गणेगळुत्कृष्टवर्गणानिमित्त-गुणकारप्रमाणमक्कुमा गुणकारदिदं तंतम्म जघन्यवर्गणेयं गुणिसुत्तं विरलु तंतम्मुत्कृष्टवर्गणेगळप्पुवें बुदत्थं । तु मत्ते ततः अल्लिदं मेलण प्रत्येकशरीरवर्ग्गणेगळुत्कृष्टवर्गणानिमित्तमागि गुणकारं पल्यासंख्यातैकभागमक्कुमा गुणकारगुणित तज्जघन्यवर्ग्गणेये प्रत्येकशरीरवर्ग्गणोत्कृष्ट-वर्ग्गणेयक्कुमें बुदर्त्थमिल्लि पल्यासंख्यातैकभागगुणकारमें तें दोडे :—प्रत्येकशरीरस्थजीवकार्म्मण-शरीरसमयप्रबद्धं गुणितकर्मांशजीवप्रतिबद्धमप्पुदरिदमुत्कृष्टयोगार्ज्जितमप्पुदरिदं । तज्जघन्य-समयप्रबद्धमं नोडलु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागगुणितमक्कुमक्के संदृष्टि द्वात्रिंशदंकमक्कुमप्पुदरिदं तज्जघन्यवर्ग्गणेयं तद्गुणकारदिदं गुणिसुत्तिरलु तदुत्कृष्टवर्ग्गणेयक्कुमें बुदर्त्थं । ततः इल्लिदं मेलण ध्रुवशून्यवर्ग्गणेगळोळु तदुत्कृष्टवर्गणानिमित्तगुणकारमसंख्यातलोकविभक्तसर्व्वमिथ्यादृष्टि-राशियक्कु १३≡a / ९≡a५ मो गुणकारदिदं गुणिसिद तज्जघन्यराशि ध्रुवशून्यवर्ग्गणोत्कृष्ट-वर्ग्गणाप्रमाणमें बुदर्त्थं ।

सेढीसूईपल्लाजगपदरासंखभागगुणगारा ।
अप्पप्पण अवरादो उक्कस्सा होंति णियमेण ॥६००॥

श्रेणीसूचीपल्यजगत्प्रतरासंख्यभागगुणकाराः । स्वस्वावरायाः उत्कृष्टा भवंति नियमेन ॥

श्रेण्यसंख्यातैकभागमुं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमुं पल्यासंख्यातैकभागमुं जगत्प्रतरासंख्यातैक-भागमुं यथासंख्यमागि बादरनिगोदशून्य—सूक्ष्मनिगोदनभोवर्ग्गणेगळुत्कृष्टवर्ग्गणानिमित्तगुणकारं-गळप्पुवु ।

सर्वजीवराशितोऽनन्तगुणो ध्रुवादितिसृणां वर्गणाना उत्कृष्टनिमित्तं गुणकारो भवति । तु पुनः तदुपरितनप्रत्येकशरीरवर्गणोत्कृष्टनिमित्तं पल्यासंख्यातैकभाग. । कुतः ? प्रत्येकशरीरस्थकार्मणसमयप्रबद्धाना गुणितकर्मांशजीवप्रतिबद्धत्वेन जघन्यसमयप्रबद्धात् छेदासंख्येयगुणितत्वात् । तत्संदृष्टिः द्वात्रिंशत् । तया जघन्ये गुणिते तदुत्कृष्टं भवतीत्यर्थः । ततः ध्रुवशून्यवर्गणोत्कृष्टनिमित्तं गुणकारः असंख्यातलोकभक्तसर्वमिथ्या-दृष्टिराशिः १३— ≡ a / ९ ≡ a ५ ॥५९९॥

श्रेणिसूच्यङ्गुलपल्यजगत्प्रतराणामसंख्यातैकभागाः क्रमशः बादरनिगोदशून्यसूक्ष्मनिगोदवर्गणोत्कृष्ट-निमित्तं गुणकारा भवन्ति । तत्र शून्यवर्गणाया सूच्यङ्गुलासंख्यातगुणकारस्तु सूक्ष्मनिगोदवर्गणाजघन्ये रूपोने

ध्रुव आदि तीन वर्गणाओंके उत्कृष्टके लिए गुणकार समस्त राशिसे अनन्तगुणा है। उससे ऊपरकी प्रत्येक शरीरवर्गणाका उत्कृष्ट लानेके लिए पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र गुणकार है। क्योंकि प्रत्येक शरीरवर्गणामें जो कार्मण शरीरके समयप्रबद्ध हैं वे गुणित-कर्मांश जीवसम्बन्धी हैं अतः जघन्य समयप्रबद्धसे पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग गुणे हैं। उसकी संदृष्टि बत्तीस है। उससे जघन्यमें गुणा करनेपर उसका उत्कृष्ट होता है। ध्रुव-शून्यवर्गणाके उत्कृष्टके लिए गुणकार सब मिथ्यादृष्टियोंकी राशिमें असंख्यातलोकसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतना है ॥५९९॥

बादरनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा और नभोवर्गणाके उत्कृष्ट लानेके लिए गुणकार क्रमसे श्रेणिका असंख्यातवाँ भाग, सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग, पल्यका

आ गुणकारंगळिवं तंतम्म जघन्यवर्ग्गणेयं गुणिसिदोडे तंतम्मुत्कृष्टवर्ग्गणेगळप्पुवेंबुदत्थं-मवरोळु शून्यवर्ग्गणेयोळु सूच्यंगुलासंख्यातगुणकारमें तें दोडे :—सूक्ष्मनिगोदजघन्यवर्ग्गणेयोळुक्कळ सूच्यंगुलासंख्यातं तद्वर्ग्गणेयोळेकरूपहीनमागि शून्यवर्ग्गणोत्कृष्टवर्ग्गणेयादुदप्पुदरिना गुणकारं तज्जघन्यदोळिल्लप्पुदरिवं सूक्ष्मनिगोदवर्ग्गणेयोळु पल्यासंख्यातगुणकारमें तें दोडे गुणितकर्म्मांश-जीवप्रतिबद्धसमयप्रतिबद्धमुत्कृष्टयोगार्जितमप्पुदरिवं पल्यच्छेदासंख्यातेकभागं गुणकारमप्पुदरिद ।

इंतु त्रयोविंशतिवर्ग्गणेगळेकश्रेण्याश्रितंगळु पेळल्पट्टुविन्नु नानाश्रेणियनाश्रयिसि पेळल्प-ट्टुपुवदें तें दोडे :—परमाणुवर्ग्गणे मोदल्गोंडु सांतरनिरंतरवर्ग्गणोत्कृष्टवर्ग्गणावसानमाद वर्ग्गणे-गळ सदृशधनिकवर्ग्गणेगळु अनंतपुद्गलवर्ग्गमूलमात्रंगळागुत्तलुं मेले मेले विशेषहीनंगळप्पुवल्लि प्रतिभागहारं सिद्धानंतैकभागमक्कुं । प्रत्येकदेहजघन्यसदृशधनिकंगळु वर्त्तमानकालदोळु क्षपितकर्म्मां-शलक्षणदिवं बंदयोगिचरमसमयदोळु नाल्केयप्पुवु । ४ । वुत्कृष्टवर्ग्गणेगळु वर्तमानकालदोळु एनितु संभविसुगुमें दोडे स्वयंभूरमणद्वीपदकाळिकच्चु मोदलादवरोळु आवल्यसंख्यातैकभाग-मात्रंगळु संभविसुववु । बादरनिगोदजघन्यवर्ग्गणेगळु वर्त्तमानकालदोळेनितु संभविसुगुमें दोडे क्षीणकषायचरमसमयदोळु नाल्केयप्पुवु । तदुत्कृष्टवर्ग्गणेगळु महामत्स्यादिगळोळु आवल्य-

सति तदुत्कृष्टसंभवात् । सूक्ष्मनिगोदवर्गणाया पल्यासंख्यातगुणकारोऽपि तत्समयप्रबद्धाना गुणितकर्मांशजीवप्रति-बद्धत्वात् । एवं त्रयोविंशतिवर्गणा एकश्रेण्याश्रिताः कथिताः । इदानीं नानाश्रेणीराश्रित्योच्यन्ते—तद्यथा—परमाणुवर्गणातः सातरनिरन्तरोत्कृष्टावसानवर्गणानां सदृशधनिकानि अनन्तपुद्गलवर्गमूलमात्राण्यपि उपर्युपरि विशेषहीनानि भवन्ति । तत्र प्रतिभागहारः सिद्धानन्तैकभागः । प्रत्येकदेहजघन्यसदृशधनिकानि वर्तमानकाले क्षपितकर्मांशलक्षणेनागत्य अयोगिचरमसमये चत्वारि । उत्कृष्टानि स्वयम्भूरमणद्वीपस्य दावानलादिषु आवल्य-संख्यातैकभागमात्राणि बादरनिगोदजघन्यानि वर्तमानकाले क्षीणकषायचरमसमये चत्वारि तदुत्कृष्टानि

असंख्यातवाँ भाग और जगत्प्रतरका असंख्यातवाँ भाग होता है, यहाँ जो शून्यवर्गणामें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गुणकार कहा है उसका कारण यह है कि सूक्ष्मनिगोदवर्गणाके जघन्यमें एक घटानेपर शून्यवर्गणाका उत्कृष्ट होता है। सूक्ष्मनिगोद वर्गणामें गुणकार पल्यके असंख्यातवें भाग कहा है सो उसके समयप्रबद्ध गुणित कर्मांश जीवसे सम्बद्ध होनेसे कहा है। इस प्रकार एक श्रेणि रूपसे तेईस वर्गणाएँ कहीं। अब नाना श्रेणियोंको लेकर कहते हैं—

अर्थात् जो ये वर्गणा कही है वे लोकमें वर्तमान कोई एक कालमें कितनी-कितनी पायी जाती हैं, यह कहते हैं—परमाणुवर्गणासे लेकर सान्तनिरन्तरवर्गणा पर्यन्त पन्द्रह वर्गणाएँ समानधनवाली है। ये पुद्गल द्रव्यराशिके वर्गमूलको अनन्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतनी-उतनी लोकमें पायी जाती हैं किन्तु आगे-आगे कुछ-कुछ कम होती जाती हैं। इनमें प्रति भागहार सिद्धराशिका अनन्तवाँ भाग है अर्थात् जितनी अणुवर्गणाएँ हैं उनमें सिद्धराशिके अनन्तवें भागसे भाग देनेपर जो प्रमाण आये उतना अणुवर्गणाके परिमाणमें घटानेपर जो प्रमाण शेष है उतनी संख्याताणुवर्गणा जगत्में होती हैं। इसी प्रकार आगे जानना। किन्तु सामान्यसे प्रत्येक पृथक्-पृथक् वर्गणाका प्रमाण अनन्त पुद्गल राशिका वर्गमूल मात्र है। प्रत्येक शरीरवर्गणाका जघन्य वर्तमानकालमें क्षपितकर्मांशरूपसे आकर अयोगकेवलीके अन्त समयमें पाया जाता है सो उत्कृष्टसे चार है। उत्कृष्ट प्रत्येक शरीरवर्गणा

संख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवु । सूक्ष्मनिगोदजघन्यवर्ग्गणेगळु सहशषनिकंगळु जलदोळं स्थलदोळमाकाशदोळं मेणु आवल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवु । उत्कृष्टवर्ग्गणेगळु सूक्ष्मनिगोदसंबंधिगळु तु मत्ते वर्त्तमानकालदोळु महामत्स्यंगळोळावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवु । ई मूरु सचित्तवर्ग्गणेगळोळु जघन्यानुत्कृष्टवर्ग्गणेगळु वर्त्तमानकालदोळऽसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु । महास्कंधवर्ग्गणेगळु वर्त्तमानकालदोळु तु मत्ते एकमेयक्कुं । महास्कंधमें बुदावुदें दोडे भवनंगळुं विमानंगळुमष्टपृथ्विगळु मेरुगळुं कुलशैलादिगळुमेकीभावमक्कुमदाव तेरदिदमसंख्यातयोजनंगळनंतरिसिद्दवक्केकत्वमें दोडे एकबंधनबद्धसूक्ष्मपुद्गलस्कंधंगळिदं समवेतंगळगंतराभावमक्कुमप्पुदरिदं ।

हेट्ठिमउक्कस्सं पुण रूवहियं उवरिमं जहण्णं खु ।
इदि तेवीसवियप्पा पोग्गलदव्वा हु जिणादिट्ठा ॥६०१॥

अधस्तनोत्कृष्टाः पुना रूपाधिका उपरितनजघन्याः खलु । इति त्रयोविंशतिविकल्पाः पुद्गलद्रव्याणि खलु जिनदृष्टानि ॥

ई त्रयोविंशतिवर्ग्गणेगळोळु परमाणुवर्ग्गणेयुळियलुळिद द्वाविंशतिवर्ग्गणेगळ अधस्तनोत्कृष्टवर्ग्गणेगळु रूपाधिकमादुवादोडे तत्तदुपरितनवर्ग्गणेगळजघन्यवर्ग्गणेगळप्पुवु खलु नियमदिदमितु त्रयोविंशतिवर्ग्गणाविकल्पंगळु पुद्गलद्रव्यंगळें दु जिनरुगळिदं पेळल्पट्टुवु खलु स्फुट-

महामत्स्यादिषु आवल्यसंख्यातैकभागः । सूक्ष्मनिगोदजघन्यानि वर्तमानकाले जले स्थले आकाशे वा आवल्यसंख्यातैकभाग. । उत्कृष्टान्यपि महामत्स्येषु तदालापानि । अस्मिन् सचित्तवर्गणात्रये अजघन्यानुत्कृष्टानि वर्तमानकाले असंख्यातलोकमात्राणि भवन्ति । महास्कन्धवर्गणा वर्तमानकाले एका सा तु भवनविमानाष्टपृथ्वीमेरुकुलशैलादीनामेकीभावरूपा । कथ संख्यातासंख्यातयोजनान्तरितानामेकत्वं ? एकबन्धनबद्धसूक्ष्मपुद्गलस्कन्धैः समवेतानामन्तराभावात् ॥६००॥

त्रयोविंशतिवर्गणासु अणुवर्गणातः शेषाणा अधस्तनवर्गणोत्कृष्टानि रूपाधिकानि भूत्वा तदुपरितनवर्गणाना जघन्यानि भवन्ति खलु नियमेन इति त्रयोविंशतिवर्गणाविकल्पानि पुद्गलद्रव्याणि जिनैरुक्तानि

स्वयम्भूरमण द्वीपके दावानल आदिमें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पायी जाती है। बादरनिगोदवर्गणाका जघन्य वर्तमानकालमें क्षीणकषाय गुणस्थानके अन्तिम समयमें चार पाया जाता है। उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा महामत्स्य आदिमें आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण पायी जाती है। सूक्ष्मनिगोदवर्गणाका जघन्य वर्तमानकालमें जल, स्थल अथवा आकाशमें आवलीके असंख्यातवें भाग पाया जाता है। उसका उत्कृष्ट भी महामत्स्योंमें आवलीके असंख्यातवें भाग पाया जाता है। प्रत्येक शरीर, बादरनिगोद और सूक्ष्मनिगोद इन तीन सचेतन वर्गणाओंमें अजघन्य और अनुत्कृष्ट अर्थात् मध्यमभेद वर्तमानकालमें असंख्यात लोकमात्र पाये जाते हैं। वर्तमानकालमें महास्कन्धवर्गणा एक है वह भवनवासियोंके भवन, देवोंके विमान, आठ पृथिवियाँ, सुमेरु कुलाचल आदिका एक स्कन्धरूप है।

शंका—उनमें तो संख्यात-असंख्यात योजनका अन्तराल है वे एक कैसे हैं?

समाधान—उनके मध्यमें जो सूक्ष्म पुद्गल स्कन्ध हैं वे सब उक्त विमानादिके साथ एक बन्धनमें बद्ध होनेसे उनमें अन्तराल नहीं है ॥६००॥

तेईस वर्गणाओंमें अणुवर्गणाको छोड़कर शेष नीचेकी वर्गणाओंके उत्कृष्टमें एक अधिक करनेसे नियमसे ऊपरकी वर्गणाओंके जघन्य होते हैं। इस प्रकार जिनदेवने तेईस

मागि। ई त्रयोविंशतिवर्ग्गणेगळोळु प्रत्येकवर्ग्गणेयुं बादरनिगोदवर्ग्गणेयुं सूक्ष्मनिगोदवर्ग्गणेयुमेंबी मूरुं वर्ग्गणेगळु सचित्तवर्ग्गणेगळवरोळु अयोगिचरमसमयदोळु प्रथमप्रत्येकशरीरवर्ग्गणेयोळु जघन्यवर्ग्गणाद्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं मेणु द्वयं मेणु त्रयं मेणु उत्कृष्टदिदं चतुष्टयमक्कुं द्वितीयवर्ग्गणेयोळु द्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन चत्वारि भवंति इंतवस्थितक्रमदिदमनंतवर्ग्गणेगळु सलुत्तंविरलु बळिक्कल्लिल मेले आवुदों दनंतरवर्ग्गणेया वर्ग्गणेयोळु द्रव्यंगळु स्यादस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन पंच भवंति सदृशधनिकानि। इंतवस्थितक्रमदिदमनंतवर्ग्गणेगळु सलुत्तं विरलु बळिक्कमावुदों दनंतरवर्ग्गणेयदरोळु वर्ग्गणेगळु कथंचिदुंटु कथंचिदिल्लि येत्तलानुमुंटक्कुमप्पोडागळु एकं मेणु द्वयं मेणु त्रयं मेणु उत्कृष्टदिदं सदृशधनिकंगळु षड्जीवंगळप्पुवी क्रमदिदं समाष्टसमषट्पंचचतुस्त्रिद्विसदृशधनिकवर्ग्गणेगळु संभविसुववु। ई यभिप्रायव मध्यप्ररूपणे भव्यसिद्धप्रायोग्यस्थानंगळोळु गृहीतव्यमक्कु–। मल्लिदं मेले यावुदोंदनंतरवर्ग्गणेयदु संसारिजीवप्रायोग्यवर्ग्गणेयक्कुमदरोळु वर्ग्गणेगळु कथंचिदुंटु कथंचिदिल्ल एत्तलानुमुंटक्कुमप्पोडागळु एकं मेणु द्वयं

खलु स्फुटम्। तासु प्रत्येकबादरनिगोदसूक्ष्मनिगोदवर्गणाः तिस्रः सचित्ताः। तत्र अयोगिचरमसमये प्रत्येकशरीरजघन्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति ? यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन चत्वारि। तथा तद्द्वितीयवर्गणाद्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति। यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन चत्वारि इत्यवस्थितक्रमेणानन्तवर्गणा अतीत्य अनन्तरवर्गणाद्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति। यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन पञ्च इत्यवस्थितक्रमेण अनन्तवर्गणा अतीत्य अनन्तरवर्गणाद्रव्यं कथञ्चिदस्ति कथञ्चिन्नास्ति। यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन षट्। अनेन क्रमेण समाष्ट समषट् पञ्चचतुस्त्रिद्विसदृशधनिकानि भवन्ति। इयं यवमध्यप्ररूपणा भव्यसिद्धप्रायोग्यस्थानेषु ग्राह्या। अनन्तरवर्गणा सा संसारिजीवप्रायोग्या तद् द्रव्यं कथञ्चिदस्ति कथञ्चिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः इत्यवस्थित-

वर्गणाके भेद लिये हुए पुद्गल द्रव्योंका कथन किया है। उनमें प्रत्येक शरीर, बादरनिगोद और ये तीन वर्गणा सचित्त हैं। उनका विशेष कहते हैं—उनमें-से अयोगकेवलीके अन्तिम समयमें पायी जानेवाली जघन्य प्रत्येक शरीरवर्गणा लोकमें होती भी है और नहीं भी होती। यदि होती हैं तो एक या दो या तीन या उत्कृष्टसे चार तक होती हैं। उस जघन्य वर्गणासे एक परमाणु अधिक द्वितीय प्रत्येक शरीरवर्गणा होती भी है और नहीं भी होती। यदि होती है तो एक या दो या तीन या उत्कृष्टसे चार होती हैं। इसी अवस्थित क्रमसे एक-एक परमाणु बढ़ाते-बढ़ाते अनन्त वर्गणाओंके होनेपर उसके अनन्तर एक परमाणु अधिक वर्गणा लोकमें होती भी है और नहीं भी होती। यदि है तब एक या दो या तीन या उत्कृष्टसे पाँच होती हैं। इसी अवस्थित क्रमसे एक-एक परमाणु बढ़ाते-बढ़ाते अनन्त वर्गणाएँ बीतनेपर पुनः एक परमाणु अधिक वर्गणा होती भी है और नहीं भी होती। यदि है तब एक या दो या तीन या उत्कृष्टसे छह होती हैं। इसी क्रमसे अनन्तवर्गणा पर्यन्त उत्कृष्ट सात, आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन-दो वर्गणा लोकमें समान परमाणुओंके परिमाणको लिये हुए होती हैं। यह यवमध्यप्ररूपणा मोक्ष जानेवाले भव्य जीवोंके योग्य स्थानोंमें ग्रहण करनेके योग्य है। अब जो अनन्तरवर्गणा संसारि जीवोंके योग्य हैं उसे कहते हैं। पूर्वमें कही प्रत्येक

मेणु त्रयं मेणु उत्कृष्टदिवमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळु सदृशधनिकंगळु संभविसुर्वितवस्थित-क्रर्मादिवमनंतवर्ग्गणेगळु सलुत्तं विरलु बळिकमावुदो दनंतवर्ग्गणेयवरोळु वर्ग्गणेगळु कथंचिदुंटु कथंचिदिल्ल एत्तलानुमुंटक्कुमप्पोडागळु एकं मेणु द्वय मेणु त्रयं मेणुत्कृष्टदिवमावल्यसंख्यातैक-भागमात्रंगळु सदृशधनिकंगळु घटियिसुगुमंतु घटिसुदों वं विशेषमुंटावुदें दोडे पूर्व्ववर्ग्गणेगळं नोडलिदेकवर्ग्गणेयिदं विशेषाधिकंगळप्पुवु $\underset{a}{\overline{८}}$

मत्तमी विधानदिदमेयनंतवर्ग्गणेगळु नडेववु । मत्तावुदों दनंतरोपरितनवर्ग्गणेगळोळध-स्तनाधस्तनवर्ग्गणेगळं नोडळेकैकवर्ग्गणेगळिदं विशेषाधिकंगळप्पुविंतु । ई विधानदिदं नडसल्प-डुवुदेन्नेवरं यवमध्यमन्नेवरं मत्ता यवमध्यवर्ग्गणेगळु क्वचिदस्ति क्वचिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं मेणु द्वयं मेणु त्रयं मेणु उत्कृष्टदिदमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवंतागुत्तलुं पूर्व्वोक्तक्रम-दिदमनंतराधस्तन सदृशधनिकवर्ग्गणेगळं नोडलेकवर्ग्गणेयिदं विशेषाधिकंगळप्पुवु मत्तमिवुमनंत-वर्ग्गणेगळवस्थितक्रमदिदं नडेववु । बळिक्क अल्लिदं मेले यावुदों दनंतरवर्ग्गणेयदु स्यादस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं मेणु द्वयं मेणु त्रयं मेणुत्कृष्टदिदमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पु-

क्रमेण अनन्तरवर्गणा अतीत्य अनन्तरवर्गणाद्रव्यं कथञ्चिदस्ति कथञ्चिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वय वा त्रय उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः । अयं पूर्वस्मादेकरूपाधिकः- $\underset{a}{\overline{२}}$ एवमनन्तवर्गणा अतीत्य अनन्तरोपरितन-वर्गणासु अधस्तनाधस्तनवर्गणाभ्यः एकैकाधिका भवन्ति । एवं यावत् यवमध्यं तावन्नेतव्यम् । यवमध्यवर्गणा-सदृशधनिकद्रव्यं क्वचिदस्ति क्वचिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः । अयं ततोऽप्येकरूपाधिकः । एवमनन्तवर्गणा अतीत्य अनन्तरवर्गणाद्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति, यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभाग । अयं पूर्वस्मादेकरूपहीनः । एवं यावदुत्कृष्टा प्रत्येक-वर्गणा तावन्नेयम् । तदुत्कृष्टमपि स्यादस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तदा एक वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन

वर्गणासे एक परमाणु अधिक जो प्रत्येक वर्गणा है वह लोकमें होती भी है और नहीं भी होती। यदि है तब एक या दो या तीन या उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवें भाग होती है। इसी क्रमसे एक-एक परमाणु बढ़ाते-बढ़ाते अनन्त वर्गणा बीतनेपर उससे एक परमाणु अधिक अनन्तरवर्गणा कथंचित् है, कथंचित् नहीं है। यदि है तब एक या दो या तीन उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवें भाग होती है। पहलेसे इसका प्रमाण एक अधिक है। इस प्रकार अनन्त वर्गणा बीतनेपर अनन्तरकी ऊपरकी वर्गणाओंमें नीचे-नीचेकी वर्गणासे एक-एक अधिक परमाणु होता है। इस प्रकार जबतक यवमध्य आये तब तक ले जाना चाहिए। यवमध्यमें जितने परमाणुओंके स्कन्धरूप प्रत्येक वर्गणा होती है उतने-उतने परमाणुओंके स्कन्धरूप प्रत्येक वर्गणा लोकमें होती भी है या नहीं भी होती? यदि हैं तो एक या दो या तीन उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण होती हैं। यह उससे भी एक अधिक है। ऐसे अनन्त वर्गणा बीतनेपर अनन्तर जो वर्गणा है वह कथंचित् है कथंचित् नहीं है। यदि है तो एक दो या तीन या उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवें भाग है।

वंतागुत्तलुं पूर्व्ववर्ग्गणेयं नोडलेकवर्ग्गणेयिवं विशेषहीनंगळप्पुवितेन्नेवरमुत्कृष्टप्रत्येकसदृशधनिकवर्ग्गणेगळन्नेवरं आ उत्कृष्टप्रत्येकवर्ग्गणेयोळु वर्ग्गणेगळु स्यावस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तवा एकं मेणु द्वयं मेणु त्रयं मेणुत्कृष्टविवमावल्यसंख्यातैकभागंगळु संभविसुर्ववितु ज्ञातव्यमक्कुं। एंती प्रत्येकवर्ग्गणे भव्यसिद्धरुमभव्यसिद्धरुमनाश्रयिसि पेळल्पट्टुवंते बावरनिगोववर्ग्गणेयोळं पेळल्पट्टुवुवु बेरपेळ्केयिल्ल सूक्ष्मनिगोववर्ग्गणेयोळेकेंदोडे जलस्थलाकाशाविगळोळु सर्व्वजघन्यसूक्ष्मनिगोववर्ग्गणेयोळु वर्ग्गणेगळु कथंचिदुंटु कथंचिदिल्ल। एत्तलानुमुंटक्कुमप्पोडागळेकं मेणु द्वयं मेणु त्रयं मेणुत्कृष्टविवमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुविन्तभव्यसिद्धप्रायोग्यप्रत्येकशरीरंगळगे पेळल्पट्ट विधानविवं नडसल्पडुवुवेन्नेवरं यवमध्यमन्नेवरं मायवमध्यवोळमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळु सवृशधनिकंगळप्पुवु। मत्तं प्रत्येकशरीरवर्ग्गणाविधानविदं मेले नडसल्पडुवुवेन्नेवरमुत्कृष्टसूक्ष्म-

आवल्यसंख्यातैकभागः इति प्रत्येकवर्गणा भव्यसिद्धान् अभव्यसिद्धांश्च आश्रित्योक्ता। एवं वादरनिगोदवर्गणायामपि वक्तव्यं, पृथक् कथनं नास्ति। सूक्ष्मनिगोदवर्गणाया तु जलस्थलाकाशादिषु सर्वजघन्यं कथञ्चिदस्ति कथञ्चिन्नास्ति। यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रय वा उष्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः एवमभव्यसिद्धप्रायोग्यप्रत्येकशरीरवन्नेतव्यं यावत् यवमध्यं तावत्। तत्रापि आवल्यसंख्यातैकभागसदृशधनिकानि भवन्ति। पुनः प्रत्येकवर्गणावन्नेतव्यं यावत्तद्वर्गणोत्कृष्टं तावत्। तदपि एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैक-

यह प्रमाण यवमध्य सम्बन्धी पूर्व प्ररूपणासे एक हीन है। इस प्रकार उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर-वर्गणा तक ले जाना चाहिए। अर्थात् एक परमाणुके बढ़नेसे एक वर्गणा होती है। सो अनन्त-अनन्त वर्गणा होनेपर उत्कृष्टमें-से एक घटाना। उत्कृष्ट प्रत्येक वर्गणा पर्यन्त ऐसा करना चाहिए। उत्कृष्ट प्रत्येक वर्गणा भी लोकमें कथंचित् है कथंचित् नहीं है। यदि है तब एक या दो या तीन या उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवें भाग होती है। इस प्रकार भव्य-अभव्य जीवोंकी अपेक्षा प्रत्येक वर्गणा कही। इसी प्रकार बादरनिगोद वर्गणाका भी कथन करना चाहिए। उसमें कुछ विशेष कथन नहीं है। जैसें प्रत्येक वर्गणामें अयोगीके अन्त समयमें सम्भव जघन्य वर्गणाको लेकर भव्योंकी अपेक्षा कथन किया है वैसे ही यहाँ क्षीणकषायके अन्त समयमें सम्भव उसके शरीरके आश्रित जघन्यबादरनिगोद वर्गणाको लेकर भव्योंकी अपेक्षा कथन जानना। सामान्य संसारीकी अपेक्षा दोनों स्थानोंमें समानता सम्भव है। आगे सूक्ष्मनिगोदवर्गणाका कथन करते है।

यहाँ भव्यकी अपेक्षा कथन नहीं है। अतः सूक्ष्म निगोदवर्गणा लोकमें हों भी न भी हों। यदि होती है तो एक, दो या तीन उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है। आगे जैसे संसारियोंकी अपेक्षा प्रत्येकवर्गणाका कथन किया वैसे ही यवमध्य पर्यन्त अनन्तानन्त वर्गणा होनेपर उत्कृष्टमें एक-एक बढ़ाना। पीछे उत्कृष्ट सूक्ष्म वर्गणा पर्यन्त एक-एक घटाना। सामान्यसे सर्वत्र उत्कृष्टका प्रमाण आवलीका असंख्यातवाँ भाग है। यहाँ सर्वत्र अभव्य सिद्धोंके योग्य प्रत्येक बादर सूक्ष्म निगोदवर्गणाकी यवाकार प्ररूपणामें गुणहानिका गच्छ जीवराशिसे अनन्तगुणा जानना। नाना गुणहानि शलाकाका प्रमाण यवमध्यमें ऊपर और नीचे आवलीका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण जानना। इसका अभिप्राय यह है कि संसारी अपेक्षा प्रत्येकवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणामें जो यवमध्य प्ररूपणा कही है उसमें लोकमें पाये जानेकी अपेक्षा जितने एक-एक परमाणु बढ़ने

निगोदवर्ग्गणावसानमन्नेवरमा उत्कृष्टसूक्ष्मनिगोदवर्ग्गणेयोळ् वर्ग्गणेगळु येनितु संभविसुगुमें बोडों बु मेणु यरडु मेणु मूरुत्कृष्टदिदमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवल्लि सर्व्वत्राभव्यसिद्धप्रायोग्ययवमध्यंगळोळु गुणहान्यध्वानं सर्व्वजीवंगळं नोडलनंतगुणितमक्कुं १६ ख नानागुणहानिशलाकेगळु यवमध्यवर्त्तणिद केळगेयुं मेगेयुमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवु $\frac{८}{a}$ ।

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपरमाणू ।
छव्विहभेयं भणियं पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं ॥६०२॥

पृथ्वी जलं च छाया चतुरिंद्रियविषयः कर्म्मपरमाणुः षड्विधभेदं भणितं पुद्गलद्रव्यं जिनवरैः ॥

पृथ्वियें वुं जलमें वुं छायेयें दुं चक्षुरिंद्रियविषयवर्जितशेषेंद्रियचतुष्टयविषयमें दुं कर्म्ममें वुं परमाणुमें वितु पुद्गलद्रव्यं षट्प्रकारममुळ्ळुदें दु जिनवरर्रिदं भणितं निरूपिसल्पट्टुदु ।

भागो भवति । तत्र सर्वत्र अभव्यसिद्धप्रायोग्ययवमध्येषु गुणहान्यध्वानं सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणं १६ ख नानागुणहानिशलाकायवमध्यादधः उपर्यपि आवल्यसंख्यातैकभागः $\frac{८}{a}$ ॥६०१॥

पृथ्वी जलं छाया चक्षुर्वर्जितशेषचतुरिन्द्रियविषयः कर्मपरमाणुश्चेति पुद्गलद्रव्यं षोढा जिनवरैर्भणितम् ॥६०२॥

रूप जो वर्गणा भेद हैं उन भेदोंका प्रमाण तो द्रव्य है। और जिन वर्गणाओंमें उत्कृष्ट पानेकी अपेक्षा समानता पायी जाती है उनका समूह निषेक है और उनका जो प्रमाण है वह स्थिति है। तथा एक गुणहानिमें निषेकोंका जो प्रमाण है वह गुणहानिका गच्छ है। उसका प्रमाण जीवराशिसे अनन्त गुना है। तथा यवमध्यके ऊपर और नीचे जो गुणहानिका प्रमाण है वह नाना गुणहानि है। सो प्रत्येक आवलीका असंख्यातवाँ भाग मात्र है।

इस प्रकार द्रव्यादिका प्रमाण जानकर जैसे निषेकोंमें द्रव्यका प्रमाण लानेका विधान है वैसे ही उत्कृष्ट पानेकी अपेक्षा समानरूप वर्गणाओंका प्रमाण यवमध्यसे ऊपर और नीचे चय घटता क्रम लिये जानना।

शंका—यहाँ तो प्रत्येक आदि तीन सचित्त वर्गणाओंके अनन्त भेद कहे और एक-एक भेदरूप वर्गणा लोकमें आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण सामान्य रूपसे कहीं। किन्तु पहले मध्यभेदरूप सचित्त वर्गणा सब असंख्यात लोक प्रमाण ही कही है। सो उत्कृष्ट और जघन्यको छोड़ सब भेद मध्य भेदोंमें आ जाते हैं वहाँ ऐसा प्रमाण कैसे सम्भव है?

समाधान—यहाँ सब भेदोंमें ऐसा कहा है कि होते भी है, नहीं भी होते। यदि होते हैं तो एक दो आदि उत्कृष्ट आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं। सो यह कथन नाना कालकी अपेक्षा है, किसी एक वर्तमान कालकी अपेक्षा वर्तमान कालमें सब मध्यभेदरूप प्रत्येकादि वर्गणा असंख्यात लोक प्रमाण ही पायी जाती हैं। अधिक नहीं। उनमें-से किसी भेदरूप वर्गणाकी नास्ति ही है और किसी भेदरूप वर्गणा एक आदि प्रमाणमें पायी जाती है। तथा किसी भेदरूप वर्गणा उत्कृष्ट प्रमाणको लिये हुए पायी जाती है।

इस प्रकार तेईस वर्गणाओंका कथन किया ॥६०१॥

पृथ्वी, जल, छाया, चक्षुको छोड़ शेष चार इन्द्रियोंका विषय और कार्माणस्कन्ध तथा परमाणु इस प्रकार जिनेन्द्र देव पुद्गल द्रव्यके छह भेद कहे हैं ॥६०२॥

बादरबादरबादर बादरसुहुमं च सुहुमथूलं च ।
सुहुमं च सुहुमसुहुमं धरादियं होदि छब्भेयं ॥६०३॥

बादरबादरं बादरसूक्ष्मं च सूक्ष्मस्थूलं च । सूक्ष्मं च सूक्ष्मसूक्ष्मं धरादिकं भवति षड्भेदं ॥

पृथ्विरूपपुद्गलद्रव्यमं बादरबादरमें बुदु । छेदिसल्कं भेदिसल्कं अन्यत्रमोय्वडं शक्यमप्पुदु बादरबादरमें बुदर्त्थं । जलमं बादरमें बुदु । आवुदोंदु छेदिसल्कं भेदिसल्कं अशक्यमन्यत्रमोय्वडे शक्यमदु बादरमें बुदर्त्थं । छायेयं बादरसूक्ष्ममें बुदु । आवुदोंदु छेदिसल्कं भेदिसल्कवुमन्यत्रमोय्वडशक्यमप्पुददु बादरसूक्ष्ममें बुदर्त्थं । आवुदोंदु चक्षुरिंद्रियरहितशेषचतुरिंद्रियविषयमप्प बाह्यात्थमदं सूक्ष्मस्थूलमें बुदु । कर्म्ममं सूक्ष्ममें बुदु । आवुदोंदु द्रव्यं देशावधिपरमावधिविषयमदु सूक्ष्ममेंबुदर्त्थं । परमाणुवं सूक्ष्मसूक्ष्ममें बुदु । आवुदोंदु पुद्गलद्रव्यमदु सर्व्वावधिविषयमेयादोडे सूक्ष्मसूक्ष्ममें-बुदर्त्थं ।

खंधं सयलसमत्थं तस्स य अद्धं भणंति देसो त्ति ।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी चेव परमाणू ॥६०४॥

स्कंधं सकलसमर्त्थं तस्य चार्द्धं भणंति देश इति । अर्द्धार्द्धं च प्रदेशः अविभागी चैव परमाणुः ॥

स्कंधमें बुदु सर्व्वांशंगळिदं संपूर्णमक्कुमदरर्द्धमं देशमें दितु पेळ्वरु । अर्द्धस्यार्द्धमर्द्धार्द्धमदं प्रदेशमें दु पेळ्वरु । अविभागियप्पुर्वारदं परमाणुवें दु पेळ्वरु गणधरादिपरमागमज्ञानिगळु । इंतु स्थानस्वरूपाधिकारंतिदुर्द्दु ।

पृथ्वीरूपपुद्गलद्रव्यं बादरबादरं छेत्तुं भेत्तुं अन्यत्र नेतुं शक्यं तद्बादरबादरमित्यर्थः । जलं बादरं, यच्छेत्तुं भेत्तुमशक्यं, अन्यत्र नेतुं शक्यं तद्बादरमित्यर्थः । छाया बादरसूक्ष्मं यच्छेत्तुं भेत्तुमन्यत्र नेतुमशक्यं तद्बादरसूक्ष्ममित्यर्थः । यः चक्षुर्वर्जितचतुरिन्द्रियविषयो बाह्यार्थः तत्सूक्ष्मस्थूलम् । कर्म सूक्ष्मं, यद्द्रव्यं देशावधिपरमावधिविषयं तत्सूक्ष्ममित्यर्थः । परमाणुसूक्ष्मसूक्ष्मं तत्सर्वावधिविषयं तत्सूक्ष्मसूक्ष्ममित्यर्थः ॥६०३॥

स्कन्धं सर्वांशसंपूर्णं भणन्ति तदर्धं च देशं, अर्धस्यार्धं प्रदेशं अविभागिभूतं परमाणुम् ॥६०४॥ इति स्थानस्वरूपाधिकारः ।

पृथ्वीरूप पुद्गल द्रव्य बादर-बादर है। जिसका छेदन-भेदन किया जा सके, जिसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाया जा सके वह बादर-बादर है। जिसका छेदन-भेदन तो न हो सके किन्तु अन्यत्र ले जाया जा सके वह बादर है। छाया बादरसूक्ष्म है। जो छेदन-भेदन और अन्यत्र ले जानेमें अशक्य हो वह बादर सूक्ष्म है। जो चक्षुको छोड़ शेष चार इन्द्रियोंका विषय बाह्य पदार्थ है वह सूक्ष्म स्थूल है। कर्मस्कन्ध सूक्ष्म है। जो द्रव्य देशावधि और परमावधिज्ञानका विषय होता है वह सूक्ष्म है। परमाणु सूक्ष्मसूक्ष्म है। जो सर्वावधिज्ञानका विषय है वह सूक्ष्मसूक्ष्म है ॥६०३॥

जो सब अंशोंसे पूर्ण हो उसे स्कन्ध कहते हैं। उसके आधेको देश कहते हैं। और आधेके आधेको प्रदेश कहते हैं। जिसका विभाग न हो सके वह परमाणु है ॥६०४॥

स्थानाधिकार समाप्त हुआ।

---

१. म चक्षुरिंद्रियविषयवर्ज्जं नाल्किंद्रियविषयमप्प ।

गदिठाणोग्गहकिरियासाधणभूदं खु होदि धम्मतियं।
वत्तणकिरियासाहणभूदो णियमेण कालो दु ॥६०६॥

गतिस्थानावगाहक्रियासाधनभूतं खलु भवति धर्म्मत्रयं। वर्त्तनक्रियासाधनभूतो नियमेन कालस्तु ॥

देशांतरप्राप्तिहेतुवं गतियें बुदु। तद्विपरीतमं स्थानमें बुदु। अवकाशदानमनवगाहमें बुदु। गतिक्रियावंतंगळप्पजीवपुद्गलंगळ गतिक्रियासाधनभूतं धर्म्मद्रव्यमक्कुं। मत्स्यगमनक्रियेयोळु जलमें तंते। स्थानक्रियावंतंगळप्प जीवपुद्गलंगळ स्थानक्रियासाधनभूतमधर्म्मद्रव्यमक्कुं पथिकजनंगळ स्थानक्रियेयोळु च्छाये यें तंतें।

अवगाहक्रियावंतंगळप्प जीवपुद्गलादिद्रव्यंगळ अवगाहक्रियेयोळु साधनभूतमाकाशद्रव्यमक्कुमिप्पंगे वसति यें तंते, इल्लियें दपं क्रियावंतंगळप्प अवगाहिजीवपुद्गलंगळ्गे अवकाशदानं युक्तमक्कुमितरधर्म्मादिद्रव्यंगळु निष्क्रियंगळुं नित्यसंबंधंगळुमवक्कें तवगाहदानमें दोडंतल्तु येक्कें दोडुपचारदिंद तत्सिद्धियक्कुमप्पुदरिंदं। यें तीगळु गमनाभावमागुत्तिरलुं सर्व्वगतमाकाशमें दितु पेळल्पट्टुदु सर्व्वत्र सद्भावमप्पुदरिंदमंते धर्म्मादिगळ्गे अवगाहनक्रियाभावदोळं सर्वत्र व्याप्तिदर्शनदिंदमवगाहमितुपचरिसल्पट्टुवु। मत्तमें दपमेत्तलानुमवकाशदानमाकाशक्के स्वभावमा-

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः। तद्विपरीतं स्थानम्। अवकाशदानमवगाहः। गतिक्रियावतोर्जीवपुद्गलयोः तत्क्रियासाधनभूतं धर्मद्रव्यं मत्स्याना जलमिव। स्थानक्रियावतोर्जीवपुद्गलयोः तत्क्रियासाधनभूतमधर्मद्रव्यं पथिकानां छायेव। अवगाहनक्रियावतां जीवपुद्गलादीना तत्क्रियासाधनभूतमाकाशद्रव्यं तिष्ठतो वसतिरिव। ननु क्रियावतोरवगाहिजीवपुद्गलयोरेवावकाशदानं युक्तं धर्मादीना तु निष्क्रियाणा नित्यसंबद्धाना तत् कथं? इति तन्न उपचारेण तत्सिद्धेः। यथा गमनाभावेऽपि सर्वगतमाकाशमित्युच्यते सर्वत्र सद्भावात् तथा धर्मादीना अवगाहनक्रियाया अभावेऽपि सर्वत्र व्याप्तिदर्शनात् अवगाह इत्युपचर्यते ॥

एक देशसे दूसरे देशको प्राप्त होनेमें जो कारण है वह गति है। उससे विपरीत स्थान है। अवकाशदानको अवगाह कहते हैं। जैसे मत्स्योंको गमनमें सहायक जल है वैसे ही गतिरूप क्रिया करते हुए जीव और पुद्गलोंकी गतिक्रियामें सहायक धर्मद्रव्य है। जैसे छाया पथिकोंके ठहरनेका साधन है वैसे ही ठहरने रूप क्रिया परिणत जीव पुद्गलोंको ठहरने रूप क्रियामें साधन अधर्म द्रव्य है। जैसे निवास करनेवालोंको वसतिका साधनभूत है वैसे ही अवगाहन क्रियावाले जीव पुद्गल आदिको उस क्रियामें साधनभूत आकाशद्रव्य है।

शंका—क्रियावान् अवगाही जीव और पुद्गलोंको ही अवकाश देना युक्त है। धर्म आदि तो निष्क्रिय हैं, नित्य सम्बद्ध हैं उन्हें अवकाशदान कैसे सम्भव है?

समाधान—ऐसा कथन उपचारसे किया गया है। जैसे आकाशमें गमनका अभाव होनेपर भी उसे सर्वगत कहा जाता है क्योंकि वह सर्वत्र पाया जाता है। वैसे ही धर्मादिमें अवगाह क्रिया न होनेपर भी समस्त लोकाकाशमें व्याप्त होनेसे अवगाहका उपचार किया जाता है।

वोडे वज्रादिगळिदं लोष्ठादिगळ्गे भित्यादिगळिदं गवादिगळ्गेयुं व्याघातमेय्यदल्पडदे काणल्पट्टुदल्ते व्याघातमक्कु कारणदिदमो याकाशक्कवगाहदानं कुंदल्पड्डुगुमें दितेनल्वेडेके दोडे दोषमल्तप्पुदे कारणमागि ।

अदें तें दोडे स्थूलगळप्प वज्रलोष्ठादिगळ्गे परस्परव्याघातमें दितिदक्के अवकाशदानसामर्थ्यं कुंदल्पडदल्लि अवगाहिगळ्गेये व्याघातमप्पुदरिदं वज्रादिगळ्गे मत्ते स्थूलंगळप्पुदरिदं परस्परं प्रत्यवकाशदानमं माळ्पुवल्लवें वेंदितु दोषक्कवकाशमिल्ल । आवुवु केलवु पुद्गलंगळु सूक्ष्मंगळवु परस्परं प्रत्यवकाशदानमं माळ्पुवु येत्तलानुमितादोडे इवाकाशक्कसाधारणलक्षणं मत्तेकें दोडे :—इतरद्रव्यंगळ्गं तत्सद्भावमप्पुदरिदमें दितेनल्वेडेकें दोडे सर्व्वपदार्त्थंगलो साधारणावगाहनहेतुत्वमो याकाशक्कसाधारणलक्षणमें वितु दोषमिल्ल । अलोकाकाशदोळु अवगाहदानमिल्लप्पुदरिदमभावमक्कुमें देत्तलानुमें बोडयुक्तमेकें दोडे स्वभावपरित्यागमिल्लमप्पुदरिदं । वर्त्तनक्रियासाधनभूतो नियमेन कालस्तु । जीवादिवर्त्तनक्रियावंतंगळप्प द्रव्यंगळ वर्त्तनक्रियासाधनभूतं तु मत्ते नियमदिवं कालद्रव्यमक्कुं ।

अथ यदि अवकाशदानं आकाशस्य स्वभावस्तदा वज्रादिभिर्लोष्टादीना भित्यादिभिर्गवादीना च व्याघातो माभूत्, दृश्यते च व्याघात. । तेन आकाशस्य अवगाहदानं हीयते इति नाशङ्कनीयं, वज्रलोष्ठादीना स्थूलत्वाद् व्याघातेऽपि अवगाहिनामेव व्याघातात् तस्य अवगाहदानसामर्थ्यह्रासाभावात् । सूक्ष्मपुद्गलाना परस्परं प्रत्यवकाशदानकारणात् । यद्येवं तर्हि आकाशस्य तदसाधारणलक्षणं न इतरद्रव्याणामपि तत्सद्भावात् इति न मन्तव्यं, सर्वपदार्थाना साधारणावगाहनहेतुत्वस्यैव आकाशस्यासाधारणलक्षणत्वात् । तर्हि अलोकाकाशे अवगाहनदानाभावात् अभावः स्यात् ? तदपि न, स्वभावपरित्यागाभावात् । तु—पुनः द्रव्याणां वर्तनाक्रियासाधनभूतं नियमेन कालद्रव्य भवति ॥

शंका—अवकाश देना आकाशका स्वभाव है तो वज्र आदिसे लोष्ठ आदिका और दीवार आदिसे गाय आदिका व्याघात—टक्कर नहीं होना चाहिए। किन्तु व्याघात देखा जाता है अतः आकाशके अवगाह देनेकी बात नहीं घटती?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए; क्योंकि वज्र, लोष्ठ आदि स्थूल हैं उनका व्याघात होनेपर अवगाहियोंमें ही व्याघात हुआ। इससे आकाशके अवकाशदानकी शक्तिमें कोई कमी नहीं आती; क्योंकि सूक्ष्म पुद्गल परस्परमें भी एक दूसरेको अवकाश देते हैं, किन्तु स्थूलोंमें ऐसा सम्भव नहीं है।

शंका—यदि सूक्ष्म पुद्गल भी परस्परमें अवकाशदान करते हैं तो अवकाश देना आकाशका असाधारण लक्षण नहीं हुआ; क्योंकि यह लक्षण अन्य द्रव्योंमें भी पाया जाता है?

समाधान—ऐसा नहीं है; क्योंकि सब पदार्थोंको अवगाह देनेमें साधारण कारण होना ही आकाशका असाधारण लक्षण है।

शंका—तब अलोकाकाशमें तो आकाश किसीको अवकाश दान नहीं करता अतः वहाँ उसका अभाव मानना होगा।

समाधान—ऐसा कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि वहाँ भी वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। तथा द्रव्योंकी वर्तनाक्रियामें साधनभूत नियमसे कालद्रव्य है ॥६०५॥

अण्णोण्णुवयारेण य जीवा वट्टंति पोग्गलाणि पुणो।
देहादीणिव्वत्तणकारणभूदा हु णियमेण ॥६०६॥

अन्योन्योपकारेण च जीवा वर्त्तंते पुद्गलाः पुनः। देहादीनां निर्वर्त्तनकारणभूताः खलु नियमेन ॥

अन्योन्योपकारदिदं स्वामिभृत्यनाचार्य्यशिष्यनें दितेवमादिभावदिदं वर्त्तनं परस्परोपग्रहमक्कुं। अन्योन्योपकारमेंबुदक्कुमेंबुदर्थमवेंतेंदोडे स्वामि येंबं भृत्यरुगळगे वित्तत्यागाद्युपकारदोळ् वर्त्तिसुगुं। भृत्यरुगळु हितप्रतिपादनदिंदमुमहितप्रतिषेधनदिंदमुं वर्त्तिसुवरुं। आचार्य्यनुमुभयलोकफलप्रदोपदेशदर्शनदिंदं तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठानदिंदमुं शिष्यरुगळुपकारदोळु वर्त्तिसुगुं। शिष्यरुगळुं तदानुकूल्यवृत्तियिंदमुपकाराधिकारंगळोळु वर्त्तिसुगुं। इंतन्योन्योपकारदिंदं जीवंगळु वर्त्तिसुववु। च शब्ददिंदमनुपकारदिंदमुं वर्त्तिपुवु। अनुभयदिंदमुं वर्त्तिपुवु। पुद्गलाः पुनर्द्देहादीनां खलु निर्वर्त्तनकारणभूताः नियमेन पुद्गलंगळु मत्ते जीवंगळ देहादिगलनिर्वर्त्तनकारणभूतंगळप्पुवल्लिदेहग्रहणदिदं कर्म्मनोकर्म्मंगळगे ग्रहणमक्कुं। नोकर्म्मकर्म्मवाग्मनउच्छ्वासनिःश्वासंगळ निर्वर्त्तनकारणभूतंगळु नियमदिदं पुद्गलंगळप्पुवें बुदर्थमिल्लि पूर्व्वपक्षमं माडिदपं कर्म्ममपौद्गलिकमेकें दोडे अनाकारत्वदिदं। आकारवंतंगळप्पौदारिकादिगळगे पौद्गलिकत्वं युक्तमें दितिदक्कुत्तरमंतल्तेकें दोडे कर्म्ममुं पौद्गलिकमेयक्कुं तद्विपाकक्के मूर्त्तिमत्संबंधनिमित्तत्वदिदं काणलपट्टुवु व्रीह्यादिगळगे उदकादिद्रव्यसंबंधप्रापितपरिपाकंगळगे पौद्गलिकत्वमंते कार्म्मणमुं लगुडकंटकादिमूर्त्तिमद्द्रव्योप-

अन्योन्यमुपकारेण जीवा वर्तन्ते यथा स्वामी भृत्य वित्तत्यागादिना, भृत्यस्त हितप्रतिपादनाहितप्रतिषेधादिना, आचार्यः शिष्य उभयलोकफलप्रदोपदेशक्रियानुष्ठानाभ्या, शिष्यस्त आनुकूल्यवृत्त्युपकाराधिकारैः, चशब्दात् अनुपकारानुभयाभ्यामपि वर्तन्ते। पुद्गला पुनः देहादीना कर्मनोकर्मवाङ्मनउच्छ्वासनिश्वासाना निर्वर्तनकारणभूताः खलु नियमेन भवन्ति। ननु कर्मापौद्गलिकं अनाकारत्वात्—आकारवतामौदारिकादीनामेव तथात्वं युक्तमिति तन्न, कर्मापि पौद्गलिकमेव लगुडकण्टकादिमूर्तद्रव्यसबन्धेन पच्यमानत्वात्। उदकादिमूर्तद्रव्यसबन्धेन व्रीह्यादिवत्। वाक् द्वेधा द्रव्यभावभेदात्। तत्र भाववाग् वीर्यान्तिरायमतिश्रुतावरणक्षयोप-

---

जीव परस्परमें एक दूसरेका उपकार करते हैं। जैसे स्वामी अपने धन आदिके द्वारा सेवकका उपकार करता है और सेवक हितकी बात कहने तथा अहितसे रोकने आदिके द्वारा स्वामीका उपकार करता है। गुरु इस लोक और परलोकमें फल देनेवाले उपदेश तथा क्रियाके अनुष्ठान द्वारा शिष्यका उपकार करता है और शिष्य गुरुके अनुकूल रहकर उनका उपकार करता है। पुद्गल शरीर आदि तथा कर्म-नोकर्म, वचन, मन, उच्छ्वास, निश्वास आदिकी रचनामें नियमसे कारण होते हैं।

शंका—कर्म पौद्गलिक नहीं है क्योंकि उसका कोई आकार नहीं है। आकारवाले जो औदारिक आदि शरीर हैं उन्हें ही पौद्गलिक मानना युक्त है ?

समाधान—नहीं, कर्म भी पौद्गलिक ही है क्योंकि लाठी, काँटा आदि मूर्तद्रव्यके सम्बन्धसे ही फल देता है जैसे पानी आदि मूर्तद्रव्यके सम्बन्धसे पकनेवाले धान मूर्त हैं।

द्रव्य और भावके भेदसे वाक् दो प्रकार की है। भाववाक् वीर्यान्तराय, मतिज्ञाना-

पातमागुत्तं विरलु विपच्यमानत्वदिवं पौद्गलिकमॆंदे निश्चैसल्पडुवुदु । वाग् द्विप्रकारमक्कुं द्रव्यवाक् भाववाक्कॆंदितल्लि भाववाक्कॆंबुदु वीर्य्यांतरायमतिश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमांगोपांगनामलाभनिमित्तत्वदिवं पौद्गलिकॆयक्कुमेकॆंदोडॆ तदभावमागुत्तिरलु तद्वृत्त्यभावमप्पुदरिवं । तत्सामर्थ्योपेतत्वदिवं क्रियावंतनप्पात्मनिवं प्रेर्य्यमाणंगळप्प पुद्गलंगळु वाक्त्वदिदं परिणमिसुववॆंदितु द्रव्यवाक्कुं पौद्गलिकॆयक्कुं मेकॆंदोडॆ श्रोत्रेंद्रियविषयत्वदिवं इतरेंद्रियविषयमेनु कारणमागदॆंदोडॆ तद्ग्रहणायोग्यत्वदिवं घ्राणग्राह्यगंधद्रव्यदोळु रसाद्यनुपलब्धियंते, अमूर्त्तं वाक्कॆंदॆंतलानुमॆंबॆयप्पोडॆ युक्तमल्तेकॆंदोडॆ मूर्त्तिमद्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदर्शनदिवं मूर्त्तिमत्त्व सिद्धियप्पुदरिदं ।

मनमुं द्विप्रकारमक्कुं द्रव्यभावभेदविदल्लि भावमनस्सॆंबुदु लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलालंबनदिदं पौद्गलिकमक्कुं । द्रव्यमनमुं ज्ञानावरणवीर्य्यांतरायक्षयोपशमांगोपांगनामलाभप्रत्ययंगळप्प गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखमप्पात्मंगनुग्राहकपुद्गलंगळु मनस्त्वदिदं परिणतंगळॆंदितु पौद्गलिकमक्कुं । वोर्व्वनॆंदपं :—मनं द्रव्यांतरं रूपादिपरिणमनविरहितमणुमात्र-

शमाङ्गोपाङ्गनामकर्मलाभनिमित्तत्वात् पौद्गलिका तदभावे तद्वृत्त्यभावात् । तत्सामर्थ्योपेतत्वेन क्रियावतात्मना प्रेर्यमाणपुद्गला. वाक्त्वेन परिणमन्तीति द्रव्यवागपि पौद्गलिकैव श्रोत्रेन्द्रियविषयत्वात् । इतरेन्द्रियविषयापि कुतो न स्यात् तद्ग्रहणायोग्यत्वात् घ्राणग्राह्ये गन्धद्रव्ये रसाद्यनुपलब्धिवत् । अमूर्ता वाग् इत्यप्ययुक्तं मूर्तैर्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदर्शनात् मूर्तत्वसिद्धे. । मनोऽपि तथा द्वेधा । तत्र भावमनः लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलालम्बनात् पौद्गलिकम् । द्रव्यमनोऽपि ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामकर्मलाभप्रत्यय-गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहकपुद्गलाना तथात्वेन परिणमनात् पौद्गलिकम् । कश्चिदाह—मन द्रव्यान्तर रूपादिपरिणमनविरहितमणुमात्र, पौद्गलिक न । आचार्य आह—तेन आत्मनः

वरण और श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशम तथा अंगोपांग नामक कर्मके उदयके निमित्तसे होनेसे पौद्गलिक है। उसके अभावमें भाववचन—बोलनेकी शक्ति नहीं होती। भाववचनकी शक्तिसे युक्त क्रियावान् आत्माके द्वारा प्रेरित पुद्गल वचन रूप परिणत होते हैं इसलिए द्रव्यवाक् भी पौद्गलिक ही है क्योंकि श्रोत्र इन्द्रियका विषय है ।

शंका—जब वचन पौद्गलिक है तो अन्य इन्द्रियोंका भी विषय क्यों नहीं है ?

समाधान—वह अन्य इन्द्रियोंसे ग्रहण करनेके अयोग्य है। जैसे घ्राण इन्द्रियसे ग्राह्य सुगन्धित द्रव्यमें रसना आदि इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति नहीं होती।

वचन अमूर्तिक है ऐसा कहना भी अयुक्त है क्योंकि मूर्त इन्द्रियके द्वारा शब्दका ग्रहण होता है, मूर्त दीवार आदिसे रोका जाता है, मूर्त पदार्थसे टकराता है तथा बहुत तीव्र शब्दसे मन्द शब्द दब जाता है इससे वचन मूर्तिक सिद्ध होता है। मन भी दो प्रकारका है—भावमन और द्रव्यमन। भावमन लब्धि और उपयोग लक्षणवाला है। वह पुद्गलके अवलम्बनसे होता है। इसलिए पौद्गलिक है। द्रव्यमन भी पौद्गलिक है क्योंकि ज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशम तथा अंगोपांग नामकर्मके उदयसे जब आत्मा गुण-दोषके विचार, स्मरण आदिके अभिमुख होता है तो उसके उपकारी पुद्गल मन रूपसे परिणमन करते हैं इसलिए पौद्गलिक है। किसीका कहना है—मन एक पृथक् द्रव्य है उसमें रूपादि

मदक्के पौद्गलिकत्वमयुक्तमें दितु येंदोडाचार्य्यनें दपं—आ इंद्रियदोडनात्मंगे संबंधमुंटो मेणु संबंधमिल्लमो ? येत्तलानुं संबंधमिल्लें बेयप्पोडदल्तेकें दोडे आत्मंगुपकारमागल्वेळ्कुमाउपकारमं माडवु इंद्रियक्कं साचिव्यमं सचिवत्वमुमं माडवु अथवा संबंधमुंटें बेयप्पोडे एकप्रदेशसंबंधमप्पुदरिंदमा अणुवुमितरप्रदेशंगळोळुपकारमं माडदु । अदृष्टवशाविना मनक्कलातचक्रवंते परिभ्रमणमुंटें बेयप्पोडवुवुं संभविसदेकें दोडे अणुमात्रक्के तत्सामर्थ्याभावमप्पुदरिंदं ।

अमूर्त्तनप्पात्मंगे निष्क्रियंगे अद्रष्टमप्प गुणमन्यत्रक्रियारंभदोळु समर्थमल्तु अहंगे काणल्पट्टुदु । वायुद्रव्यविशेषं क्रियावंतमुं स्पर्शनवंतमुं प्राप्तमादुदु वनस्पतियोळु परिस्पंदहेतुवक्कुं तद्विपरीतलक्षणमी यणुमें दितु क्रियाहेतुत्वाभावमक्कुं । वीर्यांतरायज्ञानावरणक्षयोपमांगोपांगनामोदयापेक्षयिंदमात्मनिंदुदस्यमानकण्यमप्प वायुउच्छ्वासलक्षणमप्पुदु प्राणमें दु पेळल्पट्टुदु । आ वायुविंदमेयात्मंगे पोरगण वायुवनभ्यंतरीक्रियमाणनिश्वासलक्षणमपानमें दु पेळल्पट्टुदु । इंतीयेरडुमात्मंगे अनुग्राहिगळप्पुवेकें दोडे जीवितहेतुत्वदिंदमा मनःप्राणापानंगळ्गे मूर्त्तिमत्वमरियल्पडुवुदेकें दोडे प्रतिघातादिदर्शनदिंदं प्रतिभयहेतुगळप्पऽशनिपातादिगळिंदं मनक्के प्रतिघातं काणल्पट्टुदु । सुरादिगळिं स्वादिगळिंदमप्प पूतिगंधिप्रतिभयदिंद हस्ततलपुटादिगळिंदमास्यसवरणदिंदं

सम्बन्धः स्यात् न वा ? यदि न, तन्न आत्मन उपकारेण भाव्यं तन्नोपकुर्वीत, इन्द्रियस्य साचिव्यं सचिवत्व न कुर्यात् । अथ स्यात्, तदा एकदेशसम्बन्धेन सोऽणुः इतरप्रदेशेषु नोपकुर्यात् । अथादृष्टवशेन तस्यालातचक्रवत्परिभ्रमणं तदप्यसंभाव्यं, अणुमात्रस्य तत्सामर्थ्याभावात्, अमूर्तस्य आत्मनो निष्क्रियस्यादृष्टगुण अन्यत्र क्रियारम्भे समर्थो न । वायुद्रव्यं हि क्रियावत् स्पर्शवत् प्राप्तवनस्पतौ परिस्पन्दहेतुः तद्विपरीतलक्षणोऽयमणुस्तादृक् क्रियाहेतुर्न स्यात् । वीर्यान्तरायज्ञानावरणक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामोदयापेक्षेणात्मनोदस्यमानकण्ठ्यवायुउच्छ्वासलक्षणः स प्राणः । तेनैव वायुना आत्मनो बाह्यवायुरभ्यन्तरीक्रियमाणो निश्वासलक्षण अपानः । तौ च आत्मनोऽनुग्राहिणौ जीवितहेतुत्वात्, ते च मनःप्राणापाना मूर्तिमन्तः, मनसः प्रतिभयहेत्वशनिपातादिभिः

नहीं है तथा वह परमाणु बराबर है, पौद्गलिक नहीं है। आचार्य कहते हैं—उस अणुरूप मनका सम्बन्ध आत्माके साथ है या नहीं है। यदि नहीं है तो वह आत्माका उपकार नहीं कर सकता और न इन्द्रियोंकी ही सहायता कर सकता है। यदि सम्बन्ध है तो उस अणुरूप मनका सम्बन्ध आत्माके एक देशके साथ ही हो सकता है और ऐसी स्थितिमें वह अन्य प्रदेशोंमें उपकार नहीं कर सकता। यदि कहोगे कि अदृष्टवश वह अणुरूप मन समस्त आत्मामें अलातचक्रकी तरह भ्रमण करता है इससे उसका सर्वत्र सम्बन्ध होता है। तो वह भी सम्भव नहीं है क्योंकि अणुमात्र मनमें ऐसी सामर्थ्यका अभाव है। तथा अमूर्त और क्रियारहित आत्माका गुण अदृष्ट अन्यमें क्रिया करानेमें समर्थ नहीं है। वायु क्रियावान् और स्पर्शवान् होनेसे प्राप्त वृक्षादिमें हलनचलन करनेमें कारण होती है। किन्तु यह अणुरूप मन तो उससे विपरीत लक्षणवाला है इसलिए उस प्रकारकी क्रियामें हेतु नहीं हो सकता। वीर्यान्तराय और ज्ञानावरणके क्षयोपशम और अंगोपांग नामकर्मके उदयकी अपेक्षासे आत्माके द्वारा जो अन्दरकी वायु बाहर निकाली जाती है उसे उच्छ्वास रूप प्राण कहते हैं। और उसी आत्माके द्वारा जो बाहरकी वायु भीतरकी ओर ली जाती है उसे निश्वास रूप अपान कहते हैं। ये प्राण अपान भी आत्माके उपकारी हैं क्योंकि उसके जीवनमें हेतु होते हैं। वे मन, प्राण अपान मूर्तिमान हैं क्योंकि भयके हेतु वज्रपात आदिसे मनका, और

प्राणापानंगळ्गे प्रतिघातं पडेयल्पट्टुदु, श्लेष्मविदं मेणु अभिभवं काणल्पट्टुदु। अमूर्त्तंक्के मूर्त्तिमत्तुगळिंदमभिघाताविगळागवु। अदु कारणदिदमे आत्मास्तित्वसिद्धियक्कुमेंतीगळेल्लियानुं प्रतिमाचेष्टितं प्रयोक्तृलिंगास्तित्वमनरिपुगुमंते प्राणापानादिव्यापारमुं क्रियावंतनप्पात्मनं साधिसुगुमिदल्लदेयुं मत्ते केलवुं जीवितमरणसुखदुःखनिर्व्वर्त्तनकारणभूतंगळु पुद्गलंगळप्पुवु। सदसद्वेद्योदयमंतरंगहेतुवुंटागुत्तिरलु बाह्यद्रव्यादिपरिपाकनिमित्तवशदिदमुत्पद्यमानप्रीतिपरितापरूपपरिणामं सुखदुःखमेंदु पेळल्पट्टुदु। भवधारणकारणायुराख्यकर्म्मोदयदिदं भवस्थितियं धरिसिद जीवक्के पूर्व्वोक्तप्राणपानक्रियाविशेषाव्युच्छेदं जीवितमेंदु पेळल्पट्टुदु, तदुच्छेदं मरणमेंदु पेळल्पट्टुदु। ई सुखादिगळु जीवक्के पुद्गलंगळिदमे संभविसुववु। मूर्त्तिमद्धेतु सन्निधानमागुत्तिरलु तदुत्पत्तियुंटप्पुदरिंदं। केवलं जीवंगळ शरीरादिनिर्व्वर्त्तनकारणभूतंगळु पुद्गलंगळेंबुदिल्ल। पुद्गलक्कं पुद्गलंगळु निर्व्वर्त्तनहेतुगळप्पुवु। कांस्यादिगळ्गे भस्मादिगळिदं जलादिगळ्गे कतकादिगळिदं अयःप्रभृतिगळ्गे जलादिगळिदं उपकारं माडल्पट्टुदु काणल्पडुगुमप्पुदरिंदं। इंतु औदारिकवैक्रियिक आहारकशरीरनामकर्म्मोदयदिदमा मूरुं शरीरंगळु मुच्छ्वासनिश्वासमुमाहारवर्ग्गणेयिनप्पुवु। तैजसशरीरनामकर्म्मोदयदिदं तेजोवर्ग्गणेयिदं तैजसशरीरमक्कुं। कार्म्मणशरीरनाम-

प्राणापानयोश्च श्वादिपूतिगन्धिप्रतिभयेन हस्ततलपुटादिभिरास्यसंवरणेन श्लेष्मणा वा प्रतिघातदर्शनात्, अमूर्तस्य मूर्तिमद्भिस्तदसंभवाच्च। तत एव प्राणापानादिव्यापारादात्मनोऽस्तित्वसिद्धिः प्रयोक्तुरभावे प्रतिमाचेष्टितस्येव आत्माभावे तदघटनात्। तथा सदसद्वेद्योदयान्तरङ्गहेतौ सति बाह्यद्रव्यादिपरिपाकनिमित्तवशेन उत्पद्यमानप्रीतिपरितापरूपपरिणामौ सुखदुःखे। आयुरुदयेन भवस्थितिं बिभ्रतः प्राणापानक्रियाविशेषाव्युच्छेदो जीवितं, तदुच्छेदो मरणम्। तान्यपि पौद्गलिकानि मूर्तिमद्धेतुसन्निधाने सति तदुत्पत्तिसंभवात्। न केवलं जीवशरीरादीनामेव निर्वर्तनकारणभूताः पुद्गलाः पुद्गलादीनामपि कांस्यादीनां भस्मादीभिः जलादीनां कतकादिभिः अयःप्रभृतीनां जलादिभिश्च उपकारदर्शनात्। एवमौदारिकवैक्रियिकाहारकनामकर्मोदयात् आहारवर्गणायातानि त्रीणि शरीराणि उच्छ्वासनिश्वासौ च। तैजसनामकर्मोदयात् तेजोवर्गणया तैजसशरीरम्।

दुर्गन्ध आदिके भयसे हथेली आदिसे मुखको बन्द कर लेनेसे तथा जुकामसे प्राण अपानका प्रतिघात देखा जाता है। अमूर्तका मूर्तिमानके द्वारा प्रतिघात सम्भव नहीं है। उसी प्राण अपान आदि की क्रियासे आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि होती है। जैसे प्रयोक्ताके अभावमें यन्त्रादि मशीनमें क्रिया सम्भव नहीं है। तथा साता-असाता वेदनीयके उदयरूप अन्तरंग कारणके होनेपर बाह्य द्रव्यादिके परिपाकके निमित्तसे जो प्रीतिरूप या सन्तापरूप परिणाम उत्पन्न होता है उसे सुख और दुःख कहते हैं। आयुकर्मके उदयसे भवमें स्थिति करते हुए श्वास-उच्छ्वास आदि क्रिया विशेषका होते रहना जीवन है और उसका छेद होना मरण है। ये भी पौद्गलिक है क्योंकि मूर्तिमान् कारणोंके होनेपर सुखादिकी उत्पत्ति होती है। पुद्गल केवल जीवोंके ही शरीरादिकी रचनामें कारण नहीं है पुद्गल पुद्गलोंका भी उपकार करते हैं। भस्मसे कांसीके बरतन आदि, निर्मली आदिसे जलादि तथा जलादिसे लोहा आदि स्वच्छ होते हैं। इसी प्रकार औदारिक, वैक्रियिक और आहारक नामकर्मके उदयसे आहारवर्गणाके रूपमें आये तीन शरीर और उच्छ्वास-निश्वास, तैजस नामकर्मके उदयसे

कर्म्मोदयदिदं कार्म्मणवर्ग्गणेयिदं कार्म्मणशरीरमक्कुं। स्वरनामकर्म्मोदयदिदं भाषावर्ग्गणेयिदं वचनमक्कुं। नोइंद्रियावरणक्षयोपशमोपेतमप्प संज्ञिजीवक्कंगोपांगनामोदयदिदं मनोवर्ग्गणेयिदं द्रव्यमनमक्कुमेंबुदत्थं। ई यत्थंमं मुंदण सूत्रद्वयदिदं पेळ्दप।

आहारवग्गणादो तिण्णि सरीराणि होंति उस्सासो।
णिस्सासो वि य तेजोवग्गणखंधा दु तेजंगं ॥६०७॥

आहारवर्ग्गणायास्त्रीणि शरीराणि भवंति उच्छ्वासो। निश्वासोपि च तेजोवर्ग्गणास्कंधात्तैजसांगं ॥

औदारिकवैक्रियिकाहारकमेंबी मूरु शरीरंगळु उच्छ्वासनिश्वासंगळुमाहारवर्ग्गणेयिदमप्पुवु। तेजोवर्ग्गणास्कंधदिदं तैजसशरीरमक्कुं।

भासमणवग्गणादो कमेण भासा मणं तु कम्मादो।
अट्ठविहकम्मदव्वं होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥६०८॥

भाषामनोवर्ग्गणातः क्रमेण भाषामनस्तु कार्म्मणात्। अष्टविधकर्म्मद्रव्यं भवतीति जिनैर्न्निर्दिष्टं ॥

भाषावर्ग्गणास्कंधंगळिदं चतुर्विधभाषेयक्कुं। मनोवर्ग्गणास्कंधंगळिदं द्रव्यमनमक्कुं। कार्म्मणवर्ग्गणास्कंधंगळिदं अष्टविधकर्म्मद्रव्यमक्कुमें दितु जिनस्वामिगळिदं पेळल्पट्टुदु।

णिद्धत्तं लुक्खत्तं बंधस्स य कारणं तु एयादी।
संखेज्जाऽसंखेज्जाणंतविहा णिद्धलुक्खगुणा ॥६०९॥

स्निग्धत्वं रूक्षत्वं बंधस्य कारणं त्वेकादयः। संख्येयाऽसंख्येयानंतविधाः स्निग्धरूक्षगुणाः ॥

कार्मणनामकर्मोदयात् कार्मणवर्गणया कार्मणशरीरम्। स्वरनामकर्मोदयाद् भाषावर्गणया वचन, नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमोपेतसंज्ञिनोऽङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयात् मनोवर्गणया द्रव्यमनश्च भवतीत्यर्थः ॥६०६॥ अमुमेवार्थं सूत्रद्वयेनाह—

औदारिकवैक्रियिकाहारकनामानि त्रीणि शरीराणि उच्छ्वासनिश्वासौ च आहारवर्गणया भवन्ति। तेजोवर्गणास्कन्धैः तेजःशरीरं भवति ॥६०७॥

भाषावर्गणास्कन्धैश्चतुर्विधभाषा भवन्ति। मनोवर्गणास्कन्धैः द्रव्यमनः, कार्मणवर्गणास्कन्धैरष्टविध कर्मेति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥६०८॥

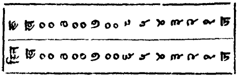
तैजस वर्गणासे तैजस शरीर, कार्मण नामकर्मके उदयसे कार्मणवर्गणासे कार्मणशरीर, स्वरनामकर्मके उदयसे भाषावर्गणासे वचन और नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे युक्त संज्ञीके अंगोपांगनामकर्मके उदयसे मनोवर्गणासे द्रव्यमन बनता है ॥६०६॥

इसी अर्थको दो गाथाओंसे कहते हैं—

आहारवर्गणासे औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन शरीर और उच्छ्वास-निश्वास होते हैं। तैजसवर्गणाके स्कन्धोंसे तैजसशरीर होता है ॥६०७॥

भाषावर्गणाके स्कन्धोंसे चार प्रकारकी भाषा होती है। मनोवर्गणाके स्कन्धोंसे द्रव्य-मन होता है और कार्मणवर्गणाके स्कन्धोंसे आठ प्रकारके कर्म होते है ऐसा जिनदेवने कहा है ॥६०८॥

बाह्याभ्यंतरकारणावशदिदं स्नेहपर्य्यायाविर्भावदिदं स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्धः स्निग्धस्य भावःस्निग्धत्वं । चिक्कणलक्षणपर्य्यायमेंबुदर्त्थं । तोयाजागोमहिष्युष्ट्रिकाक्षीरघृतंगळोळु स्निग्धगुणमें तु प्रकर्षाप्रकर्षदिदं वर्तिसुगुं । रूक्षणाद्रूक्षस्तस्य भावः रूक्षत्वं । आवुदों बु चिक्कणलक्षणपर्य्यायमदर विपरीतपरिणामं रूक्षत्वमें बुदर्त्थं । पांसुकणिकाशर्क्करादिगळोळु रूक्षगुणमें तु काणल्पट्टुवंते परमाणुगळोळं स्निग्धरूक्षगुणंगळ वृत्तियुं प्रकर्षाप्रकर्षदिदमनुमानिसल्पड्डुगुं । स्निग्धत्वमुं रूक्षत्वमुं द्व्यणुकादिपर्य्यायपरिणमनरूपबंधक्के कारणमक्कुं । च शब्ददिदं विश्लेषक्कयुं कारणमक्कुं । स्निग्धगुणपरिणतपरमाणुगळगं रूक्षगुणपरिणतपरमाणुगळगं परस्परश्लेषलक्षणबंधमागुत्तिरलु द्व्यणुकस्कंधमक्कुमेंबुदर्त्थमितु संख्येयासंख्येयानंतप्रदेशस्कंधं योजिसल्पड्डुवुदु । अल्लि स्नेहगुणमेकद्वित्रिचतुःसंख्येयासंख्येयानंतविकल्पमक्कुमा प्रकारदिदमे रूक्षगुणमक्कुं । संदृष्टिः—



बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावेन स्निह्यतेस्मेति स्निग्धः, तस्य भाव. स्निग्धत्वं चिक्कणत्वमित्यर्थः । रूक्षणात् रूक्ष', तस्य भावो रूक्षत्वं चिक्कणत्वाद्विपरीततेत्यर्थः । स्निग्धत्वं तोयाजागोमहिष्युष्ट्रिकाक्षीरघृतादिषु, रूक्षत्वं च पांशुकणिकाशर्करादिषु प्रकर्षाप्रकर्षभावेन दृश्यते तथा परमाणुष्वपि । ते स्निग्धत्वरूक्षत्वे द्व्यणुकादिपर्यायपरिणमनरूपबन्धस्य चशब्दाद्विश्लेषस्य च कारणे भवतः । स्निग्धगुणपरिणतपरमाणो रूक्षगुणपरिणतपरमाणो. स्निग्धरूक्षगुणपरिणतपरमाण्वोश्च परस्परश्लेषलक्षणे बन्धे सति द्व्यणुकस्कन्धो भवतीत्यर्थ । एव संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशस्कन्धोऽपि योज्यः । तत्र स्नेहगुणः एकद्वित्रिचतुसंख्येयासंख्येयानन्तविकल्पो भवति तथा रूक्षगुणोऽपि ॥६०९॥

बाह्य और अभ्यन्तर कारणके वशसे स्नेह पर्यायके प्रकट होनेसे स्नेहपन होना स्निग्ध है। उसके भावको स्निग्धता कहते हैं जिसका अर्थ चिक्कणता है। रूखापनसे रूक्ष है। उसका भाव रूक्षता है। उसका अर्थ चिक्कणतासे विपरीत होना है। जल तथा बकरी, गाय, भैंस, ऊँटनीके दूध-घी आदिमें स्निग्धता व धूलि, रेत, बजरी आदिमें रूक्षता हीनाधिक रूपसे देखी जाती है। इसी तरह परमाणुओंमें भी होती है। वह स्निग्धता और रूक्षता द्व्यणुक आदि पर्याय परिणमनरूप बन्धका और 'च' शब्दसे बन्धके भेदनका कारण है। स्निग्धगुणरूप परिणत दो परमाणुके रूक्षगुणरूप परिणत दो परमाणुके और एक स्निग्ध तथा एक रूक्षगुणरूप परिणत परमाणुके परस्परमें मिलने रूप बन्धके होनेपर द्व्यणुक स्कन्ध बनता है। इसी प्रकार संख्यात, असंख्यात और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी जानना। उनमें-से स्नेहगुण एक, दो, तीन, चार, संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रकारका होता है। इसी तरह रूक्षगुण भी होता है ॥६०९॥

१-२. म °णुगं ।

एयगुणं तु जहण्णं णिद्धत्तं विगुणतिगुणसंखेज्जाऽ।
संखेज्जाणंतगुणं होदि तहा रुक्खभावं च ॥६१०॥

एकगुणस्तु जघन्यं स्निग्धत्वं द्विगुणत्रिगुणसंख्येयासंख्येयानंतगुणो भवति तथा रूक्षभावश्च ॥

आ स्निग्धत्वगुणवलियोळु तु मत्ते एकगुणमप्प स्निग्धत्वं जघन्यमक्कुमदादियागि द्विगुणत्रिगुण संख्येयासंख्येयानंतगुणमक्कुमंते रूक्षत्वमुमरियल्पडुगुं।

एवं गुणसंजुत्ता परमाणू आदिवग्गणम्हि ठिया।
जोग्गदुगाणं बंधे दोण्हं बंधो हवे णियमा ॥६११॥

एवं गुणसंयुक्ताः परमाणवः आदिवर्गणायां स्थिताः। योग्यद्विकानां बंधे द्वयोर्बंधो भवेन्नियमात् ॥

ई पेळल्पट्ट स्निग्धरूक्षगुणसंयुक्तंगळप्प परमाणुगळु मोदल अणुवर्ग्गणेयोळिरुत्तिरल्पट्टुवु। योग्यद्विकंगळ्गे बंधमप्पेडेयोळा एरडक्कं बंधं नियमदिदमक्कुं। स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्तमप्प बंधमविशेषदिंद प्रसक्तमादोडे अनिष्टगुणनिवृत्तिपूर्व्वकं विधियिसिदपरु।

णिद्धणिद्धा ण बज्झंति रुक्खरुक्खा य पोग्गला।
णिद्धलुक्खा य बज्झंति रूवारूवी य पोग्गला ॥६१२॥

स्निग्धस्निग्धा न बध्यंते रूक्षरूक्षाश्च पुद्गलाः। स्निग्धरूक्षाश्च बध्यंते रूप्यरूपिणश्च पुद्गलाः ॥

स्निग्धगुणपुद्गलंगळोडने स्निग्धगुणपुद्गलंगळु बंधमागल्पडवु। रूक्षगुणपुद्गलंगळोडने रूक्षगुणपुद्गलंगळुमंते बंधमागल्पडवु। इदुत्सर्ग्गविधियक्कुमेकेंदोडे विशेषविधियुं मुंदे पेळल्पट्टपुदप्पुदरिदं स्निग्धगुणपुद्गलंगळोडने रूक्षगुणपुद्गलंगळु बंधमागल्पडुवुवंतप्प पुद्गलंगळु रूपि-

---

स्निग्धगुणावल्यां तु पुनः एकगुणं स्निग्धत्वं जघन्यं स्यात्। तदादिं कृत्वा द्विगुणत्रिगुणसंख्येयासंख्येयानन्तगुणं भवति तथा रूक्षत्वमपि ॥६१०॥

एवं स्निग्धरूक्षगुणसंयुक्ताः परमाणवः अणुवर्गणायां तिष्ठन्ति योग्यद्विकाना बन्धस्थाने तयोरेव द्वयोर्बन्धो नियमेन भवति ॥६११॥ स्निग्धरूक्षगुणनिमित्तं बन्धस्याविशेषेण प्रसक्तावनिष्टगुणनिवृत्तिपूर्वकं विधिं करोति—

स्निग्धगुणपुद्गलैः स्निग्धगुणपुद्गलाः न बध्यन्ते। तथा रूक्षगुणपुद्गलैः रूक्षगुणपुद्गला न बध्यन्ते, अयमुत्सर्गविधि। विशेषविधेर्वक्ष्यमाणत्वात्। स्निग्धगुणपुद्गलैः रूक्षगुणपुद्गलाः बध्यन्ते ते च पुद्गलाः

स्निग्ध गुणकी पंक्तिमें एक गुण स्निग्धताको जघन्य कहते हैं। उससे लेकर दो गुण, तीन गुण, संख्यात गुण, असंख्यात गुण और अनन्त गुण रूप स्निग्ध गुण होता है। इसी प्रकार रूक्षगुण भी जानना ॥६१०॥

इस प्रकारके स्निग्ध और रूक्षगुणोंसे संयुक्त परमाणु अणुवर्गणामें विद्यमान हैं। उनमें-से योग्य दो परमाणुओंके बन्धस्थानको प्राप्त होनेपर उन्हीं दोका बन्ध होता है ॥६११॥

स्निग्ध और रूक्ष गुणके निमित्तसे सर्वत्र बन्धका प्रसंग प्राप्त होनेपर अनिष्ट गुणवालोंके बन्धका निषेध करते हुए बन्धका विधान करते हैं—स्निग्धगुण युक्त पुद्गलोंके साथ स्निग्ध गुण युक्त पुद्गलोंका बन्ध नहीं होता। तथा रूक्ष गुण युक्त पुद्गलोंके साथ रूक्ष गुण युक्त

गळुमरूपिगळुमेंब पेसरनुळ्ळवप्पुवु। आ रूप्यरूपिगळं पेळ्वपं :—

णिद्धिदरोलीमज्झे विसरिसजादिस्स समगुणं एक्कं।
रूवित्ति होदि सण्णा सेसाणं ता अरूवित्ति ॥६१३॥

स्निग्धेतरावलिमध्ये विसदृशजात्याः समगुण एकः। रूपीति संज्ञा भवति शेषानंताः अरूपिण इति ॥

स्निग्धरूक्षगुणावळिगळ मध्यदोळु विसदृशजातियप्पुवरसमानगुणमनुळ्ळवोंदे रूपियेंदितु [1]संज्ञेयनुळ्ळुदक्कुमवल्लदुळिदेल्ला विकल्पंगळुमवक्करूपिगळेंदितु संज्ञेगळप्पुवु। अदेंतेंदोडे :—

दोगुणणिद्धाणुस्स य दोगुणलुक्खाणुगं हवे रूवो।
इगितिगुणादि अरूवी रुक्खस्स वि तं व इदि जाणे ॥६१४॥

द्वितीयो गुणो यस्य अथवा द्वौ गुणौ यस्य यस्मिन् वा स द्विगुणः स्निग्धाणोश्च द्विगुणरूक्षाणुर्भवेद्रूपी। एकत्रिगुणादयोऽरूपिणः रूक्षस्यापि तद्वदिति जानीहि ॥

द्वितीयगुणमनुळ्ळ अथवा येरडुगुणमनुळ्ळ स्निग्धगुणाणुविंगे विसदृशजातियप्प द्विगुणरूक्षाणु रूपियेंदु [2]पेसरनुळ्ळुदक्कुमुळिदेकत्रिगुणादिसर्व्वरूक्षाणुगळु अरूपिगळेंदु पेसरक्कुमी प्रकारदिदं द्विगुणरूक्षाणुविंगे द्विगुणस्निग्धाणुरूपियक्कुमदल्लदुळिदेकत्रिगुणादिसर्व्वस्निग्धाणु विकल्पंगळनंतगळऽरूपिगळेंदु एले शिष्य ! नीनरि।

रूपीत्यरूपीतिनामानो भवन्ति ॥६१२॥ तानेव लक्षयति—

स्निग्धरूक्षगुणावल्योर्मध्ये विसदृशजाते. समानगुणः एकः रूपीति संज्ञो भवति। शेषाः सर्वे अरूपीति संज्ञा भवन्ति ॥६१३॥ तदेवोदाहरति—

द्वितीयो गुणो द्वौ गुणौ वा यस्य यस्मिन् वा द्विगुणः तस्य द्विगुणस्य स्निग्धाणोः द्विगुणरूक्षाणुः रूपीतिनामा भवेत्। शेषैकत्रिगुणादयः सर्वे रूक्षाणवः अरूपीतिनामानो भवन्ति। एवं द्विगुणरूक्षाणोर्द्विगुणस्निग्धाणुः रूपी शेषैकत्रिगुणादिसर्वस्निग्धाणवः अरूपीति नामानः इति जानीहि ॥६१४॥

पुद्गलोंका बन्ध नहीं होता। यह कथन सामान्य है। विशेष विधि कहेंगे। स्निग्ध गुण युक्त पुद्गलोंके साथ रूक्षगुण युक्त पुद्गल बँधते हैं। और उन पुद्गलोंका नाम रूपी और अरूपी है ॥६१२॥

उन्हींका लक्षण कहते हैं—

स्निग्धगुण और रूक्षगुणोंकी पंक्तियोंके मध्यमें विजातिके समान गुणवाले एक परमाणुको रूपी नामसे कहते हैं। शेष सबकी अरूपी संज्ञा है ॥६१३॥

उसीका उदाहरण देते हैं—

जिसका दूसरा गुण है या जिसमें दो गुण हैं उसे द्विगुण कहते हैं। उस दो गुण स्निग्धवाले परमाणुका दो गुण रूक्षवाला परमाणु रूपी कहलाता है। शेष एक, तीन आदि रूक्ष गुणवाले सब परमाणु अरूपी नामवाले होते हैं। इसी प्रकार दो गुण रूक्षवाले परमाणुका दो गुण स्निग्धवाला परमाणु रूपी है। शेष एक, तीन आदि गुणवाले सब स्निग्ध परमाणु अरूपी जानना ॥६१४॥

---

१. म संज्ञियक्कु। २. म पेसरक्कु।

णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण।
णिद्धस्स रुक्खेण हवेज्ज बंधो जहण्णवज्जे विसमे समे वा ॥६१५॥

स्निग्धस्य स्निग्धेन द्व्यधिकेन रूक्षस्य रूक्षेण द्व्यधिकेन। स्निग्धस्य रूक्षेण भवेद्बंधो जघन्यवर्ज्ये विषमे समे वा ॥

स्निग्धपरमाणुविंगे द्विगुणाधिकस्निग्धपरमाणुविनोडने बंधमक्कुमंते रूक्षाणुविंगे द्विगुणाधिकरूक्षाणुविनोडने बंधमक्कुं। स्निग्धाणुविंगे द्विगुणाधिकरूक्षाणुविनोडने बंधमक्कुमल्लि स्निग्धरूक्षगुणंगळ परमाणुगळोळु जघन्यमप्पेकगुणयुतपरमाणुगळं वर्ज्जिसि शेषसमस्निग्धधारियोळं समरूक्षधारियोळं विषमस्निग्धधारियोळं विषमरूक्षधारियोळं तंतम्म तदनंतरोपरितनद्व्यधिकस्निग्धरूक्षंगळ्गे बंधमक्कुं। संदृष्टिः—

स्नि	०	२	४	६	८	१०	१२	००७००८०० ख
रू	०	२	४	६	८	१०	१२	००७००८०० ख
स्नि	०	३	५	७	९	११	१३	००७००८०० ख
रू	०	३	५	७	९	११	१३	००७००८०० ख

इल्लि सदृशगुणयुक्तरूपियोडने रूपिगे बंधमिल्ल। समगुणयुक्तंगळिगे विषमगुणयुक्तंगळोडने बंधमिल्लें बो विशेषमरियल्पडुगुमेकें दोडे अवरोळु द्व्यधिकत्वं घटियिसदप्पुदरिंदं।

स्निग्धाणोः द्विगुणाधिकस्निग्धाणुना बन्धो भवति। तथा रूक्षाणोः द्विगुणाधिकरूक्षाणुना बन्धो भवति। स्निग्धाणोः द्विगुणाधिकरूक्षाणुना बन्धो भवति। तत्र स्निग्धरूक्षगुणपरमाणुषु जघन्यं एकगुणपरमाणुं वर्जयित्वा शेषाणा समस्निग्धरूक्षधारयोर्विषमस्निग्धरूक्षधारयोश्च स्वस्वतदनन्तरोपरितनद्व्यधिकस्निग्धरूक्षाणूनां बन्धो भवति। अत्र सदृशगुणरूपिणा रूपिणः, समगुणाना विषमगुणैश्च बन्धो नेति विशेषो ज्ञातव्यः, तेषु द्व्यधिकगुणत्वाभावात् ॥६१५॥

स्निग्ध परमाणुका दो गुण अधिक स्निग्ध परमाणुके साथ बन्ध होता है। उसी प्रकार रूक्ष परमाणुका दो गुण अधिक रूक्ष परमाणुके साथ बन्ध होता है। स्निग्ध परमाणुका दो गुण अधिक रूक्ष परमाणुके साथ बन्ध होता है। उन स्निग्ध गुणवाले और रूक्ष गुणवाले परमाणुओंमें जघन्य एक गुणवाले परमाणुको छोड़कर शेष समस्निग्ध धारा और सम रूक्ष धारामें तथा विषम स्निग्ध धारा और विषम रूक्ष धारामें अपने-अपनेसे अनन्तरवर्ती दो अधिक स्निग्ध और रूक्ष गुणवाले परमाणुओंका बन्ध होता है। यहाँ इतना विशेष जानना कि सदृश गुणवाले रूपीका सदृश गुणवाले रूपीके साथ तथा समगुणवालोंका विषम गुणवालोंके साथ बन्ध नहीं होता। अर्थात् दोका दो गुणवालेके साथ या दो गुणवालेका पाँच गुणवालेके साथ बन्ध नहीं होता क्योंकि यहाँ दो अधिक गुणका अभाव है ॥६१५॥

णिद्धिदरे समविसमा दोत्तिगआदीदुउत्तरा होंति ।
उभयेवि य समविसमा सरिसिदरा होंति पत्तेयं ॥६१६॥

स्निग्धेतरयोः समविषमौ द्वित्र्यादिद्व्युत्तरौ भवतः । उभयस्मिन्नपि च समविषमौ सदृशेतरौ भवतः प्रत्येकं ॥

स्निग्धरूक्षगुणंगळ समपंक्तिद्वयांकंगळुं विसमपंक्तिद्वयांकंगळुं प्रत्येकं द्वित्र्यादिद्व्युत्तरंगळप्पुवा उभयदोळं समविषमौ रूप्यरूपिगळु सदृशांकंगळुमसदृशांकंगळुमप्पुववें तें दोडे :—स्निग्धरूक्षसमांकपंक्तिद्वयद एरडक्केरडु नाल्कक्के नाल्कु आरक्कारु एंटक्कें टु पत्तक्के पत्तु पन्नेरडक्के पन्नेरडु मोदलागि संख्याताऽसंख्यातानंतगुणयुतंगळु रूपिगळु परस्परं, आ स्निग्धरूक्षविषमांक पंक्तिद्वयद मूरक्के मूरु, अय्दक्कय्दु, एळक्केळु, ओंभतक्के वों भतु, पन्नों दक्के पन्नों दु, पदिमूरक्के पदिमूरु इवु मोदलागि संख्याताऽसंख्यातानंतगुणंगळु परस्परं रूपिगळुमी सदृशंगळिंगितरंगळु । एरडुनाल्कारें टु पत्तु पन्नेरडु मोदलागि संख्यातासंख्यातानंतंगळेल्लमरूपिगळु । मूरैदेळु ओं भत्तु पन्नों दु पदिमूरु मोदलागि संख्यातासंख्यातानंतंगळेल्लमरूपिगळु । प्रत्येकं स्निग्धदोळं रूक्षदोळं रूपिगळ्गे बंधमिल्ल । तत्त्वार्थदोळमंते "गुणसाम्ये सदृशानामें दितु पेळल्पट्टुदु ।

अरूपिगळ्गे बंधमुंटु स्वस्थानदोळं परस्थानदोळं ई यर्त्थमने प्रकारांतरदिदं पेळ्वपरु :—

स्निग्धरूक्षगुणानां समपंक्तिद्वयाङ्का· विषमपंक्तिद्वयाङ्काश्च प्रत्येकं द्वित्र्यादिद्व्युत्तरा भवन्ति । ते उभयेऽपि अंकाः समविषमाः रूप्यरूपिणः सदृशाङ्काः असदृशाङ्का भवन्ति । यथा स्निग्धरूक्षसमाङ्कपंक्त्योः द्वयस्य द्वयं चतुष्कस्य चतुष्कं षट्कस्य षट्कं अष्टकस्य अष्टकं दशकस्य दशकं द्वादशकस्य द्वादशकं एवमादिसंख्यातासंख्यातानन्तगुणयुताः, तद्विषमाङ्कपङ्क्त्योः त्रयस्य त्रयं पञ्चकस्य पञ्चकं सप्तकस्य सप्तकं नवकस्य नवकं एकादशकस्य एकादशकं त्रयोदशकस्य त्रयोदशकं एवमादिसंख्यातासंख्यातानन्तगुणयुताश्च परस्परं रूपिणः । शेषाः द्विचतुःषडष्टदशद्वादशादिसंख्यातासंख्यातानन्ताः । त्रिपञ्चसप्तनवैकादशत्रयोदशादिसंख्याताऽसंख्यातानन्ताश्चारूपिणः । प्रत्येकं स्निग्धे रूक्षे च रूपिणा बन्धो नास्ति । तत्त्वार्थेऽपि 'गुणसाम्ये सदृशानां' इति तथैव वचनात् । अरूपिणां बन्धः स्यात् स्वस्थाने परस्थानेऽपि ॥६१६॥ अमुमेवार्थं प्रकारान्तरेणाह—

स्निग्ध और रूक्ष गुणवालोंमें-से प्रत्येकमें दोको लेकर दो गुण अधिक होनेपर समपंक्ति और तीनको लेकर दो गुण अधिक होनेपर विषम पंक्ति होती है। वे दोनों ही सम और विषम रूपी और अरूपी होते हैं। जैसे स्निग्ध और रूक्ष सम अंकवाली पंक्तियोंमें दो का दो, चारका चार, छहका छह, आठका आठ, दसका दस, बारहका बारह रूपी है। इसी प्रकार संख्यात, असंख्यात, अनन्तगुण पर्यन्त जानना। विषम अंकवाली पंक्तियोंमें तीनका तीन, पाँचका पाँच, सातका सात, नौका नौ, ग्यारहका ग्यारह, तेरहका तेरह, इसी तरह संख्यात, असंख्यात और अनन्त गुणवाले परमाणु परस्परमें रूपी हैं। इनके सिवाय शेष अरूपी हैं। प्रत्येक स्निग्ध और रूक्षमें रूपीका बन्ध नहीं होता है। तत्त्वार्थ सूत्रमें भी कहा है कि गुणोंकी समानतामें सदृशोंका बन्ध नहीं होता। अरूपियोंका बन्ध स्वस्थानमें अर्थात् स्निग्धका स्निग्धके साथ, रूक्षका रूक्षके साथ और परस्थानमें अर्थात् स्निग्धका रूक्षके साथ या रूक्षका स्निग्धके साथ बन्ध होता है ॥६१६॥

दोत्तिगपभवदुउत्तरगदेसणंतरदुगाण बंधो दु ।
णिद्धे लुक्के वि तहा वि जहण्णुभये वि सव्वत्थ ॥६१७॥

द्वित्रिप्रभवद्व्युत्तरगतेष्वनंतरद्विकानां बंधस्तु । स्निग्धे रूक्षेपि तथा वि जघन्योभयस्मिन्नपि सर्व्वत्र ॥

स्निग्धे स्निग्धदोळं रूक्षेपि रूक्षदोळं द्वित्रिप्रभवमुं द्व्युत्तरमागि नडेववरोळु उपरितमानंतरद्विकंगळगे स्निग्धद नाल्कक्कं रूक्षद नाल्कक्कं स्निग्धदेरडरोळं रूक्षदेरडरोळं बंधमक्कुं। स्निग्धदेदक्कं रूक्षदयिदक्कं स्निग्धद मूररोळं रूक्षद मूररोळं बंधमक्कु । मितागुत्तिरलु जघन्यगुणयुतदोळं बंधप्रसंगमादोडे जघन्यवर्ज्जितमप्पुभयदोळु स्निग्धरूक्षद्वयदोळु सर्वत्र बंधमरियल्पडुगुमें बुदत्थं ।

णिद्धिदरवरगुणाणू सपरट्ठाणे वि णेदि बंधट्ठं ।
बहिरंतरंगहेदुहि गुणंतरं संगदे एदि ॥६१८॥

स्निग्धेतरावरगुणाणुः स्वपरस्थानेपि नैति बंधार्त्थं । बाह्याभ्यंतरहेतुभ्यां गुणांतरं संगते एति ॥

स्निग्धजघन्यगुणाणुवु रूक्षजघन्यगुणाणुवुं स्वस्थानदोळं परस्थानदोळं बंधनिमित्तमागि सल्लवु । बाह्याभ्यंतरहेतुगळिदं गुणांतरमं पोद्दि बंधक्के सलगुं । तत्वार्त्थदोळं "न जघन्यगुणाना" में दितु पेळल्पट्टुदु ।

स्निग्धे रूक्षेऽपि द्वित्रिप्रभवद्व्युत्तरक्रमेण गच्छन्ति तेषु उपरितनानन्तरद्विकाना स्निग्धचतुष्कस्य रूक्षचतुष्कस्य च स्निग्धद्वये रूक्षद्वये च बन्धः स्यात् । स्निग्धपञ्चकस्य रूक्षपञ्चकस्य च स्निग्धत्रये रूक्षत्रये च बन्धः स्यात् । एवं जघन्यगुणयुतेऽपि बन्धप्रसक्तौ जघन्यवर्जिते उभयत्र स्निग्धरूक्षद्वये सर्वत्र बन्धो ज्ञातव्य इत्यर्थः ॥६१७॥

स्निग्धजघन्यगुणाणुः रूक्षजघन्यगुणाणुश्च स्वस्थाने परस्थानेऽपि बन्धाय योग्यो न, बाह्याभ्यन्तरहेतुभिर्गुणान्तरं प्राप्तस्तु योग्यः स्यात् । तत्त्वार्थेऽपि 'न जघन्यगुणाना' इत्युक्तत्वात् ॥६१८॥

इसीको अन्य प्रकारसे कहते हैं—

स्निग्ध और रूक्षमें भी दोको आदि लेकर तथा तीनको आदि लेकर दो-दो बढ़ते जाते हैं। उनमें ऊपरके अनन्तरवर्ती दोका बन्ध होता है। जैसे चार गुण स्निग्धवालेका दो गुण स्निग्धवाले दो गुण रूक्षवालेके साथ तथा चार गुण रूक्षवालेका दो गुण रूक्षवाले या दो गुण स्निग्धवालेके साथ बन्ध होता है। इसी तरह पाँच गुण स्निग्ध या पाँच गुण रूक्षवालेका तीन गुण स्निग्ध या तीन गुण रूक्षवालेके साथ बन्ध होता है। इस प्रकार एक अंशयुक्त जघन्य गुणवालोंका भी बन्ध प्राप्त होनेपर निषेध करते हैं कि जघन्यको छोड़कर स्निग्ध और रूक्ष दोनोंमें सर्वत्र बन्ध जानना ॥६१७॥

जघन्य स्निग्ध गुणवाला या जघन्य रूक्ष गुणवाला परमाणु स्वस्थान और परस्थानमें भी बन्धके योग्य नहीं है। वही परमाणु बाह्य और अभ्यन्तर कारणोंसे यदि अधिक गुणवाला होता है तो बन्धके योग्य होता है। तत्त्वार्थ सूत्रमें भी कहा है कि जघन्य गुणवालोंका बन्ध नहीं होता ॥६१८॥

णिद्धिदरगुणा अहिया हीणं परिणामयंति बंधम्मि ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसाण खंधाणं ॥६१९॥

स्निग्धेतरगुणा अधिकाः हीनं परिणमयंति बंधे । संख्यातासंख्यातानंतप्रदेशानां स्कंधानां ॥

संख्यातासंख्यातानंतप्रदेशंगळनुळ्ळ स्कंधंगळ मध्यदोळु स्निग्धगुणस्कंधंगळु रूक्षगुणस्कंधंगळुं अधिकाः एरडुगुणंगळिनधिकमप्पुवु। बंधे बंधमप्पागळु हीनं हीनस्कंधमं परिणमयंति पिडिदु कोंडु बंधक्के बरिसुववु। तत्त्वार्थदोळमिते "बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ भवतः एंदितु काणल्पडुगुं षड्द्रव्यंगळचरमफलाधिकारं तिद्दुदु ।

अनंतरं पचास्तिकायंगळं पेळदपं :—

दव्वं छक्कमकालं पंचत्थीकायसंण्णिदं होदि ।
काले पदेसपचयो जम्हा णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥६२०॥

द्रव्यं षट्कमकालं पंचास्तिकायसंज्ञितं भवति। काले प्रदेशप्रचयो यस्मान्नास्तीति निर्दिष्टं ॥

मुन्नं पेळल्पट्ट द्रव्यषट्कमे कालद्रव्यदिदं रहितमादोडे पंचास्तिकायमें ब संज्ञेयनुळ्ळुदक्कुदेकें दोडे काले कालद्रव्यदोळु प्रदेशप्रचयमावुदों दु कारणदिदमिल्लमदु कारणदिदमितु प्रदेशप्रचयमनुळ्ळुवस्तिकायगळें दु परमागमदोळु पेळल्पट्टुवु ।

अनंतरं नवपदार्थंगळं पेळ्दपं :—

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं ।
आसवसंवरणिज्जरबंधा मोक्खो य होंतित्ति ॥६२१॥

नव पदार्थाः जीवाजीवास्तेषां पुण्यपापद्वयमास्रवसंवरनिर्ज्जराबंधा मोक्षश्च भवंतीति ॥

संख्यातासंख्यातानन्तप्रदेशस्कन्धाना मध्ये स्निग्धगुणस्कन्धाः रूक्षगुणस्कन्धाश्च द्विगुणाधिकाः ते बन्धे हीनगुणस्कन्धं परिणामयन्ति। तत्त्वार्थेऽपि "बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च" इत्युक्तत्वात् ॥६१९॥ इति फलाधिकारः। अथ पञ्चास्तिकायानाह—

प्रागुक्तद्रव्यषट्क अकाल कालद्रव्यरहितं पञ्चास्तिकायसंज्ञकं भवति, कुतः? कालद्रव्ये प्रदेशप्रचयो यतो नास्ति ततः कारणात् इति प्रदेशप्रचययुता अस्तिकाया इत्युक्तं परमागमे ॥६२०॥ अथ नवपदार्थानाह—

संख्यात, असंख्यात और अनन्तप्रदेशी स्कन्धोंके मध्यमें दो अधिक गुणवाले स्निग्ध स्कन्ध या रूक्ष स्कन्ध बन्धके होनेपर हीन गुणवाले स्कन्धको अपने रूप परिणमाते हैं। तत्त्वार्थ सूत्रमें भी कहा है कि बन्धके होनेपर अधिक गुणवाला परिणामक होता है ॥६१९॥

इस प्रकार फलाधिकार समाप्त हुआ।

अब पाँच अस्तिकायोंको कहते हैं—

पहले कहे गये छह द्रव्योंमें-से कालद्रव्यको छोड़कर पंचास्तिकाय कहलाते हैं। क्योंकि कालद्रव्यमें प्रदेशोंका प्रचय नहीं है अर्थात् कालाणु एकप्रदेशी होता है। और परमागममें प्रदेशसमूहसे युक्तको अस्तिकाय कहा है ॥६२०॥

नौ पदार्थोंको कहते हैं—

जीवाजीवाः जीवंगळुमजीवंगळु तेषां अवर पुण्यपापद्वयं पुण्यमुं पापमुमेंबेरडुं आस्रवसंवर-निज्जराबंधमोक्षाः आस्रवमुं संवरमुं निर्ज्जरयुं बंधमुं मोक्षमुमें वितु नवपदार्थंगळप्पुवुं। पदार्थ-शब्दं सर्व्वत्र संबंधिसल्पडुगुं। जीवपदार्थः अजीवपदार्थः इत्यादि।

जीवदुगं उत्तत्थं जीवा पुण्णा हु सम्मगुण सहि दा।
वदसहिदा वि य पावा तव्विवरीया हवंतित्ति ॥६२२॥

जीवद्वयमुक्तार्त्थं जीवाः पुण्याः खलु सम्यक्त्वगुणसहिताः। व्रतसहिताः अपि च पापास्त-द्विपरीता भवंतीति ॥

जीवपदार्त्थमुमजीवपदार्त्थमुं मुन्नं जीवसमासेयोळं षड्द्रव्याधिकारदोळं पेळ्वुवेयक्कुं। सम्यक्त्वगुणयुक्तजीवंगळु व्रतयुक्तजीवंगळुं पुण्यजीवंगळप्पुवु। तद्विपरीतंगळु तद्द्वयरहितंगळुं पाप-जीवंगळेंदरियल्पडुवुवु खलु नियमदिदं। चतुर्दशगुणस्थानंगळोळु जीवसंख्येयं पेळुत्तं मिथ्यादृष्टि-गळुं सासादनरं पापजीवंगळेंदु पेळ्वपं :—

मिच्छाइट्ठी पावाणंताणंता य सासणगुणा वि।
पल्लासंखेज्जदिमा अणअण्णदरुदयमिच्छगुणा ॥६२३॥

मिथ्यादृष्टयः पापाः अनंतानंताश्च सासादनगुणा अपि। पल्यासंख्येयभागाः अनंतानुबंधि अन्यतरोदयमिथ्यागुणाः ॥

पापरूपरुगळप्प मिथ्यादृष्टिजीवंगळु किंचिदून संसारिराशिप्रमाणरप्परेकेंदोडे सासादनादि-तरगुणस्थानजीवसंख्येयिंद होनरप्पुदरिदं। अदु कारणदिंदमनंतानंतगळप्पुवु ॥ १३ ॥ सासादनगुण-

जीवा अजीवाः तेषां पुण्यपापद्वय आस्रवः संवरो निर्जरा बन्धो मोक्षश्चेति नवपदार्था भवन्ति। पदार्थशब्दः सर्वत्र सम्बन्धनीयः,-जीवपदार्थः अजीवपदार्थः इत्यादिः ॥६२१॥

जीवाजीवपदार्थौ द्वौ पूर्वं जीवसमासे षड्द्रव्याधिकारे चोक्तार्थौ। पुण्यजीवाः सम्यक्त्वगुणयुक्ता व्रतयुक्ताश्च स्युः। तद्विपरीतलक्षणाः पापजीवाः खलु-नियमेन ॥६२२॥ चतुर्दशगुणस्थानेषु जीवसंख्यां मिथ्यादृष्टिसासादनौ च पापजीवाविति आह—

मिथ्यादृष्टयः पापाः—पापजीवाः। ते चानन्तानन्ता एव इतरगुणस्थानजीवसंख्योनसंसारिमात्रत्वात्

जीव, अजीव, उनके पुण्य और पाप दो तथा आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष ये नौ पदार्थ होते हैं। पदार्थ शब्द प्रत्येकके साथ लगाना चाहिए। जैसे जीव-पदार्थ, अजीवपदार्थ इत्यादि ॥६२१॥

पहले जीवसमासमें तथा छह द्रव्योंके अधिकारमें जीवपदार्थ और अजीवपदार्थका कथन कर दिया है। जो जीव सम्यक्त्वगुणसे युक्त हैं और व्रतोंसे युक्त हैं वे जीव पुण्यरूप होते हैं। उनसे विपरीत लक्षणवाले अर्थात् जो न सम्यक्त्वयुक्त हैं और न व्रतोंसे युक्त हैं वे नियमसे पापरूप हैं ॥६२२॥

आगे चौदह गुणस्थानोंमें जीवोंकी संख्या और मिथ्यादृष्टि तथा सासादन गुणस्थान-वाले जीवोंको पापी कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि जीव पापी हैं और वे अनन्तानन्त हैं; क्योंकि संसारी जीवोंकी राशिमें-से शेष तेरह गुणस्थानवर्ती जीवोंकी संख्या घटानेपर मिथ्यादृष्टि जीवोंकी संख्या होती है।

मनुळळ जीवंगळुं पापजीवंगळप्पुवनंतानुबंध्यन्यतरोदयमिथ्यागुणयुतरप्पुवरिनवुं पल्यासंख्यातैकभागप्रमाणमप्पुवु प/(a a ४)

मिच्छा सावयसासणमिस्सा विरदा दुवारणंता य।
पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संखगुणमसंखेज्जगुणं ॥६२४॥

मिथ्यादृष्टिश्रावकसासादनमिश्रविरताः द्विकवारानंताश्च। पल्यासंख्यातैकभागोसंख्येयगुणःऽसंख्येयगुणोऽसंख्येयगुणः॥

मिथ्यादृष्टिजीवंगळु किंचिदूनसंसारिराशिप्रमितमप्पुदरिंदमनंतानंतगळप्पुवु ॥ १३—॥ देशसंयतरुगळु पदिमूरुकोटि मनुष्य देशसंयतरिनधिकमप्प तिर्य्यग्गतिजरु पल्यासंख्यातैकभागप्रमितरप्परु प/(a a ४ । a) धन १३ को। सासादनरुगळु मनुष्यगतिजद्विपंचाशत्कोटिसासादनरिंदमधिकमप्प इतरगतित्रयजसासादनरनितुं देशसंयतरं नोडलुं असंख्यातगुणमप्परु प/(a a ४) धन ५२ को ई सासादनर संख्येयं नोडलुं मनुष्यगतिजमिश्ररिंदं नूर नाल्कु कोटिगळिंदमधिकमप्प त्रिगतिजमिश्ररु संख्यातगुणमप्परु प/(a a) धन १०४ को ई मिश्रगुणस्थानवर्त्तिजीवंगळं नोडलु मनुष्यगतिजासंयतरिंदमेळु नूरु कोटिगळिंदमधिकमप्प त्रिगतिजासंयतरुमसंख्यातगुणरप्परु प/a धन ७०० को

१३— । सासादनगुणा अपि पापाः अनन्तानुबन्ध्यन्यतमोदयेन प्राप्तमिथ्यात्वगुणत्वात् पल्यासंख्यातैकभागमात्रा भवन्ति प/(a a ४) ॥६२३॥

मिथ्यादृष्टयः किंचिदूनसंसारित्वादनन्तानन्ताः १३— । देशसंयताः त्रयोदशकोटिमनुष्याधिकतिर्यञ्चः पल्यासंख्यातैकभागमात्राः— प/(a a ४ a) धन १३ को । तेभ्यः द्विपञ्चाशत्कोटिमनुष्याधिकेतरत्रिगतिसासादनाः असंख्यातगुणाः प/(a a a) धन ५२ को । तेभ्यः चतुरुत्तरशतकोटिमनुष्याधिकत्रिगतिमिश्राः संख्यातगुणाः प/(a a) धन १०४ को । तेभ्यः सप्तशतकोटिमनुष्याधिकत्रिगत्यसंयता असंख्यातगुणा प/a धन ७०० को ॥६२४॥

सासादनगुणस्थानवाले भी पापी हैं क्योंकि अनन्तानुबन्धीकषायकी चौकड़ीमें-से किसी भी एक क्रोधादिका उदय होनेसे मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होते हैं। उनकी संख्या पल्यके असंख्यातवें भाग है ॥६२३॥

मिथ्यादृष्टि कुछ कम संसारी राशि प्रमाण होनेसे अनन्तानन्त हैं। देश संयत गुणस्थानवाले तेरह कोटि मनुष्य तथा पल्यके असंख्यातवें भागमात्र तिर्यंच हैं। उनसे बावन कोटि मनुष्य तथा शेष तीन गतिके सब सासादनगुणस्थानवाले असंख्यातगुणे हैं। उनसे एक सौ चार कोटि मनुष्य और शेष तीन गतिके सब मिश्र गुणस्थानवाले संख्यातगुणे हैं। उनसे सात सौ कोटि मनुष्य और शेष तीन गतिके अविरत गुणस्थानवाले सब असंख्यातगुणे हैं ॥६२४॥

तिरधियसयणवणवुदी छण्णवुदी अप्पमत्त बे कोडी।
पंचेव य तेणवुदी णवट्ठविसयंच्छउत्तरं पमदे ॥६२५॥

त्रिभिरधिकशतं नवनवतिः षण्णवतिरप्रमत्त द्विकोटि पंचैव च त्रिनवतिर्न्नवाष्टद्विशते षडुत्तरं प्रमत्ते ॥

प्रमत्तरोळु संख्ये अय्दु कोटियुं तों भत्तमूरुलक्षेयुं तों भत्तें टु सासिरद इन्नूरारुगळक्कुं ॥ ५९३९८२०६ ॥ अप्रमत्तरोळु संख्ये येरडुकोटियुं तों भत्तारु लक्षेयुं तों भत्तों भत्तु सासिरद नूर मूरुगळप्पुवु ॥ २९६९९१०३ ॥

तिसयं भणंति केई चउरुत्तरमत्थपंचयं केई।
उवसामगपरिमाणं खवगाणं जाण तद्दुगुणं ॥६२६॥

त्रिशतं भणंति केचित् चतुरुत्तरमस्तपंचकं केचित्। उपशमकपरिमाणं क्षपकाणां जानीहि तद्द्विगुणं ॥

केलंबराचार्य्यरुगळु उपशमकरप्रमाणमं त्रिशतमें दु पेळ्वरु। मत्तं केलंबराचार्य्यरुगळु चतुरुत्तरत्रिशतमें दु पेळ्वरु। मत्तं केलंबराचार्य्यरुगळु अय्दु गुंदिद चतुरुत्तरत्रिशतमें दु पेळ्वरु ॥ २९९ ॥ व ओं दु गुंदे मूनूरें बुदर्थं। क्षपकर प्रमाणमं तद्द्विगुणमं नीनरियें दु शिष्यसंबोधनमक्कुमी संख्येगलोळु प्रवाह्योपदेशमप्प संख्येयं निरंतराष्टसमयंगळोळु विभागिसि पेळ्दपं :—

सोलसयं चउवीसं तीसं छत्तीस तह य बादालं।
अडदालं चउवण्णं चउवण्णं होंति उवसमगे ॥६२७॥

षोडशकं चतुर्व्विशतिः त्रिशत् षट्त्रिंशत्तथा च द्विचत्वारिंशदष्टचत्वारिंशच्चतुःपंचाशच्चतुःपंचाशद्भवंत्युपशमके ॥

प्रमत्ते पञ्चकोट्यः त्रिनवतिलक्षाण्यष्टानवतिसहस्राणि द्विशत षट् च भवन्ति। ५, ९३, ९८, २०६। अप्रमत्ते द्विकोटिषण्णवतिलक्षनवनवतिसहस्रैकशतत्रयो भवन्ति। २, ९६, ९९, १०३ ॥६२५॥

केचिदुपशमकप्रमाणं त्रिशतं भणन्ति। केचिच्च चतुरुत्तरत्रिशतं भणन्ति। केचित् पुनः पञ्चोनचतुरुत्तरत्रिशतं भणन्ति। एकोनत्रिशतमित्यर्थः। क्षपकप्रमाणं ततो द्विगुणं जानीहि ॥६२६॥ अत्र प्रवाह्योपदेशसंख्यां निरन्तराष्टसमयेषु विभजति—

प्रमत्तगुणस्थानमें पाँच कोटि तिरानबे लाख, अट्ठानबे हजार दो सौ छह ५९३९८२०६ जीव हैं। तथा अप्रमत्तगुणस्थानमें दो कोटि छियानबे लाख, निन्यानबे हजार एक सौ तीन २९६९९१०३ जीव हैं ॥६२५॥

आठवें, नौवें, दसवें, ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणिवालोंका प्रमाण कोई आचार्य तीन सौ कहते हैं, कोई आचार्य तीन सौ चार कहते हैं और कोई आचार्य तीन सौ चारमें पाँच कम अर्थात् दो सौ निन्यानबे कहते हैं। तथा आठवें, नौवें, दसवें और बारहवें गुणस्थान सम्बन्धी क्षपकश्रेणिवाले जीवोंका प्रमाण उपशमवालोंसे दूना जानना ॥६२६॥

आचार्य परम्परासे आगत प्रवाही उपदेश तीन सौ चारकी संख्याका निरन्तर आठ समयोंमें विभाग करते हैं—

उपशमकरोळु षोडशमुं चतुर्व्विंशतियुं त्रिंशतियुं षट्त्रिंशतियुं द्विचत्वारिंशतियुं अष्टचत्वारिंशतियुं चतुःपंचाशतियुं चतुःपंचाशतियुं निरंतराष्टसमयंगळोळप्पुवु । १६ । २४ । ३० । ३६ । ४२ । ४८ । ५४ । ५४ ।

बत्तीसं अडदालं सट्ठी बावत्तरी य चुलसीदी ।
छण्णउदी अट्ठुत्तरसयमट्ठुत्तरसयं च खवगेसु ॥६२८॥

द्वात्रिंशदष्टचत्वारिंशत् षष्टि द्विसप्ततिश्चतुरशीतिः । षण्णवतिरष्टोत्तरशतमष्टोत्तरशतक्षपकेषु ॥

क्षपकरोळु निरंतराष्टसमयंगळोळु उपशमकर संख्येयं नोडलु द्विगुणमागि द्वात्रिंशदादिगळप्पुवु । ३२ । ४८ । ६० । ७२ । ८४ । ९६ । १०८ । १०८ ॥ ई संख्येयं निरंतराष्टसमयंगळोळु समीकरणविधानदिदं क्षपकरु । आदि ३४ । उत्तरं १२ । गच्छे ८ । पदमेगेण विहीणमित्यादि संकलनसूत्रदिदं तरल्पट्ट लब्धप्रमितरु अष्टोत्तरषट्शतमप्परु । ६०८ ॥ उपशमकरुं । आदि १७ । उत्तरं । ६ । गच्छ ८ । इल्लियुं आ सूत्रदिद तरल्पट्ट लब्धप्रमितरु चतुरुत्तरत्रिशतरप्परु । ३०४ ॥

अट्ठेव सयसहस्सा अट्ठाणउदी तहा सहस्साणं ।
संखा जोगिजिणाणं पंचसयबिउत्तरं वंदे ॥६२९॥

अष्टैव शतसहस्राणि अष्टानवतिस्तथा सहस्राणां । संख्या योगिजिनानां पंचशतं द्व्युत्तरं वंदे ॥

उपशमके षोडश चतुर्विंशतिः त्रिंशत् षट्त्रिंशत् द्वाचत्वारिंशत् अष्टचत्वारिंशत् चतुःपञ्चाशत् चतुःपञ्चाशत् निरन्तराष्टसमयेषु भवन्ति । १६ । २४ । ३० । ३६ । ४२ । ४८ । ५४ । ५४ ॥६२७॥

क्षपके निरन्तराष्टसमयेषु उपशमकेभ्यो द्विगुणत्वात् द्वात्रिंशत् अष्टचत्वारिंशत् षष्टिः द्वासप्ततिः चतुरशीति षण्णवतिः अष्टोत्तरशतं अष्टोत्तरशतं भवन्ति । इमामेव संख्यां निरन्तराष्टसमयेषु समीकरणविधानेन आदि ३४ उत्तरः १२ गच्छः ८ पदमेगेण विहीणमित्यादिनानीतधनम् । क्षपका अष्टोत्तरषट्छतं भवन्ति । ६०८ । उपशमका आदिः १७ उत्तरः ६ गच्छः ८ धनं चतुरुत्तरत्रिशत ३०४ भवन्ति ॥६२८॥

उपशमश्रेणिपर निरन्तर चढ़नेवाले जीवोंकी आठ समयोंमें संख्या क्रमसे सोलह, चौबीस, तीस, छत्तीस, बयालीस, अड़तालीस, चौवन, चौवन होती है ॥६२७॥

क्षपकश्रेणिकी संख्या उपशमवालोंसे दुगुनी होती है इसलिए निरन्तर आठ समयोंमें क्षपकश्रेणि चढ़नेवालोंकी संख्या क्रमसे बत्तीस, अड़तालीस, साठ, बहत्तर, चौरासी, छियानवे, एक सौ आठ, एक सौ आठ होती है। इसी संख्याको निरन्तर आठ समयोंमें समीकरण विधानके द्वारा बराबर करके पहले समयमें चौंतीस, फिर आठ समयोंमें बारह-बारह अधिक करनेसे आदिधन चौंतीस, उत्तर बारह और गच्छ आठ, इसको 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादि सूत्रके अनुसार गच्छ आठमें एक घटानेसे सात रहे, दोका भाग देनेसे साढ़े तीन रहे। उत्तर बारहसे गुणा करनेपर बयालीस हुए। इसमें आदिधन चौंतीस जोड़नेसे छियत्तर हुए। इसे गच्छ आठसे गुणा करनेसे छह सौ आठ हुए। ये सब क्षपकोंका जोड़ होता है। इसी तरह उपशमश्रेणिवालोंका आदिधन सतरह, उत्तर छह, गच्छ आठका धन उससे आधा तीन सौ चार होता है ॥६२८॥

सयोगिजिनरुगळसंख्ये लक्षाष्टकमुमष्टानवतिसहस्रंगळुं द्व्युत्तरपंचशतप्रमितमक्कु । ८९८५०२ । मिनिबरं सर्व्वदा वंदिसुवें । इल्लि निरंतर अष्टसमयंगळोळु संचिसल्पट्ट सयोगजिनरुगळाचार्य्यांतरापेक्षेयिदं सिद्धांतवाक्यदोळु "छसु सुद्धसमयेसु तिण्णि तिण्णि जीवा केवळमुप्पाययंति । दोसु समयेसु दोद्दो जीवा केवळमुप्पाययंति एवमट्ठसमयसंचिदजीवा बावीसा हवंति" यें वितु पेळल्पट्टवारु समयंगळोळु मूरु मूरुमेरडु समयंगळोळ्यरडेरडागलु जिनरुगळुं मोक्षगामिगळुमप्पवरुगळ मेळें दु समयंगळोळेनिबरप्परें बी विशेषकथनदोळु त्रैराशिकषट्कमक्कुमवें ते बोडे संदृष्टि :—

प्र के २२	फ का ८ ६	इ के=८९८५०२	लब्ध मिश्रकाल ८ लब्ध का ४०८४१।६
प्र का ८ ६	फ स ८।	इ का ४०८४१।८। ६	लब्ध समयाशुद्धा ३२६७२८
प्र स ८	फ के २२	इ स ३२६७२८ ।।	लब्ध केवलिन : लब्ध के ८९८५०२
प्र स ८	फ के ४४	इ स ३२६७२८ । २	लब्ध ८९८५०२
प्र स ८	फ के ८८	इ स ३२६७२८ २।२	लब्ध के ८९८५०२
प्र स ८	फ के १७६	इ स ३२६७२८ २।२।२	लब्ध के ८९८५०२

सयोगिजिनसंख्या अष्टलक्षाष्टनवतिसहस्रद्व्युत्तरपञ्चशतानि ८, ९ ८, ५०२ तान् सदा वन्दे । अत्र निरन्तराष्टसमयेषु संचितसयोगिजिना. आचार्यान्तरापेक्षया सिद्धान्तवाक्ये—छसुसुद्धसमयेसु तिण्णि तिण्णि जीवा केवलमुप्पाययन्ति, दोसु समयेसु दो दो जीवा केवलमुप्पाययन्ति एवमट्ठसमयसंचिदजीवा बावीसा हवन्तीति विशेषकथने त्रैराशिकषट्कम् । तद्यथा—प्र के २२ । फ का $\overset{८}{६}$ । इ के ८, ९ ८, ५०२ । ल का ४०८४१, $\overset{८}{६}$ । पुनः प्र का $\overset{८}{६}$ । फ स ८ । इ का ४०८४१, $\overset{८}{६}$ । ल स ३, २६, ७२८ । पुन प्र स ८ । फ के २२ । इ ३,

सयोगी जिनोंकी संख्या आठ लाख अट्ठानबे हजार पाँच सौ दो है उन्हें सदा नमस्कार करता हूँ। यहाँ निरन्तर आठ समयोंमें संचित सयोगि जिनोंकी संख्या अन्य आचार्यकी अपेक्षा सिद्धान्तमें इस प्रकार कही है—छह शुद्ध समयोंमें तीन-तीन जीव केवलज्ञानको उत्पन्न करते हैं और दो समयोंमें दो-दो जीव केवलज्ञानको उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार आठ समयोंमें संचित जीव बाईस होते हैं। यहाँ विशेष कथन छह त्रैराशिकोंके द्वारा करते हैं—

१. यदि बाईस केवली छह मास आठ समयमें होते हैं तो आठ लाख अट्ठानबे हजार पाँच सौ दो केवली कितने कालमें होंगे ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि २२ केवली, फलराशि छह मास आठ समयकाल, इच्छाराशि आठ लाख अट्ठानबे हजार पाँच सौ दो केवली। सो प्रमाणका भाग इच्छाराशिमें देनेसे चालीस हजार आठ सौ इकतालीस आये। इस संख्याको छह मास आठ समयसे गुणा करनेपर कालका प्रमाण आता है। २. छह मास

इंतिदो ंदु पक्षांतरमरियल्पडुगु । अनंतरमेक समयदोळु युगपत्संभविसुव क्षपकर विशेष-संख्येयुमनुपशमकर विशेषसंख्येयुमं गाथात्रयदिदं पेळ्वपरु ।

होंति खवा इगिसमये बोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य ।
उक्कस्सेणट्ठुत्तरसयप्पमा सग्गदो य चुदा ॥६३०॥

भवंति क्षपकाः एकस्मिन्समये बोधितबुद्धाश्च पुरुषवेदाश्च । उत्कृष्टेनाष्टोत्तरशतप्रमिताः स्वर्गांतरच्च च्युताः ॥

पत्तेयबुद्धतित्थयरित्थिणवुंसयमणोहिणाणजुदा ।
दसछक्कवीसदसवीसट्ठावीसं जहाकमसो ॥६३१॥

प्रत्येकबुद्धतीर्थकरस्त्रीनपुंसकमनोवधिज्ञानयुताः । दश षट्क विंशति दश विंशत्यष्टाविंशतिः यथाक्रमशः ॥

२६, ७२८ ल । के ८, ९८, ५०२ । तथा प्र स ८ । फ के ४४ । इ ३, २६, ७२८ ल । के ८, ९८,
२ २

५०२ तथा प्र स ८ । फ के ४४ । इ ३, २६, ७२८ । ल के ८, ९८, ५०२ । तथा प्र स ८ । फ के ८८ ।
२

आठ समयमें निरन्तर केवली उत्पन्न होनेका काल आठ समय है तो पूर्वोक्त कालमें कितने समय हैं ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि छह मास आठ समय, फलराशि आठ समय, इच्छाराशि छह मास आठ समयसे गुणित चालीस हजार आठ सौ इकतालीस । यहाँ प्रमाणराशिके कालसे इच्छाराशिके कालका अपवर्तन करके फलराशिके आठ समयोंसे इच्छाराशि ४०८४१ को गुणा करनेपर तीन लाख छब्बीस हजार सात सौ अट्ठाईस समय होते हैं। ३–६ आठ समयोंमें विभिन्न आचार्योंके मतसे बाईस या चवालोस या अठासी या एक सौ छियत्तर जीव केवलज्ञानको उत्पन्न करते हैं तो पूर्वोक्त तीन लाख छब्बीस हजार सात सौ अठाईस समयोंमें अथवा उससे आधे अथवा चौथाई अथवा आठवें भाग समयोंमें कितने जीव केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं इस प्रकार चार त्रैराशिक करना । इन चारोंमें प्रमाणराशि आठ समय है। फलराशि २२, ४४, ८८ और १७६ पृथक्-पृथक् है। तथा इच्छाराशि तीन लाख छब्बीस हजार सात सौ अठाईस, उसका आधा, उसका चौथाई और उसका आठवाँ भाग पृथक्-पृथक् है। सर्वत्र फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर लब्ध

---

१. गुणितक्रमः समीचीनः प्रयोजनं वाबबुध्यते । अरुदिगळ मेले ंटुसमयदोळगे केवलज्ञानमं पडेव जीवंगळु जघन्य ७२६ दिंदविप्पत्तेरडनुत्कृष्टदिने ंटु लक्षवु तों भत्त ंटु साविरदैनूरेरडु मध्यनानाभेदमवरोळु नात्तनाल्कें ४४ भत्तें ८८ टु नूरिप्पत्तारें ब मूरु विकल्पमं जघन्यमुमं फलराशियं माडिदरु मूरुमध्यमविकल्पद इच्छाराशिय हारवें तं दोडे इल्लिय फलराशियं इच्छाराशियं माडि अरुदिगळ मेले ंटु समयंगळं फलराशियं माडि उत्कृष्टकेवलिसंख्येयं इच्छाराशियं माडलक्कुं । बंद लब्ध १६३६४ यी राशियनेरडरिं गुणिसियेरडरिं भागिसिदडे इंतक्कुं ३२६७२८ = इदु प्रतिपद = ॥
२

जेट्ठावरबहुमज्झिम ओगाहणगा दु चारि अट्ठेव ।
जुगवं हवंति खवगा उवसमगा अद्धमेदेसिं ॥६३२॥

ज्येष्ठावरबहुमध्यमावगाहनकाः द्विचतुरष्टैव। युगपद्भवंति क्षपकाः उपशमकाः अर्द्धमेतेषां॥ बोधितबुद्धरु क्षपकरेकसमयदोळु युगपन्नूरें टु उपशमकरु तदर्द्धमप्परु १०८/५४ पुंवेविगळु क्षपकरु नूरें टुपशमकरु तदर्द्धमप्परु । १०८/५४ स्वर्गीदिवं बंद क्षपकरु युगपन्नूरें टुपशमकरु तदर्द्धं-

इ ३, २६, ७२८ । ल के ८, ९८, ५०२ । तथा प्र स ८ । फ के १७६ । इ ३, २६, ७२८ । ल के ८, ९८,
२ २ २ । २।२
५०२ । इदमेकपक्षान्तरम् ॥६२९॥ अथैकसमये युगपत्सभवती क्षपकोपशमकविशेपसंख्या गाथात्रयेणाह—

युगपदुत्कृष्टेन एकसमये बोधितबुद्धाः पुवेदिनः स्वर्गच्युताश्च प्रत्येकं क्षपकाः अष्टोत्तरशतम् उपशम-

आठ लाख अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो आता है। नीचे इन छह त्रैराशियोंको अंकित किया जाता है—

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धराशि
केवली २२	काल छह मास ८ समय	केवली ८९८५०२	काल ४०८४१ × छह मास आठ समय
काल छह मास ८ समय	समय ८	काल ४०८४१ × छहमास आठ समय	समय ३२६७२८
समय ८	केवली २२	समय ३२६७२८	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ४४	समय ३२६७२८ का आधा	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ८८	समय ३२६७२८ का चौथाई	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली १७६	समय ३२६७२८ का आठवाँ भाग	केवली ८९८५०२

आगे एक समयमें एक साथ होनेवाली क्षपकों और उपशमकोंकी विशेष संख्या तीन गाथाओंसे कहते हैं—

एक साथ उत्कृष्टसे एक समयमें बोधित बुद्ध क्षपक, पुरुषवेदी क्षपक, और स्वर्गसे च्युत होकर मनुष्य जन्म लेकर क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले प्रत्येक एक सौ आठ, एक सौ आठ

मप्पुरु १०८/५४ प्रत्येकबुद्धरु क्षपकरु पत्तुपशमकरय्वरु १०/५ तीर्त्थंकररु क्षपकररुवरुपशमकरु मूवरु ६/३ स्त्रीवेदिक्षपकरुमिप्पत्तुपशमकर्प्पदिंबरु २०/१० नपुंसकवेदिगळु क्षपकरु पदिंबरवरर्द्धं-मुपशमकरु १०/५ मनःपर्य्ययज्ञानिगळु क्षपकरुगळिप्पत्तु तदर्द्धमुपशमकरु २०/१० अवधिज्ञानिगळु क्षपकरुगळिप्पत्तेंदुमुपशमकरुगळु तदर्द्धमप्परु २८/१४ उत्कृष्टावगाहनयुतक्षपकरुगळोर्व्वरुपशमक-नोर्व्वने २/१ जघन्यावगाहनयुतक्षपकरु नाल्वरुपशमकरीर्व्वरु ४/२ बहुमध्यमावगाहनयुतक्षपक-रेण्बरुपशमकर्न्नाल्वरु ८/४ मितेल्ला क्षपकरु ४३२। उपशमकरु २१६।

अनंतरं अयोगिजिनरसंख्येयं कंठोक्तमागि पेळ्दुदिल्लप्पुदरिदं प्रमत्तगुणस्थानं मोदल्गोंडु अयोगकेवलिभट्टारकावसानमाद समस्तसंयमिगळ संख्येयं पेळ्वडदरोळु सयोगकेवलिपर्य्यंतं कंठोक्त-मागि पेळल्पट्ट संयमिगळ संख्येयं कूडि कळेदोडे शेषमयोगिकेवलिगळ संख्येयक्कुमेंबुदं मनदोळि-रिसि संयमिगळ सर्व्वसंख्येयं पेळ्वपं :—

सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे ।
अंजलिमौलियहत्थो तियरणसुद्धे णमंसामि ॥६३३॥

सप्ताद्यष्टांतान् षण्णवमध्यांश्च संयुतान्सर्व्वान् । अंजलिमौलिकहस्तस्त्रिकरणशुद्धया नमस्यामि ॥

सप्तांकमादियागि अष्टांकमवसानमागि षण्णवांकंगळं मध्यमागुळ्ळ त्रिहीननवकोटिसंयतरु-गळनंजलिमौळिकहस्तनागि मनोवाक्कायशुद्धिगळिदं वंदिसुवें ॥ एंदितु सर्व्वसंयमिगळ संख्येयो

कास्तदर्धं भवन्ति। पुनः प्रत्येकबुद्धाः तीर्थङ्कराः स्त्रीवेदिनः नपुसकवेदिनः मनःपर्ययज्ञानिनः अवधिज्ञानिनः उत्कृष्टावगाहा· जघन्यावगाहा· बहुमध्यमावगाहाश्च क्षपका· क्रमशः दश षड्विंशतिः दश विंशतिः अष्टाविंशतिः द्वौ चत्वारः अष्टौ, उपशमकाः तदर्धं भवन्ति। सर्वे मिलित्वा क्षपकाः ४३२। उपशमकाः २१६ ॥६३०–६३२॥ अथ सर्वसंयमिसंख्यामाह—

आदौ सप्ताङ्कं अन्तेऽष्टाङ्कं च लिखित्वा तयोर्मध्ये च षट्सु नवाङ्केषु लिखितेषु संजनितत्र्यूननवकोटि-संख्यामात्रान् सर्वसंयतान् अञ्जलिमौलिकहस्तोऽहं मनोवाक्कायशुद्धया नमस्यामि। ८९९९९९९७। अत्र च

होते हैं। और उपशमक इनसे आधे अर्थात् चौवन-चौवन होते हैं। पुनः क्षपकश्रेणीवाले प्रत्येकबुद्ध दस, तीर्थंकर छह, स्त्रीवेदी बीस, नपुंसकवेदी दस, मनःपर्ययज्ञानी बीस, अवधिज्ञानी अट्ठाईस, उत्कृष्ट अवगाहनावाले दो, जघन्य अवगाहनावाले चार, बहुमध्यम अवगाहनावाले आठ एक समयमें उत्कृष्ट रूपसे होते हैं। उपशमक इनसे आधे होते हैं। सो उक्त सब क्षपकोंकी संख्या मिलकर चार सौ बत्तीस होती है और उपशमकोंकी दो सौ सोलह ॥६३०–६३२॥

आगे सब संयमियोंकी संख्या कहते हैं—

सातका अंक आदिमें और अन्तमें आठका अंक लिखकर दोनोंके मध्यमें छह नौके

८९९९९९९७ ळिवरोळु प्रमत्तादिसयोगिकेवल्यवसानमाद गुणस्थानवर्त्तिगळ संख्येयनें टु कोटियुं तो भत्तो भत्तु लक्षमुं तो भत्तो भत्तु सासिरद मुन्नूरतो भत्तो भत्तं ८९९९९३९९ कळेयुत्तिरलु शेषमयोगिकेवलिगलसंख्ये येरडुगुंदिवरुनूरक्कु ५९८ ॥ मिंती पदि नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु पेळ्द संख्येमे संदृष्टिरचनेयिदु :—

	सि	३
०	अ	५९८
०	स	८९८५०२
०	क्षी	५९८
०	उ	२९९१०
०	सू	२९९।५९८॥
०	अ	२९९।५९८॥
०	अ	२९९।५९८॥
०	अ	२९६९९१०३
०	प्र	५९३९८२०६
०	दे	प a ४ a ॥ १३ को a
०	अ	प ७०० को a
०	मि	प १०४ को a
	सा	प ५२ को a
	मि	१३–

अनंतरं चतुर्गतिगळोळु मिथ्यादृष्टि सासादनमिश्रासंयतर संख्येयं साधिसुव पल्यद भागहारविशेषंगळं पेळ्वपं :—

ओघासंजदमिस्सयसासणसम्माण भागहारा जे ।
रूऊणावलियासंखेज्जेणिह भजिय तत्थ णिक्खित्ते ॥६३४॥

ओघासंयतमिश्रकसासादनसम्यग्दृष्टीनां भागहारा ये । रूपोनावल्यसंख्यातेनेह विभज्य तत्र निक्षिप्ते ॥

देवाणं अवहारा होंति असंखेण ताणि अवहरिय ।
तत्थेव य पक्खित्ते सोहम्मीसाण अवहारा ॥६३५॥

देवानामवहारा भवंति असंख्येन तानपहृत्य तत्रैव च निक्षिप्ते सौधर्मैशानावहाराः ॥

प्रमत्तादिसयोग्यवसानसंख्याया ८९९९९३९९ अपनीताया शेषं द्व्यूनषट्छतं अयोगिसंख्या भवति । ५९८ ॥६३३॥ अथ चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयतसंख्यासाधकपल्यभागहारविशेषानाह—

अंक लिखनेपर ८९९९९९९७ तीन कम नौ करोड़ संख्या प्रमाण सब संयमियोंको मैं हाथोंकी अंजलि मस्तकसे लगाकर मन, वचन, कायकी शुद्धिसे नमस्कार करता हूँ। यहाँ प्रमत्त गुणस्थानसे लेकर सयोग केवली पर्यन्त संख्या ८९९९९३९९ है। इस संख्याको सब संयमियोंकी संख्यामें घटानेपर शेष दो कम छह सौ ५९८ अयोगियोंकी संख्या होती है ॥६३३॥

आगे चारों गतिके मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, मिश्र और असंयतसम्यग्दृष्टियोंकी संख्याके साधक पल्यके भागहार विशेषोंको कहते हैं—

गुणस्थानदोळ्पेळ्द असंयतसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टिगळेंबी मूरुं गुणस्थानंगळ आवुवु केलवु पल्यक्के पेळ्द भागहारंगळु अ ə
मि ə ə
सा ə ə ४
दुरूपोनावल्यसंख्यातदिदं ə–१ । भागिसि भागिसि तंतम्म हारदोळे कूडल्पट्टुवादोडे देवौघदोळु तंतम्म भागहारंगळप्पुवु । अ ə ə
ə–१
मि ə ə ə
ə – १
सा ə ə ४ ə
ə–१
मत्तमी देवसामान्यगुणस्थानत्रयभागहारंगळं रूपोनावल्यसंख्यातदिदं भागिसि भागिसिदेकभागमं तंतम्म हारंगळोळु प्रक्षेपिसुत्तं विरलु सौधर्म्मैशानकल्पद्वयद असंयतमिश्रसासादनरुगळ भागहारंगळप्पुवु । सौधर्म्मकल्पद्वयद असंयतन भागहारंगळु प
ə ə ə
ə–१ə–१
मिश्रभागहारंगळु प
ə ə ə ə
ə–१ə–१
सासादनर भागहारंगळु प
ə ə ४ ə ə
ə – १ə – १
अनंतरमी सौधर्म्मकल्पद्वयासंयतादि सासादनगुण-

गुणस्थानोक्ताः असंयतसम्यग्मिथ्यादृष्टिसासादनाना ये पल्यासंख्यातप्रविष्टभागहाराः अ ə
मि ə ə
सा ə ə ४
एतेषु रूपोनावल्यसंख्यातेन ə–१ भक्त्वा एतेष्वेव निक्षिप्तेषु देवौघे स्वस्वभागहारा भवन्ति । अ ə ə
ə–१
मि ə ə ə
ə–१
सा ə ə ४ ə
ə–१
एतान् पुनः रूपोनावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकैकभागे स्वस्वहारे प्रक्षिप्ते सौधर्मैशानासंयत-

गुणस्थानोंमें जीवोंकी संख्या कहते हुए पूर्वमें जो असंयत, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनोंके पल्यके भागहार कहे हैं उनमें एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उन्हें उन्हीं भागहारोंमें मिलानेसे देवगतिमें अपना-अपना भागहार होता है। इन भागहारोंको पुनः एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक-एक भाग अपने-अपने भागहारमें मिलानेपर सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें असंयत मिश्र और सासादनोंके भागहार होते हैं।

विशेषार्थ—पहले असंयतगुणस्थानमें भागहारका प्रमाण एक बार असंख्यात कहा था। उसे एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उसे उस भागहारमें मिलानेपर जो प्रमाण हो उतना देवगतिसम्बन्धी असंयतगुणस्थानका भागहार जानना। इस भागहारका भाग पल्यमें देनेसे जो प्रमाण आवे उतने देवगतिमें असंयतगुणस्थानवर्ती जीव हैं। मिश्रमें दो बार असंख्यातरूप और सासादनमें दो बार

स्थानावसानमाद गुणस्थानत्रयदोळु आवुदोंदु सासादनर हारमदं नोडलु मुंदल्लेतेडेयोळं असंयत-मिश्रर हारंगळु संख्यातगुणितक्रमंगळु सासादनर हारंगळु संख्यातगुणंगळप्पुवु ।

सप्तमपृथ्विय गुणस्थानत्रयपर्य्यंतमें बी व्याप्तियं पेळ्दपं :—

सोहम्मसाणहारमसंखेण य संखरूवसंगुणिदे ।
उवरि असंजदमिस्सयसासणसम्माण अवहारा ॥६३६॥

सौधर्म्मसासादनहारमसंख्येन च संख्यरूपसंगुणिते । उपर्य्यसंयतमिश्रसासादनसम्यग्दृष्टी-नामवहाराः ॥

सौधर्म्मकल्पद्वयदसासादन सम्यग्दृष्टिगळ भागहारम $\frac{ə\ ə\ ə\ ə\ ४}{ə - १ə - १}$ निदनसंख्यातदिदं च शब्ददिदं मत्तमसंख्यातदिदं संख्यातरूपुगळिदं गुणितं माडुत्तिरलु यथासंख्यमागि मेले सानत्कुमारद्वयदोळऽसंयतादि अधस्तनगुणस्थानत्रयद हारंगळप्पुवु । सानत्कुमारद्वयद असंयतहारंगळु $\frac{ə\ ə\ ə\ ə\ ४\ ə}{ə - १ə - १}$ मिश्रहारंगळु $\frac{ə\ ə\ ə\ ə\ ४\ ə\ ə}{ə - १ə - १}$ सासादनर हारंगळु $\frac{ə\ ə\ ə\ ə\ ४\ ə\ ə\ ४}{ə - १ə - १}$

अनंतरमी गुणितक्रमदव्याप्तियं पेळ्दपं :—

मिश्रसासादनाना भागहारा भवन्ति

$\frac{ə\ ə\ ə}{ə-१,\ ə-१}$ $\frac{ə\ ə\ ə\ ə}{ə-१,\ ə-१}$ $\frac{ə\ ə\ ४\ ə\ ə}{ə-१,\ ə-१}$

तत्सौधर्मद्वयसासादनभागहारे $\frac{ə\ ə\ ə\ ə\ ४}{ə-१-ə-१}$ असंख्यातेन चशब्दात् पुनरसंख्यातेन संख्यातरूपैश्च गुणिते यथासंख्यमुपरिसानत्कुमारद्वये असंख्यातमिश्रसासादनहारा भवन्ति । $\frac{ə\ ə\ ə\ ə\ ४\ ə}{ə-१\ ə-१}$ $\frac{ə\ ə\ ə\ ə\ ४\ ə\ ə}{ə-१\ ə-१}$ $\frac{ə\ ə\ ə\ ə\ ४\ ə\ ə\ ४}{ə-१-ə-१}$ ॥६३६॥ अथास्य गुणितक्रमस्य व्याप्तिमाह—

असंख्यात और एक बार संख्यातरूप भागहार कहा था। उसको एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतना-उतना उनमें मिलानेपर देवगतिमें मिश्र तथा सासादनगुणस्थानवालोंका प्रमाण लानेके लिए भागहार होता है। देवगतिमें असंयत मिश्र और सासादनके लिए जो-जो भागहारका प्रमाण कहा उसे एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतना-उतना उन-उन भागहारोंमें मिलानेसे सौधर्म ऐशान स्वर्गमें अविरत मिश्र और सासादनसम्बन्धी भागहार होता है ॥६३४-६३५॥

सौधर्म और ऐशानमें सासादनका जो भागहार है उससे असंख्यातगुणा भागहार सानत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्गमें असंयतसम्बन्धी है। 'च' शब्दसे इस असंयतके भागहारसे असंख्यातगुणा मिश्रगुण सम्बन्धी भागहार है और उससे संख्यातगुणा सासादनसम्बन्धी भागहार है ॥६३६॥

आगे इस गुणितक्रमकी व्याप्ति कहते हैं—

सोहम्मादासारं जोइसवणभवणतिरियपुढवीसु ।
अविरदमिस्सेऽसंखं संखासंखगुण सासणे देसे ॥६३७॥

सौधर्म्मादासहस्रारं ज्योतिष्कवानभावनतिर्य्यक्पृथ्वीषु । अविरतमिश्रेऽसंख्ये संख्य असंख्यगुणं सासादने देशसंयते ॥

सौधर्म्मद्वयवर्त्तिगळं मेळे सानत्कुमारकल्पद्वयं मोदल्गोंडु सहस्रारकल्पपर्य्यंतं कल्पद्वयपंचकदोळं ज्योतिष्कवानभावनतिर्य्यंच प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थपंचमषष्ठसप्तमपृथ्वियें बी षोडश स्थानदोळमविरतरोळं मिश्ररोळमसंख्यातगुणितक्रममक्कुं । सासादनरोळुसंख्यातगुणमक्कु । तिर्य्यंचदेशसंयतरोळसंख्यातगुणमक्कुमवें तें दोडेमुं पेळद सानत्कुमारकल्पद्वयद सासादनहारमं नोडलु ब्रह्मकल्पद्वयासंयतहारमसंख्यातगुण $\frac{aaaa4aa4a}{a-1a-1}$ मदं नोडलु मिश्रहारमसंख्यातगुण $\frac{aaaa4aa4aa}{a-1a-1}$ मदं नोडलु सासादनर हारं संख्यातं गुणमक्कु $\frac{aaaa4aa4aa4}{a-1a-1}$ मदं नोडलु लांतवकल्पद्वयदऽसंयतहारमसंख्यातगुण $\frac{aaaa4aa4।2।a}{a-1a-1}$ मदं नोडलु मिश्रर हारमसंख्यातगुण $\frac{aaaa4aa4।2।aa}{a-1a-1}$ मदं नोडलु सासादनहारं संख्यातगुणमक्कु $\frac{aaaa4aa4।2।aa4}{a-1a-1}$ मदं नोडलु शुक्रकल्पद्वयासंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु $\frac{aaaa4aa4।3।a}{a-1a-1}$ मदं नोडलु मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु $\frac{aaaa4aa4।3।aa}{a-1a-1}$ मदं नोडलु तत्रत्य सासादनहारं संख्यातगुणमक्कु $\frac{aaaa4aa4।3aa4}{a-1a-1}$ मदं नोडलु

सौधर्मद्वयादुपरि सानत्कुमारादिसहस्रारपर्यन्तं पञ्चयुग्मेषु ज्योतिष्कवानभावनतिर्यक्सप्तपृथ्वीषु चेति षोडशस्थानेषु अविरते मिश्रे त्वसंख्येयगुणितक्रमः सासादने संख्यातगुणितक्रमः, तिर्यग्देशसंयते असंख्यातगुणितक्रमश्च भवति । तथाहि—उक्तसानत्कुमारद्वयसासादनहारात् ब्रह्मद्वयस्य असंयतहारोऽसंख्यातगुणः । ततो मिश्रहारोऽसंख्यातगुणः । ततः सासादनहारः संख्यातगुणः । अत्र संख्यातस्य संदृष्टिश्चतुरङ्कः । ततः लान्तवद्वये असंयतहारः असंख्यातगुणः । ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः । ततः सासादनहारः संख्यातगुणः । ततः शुक्रद्वये-

सौधर्मसे ऊपर सानत्कुमारसे लेकर सहस्रार पर्यन्त पाँच स्वर्ग युगलोंमें और ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी, तिर्यंच, और सात नरक इन सोलह स्थानोंमें अविरत और मिश्रमें असंख्यात गुणितक्रम जानना। सासादनमें संख्यात गुणितक्रम जानना। और तिर्यंच सम्बन्धी देशसंयत गुणस्थानमें असंख्यात गुणितक्रम जानना। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—सानत्कुमार, माहेन्द्रमें जो सासादनका भागहार कहा उससे ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। यहाँ संख्यातकी संदृष्टि चारका अंक ४ है। उससे लान्तव-कापिष्ठमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे शुक्र महाशुक्रमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे शतारसहस्रारमें असंयतका भागहार

शतारकल्पद्वयासंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु ० ० ० ० ४ ० ० ४ । ४ ० मवं नोडलु तन्मिश्रहारम-
० – ०१ – १
संख्यातमक्कु ० ० ० ० ४ ० ० ४ । ४ ० ० मवं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु
० – १० – १
० ० ० ० ४ ० ० ५ । ४ ० ० ४ मवं नोडलु ज्योतिषिकाअसंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु
० – १० – १
० ० ० ० ४ ० ० ४ । ५ ० मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु ० ० ० ० ४ ० ० ४ । ५ ० ०
० – १० – १ ० – १० – १
मवं नोडलु तत्रत्य सासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ० ० ० ० ४ ० ० ४ । ५ ० ० ४ मवं नोडलु
० – १० – १
व्यंतरासंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु ० ० ० ० ४ ० ० ४ । ६ ० मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यात-
० – १० – १
गुणमक्कु ० ० ० ० ४ ० ० ४ । ६ ० ० मवं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु
० – १० – १
००० ०४००४।६००४ मवं नोडलु भवनवासिकासंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु ० ० ० ० ४ ० ० ४ । ७ ०
०–१०–१ ० – १० – १
मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु ० ० ० ० ४ ० ० ४ ७ ० ० मदं नोडलु तत्रत्यसासा-
० – १० – १
दनहारं संख्यातगुणमक्कु ० ० ० ० ४ ० ० ४ । ७ । ० ० ४ मदं नोडलु तिर्य्यंचासंयतहारम-
० – १० – १
संख्यातगुणमक्कु ० ० ० ० ४ ० ० ४ । ८ मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु
० – १० – १
० ० ० ० ४ ० ० ४ । ८ ० ० मवं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ००००४००४८ । ००४
० – १० – १ ० – १० – १
मवं नोडला तिर्य्यग्देशसंयतहारमसंख्यातगुणमक्कुं तिर्य्यग्देशसंयतर (हारं नोडलु) प्रथमपृथ्विनारका-

ऽसंयतहारः असंख्यातगुणः । ततो मिश्रहारः असंख्यातगुणः । ततः सासादनहारः संख्यातगुणः । तत शतारद्वये-ऽसंयतहारः असंख्यातगुणः । ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः । ततः सासादनहार संख्यातगुण. । तत ज्योतिष्कासंयतहारः असंख्यातगुणः । ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः । तत. सासादनहारः सख्यातगुणः । तत व्यन्तरासंयतहारः असंख्यातगुणः । ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः । ततः सासादनहारः संख्यातगुणः । ततः भवनवास्यसंयतहारः असंख्यातगुणः । ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः । ततः सासादनहार. संख्यातगुणः । ततस्तिर्यगसयतहार. असंख्यातगुणः । ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः । सासादनहारः संख्यातगुण । ततस्ति-

असंख्यातगुणा है । उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है । उससे ज्योतिषीदेवोंमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है । उससे व्यन्तरोंमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है । उससे भवनवासियोंमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है । उससे तिर्यंचोंमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है । उससे तिर्यंचोंमें ही देशसंयतका भागहार असंख्यातगुणा है । जो तिर्यंचोंमें देशसंयतका भागहार

संयतहारमुमसंख्यातगुणमक्कुं ə ə ə ə ४ ə ə ४ ९ ə / ə – १ə – १ प्रथमपृथ्वि – असंयताहार ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ९ । ə / a – १a – १ मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ९ । a ə / ə – १ə – १ मदं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ९ ə ə ४ / ə – १ə – १ मदं नोडलु द्वितीयपृथ्विय असंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १० । ə । / ə – १ə – १ मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १० । ə ə / ə – १ə – १ मदं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुणमक्कुं ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १० । ə ə ४ । / ə – ə१ – १ मदं नोडलु तृतीयधराऽसंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ११ a । / ə – १ə – १ मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ ११ ə ə / ə – ९ə – १ मदं नोडलु तत्रत्य सासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ११ ə ə ४ / ə – १ə – १ मदं नोडलु चतुर्थभूनारकाऽसंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १२ । ə / ə – १ə – १ मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु əəəə४əə४।१२ । ə ə / ə – १ə – १ मदं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १२ । ə ə ४ / ə – १ə – १ मदं नोडलु पंचमधराऽसंयतहारमसंख्यातगुणमक्कुं ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १३ । ə / ə – १ə – १ मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १३ । ə ə / ə – १ə – १ मदं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुण-

---

यंग्देशसंयतहारः असंख्यातगुणः । अयमेव प्रथमपृथिव्यसंयतस्यापि हारः । ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः । ततः सासादनहारः संख्यातगुणः । ततः द्वितीयपृथिव्यसंयतहारः असंख्यातगुणः । ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः । ततः सासादनहारः संख्यातगुणः । ततः तृतीयपृथिव्यसंयतहारः असंख्यातगुणः । ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः । ततः सासादनहारः संख्यातगुणः । ततः चतुर्थपृथिव्यसंयतहारः असंख्यातगुणः । ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः । ततः सासादनहारः संख्यातगुणः । ततः पञ्चमधरासंयतहारः असंख्यातगुणः । ततः मिश्रहारः

है वही भागहार प्रथम नरकमें असंयतका भी है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे दूसरे नरकमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे तीसरे नरकमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे चौथे नरकमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे पंचम नरकमें असंयत भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका

मक्कु ꣹ ꣹ ꣹ ꣹ ४ । १३ ꣹ ꣹ ४ मदं नोडलुं षष्ठधराऽसंयतहारमसंख्यातगुणमक्कुं ।
꣹ – १꣹ – १

꣹ ꣹ ꣹ ꣹ ४ ꣹ ꣹ ४ । १४ ꣹ मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु ꣹꣹꣹꣹४ ꣹ ꣹ ४ । १४ ꣹ ꣹
꣹ – १꣹ – १ ꣹ – १꣹ – १

मदं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुणमक्कुं ꣹ ꣹ ꣹ ꣹ ४ ꣹ ꣹ ४ । १४ । ꣹ ꣹ ४ मदं नोडलु
꣹ – १꣹ – १

सप्तमधराऽसंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु ꣹ ꣹ ꣹ ꣹ ४ ꣹ ꣹ ४ । १५ ꣹ मदं नोडलु तन्मिश्रहारम-
꣹ – १꣹ – १

संख्यातगुणमक्कु ꣹ ꣹ ꣹ ꣹ ४ ꣹ ꣹ ४ । १५ । ꣹ ꣹ मदं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुण-
꣹ – १꣹ – १

मक्कु ꣹ ꣹ ꣹ ꣹ ४ ꣹꣹ ४ । १५ । ꣹ ꣹ ४ मनंतरमानतादिगळोळु हारमं पेळ्दपं :—
꣹ – १ ꣹ – १

चरमधरासाणहरा आणदसम्माण आरणप्पहुडिं ।
अंतिमगेवेज्जंतं सम्माणमसंखसंखगुणहारा ॥६३८॥

चरमधरासासादनहाराः आनतसम्यग्दृष्टिनामारणप्रभृत्यंतिमग्रैवेयकांतं सम्यग्दृष्टीनाम-संख्यसंख्यगुणहाराः ॥

तत्तो ताणुत्ताणं वामाणमणुद्दिसाण विजयादी ।
सम्माणं संखगुणो आणदमिस्से असंखगुणो ॥६३९॥

ततस्तेषामुक्तानां वामानामनुदिशानां विजयादिसम्यग्दृष्टीनां सख्यगुणः आनतमिश्रेऽसंख्यगुणः ॥

असख्यातगुणः । तत सासादनहारः संख्यातगुण । ततः षष्ठधरासंयतहारः असख्यातगुण । तत मिश्रहारः असख्यातगुणः । ततः सासादनहारः संख्यातगुणः । ततः सप्तमधरासंयतहारः असख्यातगुण । तत मिश्रहार. असंख्यातगुणः । ततः सासादनहारः संख्यातगुणः ॥६३७॥ अथानतादिषु गाथात्रयेणाह—

तत्सप्तमपृथ्वीसासादनहारात् आनतद्वयासंयतहारः असंख्यातगुण । तत आरणद्वयाद्यन्तिमग्रैवेयकान्त-दशपदासंयतानां दशहाराः संख्यातगुणक्रमाः स्युः । अत्र सख्यातस्य संदृष्टिः पञ्चाङ्कः ॥६३८॥

ततोऽन्तिमग्रैवेयकासयतहारात् आनतद्वयादितदुक्तैकादशपदमिथ्यादृष्टीना एकादशहाराः संख्यातगुणित-क्रमाः । अत्र सख्यातस्य संदृष्टिः षडङ्कः । ततः तदन्तिमग्रैवेयकवामहारात् नवानुदिशविजयादिचतुर्विमाना-

---

भागहार संख्यातगुणा है। उससे छठी पृथ्वीमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे सातवें नरकमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है ॥६३७॥

आगे आनतादिमें तीन गाथाओंसे कहते हैं—

सप्तम पृथ्वीसम्बन्धी सासादनके भागहारसे आनत-प्राणत सम्बन्धी असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे आरण-अच्युतसे लेकर अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त दस स्थानोंमें असंयतोंका भागहार क्रमसे संख्यातगुणा संख्यातगुणा है। यहाँ संख्यातकी संदृष्टि पाँचका अंक है ॥६३८॥

उस अन्तिम ग्रैवेयक सम्बन्धी असंयतोंके भागहारसे आनत-प्राणत युगलसे लेकर

तत्तो संखेज्जगुणो सासणसम्माण होदि संखगुणो ।
उत्तट्ठाणे कमसो पणछस्सत्तट्ठचदुरसंदिट्ठी ॥६४०॥

ततः संख्येयगुण. सासादनसम्यग्दृष्टीनां भवति संख्यगुणः। उत्कस्थाने क्रमशः पंचषट्सप्ताष्टचत्वारः संदृष्टिः ॥ गाथा त्रितयं ॥

सप्तमपृथ्विसासादनसम्यग्दृष्टिय हारंगळु आनतकल्पद्वयसम्यग्दृष्टिगळोयुं आरण अच्युतकल्पद्वयप्रभृत्यंतिमग्रैवेयकपर्य्यंतमाद सम्यग्दृष्टिगळगमुमसंख्यातगुणमुं संख्यातगुणमुं यथासंख्यमागियप्पुवदें ते दोडे सप्तमपृथ्वियसासादनसम्यग्दृष्टिय हारमं नोडलु आनतकल्पद्वयासंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु a a a a ४ a a ४ । १६ a / a - १a - ५ मदं नोडलु आरणाच्युतकल्पद्वयाऽसंयतसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु a a a a ४ a a ४ । १६ । a ५ / a - १a - १ मदं नोडलु अधस्तनाधस्तनवग्रैवेयकसम्यग्दृष्टियहारं संख्यातगुणमक्कुं a a a a ४ । a a ४ । १६ a । ५ । ५ / a - १a - १ मदं नोडलु अधस्तनमध्यमग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कुं । a a a a ४ a a ४ । १६ । ५ । ५ । ५ / a - १a - १ मदं नोडलुमधस्तनोपरितनग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु aaaa४aa ४ । १६ a । ५।५।५।५ / a - १a - १ मदं नोडलुमध्यमाधस्तनग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु aaaa४aa४ । १६ a ।५।५।५।५।५ / a - १a - १ मदं नोडलु मध्यम मध्यमग्रैवेयक सम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु aaaa ४aa४।१६a।५।५।५।५।५।५ / a-१a-१ मदं नोडलु मध्यमोपरितनसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु a a a a ४ a a ४ । १६ । a । ५। ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ / a - १a - १ मदं नोडलुपरितनाधस्तनग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु a a a a ४ a a ४ । १६ । ५।५।५।५।५।५।५।५ / a - १a - १ मदं नोडलुपरितनमध्यमग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु a a a a ४ a a ४ । १६ । a । ५।५।५।५।५।५।५।५।५ / a - १a - १ मदं नोडलुपरितनोपरितनग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहार संख्यातगुणमक्कु a a a a ४ a a ४ । १६ । a । ५।५।५।५।५।५।५।५।५।५ / a - १a - १

संयतहारौ द्वौ संख्यातगुणक्रमौ। अत्र सख्यातस्य संदृष्टिः सप्ताङ्कः। ततः विजयाद्यसंयतहारादानतद्वयमिश्रहारः असंख्यातगुणः ॥६३९॥

तदानतद्वयमिश्रहारात् आरणद्वयादितद्दशपदमिश्रहाराः संख्यातगुणक्रमाः। अतः संख्यातस्य संदृष्टिः

अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त ग्यारह स्थानोंमें मिथ्यादृष्टियोंके ग्यारह भागहार क्रमसे संख्यातगुणे हैं। यहाँ संख्यातकी संदृष्टि छहका अंक है। उस अन्तिम ग्रैवेयक सम्बन्धी मिथ्यादृष्टियोंके भागहारसे नौ अनुदिश और विजयादि चार विमानोंमें असंयतोंके दो भागहार संख्यातगुणे संख्यातगुणे हैं। यहाँ संख्यातकी संदृष्टि सातका अंक है। विजयादि सम्बन्धी असंयतके भागहारसे आनत-प्राणत सम्बन्धी मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है ॥६३९॥

आनत-प्राणत सम्बन्धी मिश्रके भागहारसे आरण-अच्युतसे लेकर अन्तिम ग्रैवेयक

ततस्तेषामुक्तानां वामानामनुद्दिशानां विजयादिसम्यग्दृष्टीनां संख्यगुणः एंदितुपरितनोपरितनग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहारमं नोडलु आनतकल्पद्वयं मोदल्गोंडुपरितनोपरितनग्रैवेयकपर्य्यंतमाद पन्नोंदु स्थानद वामरुगळ हारंगळु संख्यातगुणक्रमंगळप्पुवल्लि आनतकल्पद्वयवामरुगळ हारं संख्यातगुणमक्कु ० ५ । १० । ६ । मदं नोडलु आरणाच्युतवामरुगळ हारं संख्यातगुणमक्कु ० । ५ । १० । ६ । ८ मदं नोडलधस्तनाधस्तन ग्रैवेयकवामरुगळ हारं संख्यातगुणमक्कुं ० । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । अदं नोडलु अधस्तनमध्यमग्रैवेयकवामहारं संख्यातगुणमक्कु । ० । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६।६ । मदं नोडलु अधस्तनोपरितनग्रैवेयक वाम हारं संख्यातगुणमक्कु । ० । ५ । १० । मदं नोडलुमध्यमाधस्तनग्रैवेयकवामहारं संख्यातगुणमक्कु । ० । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ मदं नोडलु मध्यममध्यमग्रैवेयकवामहारं संख्यातगुणमक्कु ० । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ मदं नोडलु मध्यमोपरितनग्रैवेयकवामहारं संख्यातगुणमक्कु ० । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । मदं नोडलुपरिमाधस्तनग्रैवेयकवामहारं संख्यातगुणमक्कु । ० । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । मदं नोडलु [1]उपरिममध्यग्रैवेयकवामहारं संख्यातगुणमक्कु ० । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६।६। मदं नोडलुपरिमोपरिमग्रैवेयकवामहारं संख्यातगुणमक्कु ० । ५ । १०।६।६।६।६।६।६।६।६।६।६।६। मदं नोडलु अनुदिशविमानंगळ सम्यग्दृष्टिगळ हारं संख्यातगुणमक्कु । ० । ५ । १० । ६ । ११ ।७॥ मदं नोडलु विजयादिचतुर्व्विमानंगळ सम्यग्दृष्टिगळहारं संख्यातगुणमक्कुं ० ।५।१०।६।११।७।७। मदं नोडलु आनतमिश्रेऽसंख्यातगुणः आनतकल्पद्वयमिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कुं । ० । ५।१०।६।११।७ । २ । ० ॥ तत उपरि आरणाच्युतकल्पद्वयमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कुं । ० । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ० । ८ ॥ मदं नोडलुमधस्तनाधस्तनग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु ० । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ० । ८ । ८ । ८ ॥ मदं नोडलुमध[2]स्तनोपरितनग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु । ० । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ० । ८ । ८ । ८ । ८ मदं नोडलुमाधस्तनोपरितनग्रैवेपकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु । ० । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ० । ८ । ८ । ८ । ८ । ८॥ मदं नोडलु मध्यममध्यमग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु ०।५।१०।६।११।७।२।०।८।८।८।८।८।८॥ मदं नोडलु मध्यमोपरितनग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु । ० । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ० । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । मदं नोडलु उपरितनाधस्तनग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु ० । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ० । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ ॥ मदं नोडलु उपरितनमध्यमग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु । ० । ५ । १० । ६ । ११ । ७ ।२।०।८।८।८।८।८।८।८।८।८।८॥ मदं नोडलुमुपरितनोपरितनग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु । ० । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ० । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ ॥ मदं नोडलु सासादनसम्यग्दृष्टीनां संख्यगुणः एंदितु आनतकल्पद्वयसासादनहारं संख्यातगुणमक्कुं । ० । ५ । १० । ६ । ११ । ७ ।२।०।८।१०।४ ॥ अदं नोडलु आरणाच्युतकल्पद्वयसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ।०।५।१०।६।११।७।२।०।८।१०।४।४॥ मदं नोडलु प्रथमग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु । ० । ५ । १० । ६ ।११।७।२।०।८।१०।८।४।४

अष्टाङ्क । तत तदन्तग्रैवेयकमिश्रहारात् आनताद्येकादशपदानां सासादनहाराः सख्यातगुणक्रमाः । अत्र सख्यातस्य

पर्यन्त दस स्थानोंमें मिश्रगुणस्थानसम्बन्धी भागहार क्रमसे संख्यातगुणा संख्यातगुणा है। यहाँ संख्यातकी संदृष्टि आठका अंक है। अन्तिम ग्रैवेयक सम्बन्धी मिश्रके भागहारसे

१. म उपरिमोपरिम°। २. म °नमध्यमग्रैवेयक°।

मदं नोडलु द्वितीयग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ।a।५।१०।६।११।७।२।a।८।१०।४।४।४।४॥ मदं नोडलु तृतीयग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ।a।५।१०।६।११।७।२।a।८।१०।४।४।४।४।४॥ मदं नोडलु चतुत्थग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ।a।५।१०।६।११।७।२।a।८।१०।४।४।४।४।४।४॥ मदं नोडलु पंचमग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ।a।५।१०।६।११।७।२।a।८।१०।४।४।४।४।४।४।४॥ मदं नोडलु षष्ठग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ।a।५।१०।६।११।७।२।a।८।१०।८।८।८।८।८।८।८।८॥ मदं नोडलु सप्तमग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ।a।५।१०।६।११।७।२।a।८।१०।४।४।४।४।४।४।४।४।४॥ मदं नोडलु अष्टमग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ।a।५।१०।६।११।७।२।a।८।१०।४।४।४।४।४।४।४।४।४।४॥ मदं नोडलु नवमग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ।a।५।१०।६।११।७।२।a।८।१०।४।११॥ मी पेळल्पट्ट स्थानदोळु क्रमदिदमय्दु ।५। मारु ।६। मेळु ७। मंटु ।८। नाल्कु ।४। संख्यातक्के संदृष्टिगळें दरिवुदु ।

सगसग अवहारेहि पल्ले भजिदे हवंति सगरासी ।
सगसगगुणपडिवण्णे सगसगरासीसु अवणिदे वामा ॥६४१॥

स्वस्वावहारैः पल्ये भक्ते भवंति स्वस्वराशयः। स्वस्वगुणप्रतिपन्ने स्वस्वराशिष्वपनीते वामाः ॥

तंतम्म हारंगळिवमी पेळल्पट्टवरिवं पल्यं भागिसल्पडुत्तिरलु तंतम्म राशिगळप्पुवु। तंतम्म स्थानद गुणप्रतिपन्नरं सासादनमिश्रासंयतदेशसंयतरं कूडि तंतम्म राशियोळकळियुत्तिरलु तंतम्म स्थानदोळु मिथ्यादृष्टिगळप्परु। अवं तें बोडे सामान्यगुणस्थानद गुणप्रतिपन्नरिवं हीनमाद वामरु किंचिदूनसर्व्वसंसारिराशियक्कु। १३-। देवौघगुणप्रतिपन्नरिवं हीनमाद वामरुगळु किंचिदूनदेवौघमक्कुं =१- / ४।६५।=१ सौधर्म्मकल्पद्वयदोळु गुणप्रतिपन्नरिवं हीनघनांगुलतृतीयमूलगुणजगच्छ्रेणि-

संदृष्टिश्चतुरङ्कः। एतेषूक्तपञ्चस्थलेषु संख्याताना संदृष्टयः क्रमशः पञ्चषट्सप्ताष्टचतुरङ्का ज्ञातव्याः ॥६४०॥

प्रागुक्तैः स्वस्वहारैः पल्ये भक्ते सति स्वस्वराशयो भवन्ति। स्वस्वस्थानस्य गुणप्रतिपन्नेषु सासादनमिश्रासंयतदेशसंयतेषु मेलयित्वा स्वस्वराशावपनीतेषु शेषस्वस्वस्थाने मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। तत्र सामान्ये किंचिदूनसंसारी १३- देवौघे किंचिदूनतद्राशिः- =१- / ४।६५=१ सौधर्मद्वये किंचिदूना घनाङ्गुलतृतीयमूल-

आनत आदि ग्यारह स्थानोंमें सासादनका भागहार क्रमसे संख्यातगुणा संख्यातगुणा है। यहाँ संख्यातकी संदृष्टि चारका अंक है। ऊपर कहे इन पाँच स्थानोंमें संख्यातोंकी संदृष्टि क्रमसे पाँच, छह, सात, आठ और चारका अंक जानना ॥६४०॥

पहले कहे अपने-अपने भागहारोंसे पल्यमें भाग देनेपर अपनी-अपनी राशि होती है। अपने-अपने स्थानके सासादन, मिश्र, असंयत और देशसंयतोंको जोड़नेपर जो राशि हो उसे अपनी-अपनी राशिमें घटानेपर जो शेष रहे उतना अपने-अपने स्थानमें मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण होता है। सो सामान्यसे मिथ्यादृष्टि कुछ कम संसारीराशि प्रमाण हैं। सामान्य-

प्रमितं वामरप्परु।–३–। सनत्कुमारकल्पद्वयवोळु गुणप्रतिपन्नरिवं किंचिदूनैकावशजगच्छ्रेणिमूलभक्त जगच्छ्रेणिप्रमितंवामरप्परु। किंचिदूनक्किल्लि हारंगळु साधिकगळें दु निश्चैसुवदु ११ ब्रह्मकल्पद्वयवामरुं निजनवममुलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं किंचिदूनं वामरप्परु ९ लांतवकल्पद्वयदोळु निजसप्तममूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं किंचिदूनमागि वामरप्परु ७ शुक्रकल्पद्वयदोळु निजपंचममूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं किंचिदूनमागि वामरप्परु।५। शतारकल्पद्वयवोळु निजचतुर्थमूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं किंचिदूनमागि वामरप्परु ४ । ज्योतिष्करोळु गुणप्रतिपन्नरिवं किंचिदूनमागि पण्णट्ठिमात्र प्रतरांगुलभक्तजगत्प्रतरमात्रं वामरप्परु ४।६५= व्यंतररोळु गुणप्रतिपन्नराशित्रयहीन संख्यातप्रतरांगुल भक्तजगत्प्रतरमात्रं वामरप्परु । ४।६५=८११ ० । भवनवासिगरोळु गुणप्रतिपन्नराशित्रयहीनघनांगुलप्रथममूलमात्रं जगच्छ्रेणिप्रमितं वामरुगळप्परु –१–। तिर्य्यंचरोळु गुणप्रतिपन्नराशिचतुष्टयविहीनसकलसंसारिराशितत्र्यवामरुगळप्परु १३–। प्रथमपृथ्वियोळु गुणप्रतिपन्नराशित्रयहीनघनांगुलद्वितीयमूलगुणजगच्छ्रेणियोळु साधिकद्वादशांशविहीनमात्रं वामरुगळप्परु –२–१२। द्वितीयपृथ्वियोळु गुणप्रतिपन्नराशित्रयविहीन निजद्वादशमूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं वामरुगळप्पु १२ तृतीयपृथ्वियोळु निजदशममूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं गुणप्रतिपन्नरुगळिदं किंचिदूनमक्कु १० चतुर्थपृथ्वियोळु गुणप्रतिपन्नरुगळिदं विहीन ८ निजाष्टममूल

जगच्छ्रेणिः। सनत्कुमारद्वयादिपञ्चयुग्मेषु किंचिदूना क्रमशो निजैकादशमनवमसप्तमपञ्चमचतुर्थमूलभक्तजगच्छ्रेणिः, ऊनतात्र हाराधिका ज्ञेया। ज्योतिष्के पण्णट्ठिप्रतराङ्गुलभक्तः व्यन्तरसंख्यातप्रतराङ्गुलभक्तश्च जगत्प्रतरः किंचिदूनः। भवनवासिषु किंचिदूना घनाङ्गुलप्रथममूलहतजगच्छ्रेणि.। तिर्यक्षु किंचिदूनः सर्वतिर्यग्राशि. १३–। प्रथमपृथिव्या किंचिदूना घनाङ्गुलद्वितीयमूलगुणहतजगच्छ्रेणिः साधिकद्वादशांशोना –२=१/१२ । द्वितीयादि-

देवोंमें कुछ कम देवराशि प्रमाण मिथ्यादृष्टि होते हैं। सौधर्मयुगलमें घनांगुलके तृतीय वर्गमूलसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाणमें-से कुछ कम मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण है। सानत्कुमार आदि पाँच युगलोंमें क्रमसे जगतश्रेणिके ग्यारहवें, नौवें, सातवें, पाँचवें और चौथे वर्गमूलका भाग जगतश्रेणिमें देनेसे जो प्रमाण आवे उसमें कुछ-कुछ कम मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण है। यहाँ कमीका कारण भागहारकी अधिकता जानना। ज्योतिषीदेवोंमें पण्णट्ठिप्रमाण प्रतरांगुलसे और व्यन्तरोंमें संख्यात प्रतरांगुलसे जगत्प्रतरमें भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसमें कुछ कम मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण है। भवनवासियोंमें घनांगुलके प्रथम वर्गमूलसे गुणित जगत्श्रेणि प्रमाणमें कुछ कम मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण है। तिर्यंचोंमें कुछ कम सर्वतिर्यंचराशि प्रमाण मिथ्यादृष्टि हैं। प्रथम पृथिवीमें घनांगुलके दूसरे वर्गमूलसे कुछ अधिक बारहवें भागसे हीन जगतश्रेणिको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतने सब नारकी हैं उनसे कुछ कम मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण है। द्वितीयादि पृथिवियोंमें क्रमसे जगतश्रेणिके बारहवें,

भक्तजगच्छ्रेणिमात्रं वामरुगळप्परु $\overline{८}$ । पंचमपृथ्वियोळ् गुणप्रतिपन्नराशित्रयविहीननिज-षष्ठमूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं वामरुगळप्परु । $\overline{६}$ । षष्ठपृथ्वियोळ् गुणप्रतिपन्नराशित्रयविहीननिज-तृतीयमूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं वामरुगळप्पुरु $\overline{३}$ । सप्तमपृथ्वियोळ् गुणप्रतिपन्नराशित्रयविहीन-निजद्वितीयमूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं वामरुगळप्परु । $\overline{२}$ । आनतादिगळोळ् कंठोक्तमागि पेळल्पट्टरु । सर्व्वार्त्थसिद्धिविमानाहमिंद्ररु असंयतसम्यग्दृष्टिगळु । 'तिगुणा सत्तगुणा वा सव्वट्ठा माणुसी पमाणादो' एंदितु संख्यातमप्परु ४२ = ४२ = ४२-३ । ३ । ७॥ मनुष्यगतियोळु देशसंयतादिगळं पेळ्दपं :—

तेरसकोडीदेसे वावण्णं सासणे मुणेदव्वा ।
मिस्साविय तद्दुगुणा असंजदा सत्तकोडिसया ॥६४२॥

त्रयोदशकोट्यो देशसंयते द्विपंचाशत्कोटयः सासादने ज्ञातव्याः । मिश्राश्चापि तद्द्विगुणा भवंति असंयताः सप्तकोटिशताः ॥

मनुष्यगतियोळु देशसंयतरु पदिमूरु कोटिगळप्परु । १३ को । सासादनरु द्विपंचाशत्कोटि-गळप्परु । ५२ को । मिश्ररुगळु तद्द्विगुणमप्परु १०४ को । असंयतसम्यग्दृष्टिगळु सप्तकोटिशत-प्रमितरप्परु ७०० को । प्रमत्तादिसंख्ये मुन्नमे पेळल्पट्टुदु ।

पृथ्वीषु किंचिदूना क्रमशो निजद्वादशदशमाष्टमषष्ठतृतीयमूलभक्तजगच्छ्रेणिः । आनतादिषु कण्ठोक्तयोक्ता । सर्वार्थसिद्धावहमिन्द्रा असंयता एव । ते च मानुषीप्रमाणात्रिगुणाः सप्तगुणा वा भवन्ति ॥६४१॥ मनुष्यगतावाह—

देशसंयते त्रयोदशकोट्यो मन्तव्याः । १३ को । सासादने द्विपञ्चाशत् कोट्यः ५२ को । मिश्रे ततो द्विगुणा १०४ को । असंयते सप्त शतकोट्यः ७०० को । प्रमत्तादीनां संख्या तु प्रागुक्ता ॥६४२॥

दसवें, आठवें, छठे, तीसरे और दूसरे वर्गमूलका भाग जगतश्रेणिमें देनेसे जो-जो प्रमाण आवे उसमें कुछ-कुछ कम मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण है । यहाँ जो अपनी-अपनी समस्त राशिमें कुछ कम किया है सो दूसरे आदि गुणस्थानवाले जीवोंके प्रमाणको घटानेके लिए किया है क्योंकि मिथ्यादृष्टियोंकी तुलनामें उनका परिमाण बहुत अल्प है । आनतादिमें मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण पहले कहा ही है । सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र असंयत सम्यग्दृष्टि ही है । मानुषियोंके प्रमाणसे उनका प्रमाण तिगुना और किन्हींके मतसे सात गुणा कहा है ॥६४१॥

मनुष्यगतिमें कहते हैं—

मनुष्य देशसंयत गुणस्थानमें तेरह कोटि जानना । सासादनमें बावन कोटि जानना । मिश्रमें उससे दुगुने अर्थात् एक सौ चार कोटि जानना । असंयतमें सात सौ कोटि जानना । प्रमत्त आदिकी संख्या पहले कही है ॥६४२॥

जीविदरे कम्मचये पुण्णं पावोत्ति होदि पुण्णं तु ।
सुहपयडीणं दव्वं पावं असुहाण दव्वं तु ॥६४३॥

जीवेतरस्मिन् कर्म्मचये पुण्यं पापमिति भवति पुण्यंतु । शुभप्रकृतीनां द्रव्यं पापमशुभानां द्रव्यं तु ॥

जीवपदार्त्थमं पेळ्वल्लि सामान्यदिदं गुणस्थानंगळोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्त्तिगळं सासादनगुणस्थानवर्त्तिगळं पापजीवंगळु । मिश्रगुणस्थानवर्त्तिगळु पुण्यपापमिश्रजीवंगळेकेंदोडे सम्यक्त्वमिथ्यात्वमिश्रपरिणामिगळप्पुदरिंदमसंयतगुणस्थानवर्त्तिगळ् पुण्यजीवंगळेकेंदोडे सम्यक्त्वसंयुक्तजीवंगळप्पुदरिंदं देशसंयतगुणस्थानवर्त्तिगळं सम्यक्त्वमुमेकदेशव्रतंगळोळु कूडिदवप्पुदरिंदं पुण्यजीवंगळप्परु । प्रमत्ताद्ययोगिकेवलिगुणस्थानवर्त्तिगळनितुं पुण्यजीवंगळें दितु पेळ्दनंतरमजीवपदार्त्थमं पेळ्वल्लि कर्म्मचयदोळु कार्म्मणस्कंधदोळु पुण्यमें दुं पापमें दुमजीवपदार्त्थमेरडु भेदमक्कुमल्लि पुण्यमें बुदावुदें दोडे मत्ते शुभप्रकृतिगळ द्रव्यमक्कुमा शुभप्रकृतिगळावुवेंदोडे सद्वेद्यमुं शुभायुष्यंगळुं शुभनामकर्म्मप्रकृतिगळुमुच्चैर्ग्गोत्रमें बिवु शुभप्रकृतिगळें बुवक्कुं । पापमें बुदावुदें दोडे अशुभकर्म्मप्रकृतिगळ द्रव्यमक्कुमा अशुभप्रकृतिगळेंबुवावुवेंदोडे अतोन्यत्पापमें बी सूत्राभिप्रायदिदमसद्वेद्यमुं नरकायुष्यमुं नीचैर्ग्गोत्रमुमशुभनामकर्म्मप्रकृतिगळुमें बिवशुभप्रकृतिगळेंबुवक्कुं ।

आसवसंवरदव्वं समयपबद्धं तु णिज्जरादव्वं ।
तत्तो असंखगुणिदं उक्कस्सं होदि णियमेण ॥६४४॥

आस्रवसंवरद्रव्यं समयप्रबद्धस्तु निर्ज्जराद्रव्यं । ततोऽसंख्यगुणितमुत्कृष्टं भवति नियमेन ॥

जीवपदार्थप्रतिपादने सामान्येन गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टयः सासादनाश्च पापजीवाः । मिश्राः पुण्यपापमिश्रजीवाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वमिश्रपरिणामपरिणतत्वात् । असंयताः सम्यक्त्वेन, देशसंयताः सम्यक्त्वेन देशव्रतेन च प्रमत्तादयः सम्यक्त्वेन व्रतेन च युतत्वात् पुण्यजीवा एव इत्युक्ताः । अनन्तरं अजीवपदार्थप्ररूपणे कर्मचये—कार्मणस्कन्धे पुण्यं पापमिति अजीवपदार्थो द्वेधा । तत्र शुभप्रकृतीनां सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणां द्रव्यं पुण्यं भवति । अशुभानां असद्वेद्यादिसर्वाप्रशस्तप्रकृतीनां द्रव्यं तु पुनः पापं भवति ॥६४३॥

जीवपदार्थ सम्बन्धी सामान्य कथनके अनुसार गुणस्थानोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादन तो पापी जीव हैं। मिश्रगुणस्थानवाले पुण्यपापरूप मिश्र जीव हैं क्योंकि उनके सम्यक् मिथ्यात्वरूप मिश्र परिणाम होते हैं। असंयत सम्यक्त्वसे युक्त हैं, देशसंयत सम्यक्त्व और देशव्रतसे युक्त हैं इसलिए ये तो पुण्यात्मा जीव ही हैं और प्रमत्तादि तो पुण्यात्मा हैं ही। इसके अनन्तर अजीव पदार्थका प्ररूपण करते हैं—कार्मण-स्कन्ध पुण्यरूप भी होता है और पापरूप भी होता है इस प्रकार अजीव पदार्थके दो भेद हैं। उनमें सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभनाम और उच्चगोत्र ये शुभ प्रकृतियाँ हैं इनका द्रव्य पुण्यरूप है। असातावेदनीय आदि सब अप्रशस्त प्रकृतियोंका द्रव्य पाप है ॥६४३॥

आस्रवद्रव्यमुं संवरद्रव्यमुं प्रत्येकं समयप्रबद्धमक्कुं निर्ज्जराद्रव्यमुं तु मत्ते समयप्रबद्धमं नोडलुमसंख्यातगुणितमुत्कृष्टमक्कुं नियमदिदं ।

बंधो समयपबद्धो किंचूणदिवड्ढमेत्तगुणहाणी ।
मोक्खो य होदि एवं सद्दहिदव्वा दु तच्चट्ठा ॥६४५॥

बंधः समयप्रबद्धः किंचिद्वूनद्वयर्द्धमात्रगुणहानिर्म्मोक्षश्च भवत्येवं श्रद्धातव्यास्तु तत्वार्त्थाः ॥ तु मत्ते बंधमुं समयप्रबद्धमेयक्कुं । मोक्षद्रव्यं किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धंगळप्पुवेंदितु तत्वार्थंगळु श्रद्धातव्यंगळप्पुवु ।

अनंतरं सम्यक्त्वभेदमं पेळ्वपं :—

खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई ।
तक्खाइयसम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदू ॥६४६॥

क्षीणे दर्शनमोहे यच्छ्रद्धानं भवति सुनिर्म्मलं । तत्क्षायिकसम्यक्त्वं नित्यं कर्म्मक्षपणहेतुः ॥ मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिगळुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुं करणलब्धिपरिणामसामर्थ्यदिदं क्षीणमागुत्तं विरलु आवुदोंदु श्रद्धानं सुनिर्म्मलमक्कुमदु क्षायिकसम्यग्दर्शनमेंबुदक्कुमा क्षायिकसम्यग्दर्शनं नित्यं नित्यमक्कुमेकेंदोडे प्रतिपक्षकर्म्मप्रक्षयदिदं पुट्टिदात्मगुणविशुद्धिरूपसम्यग्दर्शनमक्षयमप्पुदरिदं प्रतिसमयं गुणश्रेणिकर्म्मनिर्ज्जराकारणमक्कुमंते पेळल्पट्टुदु ।

दंसणमोहक्खविदे सिज्झदि एक्केव तदियतुरियभवे ।
णादिक्कदि तुरिय भवं ण विणस्सदि सेस सम्मं व ॥

आस्रवद्रव्यं संवरद्रव्यं च समयप्रबद्धः । निर्जराद्रव्यं तु पुनः उत्कृष्टं समयप्रबद्धान्नियमेनासंख्यातगुणं भवति ॥६४४॥

तु—पुनः बन्धोऽपि समयप्रबद्ध एव । मोक्षद्रव्यं किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धं भवतीति एवं तत्त्वार्थाः श्रद्धातव्याः ॥६४५॥ अथ सम्यक्त्वभेदमाह—

मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतित्रये अनन्तानुबन्धिचतुष्टये च करणलब्धिपरिणामसामर्थ्यात् क्षीणे सति यच्छ्रद्धानं सुनिर्मलं भवति तत्क्षायिकसम्यग्दर्शनं नाम । तच्च नित्यं स्यात् प्रतिपक्षप्रक्षयोत्पन्नात्मगुणत्वात् । पुनः प्रतिसमयं गुणश्रेणिनिर्जराकारणं भवति । तथा चोक्तं—

आस्रवद्रव्य और संवरद्रव्य प्रबद्ध प्रमाण है। किन्तु उत्कृष्ट निर्जराद्रव्य समयप्रबद्धसे नियमसे असंख्यातगुणा होता है ॥६४४॥

बन्धद्रव्य भी समयप्रबद्ध प्रमाण ही है। और मोक्षद्रव्य किंचित् हीन डेढ गुण हानिसे गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण होता है। इस प्रकार तत्त्वार्थोंका श्रद्धान करना चाहिए ॥६४५॥

आगे सम्यक्त्वके भेद कहते हैं—

करणलब्धि रूप परिणामोंकी सामर्थ्यसे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन तीन दर्शनमोहके तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभके क्षय होनेपर जो अत्यन्त निर्मल श्रद्धान होता है उसका नाम क्षायिक सम्यग्दर्शन है। वह नित्य है; क्योंकि प्रतिपक्षी कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होनेके साथ आत्माका गुण है। तथा प्रतिसमय गुणश्रेणि

दर्शनमोहं क्षपिसल्पडुत्तिरलु तद्भवदोळे सिद्धिसुगुं मेणु तृतीयचतुर्थभवंगळोळु कर्म्मंक्षयमं माळ्कुं। नाल्कनेय भवमनतिक्रमिसुवुवल्ल शेषसम्यक्त्वगळंते किडुवुदुमल्लमदु कारणदिदं नित्यमेंदु पेळल्पट्टुदु साद्यक्षयानंतमेंबुदर्त्थमनंतरमीयर्त्थमने पेळ्दपं :—

वयणेहि वि हेदूहि वि इंदियभयआणएहि रूवेहिं ।
वीभच्छजुगुंछाहि य तेलोक्केण वि ण चालेज्जो ॥६४७॥

वचनैरपि हेतुभिरपींद्रियभयानकैः रूपैः। बीभत्स्यजुगुप्साभिश्च त्रैलोक्येनापि न चालनीयं ॥

कुत्सितोक्तिगळिवमुं कुहेतुदृष्टांतंगळिवमुं इंद्रियंगळ्गे भयंकरंगळिवमुं विकृतवेषंगळिवमुं बीभत्स्यंगळत्तणिवप्प जुगुप्सेगळिवमुं किं बहुना त्रैलोक्येनापि मूरुं लोकदिवमुं क्षायिकसम्यक्त्वं चलिसल्पडदु। अंतप्प क्षायिकसम्यग्दर्शनमारगंक्कुमें दोडे पेळ्दपरु :—

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु ।
मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ॥६४८॥

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्म्मभूमिजातस्तु मनुष्यः केवलिमूले निष्ठापको भवति सर्व्वत्र ॥

दर्शनमोहक्षपणाप्रारंभकं मत्ते कर्म्मभूमिजनक्कुमिल्लियुं मनुष्यनेयक्कुमादोडं केवलिश्रीपाद-मूलदोळु दर्शनमोहक्षपणाप्रारंभमं माळ्कुं। चतुर्गतिगळोळेल्लियादोडं निष्ठापिसुगु।

अनंतरं वेदकसम्यक्त्वस्वरूपमं पेळ्दपं—

दर्शनमोहे क्षपिते सति तस्मिन्नेव भवे वा तृतीयभवे वा चतुर्थभवे कर्मक्षयं करोति चतुर्थभव नातिक्रामति। शेषसम्यक्त्ववन्न विनश्यति। तेन नित्यमित्युक्तं। साद्यक्षयानन्तमित्यर्थः। अमुमेवार्थमाह—

कुत्सितोक्तिभिः—कुहेतुदृष्टान्तैः इन्द्रियभयोत्पादकविकृतवेषैः वीभत्स्यवस्तूत्पन्नजुगुप्साभिः किं बहुना त्रैलोक्येनापि क्षायिकसम्यक्त्वं न चालयितुं शक्यम् ॥६४७॥ तत्सम्यग्दर्शनं कस्य भवेत् ? इति चेदाह—

दर्शनमोहक्षपणाप्रारम्भकः कर्मभूमिज एव सोऽपि मनुष्य एव तथापि केवलिश्रीपादमूले एव भवति। निष्ठापकस्तु सर्वत्र चतुर्गतिषु भवति ॥६४८॥ अथ वेदकसम्यक्त्वस्वरूपमाह—

निर्जराका कारण होता है। कहा है—दर्शन मोहका क्षय होनेपर उसी भवमें या तीसरे अथवा चौथे भवमें कर्मोंका क्षय करके मुक्ति प्राप्त करता है। चतुर्थ भवका अतिक्रमण नहीं करता। और न अन्य सम्यक्त्वोंकी तरह नष्ट ही होता है। इसीसे इसे नित्य कहा है। अर्थात् यह सादि अक्षयानन्त होता है ॥६४६॥

इसी बातको कहते हैं—

कुत्सित वचनोंसे, मिथ्याहेतु और दृष्टान्तोंसे, इन्द्रियोंको भय उत्पन्न करनेवाले भयंकर रूपोंसे, घिनावनी वस्तुओंसे उत्पन्न हुई ग्लानिसे, बहुत कहनेसे क्या, तीनों लोकोंके द्वारा भी क्षायिक सम्यक्त्वको विचलित नहीं किया जा सकता ॥६४७॥

वह क्षायिक सम्यग्दर्शन किसके होता है यह कहते हैं—

दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ मनुष्य ही केवलीके पाद-मूलमें ही करता है। किन्तु निष्ठापक चारों गतियोंमें होता है ॥६४८॥

आगे वेदक सम्यक्त्वका स्वरूप कहते हैं—

1. म°मल्तदु।

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
चलमलिणमगाढं तं वेदयसम्मत्तमिदि जाणे ॥६४९॥

दर्शनमोहोदयादुत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानं । चलमलिनमगाढं तद्वेदकसम्यक्त्वमिति जानीहि ॥

दर्शनमोहनीयमप्प सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमागुत्तिर्दोडमावुदों दु तत्वार्थश्रद्धानं पुट्टुगुमदु चलमलिनमगाढमक्कुमदं वेदकसम्यक्त्वमें दितु एले शिष्यने नीनरि ।

अनंतरमुपशमसम्यक्त्वस्वरूपमुमं तत्सामग्रिविशेषमुमं गाथात्रयदिदं पेळ्दपं :—

दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णमलपंकतोयसमं ॥६५०॥

दर्शनमोहोपशमतः उत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानं । उपशमसम्यक्त्वमिदं प्रसन्नमलपंकतोयसमं ॥

अनंतानुबंधिचतुष्टयोदयाभावलक्षणाप्रशस्तोपशमदिदं दर्शनमोहत्रयप्रशस्तोपशमदिदं प्रसन्नमलपंकतोयसमानमप्पुदावुदों दु पदार्थश्रद्धानं पुट्टुगुमदु उपशमसम्यक्त्वमें दु परमागमदोळु पेळल्पट्टुदु ।

खयउवसमियविसोही देसणपाओग्गकरणलद्धी य ।
चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होदि सम्मत्ते ॥६५१॥

क्षायोपशमिकविशुद्धिदेशना प्रायोग्यकरणलब्धयश्चतस्रः सामान्याः करणलब्धिः पुनः सम्यक्त्वे भवति ॥

क्षयोपशमदोळावलब्धियुं विशुद्धिलब्धियुं देशनाप्रायोग्यकरणलब्धिगळुमें दितु लब्धिपंचकमुपशमसम्यक्त्वदोळप्पुववरोळु मोदल नाल्कु लब्धिगळु भव्यनोळमभव्यनोळमप्पुवप्पुदरिदं

दर्शनमोहनीयस्य सम्यक्त्वप्रकृतेः उदये सति यत्तत्त्वार्थश्रद्धानं चलं मलिनं अगाढं चोत्पद्यते तद्वेदकसम्यक्त्वमिति जानीहि ॥६४९॥ अथोपशमसम्यक्त्वस्वरूपं तत्सामग्रीविशेषं च गाथात्रयेण आह—

अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य दर्शनमोहत्रयस्य च उदयाभावलक्षणाऽप्रशस्तोपशमेन प्रसन्नमलपङ्कतोयसमानं यत्पदार्थश्रद्धानमुत्पद्यते तदिदमुपशमसम्यक्त्वं नाम ॥६५०॥

क्षायोपशमिकविशुद्धिदेशनाप्रायोग्यताकरणनाम्न्यः पञ्चलब्धयः उपशमसम्यक्त्वे भवन्ति । तत्र आद्याः

दर्शनमोहनीयकी सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेपर जो तत्त्वार्थ श्रद्धान चल, मलिन वा अगाढ़ होता है उसे वेदक सम्यक्त्व जानो ॥६४९॥

उपशम सम्यक्त्वका स्वरूप और उसकी विशेष सामग्री तीन गाथाओंसे कहते हैं—

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और दर्शन मोहकी मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन तीनके उदयका अभाव लक्षणरूप प्रशस्त उपशमसे मलपंक नीचे बैठ जानेसे निर्मल हुए जलकी तरह जो पदार्थ श्रद्धान उत्पन्न होता है उसका नाम उपशम सम्यक्त्व है ॥६५०॥

क्षायोपशमिकलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि ये पाँच लब्धियाँ उपशमसम्यक्त्व होनेसे पूर्व होती हैं। इनमें-से आदिकी चार लब्धियाँ सामान्य

साधारणंगळेप्पुवु । करणलब्धि भव्यनोळेयप्पुदरिंदं सम्यक्त्वग्रहणदोळं चारित्रग्रहणदोळमक्कुं ।

अनंतरमी युपशमसम्यक्त्वमं कैकोंब जीवनं पेळ्वपरु :—

चउगइ भव्वो सण्णी पज्जत्तो सुज्झगो य सागारो ।
जागारो सल्लेस्सो सलद्धिगो सम्ममुवगमइ ॥६५२॥

चतुर्गतिभव्यः संज्ञिपर्य्याप्तः शुद्धश्च साकारः । सल्लेश्यो जागरिता सलब्धिकः सम्यक्त्वमुपगच्छति ॥

चतुर्गतियभव्यनुं संज्ञियुं पर्य्याप्तकनुं विशुद्धनुं भेदग्रहणमाकारमें बुददरोळ्कूडिदनुमप्पुदरिंदं साकारनुं स्त्यानगृद्धयादिनिद्रात्रयरहितनुं भावशुभलेश्यात्रयदोळन्यतमलेश्यायुतनुं करणलब्धिपरिणतनुमितप्प जीवं यथासंभवमप्प सम्यक्त्वमं पोद्दुगुं ।

चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं ।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥६५३॥

चतुर्णां क्षेत्राणामायुर्बंधेन भवति सम्यक्त्वं । अणुव्रतमहाव्रतानि न लभते देवायुष्कं मुक्त्वा ॥

नारकायुष्यमुमं तिर्य्यगायुष्यमुमं मनुष्यायुष्यमुमं देवायुष्यमुमं परभवायुष्यंगळं कट्टिद बद्धायुष्यरुगळप्प जीवंगळु सम्यक्त्वमं स्वीकरिसुवरल्लि दोषमिल्लमणुव्रतमहाव्रतंगळं पडेयल्के नेरेयरल्लि, देवायुबंधमाद जीवंगळु अणुव्रतमहाव्रतंगळं स्वीकरिसुवरु ।

चतस्रोऽपि सामान्या भव्याभव्ययो संभवात् । करणलब्धिस्तु भव्य एव स्यात् तथापि सम्यक्त्वग्रहणे चारित्रग्रहणे च ॥६५१॥ अथोपशमसम्यक्त्वग्रहणयोग्यजीवमाह—

य चतुर्गतिभव्यः संज्ञो पर्याप्तक. विशुद्धः आकारेण भेदग्रहणेन सहित. स्त्यानगृद्धयादिनिद्रात्रयरहितः भावशुभलेश्यात्रये अन्यतमलेश्यः करणलब्धिपरिणतः स जीवो यथासंभवं सम्यक्त्वमुपगच्छति ॥६५२॥

चतुर्णां परभवायुषा एकतमबन्धेन जातबद्धायुष्कस्य सम्यक्त्वं भवत्यत्र दोषो नास्ति । अणुव्रतमहाव्रतानि तु एकं बद्धदेवायुष्कं मुक्त्वा नान्ये लभन्ते ॥६५३॥

है भव्य और अभव्य दोनोंके होती हैं । किन्तु अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण परिणाम रूप करणलब्धि भव्यके ही होती है । वह भी सम्यक्त्व और चारित्र ग्रहणके समय होती है ॥६५१॥

उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेके योग्य जीवको कहते हैं—

जो चारों गतियोंमें-से किसी भी गतिमें वर्तमान है किन्तु भव्य, पर्याप्तक, विशुद्ध, साकार उपयोगवाला, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओंसे रहित अर्थात्, तीन शुभ भाव लेश्याओंमें-से किसी एक लेश्याका धारक और करणलब्धि रूप परिणत होता है वह जीव यथासम्भव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है ॥६५२॥

परभव सम्बन्धी चारों आयुओंमें-से किसी भी एक आयुका बन्ध कर लेनेपर जो जीव बद्धायु हो गया है उसके सम्यक्त्व उत्पन्न होनेमें कोई दोष नहीं है । किन्तु अणुव्रत और महाव्रत एक बद्धदेवायु—जिसने परभव सम्बन्धी देवायुका बन्ध किया है—को छोड़कर अन्य आयुका बन्ध कर लेनेवाले बद्धायुष्कके नहीं होते ॥६५३॥

ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो य परिवडिदो ।
सो सासणोत्ति णेयो पंचमभावेण संजुत्तो ॥६५४॥

न च मिथ्यात्वं प्राप्तः सम्यक्त्वतश्च यश्च परिपतितः । सासादन इति ज्ञेयः पंचमभावेन संयुक्तः ॥

आवनोर्व्वं जीवनु सम्यक्त्वविंदं बळिचि मिथ्यात्वमं पोर्द्दंवन्नेवरमिर्प्पंवन्नेवरमा जीवं सासादननें बितरियल्पडुवं । दर्शनमोहनीयोदयोपशमादिनिरपेक्षापेक्षेयिंदं पारिणामिकभावदोळ्कूडिदनुमप्पनेकें दोडे चारित्रमोहनीयापेक्षेयिनातंगौदयिकभावमप्पुदरिंदं ।

सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु ।
विरयाविरयेण समो सम्मामिच्छोत्ति णायव्वो ॥६५५॥

श्रद्धानाश्रद्धानं यस्य च जीवस्य भवति तत्त्वेषु । विरताविरतेन समः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः ।

जीवादिपदार्थंगळोळु आवनोर्व्वंजीवंगे श्रद्धानमुमश्रद्धानमुमोम्मों दलोळे संयतासंयतंगे तु संयममुमसंयममुमोम्मों दलोळेयक्कुमंते । मिश्रनोळु तत्वार्थश्रद्धानमुमतत्वार्थश्रद्धानमुमोम्मों दलोळेयक्कुमप्पुदरिंना जीवं सम्यग्मिथ्यादृष्टियें दितरियल्पडुवं ।

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥६५६॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्धधाति । श्रद्धधात्यसद्भावमुपदिष्टं वाऽनुपदिष्टं ॥

मिथ्यादृष्टिजीवं उपदेशं गेय्यल्पट्टाप्तागमपदार्थंगळं नंबुवनल्लं । उपदेशं गेयल्पट्टुमनुपदेशं गेय्यल्पडदुदुमनसद्भावमननाप्तागमपदार्थंगळं नंबुवं ।

यो जीवः सम्यक्त्वात्पतितो मिथ्यात्वं यावन्न प्राप्तः तावत् सासादन इति ज्ञेयं स च दर्शनमोहनीयस्यैवापेक्षया पारिणामिकभावेन सहितः, चारित्रमोहनीयापेक्षया तस्यौदयिकभावसद्भावात् ॥६५४॥

जीवादिपदार्थेषु यस्य जीवस्य श्रद्धानमश्रद्धानं च युगपदेव देशसंयमस्य संयमासंयमवद्भवति स जीवः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः ॥६५५॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टान् आप्तागमपदार्थान् न श्रद्दधाति । उपदिष्टान् अनुपदिष्टांश्च असद्भावान् अनाप्तागमपदार्थान् श्रद्दधाति ॥६५६॥ अथ सम्यक्त्वमार्गणायां जीवसंख्या गाथात्रयेणाह—

जो जीव सम्यक्त्वसे गिरकर जबतक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होता तबतक उसे सासादन जानना। वह दर्शन मोहनीयकी अपेक्षा ही पारिणामिक भाववाला होता है। चारित्र मोहनीयकी अपेक्षा तो अनन्तानुबन्धीका उदय होनेसे औदयिक भाववाला है॥६५४॥

जैसे देशसंयमीके एक साथ संयम और असंयम दोनों होते हैं वैसे ही जिस जीवके जीवादि पदार्थोंमें श्रद्धान और अश्रद्धान दोनों ही एक साथ होते हैं वह जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि जानना ॥६५५॥

मिथ्यादृष्टि जीव जिन भगवान्के द्वारा कहे गये आप्त, आगम और पदार्थोंका श्रद्धान नहीं करता। किन्तु कुदेवोंके द्वारा उपदिष्ट और अनुपदिष्ट असमीचीन मिथ्या आप्त, मिथ्या आगम और मिथ्या पदार्थोंका श्रद्धान करता है ॥६५६॥

अनंतरं सम्यक्त्वमार्ग्गणेयोळु जीवसंख्येयं गाथात्रयदिदं पेळ्दपं—

वासपुधत्ते खयिया संखेज्जा जइ हवंति सोहम्मे ।
तो संखपल्लठिदिए केवडिया एवमणुपादे ॥६५७॥

वर्षपृथक्त्वे क्षायिकाः संख्येया भवंति सौधर्म्मे । तर्हि संख्यपल्यस्थितिके कियन्त एवमनुपाते ॥

वर्षपृथक्त्वदोळु क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळु संख्यातप्रमितरु सौधर्म्मकल्पद्वयदोळु पुट्टुवरंतादोडे संख्यातपल्यस्थितिकनोळु एनिबरु क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्परेंदितनुपातत्रैराशिकमं माडुत्तिरलु प्रवर्ष ७ फ । क्षा= ७ । इ । प ७ । बंद लब्धमेनितक्कुमेंदोडे :—
८

संखावलिहिदपल्ला खइया तत्तो य वेदगुवसमया ।
आवलि असंखगुणिदा असंखगुणहीणया कमसो ॥६५८॥

संख्यातावलिहृतपल्याः क्षायिकाः ततश्च वेदकोपशमकाः । आवल्यसंख्यगुणिताः असंख्यगुणहीनकाः क्रमशः ॥

संख्यातावलिगळिदं भागिसल्पट्ट पल्यप्रमितरु क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्परु प / २७ मा क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळं नोडलु वेदकसम्यग्दृष्टिगळुमुपशमसम्यग्दृष्टिगळुं क्रमदिदमावल्यसंख्यातगुणितप्रमाणरुमसंख्यातगुणहीनरुमप्परु वे प ० / २१ उ = प / २१ ०

यदि वर्षपृथक्त्वे क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संख्याताः सौधर्मद्वये उत्पद्यन्ते तर्हि संख्यातपल्यस्थितिके कति इत्यनुपाते त्रैराशिके कृते प्रवर्ष ७ फ क्षा = १ । इ प १ लब्धाः ॥६५७॥
८

संख्यातावलिभक्तपल्यमात्रकाः क्षायिकसम्यग्दृष्टयो भवन्ति प / २१ । तेभ्यः वेदकोपशमसम्यग्दृष्टयः क्रमेण आवल्यसंख्यातगुणितासंख्यातगुणहोना भवन्ति । वे = प ० / २१ उ = प / २१ ० ॥६५८॥

सम्यक्त्वमार्गणामें जीवोंकी संख्या तीन गाथाओंसे कहते हैं—

यदि वर्षपृथक्त्व कालमें सौधर्मयुगलमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि संख्यात उत्पन्न होते हैं तो संख्यात पल्यकी स्थितिमें कितने उत्पन्न होते हैं ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि वर्षपृथक्त्व, फलराशि संख्यात जीव और इच्छाराशि संख्यात पल्य । सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके उसमें प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो लब्ध आया वह कहते हैं ॥६५७॥

संख्यातआवलीसे भाजित पल्यप्रमाण क्षायिकसम्यग्दृष्टि होते हैं । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंकी संख्याको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी संख्या होती है । तथा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यातगुणे हीन उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥६५८॥

पल्लासंखेज्जदिमा सासणमिच्छा य संखगुणिदा हु ।
मिस्सा तेहिं विहीणो संसारी वामपरिमाणं ॥६५९॥

पल्यासंख्यातैकभागाः सासादनमिथ्यादृष्टयश्च संख्यातगुणिताः खलु । मिश्राः तैर्विहीनः संसारी वामपरिमाणं ॥

पल्यासंख्यातैकभागप्रमितरु सासादनमिथ्यारुचिगळप्परु प / ० ० ४ मा सासादनरं नोडलु सम्यग्मिथ्यादृष्टिगळु संख्यातगुणितमात्ररप्पुरु प / ० ० स्फुटमागि ई राशिपंचकविहीनसंसारिराशि-वामरुगळ प्रमाणमक्कुं । वा १३– ।

नवपदार्त्थंगळ प्रमाणं पेळल्पडुगुं । जीवंगळु । १६ अजीवंगळु पुद्गलंगळु सर्व्वजीवराशियं नोडलनंतगुणमक्कुं । १६ ख । धर्म्मद्रव्यमोंदु १ । अधर्म्मद्रव्यमोंदु १ । आकाशद्रव्यमोंदु १ । कालद्रव्यं जगच्छ्रेणिघनप्रमितमक्कु ≡ मितजीवं गुंडि साधिकपुद्गलराशिप्रमितमक्कुं ३ / ≡ / १६ ख पुण्यजीवंगळु असंयतरुं देशसंयतरुं कूडि प्रमत्ताद्युपरितनगुणस्थानवर्त्तिगळं संख्यातविदं साधिकरप्परु प ० ० ४ / ० ० ० ४ अजीवपुण्यं द्व्यर्द्धगुणहानिसंख्यातैकभागमक्कु स ० –१२-१ / १ पापजीवंगळु साधिकसिद्धराशिविहीन संसारिराशिप्रमाणमप्परु १३ । अजीवपापं द्व्यर्द्धगुणहानिसंख्यातबहु-

---

पल्यासंख्यातैकभागमात्राः सासादनमिथ्यारुचयः प / ० ० ४ तेभ्यः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः प / ० ० स्फुट एतद्राशिपञ्चकोनसंसारराशिर्वामपरिमाणं भवति वा १३—नवपदार्थप्रमाणमुच्यते—

जीवाः १६ अजीवेषु पुद्गलाः सर्वजीवराशितोऽनन्तगुणाः १६ ख । धर्मद्रव्यमेकं । अधर्मद्रव्यमेकं । आकाशद्रव्यमेक । कालद्रव्यं जगच्छ्रेणिघनमात्रं । ≡ । एवमजीवपदार्थो मिलित्वा साधिकपुद्गलराशिमात्रः ३ / ≡ / १६ ख । पुण्यजीवा असंयतदेशसंयतान्मेलयित्वा तत्र प्रमत्तादीना संख्याते युते एतावन्तः प ० ० ४ / ० ० ० ४ अजीवपुण्यं द्व्यर्धगुणहानिसंख्यातैकभाग. स ० १२–१ / १ पापजीवाः साधिकपुण्यजीवसिद्धराशिविहीनसंसारिराशिः १३–।

पल्यके असंख्यातवें भाग सासादन होते हैं जिनकी रुचि मिथ्या होती है। उनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणे हैं। संसारी जीवोंकी राशिमेंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदक-सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादन और मिश्र इन पाँचकी राशियोंको घटानेपर मिथ्या-दृष्टियोंका परिमाण होता है। अब नौ पदार्थोंका परिमाण कहते हैं—जीव अनन्त हैं। अजीवोंमें पुद्गल समस्त जीवराशिसे अनन्तगुणा है। धर्मद्रव्य एक है। अधर्मद्रव्य एक है। आकाशद्रव्य एक है। कालद्रव्य जगतश्रेणिके घन अर्थात् लोकप्रमाण है। इस प्रकार अजीव पदार्थ सब मिलकर साधिक पुद्गलराशिप्रमाण है। असंयत और देशसंयतोंके प्रमाणको प्रमत्त आदिके प्रमाणमें मिलानेपर पुण्य जीवोंका प्रमाण होता है। डेढ़ गुण-हानि प्रमाण

भागमात्रमक्कुं स १२ १/१ आस्रवपदार्थं समयप्रबद्धप्रमाणमक्कुं स ∂ संवरद्रव्यमुं समयप्रबद्ध-
प्रमितमक्कुं। स ∂। निर्ज्जराद्रव्यमिदु स ∂ १२। ६४ / प। ८५ / ∂ ∂ बंधद्रव्यं समयप्रबद्धमक्कुं। स ∂ मोक्षद्रव्यं
द्व्यर्द्धगुणहानिप्रमितमक्कुं स ∂ १२-। संदृष्टि :—

सामान्यजीव १६　अजी = सा ३ / ३ / १६ ख　बंध स ∂

पुण्यजीव ∂ प ∂ ∂ ४ / १ १ १ ४　पु स ∂ १२। १ / ∂　मोक्ष सं ∂ १२

पापजीव १३ =　पाप ∂ १२-१

आस्र स ∂

संव स ∂

निर्ज्ज स ∂ १२ = ६४ / प। ८५। / ∂

अजीवपापं द्व्यर्धगुणहानिसंख्यातबहुभागः स ∂ १२- १/१ आस्रवपदार्थः समयप्रबद्धः स ∂। संवरद्रव्यं समयप्रबद्धः स ∂। निर्जराद्रव्यमेतावत्- स ∂ १२-। ६४ / ऊ प ८५ / ∂ बन्धद्रव्यं समयप्रबद्धः स ∂। मोक्षद्रव्यं किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिः स ∂ १२- ॥६५९॥

---

१० समय प्रबद्धोंमें-से संख्यातवें भाग अजीवपुण्यका परिमाण है। संसारी राशिमें-से मिश्रकी अपेक्षा कुछ अधिक पुण्यजीवोंके प्रमाणको घटानेसे पापजीवोंका प्रमाण होता है। डेढ़ गुण-हानिप्रमाण समयप्रबद्धोंमेंसे संख्यात बहुभाग अजीवपापका परिमाण है। आस्रव पदार्थ समयप्रबद्ध प्रमाण है। संवर द्रव्य समयप्रबद्ध प्रमाण है। निर्जराद्रव्य गुणश्रेणि निर्जराके उत्कृष्ट द्रव्यप्रमाण है। बन्धद्रव्य समयप्रबद्धप्रमाण है। मोक्षद्रव्य कुछ कम डेढ़ गुणहानि-
१५ प्रमाण है ॥६५९॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरुमंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितगोम्मटसारकर्णाटवृत्तिजीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु सप्तदशं सम्यक्त्वमार्गणामहाधिकारं व्याकृतमाय्तु ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचिताया गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्याया जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु सम्यक्त्वमार्गणाप्ररूपणानाम सप्तदशोऽधिकारः ॥१७॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से सम्यक्त्वमार्गणा प्ररूपणा नामक सत्रहवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

संज्ञिमार्गणा ॥१८॥

अनंतरं संज्ञिमार्गणाधिकारमं पेळदपं :—

णोइंदिय आवरणखओवसमं तज्जबोहणं सण्णा ।
सा जस्स सो दु सण्णी इदरो सेसिंदि अवबोहो ॥६६०॥

नोइंद्रियावरणक्षयोपशमस्तज्जनितबोधनं संज्ञा । सा यस्य स तु संज्ञी इतरः शेषेंद्रियावबोधः ॥

नोइंद्रियं मनस्तदावरणक्षयोपशमं संज्ञेयें बुदक्कुं । तज्जनितबोधनं मेणु संज्ञेयें बुदक्कुमा संज्ञे यावनोर्व्वं जीवंगुटक्कुमा जीवं संज्ञि यें बुदक्कुमितरनप्पसंज्ञिजीवं शेषेंद्रियंगळिंदमरिवनुळ्ळनक्कुं ।

सिक्खाकिरियुवदेशालावग्गाहिमणोवलंबेण ।
जो जीवो सो सण्णी तव्विवरीयो असण्णी दु ॥६६१॥

शिक्षाक्रियोपदेशाळापग्राहि मनोवलंबेन । यो जीवः स संज्ञी तद्विपरीतोऽसंज्ञी तु ॥

हिताहितविधिनिषेधात्मिका शिक्षा तद्ग्राही कश्चिन्मनुष्यादिः, करचरणचालनादिरूपा क्रिया । तद्ग्राही कश्चिदुक्षादिः, चर्म्मपुत्रिकादिनोपदिश्यमानवधविधानादिरुपदेशस्तद्ग्राही कश्चिद्गजादिः । श्लोकादिपाठः आलापस्तद्ग्राही कश्चिच्चकोरराजकीरादिः । एंदितु मनोवलंबनर्दिदं शिक्षाक्रियोपदेशालापग्राहकमावुदों दु जीवमदु संज्ञेयेंबुदक्कुं । तद्विपरीतलक्षणमनुळ्ळुदसंज्ञि-

निरस्तारिरजोविघ्नो व्यक्तानन्तचतुष्टयः ।
शतेन्द्रपूज्यपादाब्जः श्रियं दद्यादरो जिनः ॥१८॥

अथ संज्ञिमार्गणामाह—

नोइन्द्रियं मनः तदावरणक्षयोपशमः तज्जनितबोधनं वा संज्ञा सा विद्यते यस्य स संज्ञी इतरः असंज्ञी शेषेन्द्रियज्ञानः ॥६६०॥

हिताहितविधिनिषेधात्मिका शिक्षा । करचरणचालनादिरूपा क्रिया । चर्मपुत्रिकादिनोपदिश्यमानवधविधानादिरुपदेशः । श्लोकादिपाठ आलापः । तद्ग्राही मनोवलम्बेन यो मनुष्यः उक्षगजराजकीरादिजीवः स

संज्ञिमार्गणाको कहते हैं—

नोइन्द्रिय मनको कहते हैं। नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशमको अथवा उससे उत्पन्न हुए ज्ञानको संज्ञा कहते हैं। जिसके वह संज्ञा है वह संज्ञी है। मनके सिवाय अन्य इन्द्रियोंके ज्ञानसे युक्त जीव असंज्ञी होता है ॥६६०॥

हितका विधान और अहितका निषेध जो करती है वह शिक्षा है। हाथ-पैरके संचालनको क्रिया कहते हैं। चमड़ेकी पेटी आदिके द्वारा हिंसादि करनेके उपदेश देनेको उपदेश कहते हैं। श्लोक आदि पढ़नेको आलाप कहते हैं। जो मनुष्य या बैल, हाथी, तोता

1. म संज्ञियं जसमासंज्ञियाँ ।

जीवमें बुदक्कुं ।

मीमंसदि जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च ।
सिक्खदि णामेणेदि य समणो अमणो य विवरीदो ॥६६२॥

मीमांसति यः पूर्व्वं कार्य्यमकार्य्यं च तत्त्वमितरंच । शिक्षते नाम्नैति च समनाः अमनाश्च विपरीतः ॥

यः आवनोर्व्वं पूर्व्वं मुन्नमे कार्य्याकार्य्यंमं मीमांसति अरियलच्छैसुगुं । तत्वमितरं च शिक्षते तत्वमुममतत्वमुमनरिह्सुव शास्त्रंगळोळु प्रवर्तिसुगुं नाम्नैति च पेसरिदं करेदोडे बक्कुं आ जीवं समनाः समनस्कनक्कुं । विपरीतश्च विपरीतलक्षणममनुळ्ळुदु अमनाः अमनस्कजीवमक्कुं ।

संज्ञिमार्ग्गणेयोळ् जीवसंख्येयं पेळ्दपं :—

देवेहि सादिरेगो रासी सण्णीण होदि परिमाणं ।
तेणूणो संसारी सव्वेसिमसण्णिजीवाणं ॥६६३॥

देवैः सातिरेको राशिः संज्ञिनां भवति परिमाणं । तेनोनः संसारी सर्व्वेषामसञ्ज्ञिजीवानां ॥

चतुर्णिकायामरसामान्यराशि साधिकमादोडे संज्ञिजीवंगळ परिमाणमक्कु ॥ ० / = १ / ४ । ६५ = १ मी राशियिवं विहीनमप्प संसारिराशि सर्व्वं असंज्ञिजीवंगळ परिमाणमक्कुं । १३– ।

संज्ञी नाम । तद्विपरीतलक्षणः तु पुनः असंज्ञीनाम ॥६६१॥

यः पूर्वं कार्यमकार्यं च मीमांसति । तत्त्वमितरच्च शिक्षते । नाम्ना आहूत आयाति स जीवः समनाः समनस्को भवति । तद्विपरीतलक्षणः अमनाः अमनस्को भवति ॥६६२॥ अत्र जीवसंख्यामाह—

चतुर्निकायामरराशिः साधिकः संज्ञिप्रमाणं भवति = ॥ / १ / ४ । ६५ = १ तेनोनः सर्वसंसारिराशिः सर्वासंज्ञिपरिमाणं भवति १३– ॥६६३॥

आदि जीव मनके द्वारा शिक्षा आदि ग्रहण करते हैं वे संज्ञी हैं। जो ऐसा नहीं कर सकते वे असंज्ञी हैं ॥६६१॥

जो पहले कार्य-अकार्यका विचार करता है, तत्त्व और अतत्त्वको सीखता है, नाम लेकर पुकारनेपर चला आता है वह जीव मनसहित है। जो ऐसा नहीं कर सकता वह मनरहित है ॥६६२॥

चार प्रकारके देवोंका जितना प्रमाण है उससे कुछ अधिक संज्ञी जीवोंका प्रमाण है। सब संसारीराशिमें-से संज्ञी जीवोंके प्रमाणको घटानेपर समस्त असंज्ञी जीवोंका परिमाण होता है ॥६६३॥

१. म करवोडे ।

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्व वंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु भूमंडलाचार्य्यवर्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्तिजीवतत्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु अष्टदशसंज्ञिमार्ग्गणाधिकारं व्याख्यातमावुदु ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु संज्ञिमार्गणाप्ररूपणा नाम अष्टादशोऽधिकारः ।।१८।।

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डके अन्तर्गत बीस प्ररूपणाओंमें-से संज्ञिमार्गणा प्ररूपणा नामक अठारहवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥

आहार मार्गणा ॥१९॥

अनंतरं आहारमार्ग्गणेयं पेळ्वपं :—

उदयावण्णसरीरोदयेण तद्देहवयणचित्ताणं ।
णोकम्मवग्गणाणं गहणं आहारयं णाम ॥६६४॥

उदयापन्नशरीरोदयेन तद्देहवचनचित्तानां । नोकर्म्मवर्ग्गणानां ग्रहणमाहारो नाम ॥

औदारिकवैक्रियिक आहारकशरीरनामकर्म्मप्रकृतिगळोळों दानुमों दुदयमनेय्दुत्तिरलंतप्पुवरुदयदिंदमा शरीरमुं वचनमुं द्रव्यमनमुमें बी नोकर्म्मवर्ग्गणेगळ्गे ग्रहणमाहारमें बुदक्कुं ।

आहरदि सरीराणं तिण्हं एयदरवग्गणाओ य ।
भासामणाण णियदं तम्हा आहारयो भणिदो ॥६६५॥

आहरति शरीराणां त्रयाणामेकतरवर्ग्गणाश्च । भाषामनसोर्नियतं तस्मादाहारको भणितः ॥

औदारिकवैक्रियिक आहारकंगळें ब मूरुं शरीरंगळोळुदयक्के बंद एकतमशरीरवर्ग्गणेगळ्मं भाषामनोवर्ग्गणेगळ्मं नियतं नियतमें तप्पुवंते नियतजीवसमासदोळं नियतकालदोळं देहभाषामनोवर्ग्गणेगळं नियतमेहेंगेहंगे आहरति आहरिसुगुमें वितु[2] आहारकनें दु परमागमदोळ्पेळल्पट्टं ।

मल्लिफुल्लवदामोदो मल्लो मोहारिमर्दने ।
बहिरन्तःश्रियोपेतो मल्लिः शल्यहरोऽस्तु नः ॥१९॥

अथाहारमार्गणामाह—

औदारिकवैक्रियिकाहारकनामकर्मान्यतमोदयेन तच्छरीरवचनद्रव्यमनोयोग्यनोकर्मवर्गणानां ग्रहणं आहारो नाम ॥६६४॥

औदारिकादित्रिशरीराणा उदयागतैकतमशरीरवर्गणाः भाषामनोवर्गणाश्च नियतजीवसमासे नियतकाले च नियतं यथा भवति तथा आहरति इत्याहारको भणितः ॥६६५॥

आहार मार्गणाको कहते हैं—

औदारिक, वैक्रियिक और आहारक नामकर्ममें-से किसी एकके उदयसे उस शरीर, वचन और द्रव्यमनके योग्य नोकर्मवर्गणाओंके ग्रहणका नाम आहार है ॥६६४॥

औदारिक आदि तीन शरीरोंमें-से उदयमें आये किसी शरीरके योग्य आहारवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणाको नियत जीवसमासमें और नियत कालमें नियत रूपसे सदा ग्रहण करता है इसलिए आहारक कहते हैं ॥६६५॥

---

१. म दुदयमबेंदिदतप्पुरुदयदिंदमा । २. म °दिताहारनेंदु ।

विग्गहगदिमावण्णा केवलिणो समुग्घदो अजोगी य ।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा ॥६६६॥

विग्रहगतिमापन्नाः केवलिनः समुद्घातवंतोऽयोगी च सिद्धाश्चानाहाराः शेषा आहारका जीवाः ॥

विग्रहगतियं पोर्द्दिद जीवंगळु प्रतरलोकपूरणसमुद्घातसयोगकेवलिगळुमयोगकेवलिगळं सिद्धपरमेष्ठिगळुमनाहारकमप्परु । शेषजीवंगळेनितोळवनितुमाहारकरेयप्परु । समुद्घातमेनितें दोडे पेळ्दपरु ।

वेयणकसायवेगुव्वियो य मरणंतियो समुग्घादो ।
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु ॥६६७॥

वेदनाकषायवैगुर्व्विकाश्च मारणांतिकः समुद्घातश्च । तेजः आहारः षष्ठः सप्तमः केवलिनां तु ॥

वेदनासमुद्घातमें दुं कषायसमुद्घातमें दुं वैगूर्व्विकसमुद्घातमें दुं मारणांतिकसमुद्घातमें दुं तैजससमुद्घातमें दुमाहारकसमुद्घातमें दु केवलिसमुद्घातमें दु मितु सप्तसमुद्घातंगळप्पुवु ।

अनंतरं समुद्घातमें बुदेनें दोडे पेळ्दपं :—

मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स ।
णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घादणामं तु ॥६६८॥

मूलशरीरमत्यक्त्वा उत्तरदेहस्य जीवपिंडस्य । निर्गमनं देहाद् भवति समुद्घातनाम तु ॥

मूलशरीरमं बिडदे कार्म्मणतैजसोत्तरदेहवजीवप्रदेशप्रचयक्के शरीरदिं पोरगल्गे निर्गमनं समुद्घातमें बुदक्कुं

विग्रहगत्याश्रितचतुर्गतिजीवाः प्रतरलोकपूरणसमुद्घातपरिणतसयोगिजिनाः अयोगिजिनाः सिद्धाश्च अनाहारा भवन्ति । शेषजीवाः सर्वेऽपि आहारका एव भवन्ति ॥६६६॥ समुद्घातः कतिधा ? इति चेदाह—

समुद्घातः वेदनाकषायवैगूर्विकमारणान्तिकतैजसाहारककेवलिसमुद्घातभेदात् सप्तधा भवति ॥६६७॥ स च किंरूपः ? इति चेदाह—

मूलशरीरमत्यक्त्वा कार्मणतैजसरूपोत्तरदेहयुक्तस्य जीवप्रदेशप्रचयस्य शरीराद्बहिर्निर्गमनं तत् समुद्घातो नाम भवति ॥६६८॥

विग्रहगतिमें आये चारों गतियोंके जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करनेवाले सयोगी जिन, और सिद्ध अनाहारक हैं । शेष सब जीव आहारक हैं ॥६६६॥

समुद्घातके भेद कहते हैं—

वेदना, कषाय, विक्रिया, मारणान्तिक, तैजस, आहार और केवली समुद्घातके भेदसे समुद्घात सात प्रकारका होता है ॥६६७॥

समुद्घातका स्वरूप कहते हैं—

मूल शरीरको छोड़कर कार्मण और तैजस रूप उत्तर शरीरसे युक्त जीवके प्रदेश समूहका शरीरसे बाहर निकलना समुद्घात है ॥६६८॥

---

१. ब कति चे ।

आहारमारणंतियदुगं पि णियमेण एगदिसिगंतु ।
दसदिसिगदा हु सेसा पंचसमुग्घादया होंति ॥६६९॥

आहारमारणांतिकसमुद्घातद्वयमेकदिशिकं तु । दशदिग्गताः खलु शेषाः पंचसमुद्घाता भवंति ॥

आहारकसमुद्घातमुं मारणांतिकसमुद्घातमुमें बेरडुं समुद्घातंगळेकदिशिकंगळप्पुवु । शेषवेदनासमुद्घातादिपंचसमुद्घातंगळु दशदिग्गतंगळप्पुवु ।

आहारानाहारकालमं पेळदपं :—

अंगुलअसंखभागो कालो आहारयस्स उक्कस्सो ।
कम्मम्मि अणाहारो उक्कस्सं तिण्णि समया हु ॥६७०॥

अंगुलासंख्यातभागः काल आहारस्योत्कृष्टः । कार्म्मणे अनाहारः उत्कृष्टस्त्रयः समयाः खलु ॥

सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रकालमहारकक्कुत्कृष्टमक्कुं । त्रिसमयोनोच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रकालं जघन्यमक्कुं । कार्म्मणकायदोळु अनाहारकक्कुत्कृष्टकालं मूरु समयंगळप्पुवु । जघन्यकालमेकसमयमक्कु आहार अनाहार

स
उ सू २ जघ १—१ उत्कृष्ट सम ३ ज = स १
a १८

अनंतरमाहारमार्ग्गणेयोळु जीवसंख्येयं पेळदपं ।

कम्मइयकायजोगी होदि अणाहारयाण परिमाणं ।
तव्विरहिदसंसारी सव्वो आहारपरिमाणं ॥६७१॥

कार्म्मणकाययोगिनो भवत्यनाहारकाणां परिमाणं । तद्विरहितसंसारी सर्व्वः आहारकपरिमाणं ॥

आहारमारणान्तिकसमुद्घातद्वयमेव एकदिग्गतं भवति तु—पुनः शेषाः पञ्चसमुद्घाताः दशदिग्गता भवन्ति ॥६६९॥ आहारानाहारकालमाह—

आहारकालः उत्कृष्टः सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागः २ । जघन्यः त्रिसमयोनोच्छ्वासाष्टादशैकभागः ।
a

अनाहारकालः कार्मणकाये उत्कृष्टः त्रिसमयः । जघन्यः एकसमयः । खलु—स्फुटं ॥६७०॥ अथात्र जीवसंख्यामाह—

आहारक और मारणान्तिक ये दो समुद्घात ही एक दिशामें गमन करते हैं। किन्तु शेष पाँच समुद्घात दसों दिशाओंमें गमन करते हैं ॥६६९॥

आगे आहार और अनाहारका काल कहते हैं—

आहारका उत्कृष्टकाल सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग है। जघन्यकाल तीन समय कम उच्छ्वासका अठारहवाँ भाग है। अनाहारका काल कार्मणकायमें उत्कृष्ट तीन समय और जघन्य एक समय है ॥६७०॥

इनमें जीवोंकी संख्या कहते हैं—

कार्म्मणकाययोगिगळु अनाहारकरपरिमाणमक्कुं । तद्राशिविरहितमप्प संसारिराशि आहारकर परिमाणमक्कुमदेंतें दोडे कार्म्मणकाययोगकालं समयत्रयमक्कुं । औदारिकमिश्रकालमंतर्म्मुहूर्त्तमक्कुं । तत्कायकालं संख्यातगुणमक्कुं । कूडि त्रिसमयाधिकसंख्यातगुणितांतर्म्मुहूर्त्तमक्कु ३ मिदु प्रक्षेपकयोगमक्कुमंतागुत्तं विरलु 'प्रक्षेपकयोगोद्धृतमिश्रपिंडः / २ १ ४ प्रक्षेपकाणां गुणको भवेत्सः । येंबी सूत्राभिप्रायदिवं त्रैराशिकं माडल्पडुगुं । प्र २ १ । ५ । (३) फ १३– । इ स ३ । लब्धमनाहारकर प्रमाणमक्कुं । १३— । ३ / ३ / २ १ । ५ मत्तं प्र २ १ । ५ । (३) फ १३– । इ २ १ । ५ । लब्धमाहारकर प्रमाणमक्कुं १३– । २ १ । ५ / ३ / २ १ । ५ वैक्रियिकाहारकंगळ्गं यथायोग्यमरियल्पडुगुं ।

कार्मणकाययोगिजीवराशिः अनाहारकपरिमाणं भवति । तद्विरहितसंसारिराशिः आहारकपरिमाणं भवति । तद्यथा—योगकालः कार्मणस्य त्रिसमयाः । औदारिकमिश्रस्य अन्तर्मुहूर्तः । औदारिकस्य ततः संख्यातगुणः । मिलित्वा त्रिसमयाधिकसंख्यातगुणितान्तर्मुहूर्तः । ३– १– / २ १ ४ "प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिण्डः प्रक्षेपकाणा गुणको भवेदिति प्र (३—) २ १ ५ । फ १३– । इ स ३ । लब्धमनाहारकजीवप्रमाण १३– ३ / ३– / २ १ । ५ पुनः (३—) २ १ । ५ । फ १३– । इ २ १ । ५ । लब्धमाहारकजीवप्रमाणं १३– । २ १ । ५ / ३– / २ १ । ५ वैक्रियिकाहारकयोर्यथायोग्यं ज्ञातव्यम् ॥६७१॥

योगमार्गणामें कार्मणकाय योगियोंका जितना प्रमाण कहा है उतना ही अनाहारकोंका प्रमाण है । संसारीराशिमें-से अनाहारकोंका प्रमाण घटानेपर आहारकोंका परिमाण होता है । जो इस प्रकार है—कार्मणयोगका काल तीन समय है । औदारिक मिश्र काययोगका काल अन्तर्मुहूर्त है । औदारिक काययोगका काल उससे संख्यातगुणा है । सब मिलानेपर तीन समय अधिक संख्यात गुणित अन्तर्मुहूर्त काल होता है । करण सूत्रमें कहा है प्रक्षेपको मिलाकर मिले हुए पिण्डसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे प्रक्षेपकसे गुणा करनेपर अपना-अपना प्रमाण होता है । सो उक्त तीनों योगोंके कालोंको मिलानेपर तीन समय अधिक संख्यात अन्तर्मुहूर्त काल हुआ । इसका भाग कुछ हीन संसारीराशिमें देनेपर जो प्रमाण आवे उसे तीनसे गुणा करनेपर अनाहारक जीवोंका प्रमाण होता है । शेष सब संसारी आहारक जीव हैं । वैक्रियिक और आहारकवालोंका यथायोग्य जानना । उनके अल्प होनेसे यहाँ उनकी मुख्यता नहीं है ॥६७१॥

इंतु श्रीमदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरुमंडलाचार्य्यवर्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्तिजीवतत्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशति प्ररूपणंगळोळु एकान्नविंशति माहारमार्गणाधिकारं निरूपितमाय्तु ।

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु आहारमार्गणाप्ररूपणानामैकान्नविंशोऽधिकारः ॥१९॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से आहारमार्गणा प्ररूपणा नामक उन्नीसवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

उपयोगाधिकारः ॥२०॥

अनंतरंमुपयोगाधिकारमं पेळ्दपं :—

वत्थुणिमित्तं भावो जादो जीवस्स जो दु उवजोगो ।
सो दुविहो णायव्वो सायारो चेव णायारो ॥६७२॥

वस्तुनिमित्तं भावो जातो जीवस्य यस्तूपयोगः । स द्विविधो ज्ञातव्यः साकारश्चैवानाकारः ॥

वसतो गुणपर्य्यायावस्मिन्निति वस्तु—ज्ञेयपदार्त्थंस्तद्ग्रहणाय प्रवृत्तं ज्ञानं वस्तुनिमित्तं भावः अर्त्थग्रहणव्यापार इत्यर्त्थः । अर्त्थप्रकाशननिमित्तमागि जातः प्रवृत्तमप्प जीवस्य जीवन यस्तु आवुदोंदु भावः परिणामः । क्रियाविशेषमवुपयोगमें बुदु, अदु मत्ते साकारोपयोगमें दुमनाकारोपयोगमें दु द्विप्रकारमें दे ज्ञातव्यमक्कु ।

अनंतर साकारोपयोगमें टु प्रकारमें दु पेळ्दपं :—

णाणं पंचविहंपि य अण्णाणतियं च सागरुवजोगो ।
चदुदंसणमणगारो सव्वे तल्लक्खणा जीवा ॥६७३॥

ज्ञानं पंचविधमपि च अज्ञानत्रयं च साकारोपयोगः । चतुर्द्दर्शनमनाकारः सर्व्वे तल्लक्षणा जीवाः ॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलमें ब सम्यग्ज्ञानपंचकमुं कुमतिकुश्रुतविभंगमें ब मूरु तेरदज्ञानमुं साकारोपयोगमें बुदक्कुं । चक्षुर्द्दर्शनमचक्षुदर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनमें बो नाल्कुं दर्शनमना-

---

सुव्रतः सुव्रतैः सेव्यः सुव्रतः सुव्रताय सः ।
प्राप्तार्हन्त्यपदो दद्यात् स्वकीयां सुव्रतश्रियम् ॥२०॥

अथोपयोगाधिकारमाह—

वसतः गुणपर्यायौ अस्मिन्निति वस्तु ज्ञेयपदार्थः—तद्ग्रहणाय जातः—प्रवृत्तः यो भावः—परिणामः क्रियाविशेषः जीवस्य स उपयोगो नाम । स च साकारोऽनाकारश्चेति द्वेधा ज्ञातव्यः ॥६७२॥ अथ साकारोपयोगोऽष्टधा इत्याह—

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानि कुमतिकुश्रुतविभङ्गाज्ञानानि च साकारोपयोगः । चक्षुरचक्षुर-

---

उपयोगाधिकार कहते हैं—

जिसमें गुण और पर्यायोंका वास है वह वस्तु अर्थात् ज्ञेय पदार्थ है। उसको ग्रहण करनेके लिए जीवका जो भाव अर्थात् परिणाम होता है वह उपयोग है। वह दो प्रकारका है—साकार और अनाकार ॥६७२॥

आगे उनके भेद कहते हैं—

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ये पाँच ज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत, विभंग ये

कारोपयोगमें बुदक्कुं। सर्व्वे जीवाः सर्व्वजीवंगळु तल्लक्षणंगळे ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणंगळेयप्पुवु-मेके बोडे लक्षणक्के अव्याप्तियुमतिव्याप्तियुमसंभवियुमें बी दोषत्रयरहितत्वदिदं।

मदिसुदओहिमणेहि य सगसगविसये विसेसविण्णाणं।
अंतोमुहुत्तकालो उवजोगो सो दु सायारो ।।६७४।।

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययैश्च स्वस्वविषये विशेषविज्ञानमंतर्म्मुहूर्तंकाल उपयोगः स तु साकारः।।

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानंगळिदं तंतम्मविषयदोळु विशेषविज्ञानमंतर्म्मुहूर्त्तकालमर्त्थ-ग्रहणव्यापारलक्षणमुपयोगमक्कुमदु तु मत्ते साकारोपयोगमें बुदक्कुं।

इंदियमणोहिणा वा अट्ठे अविसेसिदूण जं गहणं।
अंतोमुहुत्तकालो उवजोगो सो अणायारो ।।६७५।।

इंद्रियमनोभ्यां अवधिना वार्त्थानविशेषित्वा यद्ग्रहणमंतर्म्मुहूर्त्तकाल उपयोगः सोनाकारः ।।

चक्षुरिंद्रियदिदमुं मनमचक्षुरिंद्रियमप्पुदरिंदमचक्षुर्द्दर्शनदिदमुमवधिदर्शनदिदमुं वा शब्दमुं समुच्चयार्त्थमक्कुं। जीवाद्यर्त्थंगळं विकल्पिसदे निर्व्विकल्पदिदमावुदों दु ग्रहणमंदतर्म्मुहूर्त्तकालं सामान्यार्थग्रहणव्यापारलक्षणमुपयोगमदनाकारोपयोगमें बुदक्कुं ।।

अनंतरमुपयोगाधिकारदोळु जीवसंख्येयं पेळ्दपं।—

णाणुवजोगजुदाणं परिमाणं णाणमग्गणं व हवे।
दंसणुवजोगियाणं दंसणमग्गणपउत्तकमो ।।६७६।।

ज्ञानोपयोगयुतानां परिमाणं ज्ञानमार्ग्गणायामिव भवेत्। दर्शनोपयोगिनां दर्शनमार्ग्गणा-प्रोक्तक्रमः ।।

वधिकेवलदर्शनानि अनाकारोपयोगः। सर्वे जीवाः तज्ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणा एव तल्लक्षणस्याव्याप्त्यतिव्याप्त्य-संभवदोषाभावात् ।।६७३।।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानैः स्वस्वविषये विशेषविज्ञानं अन्तर्मुहूर्तकालं अर्थग्रहणव्यापारलक्षणं उपयोगः, स तु साकारोपयोगो नाम ।।६७४।।

चक्षुर्दर्शनेन वा शेषेन्द्रियैर्मनसा च इत्यचक्षुर्दर्शनेन वा अवधिदर्शनेन वा यज्जीवाद्यर्थान् अविशेषित्वा निर्विकल्पेन ग्रहणं सोऽन्तर्मुहूर्तकालः अनाकारोपयोगो नाम ।।६७५।। अथात्र जीवसंख्यामाह—

तीन अज्ञान साकार उपयोग हैं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन ये अनाकार उपयोग हैं। सब जीव ज्ञानदर्शनोपयोग लक्षणवाले हैं। जीवके इस लक्षणमें अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव दोष नहीं है ।।६७३।।

मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञानोंके द्वारा अपने-अपने विषयमें जो विशेष ज्ञान होता है। अन्तर्मुहूर्तकालको लिये हुए अर्थको ग्रहण करने रूप व्यापार जिसका लक्षण है वह उपयोग साकार उपयोग है ।।६७४।।

चक्षुदर्शन अथवा शेष इन्द्रिय और मनरूप अचक्षुदर्शन, अथवा अवधि दर्शनके द्वारा जीवादि पदार्थोंका विशेष न करके जो निर्विकल्प रूपसे ग्रहण होता है वह अनाकार उपयोग है। उसका काल भी अन्तर्मुहूर्त है ।।६७५।।

इनमें जीव संख्या कहते हैं—

---

१. °णवउ° । मु.।

ज्ञानोपयोगयुक्तरुगळ परिमाणं ज्ञानमार्ग्गणेयोळु पेळ्दंतेयक्कुं। दर्शनोपयोगिगळ परिमाणं दर्शनमार्ग्गणेयोळु पेळ्द क्रममेयक्कुमदें तें दोडे कुमतिज्ञानिगळु किंचिदून संसारिराशिप्रमाणमक्कुं। १३—कुश्रुतज्ञानिगळुं[1] मनिबरेयक्कुं। १३—।। विभंगज्ञानिगळु = १ / ४।६५=१ मतिज्ञानिगळु प / a श्रुतज्ञानिगळु प / a अवधिज्ञानिगळु प a / a a मनःपर्य्ययज्ञानिगळु १ केवलज्ञानिगळु १ / ३ तिर्य्यंचविभंगज्ञानिगळु—६ प / a मनुष्यविभंगज्ञानिगळु। १। नारकविभंगज्ञानिगळु –२– देवविभंगज्ञानिगळु = १ / ४।६५=१ शक्ति चक्षुर्दर्शनिगळु। प्र। बि। ति। च। प। ४। फ। ४ / a ह च। पं। २। लब्ध त्रस-

ज्ञानोपयोगिप्रमाणं ज्ञानमार्गणावत्। दर्शनोपयोगिप्रमाणं दर्शनमार्गणावत् भवेत्। तद्यथा—कुमतिज्ञानिनः ।।। कुश्रुतज्ञानिनश्च किंचिदूनसंसारिराशिः १३— विभङ्गज्ञानिनः = १ / ४६५ = १। मतिज्ञानिनः प / a श्रुतज्ञानिनः प / a अवधिज्ञानिनः प a / a a मनःपर्ययज्ञानिनः १ केवलज्ञानिनः १ / ३ तिर्यग्विभङ्गज्ञानिनः – ६ प / a मनुष्यविभङ्गज्ञानिनः ।। १ नरकविभङ्गज्ञानिनः – २ – देवविभङ्गज्ञानिनः = १ / ४।६५ = १। शक्तिचक्षुर्दर्शनिनः प्र—वि। ति। च। प।

ज्ञानोपयोगवाले जीवोंका प्रमाण ज्ञानमार्गणाके समान है और दर्शनोपयोगवाले जीवोंका प्रमाण दर्शनमार्गणाके समान है। जो इस प्रकार है—कुमतिज्ञानी और कुश्रुतज्ञानियोंका प्रमाण कुछ कम संसारीराशि है। विभंगज्ञानी पूर्ववत् जानना। मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी प्रत्येक पल्यके असंख्यातवें भाग हैं। अवधिज्ञानी पूर्ववत् जानना। मनःपर्ययज्ञानी संख्यात हैं। केवलज्ञानी सिद्धराशिसे अधिक हैं। तिर्यंच विभंगज्ञानी पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणित घनांगुलसे जगतश्रेणिको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतने हैं। विभंगज्ञानी मनुष्य संख्यात हैं। विभंगज्ञानी नारकी घनांगुलके दूसरे वर्गमूलसे जगतश्रेणिको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतने हैं। देवविभंगज्ञानी सम्यग्दृष्टियोंकी संख्यासे हीन ज्योतिष्कदेवोंसे अधिक हैं। शक्तिरूप और व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनीका परिमाण गाथा

1. म मनिबरेयक्कुं।

राशि शक्ति चक्षुर्द्दर्शनिगळु = २ / ४।४ व्यक्ति चक्षुर्द्दर्शनिजीवंगळु । प्र १ फ = ४ / ५ इ । २ लब्ध = २ / ४४ / ५

अचक्षुर्द्दर्शनिगळु १३—अवधिदर्शनिगळु प ꣳ / ꣳ ꣳ केवलदर्शनिगळु ३–॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरुभूमंडलाचार्य्यवर्य्यमहावादवादीश्वरराय वादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्ति जीवतत्व प्रदीपिकेयोळु विंशमुपयोगाधिकारं निगदितमादुदु ॥

---

४ । फ = । इ च । पं । २ । इति त्रैराशिकलब्धमात्रा:- = २ / ४ / ꣳ ४ = व्यक्तिचक्षुर्दर्शनिनः- प्र – ४ । फ = इ २ / ४ / ५ / १ ꣳ / ४ / ꣳ

इति त्रैराशिकलब्धमात्राः = २ / २ / ४ ५ ४ – अचक्षुर्दर्शनिनः १३– अवधिदर्शनिनः प ꣳ / ꣳ ꣳ केवलिदर्शनिनः सि ३ ॥६७६॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु उपयोगमार्गणाप्ररूपणा नाम विंशोऽधिकारः ॥२०॥

---

४८७ की टीकामें कहा है। अवधिदर्शनवालोंका परिमाण अवधिज्ञानियोंके समान और केवलदर्शनियोंका परिमाण केवलज्ञानियोंके समान जानना। एकेन्द्रियसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त अनन्तानन्त जीवराशि प्रमाण अचक्षुदर्शनी हैं ॥६७६॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डके अन्तर्गत मध्य प्ररूपणाओंमें-से उपयोगमार्गणा प्ररूपणा नामक बीसवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥

ओघादेशप्ररूपणाधिकारः ॥२१॥

अनंतरमुक्तविंशतिप्ररूपणेगळं यथासंभवमागि गुणस्थानंगळोळं मार्ग्गणास्थानंगळोळं प्रत्येकं पेळ्वपं–

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणुवजोगो ।
जोग्गा परूविदव्वा ओघादेसेसु पत्तेयं ॥६७७॥

गुणजीवाः पर्य्याप्तयः प्राणाः संज्ञाश्च मार्ग्गणा उपयोगे योग्याः प्ररूपयितव्याः ओघादेशेषु प्रत्येकं ॥

गुणस्थानमार्ग्गणास्थानंगळोळु प्रत्येकं । गुणस्थानंगळुं जीवसमासेगळुं पर्य्याप्तिगळुं प्राणंगळुं संज्ञेगळुं मार्ग्गणेगळुमुपयोगंगळुमें दीविंशतिप्रकारंगळु प्ररूपिसल्पडुववु । यथायोग्यमागि ।

अदेंतेंदोडे—

चउ पण चोद्दस चउरो णिरयादिसु चोद्दसं तु पंचक्खे ।
तसकाये सेदिंदियकाये मिच्छं गुणट्ठाणं ॥६७८॥

चतुः पंच चतुर्द्दश चत्वारि नरकादिषु चतुर्द्दश तु पंचाक्षे । त्रसकाये शेषेंद्रियकाये मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं ॥

नरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवगतिगळोळु यथासंख्यमागि नाल्कुमय्युं पदिनाल्कुं नाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवदेंतेंदोडे—नरकगतियोळु मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयतगुणस्थानचतुष्टयमक्कुं । तिर्य्यग्गतियोळु मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्राऽसंयतदेशसंयतगुणस्थानपंचकमक्कुं । मनुष्यगतियोळु सामान्य-

---

नमिर्नमत्सुराधीशोऽनन्तज्ञानादिवैभव. ।
हतघातिव्रजो जीयाद्ध्यान्नः शाश्वतं पदम् ॥

अथोत्तरमभिधेयं ज्ञापयति—

उक्तविंशतिप्ररूपणासु गुणस्थानमार्गणास्थानयोः प्रत्येक गुणस्थानानि जीवसमासा. पर्याप्तयः प्राणाः संज्ञाः, मार्गणाः उपयोगाश्च यथायोग्यं प्ररूपयितव्याः ॥६७७॥ तद्यथा—

नारकादिगतिषु क्रमेण गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वारि पञ्च चतुर्दश चत्वारि भवन्ति । इन्द्रियमार्गणायां पञ्चेन्द्रिये तु पुनः कायमार्गणायां त्रसकाये च, चतुर्दश, शेषेन्द्रियकायेषु एक मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं । जीवसमासास्तु नरकगतौ संज्ञिपर्याप्तनिवृत्त्यपर्याप्तौ द्वौ । तिर्यग्गतौ चतुर्दश । मनुष्यगतौ संज्ञिपर्याप्ता-

---

बीस प्ररूपणाओंका कथन करनेके पश्चात् जो कुछ अभिधेय है उसे कहते हैं—

ऊपर कही बीस प्ररूपणाओंमें-से गुणस्थान और मार्गणास्थानमें गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा और उपयोगोंका यथायोग्य प्ररूपणा करना चाहिये ॥६७७॥

वही कहते हैं—

गतिमार्गणामें क्रमसे गुणस्थान, मिथ्यादृष्टि आदि नरक गतिमें चार, तिर्यंचगतिमें पाँच, मनुष्यगतिमें चौदह और देवगतिमें चार होते हैं। इन्द्रियमार्गणामें, पंचेन्द्रियमें, और कायमार्गणामें त्रसकायमें चौदह गुणस्थान होते हैं। शेष एकेन्द्रियादिमें और स्थावरकायमें

चतुर्द्दश गुणस्थानंगळनितुं संभविसुगुं । देवगतियोळु नरकगतियोळें तंते मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रा-संयतगुणस्थानचतुष्टयं संभविसुगुं । इंद्रियमार्ग्गणेयोळु पंचेंद्रियक्के चतुर्द्दशगुणस्थानंगळनितुं संभविसुगुं । कायमार्ग्गणेयोळु त्रसकायक्कयुं चतुर्द्दशगुणस्थानंगळनितुं संभविसुगुं । शेषेंद्रियकायंगळोळु प्रत्येकमों दों दु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमक्कुं ।

	न	ति	म	दे	ए	वि	ति.	च.	पं.	पृ.	अ.	ते.	वा.	वन	त्र.
गुण	४	५	१४	४	२	१	१	१	१४	२	१	१	१	१	१४
जीव	२	१४	२	२	४	२	२	२	२	४	४	४	४	४	१०

नरकगतियोळुसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तजीवसमासेगळेरडेयप्पुवु । तिर्य्यग्गतियोळु एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियअसंज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्ताऽपर्याप्तजीवसमासेगळु पदिनाल्कुमप्पुवु । मनुष्यगतियोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्ताऽपर्य्याप्तजीवसमासेगळुमेरडेयप्पुवु । देवगतियोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्त निर्वृत्यपर्य्याप्त जीवसमासेगळेरडेयप्पुवु । इंद्रियमार्ग्गणेयोळेकेंद्रियदोळु बादरसूक्ष्मैंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासगळु नाल्कप्पुवु । द्वींद्रियदोळु द्वींद्रियपर्य्याप्तापर्याप्तजीवसमासेगळु येरडेयप्पुवु । त्रींद्रियदोळु त्रींद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळेरडेयप्पुवु । चतुरिंद्रियदोळु चतुरिंद्रियपर्य्याप्तपर्य्याप्तजीवसमासेगळेरडेयप्पुवु । पंचेंद्रियदोळु संज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्तापर्याप्तजीवसमासेगळु नाल्कप्पुवु । कायमार्ग्गणेयोळु पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायिकपंचकदोळु एकेंद्रियबादरसूक्ष्मपर्य्याप्त अपर्याप्तजीवसमासेगळु प्रत्येकं नाल्कुनाल्कप्पुवु । त्रसकायिकंगळोळु द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळु पत्तु संभविसुववु

गतिमार्ग्गणायां	इंद्रिय मार्गणायां	कायमार्ग्गणायां
न । ति । म । दे ।	ए । द्वी । त्री । च । पं ।	पृ । अ । ते । वा । व । त्र ।
४ । ५ । १४ । ४ ।	१ । १ । १ । १ । १४ ।	१ । १ । १ । १ । १ । १४ ।
२ । १४ । २ । २ ।	४ । २ । २ । २ । ४ ।	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । १०

पर्याप्तौ द्वौ । देवगतौ नरकगतिवद्द्वौ । इन्द्रियमार्गणाया एकेन्द्रिये वादरसूक्ष्मैकेन्द्रियौ पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः । द्वीन्द्रिये त्रीन्द्रिये चतुरिन्द्रिये च तत्तत्पर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ द्वौ । पञ्चेन्द्रिये संज्ञ्यसंज्ञिनौ पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः । कायमार्गणाया पृथ्व्यादिपञ्चसु एकेन्द्रियवत् चत्वारः चत्वारः, त्रसे शेषा दश ॥६७८॥

एक मिथ्यादृष्टिगुणस्थान होता है । जीवसमास नरकगतिमें संज्ञिपर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त दो होते हैं । तिर्यंचगतिमें चौदह होते हैं । मनुष्यगतिमें संज्ञिपर्याप्त और अपर्याप्त दो होते हैं । देवगतिमें नरकगतिके समान दो होते हैं । इन्द्रियमार्गणामें एकेन्द्रियमें बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रियके पर्याप्त और अपर्याप्त होनेसे चार होते हैं । दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रियमें अपने-अपने पर्याप्त और अपर्याप्त होनेसे दो-दो होते हैं । पंचेन्द्रियमें संज्ञी-असंज्ञीके पर्याप्त-अपर्याप्तके भेदसे चार हैं । कायमार्गणामें पृथिवीकायिक आदि पाँच कायोंमें एकेन्द्रियकी तरह चार-चार जीवसमास होते हैं । त्रसमें शेष दस जीवसमास होते हैं ॥६७८॥

मज्झिमचउमणवयणे सण्णिप्पहुडिं तु जाव खीणोत्ति ।
सेसाणं जोगित्ति य अणुभयवयणं तु वियलादो ॥६७९॥

मध्यमचतुर्म्मनोवचनेषु संज्ञिप्रभृतिस्तु यावत् । क्षीणकषायस्तावत्पर्य्यंतं शेषाणां योगिपर्य्यंतं च अनुभयवचनं तु विकलात् ॥

मनोवचनयोगंगळोळु मध्यमंगळप्प असत्यमनोयोगमुभयमनोयोगमसत्यवचनयोगमुभयवचनयोगमेंबी नाल्करोळं मिथ्यादृष्टिसंज्ञिपंचेंद्रियमादियागि क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतमप्प पन्नेरडुं पन्नेरडु गुणस्थानंगळुमों दों दे संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासेगळु प्रत्येकमप्पुवु । शेषसत्यमनोयोगदोळुमनुभयमनोयोगदोळं सत्यवचनयोगदोळं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सयोगिकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतं पदिमूरुं गुणस्थानंगळुं पंचेंद्रियसंज्ञिपर्य्याप्तजीवसमासेगळों दों दुं प्रत्येकमप्पुवु । अनुभयवचनयोगदोळु विकलत्रयमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सयोगकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतमाद पदिमूरुं गुणस्थानंगळुं द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासगळुमय्दप्पुवु :— मनोयोग वाग्योग

	मनोयोग				वाग्योग			
	स	अ	उ	अ	स	अ	उ	अ
गु	१३	१२	१२	१३	१३	१२	१२	१३
जी-	१	१	१	१	१	१	१	५

ओरालं पज्जत्ते थावरकायादि जाव जोगित्ति ।
तम्मिस्समपज्जत्ते चदुगुणठाणेसु णियमेण ॥६८०॥

औदारिकः पर्य्याप्ते स्थावरकायादि यावद्योगिपर्य्यंतं । तन्मिश्रः अपर्य्याप्ते चतुर्गुणस्थानेषु नियमेन ॥

औदारिककाययोगमेकेंद्रियस्थावरकायपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सयोगकेवलिपर्य्यंतमाद पदिमूरुं गुणस्थानंगळक्कुमल्लि एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासेगळुमेलप्पुवु । ७ । औदारिकमिश्रयोगमपर्य्याप्तचतुर्गुणस्थानंगळोळु

मध्यमेषु असत्योभयमनोवचनयोगेषु चतुर्षु संज्ञिमिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि द्वादश । तु—पुनः सत्यानुभयमनोयोगयोः सत्यवचनयोगे च संज्ञिपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगान्तानि त्रयोदश गुणस्थानानि भवन्ति । जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एवैकः । अनुभयवचनयोगे तु गुणस्थानानि विकलत्रयमिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश । जीवसमासाः द्वित्रिचतुरिन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्ताः पञ्च ॥६७९॥

औदारिककाययोगः एकेन्द्रियस्थावरकायपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगान्तत्रयोदशगुणस्थानेषु भवति ।

मध्यम अर्थात् असत्य और उभय मनोयोग और वचन योग इन चारमें संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त बारह गुणस्थान होते हैं। तथा सत्य और अनुभय मनोयोग और सत्यवचनयोगमें संज्ञिपर्याप्त मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवली पर्यन्त तेरह गुणस्थान होते हैं। जीवसमास एक संज्ञिपर्याप्त ही होता है। अनुभयवचनयोगमें विकलत्रय मिथ्यादृष्टिसे लेकर तेरह गुणस्थान होते हैं। जीवसमास दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय संज्ञि-असंज्ञी, पंचेन्द्रिय पर्याप्त रूप पाँच होते हैं ॥६७९॥

औदारिक काययोग एकेन्द्रिय स्थावरकाय पर्याप्त मिथ्यादृष्टीसे लेकर सयोगकेवली पर्यन्त तेरह गुणस्थानोंमें होता है। औदारिक मिश्रकाययोग नियमसे अपर्याप्त अवस्थामें

नियमविंदमक्कुमा नाल्कुमपर्य्याप्तगुणस्थानंगळावुवें बोडे पेळ्दपं :—

मिच्छे सासणसम्मे पुंवेदयदे कवाडजोगिम्मि ।
णरतिरिये वि य दोण्णि वि होंतित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥६८१॥

मिथ्यादृष्टौ सासादनसम्यग्दृष्टौ पुंवेदासंयते कवाटयोगिनि नरतिरश्चि च द्वावपि भवत इति जिनैर्निर्दिष्टं ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं पुंवेदोदयासंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं कवाटसमुद्घातसयोगकेवलिगुणस्थानदोळमितु मनुष्यरोळं तिर्य्यंचरोळमा यरडुमौदारिककाययोगमुं तन्मिश्रकाययोगमुमप्पुवें दितु वीतरागसर्व्वज्ञरिंदं पेळल्पट्टुवु। मत्तमौदारिकमिश्रकाययोगदोळु एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियापर्य्याप्तजीवसमाससप्तकमुं सयोगिकेवलियोळु कवाटसमुद्घातदोळु औदारिकमिश्रयोगमदुवुं कूडि जीवसमासाष्टकमक्कुं

औ	मिश्र
१३	४
७	८

वेगुव्वं पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सं तु ।
सुरणिरयचउट्ठाणे मिस्से ण हि मिस्सजोगो दु ॥६८२॥

वैगुर्व्वः पर्याप्ते इतरस्मिन् खलु भवति तस्य मिश्रस्तु । सुरनारकचतुःस्थाने मिश्रे न हि मिश्रयोगस्तु ॥

वैक्रियिककाययोग पंचेंद्रियपर्य्याप्तदेवनारकमिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयतगुणस्थानचतुष्टयदोळक्कुं। तन्मिश्रयोगं देवनारकमिथ्यादृष्टिसासादनासंयतगुणस्थानत्रयदोळमक्कुं। वैक्रियिक-

---

तन्मिश्रयोगः अपर्याप्तचतुर्गुणस्थानेष्वेव नियमेन ॥६८०॥ तेषु केषु ? इति चेदाह—

मिथ्यादृष्टौ सासादने पुंवेदोदयासंयते कपाटसमुद्घातसयोगे, चैतेषु अपर्याप्तचतुर्गुणस्थानेषु स औदारिकमिश्रयोगः स्यादित्यर्थः। तौ योगौ द्वावपि नरतिरश्चोरेवेति सर्वज्ञैरुक्तम् । जीवसमासाः औदारिकयोगे पर्याप्ताः सप्त । तेन मिश्रयोगे अपर्याप्ताः सप्त । सयोगस्य चैकः एवमष्टौ ॥६८१॥

वैक्रियिककाययोगः पर्याप्तदेवनारकमिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानेषु भवति खलु स्फुटम् । तु—पुनः

चार गुणस्थानोंमें होता है ॥६८०॥

किन गुणस्थानोंमें होता है यह कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें, सासादनमें, पुरुषवेदके उदय सहित असंयतमें और कपाट समुद्घात सहित सयोगकेवलीमें इन चार अपर्याप्त अवस्था सहित गुणस्थानोंमें औदारिकमिश्रयोग होता है। औदारिक और औदारिकमिश्र ये दोनों भी योग मनुष्य और तिर्यंचोंमें ही सर्वज्ञदेवने कहे हैं। औदारिक योगमें सात पर्याप्त जीवसमास होते हैं। अतः औदारिक मिश्र योगमें सात अपर्याप्त जीवसमास होते हैं और सयोगकेवलीके एक जीवसमास होता है इस तरह आठ जीवसमास होते हैं ॥६८१॥

वैक्रियिक काययोग पर्याप्त देव नारकियोंके मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें होता है। वैक्रियिक मिश्रकाय योग मिश्रगुणस्थानमें तो नहीं होता, अतः देवनारकियोंके

काययोगदोळु पंचेंद्रियसंज्ञिपर्य्याप्तजीवसमासमों देयक्कुं । तन्मिश्रदोळु संज्ञिपंचेंद्रियनिर्वृत्त्यपर्य्याप्त-जीवसमासमों देयक्कुं

	वै	मि
	४।	३।
	१	१।

आहारो पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सो दु ।
अंतोमुहुत्तकाले छट्ठगुणे होदि आहारो ॥६८३॥

आहारः पर्य्याप्ते इतरस्मिन् खलु भवति तस्य मिश्रस्तु । अंतर्मुहूर्तकाले षष्ठगुणे भवति आहारः ॥

आहारककाययोगसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तषष्ठगुणस्थानवर्त्तिप्रमत्तसंयतनोळक्कुमाहारककाययोग-कालमुमुत्कृष्टदिंदमुं जघन्यदिदमुमंतर्म्मुहूर्त्तकालदोळेयक्कुं । तन्मिश्रकाययोगमुं तद्गुणस्थान-दोळे प्रमत्तगुणस्थानदोळे अंतर्म्मुहूर्त्तकालदोळेयक्कुमदु कारणमागियाहारककाययोगदोळों दे गुणस्थानमुमों दे जीवसमासेयुमक्कुं । तन्मिश्रदोळमंते वों दे गुणस्थानमुमों दे जीवसमासमुमक्कुं ।

आहारककाययोगदोळु गु १ । मि गु १
जो १ । जो १

ओरालियमिस्सं वा चउगुणठाणेसु होदि कम्मइयं ।
चदुगदिविग्गहकाले जोगिस्स य पदरलोगपूरणगे ॥६८४॥

औदारिकमिश्रवच्चतुर्गुणस्थानेषु भवति कार्म्मणं । चतुर्गतिविग्रहकाले योगिनः प्रतर-लोकपूरणे ॥

औदारिकमिश्रकाययोगदोळ्पेळदंते चतुर्ग्गुणस्थानंगळोळु कार्म्मणकाययोगमक्कुं मदुवु चतुर्गतिविग्रहकालदोळं सयोगकेवलिय प्रतरलोकपूरणसमुद्घातकालदोळमक्कुमदु कारणमागि कार्म्मणकाययोगदोळु मिथ्यादृष्टिसासादनाऽसंयतसम्यग्दृष्टि समुद्घातसयोगिभट्टारकरें ब गुण-

---

तन्मिश्रयोगः मिश्रगुणस्थाने तु न हीति कारणात् देवनारकमिथ्यादृष्टिसासादनासंयतेऽवेव भवति । जीवसमासः तयोः क्रमेण संज्ञिपर्याप्तः तन्निर्वृत्त्यपर्याप्तः एकैकः ॥६८२॥

आहारककाययोग. संज्ञिपर्याप्तषष्ठगुणस्थाने जघन्योत्कृष्टेन अन्तर्मुहूर्तकाले एव भवति । तन्मिश्रयोगः इतरस्मिन् संज्ञ्यपर्याप्तषष्ठगुणस्थाने खलु जघन्योत्कृष्टेन तावत्काले एव भवति । तेन तयोर्योगयोस्तदेव गुणस्थानं जीवसमासः स एव एकैकः ॥६८३॥

औदारिकमिश्रवच्चतुर्गुणस्थानेषु कार्मणकाययोग. स्यात् स चतुर्गतिविग्रहकाले सयोगस्य प्रतरलोक-

---

मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयतगुणस्थानोंमें ही होता है । जीवसमास उनमें-से वैक्रियिकमें संज्ञीपर्याप्त और वैक्रियिकमिश्रमें संज्ञीअपर्याप्त होता है ॥६८२॥

आहारक काययोग संज्ञीपर्याप्त छठे गुणस्थानमें जघन्य और उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त कालमें ही होता है । आहारमिश्रकाययोग संज्ञिअपर्याप्त अवस्थामें छठे गुणस्थानमें जघन्य उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्तकालमें ही होता है । अतः उन दोनोंमें एक छठा ही गुणस्थान होता है । तथा जीवसमास भी वही संज्ञीपर्याप्त और संज्ञीअपर्याप्त एक-एक ही होता है ॥६८३॥

औदारिकमिश्रकी तरह कार्मणकाययोग चार गुणस्थानोंमें होता है । सो वह चार गति सम्बन्धी विग्रहगतिके कालमें और सयोगकेवलीके प्रतर और लोकपूरण समुद्घातके

स्थानचतुष्टयमुं एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियजीवंगळु उत्तरभव-शरीरग्रहणार्त्थं स्वस्वयोग्यचतुर्गतिगळगे पोपुर्द विग्रहगतियें बुदा विग्रहगतियोळप्प अपर्य्याप्तजीव-समासिगळेळुं प्रतरसमुद्घातलोकपूरणसमुद्घातसमयत्रयवर्त्तिसयोगिभट्टारकन काम्मंणकाययोगाऽ-पर्य्याप्तजीवसमासेगूडि काम्मंणकाययोगदोळें टु जीवसमासेगळप्पुवु का =
गु ४
जी ८

थावरकायप्पहुडी संढो सेसा असण्णिआदी य ।
अणियट्टिस्सय पढमो भागोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६८५॥

स्थावरकायप्रभृति षंढः शेषाः असंज्ञ्यादयश्च । अनिवृत्तेः प्रथमभागपर्य्यंतं जिनैर्निर्द्दिष्टं ॥

वेदमार्ग्गणेयोळु स्थावरकायदोळु मिथ्यादृष्टिप्रभृतियागि षंढवेदिगळनिवृत्तिकरणगुणस्थान-पंचभागंळोळु प्रथमसवेदभागपर्य्यंतमों भत्तुं गुणस्थानं गळोळप्परु। अदु कारणमागि नपुंसक-वेददोळु गुणस्थाननवकमुं एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्तजीवसमासेगळु पदिनाल्कुमप्पुवु । शेषस्त्रीवेदिगळुं पुंवेदिगळुं संज्ञ्यसंज्ञिमिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडऽनिवृत्ति-करणगुणस्थानद तंतम्म सवेदभागपर्य्यंतमों भत्तुं गुणस्थानंगळोळप्परु । अदु कारणमागि स्त्रीवेद-दोळं पुंवेददोळमोंभत्तुमभों बत्तु गुणस्थानंगळुं । संज्ञ्यसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळु नाल्कु नाल्कुमप्पुवु न । स्त्री । पुं
९ । ९ । ९ ।
१४ ४ ४

थावरकायप्पहुडी अणियट्टीबितिचउत्थभागोत्ति ।
कोहतियं लोहो पुण सुहुमसरागोत्ति विण्णेयो ॥६८६॥

स्थावरकायप्रभृत्यनिवृत्तिद्वित्रिचतुर्त्थभागपर्य्यंतं । क्रोधत्रयं भवति लोभः पुनः सूक्ष्मसराग-पर्य्यंतं विज्ञेयः ॥

पूरणकाले च भवति तेन तत्र गुणस्थानानि जीवसमासाश्च तद्वत् चत्वारि अष्टौ भवन्ति ॥६८४॥

वेदमार्गणायां षण्ढवेदः स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागान्तं भवति तेन तत्र गुणस्थानानि नव । जीवसमासाश्चतुर्दश । शेषस्त्रीपुंवेदौ संज्ञ्यसंज्ञिमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणस्वस्वसवेदभाग-पर्यन्तं भवतः तेन तयोर्गुणस्थानानि नव नव । जीवसमासाः संज्ञ्यसंज्ञिनौ पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः इति जिनैरुक्तम् ॥६८५॥

कालमें होता है । इससे उसमें गुणस्थान और जीवसमास उसीकी तरह क्रमसे चार और आठ होते हैं ॥६८४॥

वेदमार्गणामें नपुंसकवेद स्थावरकायसम्बन्धी मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणके प्रथम सवेदभागपर्यन्त होता है । अतः उसमें नौ गुणस्थान होते हैं । जीवसमास चौदह होते हैं । शेष स्त्रीवेद और पुरुषवेद संज्ञी-असंज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणके अपने-अपने सवेद भागपर्यन्त होते हैं । इससे उनमें नौ-नौ गुणस्थान होते हैं । तथा जीवसमास संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त, अपर्याप्त चार होते हैं ऐसा जिनदेवने कहा है ॥६८५॥

कषायमार्गणेयोळु क्रोधमानमायाकषायत्रयंगळु स्थावरकायमिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडनिवृत्तिकरणगुणस्थानद्वित्रिचतुर्त्थभागपर्य्यंतमाद गुणस्थाननवकदोळप्पुवु। अदु कारणमागि क्रोधादिकषायत्रयदोळु प्रत्येकमों भत्तुमों भत्तु गुणस्थानंगळुमेकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुरऽसंज्ञिपंचेंद्रिय संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळु पदिनाल्कुं पदिनाल्कुमप्पुवु। लोभकषायदोळमंते स्थावरकायमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानपर्य्यंतमाद गुणस्थानदशकमुं क्रोधाधिगळ्गे पेळ्दंत चतुर्द्दशजीवसमासेगळुमप्पुवेंदु

क्रो	मा	मा	लो
९	९	९	१०
१४	१४	१४	१४

परमागमदोळरियल्पडुवुवु।

थावरकायप्पहुडी मदिसुदअण्णाणयं विभंगो दु।
सण्णीपुण्णप्पहुडी सासणसम्मोत्ति णायव्वो ॥६८७॥

स्थावरकायप्रभृति मतिश्रुताज्ञानकं विभंगस्तु। संज्ञिपूर्णप्रभृति सासादनसम्यग्दृष्टिपर्य्यंतं ज्ञातव्यं॥

ज्ञानमार्गणेयोळु मतिश्रुताज्ञानद्वयं स्थावरकायमिथ्यादृष्टिप्रभृतिसासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानपर्य्यंतमेरडेरडुगुणस्थानदोळप्पुवु। एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुः पंचेंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळु प्रत्येकं पदिनाल्कु पदिनाल्कुमप्पुवु। विभंगज्ञानमुं संज्ञिपूर्णमिथ्यादृष्टियादियागि सासादनसम्यग्दृष्टिपर्य्यंतमेरडुगुणस्थानदोळप्पुवु। संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासेयोंदेयप्पुदु। एंदितु परमागमदोळरियल्पडुवुदु।

कषायमार्गणायां क्रोधमानमायाः स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणद्वित्रिचतुर्भागान्तम्। लोभः पुनः सूक्ष्मसांपरायान्तम्। तेन क्रोधत्रये गुणस्थानानि नव लोभे दश ज्ञेयानि। जीवसमासाः सर्वत्र चतुर्दशैव॥६८६॥

ज्ञानमार्गणायां मतिश्रुताज्ञानद्वयं स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादिसासादनान्तं ज्ञातव्यं तेन तत्र गुणस्थाने द्वे। जीवसमासाश्चतुर्दश। तु-पुनः विभङ्गज्ञानं संज्ञिपूर्णमिथ्यादृष्ट्यादिसासादनान्तं तत्र गुणस्थाने द्वे। जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एवैकः॥६८७॥

कषायमार्गणामें क्रोध, मान, माया, स्थावरकायमिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणके क्रमसे दूसरे, तीसरे और चौथे भागपर्यन्त होते हैं। लोभ सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानपर्यन्त होता है। इससे क्रोध, मान, मायामें नौ और लोभमें दस गुणस्थान होते हैं। जीवसमास सर्वत्र चौदह होते हैं॥६८६॥

ज्ञानमार्गणामें कुमति, कुश्रुतज्ञान स्थावरकायमिथ्यादृष्टिसे लेकर सासादनपर्यन्त जानना। इससे उनमें दो गुणस्थान होते हैं। जीवसमास चौदह होते हैं। विभंगज्ञान संज्ञिपर्याप्त मिथ्यादृष्टिसे लेकर सासादन पर्यन्त जानना। इससे उसमें भी दो गुणस्थान होते हैं। जीवसमास एक संज्ञीपर्याप्त ही होता है॥६८७॥

१. म °दोल्पेलल्पडुवुवु।

सण्णाणतिगं अविरदसम्मादी छट्ठगादि मणपज्जो ।
खीणकसायं जाव दु केवलणाणं जिणे सिद्धे ॥६८८॥

सज्ज्ञानत्रिकमसंयतसम्यग्दृष्ट्यादि षष्ठकादि मनःपर्य्यायः क्षीणकषायं यावत् केवलज्ञानं जिनेसिद्धे ॥

मतिश्रुतावधि सम्यज्ञानत्रितयमसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्विक्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंत मों भत्तु गुणस्थानंगळोळप्पुवु । संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्ताऽपर्य्याप्तजीवसमासेगळेरडेरडप्पुवु । मनःपर्य्यायज्ञानं षष्ठगुणस्थानवर्त्ति प्रमत्तसंयतनादियागि क्षीणकषायपर्य्यंतमेळु गुणस्थानदोळप्पुदु । संज्ञिपंचेंद्रिय-पर्य्याप्तजीवसमासमों देयक्कुं । केवलज्ञानं सयोगिकेवलियोळमयोगिकेवलियोळं सिद्धरोळमक्कुमल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासमुं समुद्घातजिननल्लि औदारिकमिश्रमुं कार्म्मणकाययोगमुमुळ्ळु-दरिंदमपर्य्याप्तजीवसमासमुं कूडि जीवसमासद्वयं संभविसुगुं—

कु । कु । वि । म । श्रु । अ । म । के
२ । २ । २ । ९ । ९ । ९ । ७ । २
१४ । १४ । १ । २ । २ । २ । १ । २

अयदोत्ति हु अविरमणं देसे देसो पमत्तइदरे य ।
परिहारो सामाइयच्छेदो छट्ठादि थूलोत्ति ॥६८९॥

असंयतपर्य्यंतमविरमणं देशे देशः प्रमत्ते इतरस्मिन्श्च । परिहारः सामायिकच्छेदोपस्था-पनौ षष्ठादिस्थूलपर्य्यंतं ॥

सुहुमो सुहुमकसाए संते खीणे जिणे जहक्खादं ।
संजममग्गणभेदा सिद्धे णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥६९०॥

सूक्ष्मः सूक्ष्मकषाये शांते क्षीणे जिने यथाख्यातः । संयममार्ग्गणाभेदाः सिद्धे न संति इति निर्दिष्टं ॥

संयममार्ग्गणेयोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गों डसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानपर्य्यंतं नाल्कुं गुणस्थानंगळोळविरमणमक्कुमल्लि पदिनाल्कुं जीवसमासंगळुमप्पुवु । देशसंयतगुणस्थानदोळु देश-

मत्यादिसम्यग्ज्ञानत्रयं असंयतादिक्षीणकषायान्तं तेन तत्र गुणस्थानानि नव । जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्त्या-पर्याप्तौ द्वौ । मनःपर्ययज्ञानं षष्ठादिक्षीणकषायान्तं तेन तत्र गुणस्थानानि सप्त जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एवैकः । केवलज्ञानं सयोगायोगयोः सिद्धे च । तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तसयोगापर्याप्तौ द्वौ ॥६८८॥

संयममार्गणायां अविरमणं मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतान्तचतुर्गुणस्थानेषु । तत्र जीवसमासाश्चतुर्दश । देशसंयमः

मति आदि तीन सम्यग्ज्ञान असंयतसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानपर्यन्त होते हैं इससे उनमें नौ गुणस्थान होते हैं । जीवसमास संज्ञिपर्याप्त अपर्याप्त दो होते हैं । मनःपर्ययज्ञान छठे गुणस्थानसे क्षीणकषाय पर्यन्त होता है अतः उसमें सात गुणस्थान होते हैं और जीव-समास एक संज्ञिपर्याप्त ही होता है । केवलज्ञान सयोगी, अयोगी और सिद्धोंमें होता है । उसमें संज्ञी पर्याप्त तथा समुद्घातगत सयोगीकी अपेक्षा संज्ञी अपर्याप्त ये दो जीवसमास होते हैं ॥६८८॥

संयममार्गणामें असंयम मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतपर्यन्त चार गुणस्थानोंमें होता

संयतमुमक्कुमल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासमों देयक्कुं । सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमंगळेरडुं प्रत्येकं प्रमत्त संयतगुणस्थानमादियागऽनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्य्यंतं नाल्कुं नाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासमुं आहारकापर्य्याप्तजीवसमासमुमितेरडेरडु जीवसमासंगळप्पुवु । परिहारविशुद्धिसंयमं प्रमत्तसंयतरोळमप्रमत्तसंयतरोळमक्कुमल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासमो दे यक्कुमेकें दोडे परिहारविशुद्धिसंयमऋद्धियुमाहारकऋद्धियुमोव्वनोळे संभविसवप्पुदरिदं । सूक्ष्मसांपरायसंयमं सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळेयक्कुमल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासमों देयक्कुं । यथाख्यातचारित्रमुपशांतकषायगुणस्थानदोळं क्षीणकषायगुणस्थानदोळं सयोगिकेवलिगुणस्थानदोळमयोगिकेवलिगुणस्थानदोळमितु नाल्कुं गुणस्थानंगळोळमक्कुमल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासमुं समुद्घातकेवलिय अपर्य्याप्तजीवसमासमुं कूडि जीवसमासद्वयमक्कुं । संयममार्गणाभेदंगळु सिद्धपरमेष्ठिगळोळु संभविसुववल्ले दु परमागमदोळ्पेळल्पट्टुदु ।

अ ।	दे ।	सा ।	छे ।	प ।	सू ।	य ।
४ ।	१ ।	४ ।	४ ।	२ ।	१ ।	४ ।
१४ ।	१ ।	२ ।	२ ।	१ ।	१ ।	२ ।

चउरक्खथावरविरदसम्मादिट्ठी दु खीणमोहोत्ति ।
चक्खु अचक्खू ओही जिणसिद्धे केवलं होदि ॥६९१॥

चतुरिंद्रियस्थावराविरतसम्यग्दृष्टितः क्षीणमोहपर्य्यंतं । चक्षुरचक्षुरवधयो जिनसिद्धे केवलं भवंति ॥

देशसंयतगुणस्थाने तत्र जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एव । सामायिकछेदोपस्थापनौ प्रमत्ताद्यनिवृत्तिकरणान्तचतुर्गुणस्थानेषु । तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्ताहारकपर्याप्तौ द्वौ । परिहारविशुद्धिसंयमः प्रमत्ताप्रमत्तयोरेव । तत्र जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एव तेन सह आहारकर्द्धेरेकत्वासंभवात् । सूक्ष्मसापरायसंयमः सूक्ष्मसापरायगुणस्थाने तत्र जीवसमासः संज्ञिपर्याप्तः । यथाख्यातचारित्रं उपशान्तकषायादिचतुर्गुणस्थानेषु तत्र जोवसमासौ संज्ञिपर्याप्तसमुद्घातकेवल्यपर्याप्तौ द्वौ । संयममार्गणाभेदाः सिद्धे न संतीति परमागमे निर्दिष्टम् ॥६८९-६९०॥

है उसमें चौदह जीवसमास होते हैं। देशसंयम देशसंयत गुणस्थानमें होता है उसमें जीवसमास एक संज्ञिपर्याप्त ही होता है। सामायिक और छेदोपस्थापना प्रमत्तसे लेकर अनिवृत्तिकरणपर्यन्त चार गुणस्थानोंमें होते हैं। उनमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त और आहारक मिश्रकी अपेक्षा संज्ञि अपर्याप्त होते हैं। परिहारविशुद्धिसंयम प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंमें ही होता है। उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त ही होता है क्योंकि परिहारविशुद्धि संयमके साथ आहारकऋद्धि नहीं होती। सूक्ष्मसाम्परायसंयत सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें होता है। उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त ही होता है। यथाख्यातचारित्र उपशान्तकषाय आदि चार गुणस्थानोंमें होता है। उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त तथा समुद्घात केवलीकी अपेक्षा अपर्याप्त इस तरह दो होते हैं। संयममार्गणाके भेद सिद्धोंमें नहीं होते ऐसा परमागममें कहा है ॥६८९-६९०॥

दर्शनमार्ग्गणेयोळु चक्षुर्द्दर्शनं चतुरिंद्रियमिथ्यावृष्टि मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्यंतं पन्नेरडु गुणस्थानंगळोळप्पुदल्लि चतुरिंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळारप्पुवु । अचक्षुर्द्दर्शनं स्थावरकायमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं पंनेरडुं गुणस्थानंगळोळप्पुवल्लि पदिनाल्कुं जीवसमासेगळप्पुवु । अवधिदर्शनमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमादियागि क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतमोंभत्तु गुणस्थानंगळोळप्पुवल्लि संज्ञिपंचेंद्रिय पर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळेरडेयप्पुवु । केवलदर्शनं सयोगिकेवलिययोगिकेवलिगळेंबेरडुं गुणस्थानंगळोळप्पुदल्लि संज्ञि चेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासेयुं समुद्घातकेवलिय अपर्य्याप्तजीवसमासमुमितेरडु जीवसमासेगळप्पुवु — च । अ । अ । के । गुणस्थानातीतरप्प सिद्धरोळं केवलदर्शनमक्कुं ॥

१२ । १२ । ९ । २ ।

६ । १४ । २ । २ ।

थावरकायप्पहुडी अविरदसम्मोत्ति असुहतियलेस्सा ।

सण्णीदो अपमत्तो जाव दु सहतिण्णिलेस्साओ ॥६९२॥

स्थावरकायप्रभृत्यविरतसम्यग्दृष्टिपर्य्यंतमशुभत्रयलेश्याः । संज्ञितोऽप्रमत्तं यावत् शुभत्रयलेश्याः ॥

लेश्यामार्ग्गणेयोळु अशुभत्रयलेश्येगळु स्थावरकायमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानपर्य्यंतं नोल्कुं गुणस्थानंगळोळु संभविसुववल्लि एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्ताऽपर्य्याप्तभेदविभिन्नजीवसमासेगळु पदिनाल्कुमप्पुवु । तेजःपद्मलेश्येगळु संज्ञिमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि अप्रमत्तगुणस्थानपर्य्यंतमेळु गुणस्थानंगळोळप्पुवल्लि संज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळेरडेरडप्पुवु ।

दर्शनमार्गणाया चक्षुर्दर्शनं चतुरिन्द्रियमिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तं । तत्र जीवसमासाः चतुरिन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ता: षट् । अचक्षुर्दर्शनं स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तं तत्र जीवसमासाश्चतुर्दश । अवधिदर्शनं असंयतादिक्षीणकषायान्तं तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ । केवलदर्शनं सयोगायोगगुणस्थानयोः तत्र जीवसमासौ केवलज्ञानोक्तौ द्वौ । सिद्धेऽपि केवलदर्शनं भवति ।

लेश्यामार्गणाया अशुभलेश्यात्रयं स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतान्तं तत्र जीवसमासाः चतुर्दश । तेजःपद्मलेश्ये संज्ञिमिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्त तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ ॥६९२॥

दर्शनमार्गणामें चक्षुदर्शन चतुरिन्द्रिय मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त होता है। उसमें जीवसमास चौइन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय, असंज्ञि पंचेन्द्रिय इनके पर्याप्त और अपर्याप्त के भेदसे छह होते हैं। अचक्षुदर्शन स्थावरकाय मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त होता है। उसमें जीवसमास चौदह होते हैं। अवधिदर्शन असंयतसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानपर्यन्त होता है। उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं। केवलदर्शन सयोगी-अयोगी गुणस्थानोंमें होता है। उसमें दो जीवसमास होते हैं जो केवलज्ञानमें होते हैं। सिद्धोंमें भी केवलदर्शन होता है ॥६९१॥

लेश्यामार्गणामें तीन अशुभ लेश्या स्थावरकाय मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत गुणस्थान पर्यन्त होती है उनमें जीवसमास चौदह हैं। तेजोलेश्या और पद्मलेश्या संज्ञिमिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त होती हैं। उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त और संज्ञिअपर्याप्त होते हैं ॥६९२॥

णवरि य सुक्का लेस्सा सजोगिचरिमोत्ति होदि णियमेण ।
गयजोगिम्मि वि सिद्धे लेस्सा णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥६९३॥

विशेषोस्ति शुक्ललेश्या सयोगचरमपर्य्यंतं भवति नियमेन । गतयोगेऽपि सिद्धे लेश्या न संतीति निर्द्दिष्टं ॥

शुक्ललेश्येयोळु विशेषमुंटावुदेंदोडे शुक्ललेश्यासंज्ञिपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सयोगिकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतं पदिमूरुं गुणस्थानंगळोळप्पुवेंबुदल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्त-जीवसमासमुं समुद्घातकेवलिय औदारिकमिश्रकार्म्मणकाययोगकालकृतापर्य्याप्तजीवसमासमुं कूडि जीवसमासद्वयमक्कुं नियमदिदं । कृ । नी । क । ते । प । शु गतयोगरप्प अयोगिकेवलि-

कृ	नी	क	ते	प	शु
४	४	४	७	७	१३
१४	१४	१४	२	२	२

गळोळं सिद्धपरमेष्ठिगळोळं लेश्येगळिल्लमेंदितु परमागमदोळ्पेळल्पट्टुदु ।

थावरकायप्पहुडी अजोगिचरिमोत्ति होंति भवसिद्धा ।
मिच्छाइट्ठिट्ठाणे अभव्वसिद्धा हवंतित्ति ॥६९४॥

स्थावरकायप्रभृत्ययोगिचरमसमयपर्य्यंतं भवंति भव्यसिद्धाः । मिथ्यादृष्टिस्थाने अभव्य-सिद्धा भवंतीति ॥

भव्यमार्ग्गणेयोळु स्थावरकायमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि अयोगिकेवलिचरमगुणस्थान-पर्य्यंतं पदिनाल्कुं गुणस्थानंगळोळु भव्यसिद्धरुगळप्परल्लि पदिनाल्कुं जीवसमासेगळप्पुवु । अभव्य-सिद्धरुगळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोंदरोळेयप्परु । अल्लि पदिनाल्कुं जीवसमासेगळप्पुवु भ । अ

भ	अ
१४	१
१४	१४

मिच्छो सासणमिस्सो सगसगठाणम्मि होदि अयदादो ।
पढमुवसमवेदगसम्मत्तदुगं अप्पमत्तोत्ति ॥६९५॥

मिथ्यादृष्टिः सासादनो मिश्रः स्वस्वस्थाने भवति असंयतात्प्रथमोपशमवेदकसम्यक्त्वद्विकम-प्रमत्तपर्य्यंतं ॥

शुक्ललेश्यायां विशेषः । स कः ? सा लेश्या संज्ञिपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगान्तं भवति तत्र जीव-समासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वावेव नियमेन केवल्यपर्याप्तस्य अपर्याप्त एवान्तर्भावात् । अयोगिजिने सिद्धे च लेश्या न सन्तीति परमागमे प्रतिपादितम् ॥६९३॥

भव्यमार्गणायां भव्यसिद्धाः स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्ययोगान्त भवन्ति । अभव्यसिद्धाः मिथ्यादृष्टिगुण-स्थाने एव भवन्ति इत्युभयत्र जीवसमासाश्चतुर्दश ॥६९४॥

शुक्ललेश्यामें विशेष है । वह संज्ञिमिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगीपर्यन्त होती है । उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त और संज्ञिअपर्याप्त दो ही नियमसे होते हैं । केवलिसमुद्घातगत अपर्याप्तका अन्तर्भाव अपर्याप्तमें ही हो जाता है । अयोग केवली और सिद्धोंमें लेश्या नहीं होती ऐसा परमागममें कहा है ॥६९३॥

भव्यमार्गणामें भव्य स्थावरकाय मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगकेवली पर्यन्त होते हैं । अभव्य मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं । दोनोंमें जीवसमास चौदह ही होते हैं ॥६९४॥

सम्यक्त्वमार्ग्गणेयोळु मिथ्यादृष्टियुं सासादननुं मिश्रनुं तंतम्म गुणस्थानदोळेयक्कुमल्लि मिथ्यादृष्टियोळु पदिनाल्कु जीवसमासेगळप्पवु। सासादनोळु येकेंद्रियबादरापर्य्याप्त द्वींद्रियापर्य्याप्त त्रींद्रियापर्य्याप्तचतुरिंद्रियापर्य्याप्तं संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तापर्याप्ता संज्ञिपंचेंद्रियापर्य्याप्तजीवसमासेगळेळप्पुवु । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वविराधकनप्प सासादननुमों ळनें बाचार्य्यापेक्षेयिदं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासेयुं देवापर्य्याप्तजीवसमासेयुमेरडप्पुवु । मिश्रनोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासेयों देयक्कुं । प्रथमोपशमसम्यक्त्वमु वेदकसम्यक्त्वमुमसंयतसम्यग्दृष्टियागियागऽप्रमत्तपर्य्यंतं नाल्कुं नाल्कुं गुणस्थानंगळोळप्पुवु । अल्लि प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळु मरणमिल्लप्पुदरिंदं संज्ञिपर्य्याप्तपंचेंद्रियजीवसमासेयों देयक्कुं । वेदकसम्यक्त्वदोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्याप्तजीवसमासेगळेरडप्पुवेकें दोडे घर्म्मेय नारकापर्य्याप्तनुं भवनत्रयवर्ज्जितदेवापर्य्याप्तनुं भोगभूमिजमनुष्यतिर्य्यंचापर्य्याप्तनुं वेदकसम्यग्दृष्टियोळनप्पुदरिंदं ।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वक्के पेळ्वपं ।

> बिदियुवसमसम्मत्तं अविरदसम्मादि संतमोहो त्ति ।
> खइगं सम्मं च तहा सिद्धोत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥६९६॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमविरतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशांतमोहगुणस्थानपर्य्यंतं क्षायिकसम्यक्त्वं च तथा सिद्धपर्य्यंत जिनैर्न्निर्द्दिष्टं ॥

सम्यक्त्वमार्गणाया मिथ्यादृष्टि. सासादनः मिश्रश्च स्वस्वगुणस्थाने एव भवति । तत्र मिथ्यादृष्टौ जीवसमासाश्चतुर्दश । सासादने बादरैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञ्यपर्याप्तसंज्ञिपर्याप्ताः सप्त । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वविराधकस्य सासादनत्वप्राप्तिपक्षे च संज्ञिपर्याप्तदेवापर्याप्तावपि[1] द्वौ । मिश्रे संज्ञिपर्याप्तः । प्रथमोपशमवेदकसम्यक्त्वे द्वे असंयताद्यप्रमत्तान्त स्त. । तत्र जीवसमासः प्रथमोपशमसम्यक्त्वे मरणाभावात् संज्ञिपर्याप्त एवैकः । वेदकसम्यक्त्वे संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । घर्मानारकस्य भवनत्रयवर्जितदेवस्य भोगभूमिनरतिरश्चोश्च अपर्याप्तत्वेऽपि तत्संभवात् ॥६९५॥ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वस्याह—

सम्यक्त्वमार्गणामें मिथ्यादृष्टि, सासादन, और मिश्र अपने-अपने गुणस्थानमें होते हैं। मिथ्यादृष्टिमें जीवसमास चौदह होते हैं। सासादनमें बादर एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञिअपर्याप्त तथा संज्ञिपर्याप्तअपर्याप्त ये सात जीवसमास होते हैं। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकी विराधना करके सासादनको प्राप्त होनेके पक्षमें संज्ञिपर्याप्त और देवअपर्याप्त दो जीवसमास होते हैं। मिश्रगुणस्थानमें संज्ञिपर्याप्त जीवसमास होता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व और वेदकसम्यक्त्व असंयतसे अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त होते हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें मरणका अभाव होनेसे जीवसमास एक संज्ञिपर्याप्त ही है। वेदक सम्यक्त्वमें संज्ञिपर्याप्त, अपर्याप्त दो होते हैं। क्योंकि घर्मा नामक प्रथम नरकमें भवनत्रिकको छोड़कर देवोंमें और भोगभूमिया मनुष्य तथा तिर्यंचोंमें अपर्याप्त दशामें भी वेदक सम्यक्त्व होता है ॥६९५॥

द्वितीयोपशम सम्यक्त्वको कहते हैं—

1. मु. °प्ताविति द्वौ ।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमसंयताद्युपशांतकषायगुणस्थानपर्य्यंतमें दु गुणस्थानंगळोळक्कुमल्लि-युपशमश्रेण्यवरोहणदोळऽप्रमत्तप्रमत्तदेशसंयतासंयतरोळु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वसंभवमें दरियुवेके-दोडे उपशमश्रेण्यारोहणावरोहणकालमं नोडलु तदुपशमसम्यक्त्वकालं संख्यातगुणमक्कुमेत्तलानुं चारित्रावरणोदयदिदं देशसंयतासंयतरोळु पतनमुटप्पुदरिदं। अल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमा-सेयुं देवासंयतापर्य्याप्तजीवसमासेयुमितेरडु जीवसमासेगळप्पुवु। क्षायिकसम्यक्त्वमसंयतादियुम-योगिकेवलिगुणस्थानमवसानमागि पंनोंदुं गुणस्थानंगळोळप्पुदल्लि। संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तभुज्य-मानजीवसमासेयुं बद्धायुष्यापेक्षेयिदं घर्म्मेय नारकापर्य्याप्तनु भोगभूमिजमनुष्यतिर्य्यंचासंयता-पर्य्याप्तरुं देवासंयतापर्याप्तनु संभविसुगुमप्पुदरिनपर्य्याप्तजीवसमासेयुमितेरडुजीवसमासे-गळप्पुवु। संदृष्टिरचने :—

मि सा मि द्वि उ प्र वे क्षा गुणस्थानातीतरप्प सिद्धपरमेष्ठिगळोळं
१ १ १ ८ । ४ ४ ११
१४ ७ । १ २ । १ २ २

क्षायिकसम्यक्त्वमक्कुमें वितु जिनस्वामिगळिवं पेळल्पट्टुदु ॥

सण्णी सण्णिप्पहुडी खीणकसाओत्ति होदि णियमेण।
थावरकायप्पहुडी असण्णित्ति हवे असण्णी दु ॥६९७॥

संज्ञी संज्ञिप्रभृति क्षीणकषायपर्य्यंतं भवति नियमेन। स्थावरकायप्रभृति असंज्ञिपर्य्यंतं भवेदसंज्ञी तु ॥

संज्ञिमार्ग्गणेयोळु संज्ञिजीवं संज्ञिमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि क्षीणकषायगुणस्थान-पर्य्यंतं पन्नेरडुं गुणस्थानंगळोळप्पुदु अल्लि संज्ञिपचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासद्वयमक्कु। तु मत्ते असंज्ञिजीवस्थावरकायमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि पंचेंद्रियासंज्ञिमिथ्यादृष्टिपर्य्यंतं मिथ्या-

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं असयतादयुपशान्तकषायान्तं भवति। अप्रमत्ते उत्पाद्य उपरि उपशान्तकषायान्तं गत्वा अधोवतरणे असयतान्तमपि तत्संभवात्। तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तदेवासयतापर्याप्तौ द्वौ। क्षायिक-सम्यक्त्वं असंयताद्ययोगान्तम्। तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तः बद्धायुष्कापेक्षया धर्मानारकभोगभूमिनरतिर्यग्वै-मानिकापर्याप्तश्चेति द्वौ। सिद्धेऽपि क्षायिकसम्यक्त्वं स्यादिति जिनैरुक्तम् ॥६९६॥

संज्ञिमार्गणाया संज्ञिजीवः संज्ञिमिथ्यादृष्टयादिक्षीणकषायान्त भवति तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व असंयतसे उपशान्तकषाय गुणस्थानपर्यन्त होता है; क्योंकि अप्रमत्त गुणस्थानमें इस द्वितीयोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करके ऊपर उपशान्तकषाय पर्यन्त जाकर नीचे उतरनेपर असंयत पर्यन्त भी उसका अस्तित्व रहता है। उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त तथा देव असंयत अपर्याप्त दो होते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व असंयतसे अयोगी पर्यन्त होता है। उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त होता है। किन्तु परभवकी आयु बाँधनेकी अपेक्षा प्रथम नरक, भोगभूमिया मनुष्य तिर्यंच और वैमानिक सम्बन्धी अपर्याप्त होनेसे दो होते हैं। सिद्धोंमें भी क्षायिक सम्यक्त्व जिनदेवने कहा है ॥६९६॥

संज्ञीमार्गणामें संज्ञीजीव संज्ञिमिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानपर्यन्त होता है। उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त और अपर्याप्त दो होते हैं। असंज्ञीजीव स्थावरकायसे

दृष्टिगुणस्थानमो देयक्कुमल्लि संज्ञिजीवसंबंधिपर्य्याप्तापर्याप्तजीवसमासद्वयमुळियलुळिद द्वादश-जीवसमासेगळनितुमप्पुवु नियमदिदं सं । अ
१२ । १ ।
२ । १२ ।

थावरकायप्पहुडो सजोगिचरिमोत्ति होदि आहारी ।
कम्मइय अणाहारी अजोगिसिद्धे वि णायव्वो ॥६९८॥

स्थावरकायप्रभृति सयोगिचरमपर्य्यंतं भवत्याहारी । कार्म्मणे अनाहारी अयोगिसिद्धेपि ज्ञातव्यः ॥

आहारमार्ग्गणेयोळु स्थावरकायमिथ्यादृष्टियादियागि सयोगकेवलिपर्य्यंतं पदिमूलं गुणस्थानंगळोळाहारिगळोळु आहारियक्कुमल्लि सर्व्वमुं जीवसमासेगळु पदिनाल्कुमप्पुवु । विग्रहगतिकार्म्मणकाययोगद मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानत्रयमुं प्रतरलोकपूरणसमुद्घातसयोगिगुणस्थानमुमयोगिगुणस्थानमुमितुगुणस्थानपंचकदोळमनाहारियक्कुमल्लि एकेंद्रियबादरसूक्ष्मापर्य्याप्तजीवसमासद्वयमुं द्वित्रिचतुरिंद्रियापर्य्याप्तजीवसमासत्रयमुं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्याप्तद्वयमुमसंज्ञ्यपर्य्याप्तजीवसमासेयुमितु जीवसमासाष्टकमक्कुं आ । अ
१३ । ५
१४ । ८
अनंतरं गुणस्थानंगळोळु जीवसमासयं पेळ्दपरु :—

मिच्छे चोद्दसजीवा सासण अयदे पमत्तविरदे य ।
सण्णिदुगं सेसगुणे सण्णी पुण्णो दु खीणोत्ति ॥६९९॥

मिथ्यादृष्टौ चतुर्द्दशजीवाः सासादने अयते प्रमत्तविरते च । संज्ञिद्वयं शेषगुणे संज्ञिपूर्णस्तु क्षीणकषायपर्य्यंतं ॥

द्वौ । तु—पुन असंज्ञिजीव. स्थावरकायाद्यसंज्ञ्यन्तमिथ्यादृष्टिगुणस्थाने एव स्यान्नियमेन तत्र जीवसमासा द्वादश सज्ञिनो द्वयाभावात् ॥६९७॥

आहारमार्गणाया स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगान्तं आहारी भवति । तत्र जीवसमासाश्चतुर्दश मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतसयोगाना कार्मणयोगावसरे अयोगिसिद्धयोश्च अनाहारो ज्ञातव्यः । तत्र जीवसमासा अपर्याप्ताः सप्त । अयोगस्य चैक. ॥६९८॥ अथ गुणस्थानेषु जीवसमासानाह—

असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होता है । नियमसे उसमें बारह जीवसमास होते हैं क्योंकि संज्ञी सम्बन्धी दो जीवसमास नहीं होते ॥६९७॥

आहारमार्गणामें स्थावरकाय मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवलिपर्यन्त आहारी होता है । उसमें जीवसमास चौदह होते हैं । मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत, और सयोगकेवली के कार्मणयोगके समय तथा अयोगी और सिद्धोंमें अनाहारी जानना । उसमें जीवसमास अपर्याप्त सम्बन्धी सात होते हैं और अयोगीके एक पर्याप्त होता है ॥६९८॥

अब गुणस्थानोंमें जीवसमासोंको कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु पदिनाल्कुं जीवसमासेगळप्पुवु । सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं प्रमत्तविरतनोळं च शब्दिदं सयोगकेवलिगुणस्थानदोळमितु नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासद्वयं प्रत्येकमक्कुं । शेषमिश्रदेशसंयताप्रमत्तापूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायक्षीणकषायगुणस्थानाष्टकदोळमपि-शब्दिदमयोगिगुणस्थानदोळमितु नवगुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासेयो वेयक्कुं :—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
१४	२	१	२	१	२	१	१	१	१	१	१	२	१

अनंतरं मार्ग्गणास्थानंगळोळु जीवसमासेयं सूचिसिदपं :—

तिरियगदीए चोद्दस हवंति सेसेसु जाण दोद्दो दु ।
मग्गणठाणस्सेवं णेयाणि समासठाणाणि ॥७००॥

तिर्य्यग्गतौ चतुर्द्दश भवंति शेषेषु जानीहि द्वौ द्वौ तु । मार्ग्गणास्थानस्यैवं ज्ञेयानि समासस्थानानि ॥

तिर्य्यग्गतियोळु जीवसमासंगळु पदिनाल्कुमप्पुवु । शेषनारकदेवमनुष्यगतिगळोळु प्रत्येकं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासद्वयमक्कुं । तु मत्ते एवमी प्रकारदिंद मार्ग्गणास्थानंगळेनितोळवनितक्कुं । जीवसमासस्थानंगळु यथायोग्यमागि मुंपेळ्द क्रमदिनरियल्पडुवुवु ।

अनंतरं गुणस्थानंगळोळु पर्य्याप्तिप्राणंगळं निरूपिसिदपरु :—

पज्जत्ती पाणावि य सुगमा भाविंदियं ण जोगिम्मि ।
तहि वाचुस्सासाउगकायत्तिगदुगमजोगिणो आऊ ॥७०१॥

पर्य्याप्तयः प्राणाः अपि च सुगमाः भावेंद्रियं न योगिनि । तस्मिन्वागुच्छ्वासायुः कायास्त्रिकद्विकमयोगिनः आयुः ॥

मिथ्यादृष्टौ जीवसमासाश्चतुर्दश, सासादने अविरते प्रमत्ते चशब्दात् सयोगे च संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । शेषाष्टगुणस्थानेषु 'दु'शब्दात् अयोगे च संज्ञिपर्याप्त एवैकः ॥६९९॥ अथ मार्गणास्थानेषु तान् सूचयति—

तिर्यग्गतौ जीवसमासाश्चतुर्दश भवन्ति शेषगतिषु संज्ञपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । तु–पुनः सर्वमार्गणास्थानाना यथायोग्यं प्रागुक्तक्रमेण जीवसमासा ज्ञातव्याः ॥७००॥ अथ गुणस्थानेषु पर्याप्तिप्राणानाह—

मिथ्यादृष्टिमें चौदह जीवसमास होते हैं । सासादन, अविरत, प्रमत्त और च शब्दसे सयोगीमें संज्ञिपर्याप्त और अपर्याप्त दो जीवसमास होते हैं । शेष आठ गुणस्थानोंमें और अपि शब्दसे अयोगकेवलीमें एक संज्ञिपर्याप्त ही होता है ॥६९९॥

अब मार्गणाओंमें जीवसमास कहते हैं :—

तिर्यंचगतिमें चौदह जीवसमास होते हैं । शेष गतियोंमें संज्ञीपर्याप्त, अपर्याप्त दो जीव-समास होते हैं । इस प्रकार सब मार्गणास्थानोंमें यथायोग्य पूर्वोक्त क्रमसे जीवसमास जानना ॥७००॥

गुणस्थानोंमें पर्याप्ति और प्राण कहते हैं—

१. मु. °षु अपित्रयदात् ।

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदलगोंडु पदिनाल्कुं गुणस्थानंगळोळु पर्य्याप्तिगळुं प्राणंगळुं पृथक्कागि पेळल्पडवेकेंदोडे सुगमंगळप्पुदरिंदमवं तेंदोडे क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं प्रत्येकमारु-पर्य्याप्तिगळं दशप्राणंगळुमप्पुवु। सयोगिकेवलिभट्टारकनोळु भावेंद्रियमिल्ल। द्रव्येंद्रियापेक्षेयिनारुं पर्य्याप्तिगळोळवु वाग्बलप्राणमुमुच्छ्वासनिश्वासप्राणमुमायुःप्राणमुं कायबलप्राणमेंबी नाल्कुं प्राणंगळप्पुवु। उळिदिंद्रिय प्राणंगळय्दुं मनोबलप्राणमुं संभविसवु। आ सयोगकेवलिगे वाग्योगं निलुत्तिरलु मूरु प्राणंगळप्पुवु । उच्छ्वासनिःश्वासमुपरतमागुत्तिरलुमेरडेप्राणंगळप्पुवु। अयोगि भट्टारकनोळु आयुष्यप्राणमों देयक्कुं । पूर्व्वसंचितनोकर्म्मकर्म्मसंचयं प्रतिसमयमेकैकनिषेकस्थिति-गळिसि चरमसमयदोळु किंचिन्न्यूनद्व्यर्द्धगुणहानिमात्रनोकर्म्मसंचयमुं कर्म्मसंचयमुमुदयिसि द्रव्यार्त्थिकनयापेक्षेयिदमयोगिचरमसमयदोळु कर्म्ममुं नोकर्म्ममुं केट्टवु पर्य्यायार्त्थिकनयापेक्षेयिन-नंतरसमयदोळिकडुत्तिरलु लोकाग्रनिवासि सिद्धपरमेष्ठियप्पनें बुदु तात्पर्य्यं।

अनंतर गुणस्थानंगळोळु संज्ञेगळं पेळ्दपरु :—

छट्ठोत्ति पढमसण्णा सकज्ज सेसा य कारणावेक्खा ।
पुव्वो पढमणियट्टी सुहुमोत्ति कमेण सेसाओ ॥७०२॥

षष्ठपर्य्यंतं प्रथमसंज्ञा सकार्य्या शेषाश्च कारणापेक्षाः। अपूर्व्वप्रथमानिवृत्ति सूक्ष्मपर्य्यंतं क्रमेण शेषाश्च ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि प्रमत्तगुणस्थानपर्य्यंतमूरुं गुणस्थानंगळोळु सकार्य्यमप्पा-हारादिचतुःसंज्ञेगळुमप्पुवा षष्ठनल्लि आहारसंज्ञे व्युच्छित्तियाय्तु। उपरितनगुणस्थानदोळऽभावमं

चतुर्दशगुणस्थानेषु पर्याप्तयः प्राणाश्च पृथक् नोच्यन्ते सुगमत्वात्। तथाहि—क्षीणकषायपर्यन्तं षट्पर्याप्तयः दश प्राणाः। सयोगजिने भावेन्द्रियं न, द्रव्येन्द्रियापेक्षया षट्पर्याप्तयः वागुच्छ्वासनिश्वासायु-कायप्राणाश्चत्वारि भवन्ति। शेषेन्द्रियमनःप्राणाः षट् न सन्ति। तत्रापि वाग्योगे विश्रान्ते त्रयः। पुनः उच्छ्वासनिश्वासे विश्रान्ते द्वौ। अयोगे आयुः प्राण एकः। प्राक्संचितनोकर्मकर्मसचयः प्रतिसमयमेकैकनिषेकं गलन् किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रो द्रव्यार्थिकनयेन अयोगिचरमे विनश्यति पर्यायार्थिकनयेन अनन्तरसमये एवेति तात्पर्यम् ॥७०१॥ अथ गुणस्थानेषु संज्ञा आह—

मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तान्तं सकार्याः आहारादिचतस्रः संज्ञा भवन्ति। षष्ठगुणस्थाने आहारसंज्ञा

चौदह गुणस्थानोंमें पर्याप्ति और प्राण पृथक् नहीं कहे हैं क्योंकि सुगम है। यथा— क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त छह पर्याप्तियाँ और दस प्राण होते हैं। सयोगकेवलीमें भावेन्द्रिय नहीं है। उनके द्रव्येन्द्रियकी अपेक्षा छह पर्याप्तियाँ हैं और वचनबल, उच्छ्वास-निश्वास, आयु और कायबल ये चार प्राण होते हैं। शेष इन्द्रियाँ और मन ये छह प्राण नहीं हैं। उन चार प्राणोंमें-से भी वचनयोगके रुक जानेपर तीन रहते हैं, पुनः उच्छ्वास-निश्वासका निरोध होनेपर दो रहते हैं। अयोगकेवलीके एक आयुप्राण होता है। पूर्व संचित कर्म-नोकर्मका संचय प्रतिसमय एक-एक निषेक गलते-गलते किंचित् न्यून डेढ़ गुणहानि प्रमाण रहता है। सो द्रव्यार्थिक नयसे तो अयोगीके अन्तिम समयमें नष्ट होता है और पर्यायार्थिक नयसे अनन्तर समयमें नष्ट होता है ॥७०१॥

गुणस्थानोंमें संज्ञा कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त आहार आदि चारों संज्ञाएँ कार्यरूपमें

व्युच्छित्तियें बुवु, मेले अप्रमत्तादिगळोळु कारणास्तित्वापेक्षेयिदं । अपूर्वकरणपर्य्यंतं भयमैथुनपरिग्रह संज्ञेगळु कार्य्यरहितंगळप्पुवु । आ अपूर्व्वकरणनोळु भयसंज्ञे व्युच्छित्तियाकुदु अनिवृत्तिकरणप्रथमभागं सवेदभागे आ भागे पर्य्यंतं कार्य्यरहितंगळप्प मैथुनपरिग्रहसंज्ञेगळप्पुवु । आ अनिवृत्तिकरणप्रथमभागकालदोळु मैथुनसंज्ञे व्युच्छित्तियाकुदु । सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु परिग्रह संज्ञे व्युच्छित्तियाकुदु । मेले उपशांतादिगुणस्थानंगळोळु कार्य्यरहितमादोडं संज्ञेगळिल्ल एकें दोडे "कारणाभावे कार्य्यस्याप्यभावः" एंबी न्यायदिदं संज्ञेगळभावमक्कुं :—

मि ।	सा ।	मि ।	अ ।	दे ।	प्र ।	अ ।	अ ।	अ ।	सू ।	उ ।	क्षी ।	स ।	अ ।
४ ।	४ ।	४ ।	४ ।	४ ।	४ ।	३ ।	३ ।	२ ।	१ ।	० ।	० ।	० ।	० ।

मग्गण उवजोगावि य सुगमा पुव्वं परूविदत्तादो ।
गदियादिसु मिच्छादी परूविदे रूविदा होंति ॥७०३॥

मार्ग्गणोपयोगा अपि च सुगमाः पूर्व्वं प्ररूपितत्वात् । गत्यादिषु मिथ्यादृष्टयादौ प्ररूपिते रूपिता भवंति ॥

गुणस्थानंगळ मेले मार्ग्गणेगळुमं उपयोगमुमं पेळवातं सुगममें बु पेळवुदिल्लवेकें दोडे पूर्व्वमुन्नं प्ररूपितमप्पुदरिदं । आवेडेयोळु प्ररूपितमादुदें दोडे गत्यादिमार्ग्गणास्थानंगळोळु मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळुं जीवसमासेगळुं पेळल्पट्टवदु कारणमागियल्लि पेळल्पड्डुत्तिरलिल्लियुं पेळल्पट्टवेयप्पुवें दरिवुदु । आदोडं मंदबुद्धिगळनुग्रहार्त्थं पेळ्दपेमुमदें तें दोडे :—नरकादिगतिनाम-

व्युच्छिन्ना । शेषास्तिस्र अप्रमत्तादिषु कारणास्तित्वापेक्षया अपूर्वकरणान्तं कार्यरहिता भवन्ति । तत्र भयसंज्ञा व्युच्छिन्ना । अनिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागान्तं कार्यरहिते मैथुनपरिग्रहसंज्ञे स्तः । तत्र मैथुनसंज्ञा व्युच्छिन्ना । सूक्ष्मसांपराये परिग्रहसंज्ञा व्युच्छिन्ना । उपरि उपशान्तादिषु कार्यरहिता अपि संज्ञा न संति कारणाभावे कार्यस्याप्यभावात् ॥७०२॥

गुणस्थानेषु मार्गणा उपयोगाश्च वक्तु सुगमा इति नोच्यन्ते पूर्वं प्ररूपितत्वात् । क्वेति चेत् ? मार्गणासु गुणस्थानजीवसमासेषु उक्तेषु उक्ता भवन्ति । तथापि मन्दबुद्धयनुग्रहार्थमुच्यन्ते तद्यथा—

रहती हैं । छठे गुणस्थानमें आहार संज्ञाका विच्छेद हो जाता है । शेष तीन संज्ञा अप्रमत्त आदिमें कारणका सद्भाव होनेसे हैं वैसे कार्यरहित हैं । अपूर्वकरणमें भय संज्ञाका विच्छेद हो जाता है । अनिवृत्तिकरणके प्रथम सवेद भाग पर्यन्त कार्यरहित मैथुन और परिग्रह संज्ञा रहती है । वहाँ मैथुन संज्ञाका विच्छेद हो जाता है । सूक्ष्म साम्परायमें परिग्रह संज्ञाका विच्छेद हो जाता है । ऊपर उपशान्त कषाय आदिमें कार्यरहित भी संज्ञा नहीं है क्योंकि कारणके अभावमें कार्यका भी अभाव हो जाता है ॥७०२॥

गुणस्थानोंमें मार्गणा और उपयोगका कथन सरल होनेसे नहीं कहा है । पहले कह आये हैं क्योंकि मार्गणाओंमें गुणस्थान और जीवसमासके कहनेसे उनका कथन हो जाता है । फिर भी मन्द बुद्धियोंके अनुग्रहके लिए कहते हैं—

कर्म्मोदयजनितनारकापर्य्यायंगळे गतिगळप्पुदरिदं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तापर्य्याप्त नारकरुं पर्य्याप्तापर्य्याप्त तिरियंचरुं पर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरुं पर्य्याप्तापर्य्याप्तदेवर्क्कळुमितु नाल्कुं गतिजीवरुमप्परु । सासादनगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तनारकरुं पर्य्याप्तापर्य्याप्ततिर्य्यंचरुं पर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरुं पर्य्याप्तापर्य्याप्तदेवर्क्कळुमप्परु । मिश्रगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तनारकरुं पर्य्याप्ततिर्य्यंचरुं पर्य्याप्तमनुष्यरु पर्य्याप्तदेवर्क्कळुमप्परु । असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु घर्म्मेय पर्य्याप्तापर्य्याप्तनारकरुळिद षड्भूमिगळ पर्य्याप्तनारकरु भोगभूमिजपर्य्याप्ताऽपर्य्याप्ततिर्य्यंचरुं कर्म्मभूमिय पर्य्याप्ततिर्य्यंचरुं भोगभूमिजपर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरुं कर्म्मभूमिजपर्य्याप्तापर्य्याप्त-मनुष्यरुं भवनत्रयवर्जितपर्य्याप्ताऽपर्य्याप्तदेवर्क्कळुं भवनत्रयपर्य्याप्तदेवर्क्कळुं संभविसुवरु । देशसंयतगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तकर्म्मभूमिजतिर्य्यंचरुं मनुष्यरुं संभविसुवरु । प्रमत्तगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तमनुष्यरुमाहारकऋद्धिप्राप्तप्रमत्तापेक्षेयिंदमाहारकशरीरपर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरुमोळरु ।

अप्रमत्तगुणस्थानं मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतमारु गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं पर्य्याप्तमनुष्यनेयक्कुं । सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तमनुष्यरेयप्परु । समुद्घातकेवल्यपेक्षेयिंदं औदारिकमिश्रकाययोगिगळुं कार्म्मणकाययोगिगळप्प अपर्य्याप्तमनुष्यरुमप्परु । अयोगिकेवलि गुणस्थानदोळु पर्य्याप्तमनुष्यरेयप्परु ।

मि । सा । मि । अ । दे । प्र । अ । अ । अ । सू । उ । क्षी । स । अ ।
४ । ४ । ४ । ४ । २ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ ।

नरकादिगतिनामोदयजनिता नारकादिपर्यायाः गतयः । तेन मिथ्यादृष्टौ नारकादयः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च । सासादने नारकाः पर्याप्ताः, शेषाः उभये । मिश्रे सर्वे पर्याप्ता एव । असंयते घर्मानारकाः उभये, शेषनारकाः पर्याप्ता एव । भोगभूमितिर्यग्मनुष्याः कर्मभूमिमनुष्याः वैमानिकाश्च उभये । कर्मभूमितिर्यञ्चो भवनत्रयदेवाश्च पर्याप्ता एव । देशसंयते कर्मभूमितिर्यग्मनुष्याः पर्याप्ताः । प्रमत्ते मनुष्याः पर्याप्ताः, साहारकर्द्धयस्तु उभये । अप्रमत्तादिक्षीणकषायान्ताः पर्याप्ताः । सयोगिनि[1] उभये । अयोगिनि[2] पर्याप्ता एव ।

नरक आदि गतिनाम कर्मके उदयसे उत्पन्न हुई नरकादि पर्यायोंको गति कहते हैं। इससे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नारक आदि पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं। सासादनमें नारकी पर्याप्त ही होते हैं शेष तिर्यंच आदि पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों होते हैं। मिश्रगुणस्थानमें सब पर्याप्त ही होते हैं। असंयत गुणस्थानमें प्रथम नरकके नारकी पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों होते हैं। शेष नारकी पर्याप्त ही होते हैं। भोगभूमिके तिर्यंच मनुष्य, कर्मभूमिके मनुष्य और वैमानिक पर्याप्तक-अपर्याप्तक दोनों होते हैं। कर्मभूमिके तिर्यंच और भवनत्रिकके देव पर्याप्त ही होते हैं। देशसंयतमें कर्मभूमिके तिर्यंच और मनुष्य पर्याप्त ही होते हैं। प्रमत्त गुणस्थानमें मनुष्य पर्याप्त ही होते हैं। आहारक ऋद्धिवाले पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों होते हैं। अप्रमत्तसे लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त पर्याप्त होते हैं। सयोगीमें दोनों होते हैं। अयोगीमें पर्याप्त ही होते हैं।

१. ब सयोगिन उ° । २. ब अयोगिन ।

एकेंद्रियादिजातिनामकर्म्मोदयजनितजीवपर्य्यायक्किंद्रियव्यपदेशमक्कुमा यिंद्रियमार्ग्गणेगळेकेंद्रियादिपंचप्रकारमप्पुवु। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तापर्य्याप्तैकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियंगळप्पुवु।

सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु एकेंद्रियादिपंचेंद्रियपर्य्यंतमावय्युमपर्य्याप्तजीवंगळुं पर्य्याप्तपंचेंद्रियजीवंगळुमप्पुवु। मिश्रगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तपंचेंद्रियमो वेयक्कुं। असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्ताऽपर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियजीवंगळेयप्पुवु। देशसंयतगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तपंचेंद्रियमो वेयक्कुं। प्रमत्तगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तपंचेंद्रियमो वेयक्कुमल्लि आहारकऋद्धियुक्तनोळु तद्ऋद्धचपेक्षेयिदं पर्य्याप्तापर्य्याप्ताहारकशरीरपंचेंद्रियमुमक्कुं। अप्रमत्तगुणस्थानदोळु मेले क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं आरुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं पर्य्याप्तपंचेंद्रियमेयक्कुं। सयोगकेवलिगुणस्थानदोळुपर्य्याप्तपंचेंद्रियमेयक्कुमल्लि समुद्घातकेवल्यपेक्षेयिदं मुं पेळदंतऽपर्य्याप्तपंचेंद्रियमुमक्कुं। अयोगिकेवलिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तपंचेंद्रियमेयक्कुं—

मि	सा	मि	अ	वे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
५	५	१	१	१	१ २	१	१	१	१	१	१	१	१

पृथ्वीकायादिविशिष्टैकेंद्रियजातिस्थावरनामकर्म्मोदयदिदमुं त्रसनामकर्म्मोदयदिदमूमाद जीवपर्यायक्के कायत्वव्यपदेशमक्कुमा कायत्वमुं पृथ्विकायिकमुमप्कायिकमुं तेजस्कायिकमुं वातकायिकमुं वनस्पतिकायिकमुमेंबुं त्रसकायिक मेंदितु षड्भेदमक्कुं। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तापर्याप्तषड्जीवनिकायमक्कुं। सासादनगुणस्थानदोळु बादरपृथ्विअब्वनस्पत्यपर्याप्तकायिकंगळुं द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियासंज्ञि अपर्य्याप्तत्रसकायिकंगळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्याप्तत्रसकायिकंगळुमितु षड्जीव-

एकेन्द्रियादिजातिनामोदयजनितजीवपर्यायः इन्द्रियं, तन्मार्गणाः एकेन्द्रियादयः पञ्च। ताः मिथ्यादृष्टौ पर्याप्तापर्याप्ताः पञ्च। सासादने अपर्याप्ताः पञ्च पर्याप्तपञ्चेन्द्रियश्च। मिश्रे पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय एव। असंयते स उभयः। देशसंयते पर्याप्तः। प्रमत्ते पर्याप्तः। साहारर्कास्तूभयः। अप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तेषु पर्याप्त एव। सयोगे पर्याप्तः। समुद्घाते तूभयः। अयोगे पर्याप्त एव।

पृथ्वीकायादिविशिष्टैकेन्द्रियजातिस्थावरनामोदयत्रसनामोदयजाः षड्जीवपर्यायाः कायाः। ते मिथ्यादृष्टौ पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च। सासादने बादरपृथ्व्यब्वनस्पतिस्थावरकायाः द्वित्रिचतुरिन्द्रियाऽसंज्ञित्रसकायाश्चा-

एकेन्द्रिय आदि जातिनामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई जीवकी पर्याय इन्द्रिय है। उसकी मार्गणा एकेन्द्रिय आदि पाँच हैं। वे पाँचों मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त-अपर्याप्त होते हैं। सासादनमें अपर्याप्त तो पाँचों हैं पर्याप्त एक पंचेन्द्रिय ही है। मिश्रमें पर्याप्त पंचेन्द्रिय ही है। असंयतमें पंचेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों है। देशसंयतमें पर्याप्त है। प्रमत्तमें पर्याप्त है आहारक ऋद्धिवाला दोनों है। अप्रमत्तसे लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त पर्याप्त ही है। सयोगकेवलीमें पर्याप्त है किन्तु समुद्घातमें दोनों है। अयोगीमें पर्याप्त ही है।

पृथ्वीकाय आदि विशिष्ट एकेन्द्रियादि जाति और स्थावर नामकर्म तथा त्रसनामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई छह जीवपर्यायोंको काय कहते हैं। वे मिथ्यादृष्टिमें पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं। सासादनमें बादर पृथिवी जल और वनस्पति स्थावरकाय तथा दोइन्द्रिय,

निकायमप्पुवु । मिश्रगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तपंचेंद्रियत्रसकायिकमेयक्कुं । असंयतगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तापर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियत्रसकायिकमेयक्कुं । देशसंयतगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियत्रसकायिकमेयक्कु । प्रमत्तगुणस्थानदोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तत्रसकायिकमक्कुमल्लियाहारकऋद्धिप्राप्तनोळु आहारकशरीरपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तत्रसकायिकमक्कु । अप्रमत्तगुणस्थानं मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतमाद गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं पर्य्याप्तपंचेंद्रियत्रसकायिकमेयक्कुं । सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियत्रसकायिकमक्कुमल्लि समुद्घातसयोगकेवलिभट्टारकनोळु औदारिकमिश्रयोगमुं कार्म्मणकाययोगमुमुळ्ळुदरिंदमपर्य्याप्तपंचेंद्रियत्रसकायिकमुमक्कुं । अयोगिकेवलिभट्टारकनोळुपर्य्याप्तपंचेंद्रियत्रसकायिकमक्कुं—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
६	६	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१

पुद्गलविपाकिशरीरांगोपांगनामकर्म्मोदयंगळिदं मनोवचनकाययुक्तमप्प जीवक्के कर्म्मनोकर्म्मागमनकारणमप्पुदावुदोंदु शक्ति जीवप्रदेशपरिस्पंदसंभूतमदु योगमेंबुदक्कुमदु मनोवचनकायप्रवृत्तिभेददिं त्रिविधमक्कुमल्लि वीर्य्यांतरायनोइंद्रियावरणक्षयोपशमदिदमंगोपांगनामकर्म्मोदयदिंदं मनःपर्य्याप्तियुक्तंगे मनोवर्ग्गणायातपुद्गलस्कंधंगळ्गे अष्टच्छदारविंदाकारदिदं हृदयदोळु निर्म्माणनामकर्म्मोदयसंपादितद्रव्यमनः पद्मपत्रंग्रगळोळु नोइंद्रियक्षयोपशमजीवप्रदेशप्रचयदोळु लब्ध्युपयोगलक्षणभावेंद्रियं मनमें बुदक्कुमा मनोव्यापारमं मनोयोगमेंबुवा मनोयोगमुं सत्याद्यर्थ

पर्याप्ता. सञ्ज्ञित्रसकायः उभयश्चेति षड्जीवनिकाय. । मिश्रे संज्ञिपञ्चेन्द्रियत्रसकायपर्याप्त एव । असंयते उभयः, देशसयते पर्याप्त एव । प्रमत्ते पर्याप्तः । साहारकर्धिस्तूभयः । अप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तेषु पर्याप्त एव । सयोगे पर्याप्तः । ससमुद्घाते तूभयः । अयोगे पर्याप्त एव ।

पुद्गलविपाकिशरीराङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयैः मनोवचनकाययुक्तजीवस्य कर्मनोकर्मागमकारणा या शक्तिः तज्जनितजीवप्रदेशपरिस्पन्दनं वा योगः स च मनोवचनकायवृत्तिभेदात्त्रेधा । तत्र वीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमेन अङ्गोपाङ्गनामोदयेन च मनःपर्याप्तियुक्तजीवस्य मनोवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां अष्टच्छदारविन्दाकारेण हृदये निर्माणनामोदयसंपादितं द्रव्यमनः । तत्पत्राग्रेषु नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमयुक्तजीवप्रदेशप्रचये

तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय त्रसकाय अपर्याप्त होते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय त्रसकाय दोनों होते हैं। इस प्रकार इस गुणस्थानमें छहों जीवनिकाय होते हैं। मिश्रमें संज्ञी पंचेन्द्रिय त्रसकाय पर्याप्त ही है। असंयतमें दोनों है। देशसंयतमें पर्याप्त ही है। प्रमत्तमें पर्याप्त है। आहारक ऋद्धि सहित दोनों है। अप्रमत्तसे क्षीणकषायपर्यन्त दोनों है। सयोगीमें पर्याप्त है। समुद्घातमें दोनों है। अयोगीमें पर्याप्त ही है।

पुद्गलविपाकी शरीर और अंगोपांग नामकर्मके उदयके साथ मन-वचन-कायसे युक्त जीवके कर्म-नोकर्मके आनेमें कारण जो शक्ति है अथवा उसके द्वारा होनेवाला जो जीवके प्रदेशोंका चलन है वह योग है। वह मन-वचन-कायकी प्रवृत्तिके भेदसे तीन प्रकारका है। वीर्यान्तराय और नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे तथा अंगोपांगनाम कर्मके उदयसे मनःपर्याप्तिसे युक्त जीवके मनोवर्गणारूपसे आये हुए पुद्गल स्कन्धोंका आठ पाँखुडीके कमलके आकारसे हृदयमें निर्माणनाम कर्मके उदयसे रचा गया द्रव्यमन है। उन पाँखुडीके अग्रभागोंमें

विषयभेददिं चतुर्व्विधमक्कुं। भाषापर्य्याप्तियोळ्कूडिद जीवक्के शरीरनामकर्म्मोदयदिदं स्वरनामकर्म्मोदयसहकारिकारणदिदं भाषावर्ग्गणायातपुद्गलस्कंधंगळ्गे चतुर्व्विधभाषारूपदिदं परिणमनं वाग्योगमक्कुमदु सत्याद्यर्थवाचकत्वदिदं चतुर्व्विधमक्कुमौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरनामकर्म्मोदयंगळिदमाहारवर्ग्गणायातपुद्गलस्कंधंगळ्गे निर्म्माणनामकर्म्मोदयनिर्म्मापित तत्तच्छरीरपरिणमनपरिणतियोळु पुट्टिद जीवप्रदेशपरिस्पंदमौदारिकादिकाययोगमक्कुं। तच्छरीरपर्य्याप्तिकालं समयोनांतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतं तन्मिश्रकाययोगमक्कुमदक्के मिश्रत्वव्यपदेशमें तें दोडे औदारिकादिनोकर्म्मशरीरवर्ग्गणेगळनाहरिसुवल्लि स्वतः सामर्थ्याऽसंभवमप्पुदरिदं कार्म्मणवर्ग्गणासव्यपेक्षमप्पुदरिदं मिश्रव्यपदेशमक्कं। विग्रहगतियोळ् औदारिकादिनोकर्म्मवर्ग्गणेगळनाहार मागुत्तिरलु कार्म्मणशरीरनामकर्म्मोदयदिदं कार्म्मणवर्ग्गणायातपुद्गलस्कंधंगळ्गे ज्ञानावरणादिकर्म्मपर्य्यायदिदं जीवप्रदेशंगळोळ् बंधप्रघट्टदोळ् पुट्टिद जीवप्रदेशपरिस्पदं कार्म्मणकाययोगमें बुदनितुं कूडि योगंगळ् पदिनैदप्पुवु ॥

लब्ध्युपयोगलक्षणं भावमन. तद्व्यापारो मनोयोगः। स च सत्याद्यर्थविषयभेदाच्चतुर्धा। भाषापर्याप्तियुक्तजीवस्य शरीरनामोदयेन स्वरनामोदयसहकारिकारणेन भाषावर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां चतुर्विधभाषारूपेण परिणमनं वाग्योगः। सोऽपि सत्याद्यर्थवाचकत्वेन चतुर्धा। औदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरनामोदयैः आहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां निर्माणनामोदयनिर्मापिततत्तच्छरीरपरिणमनपरिणतौ उत्पन्नजीवपरिस्पन्दः औदारिकादिकाययोगः। तत्तच्छरीरपर्याप्तिकाले समयोनान्तर्मुहूर्तपर्यन्तं तत्तन्मिश्रकाययोगः। अस्य च मिश्रत्वव्यपदेश. औदारिकादिनोकर्मशरीरवर्गणाहरणे स्वतः सामर्थ्यासंभवेन कार्मणवर्गणासव्यपेक्षत्वात्। विग्रहगतौ औदारिकादिनोकर्मवर्गणानां अनाहरणे सति कार्मणशरीरनामोदयेन कार्मणवर्गणायातपुद्गलस्कन्धाना ज्ञानावरणादिकर्मपर्यायेण जीवप्रदेशेषु बन्धप्रघट्टके उत्पन्नजीवप्रदेशपरिस्पन्दः कार्मणकाययोगः, एवं योगाः पञ्चदश ॥७०३॥

जो नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे युक्त जीवप्रदेश है उनमें लब्धि उपयोग लक्षणवाला भावमन है। उसके व्यापारको मनोयोग कहते हैं। वह सत्य-असत्य आदि अर्थविषयक भेदसे चार प्रकारका है। भाषा पर्याप्तिसे युक्त जीवके शरीर नाम कर्मके उदयसे और स्वर नाम कर्मके उदयकी सहायतासे भाषावर्गणाके रूपमें आये हुए पुद्गल स्कन्धोंका चार प्रकारकी भाषाके रूपसे परिणमन वचनयोग है। वह भी सत्य आदि अर्थका वाचक होनेसे चार प्रकारका है। औदारिक, वैक्रियिक, और आहारक शरीरनाम कर्मके उदयसे आहार वर्गणाके रूपमें आये पुद्गल स्कन्धोंका निर्माणनाम कर्मके उदयसे रचित उस-उस शरीररूप परिणमन होनेपर जो जीवमें परिस्पन्द होता है वह औदारिक आदि काययोग है। उस-उस शरीर पर्याप्तिके कालमें एक समय हीन अन्तर्मुहूर्त काल तक औदारिक आदि मिश्रकाययोग होता है। इसको मिश्र कहनेका कारण यह है कि औदारिक आदि नोकर्म शरीर वर्गणाओंके आहरणमें स्वयं समर्थ न होनेसे कार्मणवर्गणाकी अपेक्षा करता है। विग्रहगतिमें औदारिक आदि नोकर्म वर्गणाओंका ग्रहण न होनेपर कार्मण शरीर नामकर्मके उदयसे कार्मणवर्गणा रूपसे आये पुद्गल स्कन्धोंका ज्ञानावरण आदि कर्मपर्याय रूपसे जीवके प्रदेशोंमें बन्ध होनेपर उत्पन्न हुआ जीवके प्रदेशोंका हलन-चलन कार्मण काययोग है। इस प्रकार योग पन्द्रह होते हैं ॥७०३॥

तिसु तेरं दस मिस्से सत्तसु णव छट्ठयम्मि एक्कारा ।
जोगिम्मि सत्त योगा अजोगिठाणं हवे सुण्णं ॥७०४॥

त्रिषु त्रयोदश दश मिश्रे सप्तसु नव षष्ठे एकादश । योगिनि सप्तयोगाः अयोगिस्थानं भवेत् शून्यं ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु आहारकाहारकमिश्रकाययोगिगळं वर्ज्जिसि शेषत्रयोदशयोगयुक्तरप्परु। सासादनगुणस्थानदोळं अंते पदिमूरु योगयुक्तजीवंगळप्पुवु। मिश्रगुणस्थानदोळु मत्तमा पदिमूरुं योगंगळोळमौदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्रकार्म्मणकाययोगंगळं कळेवु शेष पत्तुं योगयुक्तजीवंगळप्पुवु। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानदोळु सासादननोळपेळ्दंते पदिमूरुं योगयुक्तजीवंगळप्पुवु। देशसंयताप्रमत्तापूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायक्षीणकषायगुणस्थानसप्तकरोळु मनोवाग्योगिगळेण्बरु मौदारिकाययोगिगळुमिंतु ओंभत्तु योगिगळप्परु।

प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु आहारकाहारकमिश्रयोगिगळं कूडुत्तिरलुं पन्नोंदु योगयुक्तजीवंगळप्पुवु। सयोगभट्टारकरोळु सत्यानुभयमनोवाग्योगंगळु नाल्कुमौदारिकमौदारिकमिश्रकार्म्मणकाययोगमुमिंतु सप्तयोगयुक्तरप्परु। अयोगिकेवलिभट्टारकनोळु योगं शून्यमक्कुं—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
१३	१३	१०	१३	९	११	९	९	९	९	९	९	७	०

मोहनीयप्रकृतिगळोळु नोकषायभेदंगळप्पस्त्रीपुंनपुंसकवेदोदयंगळिदं स्त्रीपुंनपुंसकवेदिगळप्परु। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडु अनिवृत्तिकरणसवेदभागिपर्य्यंतं मूरुं वेदिगळप्परु। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानद्वितीयभागं मोदलगोंडयोकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतमवेदिगळप्परु—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
३	३	३	३	३	३	३	३	३	०	०	०	०	०

उक्तपञ्चदशयोगेषु मध्ये मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतेषु त्रयोदश त्रयोदश भवन्ति आहारकतन्मिश्रयोः प्रमत्तादन्यत्राभावात्। मिश्रगुणस्थाने तेष्वपर्याप्तयोगत्रयं नेति दश। उपरि क्षीणकषायान्तेषु सप्तसु तत्रापि वैक्रियिकयोगाभावात् नव। प्रमत्तसंयते एकादश आहारकतन्मिश्रयोगयोरत्र पतितत्वात्। सयोगे सत्यानुभयमनोवाग्योगाः औदारिकतन्मिश्रकार्मणकाययोगाश्चेति सप्त। अयोगिजिने योगो नेति शून्यम्।

स्त्रीपुन्नपुंसकवेदोदये तत्तन्नामवेदा भवन्ति ते त्रयोऽपि अनिवृत्तिकरणसवेदभागपर्यन्तं न तत उपरि।

उक्त पन्द्रह योगोंमें-से मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयतोंमें तेरह-तेरह योग होते हैं। क्योंकि आहारक आहारक मिश्रयोग प्रमत्तगुणस्थानसे अन्यत्र नहीं होते। मिश्रगुणस्थानमें उनमें तीन अपर्याप्त योग न होनेसे दस योग होते हैं। मिश्रगुणस्थानमें उनमें-से तीन अपर्याप्त योग न होनेसे दस योग होते हैं। ऊपर क्षीणकषाय पर्यन्त सात गुणस्थानोंमें वैक्रियिक काययोगके न होनेसे नौ योग होते हैं। प्रमत्तसंयतमें आहारक आहारक मिश्रके होनेसे ग्यारह योग होते हैं। सयोगकेवलीमें सत्य, अनुभय, मनोयोग और वचनयोग तथा औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्मण काययोग इस तरह सात होते हैं। अयोगकेवलीमें योग नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयसे उस-उस नामवाले वेद होते हैं। वे तीनों ही अनिवृत्तिकरणके सवेद भाग पर्यन्त होते हैं, ऊपर नहीं होते। अनन्तानुबन्धी

चारित्रमोहनीय भेदंगळप्प क्रोधचतुष्कमानचतुष्कमायाचतुष्कलोभचतुष्कंगळे यथायोग्यमागुदयमागुत्तिरलु क्रोधिगळुं मानिगळुं मायिगळुं लोभिगळुमप्परु। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु चतुर्गतिय नानाक्रोधिगळुं मानिगळुं मायिगळुं लोभिगळुमप्परु। सासादनगुणस्थानदोळं चतुर्गतिय नानाक्रोधिमानिमायिलोभिगळप्परु। मिश्रगुणस्थानदोळु अनंतानुबंधिकषायिगळु नाल्वरुळियलुळिद क्रोधत्रयजीवंगळुं मानत्रयजीवंगळुं मायात्रयजीवंगळुं लोभत्रयजीवंगळुमप्परु। असंयतगुणस्थानदोळं मिश्रगुणस्थानदोळपेळ्वंतेयप्परु। देशसंयतगुणस्थानदोळप्रत्याख्यानकषायचतुष्टयरहितमागि क्रोधद्वययुतरुं मानद्वययुतरुं मायाद्वययुतरुं लोभद्वययुतरुमप्परु। प्रमत्तगुणस्थानं मोदल्गोंडनिवृत्तिकरणगुणस्थानद्वितीयभागिपर्य्यंतं संज्वलनक्रोधिगळप्परु। तृतीयभागिपर्य्यंतं संज्वलनमानिगळप्परु। चतुर्त्थभागिपर्य्यंतं संज्वलनमायिगळप्परु। पंचमभागिपर्य्यंतं संज्वलनबादरलोभिगळप्परु। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु सूक्ष्मसंज्वलनलोभिगळप्परु। मेलेल्लरुमकषायिगळप्परु :—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
४	४	४	४	४	४	४	४	४ ३ २ १	१	०	०	०	०

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानावरणक्षयोपशमदिदं पुट्टिद सम्यग्ज्ञानचतुष्टयमुं केवलज्ञानावरण निरवशेषक्षयदिनाद केवलज्ञानमुमितैदुं सम्यग्ज्ञानंगळु मिथ्यात्वकर्म्मोदयदोळ्कूडिद मतिश्रुतावधिज्ञानावरणक्षयोपशमजनितमज्ञानंगळप्प कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानमें दितज्ञानत्रयं गूडि मिथ्याज्ञानिगळुं सम्यग्ज्ञानिगळुमें दु प्रकारमप्परु। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानिगळु मूवरुमप्परु। सासादनगुणस्थानदोळु सम्यक्त्वसंयमप्रतिबंधकमप्प अनंतानुबंध्यऽन्यतमो-

क्रोधादीनां चतुष्कचतुष्कस्य यथायोग्योदये सति क्रोधमानमायालोभा भवन्ति। ते च मिथ्यादृष्टौ सासादने च चत्वारश्चत्वारः। मिश्रासंयतयोर्विना अनन्तानुबन्धिनस्त्रयस्त्रयः। देशसंयते विना अप्रत्याख्यानकषायान् द्वौ द्वौ। प्रमत्तादनिवृत्तिकरणद्वितीयभागपर्यन्तं संज्वलनक्रोधः। तृतीयभागपर्यन्तं मानः। चतुर्थभागपर्यंतं माया। पञ्चमभागपर्यन्तं बादरलोभः। सूक्ष्मसापराये सूक्ष्मलोभः। उपरि सर्वेऽपि अकषाया एव।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणक्षयोपशमेन तत् सम्यग्ज्ञानचतुष्कं। केवलज्ञानावरणनिरवशेषक्षयेण च केवलज्ञानं, मिथ्यात्वोदयसहचरितं मतिश्रुतावधिज्ञानावरणक्षयोपशमेन कुमतिकुश्रुतविभङ्गज्ञानानि च

आदि चारके क्रोधादि चतुष्कका यथायोग्य उदय होनेपर क्रोध, मान, माया, लोभ होते हैं। वे मिथ्यादृष्टि और सासादनमें चार चार होते हैं। मिश्र और असंयतमें अनन्तानुबन्धीके बिना तीन-तीन होते हैं। देशसंयतमें अप्रत्याख्यान कषायोंके बिना दो-दो होते हैं। प्रमत्तसे अनिवृत्तिकरणके द्वितीय भाग पर्यन्त संज्वलन-क्रोध होता है। तृतीय भाग पर्यन्त मान, चतुर्थभाग पर्यन्त माया, पंचमभाग पर्यन्त बादर लोभ रहता है। सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्म-लोभ होता है। ऊपर सब अकषाय ही होते हैं।

मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण और मनःपर्यय ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे चारों सम्यग्ज्ञान होते हैं। केवल ज्ञानावरणके सम्पूर्णक्षयसे केवलज्ञान होता है। मिथ्यात्वका उदय रहते हुए मति-श्रुत-अवधिज्ञानावरणोंके क्षयोपशमसे कुमति, कुश्रुत

वयजनितमिथ्यावृष्टिये अप्प सासावननोळं कुमतिकुश्रुतविभंगंगळप्पुवु। मिश्रगुणस्थानदोळु मिश्रमतिश्रुतावधिज्ञानंगळप्पुवु। असंयतसम्यग्दृष्टियोळु आद्यसम्यग्ज्ञानत्रितयमक्कुं। देशसंयतनोळं आद्यसम्यग्ज्ञानत्रितयमुमक्कं। प्रमत्तादिक्षीणकषायपर्य्यंतमाद्यसम्ज्ञानचतुष्टयमुमक्कुं सयोगिकेवलियोळमयोगिकेवलियोळमोंदेकेवलज्ञानमक्कुं—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	१	१

संज्वलनकषायनोकषायंगळु मंदोदयदिदं संयमपरिणाममक्कुमदुवुं व्रतधारण समितिपालनकषायनिग्रहदंडत्यागेंद्रियजयस्वरूपमक्कुमिदु सामान्यदिदं सामायिकसंयममोंदेयक्कुं[1]मेंदं तेवोडे सर्व्वसावद्याद्विरतोस्मि यें बुदरोळेल्ला संयमंगळंतर्भावमुंटप्पुदरिदं। विशेषदिदमसंयममें दुं देशसंयममें दुं सामायिकसंयममें दुं च्छेदोपस्थापनसंयममें दु सूक्ष्मसांपरायसंयममें दुं यथाख्यातसंयममें दितु संयमं सप्तविधमक्कुं। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदलगों डसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानपर्य्यंतं असंयममक्कुं। देशसंयतगुणस्थानदोळु देशसंयममक्कुं। प्रमत्तगुणस्थानमादियागि अनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्य्यंतं नाल्कुं गुणस्थानदोळु प्रत्येकं सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमगळेरडप्पुवु। प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानद्वयदोळे परिहारविशुद्धिसंयममक्कुं। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळे सूक्ष्मसांपरायसंयममक्कुमुपशांतकषायक्षीणकषायसयोगाऽयोगिगुणस्थानचतुष्टयदोळु प्रत्येकं यथाख्यातसंयममोंदेयप्पुवु—

मिलित्वा अष्टौ। तत्र मिथ्यादृष्टिसासादनयोः कुज्ञानत्रयम्। मिश्रे तदेव मिश्रितम्। [2]असंयते देशसंयते वा आद्यं सम्यग्ज्ञानत्रयम्। प्रमत्तादिक्षीणकषायान्तमाद्यं सम्यग्ज्ञानचतुष्कम्। सयोगायोगयोरेकं केवलज्ञानमेव।

संज्वलननोकषायमन्दोदयेन व्रतधारणसमितिपालनकषायनिग्रहदण्डत्यागेन्द्रियजयरूपसंयमभावो भवति। स च सामान्येन सर्वसावद्याद्विरतोऽस्मीति गृहीतः सामायिकनामैकः। विशेषेण असंयमदेशसंयमसामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसापराययथाख्यातभेदात्सप्तधा। तत्र असंयतान्तमसंयमः। देशसंयते देशसंयमः। प्रमत्ताद्यनिवृत्तिकरणान्त सामायिकछेदोपस्थापनौ। प्रमत्ताप्रमत्तयोः परिहारविशुद्धिरपि। सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मसांपरायसंयमः। उपशान्तकषायादिषु यथाख्यातः।

और विभंगज्ञान होते हैं। सब मिलकर आठ हैं। उनमेंसे मिथ्यादृष्टि और सासादनमें तीन अज्ञान होते हैं। मिश्रमें तीनों मिश्र रूप होते हैं। असंयत और देशसंयतमें आद्य तीन सम्यग्ज्ञान होते हैं। प्रमत्तसे क्षीणकषायपर्यन्त आदिके चार सम्यग्ज्ञान होते हैं। सयोग-अयोगमें एक एक केवलज्ञान होता है।

संज्वलन और नोकषायके मन्द उदयसे व्रतोंका धारण, समितियोंका पालन, कषायोंका निग्रह, दण्डोंका त्याग और इन्द्रियजयरूप संयमभाव होता है। वह सामान्यसे 'सब पापकार्योंसे विरत होता हूँ' इस प्रकार ग्रहण करनेपर सामायिकसंयम नाम पाता है। विशेषसे असंयम, देशसंयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय और यथाख्यातके भेदसे सात प्रकारका है। असंयत गुणस्थान पर्यन्त असंयम होता है। देशसंयतमें देशसंयम है। प्रमत्तसे अनिवृत्तिकरण पर्यन्त सामायिक और छेदोपस्थापना होते हैं। प्रमत्त और अप्रमत्तमें परिहारविशुद्धि भी होता है। सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्म साम्पराय संयम होता है। उपशान्तकषाय आदिमें यथाख्यात होता है।

१. म °मेकेंदोडे। २. ब असंयतदेशसंयतयोश्चाद्यं।

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
					२	२							
१	१	१	१	१	१	१	२	२	१	१	१	१	१

चक्षुर्द्दर्शनावरणीयमचक्षुर्द्दर्शनावरणीयमवधिदर्शनावरणीयमें‍बी मूरुं दर्शनावरणीयकर्म्मप्रकृतिगळ क्षयोपशमंगळिदं यथासंख्यमागि चक्षुर्द्दर्शनमुमचक्षुर्द्दर्शनमुमवधिदर्शनमें‍ब मूरुं दर्शनंगळप्पुवु। केवलदर्शनावरणीयकर्म्मप्रकृति निरवशेषक्षयदिदं क्षायिककेवलदर्शनमुमक्कुमितु दर्शनचतुष्टयमक्कुं। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि मिश्रगुणस्थानपर्य्यंतं प्रत्येकं चक्षुदर्शनमुमचक्षुदर्शनमुमें‍बेरडुं दर्शनंगळक्कुं। मिश्रनोळु मत्ते मिश्रावधिदर्शनमुमक्कुमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं मोदलगोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतमों‍भत्तु गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं चक्षुदर्शनमुमचक्षुद्दर्शनमुमवधिदर्शनमुमें‍ब मूरुं दर्शनमक्कुं। सयोगिभट्टारकरोळमयोगकेवलिभट्टारकरोळं गुणस्थानातीतरप्प सिद्धपरमेष्ठिगळोळं केवलदर्शनमक्कुं

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ	सि
२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	१	१	१

कषायोदयंगळिननुरंजिसल्पट्ट मनोवाक्काययोगप्रवृत्तियं लेश्येयें‍बुदुमदऽशुभलेश्ययें‍दु शुभलेश्येयें‍दुं द्विविधमक्कमल्लि अशुभलेश्येयुं कृष्णनीलकपोतभेददिदं त्रिविधमक्कुं। शुभलेश्येयुं तेजः पद्मशुक्लभेददिदं त्रिविधमक्कुमितु षड्लेश्येगळप्पुवु।

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदलगोंडु असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानपर्य्यंतं नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं षड्लेश्येगळप्पुवु। देशसंयतगुणस्थानं मोदलगोंडु अप्रमत्तगुणस्थानपर्य्यंतं मूरुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं मूरु शुभलेश्येगळप्पुवु। अपूर्व्वंकरणगुणस्थानमोदलगोंडु सयोगिकेवलि भट्टारकपर्य्यंतं

चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयक्षयोपशमैः केवलदर्शनावरणीयनिरवशेषक्षयेण तानि चत्वारि दर्शनानि स्युः। तत्र मिश्रगुणस्थानान्तं चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयम्। असंयतादिक्षीणकषायान्त चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनत्रयम्। सयोगायोगयोः सिद्धे चैक केवलदर्शनम्।

कषायोदयानुरञ्जितमनोवाक्कायप्रवृत्तिर्लेश्या सा च शुभाशुभभेदाद्द्वेधा। तत्र अशुभा कृष्णनीलकपोतभेदात् त्रेधा। शुभापि तेजःपद्मशुक्लभेदात्त्रेधा। असंयतान्तं षडपि। देशसंयतादित्रये शुभा एव। अपूर्वकरणादिसयोगान्तं शुक्लैव। अयोगे योगाभावात् लेश्या नास्ति।

सामग्रीविशेषैः रत्नत्रयानन्तचतुष्टयस्वरूपेण परिणमितुं योग्यो भव्यः। तद्विपरीतोऽभव्यः। तौ च

चक्षु-अचक्षु और अवधिदर्शनावरणोंके क्षयोपशमसे तथा केवल दर्शनावरणके सम्पूर्ण क्षयसे चारों दर्शन होते हैं। उनमें-से मिश्र गुणस्थान पर्यन्त चक्षु और अचक्षु दर्शन होते हैं। असंयतसे क्षीणकषायपर्यन्त चक्षु, अचक्षु, अवधि तीन दर्शन होते हैं। संयोग, अयोग और सिद्धोंमें एक केवलदर्शन होता है। कषायके उदयसे अनुरंजित मन-वचन-कायकी प्रवृत्ति लेश्या है। वह शुभ और अशुभके भेदसे दो प्रकार है। उनमें-से अशुभ कृष्ण, नील, कापोतके भेदसे तीन प्रकार है। शुभ भी तेज, पद्म, शुक्लके भेदसे तीन प्रकार है। असंयत पर्यन्त छहों लेश्या होती हैं। देशसंयत आदि तीन गुणस्थानोंमें शुभलेश्या ही होती है। अपूर्वकरणसे सयोगी पर्यन्त शुक्ललेश्या ही होती है। अयोगीमें योगका अभाव होनेसे लेश्या नहीं है। सामग्री विशेषके द्वारा रत्नत्रय और अनन्तचतुष्टयस्वरूपसे परिणमन करनेके जो योग्य

गुणस्थानषट्कदोळु प्रत्येकमों दे शुक्ल लेश्येयक्कुमयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु योगमिल्लप्पुदरिं लेश्येयुमिल्ल

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
६	६	६	६	३	३	३	१	१	१	१	१	१	०

सामग्री-विशेषंगळिंद सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रंगळिंदमनंतज्ञानानंतदर्शन अनंतवीर्य्यानंतसुखस्वरूपनागि परिणमिसल्के योग्यमप्पजीवं भव्यनें बनक्कुमदरविपरीतमभव्यनें बनक्कुमितु भव्याभव्यभेदर्दिद जीवराशि द्विविधमक्कुं। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळं भव्यजीवंगळुमभव्यजीवंगळुमप्पुववरोळु अभव्यजीवंगळेल्ल कूडि परीतानंतजघन्यराशियं विरळिसि तद्राशियने रूपं प्रतिकोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि पुट्टिद राशि युक्तानंतजघन्यमक्कुमा राशिप्रमाणमभव्यजीवराशिप्रमाणमक्कुमुळिद मिथ्यादृष्टिगळनितुं भव्यजीवजातिगळक्कुमादोडं आसन्नभव्यरुं दूरभव्यरुमभव्यसमंभव्यरुमप्परु। सासादनगुणस्थानं मोदल्गों डु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं पन्नोंदु गुणस्थानंगळोळु भव्यजीवंगळेयप्पुवु। सयोगकेवलि-भट्टारक अयोगकेवलिभट्टारकरुं भव्यरुमभव्यरुमल्तु :—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
२	१	१	१	१	१	१	१	१.	१	१	१

क्षयोपशमलब्धिमोदलागि करणलब्धिपर्य्यंतमाद परिणामपरिणतनागि अनिवृत्तिकरणपरिणाम-चरमसमयदोळु अनादिमिथ्यादृष्टियाद पक्षदोळु अनंतानुबंधिचतुःकषायंगळुमं दर्शनमोहनीयमिथ्यात्वकर्म्मप्रकृतियुमनुपशमिसि तदनंतर समयदोळु मिथ्यात्वकर्म्मप्रकृत्यंतरायामांतर्म्मुहूर्त्तकालप्रथम-समयदोळु प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकररिसि असंयतनक्कुं। मेण प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुमं देशव्रतमुमं युगपत्स्वीकररिसि देशसंयतनक्कुमथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुमं महाव्रतमुमं युगपत्स्वीकररिसि अप्रमत्तसंयतनक्कुमिवर्गंळु प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहणप्रथमसमयं मोदल्गों डु गुणसंक्रमविधानदिदं मिथ्यात्वप्रकृतिद्रव्यमुमयक्के बारदंतुपशमिसिदुदं गुणसंक्रमण भागहारदिदमपकर्षिसिकों डु

मिथ्यादृष्टौ द्वौ। तत्र अभव्यराशिः जघन्ययुक्तानन्तमात्रः तेनोनः सर्वसंसारी भव्यराशिः। स च आसन्नभव्यः दूरभव्यः अभव्यसमभव्यश्चेति त्रेधा। सासादनादाक्षीणकषायान्तं भव्य एव। सयोगायोगयोर्भव्याभव्यव्यपदेशो नास्ति।

क्षयोपशमादिपञ्चलब्धिपरिणामपरिणतः अनिवृत्तिकरणचरमसमये अनादिमिथ्यादृष्टिः अनन्तानुबन्धिनो मिथ्यात्वं चोपशमय्य तदनन्तरसमये मिथ्यात्वान्तरायामान्तर्मुहूर्तप्रथमसमये प्रथमोपशमसम्यक्त्वं प्राप्य असंयतो भवति। अथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वदेशव्रते युगपत्प्राप्य देशसंयतो भवति। अथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वमहाव्रते

हो वह भव्य है। उससे विपरीत अभव्य है। मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें दोनों होते हैं। अभव्य-राशि युक्तानन्त प्रमाण है। उससे हीन सब संसारी भव्यराशि है। भव्यके तीन भेद हैं— आसन्नभव्य, दूरभव्य, और अभव्यके समान भव्य। सासादनसे क्षीणकषाय पर्यन्त भव्य ही होते हैं। सयोगी और अयोगी न भव्य हैं, न अभव्य। क्षयोपशम आदि पाँच लब्धिरूप परिणामोंसे परिणत हुआ अनादिमिथ्यादृष्टि अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्वका उपशम करके उससे अनन्तर समयमें मिथ्यात्वके अन्तरा-याम सम्बन्धी अन्तर्मुहूर्तके प्रथम समयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके असंयत होता है। मिथ्यात्वके ऊपर और नीचेके निषेकोंको छोड़कर अन्तर्मुहूर्तके समय प्रमाण बीचके निषेकोंका अभाव करनेको अन्तर कहते हैं। यह अनिवृत्तिकरणमें ही होता है। अस्तु, अथवा प्रथमोपशम सम्यक्त्व और देशव्रत एक साथ प्राप्त करके देशसंयत होता है। अथवा

मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिरूपदिंदमसंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमदिंदमंतर्म्मुहूर्त्तकालं त्रिप्रकृतिगळं माळ्कु। मिथ्यात्वमं मिथ्यात्वमागियं तु माळ्कुमेंदोडे पूर्व्वस्थितियं नोडलतिच्छापनावलिमात्र-स्थितिह्रासमं माळ्कुमें बुदर्त्थं। अनंतरमा प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालदोळु अप्रमत्तंगे प्रमत्ताप्रमत्त-परावृत्तिसंख्यातसहस्रंगळप्पुवप्पुदरिदं प्रमत्तगुणस्थानदोळं प्रथमोपशमसम्यक्त्वसंभवमरियल्पडुगुं। आ नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिप्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिगळु तत्सम्यक्त्वकालमंतर्म्मुहूर्त्तदोळु षडावलिकालाव-शेषमादागळुत्कृष्टदिंदमनंतानुबंधिकषायोदयदिंदं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकालमारावलिप्रमाण-मक्कुं। जघन्यदिनेकसमयमक्कुं। मध्यमसंख्यातविकल्पमक्कुं। एत्तलानुं भव्यतागुणविशेषदिंदं सम्यक्त्वविराधने इल्लदिर्द्दोडे तद्गुणस्थानस्थानकालं संपूर्णमागुत्तिरलु सम्यक्त्वप्रकृतियुदयिसि वेदकसम्यग्दृष्टिगळ नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळप्परु। अथवा मिश्रप्रकृत्युदयदिंदमा नाल्वरुं मिश्र-रप्परु। मिथ्यात्वकर्म्मोदयमादुदादोडा नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळु मिथ्यादृष्टिगळप्परु। द्वितीयोपशम-सम्यक्त्वदोळु विशेषमुंटदावुदेंदोडे उपशमश्रेण्यारोहणार्त्थं सातिशयाप्रमत्तगुणस्थानवर्त्तिवेदक-सम्यग्दृष्टिकरणत्रयपरिणामसामर्त्थ्यदिंदमनंतानुबंधि कषायंगळगे प्रशस्तोपशममिल्लप्पुदरिंदम-प्रशस्तोपशमदिंदमधस्तननिषेकंगळनुत्कर्षिसि मेणु विसंयोजिसि केडिसि दर्शनमोहत्रयक्कंतर करण-दिंदमंतरमं माडि उपशमविधानदिंदमुपशमिसि अनंतरप्रथमसमयदोळु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसि उपशम श्रेणियं क्रमदिनेरुगु मेरियुपशांतकषायगुणस्थानदोळमंतर्म्मुहूर्त्तकालमिर्द्दिळिदडं क्रमदिदमिळिदु अप्रमत्तगुणस्थानमं पोर्द्दि भव्यजीवं प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्रंगळं द्वितीयोपशम

युगपत्प्राप्य अप्रमत्तसंयतो भवति। ते त्रयोऽपि तत्प्राप्तिप्रथमसमयमादिं कृत्वा गुणसंक्रमणविधानेन मिथ्यात्व-द्रव्यं गुणसंक्रमणभागहारेण अपकृष्यापकृष्य मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण असंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमेण अन्तर्मुहूर्तं कालं त्रिधा कुर्वन्ति। मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वकरणं तु पूर्वस्थितौ अतिस्थापनावलिमात्रमूनयन्तीत्यर्थः। तदप्रमत्तस्य प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसंख्यातसहस्रसंभवात् प्रमत्तेऽपि तत् सम्यक्त्वं स्यात्। ते अप्रमत्तसंयतं विना त्रय एव तत्सम्यक्त्वकालान्तर्मुहूर्ते जघन्येन एकसमये उत्कृष्टेन च षडावलिमात्रेऽवशिष्टे अनन्तानुबन्ध्यन्यत-मोदये सासादना भवन्ति। अथवा ते चत्वारोऽपि यदि भव्यतागुणविशेषेण सम्यक्त्वविराधका न स्युः तदा तत्काले संपूर्णे जाते सम्यक्त्वप्रकृत्युदये वेदकसम्यग्दृष्टयः वा मिश्रप्रकृत्युदये सम्यग्मिथ्यादृष्टयः वा मिथ्यात्वोदये

प्रथमोपशमसम्यक्त्व और महाव्रतोंको एक साथ प्राप्त करके अप्रमत्तसंयत होता है। वे तीनों भी उसकी प्राप्तिके प्रथम समयसे लेकर गुणसंक्रमण विधानके द्वारा मिथ्यात्वके द्रव्यको गुणसंक्रमण भागहारके द्वारा घटा-घटाकर मिथ्यात्व मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिरूपसे अन्तर्मुहूर्तकाल तक तीन रूप करता है। इनका द्रव्य उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा हीन होता है। मिथ्यात्वका मिथ्यात्वकरण तो पूर्वस्थितिमें अतिस्थापनावली मात्र कम करता है। जो अप्रमत्तमें जाता है वह अप्रमत्तसे प्रमत्तमें और प्रमत्तसे अप्रमत्तमें संख्यात हजार बार आता-जाता है अतः प्रमत्तमें भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है। अप्रमत्तसंयतके बिना शेष तीनों ही प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अन्तर्मुहूर्त कालमें जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे छह आवली काल शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभमें-से किसी भी एकका उदय होनेपर सासादन होते हैं। अथवा वे चारों भी यदि भव्यत्वगुणकी विशेषतासे सम्यक्त्वकी विराधना नहीं करते तो उस सम्यक्त्व काल पूर्ण होनेपर सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयमें वेदक सम्यग्दृष्टि हो जाते हैं या मिश्र प्रकृतिके उदय होनेपर सम्यक्मिथ्यादृष्टि होते हैं अथवा

सम्यग्दृष्टियागिद्दुं माळ्कुमथवा केळगे देशसंयमगुणस्थानमं पोर्द्दि द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टियागिक्कुमथवा, असंयतगुणस्थानमं पोर्द्दि असंयतसम्यग्दृष्टियागिक्कुमथवा मरणमादोडे देवाऽसंयतनक्कुं। मेणु मिश्रप्रकृत्युदयदिदं मिश्रनक्कु । मनंतानुबंधिकषायोदयदिदं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वविराधकं सासादननुमोळनें बाचार्य्यपक्षदोळु सासादननुमक्कुमथवा मिथ्यात्वकर्म्मोदयदिदं मिथ्यादृष्टियुमक्कुमें दी विशेषं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळरियल्पडुगुं । क्षायिकसम्यक्त्वमसंयतादिचतुर्ग्गुणस्थानवर्त्तिगळु वेदकसम्यग्दृष्टिगळकर्म्मभूमि जे[1]रुमप्परवर्ग्गंळगक्कुमवर्ग्गळुं केवलि श्रुतकेवलिद्वय श्रीपादपार्श्वदोळु सप्तप्रकृतिगळं निरवशेषं कोडिसि क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्परु । मानुषियरुमसंयतसम्यग्दृष्टिगळु देशव्रतिकेयरुमुपचारमहाव्रतिकेयरु केवलिद्वयपादमूलदोळु सप्तप्रकृतिगळं क्षपियिसि क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्परु। मितु सम्यक्त्वं सामान्यदिदमोंदु विशेषदिदं मिथ्यात्व सासादनमिश्रउपशमवेदकक्षायिकमें दितु षड्विधमकुं। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यारुचियक्कुं। सासादननोळमा सासादनरुचियक्कुं। मिश्रगुणस्थानदोळु मिश्ररुचियक्कुं। असंयतगुणस्थानमादियागिअप्रमत्तगुणस्थानपर्य्यंतं प्रत्येकमुपशमवेदकक्षायिकंगळमूरुं सम्यक्त्वंगळप्पुवु।

अपूर्व्वकरणगुणस्थानं मोदलागि उपशांतकषायगुणस्थानपर्य्यंतमुपशमश्रेणियोळु नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकमुपशमसम्यक्त्वमुं क्षायिकसम्यक्त्वमुमेरडुं संभविसुववु । क्षपकश्रेणियोळु

मिथ्यादृष्टयो भवन्ति । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वे विशेषः । स कः ? उपशमश्रेण्यारोहणार्थं सातिशयाप्रमत्तवेदकसम्यग्दृष्टिः करणत्रयपरिणामसामर्थ्यात् अनन्तानुबन्धिना प्रशस्तोपशमं विना अप्रशस्तोपशमेन अधोनिषेकानुत्कृष्य वा विसंयोज्य क्षपयित्वा दर्शनमोहत्रयस्य अन्तरकरणेन अन्तरं कृत्वा उपशमविधानेन उपशमय्य अनन्तरप्रथमसमये द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा उपशमश्रेणिमारुह्य उपशान्तकषायं गत्वा अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा क्रमेण अवतीर्य अप्रमत्तगुणस्थानं प्राप्य प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्राणि करोति । वा अधः देशसंयतमो भूत्वा आस्ते । वा असंयतो भूत्वा आस्ते । वा मरणे देवासंयतः स्यात् वामिश्रप्रकृत्युदये मिश्रः स्यात् । अनन्तानुबन्ध्यन्यतमोदये द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं विराधयतीत्याचार्यपक्षे सासादनः स्यात् वा मिथ्यात्वोदये मिथ्यादृष्टिः स्यात् इति । क्षायिकसम्यक्त्वं तु असयतादिचतुर्गुणस्थानमनुष्याणां असंयतदेशसंयतोपचारमहाव्रतमानुषीणा

मिथ्यात्वका उदय होनेपर मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें विशेष कथन है। उपशम श्रेणीपर आरोहण करनेके लिए सातिशय अप्रमत्तवेदक सम्यग्दृष्टि तीन करणरूप परिणामोंकी सामर्थ्यसे अनन्तानुबन्धी कषायोंका प्रशस्त उपशमके बिना अप्रशस्त उपशमके द्वारा नीचेके निषेकोंको उत्कर्षणके द्वारा ऊपरके निषेकोंमें स्थापित करता है अथवा विसंयोजन द्वारा अन्य प्रकृतिरूप परिणमाता है। इस तरह उनका क्षपण करके दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका अन्तरकरणके द्वारा अन्तर करके उपशम विधानके द्वारा उपशम करता है। तदनन्तर प्रथम समयमें द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी होकर उपशम श्रेणीपर चढ़ता है। और उपशान्त कषाय तक जाकर वहाँ अन्तर्मुहूर्त तक ठहरकर क्रमसे उतरता हुआ अप्रमत्त गुणस्थानको प्राप्त करके हजारों बार सातवेंसे छठेमें और छठेसे सातवेंमें आता-जाता है। अथवा नीचे उतरकर देशसंयमी या असंयमी हो जाता है। अथवा मरणकाल आनेपर असंयतदेव हो जाता है अथवा मिश्र प्रकृतिके उदयमें मिश्रगुणस्थानवर्ती हो जाता है। जिन आचार्योंका मत है कि अनन्तानुबन्धीका उदय होनेपर द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकी विराधना करता है उनके मतसे सासादन हो जाता है। अथवा मिथ्यात्वके उदयमें मिथ्यादृष्टि

१. म जरुगलक्कुमर्ग्गुलु॰।

अपूर्व्वकरणगुणस्थानं मोदलागि सिद्धपरमेष्ठिगळ्पर्य्यंतं क्षायिकसम्यक्त्वमक्कुं :—

मि । सा । मि । अ । वे । प्र । अ । अ । अ । सू । उ । क्षी । स । अ । सि
१ । १ । १ । ३ । ३ । ३ । ३ । $१^{२}$ । $१^{२}$ । $१^{२}$ । २ । १ । १ । १ । १

नो इंद्रियावरणक्षयोपशममुतज्जनितबोधनमुं संज्ञेयें बुदक्कुं अदनुळ्ळुदसंज्ञि एंबुदक्कुमितरेंद्रियज्ञानमनुळ्ळवसंज्ञियें बुदक्कुमितु संज्ञियुमसंज्ञियुमें बेरडु प्रकारद जीवंगळोळु संज्ञिजीवं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदलागोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं पन्नेरडु गुणस्थानंगळोळक्कुं। असंज्ञिजीवं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळेयक्कुं । सयोगिकेवलिभट्टारकरुमयोगिकेवलिभट्टारकरु नोइंद्रियेंद्रियज्ञानरहितरप्पुदरिंदं संज्ञिगळुमसंज्ञिगळुमल्लु :—

मि । सा । मि । अ । दे । प्र । अ । अ । अ । सू । उ । क्षी ।
२ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ ।

शरीरांगोपांगनामकर्मोदयजनितशरीरवचनचित्तनोकर्म्मवर्ग्गणाग्रहणमाहारमें बुदक्कुं । विग्रहगतियोळु समुद्घातकेवलिगुणस्थानदोळमयोगिकेवलिगुणस्थानदोळुं सिद्धपरमेष्ठिगळोळं शरीरांगोपांगनामकर्म्मोदयमिल्लप्पुदरिंदं "कारणाभावे कार्य्यस्याप्यभावः एंबी न्यायदिदमनाहारमक्कुमिताहारानाहारंगळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळरडुमक्कुं । सासादनगुणस्थानदोळमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं सयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळमाहारानाहारमेरडुमक्कु मुळिद मिश्रगुणस्थानं मोदलागि ओं[१]भत्तुगुण-

च कर्मभूमिवेदकसम्यग्दृष्टीनामेव केवलिश्रुतकेवलिद्वयश्रीपादोपान्ते सप्तप्रकृतिनिरवशेषक्षये भवति । तत्सम्यक्त्वं सामान्येन एकं, विशेषेण मिथ्यात्वसासादनमिश्रोपशमवेदकक्षायिकभेदात् षोढा । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं । सासादने सासादनत्वम् । मिश्रे मिश्रत्वं । असंयतादि अप्रमत्तान्तेषु उपशमवेदकक्षायिकानि अपूर्वकरणाद्युपशान्तकषायान्तेषु उपशमश्रेणौ वा औपशमिकक्षायिके क्षपकश्रेणावपूर्वकरणादिसिद्धपर्यन्तमेकं क्षायिकमेव ।

नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमः तज्जनितबोधनं च संज्ञा सा अस्य अस्तीति संज्ञी । इतरेन्द्रियज्ञानोऽसंज्ञी । तत्र मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तं संज्ञी । असंज्ञी मिथ्यादृष्टावेव । सयोगायोगयोर्नोइन्द्रियेन्द्रियज्ञानाभावात् संज्ञ्यसंज्ञिव्यपदेशो नास्ति ।

शरीराङ्गोपाङ्गनामोदयजनितं शरीरवचनचित्तनोकर्मवर्गणाग्रहणमाहारः । विग्रहगतौ प्रतरलोकपूरण-

हो जाता है। क्षायिक सम्यक्त्व तो असंयत आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्योंके असंयत, देशसंयत या औपचारिक महाव्रती मानुषियोंके जो कर्मभूमिके जन्मा वेदक सम्यग्दृष्टि होते हैं उनके ही केवली श्रुतकेवलीके चरणोंके समीपमें सात प्रकृतियोंका पूर्ण क्षय होनेपर होता है। वह सम्यक्त्व सामान्यसे एक है। विशेष मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, उपशम, वेदक और क्षायिकके भेदसे छह भेदरूप है। मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व होता है। सासादनमें सासादन और मिश्रमें मिश्र होता है। असंयतसे अप्रमत्तपर्यन्त उपशम, वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व होते हैं। अपूर्वकरणसे उपशान्त कषाय पर्यन्त उपशमश्रेणीमें औपशमिक और क्षायिक होते हैं। क्षपकश्रेणीमें अपूर्वकरणसे लेकर तथा सिद्ध पर्यन्त क्षायिक ही होता है।

नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशम और उससे होनेवाले ज्ञानको संज्ञा कहते हैं। वह जिसके हो वह संज्ञी है। जो मनके सिवाय अन्य इन्द्रियोंसे ही जानता है वह असंज्ञी है। मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त संज्ञी होता है। असंज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होता है। सयोगी और अयोगी मनसे नहीं जानते इससे न वह संज्ञी कहे जाते हैं और न असंज्ञी।

१. म °स्थानादि ओंभत्तु ।

स्थानंगळोळं आहारमों वेयक्कुं । अयोगिकेवलिभट्टारकरोळं गुणस्थानातीतरप्प सिद्धपरमेष्ठिगळोळमनाहारमेयक्कुं :—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ	सि
२	२	१	२	१	१	१	१	१	१	१	१	२	१	१

अनंतरं गुणस्थानंगळोळुपयोगमं पेळ्दपं :—

दोण्हं पंच य छच्चेव दोसु मिस्सम्मि होंति वामिस्सा ।
सत्तुवजोगा सत्तसु दो चेव जिणे य सिद्धे य ॥७०५॥

द्वयोः पंच च षट् चैव द्वयोः मिश्रे भवंति व्यामिश्राः । सप्तोपयोगाः सप्तसु द्वावेव जिनयोः सिद्धे च ॥

गुणपर्य्ययवद्वस्तुग्रहणव्यापारमुपयोगमें बुदक्कुं । ज्ञानमं वस्तु पुट्टिसुवल्लुमंते पेळल्पट्टुदु ।

स्वहेतुजनितोप्यर्थः परिच्छेद्यः स्वतो यथा ।
तथा ज्ञानं स्वहेत्वर्थं परिच्छेद्यात्मकं स्वतः ॥ [ ]

'नार्त्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत्' । [परी० मु०] एंदितु अंतप्पुपयोगं ज्ञानोपयोगमें दुं दर्शनोपयोगमें दुं द्विविधमक्कुमल्लि कुमति कुश्रुत विभंग मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलज्ञानमें दु ज्ञानोपयोगमें दु तेरनक्कुं । चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनमें दु दर्शनोपयोगं नाल्कु तेरनक्कुं । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु कुमतिकुश्रुतविभंगमें ब मूरुं ज्ञानोपयोगंगळुं चक्षुरचक्षुर्द्दर्शनमें बेरडुं दर्शनोपयोगंगळुमितु अय्दुमुपयोगंगळप्पुवु । सासादनगुणस्थानदोळमंते अय्दुमुपयोगंगळप्पुवु । मिश्रगुणस्थानदोळु मतिश्रुतावधिचक्षुरचक्षुरवधिगळें बारु मिश्रोपयोगंगळप्पुवु । असंयतसम्यग्दृष्टि-

---

सयोगे अयोगे सिद्धे च अनाहार. । तेन मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतसंयोगेषु तौ द्वौ शेषनवस्वाहारः । अयोगिसिद्धे वा अनाहारः ॥७०४॥ गुणस्थानेषु उपयोगमाह—

गुणपर्ययवद्वस्तु तद्ग्रहणव्यापार उपयोगः । ज्ञानं न वस्तूत्थं तथा चोक्तं—

स्वहेतुजनितोऽप्यर्थः परिच्छेद्यः स्वतो यथा ।
तथा ज्ञानं स्वहेतूत्थं परिच्छेदात्मकं स्वत ॥१॥

"नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात् तमोवत् इति"। स चोपयोगः ज्ञानदर्शनभेदाद्द्वेधा । तत्र ज्ञानोपयोगः—कुमतिकुश्रुतविभंगमतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानभेदादष्टधा । दर्शनोपयोगः चक्षुरचक्षुरवधि-

---

शरीर और अंगोपांग नामकर्मसे उत्पन्न शरीर वचन और मनके योग्य नोकर्म वर्गणाओंके ग्रहणको आहार कहते हैं । विग्रहगतिमें प्रतर और लोकपूरण समुद्घात सहित सयोगीमें, अयोगी और सिद्ध अनाहारक है । अतः मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत और सयोगकेवलीमें प्रतर लोकपूरणवाले अनाहारक हैं । शेष नौ गुणस्थानोंमें आहार है । अयोगकेवली और सिद्ध अनाहारक हैं ॥७०४॥

गुणस्थानोंमें उपयोग कहते हैं—

गुणपर्यायसे जो युक्त है वह वस्तु है । उसको ग्रहण करनेरूप व्यापारका नाम उपयोग है । ज्ञान वस्तुसे उत्पन्न नहीं होता । कहा है—जैसे अर्थ अपने कारणसे उत्पन्न होता है, आप स्वतः ही ज्ञानका विषय होनेके योग्य होता है । उसी प्रकार ज्ञान अपने कारणसे उत्पन्न होता है और स्वतः अर्थको जाननेरूप होता है ॥ और कहा है—अर्थ और प्रकाश ज्ञानके कारण नहीं

गुणस्थानदोळु मतिश्रुतावधिज्ञानंगळुं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनंगळुमितारुमुपयोगंगळप्पुवु। देशसंयत-गुणस्थानदोळमसंयतंगे पेळ्वंताारुमुपयोगंगळप्पुवु। प्रमत्तगुणस्थानदोळु मतिश्रुतावधिमनःपर्य्यय-ज्ञानंगळुं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनमुमितुपयोगसप्तकमुमक्कुमंते अप्रमत्तगुणस्थानादिक्षीणकषायपर्य्यंतं प्रत्येकमुपयोगसप्तकमक्कुं। सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु मयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थान-दोळं सिद्धपरमेष्ठिगळोळं केवलज्ञानोपयोगमुं केवलदर्शनोपयोगमुमेरडुं युगपत्संभविसुगुं :—

मि। सा। मि। अ। दे। प्र। अ। अ। अ। सू। उ। क्षी। स। अ। सि।
५। ५। ६। ६। ६। ७। ७। ७। ७। ७। ७। ७। २। २। २।

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरुभूमंड-लाचार्य्यमहावादवादीश्वरर्रायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्ति-श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्तिजीवतत्व-प्रदीपिकेयोळु ओघादेशंगळोळु विंशतिप्ररूपणाधिकारं प्ररूपितमाय्यतु ॥

केवलदर्शनभेदाच्चतुर्धा। तत्र मिथ्यादृष्टिसासादनयोः कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानचक्षुरचक्षुर्दर्शनाख्याः पञ्च। मिश्रे मतिश्रुतावधिज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनाख्याः मिश्राः षट्। असंयतदेशसंयतयोः त एव षड्मिश्राः। प्रमत्तादिक्षीणकषायान्तेषु त एव मनःपर्ययेण सह सप्त। सयोगे अयोगे सिद्धे च केवलज्ञानदर्शनाख्यौ द्वौ ॥७०५॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु ओघादेशयोर्विंशतिप्ररूपणानिरूपणानामैकविंशोऽधिकारः ॥२१॥

हैं क्योंकि वे ज्ञेय हैं जैसे अन्धकार ज्ञानका कारण नहीं है। वह उपयोग ज्ञान और दर्शनके भेदसे दो प्रकार है। उनमें ज्ञानोपयोग कुमति, कुश्रुत, विभंग, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानके भेदसे आठ प्रकारका है। दर्शनोपयोग चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवलदर्शनके भेदसे चार प्रकारका है। मिथ्यादृष्टि और सासादनमें कुमति, कुश्रुत, विभंगज्ञान और चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन ये पाँच उपयोग होते हैं। मिश्र गुणस्थानमें, मति, श्रुत, अवधिज्ञान और चक्षु, अचक्षु अवधिदर्शन ये छह मिले हुए सम्यक्मिथ्यात्वरूप होते हैं। असंयत और देशसंयतमें वे ही छह उपयोग सम्यक्रूप होते हैं। प्रमत्तसे क्षीणकषाय पर्यन्त वे ही मनःपर्ययके साथ मिलकर सात उपयोग होते हैं। सयोगी अयोगी, और सिद्धोंमें केवलज्ञान और केवलदर्शन दो उपयोग होते हैं ॥७०५॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से ओघादेशमार्गणा प्ररूपणा नामक इक्कीसवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥२१॥

आलापाधिकारः ॥२२॥

अनंतरमालापाधिकारमं पेळलुपक्रमिसुत्तमिष्टदेवतानमस्काररूपपरममंगलमनंगीकरि सुत्तं गुणस्थानदोळं मार्ग्गणास्थानदोळं विंशतिभेदंगळगे प्राग्योजितंगळगाळापत्रयमं पेळ्दपेनें दाचार्यं प्रतिज्ञेयं माडिदपं :—

गोदमथेरं पणमिय ओघादेसेसु वीसमेदाणं ।
जोजणिकाणालावं वोच्छामि जहाकमं सुणुह ॥७०६॥

गौतमस्थविरं प्रणम्य ओघादेशेषु विंशतिभेदानां । योजितानामालापं वक्ष्यामि यथाक्रमं श्रुणुत ॥

विशिष्टा गौर्भूमिर्गौतमा अष्टमपृथ्वी सा स्थविरा नित्या यस्य सिद्धपरमेष्ठिसमूहस्य स गौतमस्थविरः गौतमस्थविरः गौतमस्थविर एव गौतमस्थविरस्तं । अथवा गौतमो गौतमस्वामी स्थविरो यस्यासौ गौतमस्थविरः श्रीवीरवर्द्धमानस्वामी तं । अथवा विशिष्टा गौर्वाणी[1] गौतम सर्व्वज्ञभारती तां वेत्ति अधीते वा गौतमः । स चासौ स्थविरश्च गौतमस्थविरः गौतमस्वामी तं प्रणम्येत्यर्थः । सिद्धपरमेष्ठिसमूहमं श्रीवीरवर्द्धमानस्वामियुमं मेणु गौतमगणधरस्वामियुमं नमस्कारमं माडि गुणस्थानमार्ग्गणास्थानंगळोळु मुंनं योजिसल्पट्ट विंशतिप्रकारंगळगाळापमं सामान्यपर्य्याप्तापर्य्याप्तमें ब त्रिप्रकाराळापमं यथाक्रमदिदं पेळ्दपे केळिमें दाचार्य्यं शिष्यरं शिक्षिसिदपं । अदें तें दोडे :—

नेमिं धर्मरथे नेमिं पूज्यं सर्वनरामरैः ।
बहिरन्तःश्रियोपेतं जिनेन्द्रं तच्छ्रिये श्रये ॥२२॥

अथालापाधिकारं स्वेष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं वक्तुं प्रतिजानीते—

विशिष्टा गौर्भूमिः गोतमा—अष्टमपृथ्वी सा स्थविरा नित्या यस्य स गोतमस्थविरः सिद्धसमूहः, गोतमस्थविर एव गौतमस्थविरः तं अथवा गौतमः गौतमस्वामी स्थविरो यस्यासौ गौतमस्थविरः श्रीवर्धमानस्वामी तं । अथवा विशिष्टा गौः वाणी यस्यासौ गोतमः गोतम एव गौतमः स चासौ स्थविरश्च गौतमस्थविरः तं प्रणम्य गुणस्थानमार्गणास्थानयोः प्राग् योजिताना विंशतिप्रकाराणा आलापं यथाक्रमं वक्ष्यामि ॥७०६॥ तद्यथा—

अपने इष्टदेवको नमस्कारपूर्वक आलापाधिकारको कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—विशिष्ट 'गौ' अर्थात् भूमि गोतमा अर्थात् आठवी पृथ्वी वह जिसकी स्थविर अर्थात् नित्य है वह गोतमस्थविर अर्थात् सिद्ध समूह। अथवा गौतम स्वामी जिसके गणधर हैं वे वर्धमान स्वामी, अथवा जिसकी गौ अर्थात् वाणी विशिष्ट है उन गौतमस्थविरको नमस्कार करके गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें पूर्वयोजित बीस प्रकारके आलापोंको यथाक्रम कहूँगा ॥७०६॥

१. म °र्वाणी यस्यासौ गौतमः । गौतम एव गौतमः स चासौ ।

ओघे चोद्दसठाणे सिद्धे वीसदिविहाणमालावा ।
वेदकसायविभिण्णे अणियट्टीपंचभागे य ॥७०७॥

ओघे चतुर्दशस्थाने सिद्धे विंशतिविधानमालापाः । वेदकषायविभिन्नेऽनिवृत्तिपंचभागेषु च ॥

गुणस्थानदोळं चतुर्दशमार्ग्गणास्थानदोळं प्रसिद्धदोळु विंशतिविधंगळप्प गुणजीवेत्यादिगळगे सामान्यं पर्य्याप्तमपर्य्याप्तमें ब मूरुतेरदाळापंगळप्पुवु । वेदकषायंगळिदं भेदमनुळ्ळ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानपंचभागेगळोळं पृथगाळापंगळप्पुवेकें दोडे अनिवृत्तिकरणपंचभागेगळोळु सवेदावेदादि विशेषंगळुंटप्पुदरिदं ।

अनंतरं गुणस्थानंगळोळु आळापमं पेळ्वपं :—

ओघेमिच्छदुगेवि य अयदपमत्ते सजोगठाणम्मि ।
तिण्णेव य आलावा ससेसिक्को हवे णियमा ॥७०८॥

ओघे मिथ्यादृष्टिद्विकेपि च असंयते प्रमत्ते सयोगस्थाने । त्रय एवाळापाः शेषेष्वेको भवेन्नियमात् ॥

गुणस्थानंगळोळु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानद्वयदोळं असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळं सयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळुं प्रत्येकं सामान्यं पर्य्याप्तापर्य्याप्तमें ब मूरु माळापंगळप्पुवु । शेषनवगुणस्थानंगळोळु पर्य्याप्ताळापमो देयक्कुं :—

मि । सा । मि । अ । दे । प्र । अ । अ । अ । सू । उ । क्षी । स । अ ।
३ । ३ । १ । ३ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । ३ । १ ।

अनंतरमीयर्त्थमने विशदं माडिवपं :—

गुणस्थाने चतुर्दशमार्गणास्थाने च प्रसिद्धे विंशतिविधाना गुणजीवेत्यादीना सामान्यपर्याप्तापर्याप्तास्त्रयः आलापा भवन्ति । तथा वेदकषायविभिन्नेषु अनिवृत्तिकरणपञ्चभागेषु अपि पृथक्पृथग्भवन्ति ॥७०७॥ तत्र गुणस्थानेष्वाह—

गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टिसासादनयोः असंयते प्रमत्ते सयोगे च प्रत्येकं त्रयोऽपि आलापा भवन्ति । शेषनवगुणस्थानेषु एकः पर्याप्तालाप एव नियमेन ॥७०८॥ अमुमेवार्थं विशदयति—

प्रसिद्ध गुणस्थान और चौदह मार्गणास्थानमें 'गुणजीवा' इत्यादि बीस प्ररूपणाओंके सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त ये तीन आलाप होते हैं। तथा वेद और कषायसे भेदरूप हुए अनिवृत्तिकरणके पाँच भागोंमें भी आलाप पृथक्-पृथक् होते हैं ॥७०७॥

गुणस्थानोंमें आलाप कहते हैं—

गुणस्थानोंमें-से मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत, प्रमत्त और सयोगीमें-से प्रत्येकमें तीनों ही अलाप होते हैं, शेष नौ गुणस्थानोंमें एक पर्याप्त आलाप ही नियमसे होता है ॥७०८॥

1. म सेसेसेक्को ।

सामण्णं पज्जत्तमपज्जत्तं चेदि तिण्णि आलावा ।
दुवियप्पमपज्जत्तं लद्धी णिव्वत्तगं चेदि ॥७०९॥

सामान्यपर्य्याप्तमपर्य्याप्तं चेति त्रय एवालापाः । द्विविकल्पमपर्य्याप्तं लब्धिर्न्निर्वृतिश्चेति ॥

सामान्यमें बुं पर्य्याप्तमें बुमपर्य्याप्तमें दितु आळापंगळु मूरप्पुवल्लि अपर्य्याप्ताळापं लब्ध्यपर्य्याप्तं निवृत्यपर्य्याप्तमेंदितु द्विविकल्पमक्कुं ।

दुविहंपि अपज्जत्तं ओघे मिच्छेव होदि णियमेण ।
सासण अयदपमत्ते णिव्वत्ति अपुण्णगं [1]होदि ॥७१०॥

द्विविधमप्यपर्य्याप्तं ओघे मिथ्यादृष्टावेव भवति नियमेन । सासादनासंयतप्रमत्ते निवृत्यपर्य्याप्तं भवति ॥

द्विप्रकारमनुळ्ळऽपर्य्याप्तं ओघदोळु सामान्यदोळु मिथ्यादृष्टियोळेयक्कु नियमदिदं । सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळमी मूरुं गुणस्थानंगळोळु नियमदिदं निवृत्यपर्य्याप्तमेयक्कुं ।

जोगं पडि जोगिजिणे होदि हु णियमा अपुण्णगत्तं तु ।
अवसेसणवट्ठाणे पज्जत्तालावगो एक्को ॥७११॥

योगं प्रति योगिजिने भवति खलु नियमादपूर्णकत्वं तु । अवशेषं नवस्थाने पर्य्याप्तालापक एकः ॥

योगमं कुरुतु सयोगिकेवलिभट्टारकजिननोळु खलु स्फुटमागि अपूर्णकत्वमपर्य्याप्तकत्वमक्कुं । तु मत्ते अवशेष नवगुणस्थानंगळोळु पर्य्याप्ताळापमों वेयक्कुं ।

अनंतरं चतुर्द्दश मार्ग्गणास्थानंगळोळालापमं पेळलुपक्रमिसि मोदलोळु गतिमार्ग्गणेयोळु पेळ्दपं :—

ते आलापाः सामान्य. पर्याप्तः अपर्याप्तश्चेति त्रयो भवन्ति । तत्रापर्याप्तालापः लब्ध्यपर्याप्तः निर्वृत्यपर्याप्तश्चेति द्विविधो भवति ॥७०९॥

स द्विविधोऽपि अपर्याप्तालापः सामान्यमिथ्यादृष्टावेव भवति नियमेन । सासादनासंयतप्रमत्तेषु नियमेन निर्वृत्यपर्याप्तालाप एव भवति ॥७१०॥

योगमाश्रित्यैव सयोगिजिने नियमेन खलु अपर्याप्तकत्वं भवति । तु—पुनः अवशेषनवगुणस्थानेषु एकः पर्याप्तालापः ॥७११॥ अथ चतुर्दशमार्गणास्थानेषु आह—

इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं—

वे आलाप सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त इस तरह तीन हैं। उसमें-से अपर्याप्त आलापके भेद दो हैं—लब्ध्यपर्याप्त और निर्वृत्त्यपर्याप्त ॥७०९॥

वह दोनों ही प्रकारका अपर्याप्त आलाप नियमसे सामान्य मिथ्यादृष्टिमें ही होता है। सासादन, असंयत और प्रमत्तमें नियमसे निर्वृत्त्यपर्याप्त आलाप ही होता है ॥७१०॥

सयोगी जिनमें नियमसे योगकी अपेक्षा ही अपर्याप्त आलाप होता है। शेष नौ गुणस्थानोंमें एक पर्याप्त आलाप ही होता है ॥७११॥

चौदह मार्गणास्थानोंमें कहते हैं—

---

१. म चेदि । २. म चेति ।

सत्तण्हं पुढवीणं ओघेमिच्छे य तिण्णि आलावा ।
पढमाविरदेवि तहा सेसाणं पुण्णमालावो ।।७१२।।

सप्तानां पृथ्वीनामोघे सामान्ये मिथ्यादृष्टौ च त्रय आळापाः । प्रथमाविरतेऽपि तथा शेषाणां पूर्णालापः ।।

सामान्यदिवं सप्तपृथ्विगळ साधारणमिथ्यादृष्टियोळु मूरुमाळापंगळप्पुवु । प्रथमपृथ्विय अविरतसम्यग्दृष्टियोळमंते मूराळापंगळप्पुवुवेकें दोडे प्रथमनरकमं बद्धायुष्यनप्प वेदकसम्यग्दृष्टियुं क्षायिकसम्यग्दृष्टियुं पुगुगुमप्पुदरिदं शेषगंगें प्रथमपृथ्विय सासादनमिश्रगंगें द्वितीयादि पृथ्विकगळ सासादनमिश्रासंयतग्गें युं पर्य्याप्ताळापमो वेयक्कुं । उळिदारुं नरकंगळोळु सम्यग्दृष्टि पुगनें बुदत्थं ।

तिरियचउक्काणोघे मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णेव ।
णवरि य जोणिणि अयदे पुण्णो सेसेवि पुण्णो दु ।।७१३।।

तिरश्चां चतुर्णामोघे मिथ्यादृष्टिद्विके अविरते च त्रय एव । विशेषोऽस्ति योनिमत्यसंयते पूर्णः शेषेपि पूर्णस्तु ।।

तिर्य्यग्गतियोळु पंचगुणस्थानंगळोळु सामान्यतिर्य्यंचरुगळुगं पंचेंद्रियतिर्य्यंचरुगळुगं पर्याप्त-तिर्य्यंचरुगळुगं योनिमतितिर्य्यंचरुगळुगं इंतु नाल्कुं तेरद तिर्य्यंचरुगळुगे साधारणदिवं मिथ्यादृष्टि-गुणस्थानदोळं सासादनगुणस्थानदोळमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं प्रत्येकं मूरुमाळापंगळप्पुवल्लि विशेषमुंटदावुदें दोडे योनिमतियसंयतगुणस्थानदोळु पर्य्याप्ताळापमेयक्कुमेकें दोडे बद्धतिर्य्यगायुष्य-रप्प सम्यग्दृष्टिगळु योनिमतिगळुं षंढरुमागि पुट्टरप्पुदरिंदं शेषमिश्रदेशसंयतगुणस्थानद्वयदोळु पर्य्याप्ताळापमेयक्कुं :—

नरकगतौ सामान्येन सप्तपृथ्वीमिथ्यादृष्टौ त्रयः आलापाः स्युः । तथा प्रथमपृथ्व्यविरतेऽपि त्रय आलापाः स्युः । बद्धनरकायुर्वेदकक्षायिकसम्यग्दृष्ट्योस्तत्रोत्पत्तिसंभवात् शेषपृथ्व्यविरतानामेकः पर्याप्तालाप एव सम्यग्दृष्टेस्तत्रानुत्पत्तेः ।।७१२।।

तिर्यग्गतौ पञ्चगुणस्थानेषु सामान्यपञ्चेन्द्रियपर्याप्तयोनिमत्तिरश्चां चतुर्णां साधारणेन मिथ्यादृष्टि-सासादनासंयतेषु प्रत्येकं त्रय आलापा भवन्ति । तत्रायं विशेषः—योनिमदसंयते पर्याप्तालाप एव । बद्धायुष्क-स्यापि सम्यग्दृष्टेः स्त्रीषण्डयोरनुत्पत्तेः । तु—पुनः शेषमिश्रदेशसंयतयोरपि पर्याप्तालाप एव ।।७१३।।

नरकगतिमें सामान्यसे सातो पृथ्वीके मिथ्यादृष्टिमें तीनों आलाप होते हैं । तथा प्रथम पृथ्वीमें अविरतमें भी तीनों आलाप होते हैं क्योंकि जिन्होंने पहले नरकायुका बन्ध किया है वे वेदक सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि प्रथम नरकमें ही उत्पन्न होते हैं । शेष पृथिवियोंमें अविरतोंके एक पर्याप्त आलाप ही होता है क्योंकि सम्यग्दृष्टि मरकर उनमें जन्म नहीं लेता ।।७१२।।

तिर्यंचगतिमें पाँच गुणस्थानोंमें सामान्यतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पर्याप्ततिर्यंच और योनिमतीतिर्यंच इन चारोंके सामान्यसे मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयत गुणस्थानोंमें-से प्रत्येकमें तीन आलाप होते हैं । किन्तु इतना विशेष है कि असंयतमें योनिमतीतिर्यंचमें पर्याप्त आलाप ही होता है; क्योंकि जिसने परभवकी आयुका बन्ध किया है वह सम्यग्दृष्टि

तेरिच्छियलद्धियपज्जत्ते एक्को अपुण्ण आलावो ।
मूलोघं मणुसतिये मणुसिणि अयदम्मि पज्जत्तो ॥७१४॥

तिर्य्यंग्लब्ध्यपर्य्याप्ते एकोऽपूर्ण्णालापः मूलौघो मनुष्यत्रये मानुष्यसंयते पर्य्याप्तः ॥

तिर्य्यंचलब्ध्यपर्य्याप्तनोळु अपर्य्याप्तालापमो देयक्कुं । मनुष्यगतियोळ्पदिनाल्कुं गुणस्थानंगळोळु सामान्यमनुष्यपर्य्याप्तमनुष्ययोनिमतिमनुष्यमेंबी मनुष्यत्रयव प्रत्येकं पदिनाल्कुं पदिनाल्कुं गुणस्थानंगळोळु मुंपेळ्दाळापं मूलौघमेयक्कुमादोडं योनिमत्यसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तालापमेयक्कुमेकें दोडे कारणं मुन्नं तिर्य्यंगतियोळु पेळ्वुदेयक्कुं । मत्तों दु विशेषमुंटदावुदें दोडे असंयतयोनिमतितिर्य्यंचेयरुमसंयतयोनिमतिमानुषियुं प्रथमोपशमवेदकक्षायिकसम्यग्दृष्टिगळुमोळरप्पुदरिं । भुज्यमानपर्य्याप्तालापमेयक्कुं । योनिमतिमनुष्यरुगळग्दु गुणस्थानंगळेयप्पुदरिंदमुपशमश्रेण्यवतरणदोळमा द्वितीयोपशमसम्यक्त्वसंभवमिल्ल एकें दोडवग्गें श्रेण्यारोहणमे घटिसदप्पुदरिवं ॥

मणुसिणि पमत्तविरदे आहारदुगं तु णत्थि णियमेण ।
अवगदवेदे मणुसिणि सण्णा भूदगदिमासेज्ज ॥७१५॥

मानुषि प्रमत्तविरते आहारद्वयं नास्ति तु नियमेन । अपगतवेदायां मानुष्यां संज्ञा भूतगतिमाश्रित्य ॥

तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्तके एकः अपर्याप्तालाप एव । मनुष्यगतौ सामान्यपर्याप्तयोनिमन्मनुष्येषु प्रत्येकं चतुर्दशगुणस्थानेषु गुणस्थानवत् मूलौघः स्यात् तथापि योनिमदसंयते पर्याप्तालाप एव । कारणं प्रागुक्तमेव । पुनरयं विशेषः—असंयततैरश्चयां प्रथमोपशमकवेदकसम्यक्त्वद्वयं, असंयतमानुष्यां प्रथमोपशमवेदकक्षायिकसम्यक्त्वत्रयं च संभवति तथापि एको भुज्यमानपर्याप्तालाप एव । योनिमतीनां पञ्चगुणस्थानादुपरि गमनासंभवात् द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं नास्ति ॥७१४॥

स्त्री और नपुंसकोंमें उत्पन्न नहीं होता । तथा शेष मिश्र और देश संयत गुणस्थानोंमें भी एक पर्याप्त आलाप ही होता है ॥७१३॥

तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकमें एक अपर्याप्त आलाप ही होता है । मनुष्यगतिमें सामान्य, पर्याप्त और योनिमत मनुष्योंमें-से प्रत्येकमें चौदह गुणस्थानोंमें गुणस्थानवत् जानना । फिर भी योनिमत मनुष्यके असंयत गुणस्थानमें एक पर्याप्त आलाप ही होता है । कारण पहले कहा ही है । पुनः इतना विशेष और है कि असंयत गुणस्थानमें तिर्यंचीके प्रथमोपशम और वेदक दो ही सम्यक्त्व होते हैं । और मानुषीके प्रथमोपशम, वेदक तथा क्षायिक तीन सम्यक्त्व होते हैं । तथापि एक भुज्यमान पर्याप्त आलाप ही है । योनिमती पंचम गुण स्थानसे ऊपर नहीं जाती इसलिए उसके द्वितीयोपशम सम्यक्त्व नहीं होता ॥७१४॥

---

१. म °प्तालापमेयक्कुमुपशमश्रेण्यवतरणदोळु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं योनिमतिगळग्दु गुणस्थानं गळेयप्पुदरिंदमा द्वितीयोपशमसम्यक्त्वसंभवमिल्ल ।

द्रव्यपुरुषनुं भावस्त्रीयुमप्प प्रमत्तविरतनोळु तु मत्ते आहारकाहारकांगोपांगनामकर्म्मोदयं नियमदिदमिल्लं। तु शब्ददिनऽशुभवेदोदयदोळु मनःपर्य्ययज्ञानमुं परिहारविशुद्धिसंयममुं घटिसवु। भावमानुषियोळु चतुर्द्दशगुणस्थानंगळु घटिसुववल्लदे द्रव्यमानुषियोळय्दे गुणस्थानंगळें दरियुवु। अपगतवेदनप्प अनिवृत्तिकरणमानुषियोळु संज्ञा। कार्य्यरहितमैथुनसंज्ञेयुं। भूतपूर्वगतिन्यायमनाश्रयिसियक्कुं। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमुमं मनःपर्य्ययज्ञानियोळुंटु। परिहारविशुद्धिसंयमिगळोळं आहारकऋद्धिप्राप्तरोळं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमिल्लेकेंदोडे मूवत्तुं वर्षंगळिल्लदे परिहारविशुद्धिसंयमक्के संभवाभावमप्पुदरिदं तावत्कालमुपशमसम्यक्त्वक्कवस्थानमिल्लप्पुदरिदं आउदोंदु। परिहारविशुद्धिसंयमदोडने उपशमसम्यक्त्वक्कुपलब्धियक्कुमप्पोडे। परिहारविशुद्धिसंयममं बिडदिर्द्दतप्पंगे उपशमश्रेण्यारोहणार्त्थं दर्शनमोहनीयक्के उपशमनमुं संभविसुवुदल्तु। हेंगे परिहारविशुद्धिसंयमदोडनुपशमश्रेणियोळें द्वितीयोपशमक्के संयोगमक्कुं॥

णरलद्धि अपज्जत्ते एक्को दु अपुण्णगो दु आलावो।
लेस्साभेदविभिण्णा सत्तवियप्पा सुरट्ठाणा॥७१६॥

नरलब्ध्यपर्य्याप्ते एकस्त्वपूर्णालापः। लेश्याभेदविभिन्नानि सप्तविकल्पानि सुरस्थानानि॥

द्रव्यपुरुषभावस्त्रीरूपे प्रमत्तविरते आहारकतदङ्गोपाङ्गनामोदयो नियमेन नास्ति। तुशब्दात् अशुभवेदोदये मनःपर्ययपरिहारविशुद्धी अपि न। भावमानुष्या चतुर्दशगुणस्थानानि, द्रव्यमानुष्यां पञ्चैवेति ज्ञातव्यं। अपगतवेदानिवृत्तिकरणमानुष्या कार्यरहितमैथुनसंज्ञा भूतपूर्वगतिन्यायमाश्रित्य भवति। द्वितीयोपशमसम्यक्त्व मनःपर्ययज्ञानिनि स्यात्। न चाहारकर्धिप्राप्तेनापि परिहारविशुद्धौ त्रिंशद्वर्षैर्विना तत्संयमस्यासंभवात् तत्सम्यक्त्वस्य तु तावत्कालं अनवस्थानात्। अत्यक्ततत्संयमस्य उपशमश्रेणिमारोढुमपि दर्शनमोहोपशमाभावाच्च तद्द्वयसंयोगाघटनात्॥७१५॥

द्रव्यसे पुरुष और भावसे स्त्रीरूप प्रमत्त विरतमें आहारक शरीर और आहारक अंगोपागका उदय नियमसे नहीं होता। 'तु' शब्दसे अशुभ वेद स्त्री और नपुंसकके उदयमें मनःपर्ययज्ञान और परिहारविशुद्धि संयम भी नहीं होते। भावमानुषीके चौदह गुणस्थान होते हैं और द्रव्यमानुषीके पाँच ही जानना। वेद रहित अनिवृत्तिकरणमें मानुषीके कार्य रहित मैथुन संज्ञा भूतपूर्वगति न्यायकी अपेक्षा कही है अर्थात् वेदरहित होनेसे पहले मैथुन संज्ञा थी इस अपेक्षा कही है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व और मनःपर्ययज्ञान जो आहारक ऋद्धिको प्राप्त हैं अथवा परिहार विशुद्धि संयमवाले हैं उनके नहीं होते। क्योंकि तीस वर्षकी अवस्था हुए बिना परिहार विशुद्धि संयम नहीं होता और प्रथमोपशम इतने काल तक रहता नहीं है तथा परिहारविशुद्धि संयमको त्यागे बिना उपशम श्रेणिपर आरोहण भी नहीं होता और दर्शन मोहका उपशम भी नहीं होता अतः द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भी नहीं होता॥७१५॥

---

१. म सुवुदल्तावुदोंदु परि°। २. म °योळेरडक्कं संयोगमिल्लप्पुदरिंदं।

मनुष्यलब्ध्यपर्य्याप्तकनोळु अपूर्णालापमो दे यक्कुं। लेश्येगळिदं माडल्पट्ट भेदंगळिदं-विभिन्नंगळप्प देवक्कळ स्थानंगळु सप्तविकल्पंगळप्पुवु। अवेंतेंदोडे :—

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं॥

त्रयाणां द्वयोर्द्वयोः षण्णां द्वयोश्च त्रयोदशानां इतश्चतुर्द्दशानां लेश्याः भवनादिदेवानां॥

भवनत्रयदेवक्कळ्गं सौधर्म्मेशानकल्पजर्गं सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पजर्गं ब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतव-कापिष्टशुक्रमहाशुक्रषट्कल्पजर्गं शतारसहस्रारकल्पद्वयजर्गं आनतप्राणतारणाच्युतकल्पनवग्रैवे-यककल्पातीतजर्गं अल्लिदं मेलण अनुदिशानुत्तरचतुर्द्दशविमानसंभूतर्गमितु सप्तस्थानंगळ देव-क्कळ्गे लेश्येगळ्पेळल्पट्टप्पुवु॥

तेऊ तेऊ तह तेऊ पम्मपम्मा य पम्मसुक्का य।
सुक्का य परमसुक्का लेस्सा भवणादिदेवाणं॥

तेजस्तेजस्तथा तेजः पद्मं पद्मं च पद्मशुक्ले च। शुक्ला च परमशुक्ला लेश्या भवनादि-देवानां॥

मुंपेळ्द सप्तस्थानंगळोळु यथासंख्यमागि भवनत्रयादिस्थानंगळोळु तेजोलेश्येयजघन्यांशमुं तेजोलेश्येयमध्यमांशमुं तेजोलेश्येय उत्कृष्टांशमुं पद्मलेश्येय जघन्यांशमेरडुं पद्मलेश्येय मध्य-मांशमुं पद्मलेश्येय उत्कृष्टांशमुं शुक्ललेश्येय जघन्यांशमुमेरडुं शुक्ललेश्येय मध्यमांशमुं शुक्लले-श्येयुत्कृष्टांशमुं भवनत्रयादिदेवक्कळ लेश्येगळप्पुवु॥

सव्वसुराणं ओघे मिच्छदुगे अविरदेय तिण्णेव।
णवरि य भवणतिकप्पित्थीणं च य अविरदे पुण्णो॥७१७॥

सर्व्वसुराणामोघे मिथ्यादृष्टिद्वये अविरते च त्रय एव। नवमस्ति भवनत्रयकल्पस्त्रीणां च चाविरते पूर्ण्णः॥

तु–पुनः, मनुष्यलब्ध्यपर्याप्ते एकः लब्ध्यपर्याप्तालाप एव। लेश्याभेदविभिन्नदेवस्थानानि सप्तविकल्पानि भवन्ति तद्यथा—

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं॥१॥
तेऊ तेऊ तेऊ पम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य।
सुक्का य परमसुक्का भवणतिया पुण्णगे असुहा॥२॥

भवनत्रय–सौधर्मद्वय–सानत्कुमारद्वय–ब्रह्मषट्क–शतारद्वय–आनतादित्रयोदश–उपरितनचतुर्दशविमान-जाना क्रमश तेजोजघन्यांशतेजोमध्यमांश-तेज उत्कृष्टांश-पद्मजघन्यांश-पद्ममध्यमांश-पद्मोत्कृष्टांश-शुक्लजघन्यांश-शुक्लमध्यमांश–शुक्लोत्कृष्टांशा भवन्ति॥७१६॥

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकमें एक लब्ध्यपर्याप्त आलाप ही होता है। लेश्याभेदसे देवोंके सात स्थान होते हैं। भवनत्रिक, सौधर्मयुगल, सनत्कुमार युगल, ब्रह्म आदि छह स्वर्ग, शतार युगल, आनतादि तेरह और ऊपरके चौदह विमानवालोंके क्रमसे तेजोलेश्याका जघन्य अंश, तेजोलेश्याका मध्यम अंश, तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंश और पद्मलेश्याका जघन्य अंश, पद्मलेश्याका मध्यम अंश, पद्मलेश्याका उत्कृष्ट अंश और शुक्लका जघन्य अंश, शुक्लका मध्यम अंश तथा शुक्लका उत्कृष्ट अंश होता है॥७१६॥

सर्व्वदेवसामान्यदोळु नाल्कुं गुणस्थानमक्कुमल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळं सासादनगुणस्थानदोळं असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं सामान्यालापमुं पर्य्याप्तालापमपर्य्याप्तालापमुमें ब मूरुमालापंगळप्पुवु । अल्लि विशेषमुंटदावुदें दोडे भवनत्रयदेवक्कर्कळ कल्पवासिस्त्रीयरुगळ असंयतगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तालापमों देयक्कुमेकें दोडे तिर्य्यग्मानुष्यासंयतसम्यग्दृष्टिगळु भवनत्रयदोळं कल्पामरस्त्रीयरागि पुट्टरप्पुदरिंदं ॥

मिस्से पुण्णालावो अणुदिस्साणुत्तरा हु ते सम्मा ।
अविरदतिण्णा लावा अणुद्दिसाणुत्तरे होंति ॥७१८॥

मिश्रे पूर्णालापः अनुद्दिशानुत्तराः खलु ते सम्यग्दृष्टयः । असंयतत्रितयालापाः अनुदिशानुत्तरे भवंति ॥

मुंपेळ्द नवग्रैवेयकावसानमाद सामान्यदेवक्कंळ मिश्रगुणस्थानदोळु पर्य्याप्ताळापमों दे-यक्कुं । अनुदिशानुत्तरविमानंगळहमिंदरेल्लरुं स्फुटमागवग्गंळु सम्यग्दृष्टिगळेयप्पुदरिंदमसंयत-सम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळप्प सामान्यालापमुं पर्य्याप्ताळापमुं निवृत्त्यपर्य्याप्ताळापमुमें ब मूरु माळा-पंगळु अनुदिशानुत्तरविमानवासिगळोळप्पुवु ।

अनंतरमिंद्रियमार्ग्गणेयोळाळापमं पेळ्दपं :—

बादरसुहुमेइंदियवितिचतुरिंदिय असण्णिजीवाणं ।
ओघे पुण्णे तिण्णि य अपुण्णगे पुण अपुण्णो दु ॥७१९॥

बादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिजीवानामोघे पूर्णे त्रयश्चापूर्णे पुनरपूर्णस्तु ॥

बादरैकेंद्रिय सूक्ष्मैकेंद्रियद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियजीवंगळ सामान्यदोळु सामान्य-पर्य्याप्ताळापमें ब मूरुमाळापंगळप्पुवु । पर्य्याप्तनामकर्मोदयविशिष्टजीवंगळोळमा मूरुमाळापं-गळप्पुवु । अपर्य्याप्तनामकर्म्मोदयविशिष्टजीवंगळोळु लब्ध्यपर्याप्ताळापमों देक्कुं ।

सर्वदेवसामान्ये चतुर्गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टिसासादनयोः असंयते च त्रय आलापा भवन्ति । अयं विशेषः—भवनत्रयदेवाणां कल्पस्त्रीणां च असंयते पर्याप्तालाप एव तिर्यग्मनुष्यासंयताना तत्रोत्पत्त्यभावात् ॥७१७॥

नवग्रैवेयकावसानसामान्यदेवाना मिश्रगुणस्थाने एकः पर्याप्तालाप एव अनुदिशानुत्तरविमानादहमिन्द्राः सर्वे खलु सम्यग्दृष्टय एव तेन असंयते त्रय आलापा भवन्ति ॥७१८॥ अथेन्द्रियमार्गणायामाह—

तु—पुनः वादरसूक्ष्मैकेन्द्रियद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिजीवसामान्ये पर्याप्तनामोदयविशिष्टे त्रय आलापा भवन्ति । अपर्याप्तनामोदयविशिष्टे पुनः एको लब्ध्यपर्याप्तालाप एव ॥७१९॥

सब सामान्य देवोंमें चार गुण स्थानोंमें-से मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयतमें तीन आलाप होते हैं । इतना विशेष है कि भवनत्रिकके देवोंके और कल्पवासी देवांगनाओंके असंयतमें पर्याप्त आलाप ही होता है क्योंकि सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्य उनमें उत्पन्न नहीं होते ॥७१७॥

नौ ग्रैवेयक पर्यन्त सामान्य देवोंके मिश्र गुणस्थानमें एक पर्याप्त आलाप ही है । अनुदिश और अनुत्तर विमानवासी अहमिन्द्र सब सम्यग्दृष्टि ही होते हैं अतः उनके असंयतमें तीन आलाप होते हैं ॥७१८॥

जो बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञी सामान्य जीव पर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त होते हैं उनके तीन आलाप होते हैं । और जिनके अपर्याप्त नामकर्मका उदय है उनके एक लब्ध्यपर्याप्त आलाप ही होता है ॥७१९॥

सण्णी ओघे मिच्छे गुणपडिवण्णे य मूल आलावा।
लद्धिअपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥७२०॥

संज्ञयोघे मिथ्यादृष्टौ गुणप्रतिपन्ने च मूलालापाः। लब्ध्यपर्य्याप्त एकोऽपर्य्याप्तो भवत्यालापः ॥

संज्ञिपंचेंद्रियसामान्यदोळु गुणस्थानपंचकमक्कुमल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मूलालापंगळु मूरुमप्पुवु। गुणप्रतिपन्नरप्प सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं मूलालापंगळु सामान्यपर्य्याप्तनिवृत्यपर्य्याप्तमें बमूरुमालापंगळप्पुवु। मिश्रदेशसंयतगुणप्रतिपन्नरोळु मूलालापमों दे पर्य्याप्तालापमक्कुं। संज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तनोळु लब्ध्यपर्य्याप्तालापमों देयक्कुं।

अनंतरं कायमार्ग्गणेयोळालापमं गाथाद्वयदिदं पेळ्दपं।

भू आउतेउवाऊणिच्चचदुग्गदिणिगोदगे तिण्णि।
ताणं थूलिदरेसु वि पत्तेगे तद्दुभेदेवि ॥७२१॥

भूवप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदे त्रयः। तेषां स्थूलेतरेष्वपि प्रत्येके तद्द्विभेदेपि ॥

तसजीवाणं ओघे मिच्छादिगुणेवि ओघआलाओ।
लद्धिअपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥७२२॥

त्रसजीवानामोघे मिथ्यादृष्टिगुणेपि ओघालापः। लब्ध्यपर्य्याप्ते एकोऽपर्य्याप्तो भवत्यालापः ॥

संज्ञिसामान्ये पञ्चगुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टौ मूलालापास्त्रयो भवन्ति। गुणप्रतिपन्नेषु तु सासादनाऽसंयतयोः सामान्यपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्ताः मूलालापास्त्रयो भवन्ति। मिश्रदेशसंयतयोरेकः पर्याप्त एव मूलालापः। संज्ञिलब्ध्यपर्याप्ते एकः लब्ध्यपर्याप्तालापः ॥७२०॥ अथ कायमार्गणाया गाथाद्वयेनाह—

पृथ्व्यप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदेषु तद्बादरसूक्ष्मेषु च प्रत्येकवनस्पतौ तत्प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदयोश्च आलापत्रयमेव। त्रसजीवानां सामान्येन चतुर्दशगुणस्थानेषु गुणस्थानवदालापा भवन्ति विशेषाभावात्। पृथ्व्यादित्रसान्तलब्ध्यपर्याप्तेषु एकः लब्ध्यपर्याप्तालाप एव ॥७२१–७२२॥ अथ योगमार्गणायामाह—

सामान्य संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचके पाँच गुणस्थान होते हैं। उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें तीन मूल आलाप होते हैं। जो ऊपरके गुणस्थानोंमें चढ़े हैं उनके सासादन और असंयतमें सामान्य पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त तीन मूल आलाप होते हैं। मिश्र और देश संयतमें एक पर्याप्त ही मूल आलाप है। संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तमें एक लब्ध्यपर्याप्त आलाप है ॥७२०॥

कायमार्गणामें दो गाथाओंसे कहते हैं—

पृथिवी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद, इनके बादर और सूक्ष्म-भेदोंमें प्रत्येक वनस्पति और उसके प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित भेदोंमें तीन ही आलाप होते हैं। त्रसजीवोंके सामान्यसे चौदह गुणस्थानोंमें गुणस्थानकी तरह आलाप होते हैं कोई विशेष बात नहीं है। पृथ्वी आदि त्रसपर्यन्त लब्ध्यपर्याप्तोंमें एक लब्ध्यपर्याप्त आलाप ही होता है ॥७२१–७२२॥

योगमार्गणामें कहते हैं—

पृथ्विकायिकदोळमप्कायिकदोळं तेजस्कायिकदोळं वायुकायिकदोळं नित्यनिगोदजीवंगळोळं चतुर्गतिनिगोदजीवंगळोळं इवर बादरसूक्ष्मभेदंगळोळं प्रत्येकवनस्पतियोळं तद्विभेदमप्प।

प्रतिष्ठितप्रत्येकदोळं अप्रतिष्ठितप्रत्येकदोळं ओघदोळु साधारणालापत्रयमक्कुं। त्रस जीवंगळ सामान्यदोळु गुणस्थानंगळ्पदिनाल्कप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळोळु गुणस्थानदोळ्पेळ्दंते आलापंगळप्पुवु। विशेषमिल्ल। पृथ्विकायिकादित्रसकायिकजीवपर्य्यंतमाद लब्ध्यपर्य्याप्तरोळु लब्धिअपर्य्याप्तालापमोंदेयक्कुं।

अनंतरं योगमार्ग्गणेयोळु आलापमं पेळ्दपं :—

एक्कारसजोगाणं पुण्णगदाणं सपुण्ण आलाओ।
मिस्सचउक्कस्स पुणो सगएक्क अपुण्ण आलाओ ॥७२३॥

एकादशयोगानां पूर्णगतानां स्वपूर्णालापः। मिश्रचतुष्कस्य पुनः स्वकैकोऽपूर्णः आलापः॥

पर्य्याप्तिगे संद मनोवाग्योगंगळेंटुं औदारिकवैक्रियिकाहारकंगळेंब मूरुमितु पन्नोंदु योगंगळ्गे स्वस्वपूर्णालापमोंदोंदेयक्कुमदेंतेंदोडे सत्यासत्योभयानुभयमनः पर्य्याप्तालापमुं सत्यासत्योभयानुभयभाषापर्य्याप्तालापमुं औदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरपर्य्याप्तालापमुं तंतम्म वोंदोंदेयागि पन्नोंदुयोगंगळोळु पन्नोंदे पर्य्याप्तालापमप्पुवें बुदत्थं। मिश्रचतुष्कयोगक्के मत्ते स्वस्वापर्य्याप्तालापमोंदोंदेयक्कुमौदारिकापर्य्याप्तवैक्रियिकापर्य्याप्तआहारकापर्य्याप्त कार्म्मकायापर्य्याप्तमें बालापचतुष्टयं यथासंख्यमागोंदोंदे पेळल्पडुवुवेंबुदत्थं॥

अनंतरं वेद मार्ग्गणादियाहारमार्ग्गणापर्य्यंतमाद पत्तुं मार्ग्गणेगळोळालापक्रमं तोरिदपं॥

वेदादाहारोत्ति य सगुणट्ठाणाणमोघ आलाओ।
णवरि य संढित्थीणं णत्थि हु आहारगाण दुगं ॥७२४॥

वेदाहारपर्य्यंतं च स्वगुणस्थानानामोघ आळापः। नवमस्ति च षंढस्त्रीणां नास्त्याहारकयोर्द्विकं॥

वेदमार्ग्गणेमोदल्गोंडु आहारमार्ग्गणेपर्य्यंतमाद पत्तुं मार्ग्गणेगळोळु तंतम्ममार्ग्गणेगळु गुणस्थानंगळ्गे सामान्यदिदं गुणस्थानंगळोळु पेळ्दालापक्रममेयक्कुमादोडमोंदु नवीनमुंटदावुदेंदोडे भावषंढरुं द्रव्यपुरुषरुं भावस्त्रीयरुं द्रव्यपुरुषरुगळप्प वेदमार्ग्गणेय सवेदानिवृत्तिकरणपर्य्यंतमाद

पर्याप्तिगतानां चतुर्मनश्चतुर्वागौदारिकवैक्रियिकाहारकैकादशयोगानां स्वस्वपूर्णालापो भवति यथा सत्यमनोयोगस्य सत्यमनःपर्याप्तालापः। मिश्रयोगचतुष्कस्य पुनः स्वस्वैकापर्याप्तालापो भवति। यथा औदारिकमिश्रस्य औदारिकापर्याप्तालापः ॥७२३॥ अथ शेषमार्गणासु आह—

वेदाद्याहारान्तदशमार्गणासु स्वस्वगुणस्थानानामालापक्रम सामान्यगुणस्थानवद्भवति किन्तु भावषण्ढ-

पर्याप्त अवस्थामें होनेवाले चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक काययोग इन ग्यारह योगोंमें अपना-अपना पर्याप्त आलाप होता है। जैसे सत्यमनोयोगके सत्यमन पर्याप्त आलाप होता है। चार मिश्रयोगोंमें अपना-अपना एक अपर्याप्त आलाप होता है। जैसे औदारिकमिश्रके औदारिक अपर्याप्त आलाप होता है ॥७२३॥

शेष मार्गणाओंमें कहते हैं—

वेदसे लेकर आहारमार्गणा पर्यन्त दस मार्गणाओंमें अपने-अपने गुणस्थानोंका आलापक्रम सामान्य गुणस्थानकी तरह होता है। किन्तु भावसे नपुंसक द्रव्यसे पुरुष और भावसे

गुणस्थानंगळोळु षष्ठगुणस्थानवर्त्तिप्रमत्तसंयतनोळाहारक आहारकमिश्रमें बालापद्वयमं पेळ्वुकोळल्वेडेकें बोडा गुणस्थानदोळु अशुभवेदोदयमुळ्ळरोळाहारर्द्धि संभविसवप्पुदरिवं हत्थपमाणं पसत्थुदयमें बाहारकशरीरदोळु प्रशस्तप्रकृतिगळुदयनियममुंटप्पुदरिदं। वेदमार्ग्गणेयोळनिवृत्तिकरणसवेदभागिपर्य्यंतमों भत्तुं गुणस्थानंगळप्पुवु। मेलण नाल्कुमवेदभागिपर्य्यंतं कषायमार्ग्गणेय क्रोधदों भत्तुं मानदों भत्तुं मायेयों भत्तुं बादरलोभदों भत्तुं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागिर्द्द गुणस्थानंगळोळं सूक्ष्मलोभक्कं सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळं ज्ञानमार्ग्गणेय कुमतिज्ञानदेरडुं कुश्रुतज्ञानदेरडुं विभंगज्ञानदेरडुं मतिज्ञानदों भत्तुं श्रुतज्ञानदों भत्तुं अवधिज्ञानदों भत्तुं मनःपर्य्ययज्ञानदेळुं केवलज्ञानदेरडुं गुणस्थानंगळोळु। संयममार्ग्गणेय असंयमद नाल्कुं देशसंयमदों दुं सामायिकद नाल्कुं छेदोपस्थापनद नाल्कुं परिहारविशुद्धि संयमदेरडुं सूक्ष्मसांपरायसंयमदों दुं यथाख्यातसंयमद नाल्कुं गुणस्थानंगळोळं दर्शनमार्ग्गणेय चक्षुर्द्दर्शनद पन्नेरडु गुणस्थानंगळोळमचक्षुर्द्दर्शनद पन्नेरडुं अवधिदर्शनदों भत्तुं केवलदर्शनदेरडुं गुणस्थानंगळोळं लेश्यामार्ग्गणेय कृष्णनीलकपोतंगळनाल्कुं नाल्कुं गुणस्थानंगळोळं तेजःपद्मंगळेळुं गुणस्थानंगळोळं शुक्ललेश्येय पदिमूरुं गुणस्थानंगळोळं भव्यमार्ग्गणेयोळु भव्यन पदिनाल्कुमभव्यनदों दुं गुणस्थानंगळोळं सम्यक्त्वमार्ग्गणेय मिथ्यात्वदों दुं सासादननतन्नों दुं मिश्रन तन्नों दुं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदें टुं प्रथमोपशमसम्यक्त्वदनाल्कुं वेदकसम्यक्त्वद नाल्कुं क्षायिकसम्यक्त्वद पन्नों दुं गुणस्थानंगळोळं संज्ञिमार्ग्गणेयोळु संज्ञिय

द्रव्यपुरुषे भावस्त्रीद्रव्यपुरुषे च प्रमत्तसंयते आहारकतन्मिश्रालापौ न। 'हत्थपमाणं पससत्थुदयं' इत्याहारकशरीरे प्रशस्तप्रकृतीनामेवोदयनियमात्। वेदानामनिवृत्तिकरणसवेदभागान्तेषु क्रोधमानमायाबादरलोभानां अवेदचतुर्भागान्तेषु सूक्ष्मलोभस्य सूक्ष्मसापराये। ज्ञानमार्गणायां कुमतिकुश्रुतविभङ्गानां द्वयोः, मतिश्रुतावधीनां नवसु, मनःपर्ययस्य सप्तसु, केवलज्ञानस्य द्वयोः, असंयमस्य चतुर्षु, देशसंयमस्य एकस्मिन्, सामायिकछेदोपस्थापनयोश्चतुर्षु, परिहारविशुद्धेर्द्वयोः, सूक्ष्मसांपरायस्य एकस्मिन्, यथाख्यातस्य चतुर्षु, चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः द्वादशसु, अवधिदर्शनस्य नवसु, केवलदर्शनस्य द्वयोः, कृष्णनीलकपोतानां चतुर्षु, तेजःपद्मयोः सप्तसु, शुक्लायास्त्रयोदशसु, भव्यमार्गणायां भव्यस्य चतुर्दशसु, अभव्यस्य एकस्मिन्, सम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यात्वसासादनमिश्राणामेकैकस्मिन्, द्वितीयोपशमस्य अष्टसु, प्रथमोपशमवेदकयोश्चतुर्षु, क्षायिकस्य एकादशसु, संज्ञिनो-

---

स्त्री द्रव्यसे पुरुषके प्रमत्तसंयतमें आहारक-आहारक मिश्र आलाप नहीं होते क्योंकि 'हत्थपमाणं पसत्थुदयं' इस आगम प्रमाणके अनुसार आहारक शरीरमें प्रशस्त प्रकृतियोंके ही उदयका नियम है। वेद अनिवृत्तिकरणके सवेद भाग पर्यन्त होते हैं। क्रोध, मान, माया, बादर लोभ अनिवृत्तिकरणके वेदरहित चार भागपर्यन्त क्रमसे होते हैं। सूक्ष्मलोभ सूक्ष्मसाम्परायमें होता है। ज्ञानमार्गणामें कुमति, कुश्रुत और विभंगके दो गुणस्थान हैं। मतिश्रुत-अवधिके नौ गुणस्थान हैं। मनःपर्ययके सात गुणस्थान हैं। केवलज्ञानके दो गुणस्थान हैं। असंयतके चार गुणस्थान हैं, देशसंयतका एक गुणस्थान है। सामायिक छेदोपस्थापनाके चार गुणस्थान हैं। परिहारविशुद्धिके दो, सूक्ष्मसाम्परायका एक, यथाख्यातके चार, चक्षुदर्शन-अचक्षुदर्शनके बारह, अवधिदर्शनके नौ, केवलदर्शनके दो, कृष्ण-नील-कपोत लेश्याके चार, तेज और पद्मके सात, शुक्ललेश्याके तेरह, भव्यमार्गणामें भव्यके चौदह, अभव्यका एक, सम्यक्त्वमार्गणामें मिथ्यात्व सासादन मिश्रका एक-एक गुणस्थान है। द्वितीयोपशम-सम्यक्त्वके आठ, प्रथमोपशम और वेदकके चार, क्षायिक सम्यक्त्वके ग्यारह, संज्ञीके

पन्नेरडुं असंज्ञियवों दु गुणस्थानंगळोळ् आहारमार्गणेयोळु आहारव पविमूरुमनाहारवों दु गुणस्थानंगळोळ सामान्यदिदं गुणस्थानंगळोळु पेळद क्रमदिदमाळापंगळ पेळ्दु कोळ्गे ॥

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा गइंदिया काया ।
जोगा वेदकसाया णाणजमा दंसणा लेस्सा ॥७२५॥
भव्वा सम्मत्तावि य सण्णी आहारगा य उवजोगा ।
जोग्गा परूविदव्वा ओघादेसेसु समुदायं ॥७२६॥

गुणजीवाः पर्य्याप्तयः प्राणाः संज्ञा गतींद्रियाणि कायाः । योगा वेदकषाया ज्ञानयमा दर्शनानि लेश्याः ॥

भव्याः सम्यक्त्वानि च संज्ञिनः आहारकाश्चोपयोगाः । योग्याः प्ररूपयितव्याः ओघादेशेषु समुदायं ॥

पदिनाल्कु गुणस्थानंगळुं मूलपर्य्याप्तजीवसमासंगळेळुं मूलापर्य्याप्तजीवसमासंगळेळुं संज्ञिपंचेंद्रियजीवसंबंधिपर्याप्तिगळारुमपर्य्याप्तिगळारुं । असंज्ञिजीवसंबंधिगळु विकलत्रयजीवसंबंधिगळुमप्प पर्य्याप्तिगळय्दुमपर्याप्तिगळय्दुं । एकेंद्रियसंबंधिपर्य्याप्तिगळु नाल्कुमपर्य्याप्तिगळु नाल्कं संज्ञिपंचेंद्रिय पर्य्याप्तिजीवसंबंधिप्राणंगळु पत्तु । तदपर्य्याप्तजीवसंबंधिप्राणंगळेळुं असंज्ञिपर्य्याप्तपंचेंद्रियजीवसंबंधिप्राणंगळोंभत्तु तदपर्य्याप्तप्राणंगळेळुं चतुरिंद्रियपर्य्याप्तजीवसंबंधिप्राणंगळेंटुं । तदपर्य्याप्तप्राणंगळारुं पर्य्याप्तत्रींद्रियजीवसंबंधिप्राणंगळेळु ७। तदपर्याप्तप्राणंगळैदुं पर्य्याप्तद्वींद्रियजीवसंबंधिप्राणंगळारुं। तदपर्य्याप्तप्राणंगळु नाल्कुं। पर्य्याप्तैकेंद्रियजीवसंबंधिप्राणंगळु नाल्कुं। तदपर्य्याप्तजीवसंबंधिप्राणंगळु मूरुं । पर्य्याप्तसयोगिकेवलिभट्टारकसंबंधिप्राणंगळु नाल्कुमवावुवेंदोडे वाक्कायायुरुच्छ्वासनिःश्वासंगळ्कुमा । गुण-

---

द्वादशसु, असंज्ञिन एकस्मिन्, आहारकस्य त्रयोदशसु अनाहारकस्य पञ्चसु च गुणस्थानेषु सामान्यगुणस्थानोक्तक्रमेणालापः कर्तव्यः ॥७२४॥

गुणस्थानानि चतुर्दश, मूलजीवसमासाः पर्याप्ताः सप्त । अपर्याप्ताः सप्त । संज्ञिनः पर्याप्तयः षट् अपर्याप्तयः षट् । असंज्ञिनो विकलत्रयस्य च पर्याप्तयः पञ्च अपर्याप्तयः पञ्च । एकेन्द्रियस्य पर्याप्तयः चतस्रः अपर्याप्तयः चतस्रः । प्राणाः संज्ञिनो दश तदपर्याप्तस्य सप्त । असंज्ञिनः नव तदपर्याप्तस्य सप्त, चतुरिन्द्रियस्य अष्टौ तदपर्याप्तस्य षट्, त्रीन्द्रियस्य सप्त तदपर्याप्तस्य पञ्च, द्वीन्द्रियस्य षट् तदपर्याप्तस्य चत्वारः, एकेन्द्रियस्य चत्वारः तदपर्याप्तस्य त्रय. । सयोगकेवलिनः चत्वारः वाक्कायायुरुच्छ्वासनिश्वासाख्याः । तस्यैव

बारह, असंज्ञीका एक, आहारकके तेरह और अनाहारकके पाँच गुणस्थानोंमें सामान्य गुणस्थानोंमें कहे गये क्रमके अनुसार आलाप कर लेना चाहिए ॥७२४॥

गुणस्थान चौदह, मूल जीवसमास चौदह उनमें सात पर्याप्त, सात अपर्याप्त, संज्ञीके पर्याप्त अवस्थामें छह पर्याप्तियाँ और अपर्याप्त अवस्थामें छह अपर्याप्तियाँ, इसी प्रकार असंज्ञी और विकलत्रयके पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ। एकेन्द्रियके चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, प्राण संज्ञीके दस, संज्ञी अपर्याप्तकके सात, असंज्ञीके नौ, असंज्ञी अपर्याप्तके सात, चतुरिन्द्रियके आठ, अपर्याप्तके छह, तेइन्द्रियके सात, अपर्याप्तके पाँच, दोइन्द्रियके छह उसी अपर्याप्तके चार, एकेन्द्रियके चार उसी अपर्याप्तके तीन। सयोगकेवलीके चार प्राण वचन, काय, आयु, उछ्वास-निश्वास, उसीके पुनः मिश्रकाय और आयु।

स्थानदोळे मिश्रकाय प्राणंगळेरडुं अयोगिकेवलिगुणस्थानदायुष्प्राणमोंदुं नाल्कुं संज्ञेगळु नाल्कु गतिगळुं अय्दुमिंद्रियंगळुं। आरुकायंगळुं पर्य्याप्तयोगंगळपनोंदुं। अपर्य्याप्तयोगंगळु नाल्कुं मूरुवेदंगळुं नाल्कुं कषायंगळु एंटु ज्ञानंगळु एळु संयमंगळुं नाल्कुं दर्शनंगळुं आरुं लेश्यगळुं यरडुं भव्यंगळुं आरुं सम्यक्त्वगळु येरडुं संज्ञेगळुं यरडुमाहारंगळुं। पन्नेरडुमुपयोगंगळुं एंबी समुच्चयं गुणस्थानंगळोळं मार्गणास्थानंगळोळं यथायोग्यंगळागि प्ररूपिसल्पडुवुवल्लि [1]संदृष्टि :—

गु । प । जी । ७ । अ ७ । प ६ प्राणंगळु १० । ७ । ९ । ७ । ८ ।
१४ । अ । ६ । प ५ । अ ५ । प ४

६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । ४ । स २ । अ १ । संज्ञेगळुनाल्कु ४ । गतिगळु नाल्कु ४ । इंद्रिय ५ । काय ६ । यो ११ । ४ । वे ३ । क । ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ १२ ॥

जीवसमासेयोळु विशेषमं पेळ्दपं :—

ओघे आदेसे वा सण्णी पज्जंतगा हवे जत्थ ।
तत्थ य उणवीसंता इगिबितिगुणिदा हवे ठाणा ॥७२७॥

ओघे आदेशे वा संज्ञिपर्य्यंता भवेयुर्य्यत्र तत्र चैकान्नविंशत्यंता एकद्वित्रिगुणिता भवेयुः- स्थानानि ॥

सामान्यदोळं विशेषदोळं संज्ञिपर्य्यंतमाद मूलजीवसमासंगळावेडेयोळु पेळल्पडुगुवल्लि एकान्नविंशतिअंतमाद उत्तरजीवसमासस्थानविकल्पंगळु एकद्वित्रिगुणितमादोडे सर्व्वजीवसमास-
॥
स्थानविकल्पंगळप्पुवु । सा १ । त्र १ । स्था १ । ए १ । वि १ । सं १ । ए १ । वि १ । अ १ । सं १ ।

पुनः मिश्रकायायुषी, अयोगस्य आयुर्नामैकः । संज्ञाश्चतस्रः, गतयः चतस्रः, इन्द्रियाणि पञ्च, कायाः षट्, योगाः पर्याप्ता एकादश, अपर्याप्ताश्चत्वारः, वेदाः त्रयः, कषायाश्चत्वारः, ज्ञानानि अष्टौ, संयमाः सप्त, दर्शनानि चत्वारि, लेश्याः षट्, भव्यद्वयं, सम्यक्त्वानि षट्, संज्ञिद्वयं आहारद्वयं उपयोगा द्वादश-एते सर्वे समुच्चयं गुणस्थानेषु मार्गणास्थानेषु च यथायोग्य प्ररूपयितव्याः ॥७२५–७२६॥ जीवसमासेषु विशेषमाह—

सामान्ये विशेषे वा संज्ञिपर्यन्ता मूलजीवसमासा यत्र निरूप्यन्ते तत्र एकान्नविंशत्यन्ता उत्तरजीव-समासस्थानविकल्पा एकद्वित्रिगुणिताः संत; सर्वजीवसमासस्थानविकल्पा भवन्ति ।

अयोगीके एक आयुप्राण है। संज्ञा चार, गति चार, इन्द्रियाँ पाँच, काय छह, पर्याप्तयोग ग्यारह, अपर्याप्त चार, वेद तीन, कषाय चार, ज्ञान आठ, संयम सात, दर्शन चार, लेश्या छह, भव्य-अभव्य, सम्यक्त्व छह, संज्ञी-असंज्ञी, आहारक-अनाहारक, उपयोग बारह। ये सब गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंमें यथायोग्य प्ररूपणीय हैं ॥७२५–७२६॥

जीवसमासोंमें विशेष कहते हैं—

गुणस्थानों या मार्गणाओंमें जहाँ संज्ञीपर्यन्त मूल जीवसमास कहे जायें वहाँ उन्नीस पर्यन्त उत्तर जीवसमास स्थानके विकल्पोंको एक सामान्य, दो पर्याप्त-अपर्याप्त और तीन

1. म गु. जी. प ६ । ६ ।
१४ । ७ । ७ । ५ ५ ।

ए १ । बि १ । ति १ । च १ । पं १ । पु १ । अ १ । ते १ । वा १ । व १ । त्र १ । पु १ । अ १ । ते १ । वा १ । व १ । वि १ । स १ । पु १ । अ १ । ते १ । वा १ । व १ । वि १ । अ १ । सं १ । पू १ । अ १ । ते १ । वा १ । व १ । बि १ । ति १ । च १ । प १ । पु १ । अ १ । ते १ । वा १ । व १ । बि १ । ति १ । च १ । अ १ । सं १ । पू २ । अ २ । ते २ । वा २ । व २ । त्र १ । पू २ । अ २ । ते २ । वा २ । व २ । वि १ । स १ । पु २ । अ २ । ते २ । वा २ । व २ । वि १ । सं १ । पृ २ । अ २ । ते २ । वा २ । व २ । बि १ । ति १ । च १ । पं १ । पू २ । अ २ । ते २ । वा २ । व २ । बि १ । ति १ । च १ । ति १ । च १ । अ १ । सं १ । पू २ । अ २ । ते २ । वा २ । नि २ । च २ । प्र १ । वि १ । अ १ । सं १ । पू २ । अ २ । ते २ । वा २ । नि २ । च २ । प्र १ । बि १ । ति १ । च १ । पं १ । पू २ । अ २ । ते २ । वा २ । नि २ । च २ । प्र १ । बि १ । ति १ । च १ । अ १ । सं १ । पृ २ । अ १ । ते २ । वा २ । नि २ । च २ । प्र २ । बि १ । ति १ । च १ । अ १ । सं १ ॥

[1] १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ । १८ । १९ ॥ गुणकारसामान्यविदमों डु १ । युति १९० । [2] २ । ४ । ६ । ८ । १० । १२ । १४ । १६ । १८ । २० । २२ । २४ । २६ । २८ । ३० । ३२ । ३४ । ३६ । ३८ ॥ गुणकाररयुति ३८० । [3] ३ । ६ ।

सा १ त्र १ स्था १ ए १ वि १ सं १ ए १ वि १ । अ १ सं १ ए १ वि १ ति १ च १ पं १ पू १ अ १ ते १ वा १ व १ त्र १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ सं १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ । अ १ सं १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ ति १ च १ प १ । पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ ति १ च १ अ १ सं १ पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ त्र १ पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ सं १ । पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ अ १ सं १ । पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ ति १ च १ पं १ । पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ ति १ च १ अ १ पं १ । पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र १ वि १ अ १ सं १ । पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र १ वि १ ति १ च १ पं १ । पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र १ वि १ ति १ च १ अ १ सं १ । पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र २ वि १ ति १ च १ अ १ सं १ । १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ । गुणकारः सामान्यत

सामान्य पर्याप्त-अपर्याप्तसे गुणा करनेपर समस्त जीवसमास स्थानके विकल्प होते हैं। एकसे लेकर उन्नीस तकके विकल्पोंको एकसे गुणा करनेपर उतने ही रहते हैं १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९। इन सबका जोड़ १९०

१. इवु पर्य्याप्तिंगलोंदे भेदवु । २. पर्य्याप्तापर्य्याप्तभेददिं द्विगुणंगलु । ३. इवु पर्य्याप्तिनिर्वृत्यपर्य्याप्तलब्ध्यपर्य्याप्तभेददिंत्रिगुणितगलु ।

९। १२। १५। १८। २१। २४। २७। ३०। ३३। ३६। ३९। ४२। ४५। ४८। ५१। ५४। ५७॥ गुणकार ३ युति ५७०॥ इंतु गुणस्थानंगळोळु मार्ग्गणास्थानंगळोळं विंशतिविधंगळु योजिसल्पडुगुमवेंतेंदोडे :—

वीरमुहकमलणिग्गयसयलसुयग्गहणपयडणसमत्थं ।
णमियूण गोदममहं सिद्धांतालावमणुवोच्छं ॥७२८॥

वीरमुखकमलनिर्ग्गतसकलश्रुतग्रहणप्रतिपादनसमर्त्थं। नत्वा गौतममहं सिद्धांतालापमनुवक्ष्यामि ॥

सूत्रसूचितंगळप्प विंशतिविधंगळालापनिरूपणे माडल्पडुवल्लि मोदलोळं गुणस्थानदिवं येळल्पडुगुमदेंतेंदोडे पदिनाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळं गुणस्थानातीतरुगळुमोळरु। पदिनाल्कुं जीवसमासंगळनुळळमतीतजीवसमासरुगळुमोळरु षट्पर्य्याप्तिगळोळ्कूडिदवरुं। षडपर्य्याप्तियुक्तरुं पंचपंचपर्य्याप्त्यपर्य्याप्तियुक्तरुं। चतुश्चतुःपर्य्याप्त्यपर्य्याप्तियुक्तरुगळुमोळरु। अतीतपर्य्याप्तरुगळुमोळरु। दशप्राण। सप्तप्राण। नवप्राण। नवप्राण। सप्तप्राण। अष्टप्राण। षट्प्राण। सप्तप्राण। पंचप्राण। षट्प्राण। चतुःप्राण। चतुःप्राण। त्रिप्राण। चतुःप्राण। द्विप्राण। एकप्राण। युतरुमतीतप्राणरुगळुमोळरु। चतुर्व्विधसंज्ञायुक्तरुं। क्षीणसंज्ञरुगळुमोळरु। चतुर्गतिजीवंगळुं सिद्धगतिजीवंगळुमोळरु।

एकेंद्रियादिपंचजातियुतजीवंगळु मतीतजातिगळुमोळरु। पृथ्वीकायिकादिषट्कायिकंगळुमतीतकायिकंगळुमोळरु। पंचदशयोगयुक्तरुमयोगरुगळुमोळरु। त्रिवेदिगळुमपगतवेदगळुमोळरु।

एक. १। युतिः १९०। २ ४ ६ ८ १० १२ १४ १६ १८ २० २२ २४ २६ २८ ३० ३२ ३४ ३६ ३८ गुणकारः २ युति. ३८०। ३ ६ ९ १२ १५ १८ २१ २४ २७ ३० ३३ ३६ ३९ ४२ ४५ ४८ ५१ ५४ ५७ गुणकार. ३। युतिः ५७० ॥७२७॥ इतोऽग्रे गुणस्थानेषु मार्गणास्थानेषु च ते गुणजीवेत्यादिविंशतिभेदा योज्यन्ते तद्यथा—

तत्र गुणस्थानेषु यथा तावच्चतुर्दशगुणस्थानजीवाः तदतीताश्च सन्ति। चतुर्दशजीवसमासास्तदतीताश्च संति। षट् षट् पञ्च पञ्चचतुश्चतुः पर्याप्त्यपर्याप्ति जीवाः तदतीताश्च संति। दशसप्तनवसप्ताष्टषट्सप्तपञ्चषट्चतुश्चतुस्त्रिचतुर्द्व्येकप्राणाः तदतीताश्च संति। चतुःसंज्ञा तदतीताश्च संति। चतुर्गतिका. सिद्धाश्च संति।

होता है। इन्हें दोसे गुणा करनेपर सबका जोड़ ३८० होता है और तीनसे गुणा करनेपर सबका जोड़ ५७० होता है ॥७२७॥

यहाँसे आगे गुणस्थानोंमें और मार्गणाओंमें गुणस्थान जीवसमास इत्यादि बीस भेदोंकी योजना करते हैं—

वर्धमान स्वामीके मुखरूपी कमलसे निकले सकलश्रुतको ग्रहण और प्रकट करनेमें समर्थ गौतम स्वामीको नमस्कार करके सिद्धान्तालापको कहूँगा।

गुणस्थानोंमें जैसे चौदह गुणस्थानवर्ती जीव हैं। गुणस्थानसे रहित सिद्ध हैं। चौदह जीवसमाससे युक्त जीव हैं उनसे रहित जीव हैं। छह-छह, पाँच-पाँच, चार-चार पर्याप्ति और अपर्याप्तिसे युक्त जीव हैं और उनसे रहित जीव हैं। दस सात, नौ सात, आठ छह, सात पाँच, छह चार, चार तीन, चार दो और एक प्राणके धारी जीव हैं और उनसे रहित जीव हैं। चार संज्ञावाले और उनसे रहित जीव हैं। चार गतिवाले और गतिरहित सिद्ध

चतुःकषायिगळु मकषायरुमोळरु। अष्टज्ञानिगळु मोळरु। सप्तसंयमरुगळु मतीतसंयमरुगळु-मोळरु। चतुर्द्दर्शनिगळुमोळरु। द्रव्यभावभेदषड्लेश्यरुगळुमलेश्यरुगळुमोळरु। भव्यसिद्धरुगळु मभव्यसिद्धरुगळुमतीतभव्याभव्यसिद्धरुगळमोळरु। षड्विधसम्यक्त्वयुक्तरुगळुमोळरु। संज्ञिगळुमसंज्ञिगळुमतिक्रांतसंज्ञ्यसंज्ञिगळु मोळरु। आहारिगळु मनाहारिगळु मोळरु। साकारोपयोगयुक्तरुगळु-मनाकारोपयोगयुक्तरुं। युगपत्साकारानाकारयोगयुक्तरुगळु मोळरु। इन्नु पर्याप्तविशिष्टगुणस्थानाळापं विवक्षितमागलु पविनाल्कुं गुणस्थानिगळुमोळरु। अतीतगुणस्थानरिल्लेकें दोडेपर्य्याप्तरोळु तदाळापासंभवपप्पुदरिदं। पर्य्याप्तगुणस्थानिगळगे। गु१४। जी७। प ६। ५। ४। प्रा१०। ९। ८। ६। ७। ४। ४। १। सं४। ग४। इं५। का६। यो११। वे३। क४। ज्ञा८। सं७। द४ ले ६ द्र ६ भा भ २। सं ६। सं २। आ २। उ १२। अपर्य्याप्तगुणस्थानिगळगे। गु ५। मि। सा। अ। प्र। सयोगी। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। २। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। योग ४। औ मि। वै मि। आ मि। कार्म्मण। वे ३। कषा ४। ज्ञा ६। कु। कु। म। श्रु। अ।

पञ्चजातयः तदतीताश्च संति। षट्कायिकास्तदतीताश्च संति। पञ्चदशयोगाः अयोगाश्च संति। त्रिवेदाः तदतीताश्च संति। चतुःकषाया. अकषायाश्च संति। अष्टज्ञानाः संति। सप्तसंयमास्तदतीताश्च संति। चतुर्दर्शनाः सति। द्रव्यभावषट्लेश्याः अलेश्याश्च संति। भव्यसिद्धाः अभव्यसिद्धाः अतीततद्भावाश्च संति। षट्सम्यक्त्वाश्च संति। संज्ञिनोऽसंज्ञिनोऽतीततद्भावाश्च सति। आहारिणोऽनाहारिणश्च संति। साकारोपयोगाः अनाकारोपयोगाः युगपदुभयोपयोगाश्च सति। अथ पर्याप्तिविशिष्टगुणस्थानालाप उच्यते–तत्र चदुर्दशगुणस्थानिनः संति न च तदतीता. पर्याप्तेषु तदालापासंभवात्—

पर्याप्तगुणस्थानिनां गु १४। जी ७। प ६ ५ ४। प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ ४ १। सं ४। ग ४। इ ५। का ६। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६ भा ६। भ २। स ६। सं २। आ १। उ १२। अपर्याप्तगुणस्थानिना गु ५ मि सा अ प्र स। जी ७ अ। प ६। ५। ४। प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २। सं ४। ग ४। इ ५। का ६। यो ४ औमि वैमि आमि कार्म। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु कु म श्रु अ के।

हैं। पाँच जातिवाले और उनसे रहित जीव हैं। छह कायिक जीव और उनसे रहित जीव हैं। पन्द्रह योगवाले जीव और योगरहित जीव हैं। तीन वेदवाले जीव और उनसे रहित जीव हैं। चार कषायवाले जीव और कषायरहित जीव हैं। आठ ज्ञानवाले जीव हैं। ज्ञानरहित जीव नहीं हैं। सात संयमसे युक्त जीव और उनसे रहित जीव हैं। चार दर्शनवाले जीव हैं। दर्शनसे रहित जीव नहीं हैं। द्रव्य भाव रूप छह लेश्यासे युक्त जीव और उनसे रहित जीव हैं। भव्यसिद्ध अभव्यसिद्ध जीव हैं और उन दोनों भावोंसे रहित जीव हैं। छह सम्यक्त्वयुक्त जीव हैं। सम्यक्त्व रहित जीव नहीं हैं। संज्ञी और असंज्ञी जीव तथा दोनोंसे रहित जीव हैं। आहारी और अनाहारी जीव हैं। साकार उपयोगी, अनाकार उपयोगी और एक साथ दोनों उपयोगवाले जीव हैं। आगे गुणस्थान और मार्गणास्थानमें यथायोग्य बीस प्ररूपणा कहते हैं—

विशेष सूचना—टीकाकारने गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंमें बीस प्ररूपणाओंका निरूपण सांकेतिक अक्षरोंके द्वारा किया है। उन्हें आगे अन्तमें नकशों द्वारा अंकित किया गया है।

के । सं ४ । अ । सा । छे । यथा । द ४ ले २ क । शु ॥
भा ६

सव्वेसिं सुहुमाणं कावोदं सव्वविग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कवोदवण्णो हवे णियमा ॥

भ २ । सं ५ । मिश्ररुचिरहित सं २ । आ २ । उ १० । विभंग ज्ञानसहित मिथ्यादृष्टिगुण-स्थानवर्त्तिगळ्गे गु १ । जी १४ प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । आहारकद्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं । १ । अ । द २ । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ ।
भा ६
उ ५ । पर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ ॥

सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले द्र ६ । भा ६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥ अपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे गु १ । मि । जि ७ । पर्य्या । ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं । ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ मि वै मि । कार्म्म । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क ।
भा ६
शु । भ २ । स १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥

सासादनगुणस्थावर्त्तिगळ्गे गु १ । सासा । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । त्र । यो १३ । म ४ । वा ४ । औ २ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द । २ ले ६ द्र भ १ । सं १ । सा सा । सं १ । आ २ ।
६ भा

सं ४ अ सा छे यथा । द ४ ले २ क शु ।
भा ६

भ २ । स ५ । मिश्रं न हि, सं २ । आ २ उ १० । विभङ्गमनःपर्ययौ नहि, सामान्यमिथ्यादृष्टीनां । गु १ । जी १४ । प ६ । ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ आहारकद्वयं नहि । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द १ । ले ६ । भ २ स १
भा ६
मि । सं २ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां गु १ । जी ७ । प । ६ ५ ४ प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ । आ । द २ । ले ६ । भ २ ।
भा ६
स १ मि । सं २ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां–गु १ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औमि । वैमि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ ले २ । क । शु । भ २ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ । सासादनानां–गु १ सासा । जी २ प । अ ।
भा ६
प ६ । ६ । प्रा । १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ । यो १३ । म ४ । वा ४ । औ २ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु, कु, वि । सं १ अ । द २ ले ६ । भ १ । स १ सासा । स १ आ २ ।
भा ६

उ ५ । पर्य्याप्तकसासादनगुणस्थानवर्तिगळ्गे । गु १ । सा सा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वे का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । मि । सं १ । अ । द २ ले ६ / भा ६ । भ १ । सं १ । सा सा । सं १ । आ १ । उ ५ ।

अपर्य्याप्तकसासादनगुणस्थानवर्त्तिगळ्गे । गु १ । अ । प । ६ । अ । प्रा ७ । अ सं ४ ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं । अ द २ ले २ / भा ६ । क । शु । भ १ । सं १ । या सा । पं १ । आ २ । उ ४ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्त्तिगळ्गे । गु १ । मिश्र । जी १ । प । प ६ । प । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । मि म । मि श्र । मि अ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ / २ ६ भ १ । सं १ । मिश्ररुचि । सं १ । आ १ उ ६ ॥

असंयतगुणस्थानवर्तिगळ्गे । गु १ । अ । सं । जी २ । प । अ । प ६६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । म ४ । व ४ । औ २ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ ॥ ले ६ / भा ६ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

असंयतगुणस्थानवर्त्तिपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । असं । जी १ । प । प ६ । प । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ / भा ६ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ उ ६ ॥

उ ५ । तत्पर्याप्ताना–गु १ सासा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ । वा ४ । औका १ । वैंका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ / भा ६ । भ १ । स १ सासा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां गु १ । सासा । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैंमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । स १ अ । द २ । ले २ क शु / भा ६ । भ १ । स १ सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां गु १ मिश्र । जी १ प । प ६ प । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० । म ४ वा ४ औका १ वैंका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ / भा ६ । भ १ । स १ मिश्ररुचि । सं १ । आ १ । उ ५ ।

असंयतानां–गु १ अ स । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ प । का १ त्र । यो १३ म ४ वा ४ औ २ वैं २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ / भा ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्ताना–गु १ अ । जी १ प । प ६ प । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ वा ४ औका १, वैंका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म

असंयतगुणस्थानवर्त्ति अपर्य्याप्ता संयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । अ सं । जी १ । अ । प । ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे २ । नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ ले २ क । शु । भा ६ भ १ । सं ३ । उ वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

देशसंयतगुणस्थानवर्त्तिगळ्गे गु १ । देश । जी १ । प । प ६ । प । प्रा १० । सं ४ । ग २ । ति । म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । देश । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भा ३ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

प्रमत्तगुणस्थानवर्त्तिप्रमत्तंगे । गु १ । प्र । जी २ । प । अ । प ६ । ६ प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । व ४ । औ । का १ । आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म ४ । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ ले ६ भा ३ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

अप्रमत्तगुणस्थानवर्त्ति अप्रमत्तंगे गु १ । अ प्र जी १ । प । प ६ । प । प्रा १० । सं ३ । भ । मै । प । कारणाभावे कार्य्यस्याप्यभावः एंदु सदसद्वेद्यंगळिगे प्रमत्तनोळुदीरणे व्युच्छित्तियादुदमप्पुदरिंदमाहारसंज्ञे अप्रमत्तनोळु संभविसदु । ग १ । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ९ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ ले ६ भा ३ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

अपूर्व्वकरणगुणस्थानवर्त्तिगळिगे । गु १ । अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ ।

श्रु अ । स १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ भा ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । तदपर्याप्तानां— गु १ असं । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ । औमि वैमि का । वे २ नपुं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु भा ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । देशसंयतानां—गु १ देश । जी १ प । प ६ प । प्रा १० प । सं ४ । ग २ ति म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । म ४, वा ४, औका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ देश । द ३ च अ अ । ले ६ भा ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तानां—गु १ प्र । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औका १, आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ च अ अ । ले ६ भा ३ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अप्रमत्तानां—गु १ अप्र । जी १ । प ६ प । प्रा १० । सं ३—भ मै प । कारणाभावे कार्यस्याप्यभावात् सदसद्वेद्यानुदीरणात् अत्र आहारसंज्ञा नहि । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ म ४ व ४ । औका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ च अ अ । ले ६ भा ३ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अपूर्वकरणानां—गु १ अपू । जी १ । प ६ । प्रा १० ।

म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । च । अ ।
अ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्त्तिप्रथमभागानिवृत्तिकरणंगे । गु १ । अनि । जी १ । प ६ ।
प्रा १० । सं २ । मै । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा छे ।
द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्त्तिद्वितीयभागानिवृत्तिकरणंगे । गु १ । अनि । जि १ । प ६ ।
प्रा १० । सं १ । प । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म ।
सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

तृतीयभागानिवृत्तिकरणंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स १ । प । ग १ । म । इं १ ।
का १ । यो ९ । वे ० । क ३ । ज्ञा ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । उ ।
भा १
क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

चतुर्थभागानिवृत्तिकरणंगे । गु १ । अनि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । प । ग १ ।
म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क २ । ज्ञान ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ ।
भा १
सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

पंचमभागानिवृत्तिकरणंगे । गु १ । अनि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । प । ग १ । म ।
=
इं १ । प ० । का १ । त्र । यो ९ । वे ० । क १ । लो । ज्ञा ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६
भा १
भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

सं ३ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा छे । द ३ च अ अ ।
ले ६ । भ १ । स २ । उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अनिवृत्तिकरणप्रथमभागवर्तिनां—गु १ अनिवृत्ति ।
भा १
जी १ । प ६ । प्रा १० । सं २ मै प । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २
सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । तद्द्वितीयभागवर्तिना—गु १ अनि ।
भा १
जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ प । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म ।
सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । तृतीयभागवर्तिना—गु १
भा १
अनि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ प । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ३ । ज्ञा ४ ।
सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । चतुर्थभागवर्तिनां—गु १ अनि ।
भा १
जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ प । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क २ । ज्ञा ४ । सं २ सा
छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । पंचमभागवर्तिनां—गु १ अनि । जी १ ।
भा १
प ६ । प्रा १० । सं १ प । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ० । क १ लो । ज्ञा ४ । सं २ सा

सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवर्त्तिसूक्ष्मसांपरायंगे गु १। सू। जी १। प ६। प्रा १०। सं १। प।
=
इं १। का १। यो ९। वे ०। कषा १। ज्ञा ४॥ सं १। सू। द ३। लेश्ये ले ६ सं २। उ।
भा १
क्षा। सं १। आ १। उ ७॥

उपशांतकषायगुणस्थानवर्त्तिउपशांतकषायंगे। गु १। उ प। जी १। प ६। प्रा १०।
स ०। ग १। म। इं १। का १। यो ९। वे ०। क ०। ज्ञा ४। सं १। यथा। द ३। ले ६
भा १
भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥

क्षीणकषायगुणस्थानवर्त्तिक्षीणकषायंगे। गु १। क्षी। जी १। प ६। प्रा १०। स ०।
ग १। म। इं १। का १। यो ९। वे ०। क ०। ज्ञा ४॥ सं १। यथा। द ३। ले ६ भ १।
भा १
सं १। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥

सयोगिकेवलिगुणस्थानवर्त्ति सयोगकेवलिभट्टारकंगे गु १। जी २। प ६। ६। प्रा ४। २।
स ०। ०। ग १। म। इं १। का १। यो ७। म २। व २। औ २। का १। वे ०। क ०। ज्ञा १।
के। सं १। यथा। द १। के ले ६ भ १। सं १। क्षा। सं। ०। आ २। उ २॥
भा १

अयोगिकेवलिगुणस्थानवर्ति अयोगकेवलिभट्टारकंगे। गु १। अयो। जी १। प ६। प्रा १।
आयुष्य। सं। ०। ग १। म १। इं १। प ०। का १। त्र। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १। के।
सं १। यथा। द १ के ले ६ भ १॥ सं १। क्षा। सं। ०। आ १। अनाहार। उ २॥
भा ०

अतीतगुणस्थानसिद्धपरमेष्ठिगळ्गे। गु ० जी ० प ०। प्रा ० सं। ०। ग १। सिद्धिगति।

छे। द ३। ले ६। भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। सूक्ष्मसांपरायाणां—गु १ सू। जी १।
भा १
प ६। प्रा १०। सं १ प। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ०। क १। ज्ञा ४। सं १ सू। द ३।
ले ६। भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। उपशान्तकषायाणा—गु १ उप। जी १। प ६।
भा १
प्रा १०। स ०। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ०। क ०। ज्ञा ४। सं १ यथा। द ३। ले ६।
भा १
भ १। स २। उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। क्षीणकषायाणा—गु १ क्षी। जी १। प ६। प्रा १०।
सं ०। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ०। क ०। ज्ञा ४। सं १ यथा। द ३। ले ६। भ १।
भा १
स १ क्षा। सं १। आ १। उ ७। सयोगकेवलिनां—गु १। जी २। प ६ ६। प्रा ४ २। सं ० ग १ म।
इं १। का १। यो ७ म २ वा २ औ २ का १। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। सं १ यथा। द १ के।
ले ६। भ ०। स १ क्षा। सं ०। आ २। उ २। अयोगकेवलिनां—गु १ अयो। जी १। प ६। प्रा १।
भा १
आयुष्यं। सं ०। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। सं १ यथा। द १ के।
ले ६। भ ०। स १ क्षा। सं ०। आ १ अनाहार। उ २। गुणस्थानातीतसिद्धपरमेष्ठिनां—गु ० जी ०।
भा ०

इं । ० । का ० । यो ० । वे । ० । क ० । ज्ञा १ । के । सं । ० । द १ । के । ले ० । भ । ० । सं १ । क्षा । सं । ० । आ १ । अनाहार । उ २ ॥

आदेशदोळु गत्यनुवाददोळु नारकरुगळ्गे सामान्यालापं पेळल्पडुवल्लि । गु ४ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । नरकगति । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । वा ४ । वै २ । का १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ३[1] भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं १ ।
भा ३
आ २ । उ ९ ॥

सामान्यपर्य्याप्तनारकर्गे गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । षं ० । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले १ कृ । भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं २ । उ ९ ॥
भा ३

सामान्यनारकापर्याप्तकंगे गु २ मि । अ । जी २ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो २ । वै । मि । का ॥ वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले २ क । शु । भ २ । सं ३ । मि । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ॥
भा ३

सामान्यनारकमिथ्यादृष्टिगळ्गे गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो ११ । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ३ भ २ । सं १ । मि । सं १ आ २ । उ ५ ॥
भा ३

प ० । प्रा ० । सं ० । ग ० । इं ० । का ० । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । स ० । द १ के । ले ० । भ ० । स १ क्षा । स ० । आ १ अनाहार । उ २ ।

आदेशे गत्यनुवादे नारकाणा—गु ४ । जो २ प अ । प ६ । ६ प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ न । इ १ । का १ । यो ११ । म ४ वा ४ वै २ का १ । वे १ पं । क ४ । ज्ञा ६ कु, कु, वि म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ३ । पर्याप्तेषुपरि कृष्णलेश्या एकैव अपर्याप्तकाले कपोतलेश्या विग्रहगतौ शुक्ललेश्या
भा ३
इति द्रव्यलेश्यात्रयं । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ९ । तत्पर्याप्ताना—गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । स १ अ । द ३ च अ अ । ले १ कृ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ९ ।
भा ३
तदपर्याप्तानां—गु २ । मि अ । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो २ वैमि क । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ३ मि वे क्षा ।
भा ३
सं १ । आ २ । उ ८ । तन्मिथ्यादृष्टीना—गु १ मि । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । योग ११ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ३ । भ २ । स १
भा ३

---

1. कृष्ण कपोत शुक्ल ।

सामान्यनारकपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ मि । जी १ । पर्य्या । ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । वा ४ । वै । का १ । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ ले १ कृ भ २ । सं १ । मिथ्यारुचि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा ३

सामान्यनारकापर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ नरक । इं १ । का १ । यो २ । वै मि । का । वे १ षं ० । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु भ २ । स १ । मिथ्यारुचि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा ३ अ शु

सामान्यनारकसासादनसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । सा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । व ४ । वै का १ । वे षं ० । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं । १ । अ । द २ ले १ कृ भ १ । सं १ । सासादनरुचि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा ३

नारकसामान्यमिश्रंगे । गु १ । जि १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ३ । मिश्र । सं १ । अ । द ३ । ले १ कृ भ १ । सं १ ।
भा ३
मिश्र । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

नारकसामान्यासंयतंगे । गु १ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । व ४ । वै २ का १ । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले ३ । कृ । क । शु । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ ।
भा ३ अ शु
उ ६ ॥

मि । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । म ४, वा ४, वैका १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ । कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले १ कृ ।
भा ३
भ २ । स १ मिथ्यारुचिः । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां गु १ मि । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ न । इ १ । का १ । यो २ । वै मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ ले २ । कृ शु भ २ । स १ मिथ्यारुचि । सं १ । आ २ । उ ४ । सासादनानां—गु १ सा । जी १ प
भा ३
प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ म ४, वा ४, वै का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले १ कृ । भ १ । स १ सासादनरुचि । सं १ । आ १ उ ५ । मिश्राणां—
भा ३
गु १ मिश्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ मिश्राणि सं १ अ । द २ । ले १ कृ । भ १ । स १ मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ असंयतानां—गु १ ।
भा ३
जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । म ४, वा ४ वै २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ ले ३ कृ क शु भ १ । स ३ उ, वे क्षा । सं १ ।
भा ३ अशुभ

सामान्यनारकपर्य्याप्तासंयतंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ म । श्रु । अ । सं १ अ । द ३ । ले १ भ १ । सम्य ३,
भा ३
उ । वे । क्षा । स १ । आ १ । उ प ६ ॥

सामान्यनारकाऽपर्य्याप्तासंयतंगे । गुण १ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो २ । वै मि । का । वे १ । षं ० । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ ले २ क शु । भ १ । सं २ । वे क्षा ॥ सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा १ कपो

घर्म्मेय सामान्यनारकग्गें । गु ४ । जी २ । प । अ । प । ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । वा ४ । वै २ । का १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ ले ३ कृ । क । शु । भ २ । सं ६ । सं १ । आ २ । उ ९ ॥
भा १

घर्म्मेय सामान्यनारकपर्य्याप्तकगें । गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । वा ४ । वै का १ । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ६ । सं १ । अ । द ३ । ले १ कृ भ २ । सं ६ । सं १ । आ १ । उ ९ ॥
भा १ कृ

घर्म्मेय सामान्यनारकापर्य्याप्तग्गें । गु २ । मि । अ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो २ । वै मि । का । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ३ । मि । वे । क्षा । मं १ । आ २ । उ ८ ॥
भा १ क

आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ । ले १ कृ । भ १ । स ३ । उ वे क्षा । सं १ ।
भा ३ अ
आ १ । उ ६ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । स ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो २ । वैमि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ म, श्रु, अ । स १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ म २ वे ।
भा ३ अशुभ
क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । घर्मानारकाणां—गु ४ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ वा ४ वै २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं १ अ । द ३ । ले ३ क क शु । भ २ स ६ । सं १ आ २ । उ ९ । तत्पर्याप्तानां—गु ४ । जी १ प । प ६ ।
भा १ क
प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ वा ४ वै का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ६ । सं १ अ । द ३ । ले १ कृ । भ २ । स ६ । सं १ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु २ मि अ । जी १
भा १ क
अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो २ वैमि । का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ५ । कु कु म श्रु अ । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ३ मि वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ।
भा १ क

घर्म्मेय मिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०।७। सं ४। ग १। न। इं १। का १। यो ११। म ४। व ४। वै २। का १। वे १। ष ०। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ३ कृ क शु भ २। सं १। मि। सं १। आ २। उ ५॥
भा १ क

घर्म्मेय नारकपर्य्याप्तकमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। न। इं १। का १। यो ९। म ४। वा ४। वै का १। वे १। ष ०। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं। १। अ। द २। ले १ भ २। सं १। मिथ्यारुचि। सं १। आ १। उ ५॥
भा १ क

घर्म्मेयनारकापर्य्याप्तकमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। अ प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। वै मि। का। वे १। क षा ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले
भा १ क
२ क शु। भ २। सं १। सं १। आ २। उ ४। कु। कु। च। अ॥

घर्म्मेय पर्य्याप्तसासादनंगे गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। द २। ले १ कृ भ १। सं १। सं। आ
भा १ क
१ उ ५॥ कु। कु। वि। च। अ॥

घर्म्मेय मिश्रंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २ ले १ कृ भ १। सं १। सं १। आ १। उ ५।
भा १ क

घर्म्मेय असंयतंगे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १।

तन्मिथ्यादृशां—गु १ जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो ११। म ४ वा ४ वै २ का १। वे १ षं। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ३ कृ क शु। भ २। स १
भा १ क
मि। सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो ९। म ४, वा ४। वै का १। वे १ षं। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले १ कृ।
भा १ क
भ २। स १ मिथ्यारुचिः। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १। जी १। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो २। वैमि का। वे १। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ २। स १। सं १। आ २। उ ४ कु कु च अ। सासादनाना—गु १। जी १। प ६।
भा १ क
प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १। द २। ले १ कृ। भ १। स १। सं १। आ १। उ ५ कु कु वि च अ। मिश्राणा—गु १। जी १। प ६।
भा १ क
प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १। द २। ले १ कृ। भ १। स १। सं १। आ १। उ ५। असंयताना—गु १ जी २। प ६ ६। प्रा १० ७।
भा १ क

यो ११ । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । द ३ ले ३ कृ क शु भ १ । सं ३ । उ
भा १ क
वे क्षा ॥ सं १ । आ २ । उ ६ ॥

घर्म्मेय पर्य्याप्तनारकाऽसंयतंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो न । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ । ले १ कृ भ १ । सं ३ । उ वे । क्षा ॥ सं १ ।
भा १ क
आ १ । उ ६ ॥

घर्म्मेय नारकापर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळगे । गु १ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि का । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । सं २ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा १ क

द्वितीयादि पृथ्वियनारकसामान्यक्के । गु ४ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे १ । क ४ । ज्ञा ६ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । सं १ । द ३ । च । अ । अ ले ३
भा १

स्वस्वभूम्यनतिक्रमेण भावापेक्षया एका । द्रव्यापेक्षया । कृ क शु । भ २ । सं ५ । उ । वे मि । सा । मि । सं १ । आ २ । उ ९ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । च । अ । अ ॥

द्वितीयादिपृथ्विगळ नारकपर्य्याप्तगें । गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ४ । ज्ञा ६ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । सं १ । द ३
ले १ कृ भ २ । सं ५ । उ । वे । मि । सा । मि । सं १ । आ १ । उ
१ भावापेक्षयास्वस्वभूम्यनतिक्रमेण
९ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । च । अ । अ ॥

सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ । द ३ । ले ३ कृ क शु ।
भा १ क
भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्ताना-गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ । ले १ कृ । भ १ । स ३ उ, वे,
भा १ क
क्षा, सं १ आ १, उ ६ तदपर्याप्तानां—गु १, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ वै मि का, वे १, क ४, ज्ञा ३, म श्रु अ, सं १, द ३, ले २ क शु, भ १, स २ वे क्षा, सं १,
भा १ क
आ २, उ ६, द्वितीयादिपृथ्वीनारकाणां—गु ४, जी २, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे १, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १, द ३ च अ अ, ले ३ स्वस्वभूम्यनतिक्रमेण भावापेक्षया
भा ३
एका द्रव्यापेक्षया कृ क शु, भ २, स ५ उ वे मि सा मि, सं १, आ २, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ, तत्पर्याप्ताना—गु ४, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इ १ का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ, कु कु वि, स १, द ३, ले १ कृ भ २, स ५ उ वे मि सा मि सं १, आ १, उ ९ म
भा १ स्वस्वभूम्यनतिक्रमेण

द्वितीयाविपृथ्विनारकापर्य्याप्तर्ग्गे । गु १ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे १ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । द २ । ले २ क शु
१ भा स्वस्वयोग्या
भ २ । सं १ । आ २ । उ ४ । कु । कु । च । अ ॥

द्वितीयाविपृथ्वीनारकसामान्यमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ६ । अ प्रा १० ॥ ७ । सं ४ । ग १ न । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ११ । म ४ । व ४ । वै २ । का १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ ले ३ कृ क शु भ २ ।
भा स्वयोग्य
सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ५ । कु । कु । वि । च । अ ॥

द्वितीयाविपृथ्वीनारकपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । द २ ले १ कृ
१ भा स्वयोग्या
भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

द्वितीयाविपृथ्वियनारकापर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे १ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । द २ ले २ । क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
१ स्वस्वयोग्या

द्वितीयावि पृथ्वियनारकसासावनंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । कषा ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । द २ ले १ कृ भ १ । सं १ ।
१ स्वस्वयोग्या
सा । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

श्रु अ कु कु वि च अ अ, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २, वै मि का, वे १, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १, द २, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं १, आ
भा १ स्वस्वयोग्या
२, उ ४ कु कु च अ, तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १ न, इं १, का १, यो ११ म ४, वा, ४, वै २ का १ वे १ षं, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ३ कृ क शु भ २ स १ मि सं १ आ २ १, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६,
भा १ स्वस्वयोग्य
प्रा १०, सं ४, ग १ इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १, द २, ले १ कृ,
भा १ स्वस्वयोग्या
भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २, मि का, वे १, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १, द २, ले २ क शु, भ २ स १ मि,
भा १ स्वस्वयोग्या
सं १, आ २, उ ४, तत्सासादनानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३, कु कु वि, सं १, द २, ले १ कृ, भ १, स १, सा, सं १, आ १, उ ५
भा १ स्वस्वयोग्या

द्वितीयापृथ्वीनारकसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । गति १ ।
इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ ॥ सं १ । द २ । ले १ भ १ । सं १ । मिश्र ।
१
सं १ । आ १ । उ ५ ॥

द्वितीयादिपृथ्वीनारकाऽसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ ।
ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ ।
अ । १ भ १ । सं २ । उ । वे । सं १ आ । १ । उ ६ । म । श्रु । अ । च । अ । अ ॥
१

तिर्य्यंचरु पंचप्रकारमप्परवरोळु सामान्यतिर्य्यंचरुगळ्गे । गु ५ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ ।
५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ६ । ५ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग १ ।
ति १ । इं ५ । का ६ । यो ११ । म ४ । व ४ । औ २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । म । श्रु । अ ।
कु । कु । वि । सं २ । अ । दे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ द्रव्यदोळु भावदोळं भ २ । सं ६ ।
भा ६
उ । वे । क्षा । मि । सा । मि । सं २ । आ २ । उ ९ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । च । अ । अ ॥

तिर्य्यंच सामान्यपर्य्याप्तकर्गे । गु ५ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ ।
६ । ५ । ४ । सं ४ । ग १ । ति । इं ५ । का ६ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । सं २ । द ३ ।
ले ६ भ २ । स ६ । सं २ । आ १ । उ ९ ॥
६

तिर्य्यंचसामान्यापर्य्याप्तकर्गे । गु ३ । मि । सा । अ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ ।
६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग १ । ति । इं ५ । का ६ । यो २ । मिश्रका । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ ।
म । श्रु । अ । कु । कु । सं १ अ । द ३ । च । अ । अ ले श क शु भ २ । सं ४ । मि । सा ।
भा ३ अशु

तत्सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३,
सं १, द २, ले १, भ १, स १, मिश्रं, सं १, आ १, उ ५, तदसंयतानां गु १, जी १, प ६, प्रा १०,
भा १
सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १, अ, द ३, च अ अ। ले १ भ १
भा १
स २ उ वे, सं १ आ १ उ ६ म श्रु अ च अ अ ।

पञ्चविधतिर्यक्षु सामान्यानां—गु ५ । जी १४ । प ६ ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६
४ ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इं ५ । का ६ । यो ११ म ४ व ४ औ २ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ कु
कु वि म श्रु अ । सं २ अ दे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ उ वे क्षा मि सा मि । सं २ ।
भा ६
आ २ । उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ । तत्पर्याप्तानां—गु ५ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा १० ९ ८ ७ ६ ।
४ । सं ४ । ग १ ति । इं ५ । का ६ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । सं २ । द ३ । ले ६ । भ २ ।
भा ६
स ६ । सं २ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ ।
सं ४ । ग १ ति । इं ५ । का ६ । यो २ मिश्र का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं १ । अ ।

क्षा। वे। सं २। आ २। उ ८। म। श्रु। अ। कु। कु। च। अ। अ॥

तिर्य्यंचसामान्यमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग १। इं ५। का ६। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६ भ २। सं १। मि। सं २। आ २।
६
उ ५। कु। कु। वि। च। अ॥

तिर्य्यंचसामान्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग १ ति। इं ५। का ६। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। लें ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ १। उ ५॥
६

तिर्य्यंचसामान्यापर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी ७। अ। प ६। ५। ४। अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग १। ति। इं ५। काय ६। यो २। मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। च। अ। ले २ क शु भ २। सं १। मि। सं २।
भा ३ अशु
आ २। उ ४। कु। कु। च। अ॥

तिर्य्यंचसामान्यसासादनंगे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७॥ सं ४। ग १। ति। इं १। का १। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २। ले ६ भ १। सं १।
६
सा। सं १। आ २। उ ५। कु। कु। वि। च। अ॥

तिर्यंचसामान्यसासादनपर्य्याप्तंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। ति। इं १। पं। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं। १। अ। द २। ले ६ भ १। सं १।
६

द ३ च अ अ। ले २ क शु भ २। स ४ मि सा क्षा वे। सं २। आ २। उ ८। म श्रु अ कु कु च
भा ३ अशुभ
अ अ। तन्मिथ्यादृशा—गु १। जी १४। प ६ ६ ५ ५ ४ ४ प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ सं ४। ग १। इं ५। का ६। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २ च अ। ले ६।
भा ६
भ २। स मि, सं २, आ २, उ ५ कु कु वि च अ। तत्पर्याप्तानां—गु १, जी ७, प ६ ५ ४, प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४, सं ४, ग १ ति, इं ५, का ६, यो ९, वे ३। क ४ ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६ भ २,
भा ६
स १ मि, स २, आ १, उ ५, तदपर्याप्ताना—गु १ मि, जी ७ अ, प ६ ५ ४ अ, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३, सं ४, ग १ ति, इं ५, का ६, यो २ मि का, वे ३, का ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २, क शु, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४ कु कु च अ, तत्सासादनाना—गु १, जी २, प ६ ६,
भा ३ अशुभ
प्रा १० ७, सं ४, ग १ ति, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४। ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ १, स
भा ६
१ सा, सं १, आ २, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १ पं,

सं १ । आ १ । उ ५ ॥

सामान्यतिर्य्यंचापर्य्याप्तसासादनंगे। गु १। जी १ । प ६ । प्रा ७। सं ४ । ग १ । इं १ । का १। यो २। औ मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २। ले २ क शु । भ १ ।
३ अशुभ
सं १ । सा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥ कु । कु । च । अ ॥

सामान्यतिर्य्यंचसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १। जी १। प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २। ले ६ भ १। सं १ । सं १
६
आ १ । उ ५ ॥

सामान्यतिर्य्यंचासंयतंगे। गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे ३ । क ४। ज्ञा ३ । म। श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ। ले ६
६
भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

सामान्यतिर्यंचासंयतपर्याप्तंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। द ३। ले ६ भ १। सं ३। सं १।
६
आ १ । उ ६ ॥

सामान्यतिर्य्यंचापर्य्याप्तासंयतंगे । गु १। जी १। प ६। अ । प्रा ७। सं ४ । गति १। इं १। का १। यो २। वे १। पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले २ क। शु। भ १। सं २। क्षा। वे। सं १। आ २। उ ६॥
भा १ क

का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६, भ १, स १, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां
भा ६
गु १, जी १, प ६, प्रा ७, स ४, ग १, इं १, का १, यो २ औ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले २ क शु, भ १, स १ सा, स १, आ २, उ ४, कु कु च अ। सम्यग्मिथ्यादृशां–गु १, जी १,
भा ३ अशुभ
प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६ भ १, स १,
भा ६
सं १, आ १, उ ५। असंयतानां–गु १, जी २, प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३, म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ६,
भा ६
तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १, द ३, ले ६, भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ,
भा ६
सं ४, ग १, इं १, का १, यो २, वे १ पुं, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले २ शु क,
भा १ क

सामान्यतिर्य्यंचदेशसंयतंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । दे । द ३ ले ६ भ १ । सं २ । उ । वे ।
भा शुभ
सं १ । आ १ । उ । ६ । म । श्रु । अ । च । अ । अ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंचर्ग्गे । गु ५ । जी ४ ॥ पंचेंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्ताऽपर्य्याप्त ॥ प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ११ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । सं २ । अ दे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ २ । सं ६ । उ ।
६
वे । क्षा । मि । सा । मि । सं २ । आ २ । उ ९ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । च । अ । अ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंचपर्य्याप्तकर्ग्गे । गु ५ । जी २ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । सं २ । अ । दे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ २ ।
६
सं ६ । उ । वे । क्षा । मि । सा । मि । सं २ । आ १ । उ ९ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंचापर्य्याप्तकर्गे । गु ३ । मि । सा । अ । जीव २ । प ६ । ५ । अ । प्रा ७ । ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । म । श्रु । अ । कु । कु । सं १ अ । द ३ । च । अ । अ । ले २ कु । शु । भ २ । सं ४ । वे । क्षा । मि । सा ।
भा ३
सं २ । आ २ । उ ८ । म । श्रु । अ । कु । कु । च । अ । अ । अ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । जी ४ । संज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त । असंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त । प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं । २ । आ २ । उ ५ ॥
६

भ १, स २ वे क्षा, सं १, आ २, उ ६ देशसंयताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ दे, द ३, ले ६, भ १, स २ उ वे, सं १, आ १,
भा ३ शुभ
उ ६ म श्रु अ च अ अ, पञ्चेन्द्रियतिरश्चां—गु ५, जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः, प ६ ६ ५ ५, प्रा १० ७ ९ ७, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि, सं २ अ दे, द ३ च अ अ, ले ६, भ २, स ६, उ वे क्षा मि सा मि, सं २, आ २, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ,
भा ६
तत्पर्याप्तानां—गु ५, जी २, प ६ ५, प्रा १० ९, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ६, स २ अ दे, द ३ च अ अ, ले ६ । भ २, स ६ उ वे क्षा मि सा मि, सं २, आ १, उ ९ म श्रु अ कु कु
भा ६
वि च अ अ, तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ, जी २, प ६ ५ अ, प्रा ७ ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा ५ म श्रु अ कु कु, सं १ अ, द ३ च अ अ । ले २ क शु, भ २, स ४
भा ३ अशुभ
वे क्षा मि सा, सं २, आ २, उ ८ म श्रु अ कु कु च अ अ, मिथ्यादृशा—गु १, जी ४, प ६ ६ ५ ५, प्रा १० ७ ९ ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ २, स १
भा ६

पंचेंद्रियतिर्य्यग्मिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । जी २ । सं । अ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो । ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६/६ भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥

पंचेंद्रियापर्य्याप्ततिर्य्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । जी २ । सं १ । प ६ । सं । अ । अ । अ । ५ । प्रा सं ७ । असंज्ञि = अ ७ । स ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले २ । क शु / भा ३ अ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यक्सासादनंगे । गु १ । जी २ । सं = प अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ । ले ६/६ । भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ २ । उ ५ । । कु । कु । वि । च अ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यक्पर्य्याप्तसासादनंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ । ले ६/६ भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यक्सासादनापर्य्याप्तंगे । गु १ । जी १ । प ६ । । प्रा ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ त्र । यो २ । मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च अ । ले २ क श / भा ३ अ शु भ भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ २ । उ ४ । कु । कु । च । अ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यग्मिश्रंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ ।

मि, सं २, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी २ सं अ, प ६ ५, प्रा १० ९, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६/भा ६, भ २ स १ मि, सं २, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ जी २ स अ, प सं ६ अ ५, प्रा सं ७, अ ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु/भा ३ अशुभ भ २, स १, सं २, आ २, उ ४, सासादनानां—गु १, जी २ सं प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६/भा ६, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६/भा ६, भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १ अ, प ६, प्रा ७, सं ४, ग १, इं १, का १ त्र, यो २ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु/भा ३ अशु, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ४ कु कु च अ, मिश्राणां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९,

यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। मत्यादिमिश्रत्रयं। सं १। अ। द २। च। अ ले ६ / ६ भ १। स १ मिश्र सं १। आ १। उ ५॥

मत्यादिमिश्रत्रयं चक्षुरचक्षुः॥ पंचेंद्रियर्य्यंगसंयतंगे। गु १। जी २। प ६। अ ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सम्यग्ज्ञानत्रयं सं १। अ। द ३ ले ६ / ६ भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६।। म। श्रु। अ। च। अ। अ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंगसंयतपर्य्याप्तंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६ / ६ भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंगपर्य्याप्तासंयतंगे। गु १। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। ति। इं १। पं। का १। त्र। यो २। मिश्र। का। वे १। पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ ले २ क शु / भा १ क भ १। सं २। क्षा। वे। सं १। आ २। उ ६। म। श्रु। अ। च। अ। अ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंग्देशसंयतंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०।। सं ४। ग १। ति। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। देशसंयम। द ३ ले ६ / भा ३ भ १। सं २। उ। वे। सं १। आ १। उ ६। म। श्रु। अ। अ। च। अ। अ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंकपर्य्याप्तकर्ग्गे पंचेंद्रियतिर्य्यंचर्ग्गे पेळ्दंते पेळ्वुकोळ्वु॥

वे ३, क ४, ज्ञा ३ मत्यादिमिश्रत्रयं, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, / भा ६ भ १, स १ मिश्र, सं १, आ १, उ ५, मत्यादिमिश्रत्रयं चक्षुरचक्षुश्च। असंयतानां—गु १, जी २, प ६, अ ६, प्रा १०, अ प्रा ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ। द ३। ले ६ / भा ६। भ १। स ३। सं १। आ २। उ ६ म श्रु अ च अ अ। तत्पर्याप्तानां—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले ६ / भा ६ भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६। तत्पर्याप्ताना—गु १ जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४। ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ मि का, वे १ पुं, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले २ क शु, / भा १ क भ १ स २ क्षा वे, सं १, आ २, उ ६ म श्रु अ च अ अ, देशसंयतानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १० सं ४, ग १ ति, इं १, पं १, का १ त्र, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३, ले ६ / भा ३ शु भ १, स २ उ वे, सं १, आ १, उ ६ म श्रु अ च अ अ, पञ्चेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तानां-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्वद्वक्तव्यम्।

पंचेंद्रियतिर्य्यंचयोनिमतिजीवंगळ्गे गु ५। जी ४। संज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त भेर्दाव। प ६। ।६। सं ५। ५। अ। सं। प्रा १०। ७। संज्ञि ९। ७। असंज्ञि। सं। ४। ग १। इं १। का १। योग ११। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ६। म। श्रु। अ। कु। कु। वि। सं २। अ। दे। द ३। च। अ। अ। ले ६/६ भ २। सं ५। उ। वे। मि। सा। मि। सं २। आ २। उ ९। म। श्रु। अ। कु। कु। वि। च। अ। अ॥

तिर्य्यंग्योनिमतिपर्य्याप्तंजीवंगळ्गे। गु ५। जी २। सं। अ। प ६। ५। प्रा १०। सं ९। अ। सं ४। ग १। ति। इं १। पं। का १। त्र। यो ९। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ६। म। श्रु। अ। कु। कु। वि। सं २। अ। दे। द ३। ले ६/६ भ २। सं। ५। उ वे। मि। सा। मि। सं २। आ १। उ ९। सं ३। मि ३। द ३। तिर्य्यंक्पंचेंद्रिययोनिमत्यपर्य्याप्तरुगें॥ गु २। मि। सा। जी २। संज्ञ्यपर्य्याप्त संज्ञ्यऽपर्य्याप्त। प ६। सं। अ। ५। अ। प्रा ७। अ ७। अ। सं ४। ग १। ति। इं १। पं। का १। त्र॥ यो २। मिश्र। का। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। च। अ ले २ क शु / भा ३ अ शु भ २। सं २। मि। सा। सं २। आ २। उ ४। कु। कु। च। अ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंग्योनिमतिमिथ्यादृष्टिगे। गु १। मि। जी ४। संज्ञ्यऽसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त। प ६। ६। ५। ५। असंज्ञि। प्रा १०। ७। संज्ञि ९। ७। असंज्ञि। सं ४। ग १। इं १। पं। का १। त्र। यो ११। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६/६ भ २। सं १। मिथ्यात्व। सं २। आ २। उ ५। कु। कु। वि। च। अ॥

तिर्यग्योनिमतीना—गु ५, जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तभेदतः प ६ ६ सं, ५ ५ अ सं, प्रा १० ७ संज्ञि ९ ७ असंज्ञि, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि, सं २ अ दे, द ३ च अ अ, ले ६/६, भ २, स ५ उ वे मि सा मिश्राः, सं २, आ २, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ, तत्पर्याप्तानां—गु ५, जी २ सं अ, प ६ ५, प्रा १० सं, ९ अ, सं ४, ग १ ति, इ १ पं, का १ त्र, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि, सं २ अ दे, द ३, ले ६/६, भ २, स ५ उ वे मि सा मिश्राः, स २, आ १, उ ९ स ३ मि ३ द ३, तदपर्याप्ताना—गु २ मि सा, जी २ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तौ, प ६/सं ५/अ, प्रा ७/अ, ७/स, ७/अ, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ मिश्र का, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु / भा ३ अ शु, भ २, स २ मि सा, स २, आ २, उ ४ कु कु च अ, मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः, प ६ ६ संज्ञि, ५ ५ असंज्ञि, प्रा १० ७ सं, ९ ७ असंज्ञि, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ११, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १ आ, द २, ले ६/६, भ २, स १

पंचेंद्रियतिर्य्यग्योनिमतिपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । संज्ञिपर्य्याप्तासंज्ञिपर्य्याप्त । प ६ ॥ संज्ञिपर्य्याप्तिगळु ५ ॥ असंज्ञिपर्य्याप्तिगळु प्रा १० । संज्ञि । ९ । असंज्ञि । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६/६ भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यग्योनिमत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । संज्ञ्यपर्य्याप्तासंज्ञ्यपर्य्याप्त । प ६ । संज्ञ्यपर्य्याप्तिगळु । ५ । असंज्ञ्यपर्य्याप्तिगळु प्रा ७ । संज्ञि ७ । असंज्ञि । सं ४ ॥ ग १ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो २ । मिश्र । का । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले २ क शु / भा ३ अशु भ २ । सं १ । मि । स २ । आ २ । उ ४ । कु । कु । च । अ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यग्योनिमतिसासादनंग । गु १ । सा । जी २ । सं । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ ति । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ११ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६/६ भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥ ० ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यग्योनिमतिसासादनपर्य्याप्तकंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६/६ भ १ । सं १ । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यग्योनिमत्यपर्य्याप्तसासादनंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का । यो २ । मिश्र । का । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । द २ ले २ क शु / भा ३ अशुभ भ १ । सं १ । सं १ । आ २ । उ ४ । कु । कु । च । अ ॥

मिथ्यात्वं, सं २, आ २, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी २ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तौ, प ६ संज्ञि ५ असंज्ञि, प्रा १० सं, ९ असंज्ञि, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६/६, भ २, स १ मि, सं २, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी २ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तौ, प ६ संज्ञ्यपर्याप्तयः, ५ असंज्ञ्यपर्याप्तयः, प्रा ७ सं, ७ असंज्ञि, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ मिश्र, का, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु / भा ३ अशु, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४, कु कु च अ, सासादनानां—गु १ सा, जी २ सं प अ, प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ११, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द २, ले ६/६, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६/६ भ १, स १, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १। प ६। प्रा ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २,

पंचेंद्रियतिर्य्यंग्योनिमतिमिश्रंगे । गु १ । मिश्र । जी १ । पं=। प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ । ले ६ भ १ । सं १ ।
६
मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंग्योनिमत्यसंयतंग । गु १ । अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । उ ।
६
वे । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंग्योनिमतिसंयतासंयतंगे । गु १ । दे । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ ॥ इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ ले ६ भ १ । सं २ । उ ।
भा ३
वे । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

तिर्य्यक्पंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी २ । सं = । अ । प ६ । ५ । प्रा ७ । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मिश्र । का । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥
भा ३ अशु

मनुष्यरु चतुर्व्विकल्पमप्परु । अल्लि सामान्यमनुष्यर्गे । गु १४ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो १३ । वैक्रियिकद्वयरहितं । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ भ २ । सं ६ । सं १ । आ २ । उ १२ ॥
६

सामान्यमनुष्यपर्य्याप्तकर्गे । गु १४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ ।

ले २ क शु , भ १, स १, सं १, आ २, उ ४, कु कु च अ, मिश्राणां—गु १ मिश्रं, जी १ सं प, प ६,
भा ३ अशुभ
प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ १, स १ मिश्रं,
६
सं १, आ १ उ ५, असंयतानां—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४ ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द ३, ले ६ भ १, स २ उ वे, स १, आ १, उ ६, संयतासंयतानां—गु १
६
दे, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३, ले ६, भ १ स २ उ वे, स १, आ १, उ ६, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तानां—गु १ मि, जी २ स, अ,
भा ३
प ६ ५, प्रा ७ ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मिश्र का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २ कु कु । सं १ अ, द २, ले २ क शु , भ २, स १ मि, स २, आ २, उ ४, चतुर्विधमनुष्येषु सामान्यानां—गु १४, जी २,
भा ३ अशुभ
प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो १३ वैक्रियिकद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६ भ २, स ६, सं १, आ २, उ १२, तत्पर्याप्तानां—गु १४, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४,
भा ६

का १। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६ भ २। सं ६। सं १।
६
आ २। उ १२॥

सामान्यमनुष्यापर्य्याप्तकर्गे। गु ५। मि। सा। अ। प्र। स। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ३। औदारिकमिश्र आहारकमिश्र कार्म्मण। वे ३। क ४। ज्ञा ६। म श्रु। अ। के। कु। कु। सं ४। अ। सा। छे। यथाख्यात। द ४। लेक शु भ २।
भा ६
सं ४। मि। सा। वे। क्षा। सं १। आ २। उ १०॥ कु। कु। म। श्रु। अ। के। च। अ। अ। के॥

सामान्यमनुष्यमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। म ४। व ४। औ २। का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। च। अ ले ६ भ २। सं १। मि। सं १। आ २। उ ५॥
६

सामान्यमनुष्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। म। इं १। पं। का १। त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २ ले ६ भ २। सं १।
६
मि। सं १। आ १। उ ५॥

सामान्यमनुष्यापर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। अ प्रा ७। असं ४। ग १। म। इं। पं। का १। त्र। यो २। औ मि का १। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। द २ ले २। क। शु। भ २। सं १। मि। सं १। आ २। उ ४॥
भा ३। अशुभ

ग १, इं १, का १, यो १०, वे ३, क ४, ज्ञा ८, स ७, द ४, ले ६, भ २, स ६, सं १, आ २, उ १२,
भा ६
तदपर्याप्ताना—गु ५, मि सा अ प्र स, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ३, औमि आमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ के कु कु, सं ४ अ सा छे यथाख्यात, द ४, ले २ क शु, भ २,
भा ६
स ४ मि सा वे क्षा, स १ आ २, उ १० कु कु म श्रु अ के च अ अ के, तन्मिथ्यादृशां—गु १, जी २, प ६ ६, प्रा १० ७, स ४, ग १, इं १, का १, यो ११ म ४ वा ४ औ २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, स १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०,
६
सं ४, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि.
भा ६
सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १ म, इ १ पं, का १ त्र, यो २ औमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १, द २, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ४।
भा ३ अशुभ

सामान्यमनुष्यसासादनंगे । गु १ सा । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं का १ त्र । यो ११ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ ले ६ भ १
६
सं १ । सा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥

सामान्यमनुष्यसासादनपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । म । इं पं १ । का १ । त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ १ । सं १ । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
६

सामान्यमनुष्यापर्य्याप्तसासादनंगे । गु १ । सा । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । औ । मिश्र । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले । क । शु । भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा ३ अशुभ

सामान्यमनुष्यसम्यग्मिथ्यादृष्टिगे । गु १ । मिश्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । गति १ । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ १ ।
६
सं १ । मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

सामान्यमनुष्यासंयतंगे । गु १ । अ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ । ले ६ भ १ । सं ३ । सं १ ।
६
आ २ । उ ६ ॥

सामान्यमनुष्यपर्य्याप्तासंयतग्गें । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा ।
६

सासादनाना—गु १ सा । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ म । इ १ पं । का १० त्र । यो ११ । वे ३ । क ४ ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १, स १ सा, स १ । आ २ । उ ५ ।
भा ६
तत्पर्याप्ताना गु १ सा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४, ग १ म, इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । स १ अ । द २ । ले ६, भ १ । स १ सा । सं १, आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु
भा ६
१ सा । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १, द २ ले २ क शु, भ १, स १ सा स १, आ २. उ ४, सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १, प ६,
भा ३ अशु
प्रा १०, सं ४, ग १ म, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २ । ले ६, भ १ स १
भा ६
मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ । असंयतानां—गु १ अस । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ - द ३, ले ६ । भ १, स ३, सं १, आ २, उ ६, तत्प-
६
र्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १ पं, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ,

सं १ । आ १ । उ ६ । म । श्रु । अ । च । अ । अ ॥

सामान्यमनुष्यापर्य्याप्तासंयतंगे । गु १ । अ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो २ । मि । का । वे १ । पु । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु । भ १ । सं २ । वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा ६

सामान्यमनुष्यसंयतासंयतंगे गु १ । जी १ । प ६ । । प्रा १० । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । दे । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ ।
भा ३ शुभ
आ १ । उ ६ ॥

सामान्यमनुष्यप्रमत्तंगे । गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । व ४ । औ का १ । आ २ । वे ३ ॥ द्रव्यविदं पुंवेदी । भावापेक्षेयिदं स्त्रीपुन्नपुंसक । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । द ३ । ले ६ भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ७ ।
भा ३ शुभ
म । श्रु । अ । म । च । अ । अ ॥

सामान्यमनुष्यप्रमत्तपर्य्याप्तर्गे । गु १ । प्र जी १ । प । ६ । प । प्रा १० । प । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ १ । आ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ १ । सं ३ । उ ।
भा ३ शु
वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । म । श्रु । अ । म । च । अ । अ ॥

सामान्यमनुष्यप्रमत्तापर्य्याप्तकर्गे गु । १ । जी १ अ । प ६ । अ । । प्रा । ७ । अ । सं ४ ।

द ३, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६ म श्रु अ च अ अ । तदपर्याप्तानां—गु १ अ । जी १,
६
प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो २ मि का । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु, भ १ । स २ वे क्षा । सं १ । आ २, उ ६ । संयतासंयतानां—
भा ६
गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । स १ दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तानां—गु १ । जी २ । प ६ ६ । प्रा
भा ३ शुभ
१० ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ म ४ वा ४ औ १ आ २ । वे ३ । द्रव्यपुंवेदिनः भावापेक्षया त्रिवेदिनः इत्यर्थः । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ
भा ३ शुभ
७ म श्रु अ म च अ अ । तत्पर्याप्तानां—गु १ प्र । जी १ प । प ६ प । प्रा १० प । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ वा ४ औ १ आ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ म श्रु अ म च अ अ । तदपर्याप्तानां—गु
भा ३ शु

ग १ । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १ । आ मि=॥ वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं २ । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले १ क भ १ । सं २ । वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ।
भा ३ शु
म । श्रु । अ । च । अ । अ ॥

सामान्यमनुष्याप्रमत्तर्गे । गु १ । जि १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । आहारसंज्ञेयिल्लेकेंदोडे प्रमत्तनोळे असातसातावेदोदीरणेगे व्युच्छित्तियुंटप्पुदरिदं । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । द ३ । ले ६ भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा ३

मनुष्यसामान्यापूर्व्वकरणंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ३ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा छे । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । द्वितीयोपशम-
भा १ शु
क्षायिकंगळु । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

सामान्यमनुष्यप्रथमभागानिवृत्तिगे । गु १ । जो १ प ६ । प्रा १० । सं २ । मै । प । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ ।
भा १
उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

द्वितीयभागानिवृत्तिगे । गु १ । जो १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । परिग्रह । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ४ । ज्ञा ४ । स २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा ।
भा १
सं १ । आ १ । उ ७ ॥

सामान्यमनुष्यतृतीयभागानिवृत्तिगे । गु १ । जो १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । परिग्रह ।

---

१ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो १ आ मि । वे १ पु । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं २ सा छे । द ३ च अ अ । ले १ क भ १ । स २ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ म श्रु
भा ३ शु
अ च अ अ । अप्रमत्ताना—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ आहारसंज्ञा नहि सातासातानुदीरणात् । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ
६
१ । उ ७ । अपूर्वकरणानां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ द्वितीयोपशमक्षायिकौ । सं १ । आ १ ।
भा १
उ ७ । अनिवृत्तिकरणप्रथमभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं २ मै प । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ।
भा १
द्वितीयभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । तृतीयभागे—
भा १

ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ३ । मा । मा । लो । ज्ञा ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ । स २ । उ । क्षा । । सं १ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

सामान्यमनुष्यचतुर्थभागानिवृत्तिगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । परिग्रह । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे ० । क २ । माया । लो । ज्ञा ४ । सं २ । द ३ । ले ६ भ १ ।
भा १
सं २ । स १ । आ १ । उ ७ ॥

सामान्यमनुष्यपंचमभागानिवृत्तिगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ । लोभ । ज्ञा ४ । सं २ । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । सं १ ।
भा १
आ १ । उ ७ ॥

सामान्यमनुष्यसूक्ष्मसांपरायंगे गु १ । सू । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । परिग्रह । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ । लो । ज्ञा ४ । सं १ । सू । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ ।
भा १
उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

सामान्यमनुष्योपशांतकषायंगे । गु १ । उ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं । ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । सं १ । यथाख्यात । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ ।
भा १
उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

सामान्यमनुष्यक्षीणकषायंगे । गु १ । जी १ । । प ६ । प्रा १० । सं । ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । सं १ । यथाख्यात । द ३ । ले ६ भ १ । सं १ । क्षा ।
भा १
सं १ । आ १ । उ ७ ॥

गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ३ मा माया लो । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । चतुर्थभागे—
भा १
गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रहः । ग १ । इं । का १ । यो ९ । वे ० । क २ मा लो । ज्ञा ४ । सं २ । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ । सं १ । आ १ । उ ७ । पंचमभागे—गु १ । जी १ । प ६ ।
भा १
प्रा १० । सं १ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ लो । ज्ञा ४ । सं २ । द ३ । ले ६ । भ १ ।
१
स २ । सं १ । आ १ । उ ७ । सूक्ष्मसांपराये—गु १ सू । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ लो । ज्ञा ४ । सं १ सू । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ ।
भा १
आ १ । उ ७ । उपशांतकषाये—गु १ उ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । सं १ यथाख्यातः । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ।
भा १
क्षीणकषाये गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ ।

सामान्यमनुष्यसयोगकेवलिगे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा ४। २। सं। ०। ग १। इं १। का १। यो ७। म २। वा २। औ २। का १। वे ०। क ०। ज्ञा १। सं १। द १। ले ६/भा १ भ १। सं १। ०। आ २। उ २

सामान्यमनुष्यायोगिकेवलिगळगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १। आयुष्य। सं। ०। ग १। इं १। का १। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १। सं १। द १। ले ६/भा ० भ १। सं १। सं। ०। अनाहार। उ २॥

पर्य्याप्तमनुष्यगें मूलोघं वक्तव्यमक्कुं। मानुषियग्गें। गु १४। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ०। संज्ञारहितरुं। ग १। इं १। का १। यो। ११। ०। अयोगिगळु। वे १। ०। वेदरहितरुं। क ४। कषायरहितरुं। ज्ञा ७। म। श्रु। अ। म। के। कु। कु। वि। सं ६। अ। दे। सा। छे। सू य। द ४। च। अ। अ। के। ले ६/६ लेश्यारहितरुं। भ २। सं ६। सं १। ०। रहितसंज्ञित्वरुं। आ २। उ ११॥

मनःपर्य्ययज्ञानोपयोगरहितरुं॥ पर्य्याप्तमानुषियग्गें। गु १४। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ०। संज्ञारहितरुं। ग १। इं १। का १। यो ९। ०। योगरहितरु। वे १। स्त्री ०॥ वेदरहितरुं। क ४। ०। कषायरहितरुं। ज्ञा ७। सं ६। द ४। ले ६/६ अलेश्यरुं। भ २। सं ६। सं १। ०। संज्ञित्वशून्यरुं। आ २। उ ११॥

सं १ यथाख्यातः। द ३। ले ६/१। भ १। स १ क्षा। सं १। आ १। उ ७। सयोगिजिने—गु १। जी २। प ६ ६। प्रा ४ २। सं ०। ग १। इं १। का १। यो ७ म २ वा २ औ २ का १। वे ०। क ०। ज्ञा १। सं १। द १। ले ६/भा १। भ १। म १। सं ०। आ २। उ २। अयोगिजिने—गु १। जी १। प ६। प्रा १ आयुष्यं। सं ०। ग १। इं १। का १। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १। सं १। द १। ले ६/भा ०। भ १। स १। सं ०। आ १ अनाहारः। उ २। पर्याप्तमनुष्याणां मूलौघो वक्तव्यः। मानुषीणां[1]—गु १४। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४ शून्यं च। ग १। इं १। का १। यो ११ शून्यं च। वे १। क ४ शून्य च। ज्ञा ७ म श्रु अ के कु कु वि। सं ६ अ दे सा छे सू य। द ४ च अ अ के। ले ६/६ शून्यं च। भ २। स ६। सं १ शून्यं च। आ २। उ ११ मनःपर्ययो नहि।

तत्पर्याप्ताना—गु १४। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४ शून्यं च। ग १। इं १। का १। यो ९ शून्यं च। वे १ स्त्री शून्यं च। क ४ शून्यं च। ज्ञा ७। सं ६। द ४। ले ६/६ शून्यं च। भ २। स ६। सं

---

१ भावस्त्रीणा।

मनःपर्य्ययज्ञानोपयोगं । स्त्रीवेदगळप्प संक्लिष्टरोळु संभविसवप्पुदरिदं । अपर्य्याप्तमानुषि-यर्गे । गु २ । मि । सा । सयोग । जी १ । प ६ । अ प्रा ७ ॥ अ । सं ४ । ० । संज्ञारहितरु । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । ० । अयोगरु । वे १ । स्त्री । ० । अवेदरु । क ४ । ० । अकषायरु । ज्ञा ३ । कु । कु । के । सं २ । अ । यथाख्यातमुं । द ३ । अ । च । के । ले २ । क । शु
भा ४ अ ३ शु १
भ २ । सं ३ । मि । सा । क्षा । सं । १ । ० । संज्ञित्वशून्यरु । आ २ । उ ६ । कु । कु । के । च । अ । के ॥

मानुषिमिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वै २ । आ २ । शून्यं । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । आ । द २ । च । अ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ५ । कु । कु । वि । च । अ ॥
६

पर्य्याप्तमानुषिमिथ्यादृष्टिगे—गु १ । मि जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ २ ।
६
सं १ । मि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

अपर्य्याप्तमानुषिमिथ्यादृष्टिगे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क । शु । भ २ ।
भा ३ अशुभ
सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥

मानुषिसासादनंगे—गु १ । सा । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ १ ।
६

---

१ शून्यं च । आ २ । उ ११ । मनःपर्ययः स्त्रीवेदिषु नहि संक्लिष्टपरिणामित्वात् । तदपर्याप्ताना—गु ३ मि सा सयोगः । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ शून्यं च । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का शून्यं च । वे १ स्त्री । शून्यं च । क ४ । शून्यं च । ज्ञा ३ कु कु के । सं २ अ य । द ३ च अ के । ले २ क शु
भा ४ अ शु ३ शु १
भ २ । स ३ मि सा क्षा । सं १ शून्यं च । आ २ । उ ६ कु कु के च अ के । मानुषीमिथ्यादृशां—गु १ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वैक्रियिकद्वयाहारकद्वयं नहि । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ५
६
कु कु वि च अ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ १ । उ ५ ।
६
तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ यो २ मि का । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ । सासा-
३ अशुभ
दनानां—गु १ सा । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे १ स्त्री ।

सं १। सं १। आ २। उ ५॥

मानुषि सासादनपर्य्याप्तिकंगे। गु १। सा। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६/६ भ १। सं १। सं १। आहा १। उ ५॥

मानुषिसासादनापर्य्याप्तिगे। गु १। सा। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले २ क शु। भा ३ अशुभ। भ १। सं १। सा। सं १। आ २। उ॥

मानुषिसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मिश्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६/६। भ १। सं १। मिश्र। सं १। आ १। उ ५॥

मानुष्यसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। अ। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६/६ भ १। सं ३। स १। आ १। उ ६॥

मानुषिदेशसंयतंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। का १। इं १। यो ९। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं १। दे। द ३। ले ६ भा ३ शुभ भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥

मानुषिप्रमत्तसंयतग्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३॥

क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १। द २। ले ६/६ भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तिमासादनाना—गु १ सा। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १ स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द २। ले ६/६। भ १। स १ सा। सं १। आ १।। उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १ सा। जी १। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। वे १ स्त्री। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भा ३ अशुभ। भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ ४। सम्यग्मिथ्यादृष्टेः—गु १ मिश्रं। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १ स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द २। ले ६/६। भ १। स १ मिश्रं। सं १। आ १। उ ५। असंयताना—गु १ अ। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १ स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले ६/६। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६। देशसंयतस्य—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १।

स्त्रीपुंनपुंसकवेदोदयंगळिवं। आहारद्विकं मनःपर्य्ययज्ञानं परिहारविशुद्धिसंयममुमिल्ल। सं २। सा छे। द ३। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥
भा ३

मानुष्यप्रमत्तसंयतग्गें। गु १। जि १। प ६। प्रा १०। सं ३। आहारसंज्ञे शून्यं। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। स्त्री। क १। ज्ञा ३। सं २। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १।
भा ३
आ १। उ ६॥

मानुष्यपूर्व्वकरणग्गें। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं २। सा छे। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं २।
भा १
उ। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥

मानुषिप्रथमभागानिवृत्तिगग्गें।। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं २। मैथु। प। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं २। सा। छे। द ३। ले ६ भ १।
भा १
सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥

मानुषिद्वितीयानिवृत्तिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं १। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ०। क ४। ज्ञा ३। सं २। द ३। ले ६। भ १। सं २। उ क्षा। सं १। आ १। उ ६॥
भा १

यो ९। वे १ स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं १ दे। द ३। ले ६ भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६।
भा ३ अशु
प्रमत्तस्य—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, स्त्रीनपुसकोदये आहारकर्द्धिमनःपर्ययपरिहारविशुद्धयो नहि सं २ सा छे, द ३। ले ६, भ १, स ३
३
उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६, अप्रमत्तस्य—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ३ आहारसंज्ञा नहि, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं २, द ३, ले ६। भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६, अपूर्व-
भा ३
करणानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ३, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं २ सा छे, द ३ च अ अ, ले ६। भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ६, अनिवृत्तेः प्रथमभागे—गु १, जी १,
भा १
प ६, प्रा १०, सं २ मै प, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं २ सा छे, द ३, ले ६।
भा १
भ १, स २ उ क्षा, सं १। आ १। उ ६, द्वितीयभागे—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं १ परिग्रहः ग १, इं १, का १, यो ९, वे ०, क ४, ज्ञा ३, सं २, द ३, ले ६। भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ६,
भा १

मानुषितृतीयभागानिवृत्तिगळ्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ३ । मा । या । लो । ज्ञा ३ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ ।
भा १
सं २ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

मानुषिचतुर्थभागानिवृत्तिगळ्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क २ । या । लो । ज्ञा ३ । सं २ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं २ । सं १ ।
भा १
आ १ । उ ६ ॥

मानुषिपंचमभागानिवृत्तिगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । परिग्रह । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ । बा = । लो । ज्ञा ३ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६
भा १
भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

मानुषिसूक्ष्मसांपरायंगे । गु १ । सू । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । परिग्रह । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ । सू = लो । ज्ञा ३ । सं १ । सू । द ३ । ले ६ । भ १ । सं २ ।
भा १
उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

मानुष्युपशांतकषायंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं । ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ३ । सं १ । यथा । द ३ । ले ६ । भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ ।
भा १
आ १ । उ ६ ॥

तृतीयभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ३ । मा माया लो । ज्ञा ३ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ । सं १ । आ १ । उ ६ । चतुर्थ-
भा १
भागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । परि । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क २ मा लो । ज्ञा ३ । सं २ सा छे । द ३ ले ६ । भ १ । स २ । सं १ । आ १ । उ ६ । पंचमभागे—गु १ । जी १ ।
भा १
प ६ । प्रा १० । सं १ प । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ बा लो । ज्ञा ३ । सं २ साछे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । सूक्ष्मसापरायस्य—गु १ सू । जी १ । प ६ ।
१
प्रा १० । सं १ परिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ । सू लो । ज्ञा ३ । सं १ सू । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । उपशांतकषायस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० ।
भा १
सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ३ । सं १ य । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ क्षा ।
भा १

मानुषिक्षीणकषायंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ३ । सं १ । यथा । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । क्षा । सं १ ।
भा १
आ १ । उ ६ ।

मानुषिसयोगकेवलिगे । गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा ४ । २ । अ । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ७ । म २ । व २ । औ २ । का १ । वे ० । क ० । ज्ञा १ । के । सं १ । यथा । द १ । के ले ६ । भ १ । सं १ । क्षा । सं ० । आ २ । उ २ । के । के ॥
भा १

मानुषिअयोगिकेवलिजिनंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १ । आयुष्य । सं ० । ग १ । इं । ० । का १ । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ । सं १ । द १ । ले ६ भ १ । सं १ । क्षा । सं । ० ।
भा ०
आ १ । अनाहार । उ २ । के ॥

मनुष्यलब्ध्यपर्य्याप्तकरुगं । गु १ । मि । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे १ । षंढ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । असंयम । द २ । च । अ । ले २ क । शु । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा ३ अशुभ

इंतु मनुष्यगति समाप्तमावुदु ॥

देवगतियोळु देवक्कळगे पेळल्पडुवल्लि । गु ४ । जी २ । प ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । दे । इं १ । का १ । त्र । यो ११ । म ४ । व ४ । वै २ । का १ । वे २ । स्त्री । पुं ० । क ४ । ज्ञा ६ । म श्रु अ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ २ । सं ६ । सं १ । आ २ ।
भा ६
उ ९ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । च । अ । अ ॥

सं १ । आ १ । उ ६ । क्षीणकषायस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १ । इं १ । का १ यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ३ सं १ य । द ३ ले ६ । भ १ । स १ यथा । सं १ । आ १ । उ ६ । संयोगस्य—
भा १
गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा ४ २ । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ७ म २ वा २ औं २ । का १ । वे ० । क ० । ज्ञा १ । के । सं १ य । द १ के । ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं १ । आ २ । उ २ के के ।
भा १
अयोगस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १ आयुः । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । सं १ । द १ ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं ० । आ १ अनाहार । उ २ के के । मनुष्यलब्ध्य-
भा ०
पर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ च अ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ ।
भा ३ अशुभ
आ २ । उ ४ । देवगतौ—गु ४ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ म ४ । वा ४ २ । का १ वै । वे २ स्त्री पु । क ४ । ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि । सं १ अ । द ३

देवसामान्यपर्याप्तकर्गः । गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । दे १ । इं १ । का १ । त्र । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ६ । सं १ । अ । द ३ । लें ६ । भ २ । सं ६ । सं १ ।
भा ३
आ १ । उ ९ ॥

देवसामान्यापर्याप्तकर्गः । गु ३ । मि । सा । अ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इ १ । का १ । यो २ । मि । का । वे २ । क ४ । ज्ञा ५ । म । श्रु । अ । कु । कु । सं १ । द ३ ले २ क । शु । भ २ । सं ५ । उ । वे । क्षा मि । सा । सं १ । आ २ । उ ८ । म । श्रु । अ ।
भा ६
कु । कु । च । अ । अ ॥

देवसामान्यमिथ्यादृष्टिगर्ग्गः । गु १ । मि । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ५ । कु । कु । वि । च । अ ॥
भा ६

देवसामान्यमिथ्यादृष्टिपर्याप्तकर्गः । गु १ । मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ २ । सं १ । मि ।
भा ३
सं १ । आ १ । उ ५ ॥

देवसामान्यापर्याप्तमिथ्यादृष्टिगर्ग्गः । गु १ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे २ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ । क शु । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ २ । ऊ ४ ॥
भा ६

च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ २ । उ ९ । म श्रु अ कु कु वि च अ अ । तत्पर्याप्ताना—
६
गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ दे । इं १ प । का १ त्र । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ६ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ । जी १
भा ३
अ । प ६ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का । वे २ । क ४ । ज्ञा ५ म श्रु अ कु कु । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ५ उ वे क्षा मि सा । सं १ । आ २ । उ ८ म श्रु अ कु
भा ६
कु च अ अ । मिथ्यादृशा—गु १ मि । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । स ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ ।
भा ६
अ २ । उ ५ कु कु वि च अ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ १ ।
भा ३ शुभ
उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि

देवसामान्यसासावनंगे। गु १। सा। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २ ले ६। भ १।
भा ६
सं १। सा। सं १। आ २। उ ५॥

देवसामान्यसासावनपर्य्याप्तकग्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सा। सं १।
भा ३ शु
आ १। उ ५॥

देवसामान्यसासावनापर्य्याप्तकग्गे। गु १। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। मि। का। वे २। क ४। ज्ञा २। सं १। द २। ले २ क। शु। भ १।
भा ६
सं १। सा। सं १। आ २। ऊ ४॥

देवसामान्यसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। मिश्र। सं १।
भा ३
आ १। उ ५॥

देवसामान्यासंयतग्गे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं। अ। द ३। ले ६ भ १। सं ३।
भा ३
सं १। आ २। उ ६॥

का। वे २। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ २। स १ मि। सं १। आ २। उ ४
भा ६
कु कु च अ। सासादनानां—गु १ सा। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २ ले ६ । भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ ५।
भा ६
तत्पर्याप्ताना—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्ताना गु १ जी १ अ।
३ शु
प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २ मि का। वे २। क ४। ज्ञा २। सं १। द २। ले २ क शु। भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ ४। सम्यग्मिथ्यादृशां-गु १। जी १। प ६। प्रा १०।
६
सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स १
भा ३
मिश्रं। सं १। आ १। उ ५। असंयताना—गु १। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ ले ६। भ १। म ३। सं १। आ २।
३

देवसामान्यासंयतपर्याप्तकग्गे । गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६ भा ३ भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥

देवसामान्यासंयतापर्य्याप्तकग्गे । गु १। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। मि। का। वे १। पु ०। क ४। ज्ञा ३। सं १। द ३। ले २ क शु भा ३ शु भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६॥

भवनत्रयदेवक्र्कळगे। गु ४। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ६। सं १। द ३। ले ६ भा ४ भ २। सं ५। उ। वे। मि। सा। मि। सं १। आ २। उ ९। म। श्रु। अ। कु। कु। वि। च। अ। अ॥

भवनत्रयपर्य्याप्तदेवक्र्कळगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ६। म। श्रु। अ। कु। कु। वि। सं १। द ३। ले ६ भा १ भ २। सं ५। उ। वे। मि। सा। मि। सं १। आ १। उ ९॥

भवनत्रयापर्य्याप्तदेवक्र्कळगे। गु २। मि। सा। जी १। प ६। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। मि। का। वे। २। क ४। ज्ञा २। सं १। द २। ले २ क शु भा ३ अ शु भ २। सं २। मि। सा। सं १। आ २। उ ४॥

उ ६। तत्पर्याप्ताना—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले ६ भा ३। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६। तदपर्याप्ताना—गु १ जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १। इं १। यो २ मि का। वे १ पु। क ४। ज्ञा ३। सं १। द ३। ले २ क शु भा ३ शुभ। भ १। स ३। सं १। आ २। उ ६। भवनत्रयदेवाना—गु ४। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ६। सं १। द ३। ले ६ भा ४। भ २। स ५ उ वे मि सा मि। सं १। आ २। उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ। तत्पर्याप्तानां—गु ४। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि। सं १। द ३ च अ अ। ले ६ भ २। स ५ उ वे मि सा मि। स १ आ १। उ ९। तदपर्याप्तानां—गु २ मि सा। जी १ १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १। इं १। का १ यो २ मि का। वे २। क ४। ज्ञा २। सं १। द २। ले २ क शु भा ३ अशु। भ २। स २ मि सा। सं १। आ २। उ ४।

भवनत्रयमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ ।
भा ४
आ २ । उ ५ ॥

भवनत्रयपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । का ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ । ले ६ भ २ । स १ । मि । सं १ ।
भा १
आ १ । उ ५ ॥

भवनत्रयापर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । द २ । ले २ । क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ ।
भा ३ अ शु
आ २ । उ ४ ॥

भवनत्रयसासादनंगे गु १ । सा । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ १ । सं १ । सा । सं १ ।
भा ४
आ २ । उ ५ ॥

भवनत्रयसासादनपर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ । ले ६ भ १ । सं १ । सा । सं १ ।
भा १
१
आ २ । उ ५ ॥

भवनत्रयसासादनापर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । वे २ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । द २ । ले २ क शु भ १ । सं १ । सा ।
भा ३ अशुभ
सं १ । आ २ । उ ४ ॥

मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी २, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्ताना—गु १ जी १, प ६, प्रा १०,
भा ४
सं ४, ग १, इं १ का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द ३ ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ ५,
१
तदपर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६ ७, प्रा १० अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे २, क ४, ज्ञा २, सं १, द २, ले २ क शु भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ४, सासादनानां—गु १ सा, जी २,
भा ३ अशु
प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६ भ १,
भा ४
स १ सा, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्ताना—गु १,
भा १
जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २, वे २, क ४, ज्ञा २, सं १, द २, च अ,

भवनत्रयसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २। ले ६ भा १ भ १। स १। मिश्र। सं १। आ १। उ ५॥

भवनत्रयासंयतग्गे॥ गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। द ३। ले ६ भा १ भ १। सं २। उ। वे। सं १। आ १। उ ६॥

सौधर्म्मैशानदेवक्कंळ्गे। गु ४। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ६। सं १। द ३ ले ३ पी। प। शु। भा १ भ २। स ६। सं १। आ २। उ ९॥

सौधर्म्मद्वयपर्य्याप्तदेवक्कंळ्गे। गु ४। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ६। सं १। द ३। ले १ ते १ भ २। सं ६। सं १। आ १। उ ९॥

सौधर्म्मद्वयापर्य्याप्तदेवक्कंळ्गे। गु ३। मि। सा। अ। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। वे २। क ४। ज्ञा ५। कु। कु। म। श्रु। अ। सं १। द ३ ले २ भा १ भ २। सं ५। उ। वे। क्षा। मि। सा। सं १। आ २। उ ८। म। श्रु। अ। कु। कु। च। अ। अ॥

सौधर्म्मद्वयमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २ ले ३ भा १ भ २। सं १। मि। सं १। आ २। उ ५॥

ले २ क शु भा ३ अशु भ १, स १ सा, सं १ आ २, उ ४, सम्यग्मिथ्यादृशा–गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ४, सं १, द २, ले ६, भा १ भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १, उ ५, असंयतानां–गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द ३, ले ६, भा १ भ १, स २ उ वे, सं १, आ १, उ ६, सौधर्मैशानदेवाना–गु ४, जी २, प ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ६, स १ द ३, ले ३ पी क शु, भा १ ते भ २, स ६, सं १, आ २, उ ९, तत्पर्याप्तानां–गु ४, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ६, सं १, द ३ ले १ ते, भा १ भ २, स ६, सं १, आ १, उ ९, तदपर्याप्तानां—गु ३ मि स अ, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २, वे २, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, सं १, द ३, ले २, भा १ भ २, स ५ उ वे क्षा मि सा, सं १, आ २ उ ८ म श्रु अ कु कु च अ अ, मिथ्यादृष्टीनां–गु १, भा १

सौधर्म्मद्वयमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्गे । गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २। ले १ भा १ भ २। सं १। मि। सं १। आ १। उ ५॥

सौधर्म्मद्वयमिथ्यादृष्टि अपर्य्याप्तकर्गे । गु १। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। वे २। क ४। ज्ञा २। सं १। द २। ले २ भा १ भ २। सं १। मि। सं १। आ २। उ ४॥

सौधर्म्मद्वयसासादनंगे । गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ३॥ सं १। द २ ले ३ भा १ भ १। सं १। सा। सं १। आ २। उ ५॥

सौधर्म्मद्वयपर्य्याप्तसासादनंगे। गु १ सा। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २। ले १ भा १ भ १। सं १। सं १। आ १। उ ५॥

सौधर्म्मद्वयसासादनापर्य्याप्तकर्गे। गु १। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। मि। का। वे २। क ४। ज्ञा २। सं १। द २। ले २ क शु भा १ भ १। सं १। सा। सं १। आ २। उ ४॥

सौधर्म्मद्वयसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २ ले १ ते भा १ भ १। सं १। मिश्र। सं १। आ १। उ ५॥

जी २, प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ३ भा १, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले १ भा १, भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ १, तदपर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २, वे २, क ४, ज्ञा २, सं १, द २, ले २ भा १, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ४, सासादनाना—गु १, जी २, प ६, ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ३ भा १, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १ सा, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले १ १, भ १, स १, स १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे २, क ४, ज्ञा २, सं १, द २, ले २ क शु भा १, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ४, सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १,

सौधर्म्मद्वयासंयतर्गे । गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ । ले ३ ते क । शु १ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा १ ते

सौधर्म्मद्वयपर्य्याप्तासंयतर्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ ले १ भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा १

सौधर्म्मद्वयापर्य्याप्तासंयतर्गे । गु १ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे १ । पु ० । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ । ले २ क शु भ १ । सं ३ । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा १ ते

अपर्य्याप्तकालदोळुपशमसम्यक्त्वमेंतु संभविसुगुमेंदोडे पेळल्पडुगुं । श्रेणियिदमवतीर्णरुगळ्गे असंयतादिचतुर्ग्गुणस्थानंगळोळु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमुंटप्पुदरिंदं अल्लि मध्यमतेजोलेश्येयोळु कालंगेय्दु सौधर्म्मद्वयदेवर्क्कळोळु उत्पन्नर्गे अपर्य्याप्तकालदोळुपशमसम्यक्त्वमं पडेयल्पडुगुमेकेंदोडे :—

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च ।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं ॥
तेऊ तेऊ तह तेउ पम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य ।
सुक्का य परमसुक्का लेस्सा भवणादिदेवाणं ॥

इत्यादिसूत्रसूचितक्रमदिदमल्लपर्य्याप्तकालदोळुपशमसम्यक्त्वास्तित्वमरियल्पडुगुं । असंयतसम्यग्दृष्टिगे स्त्रीवेददोळु उत्पत्तिसंभविसदेंदितु आतंगे पर्य्याप्तालापमोंदे वक्तव्यमक्कुमल्लि क्षायिकसम्यक्त्वमुमिल्लेकेंदोडे देवगतियोळु दर्शनमोहनीयक्षपणाभावमप्पुदरिंदमिते विशेषमरियल्पडुगुं ।

द २ ले १ ते, भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १, उ ५, असंयताना—गु १, जी २, प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४,
 १

ग १, इं १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द ३, ले ३ ते क शु, भ १ स ३ उ वे क्षा, सं १,
भा १ ते

आ २, उ ६, तत्पर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द ३, ले १, भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६, तदपर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ,
भा १

सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे १ पुं, क ४, ज्ञा ३, सं १, द ३, ले २ क शु भ १, स ३ सं १,
भा १ ते

आ २, उ ६, वैमानिकेषु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं आरोहकापूर्वकरणप्रथमभागवर्जितोपशमश्रेण्यारोहकावरोहकाणां तदवतीर्णचतुरसंयतादीनां च तत्सम्यक्त्वमृतानां तत्तल्लेश्यया तत्रोत्पत्तेरपर्याप्तकाले संभवति, असंयतस्त्रीणामेकः पर्याप्तालाप एव सम्यग्दृष्टीनां तत्रानुत्पत्तेः, पर्याप्तकर्मभूमिमनुष्याणामेव दर्शनमोहक्षपणाप्रारंभसंभवेऽपि तन्निष्ठापकानां चतुर्गतिषूत्पत्तेः, क्षायिकसम्यक्त्वमत्र संभवतीति विशेषः स्मर्तव्यः ।

सानत्कुमारमाहेंद्रदेवक्कळ्गे । गु ४ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे १ । पुंस्त्रीवेदिगळ्गे सौधर्म्मद्वयदोळे उत्पत्तियप्पुदरिदं । क ४ । ज्ञा ६ । सं १ । द ३ । ले ४ ते प क १ शु १ भ २ । सं ६ । उ । वे । क्षा । मि । सा । मि । सं १ ।
भा २ । ते प
आ २ । उ ९ ॥

सानत्कुमारद्वयदेवपर्य्याप्तरुगें । गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ४ । ज्ञा ६ । सं १ । द ३ । ले २ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ १ । उ ९ ॥
२

सानत्कुमारद्वयदेवापर्य्याप्तकग्गें । । गु ३ । मि । सा । अ । जी १ । अ । प ६ । अ प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । त्र । यो २ । वै ० मिश्र १ । का १ । वे १ । पुं ० । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु । भ २ । सं ५ ।
२
मि । सा । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ॥

संप्रति मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावदसंयतसम्यग्दृष्टि तावच्चतुर्ग्गुणस्थानंगळ्गे सौधर्म्मपुंवेदभंगं वक्तव्यमक्कुं । ई प्रकारदिदं मेलेयुं तंतम्मलेश्यानुसारदिदं वक्तव्यमक्कुं । अनुदिशानुत्तरविमानंगळ सम्यग्दृष्टिगळ्गे सम्यक्त्वत्रयालापं कर्त्तव्यमक्कुमल्लि विशेषमुंटदावुदें दोडे उपशमसम्यक्त्वमं बिट्टु पर्य्याप्तकालदोळ् वेदकक्षायिकसम्यक्त्वद्वयमे वक्तव्यमक्कुं । इंतु देवगति समाप्तमादुदु ॥

सिद्धगतियोळ् सिद्धग्गें तंते वक्तव्यमक्कुं । विशेषमुंटावुदें दोडे अस्ति सिद्धगतिस्तत्र केवलज्ञानकेवलदर्शनक्षायिकसम्यक्त्वमनाहारमुपयोगद्वयमुंटु शेषालापमिल्ल एकें दोडे सिद्धरुगळ्गे एकेंद्रियादिजातिनामकर्म्मोदयाभावमप्पुदरिदं । इंतु गतिमार्ग्गणेसमार्गणे समाप्तमाय्तु ।

सनत्कुमारमाहेन्द्रदेवाना–गु ४, जी २, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे १ पुं कल्पस्त्रीणा सौधर्मद्वय एवोत्पत्तेः, क ४, ज्ञा ६, सं १, द ३, ले ४ ते प क शु, भ २, स ६ उ वे
भा २ ते प
क्षा मि सा मि, सं १, आ २, उ ९, तत्पर्याप्तानां–गु ४, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ६, सं १, द ३, ले २, भ २, स ६, सं १, आ १, उ ९ ।
२

तदपर्याप्ताना–गु ३ मि सा अ, जी १ अ, प ६ अ, प्रा १० ७ अ, सं ४, ग १ दे, इं १ पं, का १ त्र, यो २ वै मि का, वे १ पु, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले २ क शु, भ २, स ५
२
मि सा उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ८, तन्मिथ्यादृष्टयाद्यसंयतान्ताना सौधर्मपुंवेदवद्वक्तव्यं एवमुपर्यपि स्वस्वलेश्यानुसारेण योज्यं, अनुदिशानुत्तरविमानजानामसंयतालाप एव तत्राप्ययं विशेषः, पर्याप्तकाले वेदकक्षायिकसम्यक्त्वद्वयमेव, सिद्धगतौ सिद्धानां यथासम्भवं वक्तव्यं, अस्ति सिद्धगतिस्तत्र केवलज्ञानदर्शनक्षायिकसम्यक्त्वानाहारोपयोगद्वयेभ्यः शेषालापो नास्ति सिद्धानामेकेन्द्रियादिनामोदयाभावात्, गतिमार्गणा गता ।

इंद्रियानुवाददोळ् मूलौघालापमक्कुं । सामान्यैकेंद्रियंगळगे पेळल्पडुवल्लि । गु १ । मि । जी ४ । वा । सू = । प । अ । प ४ । ४ । प्रा ४ । ३ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । ए । का ५ । त्रसरहितमागि योग ३ । औदारिक तन्मिश्रकार्म्मण । वे १ । षंढ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द १ । अचक्षु । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं । अ १ । आ २ । उ ३ । कु । कु । अचक्षु ।
भा ३ अशुभ

सामान्यैकेंद्रिय पर्य्याप्तकग्गें । गु १ । मि । जि २ । बा ० सू ० । प ४ । प्रा ४ । ए । का उ । आयुः । सं ४ । ग १ ति । इं १ । ए । का ५ ।। त्रसरहितमागि । यो १ । औ का वे १ । षंढ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द १ । अचक्षु ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ ।
भा ३ अशु

असंज्ञि । आ । उ ३ । कु । कु । अचक्षुदर्शन ।।

सामान्यैकेंद्रियापर्य्याप्तकग्गें । गु १ । मि । जी २ । बा । अ ० सू अ । प ४ । अ प्रा ३ । अ सं ४ । ग १ । ति इं १ । ए । का ५ । यो २ । मि । का । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द १ । अचक्षु ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । असं । आ २ । उ ३ ।
भा ३ अशु

कु । कु । अच ।।

बादरैकेंद्रियंगळगे । गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ४ । ४ । प्रा ४ । ३ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । ए । का ५ । यो ३ । औ । मि । का । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द १ । अ च । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ २ । उ ३ ।।
भा ३ अशु

बादरैकेंद्रिय पर्य्याप्तकग्गें । गु १ । मि । जी १ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ । ति इं १ । ए । का ५ यो १ । औ काय । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च ले ६ भ २ ।
भा ३ अशु

सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ १ । उ ३ ।।

इन्द्रियानुवादे मूलौघः—तत्र सामान्यैकेन्द्रियाणा—गु १ मि, जी ४ वा सू प अ, प ४ ४, प्रा ४ ३, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का ५ त्रसोनहि, यो ३ औदारिकतन्मिश्रकार्मणाः, वे १ षं, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द १ अ, ले ६ भ २, स १ मि, सं १ असंज्ञा, आ २, उ ३ कु कु अचक्षुः । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि,
भा ३ अशु

जी २ वा प सू प, प ४ ए, प्रा ४ ए का उ आयुः, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का ५, त्रसो नहि, यो १ औ, वे १ सं, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द १ अच, ले ६ भ २, स १ मि, सं १ असंज्ञी, आ १, उ ३ कु कु
भा ३ अशु

अचक्षुर्दर्शनं, तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी २ वा अ सू अ, प ४ अ, प्रा ३ अ, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का ५, यो २ मि का, वे १ प, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द १ अच, ले २ क शु, भ २, स १ मि,
३ अ शु

सं १ असंज्ञी, आ २, उ ३ कु कु अच, बादराणा—गु १ मि, जी २ प अ, प ४ ४, प्रा ४ ३, स ४, ग १ ति, इं १ ए, का ५, यो ३ औ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द १ अच, ले ६, भ २,
३ अशु

स १ मि, सं १ असंज्ञी, आ २, उ ३, तत्पर्याप्ताना—गु १ मि, जी १ प, प ४, प्रा ४, सं ४, ग १ ति, इं १

बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तकग्गें । गु १ । मि । जी १ । अ । प ४ । अ । प्रा ३ । ए । का । आ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । का ५ । यो २ । मि । का । वे । १ । ष ० । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ २ । उ ३ ॥
भा ३ अ

इंतु बादरपर्य्याप्तनामकर्म्मोदयसहितर्गे आलापत्रयं पेळल्पट्टुवपर्य्याप्तनामकर्मोदयसहित बादरैकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकग्गें पेळल्पडुवल्लि बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तालापवंतालापमक्कुं ॥

सूक्ष्मैंद्रियंगल्गे । गु १ । मि । जी २ । प । अ प ४ । ४ । प्रा ४ । ३ । स ४ । ग १ । इं १ । ए । का ५ । यो ३ । औ २ । का १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अच । ले २ क शु एकें दोडे :—
भा ३ अशु

सव्वेंसि सुहुमाणं काओदा सव्वविग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कवोदवण्णो हवे णियमा ॥

एंब नियममुंटप्पुदरिंद । भ २ । सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ २ । उ ३ ॥

सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । जी १ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ । इं १ । का ५ । यो १ । औ का । वे १ । ष९ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च । ले ६ क भ २ ।
भा ३
सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ १ । उ ३ ॥

ए, का ५, यो १ औ, वे १ षं, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द १ अच, ले ६, भ २, स १ मि, सं १
३ अशु
असंज्ञी, आ १, उ ३, तदपर्याप्तानां–गु १ मि, जी १ अ, प ४ अ, प्रा ३ ए का आ, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का ५, यो २ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले २ क शु, भ २, स १ मि, स १
भा ३ अशु
असंज्ञी, आ २, उ ३, एवं बादरपर्याप्तनामोदयानामेकेन्द्रियाणामुक्तं, अपर्याप्तनामोदयाना तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तु तदपर्याप्तवद्योज्यं,

सूक्ष्माणां—गु १ मि, जी २ प अ, प ४ ४, प्रा ४ ३, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का ५, यो ३ औ २ का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले २ क शु
भा ३ अशु—कुतः ?

सव्वेंसि सुहुमाणं काओदा सव्वविग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कओदवण्णो हवे णियमा ॥१॥
सर्वेषां सूक्ष्माणां कापोता सर्वविग्रहे शुक्ला ।
सर्वो मिश्रो देहः कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ॥१॥

भ २, स १ मि, सं १ असंज्ञि, आ २, उ ३, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ४, प्रा ४, सं ४, ग १, इं १, का ५, यो १ औ, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अचक्षु, ले १ क, भ २, सं १ मि, सं १ असंज्ञी,
भा ३ अशु

सूक्ष्मैकेंद्रियाऽपर्य्याप्तकग्गें। गु १। जी १। प ४। अ। प्रा ३। ए। का। आ। सं ४। ग १। इं १। का ५। यो २। मि। का। वे १। षं ०। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द १। अ च ले २ क शु। भ २। सं १। मि। सं १। असंज्ञि। आ २। उ ३॥ भा ३

इंतु पर्य्याप्तनामकर्म्मोदय सहितरप्प सूक्ष्मैकेंद्रिय निर्वृत्यपर्य्याप्तकग्गें आलापत्रयं पेळल्पट्टुदु। सूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तनामकर्म्मोदयसहितग्गें ओंदे अपर्य्याप्तालापं वक्तव्यमक्कुमवुदुं सूक्ष्मकेंद्रियापर्य्याप्ताळापदंतक्कु। विशेषमिल्ल॥

द्वींद्रियंगळ्गे। गु १। मि। जी २। प। अ। प ५। ५। प्रा ६। सं ४। ग १। ति। इं १। द्वि। का १। त्र। यो ४। औ २। वा १। का १। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। स १। अ। द १। अ च। ले ६ भा ३ अ शु। भ २। सं १। मि। सं १। असंज्ञि। आ २। उ ३॥

द्वींद्रियपर्य्याप्तकग्गें। गु १। जी १। प ५। प्रा ६। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। वा १। का १। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द १। अ च। ले ६ भा ३। भ २। सं १। मि। सं १। असंज्ञि। आ १। उ ३॥

द्वींद्रियापर्य्याप्तकर्गे। गु १। जी १। अ। प ५। प्रा ४। सं ४। ग १। ति। इं १। द्वीं। का १। त्र। यो २। मि। का। वे १। ष०। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द १। अ। च। ले २ क शु भा ३ अ शु भ २। सं १। मि। सं १। अ। आ २। उ ३॥

द्वींद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तंगोंदे अपर्य्याप्ताळापं माडल्पडुगे। त्रींद्रियंगळ्गे गु १। जी २। प ५। ५। प्रा ७। ५। सं ४। ग १ ति। इं १ त्रि। का १ त्र यो ४। औ २ वा १। का। १। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द १। अ। च। ले ६ भा ३ भ २। सं १। मि। सं १। अ। आ २। उ ३॥

आ १, उ ३। तदपर्याप्तानां–गु १, जी १, प ४ अ, प्रा ३ ए का आ, सं ४, ग १, इं १, का ५, यो २ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ च अक्षु, ले २ क शु भा ३ अशु, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ १, उ ३।

तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तदपर्याप्तवत्, द्वीन्द्रियाणा–गु १ मि, जी २ प अ, प ५ ५, प्रा ६, ४, सं ४, ग १ ति, इं १ द्वी, का १ त्र, यो ४, औ २, वाक् १, का १ वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ च अ, ले ६ भा ३ अशु, भ २, स १ मि, सं १ असंज्ञी, आ २, उ ३। तत्पर्याप्तानां–गु १ मि, जी १, प ५, प्रा ६, सं ४, ग १ ति, इं १ द्वीं, का १ त्र, यो २, वा १, का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले ६ भा ३, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ १, उ ३। तदपर्याप्तानां–गु १, जी १, प ५ अ, प्रा ४ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अ च, ले २ क शु भा ३ अ शु, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ३।

तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तदपर्याप्तवत्, त्रीन्द्रियाणां–गु १, जी २, प ५ ५, प्रा ७ ५, सं ४, ग १ ति, इं १ त्री, का १ त्र, यो ४ औ २ वा १ का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अ च, ले ६ भा ३, भ २,

त्रींद्रियपर्य्याप्तकर्गें । गु १। जी १। त्री । प । प ५। प्रा ७। सं ४। ग १। ति । इं १। त्री । का १। त्र। यो २। औ। वा। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। सं १। अ द १। अच। ले ६ भ २। सं १। मि। सं १। अ। आ १। उ ३॥
भा ३

त्रींद्रियापर्य्याप्तग्गें । गु १। जी १। प ५। अ प्रा ५। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। मि। का। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। सं १। अ द १। अच। ले २ क शु। भ २। सं १।
भा ३ अशु
मि। सं १। अ। आ २। उ ३॥

त्रींद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तर्कंगेयुमी प्रकारविदमों वेआळापमक्कुं॥ चतुरिंद्रियंगळगे। गु १। मि। जी २। प। अ प ५। ५। प्रा ८। ६। सं ४। ग १। ति। इं १। चतुरिंद्रिय। का १ त्र। यो ४। औ २। वा १। का १। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। च अ। ले ६ भ २।
भा ३
सं १। मि। सं १। अ। आ २। उ ४॥

चतुरिंद्रियपर्य्याप्तकर्गें । गु। मि। जी १। च। प ५। प्रा ८। च ४। वा १। का १। उ १। आ १। सं ४। ग १। इं १। च। का १। त्र। यो २। औदारिक का १। वा १। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६ द्रव्य भ २। सं १। मि। सं १। अ सं।
भा ३। अ शु
आ १। ऊ ४॥

चतुरिंद्रियापर्य्याप्तकर्गें । गु १। जी १। प ५। अ। प्रा ६। च ४। का १। आ १। सं ४। ग १। इं १। च। का १। यो २। मि। का। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। मं १। अ। द २। च। अ। ले २ क शु भ २। सं १। मि। सं १। अ सं। आ २। ऊ ४॥
भा ३ अशु

इंतु आळापत्रयं पेळल्पट्टुदु॥

स १ मि, सं १ अ, आ २, उ ३। तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी १ त्री प, प ५, प्रा ७, सं ४, ग १ ति, इं १ त्री, का १ त्र, यो २ औ १ वा १, वे १ ष, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अ च, ले ६, भ २, स १
भा ३
मि, सं १ अ, आ १, उ ३। तदपर्याप्ताना—गु १, जी १, प ५ अ, प्रा ५ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अ च, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं १, आ २,
भा ३ अ शु
उ ३। तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तदपर्याप्तवत्, चतुरिन्द्रियाणा—गु १ मि, जी २ प अ, प ५ ५, प्रा ८, ६, सं ४, ग १, इं १ चतुरिं, का १ त्र, यो ४ औ २ वा १ का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले ६,
भा ३
भ २, स १ मि, सं १ अ, आ २, उ ४। तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी १ च प, प ५, प्रा ८ च ४ वा १ का १ औ १ आ १, सं ४, ग १ ति, इं १ च, का १ त्र, यो २ औ १ वा १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ १, उ ४। तदपर्याप्तानां—गु १, जी १ अ, प ५ अ,
भा ३
प्रा ६ अ, च ४, का १ आ १, सं ४, ग १, इं १ च, का १, यो २ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १

चतुरिंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकंगों वे अपर्य्याप्तालापं वक्तव्यमक्कुमिदरंते। विशेषमिल्ल। पंचेंद्रियंगळ्गे। गु १४। जी ४। संज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त। प ६। ६। प ५ ५। प्रा १०। ७। ९। ७। सयोगि ४। २। अयोग प्रा १। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १। त्र। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६/६ भ २। सं ६। सं २। आ २। उ १२॥

पंचेंद्रियपर्य्याप्तकरगें गु १४। जी २। सं अ। प ६। सं ५। अ। प्रा। १०। सं। ९। अ। सं। ४ सयोगि। १। अयोगि। सं ४। इं १। पं। का १। त्र। यो ११। म ४। व ४। औ। वै। आ। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६/६ भ २। सं ६। सं २। आ २। उ १२॥

पंचेंद्रियापर्य्याप्तकर्गो। गु ५। मि। सा। अ। प्र। सयोग। जी २। संज्ञ्यपर्य्याप्त असंज्ञ्यपर्य्याप्त। प ६। सं ५। अ। असंज्ञि। प्रा ७। संज्ञि ७। असंज्ञि २। सयोग। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १। त्र। यो ४। औ मि १। वै मिश्र १। आहा मि १। कार्म्मं १। वे ३। क ४। ज्ञा ६। म। श्रु। अ। के। कु। कु। सं ४। अ। सा। छे। यथा। द ४। च। अ। अ। के। ले २ क। शु/भा ६ भ २। सं ५। उ। वे। क्षा। मि। सा। सं २। आ २। उ १०॥

पंचेंद्रियमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी ४। संज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त असंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त। प ६। ६। ५। ५। प्रा १०। ७। ९। ७ सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो १३। आहारद्वयवर्जि। वे ३। क ४। ज्ञा ३।। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६/६ भ २। सं १। मि। सं २। आ २। उ ५। कु। कु। वि। च। अ॥

अ, द २ च अ, ले २ क शु/भा ३ अशु, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ २, उ ४। तल्लब्ध्यपर्याप्तस्य तदपर्याप्तिवत्, पंचेन्द्रियाणा—गु १४, जी ४, संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः, प ६ ६, प्रा १० ७, ९, ७, सयोगस्य ४, २, अयोगस्य १, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६/भा ६, भ २, स ६, सं २, आ २, उ १२। तत्पर्याप्ताना—गु १४, जी २ सं, अ, प ६ सं, ५ अ, प्रा १० सं, ९ अ सं, ४ सयो, १ अयो, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४ वा ४ औ वै आ, वे ३, क ४, ज्ञा ८, स ७, द ४, ले ६/६, भ २, स ६, स २, आ २, उ १२। तदपर्याप्तानां—गु ५ मि सा अ प्र स, जी २ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तौ। प ६ अ, स ५ असज्ञी, प्रा ७ संज्ञि ७ अ संज्ञि २ सयोग, सं ४, ग ४, इं १ प, का १ त्र, यो ४ औमि-आहारकमिश्र-वै-मिश्र-कार्मणा, वे ३, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ के कु कु, सं ४ अ स छे यथा, द ४ च अ अ के, ले २ क शु/भा ६, भ २, स ५ उ वे क्षा मि सा, सं २, आ २, उ १०। मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः, प ६ ६, ५, ५, प्रा १०, ७, ९, ७, सं ४ ग ४, इं १ पं, का १ त्र यो १३ आहारकद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २ च अ, ले ६/६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५ कु कु वि

पंचेंद्रियमिथ्यावृष्टिपर्य्याप्तकग्गें। गु १। जी २। सं। अ। प ६। ५। प्रा १०। ९। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १०। म ४। व ४। औ। वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६ भ २। सं १। मि। सं २। आ १। उ ५॥
६

पंचेंद्रियमिथ्यादृष्ट्यपर्य्याप्तकग्गें। गु १। जी २। सं १। अ १। प ६। अ। ५। अ। प्रा ७। ७ सं ४। ग ४। इं १। पं। का १। त्र। यो ३। औ मि। वै मि। का १। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। अ। च। ले २ क शु। भ २। सं १। मि। सं २। आ २। ऊ ४॥
भा ६। अ शु

सासावनसम्यग्वृष्टिमोदलागयोगिकेवलिपर्य्यंतं मूलौघभंगमो प्रकारदि संज्ञिपंचेंद्रियंगळ-सकलालापंगळु वक्तव्यंगळप्पुवु॥

असंज्ञिपंचेंद्रियंगळ्गे। गु १। मि। जी २। असंज्ञिपर्य्याप्तापर्याप्त। प ५। ५। प्रा ९। ७। सं ४। ग १। इं १। पं। का १। त्र। यो ४॥ औ २ का १। अनुभयवचन। १। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६। भ २। सं १। मि। सं १। असंज्ञि। आ २। उ ४॥
भा ३ अशुभ

असंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तकग्गें। गु १। मि। जी १। प ५। प्रा ७। ९। सं ४। ग १। इं १। पं। का १ त्र। यो २। औ का १। अनुभयवचन। १। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले ६ भ २। सं १। मि। सं १। असंज्ञि। आ १। उ ४॥
भा ३

पंचेंद्रियासंज्ञ्यपर्य्याप्तकग्गें। गु १। मि। जी १। प ५। अ प्रा ७। अ। सं ४। ग १ ति। इं १। पं। का १ त्र। यो २। औ मि १। का १। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले २ क शु भ २। सं १। मि। सं १। असंज्ञि। आ २। उ ४॥
भा ६ अशु

च अ। तत्पर्याप्तानां—गु १, जी २ सं अ, प ६ ५, प्रा १०, ९, सं ४, ग ४, इं १, का १ यो १० म ४ वा ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ १,
६
उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १, जी २, संज्ञ्यपर्याप्तौ, प ६ अ, ५ अ, प्रा ७ ७ अ, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो ३ आ मि, वै मि, कार्म्मण, वे ३, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द २, च अ, ले २ क शु, भ २, स १ मि,
भा ६
स २, आ २, उ ४।

सासादनादीना गुणस्थानवत्, असंज्ञिनां—गु १ मि, जी २ तत्पर्याप्तापर्याप्तौ, प ५ ५, प्रा ९ ७, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ४ औ २ का १ अनुभयवचनं १, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, सं १ असंज्ञी, आ २, उ ४। तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी १, प ५, प्रा ९,
भा ३ अशु
सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औ १ अनुभयवाक् १, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले ६,
भा ४
भ २, स १ मि, सं १ असं, आ १, उ ४। तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी १, प ५ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औ मि १ का १, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले २ क शु भ २,
भा ३

संप्रतिसामान्यपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकंगे । गु १ । मि । जी २ । संज्ञ्यपर्य्याप्तासंज्ञ्यपर्य्याप्त । प ६ । अ । सं ५ । अ । अ । प्रा ७ । सं । अ । ७ । अ । अ । स ४ । ग २ ति । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो २ । औमि १ । का १ । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । च । अ ले २ क । शु भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । ऊ ४ ॥
भा ३ अशु

संज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकंगे । गु १ । मि । जी १ । सं ० अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग २ ति । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो २ । औ मि । का १ । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । संज्ञि । आ २ । ऊ ४ ॥
भा ३ अशु

असंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकंगे । गु १ । मि । जी १ । प ५ । अ । प्रा ७ । अ सं ४ । ग १ ति । इं १ । पं । का १ । त्र । यो २ । औ मि । का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ २ । उ ४ ॥
भा ३ अशु

अनिंद्रियरुगळ्गे सिद्धगतियोळ्पेळ्वंतयक्कुमेकेंदोडे सिद्धरुगळ्गे एकेंद्रियादिनामकर्म्मोदयाभावमप्पुदरिंदमितींद्रियमार्ग्गणे समाप्तमादुदु ॥

कायानुवाददोळु । गु १४ । जी ५७ । ९८ । ४०६ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । पा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । ४ । २ । १ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ १२ ॥
६

स १ मि, सं १ असंज्ञी, आ २, उ ४ । पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्ताना—गु १ मि, जी २ सञ्ज्ञसंज्ञ्यपर्याप्तौ, प ६ अ, सं ५ अ अ, प्रा ७ सं अ, ७ अ अ, स ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औ मि १ का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४ ।
भा ३ अशु

तत्संज्ञिना—गु १ मि, जी १ प अ, प ६ प, प्रा ७ अ अ, सं ४, ग २ ति म, इ १ पं, का १ त्र, यो २, औमि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं १ संज्ञी, आ २, उ ४ ।
भा ३ अशु

तदसंज्ञिना—गु १ मि, जी १, प १ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औमि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ २, उ ४ ।
भा ३ अशु

अतीन्द्रियाणा सिद्धगतिवत् । इति इन्द्रियमार्गणा गता ।

कायानुवादे—गु १४, जी ५७ ९८ ४०६, प ६ ६, ५ ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९ ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४ ३, ४ २ १, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६, भ २ स ६, सं २, आ २, उ १२ ।
६

षट्कषायसामान्यपर्य्याप्तकग्गें । गु १४ । जी १९ । ३७ । १८६ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । सयोगि । ४ । ४ । अयोगि १ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ११ । मिश्र-चतुष्कहीनं । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ १२ ॥
६

षट्कषायसामान्यापर्य्याप्तकग्गें । गु ५ । मि । सा । अ । प्र । सयो । जी ३८ । ६१ । २२० । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । २ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ४ । मिश्र चतुष्टयं । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ ॥ मनःपर्य्ययविभंगरहितं । सं ४ । अ । सा । छे । यथा । द ४ ले २ क शु भ २ । सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं ५ । आ २ । उ १० । ज्ञा ६ । द ४ ॥
भा ६

मिथ्यादृष्टिप्रभृतिगळ्गे मूलौघभंगमक्कुमल्लि मिथ्यादृष्टि त्रिविधरुगळ्गे कायानुवाददल्लि मूलौघदोळु पेळ्दजीवसमासगळु वक्तव्यंगळप्पुवु । नास्त्यन्यत्र विशेषः ॥

पृथ्वीकायंगळ्गे । गु १ । जी ४ । बादरपर्य्याप्तापर्य्याप्तसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्त । प ४ । ४ । प्रा ४ । ३ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । ए । का १ । पृ । यो ३ । औ २ । का १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ सं । द १ । अच । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ । असं । आ २ । उ ३ ॥
भा ३

पृथ्वीकायपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । जी २ । बा । सू । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ । ए । का १ पृ । यो २ । औ का । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च ले ६
भा ३
भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ । स । आ १ । उ ३ ॥

तत्पर्याप्ताना—गु १४ । जी १९ । ३७ । १८६ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । ४ । १ । सं ४ । ग ४ । इ ५ । का ६ । यो ११ । मिश्रत्रयकार्मणाभावात् । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । स ६ । स २ । आ २ । उ १२ । तदपर्याप्ताना—गु ५ मि सा अ प्र स ।
६
जी ३८ । ६१ । २२० । प ६ ५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २ । स ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ४ त्रयो मिश्राः कार्मणश्च । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ मनःपर्ययविभंगाभावात् । सं ४ अ सा छे यथा । द ४ । ले २ क शु ।
भा ६
भ २ । सं ५ मि सा उ वे क्षा । सं २ । आ २ । उ १० ज्ञा ६ द ४ । मिथ्यादृष्ट्यादीनां मूलौघः किन्तु सामान्यादित्रिविधमिथ्यादृष्टीनामेव कायानुवादमूलौघोक्तजीवसमासा वक्तव्याः । अन्यत्र विशेषो नास्ति ।

पृथ्वीकायिकाना—गु १ । जी ४ बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्ताः । प ४ ४ । प्रा ४ । ३ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ पृ । यो ३ औ २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६
३
भ २ । स १ मि । स १ असं । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि । जी २ बा सू । प ४ । प्रा ४ । स ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ पृ । यो १ औ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच ।

पृथ्वीकायापर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १ । जी २ । बा ० अ । सू ० अ । प ४ । अ । प्रा ३ । अ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । ए । का १ । पृ । यो २ । औ मि । का । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अच । ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । असं । आ २ । उ ३ ॥
भा ३ अशु

बादरपृथ्वीकायिकंगळ्गे । गु १ । जी २ । प । अ । प ४ । ४ । प्रा ४ । ३ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । ए । का १ । पृ । यो ३ । औ २ । का । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अच । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ सं । आ २ । उ ३ ॥
भा ३ अशु

बादरपृथ्वीकायपर्य्याप्तकर्ग्गं । गु १ । मि । जी १ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । ए । का १ । पृ । यो १ । औ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ सं । द १ । अ च । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ । आ १ । उ ३ ॥
भा ३

बादरापर्य्याप्तपृथ्वीकायंगळ्गे । गु १ । मि । जी १ । अ । प ४ । अ । प्रा ३ । अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ । ए । का १ पृथ्वी । यो २ । मि । का वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । असं । द १ । अच । ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ सं । आ २ । उ ३ ॥
भा ३ अशु

बादरपृथ्वीकायलब्ध्यपर्य्याप्तकंगे अपर्य्याप्तकंगे पेळ्वंते पेळ्वुकोळ्गे । सूक्ष्मपृथ्वीकायंगे सूक्ष्मैकेंद्रियवंते पेळ्वुकोळ्गे । अल्लि विशेषमुंटवावुवें वोडे सूक्ष्मपृथ्वीकायंगे वितालापमं माळ्के । अप्कायिकंगळ्गे पृथ्वीकायिकंगळ्गे पेळ्वंते पेळ्वुकोंबुदु । विशेषमुंटवावुवें वोडे द्रव्यदिंद बादर-पर्य्याप्तियोळु शुक्ललेश्येययक्कुं । तेजस्कायिकंगळ्गे लेश्येयोळ्भेदमंटावुवें वोडे द्रव्यदिंदं सूक्ष्मुंगळ्गे

ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्ताना—गु १ । जी २ बा अ सू अ । प ४
भा ३

अ । प्रा ३ अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ पृ । यो २ औमि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । स १ अ । आ २ । उ ३ । तद्बादराणा—गु १ । जी २
भा ३ अशु

प अ । प ४ ४ । प्रा ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ पृ । यो ३ औ २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ भ २ । स १ मि । स १ अस । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्ताना—गु १
भा ३ अशु

मि । जी १ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इ १ ए । का १ पृ । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्ताना—गु १
भा ३

मि । जी १ अ । प ४ अ । प्रा ३ अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ पृ । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द १ अच । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ २ । उ ३ ।
भा ३ अशु

तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तदपर्याप्तवत् । तत्सूक्ष्माणा सूक्ष्मैकेन्द्रियवत् । अप्कायिकाना पृथ्वीकायिकवत् । किन्तु द्रव्यतो बादरपर्याप्ते शुक्ला तेजस्कायिकेषु सूक्ष्माणां पर्याप्तमिश्रकालयोः कपोता । बादराणा पर्याप्तकाले

कपोतमे बादरंगळगे पर्य्याप्तियोळु पीतवर्णमे उभयक्कं। विग्रहगतियोळु शुक्लमे। वातकायिकंगळगेयुमपर्य्याप्तकालदोळु गोमूत्रमुद्गाव्यक्तवर्णमक्कुं। वनस्पतिकायिकंगळगे। गु १। जी १२॥

प्रतिष्ठितप्रत्येक पर्य्याप्तापर्य्याप्त अप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्य्याप्तापर्य्याप्त ४। नित्यनिगोदबादरसूक्ष्मचतुर्गतिनिगोदबादरसूक्ष्मंगळंतु ४ क्कं पर्य्याप्तापर्य्याप्त भेददिदमें टुकूडि पन्नेरडु। प ४। ४। प्रा ४। ३। सं ४। ग १ ति। इं १। ए। का १। वन। यो ३। औ। का मि। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द १। अच। ले ६ भ २। सं १। मि। सं १ अ सं। आ २। उ ३॥
भा ३

वनस्पतिपर्य्याप्तकंगे। गु १। जो ६। प्र। अ। नित्यनिगोद बादरसूक्ष्मपर्य्याप्तचतुर्गतिनिगोदबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तंगळु प ४। प्रा ४। सं ४। ग १ ति। इं १। ए। का १। वन। यो १। औ। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १। अच। ले ६ भ २। सं १ मि। सं १।
भा ३
अ। आ १। उ ३॥

वनस्पतिकायिकापर्याप्तकर्ग्गे। गु १। मि। जी ६। अ। प ४ अ। प्रा ३। अ। सं ४। ग। ति १। इं १। ए। का १ वन। यो २। मि का। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले २ कशु भ २। सं १ मि। सं १। अ सं। आ २। उ ३॥
भा ३ अशु

प्रत्येकवनस्पतिगळगे। गु १ मि। जो ४। प्रति। अप्रति। प। अ। प ४। ४। प्रा ४। ३। सं ४। ग १ ति। इं १ ए। का १ वन। यो ३। औ २। का १। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले ६ भ २। सं १ मि। सं १। अ सं। आ २। उ ३॥
भा ३

पीता। उभयविग्रहगतौ शुक्ला। वातकायिकाना अपर्याप्तकाले कपोता। विग्रहगतौ शुक्ला। पर्याप्तकाले गोमूत्रमुद्गाव्यक्तवर्णा।

वनस्पतिकायिकाना—गु १। जी १२ प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकबादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्तापर्याप्ता.। प ४ ४। प्रा ४ ३। सं ४। ग १ ति। इं १ ए। का १ व। यो ३ औ २ का १। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले ६। भ २। स १ मि। सं १ अ। आ २। उ ३। तत्पर्याप्तानां—
३
गु १। जी ६ प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकबादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्ताः। प ४। प्रा ४। सं ४। ग १ ति। इं १ ए। का १ व। यो १ औ। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले ६। भ २।
३
स १ मि। सं १ अ। आ १। उ ३। तदपर्याप्ताना—गु १ मि। जी ६ अ। प ४ अ। प्रा ३ अ। सं ४। ग १ ति। इं १ ए। का १ व। यो २ मि का। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले ६
३
भ २। स १ मि। सं १ अ। आ २। उ ३। प्रत्येकाना—गु १ मि। जी ४ प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितौ। प २ अ २। प ४ ४। प्रा ४ ३। सं ४। ग १ ति। इं १ ए। का १ व। यो ३ औ २ का १। वे १ षं।

प्रत्येकशरीरवनस्पतिपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी २ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ भ २ ।
भा ३
सं १ । मि । सं १ । अ सं । आ २ । उ ३ ॥

प्रत्येकशरीरापर्य्याप्तवनस्पतिगे । गु १ मि । जी १ । प ४ । प्रा ३ । अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो २ । मि । का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च ले २ क शु भ २ । सं १ मि । सं १ अ । आ २ । उ ३ ॥
भा ३ अ शु

इंतु निर्वृत्यपर्य्याप्तकर्गे आलापत्रयं पेळल्पट्टुवु । लब्ध्यपर्य्याप्तकर्गे यो दे आळापमक्कुमदुवुं प्रत्येकबादरनिगोदप्रतिष्ठितंगळ्गे तु पेळदंते वक्तव्यमक्कुं ॥

साधारणवनस्पतिगळ्गे गु १ मि । जी ८ ॥ नित्यचतुर्गतिबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्त । प ४ । ४ । प्रा ४ । ३ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो ३ । औ २ । का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ अ । आ २ । उ ३ ॥
भा ३

साधारणवनस्पतिपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी ४ । नित्यचतुर्गतिबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तकरु । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ । आ १ । उ ३ ॥
भा ३

क ४ । ज्ञा २ । स १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । स १ असं । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्ताना–
३
गु १ मि । जी २ । प ५ ४ । प्रा ४ स ४ । ग १ ति । इ १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्ताना—गु
३
१ । जी २ अ । प ४ अ । प्रा ३ अ । स ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । स १ अ । द १ अच । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ २ । उ ३ ।
३
तल्लब्ध्यपर्याप्ताना तन्निर्वृत्यपर्याप्तवत् ।

साधारणाना–गु १ मि । जी ८ बादरसूक्ष्मनित्येतरनिगोदाः पर्याप्तापर्याप्ताः । प ४ ४ । प्रा ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो ३ औ २ का १ । वे १ प । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । स १ अ । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि । जी ४ बादरसूक्ष्म-
३
नित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्ताः । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इ १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ १ । उ ३ ।
३

साधारणवनस्पत्यपर्य्याप्तकर्गें । गु १ । जी ४ । नित्यचतुर्गतिबादरसूक्ष्मापर्य्याप्तकरु । प ४ । अ । प्रा ३ । अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ । साधारणवनस्पति । यो २ । मि १ । का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अचक्षु ले २ भा ३ भ २ । स १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ २ । उ ३ ॥

साधारणबादरवनस्पतिगळ्गे । गु १ । मि । जी ४ । नित्यचतुर्गतिपर्य्याप्तापर्य्याप्तकरु । प ४ । ४ । प्रा ४ । ३ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो ३ । औ २ । का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ अच । ले ६ भा ३ भ २ । सं १ । मि । सं १ । असं । आ २ । उ ३ ॥

साधारणबादरपर्य्याप्तकर्गें । गु १ । मि । जी २ । नित्यचतुर्गतिपर्य्याप्तकरु । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो १ । औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अच ले ६ भा ३ भ २ । सं १ । मि । सं १ असं । आ १ । उ ३ ॥

साधारणबादरापर्य्याप्तकर्गें । गु १ । मि । जी २ । साधारणबादरनित्यचतुर्गति अपर्य्याप्तकरु । प ४ । अ प्रा ३ । अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अच ले २ क शु भा ३ अशु भ २ । सं १ । मि । सं १ । असं । आ २ । उ ३ ॥

इंतु साधारणबादरवनस्पतिगे आलापत्रयं पेळल्पट्टुदु । आ लब्ध्यपर्य्याप्तकर्गें ओंदोंदे आळापमक्कुं । साधारणसर्व्वसूक्ष्मंगळ्गे सूक्ष्मपृथ्वीकायंगळ्गे पेळ्दंते पेळ्वुकोंबुदु । अल्लि विशेष-

---

तदपर्याप्ताना—गु १ मि । जी ४ बादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदा अपर्याप्ताः । प ४ अ । प्रा ३ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले २ ३ भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ २ । उ ३ । तद्बादराणां—गु १ मि । जी ४ नित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्तापर्याप्ता । प ४ ४ । प्रा ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो ३ औ २ का १ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ ३ । भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी २ । नित्यचतुर्गतिपर्याप्तौ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ ३ । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्तानां—गु १ जी २ । बादरनित्यचतुर्गती अपर्याप्तौ । प ४ अ । प्रा ३ अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले २ क शु भा ३ अशु । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ २ । उ ३ । तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तन्निर्वृत्त्यपर्याप्तिवत् । साधारणसर्वसूक्ष्माणां सूक्ष्मपृथ्वीकायवत् । किंतु जीवसमासाश्चत्वारः नित्यनिगोदाना चतुर्गतिनिगोदानां च

मागुर्वेबोडे नाल्कु जीवसमासेगळुं सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिगे बितु वक्तव्यमक्कुं। मुळिवंते निर्विशेषमक्कुं। चतुर्गति निगोदंगळग साधारणवनस्पतिगे पेळ्व क्रममेयक्कुं। नित्यनिगोदंगळगमुमा क्रममेयक्कुं। बल्लिगुपयोगिगाथा :—

पुढवीआदिचउण्णं केवळिआहारदेवणि रयंगा।
अपदिट्ठिदा हु सव्वे पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥

त्रसकायंगळगे। गु १४। जी १०। बि। ति। च सं पं। अ पं प ६। ६। ५। ५।
२ २ २ २ २
प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। २। १। सं ४। ग ४। इं ४। बि। ति। च। पं। का १ त्र। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६ भ २। सं ६। सं २।
६
आ २। उ १२॥

त्रसपर्याप्तकग्गं। गु १४। जो ५ बि। ति। च। पं सं। पं अ। प ६। ५। प्रा १०। ९।
१ १ १ १ १
८। ७। ६। ४। १। सं ४। ग ४। इं ४। बि। ति। च। पं। का १ त्र। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४ ले ६ भ २। सं ६। सं २। आ २। उ १२। त्रसाऽपर्य्याप्तकग्गें गु ५।
६
मि। सा। अ। प्र। स यो। जी ५ बि। ति। च। पं सं। अ सं प ६। अ ५। अ प्रा। ७।
१ १ १ १ १
७। ६। ५। ४। २। सं ४। ग ४। इं ४। बि। ति। च। पं। का १ त्र। यो ४। मिश्रत्रय-कार्म्मणयोगंगळु। वे ३। क ४। ज्ञा ६। म। श्रु। अ। के। कु। कु। सं ४। अ। सा। छे।

साधारणवत्। अत्रोपयोगिगाथा—

पुढवीयादिचउण्हं केवलिआहारदेवणिरयंगा।
अपदिट्ठिदा हु सव्वे पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥१॥

त्रसकायानां—गु १४। जी १० वि ति च सं असं। पं ६ ६। ५ ५। प्रा १० ७। ९। ७। ८। ६।
२ २ २ २ २
७ ५ ६ ४। ४। २। १। सं ४। ग ४। इं ४ वि ति च पं। का १ त्र। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६। भ २। स ६। सं २। आ २। उ १२। तत्पर्याप्ताना—गु १४। जी ५। वि ति च
६ १ १ १
सं असं। प ६ ५। प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ १। सं ४ ग ४। इं ४ वि ति च पं। का १ त्र। यो ११। वे ३।
१ १
क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६। भ २। स ६। सं २। आ २। उ १२। तदपर्याप्तानां—गु ५ मि
६
सा अ प्र स। जी ५ वि ति च सं असं। प ६ अ। ५ अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। २। सं ४। ग ४। इं ४ वि ति च पं। का १ त्र। यो ४ मिश्राः ३ कार्मणः। वे ३। क ४। ज्ञा ६ म श्रु अ के कु कु।
१ १ १ १

यथा। द ४ ले २ क शु भ २। सं ५। मि। सा उ। वे। क्षा। सं २। आ २। उ १०॥
भा ६

त्रसमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि।। जी १०। । बि। ति। च। सं। अ। प ६। ६।
२ २ २ २ २
५। ५। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। सं ४। ग ४। इं ४। का १ त्र। यो १३।
आहारद्वयवर्ज्जितमागि। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द। २ ले ६ भ २।
६
सं १। मि। सं २। आ २। उ ५॥

त्रसपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी ५। बि। ति। च। पं। अ प ६। ५।
१ १ १ १ १
प्रा १०। ९। ८। ७। ६। सं ४। ग ४। इं ४। बि। ति। च। पं। का १ त्र। यो १०।
१ १ १ १
म ४। वा ४। औ १। वै १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६ भ २। सं मि।
६
सं २। आ १ उ ५॥

त्रसाऽपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी ५। बि। ति। च। सं। अ प ६। ५।
१ १ १ १ १
अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। सं ४। ग ४। इं ४। बि। ति। च। पं का १। त्र। यो ३।
१ १ १ १
औ मि। वै मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले २ क शु भ २। सं १।
भा ६
मि। सं २। आ २। उ ४॥

सासादनसम्यग्दृष्टिप्रभृतियागि अयोगिकेवलिपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं॥

सं ४ अ सा छेय। द ४। ले २ क शु। भ २। स ५ मि सा उ वे क्षा। सं २। आ २। उ १०।
भा ३
मिथ्यादृशां—गु १ मि। जी १० वि ति च सं असं। प ६ ६। ५ ५। प्रा १० ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५,
२ २ २ २ २
६, ४, सं ४, ग ४, इं ४, का १ त्र, यो १३ आहारकद्वयं नहि। वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ।
द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि। जी ५ वि ति च सं अ।
१ १ १ १ १
प ६। ५, प्रा १० ९ ८ ७, ६, सं ४। ग ४, इं ४, वि ति च पं। का १ त्र, यो १० म ४ वा ४ औ १
१ १ १ १
वै १। वे ३. क ४. ज्ञा ३. सं १. अ. द २. ले ६। भ २. स १ मि. स २. आ १, उ ५. तदपर्याप्तानां—
६
गु १ मि. जी ५ वि ति च सं अ। प ६. ५ अ. प्रा ७. ७. ६. ५. ४. सं ४ ग ४. इं ४ वि ति च पं का १ त्र.
१ १ १ १ १ १ १ १ १
यो ३ औ मि १ वै मि १ का १. वे ३ क ४. ज्ञा २. सं १ अ. द २. ले २ क शु। भ २. स १ मि. सं २.
भा ६

अकायरुगळ्गे । गु ० । जी ० । प ० । प्रा ० । सं । ० ।। ग १ । सिद्धगति । का ० । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ के ० । सं ० । द १ के ० । ले ० । भ ० । सं १ । क्षा । सं । ० । आ १ । अनाहार । उ २ ।।

त्रसलब्ध्यपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी ५ । बि । ति । च । पं । अ प ६ । ५ । प्रा ७ ।
१ १ १ १ १
७ । ६ । ५ । ४ । सं ४ । ग २ ति । म । इं ४ । बि । ति । च । पं का १ । त्र । यो २ । औ
१ १ १ १
मि । का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द च । अ । ले २ क शु भ २ । सं १ मि ।
भा ३ अ शु
सं २ । आ २ । उ ४ । इंतु कायमार्ग्गणे समाप्तमादुदु ।।

योगानुवाददोळु मूलौघभंगमक्कुं । विशेषमावुदेंदोडे त्रयोदशगुणस्थानंगळप्पुवु । मनोयोगिगळ्गे । गु १३ । जी १ । पं ० प १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग ४ । इं १ । का १ । त्र । यो ४ । नाल्कुं मनोयोग । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ ले ६ भ २ । सं ६ । सं १ ।
भा ६
आ १ । उ १२ ।।

मनोयोगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ४ । नाल्कुं मनोयोगंगळुं । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ ले ६ भ २ ।
भा ६
सं १ । मि । सं १ । आ १ । उ ५ ।।

मनोयोगिसासादनंगे । गु १ । सा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो ४ । मनोयोगंगळु । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ ले ६ भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ १ । उ ५ ।।
६

आ २. उ ४ । सासादनाद्ययोगांतेषु मूलौघवत्, अकायाना—गु ०, जी०, प०, प्रा०, सं० ग १ सिद्धगति., इं०, का०, यो०, वे०, क०, ज्ञा १ के, सं० द० ले०, भ० । स १ क्षा, स० आ १ अनाहार, उ २, तल्लब्ध्यपर्याप्ताना—गु १, जी ५ बि ति च स अ प ६, ५ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, स ४, ग २ ति म, इ ४
१ १ १ १ १
बि ति च पं । का १ त्र, यो २ औ मि १ का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु ।
१ १ १ १
भा ३ अशु
भ २ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ । कायमार्गणा गता ।

योगानुवादे मूलौघः किंतु गुणस्थानानि त्रयोदशैव, मनोयोगिना—गु १३, जी १, पं प, प ६, प्रा १०, सं ४ । ग ४, इं १, का १ त्र, यो ४ म, वे ३, क ४, ज्ञा ८, स ७, द ४, ले ६ भ २, स ६, स १ आ १,
६
उ १२ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो ४ म, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २ ले ६ भ २, स १ मि, स १, आ १, उ ५ । तत्सासादनस्य—गु १ सा, जी १, प ६,
६
प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं, का १ त्र । यो ४ म । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ ।

मनोयोगिमिश्रंगे । गु १ । मिश्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो ४ । मनो । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ / ६ भ १ । सं १ मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

मनोयोगि असंयतंगे गु १ । असं । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ४ । मनो । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ / भा ६ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

मनोयोगिदेशसंयतंगे । गु १ । दे । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ । ति । म । इं १ । का १ । यो ४ । मनो । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ देश । द ३ ले ६ / भा ३ । शु भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

मनोयोगिप्रमत्तंगे । गु १ प्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ४ । मनोयोग । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ । ले ६ / भा ३ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

मनोयोगि अप्रमत्तप्रभृति सयोगकेवलिपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं । सर्वत्रनाल्कुं मनोयोगंगळु सयोगरोळु सत्यानुभयमनोयोगद्वयं सत्यमनोयोगिमिथ्यादृष्टिप्रभृतिसयोगकेवलिपर्य्यंतं मनोयोगि भंगवक्तव्यमक्कुं । विशेषमावुदेंदोडे सत्यमनोयोगमों दे वक्तव्यमक्कु । ई प्रकारमे अनुभयमनोयोगिगळगमक्कुं । विशेषमावुदेंदोडे अनुभयमनोयोगमों देयक्कुमेंबुदु ॥

द २, ले ६ / ६ । भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ५ । तन्मिश्रस्य—गु १ मिश्रं जी १ । प ६, प्रा १०, स ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो ४ म, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ अ, द २, ले ६ / ६ । भ १ । स १ मिश्रं, सं १, आ १ । उ ५ । तदसंयतस्य—गु १ अ, जी १, प ६ । प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो ४ म, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६ / ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६ । तद्देशसंयतस्य—गु १ दे, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो ४ म, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ दे, द ३ च अ अ, ले ६ / भा ३ शु । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । तत्प्रमत्तस्य—गु १ प्र, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ४ म, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ३ सा छे प, द ३ च अ अ, ले ६ / भा ३, भ १, स ३ उ वे क्षा । स १, आ १ । उ ७ । तदप्रमत्तादिसयोगांत मूलौघः किंतु सर्वत्र मनोयोगाश्चत्वारः सयोगे सत्यानुभयौ द्वौ सत्यानुभयमनोयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगांतं मनोयोगिवत् किंतु योगस्थाने स्वस्वनामैकः ।

असत्यमनोयोगिगळ्गे । गु १२ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १ । असत्यमनोयोग वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । म । सं ७ । अ । दे । सा । छे । प । सू । यथा । द ३ । ले ६ भा ६ भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं १ आ १ । उ १० ॥

मिथ्यादृष्टिप्रभृतिक्षीणकषायपर्य्यंतमसत्यमनोयोगिगळगमुभयमनोयोगिगळगं स्वस्वयोगमे वक्तव्यमक्कुं इनिते विशेषमक्कुं ॥

वाग्योगिगळ्गे । गु १३ । जी ५ । बि । ति । च । सं । अ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ४ । का १ त्र । यो ४ । वचनयोगंगळु । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६/६ । भ २ । सं ६ । सं २ । आ १ । उ १२ ॥

वाग्योगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी ५ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । सं ४ । ग ४ । इं ४ । का १ । त्र । यो ४ ॥ वाग्योगंगळु । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६/६ भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥

सासादनप्रभृतिसयोगकेवलिपर्य्यंतं मनोयोगिभंगं वक्तव्यमक्कुं । विशेषमिदु नाल्कुवाग्योगंगळेंदु वक्तव्यमक्कुं । सयोगरिगेयुं एल्लेल्लि मनोयोगं पेळल्पट्टुवल्लल्लि वाग्योगं वक्तव्यमक्कुं ॥

काययोगिगळ्गे । गु १३ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । ४ । २ ॥ सयोगिकेवलि । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ७ ॥ काययोगंगळु । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६/६ । भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ १२ ॥

असत्यमनोयोगिना—गु १२ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इ १ । का १ । यो १ असत्यमनः । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म । स ७ अ दे सा छे प सू यथा । द ३ । ले ६/६ भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । स १ । आ १ । उ १० । तन्मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायांतं योज्यं । उभयमनोयोगिनामप्येवं । स्वस्वयोग एव वक्तव्यः ।

वाग्योगिनां—गु १३ । जी ५ वि ति च सं अ । प ६ ५ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ४ । का १ त्र । यो ४ । वा । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६/६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ १ । उ १२ । तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि । जी ५ । प ६ ५ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । सं ४ । ग ४ । का १ त्र । यो ४ वा । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६/६ । भ २ । स १ मि । सं २ । आ १ । उ ५ । सासादनादिसयोगातं मनोयोगिवत् किंतु योगस्थाने वाग्योगो वक्तव्यः ।

काययोगिनां—गु १३ । जी १४ । प ६ ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ ४ २ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ७ कायस्य । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६/६ । भ २ । स ६ ।

काययोगिपर्य्याप्तकर्गे । गु १३ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ ।
४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ । वै । आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ ।
ले ६ भ २ । सं ६ । सं २ । आ १ । आहारकरु । उ १२ ॥
६

अपर्य्याप्तकाययोगिगळ्गे । गु ५ । मि । सा । अ । प्र । स । जी ७ । अ । प । ६ । ५ । ४ ।
प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । २ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ४ । औ मि । वै मि । आ मि ।
का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । म । श्रु । अ । के । सं ४ । अ १ । सा १ । छे १ । यथा
१ । द ४ । ले २ । क शु । भ २ । सं ५ । मि । सा । ऊ । वे । क्षा । सं २ । आ २ । उ १० ॥
भा ६

काययोगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० ।
७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ५ ॥ आहार-
द्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ ।
६
आ २ । उ ५ ॥

काययोगिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ ।
६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो २ । औ । वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि ।
सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥
६

काययोगिमिथ्यादृष्ट्यपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ ।
४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ । मि । वै । मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ ।
सं १ अ । द २ । ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥
भा ६

सं २ । आ २ । उ १२ । तत्पर्याप्तानां—गु १३ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ ।
४ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ औ वै आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ सं ७ । द ४ ।
ले ६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ १ आहारकः । उ १२ । तदपर्याप्तानां—गु ५ मि सा अ प्र स । जी
६
७ अ । प ६ ५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ४ औमि वैमि आमि का ।
वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । कु कु म श्रु अ के । सं ४ अ सा छे य । द ४ । ले २ क शु । भ २ । स ५ मि
भा ६
सा उ वे क्षा । सं २ । आ २ । उ १० । तन्मिथ्यादृशा—गु १ । जी १४ । प ६ ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७
९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ । सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ५ आहारकद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १
अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा
६
१० ९ ८ ७ ६ ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो २ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि ।
सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं २ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी ७ ।
६
प ६ ५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ ।

काययोगिसासादननें । गु १ । सासा । जी २ प अ । प ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ५ । औ २ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥
६

काययोगिसासादनपर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो २ । औ । वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ भ १ । सं १ । सा ।
६
सं १ । आ १ । उ ५ ॥

काययोगिसासादनापर्य्याप्तगर्ग्गे । गु १ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । सं ४ । ग ३ । म । ति । दे । णिरयं सासणसम्मो ण गच्छ दे । इं १ । का १ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा ६

काययोगिसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मिश्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो २ । औ । वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ ।
६
सं १ । मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

काययोगिअसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । असं । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ५ । औ २ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
६

ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । स २ । आ २ उ ४ । तत्सासादनाना --गु १ मा ।
भा ६
जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इ १ । का १ । यो ५ औ २ वै २ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ अ । आ २ । उ ५ । तदपर्यासाना—गु १ । जी १ ।
६
प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ यो २ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ ।
६
सं ४ । ग ३ म ति दे । णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदीति वचनात् । इं १ । का १ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । स १ अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ४ । सम्यग्-
भा ६
मिथ्यादृशां—गु १ मिश्रं । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो २ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ मिश्रं । सं १ अ । आ १ । उ ५ । असंयतानां—
६
गु १ अ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ५ औ २ । वै २ । का १ । वे ३ ।

काययोगिपर्य्याप्तासंयतंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो २। औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १।
६
आ १ उ ६॥

काययोगिअपर्य्याप्तासंयतंगे। गु १। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे २। षं। पुं। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३।
१ १ १
ले २ क शु। भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६॥
भा ६

काययोगिदेशव्रतिगळ्गे। गु १। दे। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। म। ति। इं १। का १। यो १। औ का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। दे। द ३। ले ६। भ १। सं ३।
भा ३
सं १। आ १। उ ६॥

काययोगिप्रमत्तसंयतग्गं। गु १। प्र। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। म। इं १ पं। का १ त्र। यो ३। औ का १। आहारक २। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३। सा छे। प। द ३। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥
भा ३

काययोगिअप्रमत्तसंयतंगे। गु १। अ प्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। आहाररहित। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १। औ। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३। द ३। ले ६।
भा ३
भ १। सं ३। आ १। उ ७॥

क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १ आ २। उ ६। तत्पर्याप्तानां—
६
गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो २ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। द ३। ले ६। भ १। स ३। स १। आ १। ३ ६। तदपर्याप्ताना—गु १। जी १। प ६ अ। प्रा ७।
६
सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ३ औमि वैमि का। वे २ षं पुं। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले २ क शु। भ १। स ३। सं १। आ २। उ ६। देशव्रतिनां—गु १ दे। जी १। प ६। प्रा १०।
६
सं ४। ग २ म ति। इं १। का १। यो १ औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ दे। द ३। ले ६।
३
भ १। स ३। सं १। आ २। उ ६। प्रमत्तानां—गु १ प्र। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ३ औ १ आहा २। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६।
३
भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ७। अप्रमत्तानां—गु १ अप्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३ आहारसंज्ञा नहि। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो १ औ। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३। द ३।

काययोगि अपूर्व्वकरणप्रभृतिक्षीणकषायपर्य्यंतं काययोगिगळ्गे मूलौघभंगमक्कुं। विशेषमावुदें दोडे औदारिककाययोगमे वक्तव्यमक्कुं। काययोगि सयोगकेवलिगळ्गे। गु १। स के। जी २। प। अ। प ६। प ६। प्रा ४। २। सं ०। ग १। म। इं १ पं। का १। त्र। यो ३। औ २। का १। वे ०। क ०। ज्ञा १। के। सं १। यथा। द १ के। ले ६ भ १। सं १। क्षा। भा १ सं। ०। आ २। उ २। के। के॥

औदारिककाययोगिगळ्गे। गु १३। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। ४। सं ४। ग २। म। ति। इं ५। का ६। यो १। औ। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६/६। भ २। सं ६। सं २। आ १। उ १२॥

औदारिककाययोगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग २। ति। म। इं ५। का ६। यो १। औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६/६। भ २। सं १। मि। सं २। आ १। उ ५॥

औदारिककाययोगिसासादनंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। म। ति। इं १। पं। का १ त्र। यो १। औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ द २। ले ६/६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ५॥

औदारिककाययोगिसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १ मिश्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। ति। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १। औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६/६। भ १। सं १। मिश्र। सं १। आ १। उ ५॥

ले ६/३। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ७। अग्रेऽपूर्वकरणात् क्षीणकषायपर्यंतं मूलौघवत् किंतु औदारिकयोग एव वक्तव्यः।

सयोगकेवलिनां—गु १ सा, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा ४ २ सं ०, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ३ औ २ का १, वे ० क ०, ज्ञा १ के, सं १ यथा, द १ के, ले ६/भा १। भ १ स १ क्षा, सं ०, आ २, उ २ के के। औदारिकयोगिना—गु १३, जी ७ प, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, ४, सं ४, ग २ म ति, इं ५, का ६, यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६/भा ६। भ २, स ६, सं २, आ १, उ १२। तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी ७, प ६ ५ ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग २ ति म, इं ५, का ६, यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६/भा ६। भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५। तत्सासादनाना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ म ति, इं १ पं, का १ त्र, यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ द २, ले ६/६, भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ५, सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १ मिश्रं,

औदारिककाययोगिअसंयतसम्यग्दृष्टिगे । गु १ । अ । जी १ । पंचि । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो १ । औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
६

औदारिककाययोगि देशव्रतिगळ्गे । गु १ । दे । जी १ । पं प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो १ । औ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । दे । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ३

प्रमत्तसंयतप्रभृति सयोगिकेवलिपर्य्यंतं काययोगिभंगं वक्तव्यमक्कुं विशेषमावुदेंदोडे सर्व्वत्रौदारिककाययोगमोंदे वक्तव्यमक्कुं ॥

औदारिकमिश्रकाययोगिगळ्गे । गु ४ । मि । सा । अ । सयो । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । २ । सं ४ । ग २ । म । ति । इं ५ । का ६ । यो १ । औ मि । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । विभंगमनःपर्य्ययरहितं । सं २ । अ । यथा । द ४ । ले १ क । भ २ ।
भा ६
सं ४ । मि । सा । वे । क्षा । सं २ । आ १ । उ १० ॥

औदारिकमिश्रकाययोगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ मि । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग २ । ति । म । इं ५ । का १ । यो १ । औ मि । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले १ क । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ४ ॥
भा ३

औदारिकसासादनमिश्रग्गें । गु १ । सासा । जी १ । सं । पं । अ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग २ । ति । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १ । औ मि । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ ।

जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म, इं १, का १ त्र । यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६ । भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १, उ ५, असंयताना—गु १ अ, जी १ पं प, प ६, प्रा १०,
६
सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द ३, ले ६ । भ १, स ३,
६
सं १, आ १, उ ६, देशव्रतानां—गु १ दे, जी १ पं प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३ ले ६, भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६, प्रमत्तात्संयोगातं
३
काययोगिवत् किंतु सर्वत्र औदारिकयोग एव वक्तव्यः ।

औदारिकमिश्रयोगिना—गु ४ मि सा अ स । जी ७ अ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । २ । सं ४ । ग २ ति म । इं ५ । का ६ । यो १ औमि । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६, विभंगमनःपर्ययाभावात् । सं २ अ य । द ४ । ले १ क । भ २ । स ४ मि सा वे क्षा । सं २ । आ १ । उ १० । तन्मिथ्यादृशां
भा ६
गु १ मि । जी ७ अ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग २ ति म । इं ५ । का ६ । यो १ औमि । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले १ । भ २ । स १ मि । सं २ । आ १ ।
भा ३
उ ४ । तत्सासादनानां—गु १ सा । जी १ सं अ । प ६ अ । प्रा ७ । सं ४ । ग २ ति म । इं १ प ।

द २। ले १। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ४॥
भा ३

औदारिकमिश्रकाययोगि असंयत सम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। असं। जी १ अ। प ६। प्रा ७। अ। सं ४। ग २। ति। म। इं १। पं। का १। त्र। यो १। औ मि। वे १। पुं। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले १ क। भ १। सं २। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥
भा ६

औदारिकमिश्रकाययोगिसयोगिकेवलिगळ्ग। गु १। जी १। अ। प ६। प्रा २। का १। आयु: १। सं। ०। ग १। म। इं १ प। का १ त्र। यो १। औ मि। वे ०। क ०। ज्ञा १। के। सं १। यथा। द १। के। ले १ क। भ १। सं १। क्षा। सं। ०। आ १। उ २॥
भा १ शु

वैक्रियिककाययोगिगळ्गे। गु ४। मि। सा। मि। अ। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। न। दे। इं १। पं। का १ त्र। यो १। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। वि। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६ भ २। सं ६। मि। सा। मि। उ। वे। क्षा।
भा ६
सं १। आ १। उ ९॥

वैक्रियिक काययोगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। न दे। इं १। पं। का १ त्र। यो १। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १ अ। द २। ले ६। सं १। मि। सं १। आ १। उ ५॥
६

वैक्रियिककाययोगिसासादनग्गं। गु १। सा। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। न दे। इं १ पं। का १। त्र। यो १। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ५॥
भा ६

का १ त्र। यो १ औमि। वे ३। क ४। ज्ञा २। स १ अ। द २। ले १। भ १। स १ सा। सं १।
भा ३ अशुभ
आ १। उ ४। तदसंयताना—गु १ अ। जी १ अ प। प ६ अ। प्रा ७ अ। स ४। ग २ ति म। इं १ पं। का १ त्र। यो १ औमि। वे १ पु। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले १ क। भ १। स २ वे क्षा।
भा ६
स १। आ १। उ ६। तत्सयोगिना—गु १। जी १ अ। प ६। प्रा २ का १ आ १। सं ०। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो १ औमि। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। सं १ य। द १ के। ले १ क। भ १।
१ शु
स १ क्षा। सं ०। आ १। उ २। वैंक्रियिकयोगिनां—गु ४ मि सा मि अ। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ न दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ। सं १। द ३। ले ६। भ २। स ६ मि सा मि उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ९। तन्मिथ्यादृशां—गु १। जी १।
६
प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ न दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ २। स १ मि। सं १। आ १। उ ६। तत्सासादनानां—गु १ सा। जी १।
६

वैक्रियिककाययोगिसम्यग्मिथ्यावृष्टिगळ्गे। गु १। मिश्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ न दे। इं १। पं। का १ त्र। यो १। वैं। का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। मिश्र। सं १। आ १। उ ४॥
भा ६

वैक्रियिककाययोगि असंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। अ सं। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। न दे। इं १। पं। का १ त्र। यो १। वै का। वे ३। का ४। ज्ञा ३। म श्रु अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥
६

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिगळ्गे। गु ३। मि। सा। अ। जी १। प ६। अ। प्राण ७। अ। सं ४। ग २। न दे। इं १। पं। का १ त्र। यो १। वैं मि। वे ३। क ४। ज्ञा ५। कु। कु। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले १। भ २। सं ५। मि। सा। उ। वे। क्षा। सं १।
भा ६
आ १। उ ८॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ६। अ। सं ४। ग २। न दे। इं १। पं। का १ त्र। यो १। वैं मि। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ द २। ले १। भ २। सं १। मि। सं १। आ १। उ ४॥
भा ६

वैक्रियिकमिश्रकाययोगसासादनसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। सासा। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १ देव। इं १। पं। का १। त्र। यो १। वैं मि। वे २। क ४। ज्ञा २।

प ६। प्रा १०। स ४। ग २ न दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १ वैं। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५। तत्सम्यग्मिथ्यादृशा— गु १ मिश्रं।
६
जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ न दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६ भ १। स १ मिश्रं। स १। आ १। उ ५। तदसयताना—गु १ अ।
६
जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ न दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १ वैं। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६। तन्मिश्रयोगिना—गु १ मि
६
सा अ। जी १। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग २ न दे। इ १ पं। का १ त्र, यो १ वैमि, वे ३, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले १ क, भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ८।
भा ६
तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग २ न दे, इं १ पं, का १ त्र, यो १ वैमि, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले १। भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ ४। तत्सासादनानां—गु १ सा,
६
जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १ दे, इं १ पं, का १ त्र, यो १ वैमि, वे २, क ४, ज्ञा २, सं १ अ,

सं १। अ। द २। ले १क। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ४॥
भा ६

वैक्रियिकमिश्रकाययोगि असंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग २। न दे। इं १। पं। का १ त्र। यो १। वैं मि। वे २ षं पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले १ क। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥
भा ४

आहारककाययोगिगळ्गे। गु १। प्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १। आ का। वे १ पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं २। सा। छे। द ३। ले शु १ । भ १। सं २। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥
भा ३

आहारकमिश्रकाययोगिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १। आ मि। वे १। पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं २। सा। छे। द ३। च। अ। अ। ले १क भ १। सं २। वे क्षा। सं १। आ १। उ ६॥
भा ३ शु

कार्म्मणकाययोगिगळ्गे। गु ४। मि। सा। अ। सयो। जी ७। अ। प ६। अ ५। अ ४। अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। २। सं ४। इं ५। का ६। यो १। का। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। म। श्रु। अ। के। सं २। अ। यथा। द ४। च अ। अ। के। ले १ शु भ २।
भा ६
सं ५। मि। सा। उ। वे। क्षा। सं २। आ १। अनाहार। उ १०॥

कार्म्मणकाययोगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी ७। अ। प ६। ५। ४। अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु।

द २, ले १ क। भ १, स १ सा। सं १, आ १, उ ४।
भा ६

तदसंयताना—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग २ न दे, इं १ प, का १ त्र, यो १ वैंमि, वे २ षं पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ। द ३, ले १ क। भ १। सं ३, उ वे क्षा,
भा ४ शु ३ क १
स १, आ १, उ ६। आहारकयोगिना—गु १ प्र, जी १। प ६, प्रा १०, सं ४, ग १ म, इ १ पं, का १ त्र। यो १ आ, वे १ पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स २ सा छे, द ३, ले १ शु, भ १, स २ वे क्षा, सं १,
भा ३
आ १, उ ६। तन्मिश्रयोगिना—गु १ प्र, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १ म, इ १ प, का १ त्र, यो १ आमि, वे १ पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं २ सा छे, द ३ च अ अ, ले १ क। भ १, स २ वे क्षा,
भा ३
स १ आ १, उ ६। कार्मणयोगिनां—गु ४ मि सा अ स, जी ७ अ, प ६ अ, ५ अ, ४ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, २, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १ का, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु म श्रु अ के, स २ अ य, द ४ च अ अ के, ले १ शु। भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, स २, आ १ अनाहारः, उ १०। तन्मिथ्यादृशा—
भा ६
गु १ मि, जी ७ अ, प ६ ५ ४ अ, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३, स ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १ का, वे ३,

सं १ । अ । द २ । च । अ । ले १ शु । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । अनाहार । उ ४ ॥
भा ६

कार्म्मणकाययोगिसासादनसम्यग्दृष्टिगळगे । गु १ । सासा । जी १ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १ । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ अ । द २ । ले १ शु । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ १ । अनाहार । उ ४ ॥
भा ६

कार्म्मणकाययोगिअसंयतसम्यग्दृष्टिगळगे । गु १ । अ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १ । का । वे २ । षपुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । । अ । सं । द ३ । ले १ शु । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । अनाहार । उ ६ ॥
भा ६

कार्म्मणकाययोगि सयोगिकेवलिगळगे । गु १ । सयो । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा २ । का । आ । सं । ० । ग १ । म । इं १ । पं का १ त्र । यो १ । का । वे ० । क ४ । ज्ञा १ । के । सं १ । यथा । द १ । के । ले १ शु । भ १ । सं १ । क्षा । सं । ० । आ १ । अनाहार उ २ ।
भा १
के । के ॥ यितु योगमार्ग्गणे समाप्तमादुदु ॥

वेदमार्ग्गणानुवाददोळु मूलौघदोळ् तंते ज्ञातव्यमक्कुं । विशेषमावुदेंदोडे नवगुणस्थानंगळेंदु वक्तव्यमक्कुं । स्त्रीवेदिगळगे । गु ९ । जी ४ । संज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्तकरु । प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । सं ४ । ग ३ । म । ति । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ ॥ आहारकद्वयरहित । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ सं ४ । अ । दे । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं २ ।
६
आ २ । उ ९ ॥

क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २ च अ, ले १ शु, भ २, स १ मि, सं २, आ १ अनाहारः, उ ४ ।
भा ६
तत्सासादनानां—गु १ सा, जी १, प ६, प्रा ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १, यो १ का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २, ले १ शु, भ १, स १ सा, सं १ । आ १ अना, उ ४ । तदसंयतानां—गु १
भा ६
अ, जी १ । प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ४, इ १, का १, यो १ का, १ वे २ षं पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ ले १ शु । भ १, स ३ उ वे क्षा, स १, आ १ अना । उ ६ । तत्सयोगिनां—गु १ सयोगी,
भा ६
जी १ अ, प ६ अ, प्रा २ का, आ, सं ०, ग १ म, इं १, का १ त्र, यो १ का, वे ० । क ० । ज्ञा १ के, सं १ य, द १ के, ले १ शु, भ १, स १ क्षा, सं ०, आ १ अना, उ २ के के, योगमार्गणा गता । वेदमार्गणानुवादे
भा १
मूलौघवत् किंतु गुणस्थानानि नवैव ।

तत्र स्त्रीवेदिना—गु ९ । जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः । प ६ ६ ५ ५ । प्रा १० ७ ९ ७ । सं ४ । ग ३ म ति दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ आहारद्वयं नहि । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं ४ अ दे सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं २ । आ २ । उ ९ ।
६

स्त्रीवेविपर्य्याप्तकग्गें । गु ९ । जी २ । सं । । अ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ वै । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं ४ । अ । दे । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले ६/६ । भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं २ । आ १ । उ ९ ॥

स्त्रीवेवियपर्य्याप्तकग्गें । गु २ । मि । सा । जी २ । संज्ञ्यसंज्ञ्यपर्य्याप्तक । प ६ । ५ । अ प्रा ७ । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो ३ । औमि १ । वै मि । का १ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ च । अ । ले २ क शु / भा ३ अ शु । भ २ । सं २ । मि । सा । सं २ । आ २ । उ ४ । कु । कु । च । अ ॥

स्त्रीवेदिमिथ्यावृष्टिगळ्गें । गु १ । मि । जी ४ । संज्ञ्यसंज्ञियपर्य्याप्तकापर्य्याप्तक । प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । आहारकद्वयरहित वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ सं । द २ । ले ६/६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ५ ॥

स्त्रीवेदिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । जी २ । संज्ञिपर्य्याप्तासंज्ञिपर्य्याप्तक । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ । वै । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ सं । द २ । च । अ । ले ६/६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥

स्त्रीवेदिमिथ्यादृष्टिअपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । मि । जी २ । संज्ञ्यपर्य्याप्तासंज्ञ्यपर्य्याप्त । प ६ । ५ । अ । प्रा ७ । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ३ । औ । मि । वैं मि ।

तत्पर्याप्ताना—गु ९ । जी २ सं अ । प ६ ५ । प्रा १० ९ । स ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं ४ अ दे सा छे । द ३ च अ अ । ले ६/६ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं २ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु २ मि सा । जी २ सञ्ज्यसंज्ञ्यपर्याप्तौ । प ६ ५ अ । प्रा ७ ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैंमि का । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ कु कु । स १ अ । द २ च अ । ले २ क शु / भा ३ अशु । भ २ । स २ मि सा । सं २ । आ २ । उ ४ कु कु च अ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि । जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः । प ६ ६ ५ ५ । प्रा १० ७ ९ ७ । सं ४ । ग ३ म ति दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ आहारकद्वयाभावात् । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६/६ । भ २ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि । जी २ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तौ । प ६ ५ । प्रा १० ९ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६/६ । भ २ । स १ । सं २ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ मि । जी २ संज्ञ्यसंज्ञ्यपर्याप्तौ ।

का। वे १ स्त्री। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। च। अ ले २ क शु भा ३ अ शु भ २। सं १। मि। सं २। आ २। उ ४॥

स्त्रीवेदिसासादनर्गे। गु १। सासा। जी २। पंचेंद्रियसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त। प ६। प ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। पं। का १। त्र। यो १३। आहारद्वयरहित। वे १ स्त्री। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६ ६। भ १ सं १। सासा। सं १। आ २। उ ५॥

स्त्रीवेदिसासादनपर्य्याप्तकर्गे। गु १। सासा। जी १। संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तक। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति। म। दे। इं १। पं। का १ त्र। यो १०। म ४। व ४। औ। वै। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६ ६ भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ५॥

स्त्रीवेदिसासादनाऽपर्य्याप्तकर्गे। गु १। सासा। जी १। स पं अ ० प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। पं। का १ त्र। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। च। अ। ले २ क शु भा ३ अ शु। भ १। सं १। सासा। सं १। आ २। उ ४॥

स्त्रीवेदिसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मिश्र। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। पं। का १ त्र। योग १०। म ४। व ४। औ १। वै १। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १ अ। द २। च। अ। ले ६ ६। भ १। सं १। मिश्र।

प ६ ५ अ। प्रा ७ ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो ३ औमि वैमि का। वे १ स्त्री। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २ च अ। ले २ क शु भा ३ अशु। भ २। स १ मि। सं २। आ २। उ ४।

तत्सासादनानां—गु १ सा। जी २ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १३ आहारद्वयाभावात्। वे १ स्त्री। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६ ६। भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु १ सा। जी १ संज्ञिपर्याप्तः। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे १ स्त्री। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ, द २ च अ। ले ६ ६। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १ सा। जी १ सं अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का। वे १ स्त्री। क ४। ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु भा ३ अशु, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ४,

सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ मिश्र, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै। वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६ ६, भ १, स १ मिश्रं,

सं १। आ १। उ ५॥

स्त्रीवेदिअसंयतंगे। गु १। अ। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १ त्र। यो १०। म ४। व ४। औ १। वै १। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। अ। च। अ। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १।
६
आ १। उ ६॥

स्त्रीवेदिदेशव्रतिकंगे। गु १। दे। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ ति। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। म ४। व ४। औ १। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। दे। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥
भा ३

स्त्रीवेदप्रमत्तंगे। गु १। प्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। म ४। व ४। औ १। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। स्त्रीवेदिगळ्ग संक्लिष्टरोळु मनःपर्य्ययज्ञानमिल्ल। सं २। सा छे। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १।
भा ३ शु
सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥

स्त्रीवेदि अप्रमत्तंगे। गु १। अ प्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। आहाररहित। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। म ४। व ४। औ १। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। मनःपर्य्ययमिल्ल। सं २। सा। छे।। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं ३। उ।
भा ३ शुभ
वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥

स्त्रीवेदि अपूर्व्वकरणंगे। गु १। अपूर्व्व। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १। म। इं १। पं। का १। त्र। यो ९। म ४। व ४। औ १। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु।

सं १, आ १. उ ५, असंयताना—गु १ अ। जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६,
६
भ १, स ३ उ वे क्षा। सं १, आ १, उ ६। देशव्रतिना—गु १ दे, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९ म ४, व ४ औ १, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ दे, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, स १, आ १, उ ६, प्रमत्ताना—गु १ प्र, जी १, प ६, प्रा १०,
३
सं ४, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९ म ४ व ४ औ १, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, संक्लिष्टत्वात् मनःपर्ययो नहि, सं २ सा छे, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६।
३
अप्रमत्तानां—गु १ अप्र, जी १, प ६, प्रा १०, सं ३ आहारसज्ञा नहि, ग १ म, इं १ पं। का १ त्र, यो ९, म ४ व ४ औ १, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ मनःपर्ययज्ञानं नहि, सं २ सा छे, द ३ च अ अ, ले ६। भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १। उ ६। अपूर्वकरणाना—गु १ अपू, जी १, प ६, प्रा १०,
३ शुभ

अ । सं २ । सा छे । द ३ च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा १

स्त्रीवेदि अनिवृत्तिकरणंगे । गु १ । अनि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं २ । मै । प । ग १ म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ९ । म ४ । व ४ । औ १ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं २ । सा छे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा १

पुंवेदिगळ्गे । गु ९ । जी ४ । संज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्तकरु । प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १५ । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ७ । केवलज्ञानरहित । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ २ ।
६
सं ६ । सं २ । आ २ । उ १० ॥

पुंवेदिपर्य्याप्तकंगे । गु ९ । जी २ । सं । अ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । सं ४ । ग ३ ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । व ४ । औ १ । वै १ । आ १ । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ७ । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । च । अ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं २ ।
६
आ १ । उ १० ॥

पुंवेदि अपर्य्याप्तकंगे । गु ४ । मि । सा । अ । प्र । जी २ । प ६ । ५ । प्रा ७ । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो ४ । औ मि । वै मि । आ मि । का । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं । अ । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु भ २ ।
भा ६
सं ५ । मि सा । उ । वे । क्षा । सं २ । आ २ । उ ८ ॥

सं ३, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९ म ४ व ४ औ १, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं २ सा छे, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ६ । अनिवृत्तिकरणानां—गु १ अनि, जी १,
१
प ६, प्रा १०, सं २ मै प, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९ म ४ व ४ औ १, वे १ स्त्री । क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं २ सा छे, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ६ । पुंवेदिना—गु ९,
१
जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः, प ६ ६ ५ ५, प्रा १० ७ ९ ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो १५, वे १ पु, क ४, ज्ञा ७ केवलज्ञानं नहि, सं ५ अ दे सा छे प, द ३ च अ अ, ले ६, भा २, स ६,
६
सं २, आ २, उ १० । तत्पर्याप्तानां—गु ९, जी २ सं अ, प ६ ५, प्रा १० ९ । सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं । का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ वै आहा । वे १ पुं । क ४, ज्ञा ५, सं ५ अ दे सा छे प, द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६, सं २ । आ १ । उ १० । तदपर्याप्तानां—गु ४ मि सा अ प्र, जी २,
६
प ६ ५ । प्रा ७ ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १, यो ४ औमि वैमि आमि का । वे १ पुं, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं ३ अ सा छे, द ३ च अ अ । ले २ क शु । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा, सं २,
भा ६
आ २ । उ ८ ।

पुंवेदिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी ४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६/६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ५ ॥

पुंवेदिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकंगे । गु १ । मि । जी २ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । व ४ । औ १ । वै १ । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६/६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ उ ५ ॥

पुंवेदिमिथ्यादृष्टिअपर्य्याप्तकंगे । गु १ । मि । जी २ । प ६ । ५ । अ । प्रा ७ । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो ३ । औमि । वैमि । का । वेद १ । पुं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु / भा १ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥

पुवेदिसासादनप्रभृति प्रथमानिवृत्तिपर्य्यंतं मूलौघभंग वक्तव्यमक्कुमल्लि विशेषमावुदें दोडे : सर्व्वत्र पुंवेदमो दे वक्तव्यमक्कुं । सासादनमिश्रासंयतर्गे गतित्रयं वक्तव्यमक्कुं । देशसंयतंगे गतिद्वयं वक्तव्यमक्कुंमन्यत्र विशेषमिल्ल । नपुंसकवेदिगळ्गे । गु ९ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं ५ । का ६ । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं ४ । अ । दे । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले ६/६ । भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ ९ ॥

नपुंसकवेदिपर्य्याप्तकंगे । गु ९ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । व ४ । औ १ । वै १ । वे १ षं ।

तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी ४, प ६, ६, ५, ५, प्रा १०, ७, ९, ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १पं, का १ त्र, यो १३ आहारकद्वयं नहि, वे १ पु, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६/६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि, जी २, प ६ ५, प्रा १०, ९, सं ४, ग ९ ति म दे, इं १' का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे १पु, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६/६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी २, प ६, ५, अ, प्रा ७, ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १, यो ३ औमि वैमि का, वे १ पु, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ । ले २ क शु / भा ६, भ २, स १ मि, स २, आ २, उ ४ । तत्सासादनात् प्रथमानिर्वृत्तिपर्यंतं मूलौघः अत्र सर्वत्र पुवेदो वक्तव्यः सासादनमिश्रासंयताना गतित्रयं । देशसंयतस्य गतिद्वयं, अन्यत्र विशेषो नास्ति ।

नपुसकवेदिना—गु ९ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४, ग ३ न ति म, इं ५, का ६ । यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे १ षं, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं ४ अ दे सा छे, द ३ च अ अ, ले ६/६ भ २, स ६, सं २, आ २, उ ९ । तत्पर्याप्तानां—गु ९, जी ७, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४ । ग ३ न ति म, इं ५, का ६, यो

क ४। ज्ञा ६। कु। कु। वि। म। श्रु। अ। सं ४। अ। वे। सा। छे। द ३। च। अ। अ ले ६। भ २। सं ६। सं २। आ १। उ ९॥
(६)

नपुंसकवेदिअपर्य्याप्तकग्गें। गु ३। मि। सा। अ। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ३। न। ति। म। इं ५। का ६। यो ३। औमि। वैमि। का। वे १। षं। क ४। ज्ञा ५। कु। कु। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले २ क शु। भ २ सं। ४। मि। सा। वे। क्षा। सं २। आ २। उ ८॥
(औमि १, वैमि १, का १; ले: भा ३ अशु)

नपुंसकवेदिमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग ३। न। ति। म। इं ५। का ६। यो १३। आहारकद्वयवर्ज्जित। वे १। नपुं। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ २। उ ५॥
(६)

नपुंसकवेदिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकंगे। गु १। मि। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग ३। न। ति। म। इं ५। का ६। यो १०। म ४। व ४। औ। वै। वे १ षं। क ४ ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ १। उ ५॥
(६)

नपुंसकमिथ्यादृष्टि अपर्य्याप्तकंगे। गु १। मि। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ३। न। ति। म। इं ५। का ६। यो ३। औ मि। वै मि। का ४। वे १

---

१० म ४ व ४ औ १ वै १, वे १ षं, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं ४ अ दे सा छे, द ३ च अ अ, ले ६। भ २, स ६, सं २, आ १, उ ९। तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ, जी ७, प ६ ५,४ अ, प्रा ७, ७, (६)
६, ५, ४, ३। ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४। ग ३ न ति म, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, स १ अ, द ३ अ च अ, ले २ क शु भ २, स ४ मि सा वे क्षा, सं २, आ २, उ ८। तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, सं ४, ग ३ न ति म, इं ५, का ६, यो १३ आहारद्वयं नहि, वे १ न, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २ उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८ ७ ६, ४, सं ४, ग ३ न ति म, इं ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे १ षं, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २। ले ६। भ २, स १ मि, सं २, आ १, उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७, प ६, ५, ४, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ३ न ति म, इं ५, का ६,
(ले: भा ३ अशु; ले ६/६; ले ६/६)

षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । सं १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ ।
भा ३ अशु

नपुंसकसासादनंगे । गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो १२ । म ४ । व ४ औ २ । वै १ । कार्म्मण का १ । वे १ नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ / ६ । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥

नपुंसकवेदिसासादनपर्य्याप्तकंगे । गु १ । सा । । जी १ । प ६ । प्रा १० । । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ १ । वै १ । वे १ नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ / ६ । भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

नपुंसकवेदिसासादनापर्य्याप्तकंगे । गु १ । सासा । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग २ ति । म । इं १ । का १ । यो २ । औ मि । का । वे नपुं । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा ३ अशु

नपुंसकवेदिसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मिश्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ का । वै का । वे १ नपुं । क ४ । ज्ञा ३ कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ / ६ । भ १ । सं १ मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

यो ३ औमि वैमि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले २ क, शु भ २, स १ मि, सं २, आ २,
भा ३ अशु
उ ४, तत्सासादनाना—गु १ । जी २, संप अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १२ म ४ व ४ औ २ वै १ का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६/६, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्ताना—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औका वैका, वे १ न, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६/६, भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ । प्रा ७ अ, सं ४, ग २ ति म, इं १, का १, यो २ औमि का, वे १ न, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु । भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ४ । तत्सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां—गु १ मिश्रं, जी १ प,
भा ३ अशु
प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४, व ४ औ १ वै १, वे १ न, क ४,

नपुंसकवेदिअसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । असं । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । न ति । म । इं १ । का १ । यो १२ । म ४ । व ४ । औ का १ । वै का १ । का १ । वे १ नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६/६ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

नपुंसकवेदि असंयतपर्य्याप्तकंगे । गु १ । अ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । व ४ । औ १ । वै १ । वे १ । नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६/६ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

नपुंसकवेदिअपर्य्याप्तासंयतंगे । गु १ । अ । जी १ । अ । प ६ । अ प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो २ । वै मि १ । का १ । वे १ । नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु/भा १ अ शु । भ १ । सं २ । क्षा । वे । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

नपुंसकवेदिदेशव्रतिगळ्गे । गु १ । दे । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ । ति म । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वे १ नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । दे । द ३ । च । अ । अ । ले ६/भा ३ शु । भ १ । सं ३ उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

नपुंसकवेदिप्रमत्तप्रभृतिप्रथमभागानिवृत्तिपर्य्यंतं स्त्रीवेदिगळ भंगमक्कुं विशेषमावुदेंदोडे सर्व्वत्र नपुंसकवेदमोंदे वक्तव्यमक्कुं ॥

ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, च अ, ले ६/६, भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १, उ ५ । तदसंयतानां—गु १ अ, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १२ म ४ व ४ औ वै वैमि का, वे १ न, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६/६, भ १, स ३, सं १, आ २, उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म । इं १, का १, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे १ न, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६/६ । भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६ । तदपर्याप्ताना—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो २ वैमि का । वे १ न । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु/भा ३ अशुभ । भ १ । स २ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । देशव्रतिना—गु १ दे । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ ति म । इं १ । का १ । यो ९ म ४ व ४ औ १ । वे १ न । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ दे । द ३ च अ अ । ले ६/भा ३ शु । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तात् प्रथमभागानिवृत्त्यंतं स्त्रीवेदिवत् किंतु वेदस्थाने नपुंसकवेद एव ।

अपगतवेदग्गें । गु ६ । अ । सू । उ । क्षी । स । अ । जी २ । प अ । प ६ । प्रा १० । ४ । २ । १ । सं १ । परि । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ २ । का १ । वे ० । क ४ । २ । १ । लो । ज्ञा ५ । म । श्रु । अ । म । के । सं ४ । सा । छे । सू । यथा १ । द ४ । च । अ । अ । के । ले ६ । भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ २ । उ ९ ॥
भा ६

इंती द्वितीयभागानिवृत्तिप्रभृति सिद्धपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं । मितु वेदमार्ग्गणे समाप्तमावुवु ॥

कषायानुवाददोळु ओघाळापं मूलौघभंगमक्कुं । विशेषमावुदेंदोडे दशगुणस्थानंगळप्पुवु । **क्रोधकषायिगळ्गे** । गु ९ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १५ । वे ३ । क १ । क्रो । ज्ञा ७ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । म । सं ५ अ । दे । सा १ । छे १ । प १ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ १० ॥
६

क्रोधकषायिपर्य्याप्तकर्गें । गु ९ । जी प ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । आ का १ । वे ३ । क १ । क्रो । ज्ञा ७ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । म । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ १० ॥
६

क्रोधकषायिकापर्य्याप्तकर्गें गु ४ । मि । सा । अ । प्र । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । अ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ४ । औमि । वैमि । आमि । का । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं ३ । अ । सा । छे । द ३ । च ।

अपगतवेदानां—गु ६ अनि, सू, उ, क्षी, स, अ, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ४, २, १, सं १ परि, ग १ म, इं १ प, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ २ का १, वे ०, क ४, ३, २, १ लो । ज्ञा ५ म श्रु अ म के, सं ४ सा छे सू य, द ४ च अ अ के, ले ६, भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ, २, उ ९ ।
भा १
द्वितीयभागानिवृत्तितः सिद्धपर्यंतं मूलौघो भवति, वेदमार्गणा गता ।

कषायानुवादे ओघ: तद्यथा–क्रोधिना—गु ९, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६ ७ ५ ६, ४, ४ ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १५, वे ३, क १ क्रो, ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म, सं ५ अ दे सा छे य, द ३ च अ अ, ले ६ भ २, स ६, सं २, आ २, उ १० । तत्पर्याप्तानां—गु ९,
६
जी ७ प, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ४ इं ५, का ६, यो ११, म ४, व ४, औ वै आ, वे ३, क १ क्रो, ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म, सं ५ अ दे सा छे प, द ३ च अ अ, ले ६, भ २, स ६,
६
सं २, आ १, उ १० । तदपर्याप्तानां—गु ४ मि सा अ प्र । जी ७ अ, प ६, ५, ४ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३ अ, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे ३, क १ क्रो, ज्ञा ५ कु कु

अ। अ। ले २क शु। भ २। सं ५। मि। सा। उ। वे। क्षा। सं २। आ २। उ ८॥
भा ६

क्रोधकषायिमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३। आहारद्वय-रहित। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६ / ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ २। उ ५॥

क्रोधकषायिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकंगे। गु १। मि। जी ७। प। प ६। ५। ४। प। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १०। म ४। वा ४। औ। वै। वे ३। क १। क्रो। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६ / ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ १। उ ५॥

क्रोधकषायिमिथ्यादृष्ट्यपर्य्याप्तकंगे। गु १। मि। जी ७। अ। प ६। ५। ४। अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। अ। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३। औ मि।। वै मि। का। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले २क शु / भा ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ २। उ ४॥

क्रोधकषायिसासादनंगे। गु १। सा। जी २। प अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १। त्र। यो १३। हारद्वयवर्ज्जित। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६ / ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ २। उ ५॥

म श्रु अ, सं ३ अ सा छे, द ३ च अ अ, ले २ क शु / भा ६, भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, सं २ आ २, उ ८। तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३, सं ४, ग ४, इं ५, कां ६। यो १३ आहारद्वयं नहि, वे ३, क १ क्रो, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ। ले ६ / भा ६। भ २। स १ मि। सं २। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु १ मि। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २ च अ। ले ६ / ६। भ २। स १ मि। सं २। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ मि। जी ७ अ। प ६ ५ ४ अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३ अ। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३ औमि वैमि का। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले २ क शु / भा ६। भ २। स १ मि। सं २। आ २। उ ४। तत्सासादनानां—गु १ सा। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १३ आहारद्वयवर्ज्यं। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६ / ६। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५।

क्रोधकषायिसासादनपर्य्याप्तकंग । गु १ । सासा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ । वै । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६/६ भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

क्रोधकषायिसासादनापर्य्याप्तकंगे । गु १ । सासा । जी १ । अ । प ६ । अ प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ३ । नरकगतिवर्ज्जित । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २/भा ६ । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥

क्रोधकषायिसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मिश्र । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १० । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ । मिश्र सं १ । द २ । ले ६/६ । भ १ । सं १ । मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

क्रोधकषायिअसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । असं । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे ३ । क १ । क्रो । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६/६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

क्रोधकषायि असंयतसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकंगे । गु १ । असं । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६/६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

तत्पर्याप्तानां—गु १ सा । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६/६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ सा । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ३ नरकगतिर्नहि । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २/६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १ मिश्रं, जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ त्र । यो १० औ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ मिश्राणि । सं १ अ । द २ । ले ६/६ । भ १ । स १ मिश्रं । सं १ । आ १ । उ ५ । असयताना—गु १ अ । जो २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ आहारद्वयं नहि । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६/६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ।

तत्पर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६/६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । स १ । आ १ ।

क्रोधकषायिअपर्य्याप्तासंयतंगे । गु १ । असं । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ३ । औमि । वैमि । का । वे २ । पुं । नपुं । क १ क्रो । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । । ले २ क शु । भ १ । सं ३ । उ ।
भा ६
वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

क्रोधकषायिदेशव्रतिकंगे । गु १ । दे । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । दे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ६

क्रोधकषायिप्रमत्तसंयतंगे । गु १ । प्र । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ १ । आ २ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ ।
भा ३
आ १ । उ ७ ॥

क्रोधकषायाऽप्रमत्तंगे । गु १ अप्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । भ । मै । प । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा ३

क्रोधकषायिअपूर्व्वकरणंगे । गु १ अपू । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ३ । भ । मै । प । ग १ । म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं २ । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

उ ६ । तदपर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे २ पु न । क १ क्रो । ज्ञा ३ म श्रु अ । स १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु ।
भा ६
भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । देशव्रतानां—गु १ दे । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ ति म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ दे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तानां—गु १ प्र । जी २ प अ । प ६ ६ ।
३
प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ म ४ । व ४ । औ १ । आ २ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ।
३
अप्रमत्तानां—गु १ अप्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ भ मै प । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ ।
३
उ ७ । अपूर्वकरणानां—गु १ अपू । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ३ भ मै प । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं २ सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स २ उ
१

क्रोधकषायिप्रथमानिवृत्तिकरणंगे। गु १। अनि। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं २। मै। प। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं २। सा। छे। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥
भा १

क्रोधकषायिद्वितीयभागानिवृत्तिकरणंगे। गु १। जो १। प ६। प्रा १०। सं १। प। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। वे ०। क १ क्रो। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं २। सा। छे। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥
भा १

ई प्रकारदिंदमे मानमायाकषायंगळ्गे मिथ्यादृष्टिप्रभृति अनिवृत्तिकरणपर्यंतं वक्तव्यमक्कुं। विशेषमावुदें दोडे एल्लि एल्लि क्रोधकषायमल्लल्लि मानमायाकषायंगळु वक्तव्यंगळप्पुवु। लोभकषायक्कं क्रोधकषायभंगमेयक्कुं। विशेषमावुदें दोडे ओघाळापदोळु दश गुणस्थानंगळें दु वक्तव्यमक्कुमारु संयमगळुं लोभकषायमों दे वक्तव्यमक्कु॥

अकषायरुगळ्गे। गु ४। उ। क्षी। स। अ। जो २। प ६। ६। प्रा १०। ४। २। १। सं। ०। ग १। म। इं १। पं। का १। त्र। यो ११। म ४। वा ४। औ २। का १। वे ०। क ०। ज्ञा ५। म। श्रु। अ। म। के। सं १। यथा। द ४। च। अ। अ। के। ले ६। भ १।
भा १
सं २। उ। क्षा। सं १। आ २। उ ९॥

अकषायसामान्यं पेळल्पट्टुदु। विशेषदिंदमुपशांतकषायप्रभृति सिद्धपरमेष्ठिगळपर्य्यंतं सामान्यभंगगळप्पुवु। इंतु कषायमार्ग्गणे समाप्तमावुवु॥

ज्ञानानुवाददोळु ओघालापंगळु मूलौघभंगगळप्पुवु। कुमतिकुश्रुतज्ञानिगळ्गे। गु २। मि। सा। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४।

क्षा। सं १। आ १। उ ७। अनिवृत्तिकरणाना प्रथमभागे—गु १ अनि। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं २ मै प। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं २ सा छे। द ३ च अ अ। ले ६, भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। द्वितीयभागे—गु १। जी १।
१
प ६। प्रा १०। सं १ प। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ०। क १ क्रो। ज्ञा ४ म श्रु अ प। स २ सा छे। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स २ उ क्षा। सं १। उ ७। एव मानमाययोरपि स्वस्वानि-
१
वृत्तिभागपर्यंतं वक्तव्यं किंतु क्रोधस्थाने तत्तन्नामकषायः, तथा लोभस्यापि, किंतु गुणस्थानानि दश।

अकषायिणां—गु ४ उ क्षी सा अ, जी २, प ६ ६, प्रा १० ४ २ १, सं ०, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ २ का १, वे ०, क ०, ज्ञा ५, म श्रु अ म के, सं १ य, द ४ च अ अ के, ले ६। भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ २, उ ९। इदं सायान्यकथनं विशेषेण उपशातकषायात्सिद्धपर्यंतं
१
सामान्यभंगो भवति। कषायमार्गणा गता ज्ञानानुवादे ओघालापा भवंति।

कुमतिकुश्रुतानां—गु २ मि सा, जी १४, प ६ ६ ५ ५ ४ ४, प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४

३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले ६ । ६
भ २ । सं २ । मि । सा । सं २ । आ २ । उ ४ ॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिपर्य्याप्तकग्गे । गु २ । मि । सा । जी ७ । प । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । ६ भ २ । सं २ । मि । सा । सं २ । आ १ । उ ४ ॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिअपर्य्याप्तकग्गे । गु २ । मि । सा । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औमि । वैमि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भा ६ भ २ । सं २ । मि । सा । सं २ । आ २ । उ ४ ॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले ६ । ६ भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिपर्य्याप्तकग्गे । गु २ । मि । सा । जी ७ । प । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । ६ भ २ । सं २ । मि । सा । सं २ । आ १ । उ ४ ॥

३, सं ४ । ग ४, इं ५, का ६, यो १३, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले ६, ६ भ २, स २ मि सा, सं २, आ २, उ ४ । तत्पर्याप्ताना—गु २ मि सा, जी ७ प, प ६ ५ ४, प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४, स ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा २, कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, ६ भ २, स २ मि सा, सं २, आ १, उ ४ । तदपर्याप्ताना—गु २ मि सा, जी ७ अ, प ६ ५ ४, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु । भा ६ म २, स २ मि सा, सं २, आ २, उ ४ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी १४, प ६ ६ ५ ५ ४ ४, प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३ आहारद्वयवर्ज्यं, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, ६ भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७ प, प ६ ५ ४ प, प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १०, म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, ६ म २ । स १ मि, सं २, आ १,

कुमतिकुश्रुतज्ञानिअपर्य्याप्तकग्गें। गु २। मि। सा। जी ७। अ। प ६। ५। ४। अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले २ क शु/भा ६। भ २। सं २। मि। सा। सं २। आ २। उ ४॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिमिथ्यादृष्टिगळ्गें। गु १। मि। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३। आहारकद्वयरहित। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६/६। भ २। सं १। मि। सं २। आ २। उ ४॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्गे। गु १। मि। जी ७। प। प ६। ५। ४। प। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १०। म ४। वा ४। औ का १। वै का १। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६/६। भ २। सं १ मि। सं २। आ १। उ ४॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिमिथ्यादृष्टिअपर्य्याप्तकर्गे। गु १। मि। जी ७। अ। प ६। ५। ४। अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। च। अ। ले २ क शु/भा ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ २। उ ४॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिसासादनंगे। गु १। सासा। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १३। आहारद्वयवर्जितं। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १ अ। द २। च। अ। ले ६/६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ २ उ ४॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिसासादनपर्य्याप्तकर्गे गु १। सासा। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले ६/६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ४॥

उ ४। तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७ अ, प ६ ५ ४ अ, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु/६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४। तत्सासादनानां—गु १ सा, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १३ आहारद्वयवर्ज्यं। वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, द २ च अ, ले ६/६, भ १। स १ सा, सं १, आ २, उ ४। तत्पर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २, ले ६/६, भ १, स १ सा,

कुमतिकुश्रुतज्ञानिसासादनापर्य्याप्तकर्गे । गु १ । सास । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । सासा । सं १ ।
भा ६
आ २ । उ ४ ॥

विभंगज्ञानिगळ्गे । गु २ । मि । सा । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा १ । विभंग । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं २ । मि । सा । सं १ । आ १ । उ ३ ॥
६

विभंगज्ञानिमिथ्यादृष्टिगळ्ग । गु १ । मि । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । वे ३ । क ४ । ज्ञा १ । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ ।
६
सं १ । मि । सं १ । आ १ । उ ३ ॥

विभंगज्ञानिसासादनंगे । गु १ । सासा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । व ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा १ । विभंग । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ १ । उ ३ ॥
६

मतिश्रुतज्ञानिगळ्गे । गु ९ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । म । श्रु । सं ७ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ ।
६
सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥

स १, आ १, उ ४, तदपर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २, ले २ क शु । भ १, स १ सा,
भा ६
सं १, आ २, उ ४ । विभंगज्ञानिनां—गु २ मि सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा १ विभंगः । सं १ अ, द २, ले ६ । भ २,
६
स २ मि सा, स १, आ १, उ ३ वि च अ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १०, वे ३, क ४, ज्ञा १, स १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ
६
१, उ ३ । तत्सासादनानां—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १०, म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा १ विभंगः । सं १ अ, द २, ले ६ । भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ३ ।
६
मतिश्रुतानां—गु ९, जी २ प अ । प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ४ । इं १ । का १ त्र, यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ म श्रु । सं ७ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १, आ २ । उ ५ ।
६

मतिश्रुतज्ञानिपर्य्याप्तकग्गें । गु ९ जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ त्र । यो ११ । म ४ । व ४ । औ का १ । वै का १ । आ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । म । श्रु । सं ७ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ ।
६
आ १ । उ ५ ॥

मतिश्रुतज्ञानिअपर्य्याप्तकग्गं । गु २ । असंयत । प्रमत्त । जी १ । अ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो ४ । औ मि । वै मि । आ मि । कार्म्मण । वे २ । पुं । नपुं । क ४ । ज्ञा २ । म । श्रु । सं ३ । अ । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु । भ १ ।
भा ६
सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥

मतिश्रुतज्ञानिअसंयतग्गें । गु १ । असं । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । म । श्रु । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥
६

मतिश्रुतज्ञानिपर्य्याप्तासंयतसम्यग्वृष्टिगळ्गें । गु १ । अ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । म । श्रु । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा ।
६
सं १ । आ १ । उ ५ ॥

मतिश्रुतज्ञानिअपर्य्याप्तासंयतग्गें । गु १ । अ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे २ । पुं । नपुं । क ४ । ज्ञा २ । म । श्रु । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ ।
भा ६
आ २ उ ५ ॥

तत्पर्याप्तानां—गु ९ । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ११ म ४ व ४ औ वै आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ म श्रु । स ७ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ ।
६
आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु २ असंयत प्रमत्तः । जी १ अ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग ४, इं १ पं । का १ त्र । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे २ पुं न । क ४ । ज्ञा २ म श्रु । स ३ अ सा छे । द ३ च अ अ । ले २ क शु । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ५ । तदसंयतानां—गु १ अ । जी २
भा ६
प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ आहारद्वयं नहि । वे ३ । क ४, ज्ञा २ म श्रु, सं १ अ । द ३ च अ अ, ले ६, भ १ स ३ उ वे क्षा, सं १, अ २, उ ५ ।
६
तत्पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १०, म ४, व ४, औ १, वै १, वे ३, क ४, ज्ञा २, म श्रु, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १,
६
आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ अ । प ६ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे २ पुं न । क ४ । ज्ञा २ म श्रु । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु ।
भा ६

देशव्रतिप्रभृति क्षीणकषायपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं। विशेषमावुदेंदोडे आभिनिबोधश्रुतज्ञानंगळेंदु वक्तव्यमक्कुं। अवधिज्ञानक्कमी प्रकारमेयक्कं। विशेषमावुदेंदोडे अवधिज्ञानमोंदेयेंदु वक्तव्यमक्कुं। मतिश्रुतज्ञानंगळेरडुं निरुद्धंगळा गुत्तिरलु मतिज्ञानश्रुतज्ञानद्वयमुं मतिश्रुतावधिज्ञानत्रयमुं मतिश्रुतमनःपर्य्ययत्रयमुं मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानचतुष्टयमुमप्पुवु।

मनःपर्य्ययज्ञानिगळ्गे। गु ७। प्र अ। अ। अ। सू। उ। क्षी। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ म। इं १। पं। का १। त्र। यो ९। वे १। पुं। क ४। ज्ञा १। म। सं ४। सा। छ। सू। यथा। मनःपर्य्ययज्ञानिगळ्गे परिहारविशुद्धिसंयममिल्ल। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ४। म। च। अ। अ॥ इंतीक्षीण-
भा ३
कषायपर्य्यंतं नडसल्पडुवुदु॥

केवलज्ञानिगळ्गे। गु २। सयोग। अयोग। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा ४। २। १। सं। ०। ग १। म। इं १। पं। का १। त्र। यो ७। म २। व २। औ २। का १। वे ०। क ०। ज्ञा १। के। सं १। यथा। द १ के। ले ६। भ १। सं १ क्षा। सं। ०। आ २। उ २॥
भा १

सयोगाऽयोगिसिद्धपरमेष्ठिगळ्गे मूलौघमे वक्तव्यमक्कुं। इंतु ज्ञानमार्गणे समाप्तमादुदु॥

संयमानुवाददोळु। गु ९। प्र। अ। अ। अ। सू। उ। क्षी। स। अ। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। ४। २। १। सं ४। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १३। वै २। द्वयरहितं। वे ३। क ४। ज्ञा ५। म। श्रु। अ। म। के। सं ५। सा। छे। प। सू। यथा। द ४। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ २। उ ९॥
भा ३

प्रमत्तसंयतंगे। गु १। प्र। जी। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ११। म ४। वा ४। औ का १। आ २। वे ३। क ४। ज्ञा ४।

भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ५। देशव्रतात् क्षीणकषायपर्यंतं मूलौघभंगो भवति किंतु ज्ञानस्थाने मतिश्रुते वक्तव्ये। अवधेरपि एवं, ज्ञानस्थाने अवधिर्वक्तव्यः। वा मतिश्रुते निरुद्धे। मतिश्रुतावधित्रयं वा मतिश्रुतमनःपर्ययत्रयं वा मतिश्रुतावधिमनःपर्ययचतुष्टयं वक्तव्यं।

मनःपर्ययज्ञानिनां—गु ७ प्र अ अ अ सु उ क्षी। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे १ पुं। क ४। ज्ञा १ म, स ४ सा छे सू य परिहारविशुद्धिर्नहि, द ३ च अ अ, ले ६। भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १। आ १। उ ४। सयोगायोगसिद्धेषु मूलौघः, ज्ञानमार्गणा गता,
३

संयमानुवादे—गु ९ प्र अ अ अ मू उ क्षी स अ। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०। ७। ४। २। १। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो १३ वैक्रियिकद्वयं नहि। वे ३। क ४। ज्ञा ५ म श्रु अ म के। सं ५ सा छे प सू य। द ४। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ९। प्रमत्ताना—गु
३
१ प्र। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १ म। इं १ पं, का १ त्र। यो ११ म ४ व ४ औ

म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ १ । सं ३ । उ । वे ।
भा ३
क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

अप्रमत्तसंयतंगे । गु १ । अ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ३ । आहारसंज्ञारहित । ग १ म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञान ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा ३

अपूर्व्वकरणप्रभृति अयोगिकेवलिपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं । सामायिकसंयतंगे । गु ४ । प्र । अ । अ । अ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का १ । आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं १ । सामायिक । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा ३

अनिवृत्तिपर्य्यंतमूलौघभंगमक्कुं । छेदोपस्थापनसंयमक्कुमी प्रकारमे वक्तव्यमक्कुं ॥

परिहारविशुद्धिसंयमिगळ्गे गु २ । प्र । अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । परिहारविशुद्धि । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं २ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ३

प्रमत्ताप्रमत्तपरिहारविशुद्धिसंयतरुगळ्गे पेळल्पडुवल्लि ओघभंगमेयक्कुं । सूक्ष्मसांपराय-संयमक्के मूलौघभंगमेयक्कुं । यथाख्यातसंयमिगळ्गे । गु ४ । उ । क्षी । स । अ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ४ । २ । १ । सं । ० । ग १ । म । इंपं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ ।

---

१ आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३
६
उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अप्रमत्तानां—गु १ अप्र । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ३ । आहार-संज्ञा नहि । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अपूर्वकरणादयोगिपर्यंतं मूलौघभंगो भवति ।
३

सामायिकसंयतानां—गु ४ प्र अ अ अ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ व ४ औ १ आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं १ सामयिकं । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अनिवृत्तिपर्यंतं
३
मूलौघभंगो भवति । छेदोपस्थापनसंयतानामप्येवं ।

परिहारविशुद्धिसंयमिनां—गु २ प्र अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे १ पु । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ परि । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ ।
३
स २ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । तत्प्रमत्ताप्रमत्तानां सूक्ष्मसांपरायसंयतानां च मूलौघभंगः ।

यथाख्यातसंयमिनां—गु ४ उ क्षी स अ । जी २ प । अ । प ६ ६ । प्रा १० । ४ । २ । १ । सं ० ।

औ २। का १। वे ०। क ०। ज्ञा ५। म। श्रु। अ। म। के। सं १। यथा। द ४। ले ६।
भा १
भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ २। उ ९॥

उपशांतकषायप्रभृति अयोगिकेवलिपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं। देशसंयमक्के ओघभंगमेयक्कुं।

असंयमरुगळ्गे। गु ४। मि। सा। मि। अ। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३। आहारकद्वयरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। वि। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ २। सं ६। सं २। आ २। उ ९॥
६

असंयमिपर्य्याप्तकर्गे। गु ४। मि। सा। मि। अ। जी ७। प। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। वि। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ २। सं ६।
६
मि। सा। मि। उ। वे। क्षा। सं २। आ १। उ ९॥

असंयमि अपर्य्याप्तकंगे। गु ३। मि। सा। अ। जी ७। अ। प ६। ५। ४। अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा ५। कु। कु। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले २ क शु। भ २। सं ५।
भा ६
मि। सा। उ। वे। क्षा। सं २। आ २। उ ८॥

मिथ्यादृष्टिप्रभृति असंयतसम्यग्दृष्टिपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं। इंतु संयममार्ग्गणे समाप्तमादुवु॥

ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ११ म ४ व ४ औ २ का १। वे ०। क ०। सा ५ म श्रु अ म के। सं १ य। द ४। ले ६। भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ २। उ ९। उपशांतकषायादयोगपर्यंतं देश-
१
संयतानां च मूलौघभंगः।

असंयतानां—गु ४ मि सा मि अ। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। इं ५। का ६। यो १३ आहारद्वयं नहि। वे ३। क ४। ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले ६। भ २। स ६। सं २। आ २। उ ९। तत्पर्याप्तानां—
६
गु ४ मि सा मि अ। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे ३। क ४। ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले ६। भ २। स ६ मि सा मि उ वे क्षा। सं २। आ १। उ ९। तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ।
६
जी ७ अ। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३ औमि वैमि का। वे ३। क ४। ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ। सं १ अ, द ३ च अ अ, ले २ क शु। भ २,
भा ६
स ५ मि सा उ वे क्षा, सं २, आ २, उ ८। मिथ्यादृष्टितोऽसंयतांतं मूलौघभंगो भवति, संयममार्गणा गता। दर्शनानुवादे ओघालापो भवति—

वर्शनानुवावबोळु ओघाळापं मूलौघभंगमक्कुं । चक्षुदर्शनिगळ्गे । गु १२ । जी ६ । सं अ च
२ २ २
प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ सं ४ । ग ४ । इं २ । पं । च । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । केवलज्ञानरहित । सं ७ । अ । दे । सा । छे । प । सू । यथा । दर्श १ । च ले ६ भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ ८ ॥
६

चक्षुदर्शनिपर्य्याप्तकंगे । गु १२ । जी ३ । सं । अ । च । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । ८ । सं ४ ।
१ १ १
ग ४ । इं २ पं च । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । आ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । म । सं ७ । अ । दे । सा । छे । प । सू । यथा । द १ । च । ले ६ । भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं २ । आ १ । उ ८ ॥
६

चक्षुर्द्दर्शनिअपर्य्याप्तकंगे । । गु ४ । मि । सा । अ । प्र । जी ३ । सं अ च प ६ । ५ । अ ।
१ १ १
प्रा ७ । ७ । ६ । अ । सं ४ । ग ४ । इं २ । पं । का १ त्र । यो ४ । औ मि । वै मि । आ मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं ३ । अ । सा । छे । द १ च । ले २ क शु । भ २ ।
भा ६
सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं २ । आ २ । उ ६ ॥

चक्षुर्द्दर्शनिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ मि । जी ६ । सं अ च प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० ।
२ २ २
७ । ९ । ७ । ८ । ६ । सं ४ । ग ४ । इं २ । पं । च । का १ त्र । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ अ । द १ । च । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं २ ।
६
आ २ । उ ४ ॥

चक्षुर्दर्शनिना—गु १२, जी ६, स अ च । प ६, ६, ५, ५, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, सं ४,
२ २ २
ग ४ । इं २ च, पं, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ७, कु कु वि म श्रु अ म, सं ७ अ, दे, सा, छे, प, सू, य । द १ चक्षुः, ले ६ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा, सं २, आ २, सं ८ । तत्पर्याप्ताना—
६
गु १२, जी ३ सं अ च, प ६, ५, प्रा १०, ९, ८, सं ४, ग ४ । इं २ पं च, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ १ वै १, आ १, वे ३, क ४, ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म, स ७ अ दे सा छे प सू य, द १ च । ले ६ ।
६
भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा, सं २ । आ १ । उ ८ । तदपर्याप्ताना—गु ४ मि, सा, अ, प्र । जी ३ सं अ च । प ६, ५, अ, पा ७ ७, ६ अ, सं ४, ग ४, इं २ पं च । का १ त्र, यो ४ औमि वैमि आमि का,
१ १ १
वे ३, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं ३ अ, सा छे द १ च । ले २ क शु । भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा,
भा ६
सं २ । आ २ । उ ६ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि । जी ६ सं अ च । प ६, ६, ५, ५, प्रा १०, ७, ९,
२ २ २

चक्षुर्द्दर्शनिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । जी ३ । संपं । अ प । च प । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । ८ । सं ४ । ग ४ । इं २ । पं । च । का १ त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द १ । च ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं २ ।
६
आ १ । उ ४ ॥

चक्षुर्द्दर्शनिअपर्य्याप्तकमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ मि । जी ३ । सं । अ । अ । अ । च । अ । प प ६ । ५ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । सं ४ । ग ४ । इं २ । पं । च । का १ त्र । यो ३ औमि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द १ च । ले २ क शु भ २ । सं १ मि । सं २ ।
भा ६
आ २ । उ ३ ॥

चक्षुर्द्दर्शनिसासादनप्रभृति क्षीणकषायपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं । विशेषमावुदेंदोडे चक्षु-र्द्दर्शनिगें दितु वक्तव्यमक्कुं ।

अचक्षुदर्शनिगळ्गे । गु १२ । जी १४ । । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । केवलरहितं । सं ७ । अ । दे । सा । छे । प । सू । यथा । द १ । अ । ले ६ । भ २ । सं ६ ।
६
सं २ । आ २ । उ ८ ॥

अचक्षुर्द्दर्शनिपर्य्याप्तकर्गे । गु १२ । जी ७ । प । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । आ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । केवलज्ञानरहित । सं ७ । द १ अचक्षु । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं २ । आ १ । उ ८ ॥
६

७, ८, ६, सं ४, ग ४, इं २ पं च, का १ त्र, यो १३ आहारकद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ३, कु कु वि, स १ अ, द १ च । ले ६ । भ २ । स १ मि, सं २, आ २, उ ४ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि, जी ३ सप,
६
अप, च प, प ६, ५, प्रा १०, ९, ८, सं ४, ग ४, इं २ प च, का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द १ च । ले ६ । भ २, स १ मि, सं २ । आ १ । उ ४ । तदपर्याप्तानां–
६
गु १ मि, जी ३ संअ अअ चअ, प ६ ५, प्रा ७, ७, ६, सं ४, ग ४, इ २ प च, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द १ च, ले २ क शु । भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ३ ।
भा ६
तत्सासादनात् क्षीणकषायांतं मूलौघभंगः किंतु दर्शनस्थाने एकं चक्षुर्दर्शनमेव वक्तव्यं ।

अचक्षुर्दर्शनिनां——गु १२, जी १४, प ६ ६ ५ ५ ४ ४, प्रा १० ७, ९ ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ७ केवलं नहि, सं ७ अ दे सा छे प सू य, द १ अ, ले ६, भ २, स ६, सं २, आ २, उ ८। तत्पर्याप्तानां—गु १२, जी ७ प, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८,
६
७, ६, ४, स ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १, वे ३, क ४, ज्ञा ७ केवलं

अचक्षुर्द्दर्शनिअपर्य्याप्तकर्गे । गु ४ मि । सासा । अ । प्र । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । ३ अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ४ । औ मि वै मि । आ मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं ३ । अ । सा । छे । द १ । अच । ले २ क शु । भ २ । सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं २ । आ २ । उ ६ ॥
भा ६

अचक्षुर्द्दर्शनिमिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ । मि । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द १ । अच ले ६ । भ २ ।
६
सं १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥

अचक्षुर्द्दर्शनिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी ७ । प । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । सं १ मि ।
६
सं २ । आ १ । उ ४ ॥

अचक्षुर्द्दर्शनिमिथ्यादृष्ट्यपर्य्याप्तकर्गे । गु १ मि । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । अ प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द १ । अच । ले २ क शु । भ २ । सं १ । मि । सं २ ।
भा ६
आ २ । उ ३ ॥

अचक्षुर्द्दर्शनिसासादनप्रभृतिक्षीणकषायपर्य्यंतं अचक्षुर्द्दनिगळगे बु वक्तव्यमक्कुं ।

नहि, सं ७, द १ अ, ले ६ । भ २, स ६, सं २, आ १, उ ८ । तदपर्याप्तानां—गु ४ मि सा अ प, जी
६
७ अ, प ६, ५, ४ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ५, कु कु म श्रु अ, सं ३ अ, सा, छे । द १ अ, ले २ क शु । भ २, स ५ मि सा उ वे
भा ६
क्षा, सं २, आ २, उ ६ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, सं ४, ग ४ । इं ५, का ६, यो १३ आहारद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ३, कु कु वि, सं १ अ, द १ अ, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि ।
६
जी ७ प, प ६ । ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३ । क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द १ अ, ले ६ । भ २, स १ मि, सं २, आ १, उ ४ ।
६
तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७ अ, प ६, ५, ४ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द १ अ, ले २ क शु । भ २, स १ मि, सं २,
भा ६
आ २ उ ३ । तत्सासादनात् क्षीणकषायांतं यथायोग्यं योज्यं ।

अवधिदर्शनिगळ्गे। गु ९। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं ७। द १। अवधि-दर्शन। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे क्षा। सं १। आ २। उ ५॥
६

अवधिदर्शनिपर्य्याप्तकर्गे।। गु ९। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो ११। म ४। व ४। औ का। वै का। आ का। वे ३। क ४। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं ७। द १। अवधि। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ५॥
६

अवधिदर्शनिअपर्य्याप्तकर्गे। गु २। अ। प्र। जी १। प ६। अ प्रा ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो ४। औ मि। वै मि। आ मि। का। वे २। पुं। षं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं ३। अ। सा। छे। द १ अवधि। ले २। भ १। सं ३। सं १।
भा ६
आ २। उ ४॥

"असंयतप्रभृतिक्षीणकषायपर्य्यंतं अवधिज्ञानक्के पेळ्वंते वक्तव्यमक्कुं। केवलदर्शनिगे केवलदर्शनिगे केवलज्ञानिगे पेळ्वंते वक्तव्यमक्कुं। इंतु दर्शनमार्ग्गणे समाप्तमादुदु॥

लेश्यानुवाददोळु गुणस्थानालापं मूलौघवंतक्कुं। विशेषमावुदेंदोडे अयोगिगुणस्थानमिल्ल। कृष्णलेश्याजीवंगळ्गे। गु ४। मि। सा। मि। अ। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। वि। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ २।
भा १ कृ
सं ६। मि। सा। मि। उ। वे। क्षा। सं २। आ २। उ ९॥

कृष्णलेश्ययपर्य्याप्तकर्ग्गे। गु ४। मि। सा। मि। अ। जी ७। प। प ६। ५। ४।

अवधिदर्शनिनां—गु ९, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४। ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ७, द १ अ, ले ६। भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २,
६
उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु ९, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४, व ४, औ १, वै १, आ १, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ७, द १ अ, ले ६। भ १। स ३, सं १, आ १,
६
उ ५। तदपर्याप्तानां—गु २ अ प्र, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७, सं ४, ग ४, इं ५, का १ त्र, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे २ पु न, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स ३ अ सा छे, द १ अ, ले २, भ २, स ३, सं १।
६
आ २, उ ४। असंयतात् क्षीणकषायांतं अवधिज्ञानिवत्। केवलदर्शनिना केवलज्ञानिवत्। दर्शनमार्गणा गता। लेश्यानुवादे गुणस्थानालापो मूलौघवत्। अयोगिगुणस्थानं नास्ति।

कृष्णलेश्याना—गु ४ मि सा मि अ। जी १४। प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६। भ २। स ६ मि सा मि उ वे क्षा, सं २, आ २, उ ९। तत्पर्याप्तानां—
भा १ कृ

प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ३ । म । ति । न । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं २ ।
भा १ कृ
आ १ । उ ९ ॥

कृष्णलेश्याऽपर्य्याप्तकग्गें । गु ३ । मि । सा । अ । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ २ । सं ३ । मि ।
भा १ कृ
सा । वे । पंचमादिपृथ्विगळिदं बप्पं असंयतनोळु वेदकं संभविसुगुं । सं २ । आ २ । उ ८ ॥

कृष्णलेश्यामिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ ।
भा १ कृ
आ २ । उ ५ ॥

कृष्णलेश्यामिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । मि । जी ७ । प । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ ।
भा १ कृ
मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥

कृष्णलेश्यामिथ्यादृष्टयपर्य्याप्तकंगे । गु १ । मि । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । अ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ ।

गु ४ मि सा मि अ, जी ७ प, प ६, ५, ४, प, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ३ म ति न, इं ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १ अ, द ३, च अ अ, ले ६,
भा १ कृ
भ २, स ६ मि सा मि उ वे क्षा, स २, आ १, उ ९ । तदपर्याप्ताना—गु ३ मि सा अ, जी ७ अ, प ६, ५, ४ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, स १ अ, द ३, ले २ क शु । भ २, सं ३, मि सा वे, पंचमादिपृथ्व्यागतासंयतेषु वेदक-
भा १ कृ
सम्यक्त्वसंभवात्, सं २, आ २, उ ८ । तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३ । सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३ । वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७ प, प ६, ५,
कृ १
४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ३ न ति म, इं ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६ । भ २, स १ मि, सं २, आ १, उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ मि, जी
भा १ कृ
७ अ, प ६, ५, ४ अ । प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३ अ, सं ४, ग ४ । इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का,

ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥
भा १ कृ

कृष्णलेश्यासासादनंगे । गु १ । सासा । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥
भा १ कृ

कृष्णलेश्यासासादनपर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १ । सा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ न । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥
भा १ कृ

कृष्णलेश्यासासादनापर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १ । सा । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा १ कृ

कृष्णलेश्यामिश्रंग । गु १ मिश्र । जी १ प । प ६ । प । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । देवगतियोळु कृष्णलेश्ये पर्य्याप्तकंगे संभविसदु । अपर्य्याप्तकालदोळ्मिश्रमिल्ल । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । मिश्रज्ञानंगळु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ १ । सं १ । मिश्ररुचि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा १ कृ

कृष्णलेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टिगळगे । गु १ । अ सं । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । कृष्णलेश्याऽसंयतंगे । देवगति संभविसदु । इं १ पं । का १ त्र ।

वे ३, क ४, ज्ञा २, कु कु, स १ । सं १ अ, द २, ले २ क शु । भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४ ।
भा १ कृ

तत्सासादनानां—गु १ सा, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ सा, सं १, आ २,
भा १ कृ

उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ, द २, ले ६ । भ १, सा १ सा, सं १, आ १,
भा १

उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २, च अ ले २ क शु । भ १, स १ सा,
भा १ कृ

सं १, आ २, उ ४ । तन्मिश्राणा—गु १ मिश्र, जी १ पं, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म, देवगतौ पर्याप्ते कृष्णलेश्या अपर्याप्ते मिश्रगुणस्थानं च नहि । इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १, उ ५ । तदसंयतानां—
भा १ कृ

गु १ असं । जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ३ न ति म तेषां देवगतिर्नहि । इं १ पं, का १ त्र,

यो १२। म ४। वा ४। औ २। वै का १। कार्म्मण १। कृष्णलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रयदोळ्‌ पुट्टनप्पुदरिंदं वैक्रियिकमिश्रमिल्ल। अथवा घर्म्मेयं बिट्टु मिक्क नरकंगळोळं पुट्टनप्पुदरिंदमंतु वैक्रियिकमिश्रमिल्ल। घर्म्मेयोळ्‌पुट्टुवडं कपोतलेश्याजघन्यांशदिदमल्लदे कृष्णलेश्येयिदं पुट्टलु संभावनेयिल्लप्पुदरिंदमंतु वैक्रियिकमिश्रयोगं संभविसदु। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले ६ / भा १ कृ। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ २। उ ६॥

कृष्णलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकर्ग्गे। गु १। असं। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। न। ति। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै १। क ४। ज्ञा ३। म श्रु। अ। सं १। अ। द ३ च। अ। अ। ले ६ / भा १ कृ। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥

कृष्णलेश्यासंयतापर्य्याप्तकर्ग्गे। गु १। असं। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो २। औ मि। का १। वे १। पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ ०। द ३। च। अ। अ। ले २ क शु / भा १ कृ। भ १। सं १। वेदक। सं १। आ २। उ ६॥

नीललेश्येगे कृष्णलेश्येयोळ्‌पेळ्दंते पेळ्वुदु कोळ्गे। विशेषमावुदेंदोडे सर्व्वत्र नीललेश्येयेंदु वक्तव्यमक्कुं। कपोतलेश्याजीवंगळ्गे। गु ४। मि। सा। मि। अ। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३। म ४। व ४। औ २। वै २। का १। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। वि। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले ६ / भा १ कृ। भ २। सं ६। मि। सा। मि। उ। वे। क्षा। सं २। आ २। उ ९॥

यो १२ म ४ व ४ औ २ वै १ का १ तेषां सम्यग्दृष्टित्वात् भवनत्रयद्वितीयादिपृथ्वीष्वनुत्पत्तेः। घर्मोत्पन्नानां तु कपोतलेश्या जघन्यांशित्वाद्वैक्रियिक मिश्रयोगो नहि। वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६ / भा १ कृ। भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ६। तत्पर्याप्तानां—गु १ असं, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे १, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६ / भा १ कृ, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६। तदपर्याप्तानां—गु १ असं, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १ म, इं १ पं। का १ त्र, यो २ औमि का, वे १ पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले २ क शु / भा १ कृ। भ १, स १ वे, सं १, आ २, उ ६। नीललेश्यानां कृष्णलेश्यावद्वक्तव्यं।

कपोतलेश्याना—गु ४ मि सा मि अ, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६ / भा १ क। भ २, सं ६ मि सा मि उ वे क्षा, सं २, आ २, उ ९।

कपोतलेश्या पर्य्याप्तकग्गें । गु ४ । मि । सा । मि । अ । जी ७ । प । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । अशुभलेश्याऽपर्य्याप्तकंगे देवगति संभविसदु । भवनत्रयादिदेवर्कळनितुं पर्य्याप्तकालदोळ् शुभलेश्यरेयप्पुदरिदं । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं २ । आ १ । उ ९ ॥
भा १

कपोतलेश्या अपर्य्याप्तकग्गें । गु ३ । मि । सा । अ । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । । म । श्रु । अ । सं । अ । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु ।
भा १ क
भ २ । सं २ । मि । सा । वे । क्षा । सं २ । आ २ । उ ८ ॥

कपोतलेश्यामिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि ।
भा १ क
आ २ । उ ५ ॥

कपोतलेश्यामिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । मि । जी ७ । प । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ २ ।
भा १ क
सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥

तत्पर्याप्तानां–गु ४ मि सा मि अ, जी ७ प, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ३ न ति म, देवगतिर्नहि भवनत्रयदेवानामपि पर्याप्तिकाले शुभलेश्यत्वात्, इं ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६ । भ २, स ६ मि सा मि उ वे क्षा, सं २, आ १,
भा १ क्
उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ, जी ७ अ, प ६, ५, ४ अ । प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले २ क शु, भ २, स ४ मि सा वे क्षा, सं २, आ २, उ ८ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी १४, प
भा १ क
६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६ । भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५ ।
भा १ क
तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७ प, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ३ न ति म, इ ५, का १, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६ । भ २,
भा १ क

कपोतलेश्यामिथ्यादृष्ट्यपर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १ मि । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ । क शु । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥
भा १ क

कपोतलेश्यासासादनसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । सा सा । जी २ । प अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥
भा १ क

कपोतलेश्यासासादनपर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १ । सा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा १ क

कपोतलेश्यासासादनापर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १ । सा । जी १ । अ । प । ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं । पं । का १ त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । सासादनरुचि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा १ क

कपोतलेश्यासम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मिश्र । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । देवगतियोळशुभलेश्ये पर्य्याप्तकंगे संभविसदु । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । मिश्रज्ञानंगळु । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा १ क

स १ मि, सं २, आ १, उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७ अ, प ६, ५, ४, अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १, सं १ अ, द २, ले २ क शु । भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४ । तत्सासादनानां—गु १ सा, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १३, वे ३ क ४, ज्ञा ३, कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६ । भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म, इं १ प, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ मिश्रं, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म, देवगतिर्नहि, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३,

भा १ क

भा १ क

क १

भा १ क

भा १ क

कपोतलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । असं । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । औ २ । वै २ । म ४ । वा ४ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ ।
भा १ क
आ १ । उ ६ ॥

कपोतलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकंगे । गु १ । असं । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । न ति म । इं १ पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । वै का । औ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म श्रु अ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा १ क

कपोतलेश्यासंयतापर्य्याप्तकंगे । गु १ । असं । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ३ । औमि । वैमि । का । वे २ । पुं । नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । सं २ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा १ क

तेजोलेश्याजीवंगळ्गे । गु ७ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । अ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । म ति दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । केवलरहित । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ २ । उ १० ॥
भा १ ते

तेजोलेश्यापर्य्याप्तकंगें । गु ७ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै १ । आ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । केवलरहित । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ ।
भा १ ते
आ १ । उ १० ॥

क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि, सं १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १, उ ५ । असंयताना—
भा १ क
गु १ अ, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३, सं १, आ २,
भा १ क
उ ६ । तत्पर्याप्ताना—गु १ अ, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३, सं १,
भा १ क
अ १, उ ६ । तदपर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का, वे २, पु न, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द ३, ले २ क शु । भ १, स २
भा १ क
वे क्षा । सं १, आ २, उ ६ । तेजोलेश्यानां—गु ७, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ७ केवलं नहि, सं ५ अ दे सा छे प, द ३, ले ६, भ २,
भा १ ते
स ६, सं १, आ २, उ १० । तत्पर्याप्तानां—गु ७, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ ति म दे,

तेजोलेश्याऽपर्य्याप्तकर्ग्गे । गु ४ । मि । सा । अ । प्र । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग २ । म । दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ४ । औ मि । वैमि आमि । का । वे २ । स्त्री । पुं । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं ३ । अ । सा । छे । द ३ । ले ६ क शु ।
भा १ ते
भ २ । सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ॥

तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वै मि । कार्म्मण । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ २ । सं १ ।
भा १ ते
मि । सं १ । आ २ । उ ५ ॥

तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १ । मि । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु वि । सं १ । द २ । ले ६ । भ २ । सं मि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा १ ते

तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टि अपर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १ । मि । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो २ । वै मि । का । वे २ । स्त्री । पुं । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ द २ । ले २ क शु । भ २ । सं १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा १ ते

तेजोलेश्यासासादनसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । सासा । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति म दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै २ ।

इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ वै आ, वे ३, क ४, ज्ञा ७ केवलं नहि, सं ५ अ दे सा छे प, द ३ । ले ६ । भ २, स ६, सं १, आ १, उ १० । तदपर्याप्ताना—गु ४ । मि सा अ प्र, जी १ अ, प ६ अ,
भा १ ते
प्रा ७ अ, सं ४, ग २ म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे २ स्त्री पु, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, सं ३ अ सा छे, द ३, ले २ क शु, भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ८ ।
भा १ ते
तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी २ प, अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो १२ म ४ व ४ औ वै वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६ । भ २, स १ मि,
भा १ ते
सं १, आ २, उ ५ । तत्पर्याप्तानां— गु १ मि, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र. यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६ । भ २ । स १
भा १ ते
मि । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ दे । इं १ पं । का १ त्र । यो २ वैमि का । वे २ स्त्री पुं । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ । सासादनानां—गु १ सा । जी २ प अ । प ६ ६ ।
भा १ ते

का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १।
भा १ ते
सासादनरुचि। सं १। आ २। उ ५॥

तेजोलेश्यासासादनपर्य्याप्तकग्गॆ। गु १। सा। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। तिं म दे। इं १। पं। का १ त्र। यो १०। म ४। व ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १।
भा १ ते
उ ५॥

तेजोलेश्यासासादनापर्य्याप्तकग्गॆ। गु १। सासा। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। दे। इं १। पं। का १ त्र। यो २ वै मि। का। वे २ स्त्री पुं। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले २ क शु। भ १। सं १। सासा। सं १। आ २। उ ४॥
भा १ ते

तेजोलेश्यासम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गॆ। गु १। मिश्र। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो १०। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६। भ १।
भा १ ते
सं १। मिश्र। सं १। आ १। उ ५॥

तेजोलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गॆ। गु १। अ सं। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो १३। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६॥
भा १ ते

तेजोलेश्यापर्य्याप्तासंयतग्गॆ। गु १। असं। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३।

प्रा १० ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ ५।
भा १ ते
तत्पर्याप्तानां—गु १ सा। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा।
भा १ ते
सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ सा। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १ दे। इं १ पं। का १ त्र। यो २ वैमि का। वे २ स्त्री पुं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले २ क शु।
भा १ ते
भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ ४। सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ मिश्रं। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १० म ४ व ४ वै औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ मिश्रं। सं १। आ १। उ ५। असंयतानां—गु १ अ। जी २ प। अ। प ६ ६।
भा १ ते
प्रा १० ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १३। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले ६॥। भ १। स ३। सं १। आ २। उ ६। तत्पर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ प। प ६। प्रा
भा १ ते

ति। म। वे। इं १। का १। यो १०। म ४। वा ४॥ औ का। वैं का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६ । भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥
भा १ ते

तेजोलेश्याअपर्य्याप्तासंयतर्ग्गे। गु १। अ। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग २। म। दे। इं १। का १। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे १। पुं। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले २। भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६॥
भा १ ते

तेजोलेश्यादेशव्रतिगळ्गे। गु १। दे। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। ति। म। इं १। का १। यो ९। म ४। वा ४। औ का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। दे। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥
भा १ ते

तेजोलेश्या-प्रमत्तर्ग्गे। गु १ प्र। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। म। इं १। का १। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३। सा। छे। प। द ३। ले ६। भ १।
भा १ ते
सं ३। सं १। आ १। उ ७॥

तेजोलेश्याऽप्रमत्तर्ग्गे। गु १। अ प्र। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १। म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं ३। सा। छे। प। द ३। ले ६ । भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ७॥
भा १ ते

१०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १० म ४ व ४ औ वैं। वे ३। क ४। ज्ञा ३। स १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६।
भा १ ते

तदपर्याप्ताना–गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग २ म दे। इं १। का १। यो ३ औमि वैमि का। वे १ पु। क ४। ज्ञा ३। स १ अ। द ३। ले २। भ १। स ३। सं १।
भा १ ते
आ २। उ ६। देशव्रतिनां–गु १ दे। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ ति म। इं १। का १। यो ९ म ४ व ४ औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ दे। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १।
भा १ ते
आ १। उ ६। प्रमत्तानां—गु १ प्र। जी २ प अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १ म। इं १। का १। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १। आ १।
भा १ ते
उ ७। अप्रमत्तानां—गु १ अ प्र। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १।
भा १ ते

पद्मलेश्याजीवंगळ्गे । गु ७ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ २ । उ १० ॥
भा १ पद्म

पद्मलेश्यापर्य्याप्तकर्गे । गु ७ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । आ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ १ । उ १० ॥
भा १ पद्म

पद्मलेश्याऽपर्य्याप्तकर्गे । गु ४ । मि । सा । अ । प्र । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग २ । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो ४ । औ मि । वै मि । का । आ मि । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं ३ । अ । सा । छे । द ३ । ले २ क शु ।
भा १ पद्म
भ २ । सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ॥

पद्मलेश्यामिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ ।
भा १ प
आ २ । उ ५ ॥

पद्मलेश्यामिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तंगे गु १ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा १ प

आ १ । उ ७ । पद्मलेश्यानां—गु ७ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । स ५ अ दे सा छे प । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ ।
भा १ प
सं १ । आ २ । उ १० । तत्पर्याप्तानां—गु ७ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो ११ म ४ व ४ औ वैं आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ५ अ दे सा छे प । द ३ । ले ६ ।
भा १ प
भ २ । स ६ । सं १ । आ १ । उ १० । तदपर्याप्तानां—गु ४ मि सा अ प्र । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग २ म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे १ पु । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं ३ अ सा छे । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा । सं १ ।
भा १ प
आ २ । उ ८ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि । जी २ प अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ प । प ६ ।
भा १ प
प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ । क ४ ।

पद्मलेश्यामिथ्यादृष्टचपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । दे । इं १ । का १ । यो २ । वै मि । का । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा १ प

पद्मलेश्यासासादनर्गे । गु १ । सासा । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । सा । सं १ ।
भा १ प
आ २ । उ ५ ॥

पद्मलेश्यासासादनपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । सा । जी १ । प । प ६ । ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ अ । द २ । । ले ६ । भ १ । सं १ । सासा । सं १ ।
भा १ प
आ १ । उ ५ ॥

पद्मलेश्यासासादनाऽपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । सा । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । दे । इं १ । का १ । यो २ । वैमि । का । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा १ प

पद्मलेश्यासम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मिश्र । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १० । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । मिश्र । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । मिश्ररुचि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा १ प

ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १
भा १ प
मि । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ दे । इं १ पं । का १ त्र । यो २ वैमि का । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ ।
भा १ प
तत्सासादनानां—गु १ सा । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ ।
भा १
स १ सा । सं १ अ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ सा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ सा ।
भा १ प
जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ दे । इं १ । का १ । यो २ वैमि का । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृशां—
भा १ प
गु १ मिश्रं । जी १ । प ६, प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो १० । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३

पद्मलेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । असं । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । प । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ ।
भा १ प
आ २ । उ ६ ॥

पद्मलेश्याऽसंयतपर्य्याप्तकग्गे । गु १ । अ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । योग १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा १ प

पद्मलेश्याऽसंयताऽपर्य्याप्तकग्गे । गु १ । असं । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग २ । म । दे । इं १ । का १ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा १ प

पद्मलेश्यादेशव्रतिगळ्गे गु १ । देश । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ । म । ति । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । देश । द ३ । ले ६ । भ १ ।
भा १ प
सं ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

पद्मलेश्या-प्रमत्तसंयतग्गे । गु १ । प्र । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । गति १ । म । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का १ । आ का २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा ।
भा १ प
सं १ । आ १ । उ ७ ॥

मिश्राणि, सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ मिश्रं । सं १ । आ १, उ ५ । असंयतानां—गु १ अ, जी
भा १ प
२ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १ । यो १३ आहारकद्वयाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ ।
भा १ प
जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४, ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औका वैका । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । तद-
भा १ प
पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग २ म दे, इं १, का १, यो ३ औमि वैमि का, वे १ पुं, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ । ले २ क शु, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १,
भा १ प
आ २ उ ६ । देशव्रतानां—गु १ दे । जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म, इं १ । का १ । यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ दे, द ३ । ले ६ । भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६ ।
भा १ प
प्रमत्तानां—गु १ प्र, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १ म, इं १, का १ । यो ११ म ४ व ४ औ १ आ २, वे ३, क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ २ । स ३ उ वे क्षा,
भा१ प

पद्मलेश्येय अप्रमत्तग्गें । गु १ । अ प्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । गति १ । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ९ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १ प

शुक्ललेश्याजीवंगळ्गे । गु १३ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । ४ । २ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ २ । उ १२ ॥
भा १ शु

शुक्ललेश्यापर्याप्तकर्ग्गे । गु १३ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । ४ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । आ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ द ४ । च । अ । अ । के । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ १ । उ १२ ॥
भा १ शु

शुक्ललेश्या अपर्य्याप्तकर्ग्गे । गु ५ । मि । सा । अ । प्र । सयो । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । २ । सं ४ । ग २ । म । दे । इं । का १ । यो ४ । औ मि । वै मि । का । आ । मि । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ६ । सं ४ । अ । सा । छे । य । द ४ । ले २ क शु । भ २ । सं ५ । मि । सा ।
भा १ शु
उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ १० ॥

शुक्ललेश्यामिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का २ । कार्म्म का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ ।
भा १ शु
मि । सं १ । आ २ । उ ५ ॥

सं १, आ १ । उ ७ । अप्रमत्तानां—गु १ अप्र, जी १ प, प ६ । प्रा १०, सं ३, ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ म ४ व ४ औ १ । वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ ।
भा १ प
भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । शुक्ललेश्यानां—गु १३ । जी २ प अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सयोग ४ । २ । सं ४ । ग ३ ति म दे, इं १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । स ७ । द ४, ले ६ । भ २ । स ६ । सं १, आ २, उ १२ । तत्पर्याप्तानां—गु १३ । जी १ प, प ६,
भा १ शु
प्रा १० ४, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १, यो ११ म ४ व ४ औ १ वै १, आ १ । वे ३, क ४, ज्ञा ८ । सं ७, द ४ च अ अ के, ले ६ । भ २, स ६, सं १ । आ १, उ १२ । तदपर्याप्तानां—गु ५, मि सा अ प्र स,
भा १ शु
जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७, २, सं ४, ग २ म दे, इं १, का १ यो ४ औमि वैमि आमि का, वे १ पुं, क ४, ज्ञा ६, सं ४ अ सा छे य, द ४ ले २ क शु । भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, सं १, आ २, उ १० ।
भा १ शु
तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १, यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं १,
भा १ शु

शुक्ललेश्यामिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ १ ।
भा १ शु
उ ५ ॥

शुक्ललेश्यामिथ्यादृष्ट्यपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी १ । अ । प ६ । अ । ६ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । दे । इं १ । का १ । यो २ । वै मि १ । का १ । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । सं १ । मि सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा १ शु

शुक्ललेश्यासासादनर्गे । गु १ । सासा । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ १ । सं १ । सासा ।
भा १ शु
सं १ : आ २ । उ ५ ॥

शुक्ललेश्यापर्य्याप्तसासादनसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । सासा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वैक्रि का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । सासा सं १ ।
भा १ शु
आ १ । उ ५ ॥

शुक्ललेश्यासासादनापर्य्याप्तकर्गे । गु १ । सासा । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । दे । इं १ । का १ । यो २ । वै मि । का १ । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा १ शु

आ २, उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १, सं १,
भा १ शु
आ १, उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ मि, जी १ अ, प ६ । प्रा ७, सं ४, ग १ दे । इं १, का १, यो २, वैमि का, वे १ पुं, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २, ले २ क शु । भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ४ ।
भा १ शु
सासादनाना—गु १ सा, जी २ प, अ, प ६, ६, प्रा १०, ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे, इं १, का १, यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ । ले ६ ।
भा १ शु
भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १, यो १० म ४, व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, । द २, ले ६,
भा १ शु
भ १, स १ सा, सं १, आ १, । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १ दे, इं १, का १ । यो २ वैमि का । वे १ पु, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ द २, ले २ क शु ।
भा १ शु

शुक्ललेश्यासम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १ मिश्र। जी १। प। प६। प्रा १०। सं ४। ग ३। । ति। म। दे। इं १। का १। यो १०। म ४। वा ४। औ का १। वै का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। मिश्र। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। मिश्र। सं १। आ १। उ ५॥
भा १ शु

शुक्ललेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे गु १। असं। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो १३। आहारद्वयवर्ज्जित वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १।
भा १ शु
आ २। उ ६॥

शुक्ललेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकर्गें। गु १। असं। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो १०। म ४। वा ४। औ का १। वै का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १।
भा १ शु
आ १। उ ६॥

शुक्ललेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टयपर्य्याप्तकर्गें। गु १। असं। जी १। अ। प ६। अ प्रा ७। सं ४। ग २। म। दे। इं १। का १। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे १। पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले २ क शु। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १।
भा १ शु
आ २। उ ६॥

शुक्ललेश्यादेशव्रतिगळ्गे गु १। देश। जी। १। प ६। प्रा १०। सं ४ ग २। ति। म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। देश। द ३। ले ६।
भा १ शु
भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥

भ १, स १ सा। सं १। आ २। उ ४। सम्यग्मिथ्यादृशां–गु १ मिश्रं। जी १ प। प ६। प्रा १०।
सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १, यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३, क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि।
सं १ अ। द २। ले ६। म १, स १ मिश्रं। सं १। आ १। उ ५। असंयतानां—गु १ अ। जी २ प
भा १ शु
अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४, ग ३ ति म दे। इ १, का १। यो १३ आहारद्वयाभावात्।
वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३, ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २।
भा १ शु
उ ६। तत्पर्याप्तानां–गु १ अ। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १।
यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३।
भा १ शु
सं १। आ १। उ ६। तदपर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग २ म
दे। इं १। का १। यो ३ औमि वैमि का। वे १ पु। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३।
ले २ क। शु। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ६। देशव्रताना–गु १ दे। जी १ प।
भा १ शु
प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ ति म, इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ।

शुक्ललेश्याप्रमत्तसंयतर्गे । गु १ । प्र । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । म । इं १ । का १ । यो ११ । म४ । वा ४ । औ का १ । आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १ शु

शुक्ललेश्याअप्रमत्तसंयतंगे । गु १ । अ प्र । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १ शु

शुक्ललेश्या अपूर्व्वकरणप्रभृतिसयोगकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतं ओघभंगमेयक्कुं । अलेश्यरप्प अयोगकेवलिसिद्धपरमेष्ठिगळिगे ओघभंगमक्कुं । इंतु लेश्यामार्ग्गणे समाप्तमादुदु ॥

भव्यानुवाददोळु भव्यरुगळ्गे ओघभंगमक्कुं । अभव्यसिद्धरुगळ्गे । गु १ । मि । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । अभव्य । सं १ । मिथ्या । सं २ । आ २ । उ ५ ॥
६

अभव्यपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । अभव्य । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥
भा ६

सं १ दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तानां—गु १ प्र । जी २ प । अ । प ६ ६ । प्रा १०, ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ११ म ४ व ४ औ १ । आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । स ३ । सा छे प, द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ । अप्रमत्तानां—गु १ अ प्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ । अपूर्वकरणात्सयोगपर्यंताना अलेश्यायोगिसिद्धानां च ओघभंगो भवति । लेश्यामार्गणा गता ।
भा १ शु

भव्यानुवादे भव्यानामोघभंगः । अभव्यानां—गु १ मि । जी १४ प ६ ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७ ९ ७, ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३, सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ अ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ अ । स १ मि । सं २ । आ १ ।
६

अभव्यापर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । अ । सं ४ । ग ४ इं ५ । का ६ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । अभव्य । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥
भा ६

भव्यरुमभव्यरुमल्लद सिद्धपरमेष्ठिगळ्गे गुणस्थानातीतर्गें मुं पेळ्वंतेयक्कुं । इंतु भव्यमार्ग्गणे समाप्तमादुवु ॥

सम्यक्त्वानुवाददोळु सम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु ११ । असंयतादि । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । म । श्रु । अ । म । के । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ९ ॥
भा ६

सम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकर्गें । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । ४ । १ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । व ४ । औ का । वै का । आ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । म । श्रु । अ । म । के । सं ७ । द ४ । ले ६ भ १ । सं ३ । उ वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ९ ॥
भा ६

सम्यग्दृष्टि अपर्य्याप्तकंगें । गु ३ । अ । प्र । सयो । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ २ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो ४ । औ मि । वै मि । आ मि । कार्म्मं । वे २ । न पुं । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । के । सं ४ । अ । सा । छे । यथा । द ४ च । अ । अ के । ले २ शुक । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ॥
भा ४ क ते प शु

असंयतसम्यग्दृष्टिप्रभृति अयोगिकेवलिपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं ॥

उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ मि । जी ७ अ । प ६ ५ ४ अ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ अ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले २ क शु ।
भा ६
भ १ अ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ । भव्याभव्यलक्षणरहितसिद्धानां प्राग्वत् । भव्यमार्गणा गता ।

सम्यक्त्वानुवादे सम्यग्दृष्टीनां—गु ११ असंयतादीनि । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ ४ २ १ । सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १५ । वे ३, क ४, ज्ञा ५ म श्रु अ म के, सं ७, द ४ ले ६, भ १,
भा ६
स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ९ । तत्पर्याप्तानां—गु ११, जी १, प ६ ४, प्रा १० ४ १, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो ११ म ४ व ४ औ वै आ, वे ३ । क ४, ज्ञा ५ म श्रु अ म के, सं ७ । द ४, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ९ । तदपर्याप्ताना—गु ३ अ प्र स । जी १ अ ।
६
प ६ अ । प्रा ७ अ । २ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे २ न पुं । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ के । सं ४ अ सा छे य । द ४ च अ अ के । ले २ क शु । भ १ । स ३ उ वे
भा ४
क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ । असंयतादयोगिपर्यंतं मूलौघभंगः ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु ११ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । ४ । २ । १ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । सं ७ । द ४ । ले ६ ।
भा ६
भ १ । सं १ । सं १ । आ २ । उ ९ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकर्गे । गु ११ । जी १ । प ६ । प्रा १० । ४ । १ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । आ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । म । श्रु । अ । म । के । सं ७ । द ४ । ले ६ भ १ । सं १ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ९ ॥
भा ६

क्षायिकसम्यग्दृष्टचपर्य्याप्तकर्गे । गु ३ । अ । प्र । सयो । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । २ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ४ । औ मि । वै मि । आ मि । कार्म्म । वे २ । न । पुं । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । के । सं ४ । अ । सा । छे । यथा । द ४ । च । अ । अ । के । ले २ क शु । भ १ । सं १ । क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ॥
भा ६

क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंयतंगे । गु १ । अ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं १ । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा ६

क्षायिकसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकासंयतर्गे । गु १ । असं । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं १ । क्षा । स । सं १ ।
भा ६
आ १ । उ ६ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां—गु ११ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ ४ २ १ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं १ । आ २ ।
६
उ ९ । तत्पर्याप्तानां—गु ११ । जी १ । प ६ । प्रा १० ४ १ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ त्र । यो ११ म ४ व ४ औ वै आ, वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ म श्रु अ म के । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ १ । स १ क्षा ।
६
सं १ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ अ प्र स । जी १ अ । प ६ । प्रा ७, २ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ४ । औमि वैमि आमि का । वे २ न, पुं । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ के । सं ४ अ सा छे य । द ४ च अ अ के । ले २ क शु । भ १ । स १ क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ । तदसंयतानां–
भा ६
गु १ अ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं १ ।
६
आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ ।
६

क्षायिकसम्यग्दृष्ट्यसंयतापर्य्याप्तकग्गें । गु १ । असं । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे २ । न । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु । भ १ । सं १ ।
भा ४ क ते प शु
क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशव्रतिगळ्गे । गु १ । देश । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ९ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । दे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं १ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ३

क्षायिकसम्यग्दृष्टिप्रमत्तप्रभृति सिद्धपर्य्यंतमोघभंगमक्कुं ॥

वेदकसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु ४ । अ । दे । प्र । अ । जी २ प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । ले ६ भ १ । सं १ । वेदक । सं १ । आ २ । उ ७ ॥
भा ६

वेदकसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकग्गें । गु ४ । अ । दे । प्र । अ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ १ । वै १ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । वेदक ।
भा ६
सं १ । आ १ । उ ७ ॥

वेदकसम्यग्दृष्टि अपर्य्याप्तकग्गें । गु २ । असं । प्रम । जी १ अ । प ६ । अ । प्रा ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ४ । औ मि । वै मि । आ मि का । वे २ । न । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म श्रु अ । सं ३ अ । सा । छे । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । वेदक । सं १ । आ २ ।
भा ६
उ ६ ॥

भ १ । स १ क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । तदपर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे २ न पु । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु । भ १ । स १ क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । तद्देशव्रतानां—
भा ४ क ते प शु
गु १ दे । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ म ४ । व ४ । औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ दे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स १ क्षा । स १ । आ १ ।
भा ३
उ ६ । प्रमत्तात्सिद्धपर्यंतं ओघभंगो भवति ।

वेदकसम्यग्दृष्टीनां—गु ४ अ दे प्र अ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ५ अ दे सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ ।
६
स १ वे । सं १ । आ २ । उ ७ । तत्पर्याप्तानां—गु ४ अ दे प्र अ । जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४ । ग ४, इं १, यो ११ म ४ व ४ औ १ वै १, आ १, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ५ अ दे सा छे प, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ७ । तदपर्याप्तानां—गु २ अ प्र, जी १ अ, प ६, प्रा ७,
६

वेदकसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। असं। जी २ प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १३। म ४। वा ४। औ २। वै २। का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं १। वे। सं १। आ २।
भा ६
उ ६॥

वेदकसम्यग्दृष्ट्यसंयतपर्य्याप्तकर्ग्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १०। म ४। वा ४। औ का १। वै का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। असंयम। द ३। ले ६। भ १। सं १। वे। सं १। आ १। उ ६॥
भा ६

वेदकसम्यग्दृष्ट्यपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। अ। जी १। अ। प ६। प्रा ७। अ। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे २। षं। पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले २। भ १। सं १। वे। सं १। आ २। उ ६॥
भा ६

वेदकसम्यग्दृष्टिदेशव्रतिगळ्गे। गु १। देश। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। ति। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। म ४। वा ४। औ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। देश। द ३। ले ६। भ १। सं १। वे। सं १। आ १। उ ६॥
भा ३

वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तर्ग्गे। गु १। प्रम। जी २। प अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ११। म ४। वा ४। औ १। आ २। वे ३। क ४। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं ३। सा। छे। प। द ३। ले ६। भ १। सं १। वेद।
भा ३
सं १। आ १। उ ७॥

सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे २ न पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं ३ अ सा छे, द ३, ले २, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ६। तदसयतानां—गु १ अ, जी २ प, अ प ६, ६।
६
प्रा १०, ७ सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ अ, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ २, उ ६। तत्पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ प, प ६,
६
प्रा १०, सं ४, ग४, इं १, का १ त्र, यो १०, म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ६। तदपर्याप्तानां-गु १ अ, जी १ अ। प ६ अ,
६
प्रा ७ अ, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो ३ औमि वैमि का, वे २ षं पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले २ क शु, भ १, स १ वे, सं १, आ २, उ ६। देशव्रतानां—गु १ दे, जी १ प, प ६, प्रा १०,
भा ६
सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९ म ४ व ४ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३ ले ६,
३
भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ६। प्रमत्तानां-गु १ प्र, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ १, आ २, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ३ सा छे प,

वेदकसम्यग्दृष्ट्यप्रमत्तसंयतग्गें । गु १ । अप्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । वे । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा ३

उपशमसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु ८ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ६ । अ । दे । सा । छे । सू । य । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ उ । सं १ । आ २ । उ ७ ॥
भा ६

उपशमसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकग्गें । गु ८ । अ । दे । प्र । अ । अ । सू । उ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । व ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । स ६ । अ । दे । सा । छे । सू । य । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । उ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा ६

उपशमसम्यग्दृष्ट्यपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । असंयत । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ । दे । इं १ । का १ । यो २ । वै मि । का । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । उ । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा ३ शुभ

उपशमसम्यग्दृष्ट्यसंयतग्गें । गु १ । असंयत । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । उ । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा ६

द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ७। अप्रमत्तानां—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०,
३

सं ३, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ४, सं ३ सा छे प, द ३, ले ६। भ १,
३

स १ वे, सं १, आ १, उ ७। उपशमसम्यग्दृष्टीना—गु ८, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ४, इं १ । का १ त्र । यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ६ अ दे सा छे सू य । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ २ । उ ७। तत्पर्याप्तानां—गु ८ अ दे प्र अ अ अ
६

सू उ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ६ अ दे सा छे सू य । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ ।
६

उ ७ । तदपर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ वे । इं १ । का १ । यो २ वैमि का । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ ।
भा ३ शु

उ ६ । असंयतानां—गु १ अ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ २ । उ ६ ।
६

उपशमसम्यग्दृष्टघसंयतपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । उ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ६

उपशमसम्यग्दृष्टघसंयतापर्य्याप्तकग्गें । गु १ । अ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ । दे । इं १ । का १ त्र । यो २ । वै मि १ । का १ । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । उ । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा ३

उपशमसम्यग्दृष्टिदेशव्रतिगळ्गे । गु १ । दे । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ । ति । म । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । व ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । दे । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । उ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ३

उपशमसम्यग्दृष्टिप्रमत्तग्गे । गु १ । प्रम । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । व ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । उ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा ३

उपशमसम्यग्दृष्टिअप्रमत्तसंयतग्गें । गु १ । अप्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । उ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा २

उपशमसम्यग्दृष्टि अपूर्व्वकरणप्रभृति उपशांतकषायछद्मस्थवीतरागपर्य्यंतं ओघभंगमक्कुं । मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्ररुचिगळ्गे ओघभंगमेयप्पुवु । इंतु सम्यक्त्वमार्ग्गणे समाप्तमादुवु ॥

तत्पर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ६ ।
६

तदपर्याप्ताना—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ दे । इं १ । का १ त्र । यो २ वैमि का । वे १ पु । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । स १ उ । सं १ । आ २ । उ ६ ।
भा ३

देशव्रताना—गु १ दे । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ ति म । इं १ । का १ । यो ९ म ४ व ४ औ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ६ ।
३

प्रमत्तानां—गु १ प्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ म ४ व ४ । औ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ७ ।
भा ३

अप्रमत्तानां—गु १ अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ म । इं १ । का १ त्र । यो ९ म ४ व ४ औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ७ ।
भा ३

अपूर्वकरणादुपशांतकषायपर्यंतमोघभंगः । तथा मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्ररुचीनामपि । सम्यक्त्वमार्गणा गता ।

संज्ञानुवाददोळु । संज्ञिगळ्गे । गु १२ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं । ४ ग ४ । इं १ । का १ । यो १५ । । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ७ । द ३ । ले ६ भा ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ २ । उ १० ॥

संज्ञिपर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १२ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । आ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ७ । द ३ । ले ६ भा ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ १ । उ १० ॥

संज्ञ्यपर्य्याप्तकर्ग्गे । गु ४ । मि । सा । अ । प्र । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ४ । औ मि १ । वै मि १ । आ मि १ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं ३ । अ । सा । छे । द ३ । ले २ क शु भा ६ । भ २ । सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ॥

संज्ञिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ भा ६ । भ २ । सं १ मि । सं १ । आ २ । उ ५ ॥

संज्ञिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्ग्गे गु १ । मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ ६ । भ २ । सं १ । मि । सं । आ १ । उ ५ ॥

संज्ञ्यनुवादे सज्ञिना–गु १२ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ७ । द ३ । ले ६ ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ २ । उ १० । तत्पर्याप्ताना–गु १२ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ११ म ४ व ४ औ वै आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ७ । द ३ । ले ६ ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ १ । उ १० । तदपर्याप्तानां–गु ४ मि सा अ प्र । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं ३ अ सा छे । द ३ । ले २ क शु भा ६ । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ । तन्मिथ्यादृशां–गु १ मि । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां–गु १ मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि ।

संज्ञिमिथ्यादृष्टयपर्य्याप्तकग्गें । गु १। मि । जी १। अ। प ६। प्रा ७। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो ३। औ मि १। वै मि १। का १। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। च। अ। ले २ क शु। भ २। सं १। मि। सं १। आ २। उ ४॥
भा ६

संज्ञिसासादनंगे। गु १। सासा। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो १३। म ४। वा ४। औ २। वै २। का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ २। उ ५॥
भा ६

संज्ञिपर्य्याप्तकसासादनंगे। गु १। सासा। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो १०। म ४। वा ४। औ का १। वै १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६ भ १। सं १। सा। सं १। आ १। उ ५॥
भा ६

संज्ञिसासादनसम्यग्दृष्टयपर्य्याप्तकग्गें। गु १। सासा। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले २ क शु। भ १। सं १। सासा। सं १। आ २। उ ४॥
भा ६

संज्ञिमिश्रंगे। गु १। मिश्र। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १०। म ४। व ४। औ का १। वै का १। आहारकद्वयमिश्रद्वय-कार्म्मणरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ३। मिश्र। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। मिश्र। सं १। आ १। उ ५॥
भा ६

सं १ अ। द २। ले ६। भ २। स १ मि। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ मि। जी १ अ।
६
प ६। प्रा ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो ३ औमि वैमि का। वे ३। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ २। स १ मि। सं १। आ २। उ ४। सासादनानां—गु १ सा। जी २।
६
प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग ४। इं १। का १ त्र। यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ ५।
६
तत्पर्याप्तानां—गु १ सा। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १।
६
आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ सा। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो ३ औमि वैमि का। वे ३। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले २। भ १। स १ सा।
६
सं १। आ २। उ ४। मिश्राणां—गु १ मिश्रं। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १०। औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्रकार्मणाहारकद्वयाभावात्। वे ३। क ४। ज्ञा ३ मिश्राणि। सं १ अ।

संज्ञ्यसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। असं। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १३। आहारद्वयरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६॥
भा ६

संज्ञिपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। अ सं। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। काय १। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। । आ १। उ ६॥
भा ६

संज्ञ्यपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळ्ग। गु १। असं। जी १। प ६। प्रा ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ३। औ मि। वै मि। कार्म्मं। वे २। न पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले २ क शु। भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६॥
भा ६

संज्ञिदेशव्रतिप्रभृतिक्षीणकषायपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं।

असंज्ञिगळ्गे। गु १ मि। जी १२। संज्ञिद्वयरहित प ५। ५। ४। ४। प्रा ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग १ ति। इं ५। का ६। यो ४। औ २। का १। अनुभयवाग्योग १। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले ६। भ २। सं १। मि। सं १। आ २। उ ४॥
भा ४ अशुभ। ते

असंज्ञिपर्य्याप्तकंगे। गु १। मि। जी ६। अ। संज्ञ्यपर्य्याप्तरहित प ५। ४। प्रा ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग १। ति। इं ५। का ६। यो २। औ का १। अनुभयवचन। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले ६। भ २। सं १। मि। सं १।
भा ३। अशुभ। ते १
असंज्ञित्वं। आ १। उ ४॥

द २। ले ६। भ १। स १ मिश्रं। सं १। आ १। उ ५। असंयतानां—गु १ अ। जी २ प अ। प ६।
६
६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १३ आहारकद्वयाभावात्। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १। आ २। उ ६। तत्पर्याप्तानां—गु १ अ। जी १।
६
प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १०। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६। तदपर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ अ।
६
प ६। प्रा ७ अ। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ३ औमि वैमि का क वे २ पुं। न। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले २ क शु। भ १। स ३। सं १। आ २। उ ६। देशव्रतात्क्षीणकषाय-
भा ६
पर्यंतं मूलौघभंगः।

असंज्ञिनां—गु १ मि। जी १२ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ नहि। प ५ ५। ४ ४। प्रा ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग १ ति। इं ५। का ६। यो ४। औ २। का १ अनुभयवचनं। वे ३। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २ ले ६। भ १। स १ मि। सं १। आ २। उ ४।
भा ४ अ ३ शु १

असंज्ञ्यपर्य्याप्तकंगे। गु १। मि। जी ६। अ। प ५। ४। अ प्रा ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग १ ति। इं ५। का ६। यो २। औ मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले २ क शु। भ २। सं १। मि। सं १। असंज्ञि। आ २। उ ४॥
भा ३ अशु

संज्ञ्यसंज्ञिव्यपदेशरहितसयोगायोगि सिद्धरुगळ्गे मूलौघभंगमक्कुं। इंतु संज्ञिमार्ग्गणे समाप्तमादुवु॥

आहारानुवाददोळु आहारिगळ्गे। गु १३। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। ४। २। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १४। कार्म्मणकाययोगरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६। भ २। सं ६। सं २।
६
आ १। उ १२॥

आहारिपर्य्याप्तकग्गें। गु १३। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ५। ४। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ११। म ४। वा ४। औ का। वै का। आ का। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६। भ २। सं ६। सं २। आ १। उ १२॥
भा ६

आहारिअपर्य्याप्तकंगे। गु ५। मि। सा। अ। प्र। सयो। जी ७। अ। प ६। ५। ४। अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। २। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३। औ मि। वै मि। आ मि। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। म। श्रु। अ। के। सं ४। अ। सा। छे। यथा। द ४। ले १ क। भ २। सं ५। मि। सा। उ। वे। क्षा। सं २। आ १। उ १०॥
भा ६

तत्पर्याप्तानां–गु १ मि। जी ६ संज्ञिपर्याप्तो नहि। प ५। ४। प्रा ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग १ति। इं ५। का ६। यो २ औ। अनुभयवचनं। वे ३। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले ६। भ २। स १
भा ४ अ ३ शु १
मि। सं १ अ। आ १। उ ४। तदपर्याप्ताना–गु १ मि। जी ६ अ। प ४ अ। प्रा ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग १ ति। इं ५। का ६। यो २ औमि का। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले २ क शु।
भा ३ अशु
भ २। स १ मि। सं १ अ। आ २। उ ४। संज्ञासंज्ञिव्यपदेशरहितानां सयोगायोगिसिद्धानां मूलौघभंगः। संज्ञिमार्गणा गता।

आहारानुवादे आहारिणां–गु १३, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, ४, २, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १४ कार्मणो नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६, भ २, स ६, सं २, आ १, उ १२। तत्पर्याप्ताना–गु १३, जी ७, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७,
६
६, ४, ४, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ११ म ४ व ४ औ वै आ, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६,
६
भ २, स ६, सं २, आ १, उ १२। तदपर्याप्तानां–गु ५ मि सा अ प्र स, जी ७ अ, प ६, ५, ४, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, २, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि आमि, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु म श्रु अ के, सं ४ अ सा छे यथा, द ४, ले १ क, भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, सं २, आ १, उ १०।
भा ६

आहारिमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १२। आहारक-द्वयरहित। कार्म्मणरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६।
भा ६
भ २। सं १। मि। सं २। आ १। उ ५॥

आहारिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकंगे। गु १। जी ७। प। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ५। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १०। आहारद्वयमिश्रयोगत्रयरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ १।
भा ६
उ ५॥

आहार्य्यपर्य्याप्तकमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो २। औमि। वैमि। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १ अ। द २। ले १ क। भ २। सं १ मि। सं २। आ १। उ ४॥
भा ६

आहारिसासादनसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। सासा। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १२। म ४। वा ४। औ २ वै २। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ५॥
भा ६

आहारिसासादनसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकंगे। गु १। सासा। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ५॥
भा ६

मिथ्यादृष्टीनां—गु १ मि, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १२ आहारद्वयकार्मणाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३, कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ १, उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७ प, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९,
६
८, ७, ६, ४, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १० आहारकद्वयमिश्रत्रयाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ १, उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७, प ६, ५, ४,
६
प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो २ औमि वैमि, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २, ले १ क, भ २, स १ मि, सं २, आ १, उ ४। सासादनानां—गु १ सा, जी २ प अ, प ६, ६,
भा ६
प्रा १०, ७, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १२ म ४ व ४ औ २, वै २, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ सा, सं १, आ १, उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु १ सा, जी १, प ६, प्रा १०,
६
सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १०, म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २,

आहारिसासादनसम्यग्दृष्टिअपर्य्याप्तकंगे । गु १ । सासा । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो २ । औ मि । वै मि । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले १ क । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ १ । उ ४ ॥
भा ६

आहारिमिश्रंगे । गु १ । मिश्र । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । मिश्र । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा ६

आहारिअसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । असं । जी २ । प अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ २ । वै २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ६

आहार्य्यसंयतसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकंगे । गु १ । असं । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ६

आहार्य्यसंयतसम्यग्दृष्टयपर्य्याप्तकंगे । गु १ । असं । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो २ । औ मि । वै मि । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले १ क । भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ६

ले ६, भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १, यो २ औमि वैमि, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले १ क, भ १, भा ६ स १ सा, सं १, आ १, उ ४ । मिश्राणां—गु १ मिश्रं, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि, सं १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १, उ ५ । असंयतानां—गु १ अ, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १२ म ४, व ४ औ २ वै २, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६ । तदपर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो २ औमि वैमि, वे २ पुं, न, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द ३ म अ अ, ले १ क, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६ ।
भा ६

आहारिदेशसंयतंगे। गु १। देश। जी १। प ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग २। ति। म। इं १। का १। यो ९। म ४। वा ४। औ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। देश। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥
भा ३

आहारिप्रमत्तसंयतंगे। गु १। प्र। जी २ प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १ म। इं १। का १। यो ११। म ४। वा ४। औ १। आ २। वे ३। क ४। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं ३। सा। छे। प। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ७॥
भा ३

आहार्य्यप्रमत्तसंयतंगे। गु १। अ प्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १। म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३। सा। छे। प। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ७॥
भा ३

आहार्य्यपूर्व्वकरणंगे। गु १ अपू। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं २। सा। छे। द ३। ले ६। भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥
भा १

आहारिप्रथमभागानिवृत्तिगळ्गे। गु १। अनि। जी १। प ६। प्रा १०। सं २। मै। प॥ ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं २। सा। छे। द ३। ले ६। भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥
भा १

शेषचतुरनिवृत्तिकरणग्गों ओघभंगमक्कुं॥

आहारिसूक्ष्मसांपरायसंयतंगे। गु १। सू। जी १। प ६। प्रा १०। सं १। परिग्रह। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। वे ०। क १। सूक्ष्मलोभ। ज्ञा ४। सं १। सू। द ३।

देशव्रताना–गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६। प्रमत्तानां–गु १ प्र, जी २ प अ, प ६,
३
६, प्रा १०, ७, सं ४, ग १ म, इं १, का १, यो ११ म ४ व ४ औ १ आ २, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ३ सा छे प, द ३, ले ६, भ १, स ३, सं १, आ १, उ ७। अप्रमत्ताना–गु १ अ, जी १, प ६,
भा ३
प्रा १०, सं ३, ग १ म, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ४, सं ३ सा छे प, द ३, ले ६, भ १, स ३,
३
सं १, आ १, उ ७। अपूर्वकरणाना–गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, सं ३, ग १ म, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ४, सं २ सा छे, द ३, ले ६, भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ७। अनिवृत्तीनां
१
प्रथमभागे—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, सं २ मै प, ग १ म, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ४, सं २ सा छे, द ३, ले ६, भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ७। शेषचतुर्भागेष्वोघभंगः, सूक्ष्मसांपरायाणां–
१
गु १ सू, जी १, प ६, प्रा १०, सं १ प, ग १, इं १, का १, यो ९ वे ०, क १, सूक्ष्मलोभः, ज्ञा ४, सं १

ले ६। भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥
भा १

आहार्य्युपशांतकषायवीतरागछद्मस्थंगे। गु १। उप। जी १। प ६। प्रा १०। सं ०। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। म ४। वा ४। औ का १। वे ०। क ०। ज्ञा ४। म श्रु। अ। म। सं १। यथा। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं २। उ। क्षा। सं १।
भा १
आ १। उ ७॥

आहारिक्षीणकषायछद्मस्थवीतरागंगे। गु १। क्षीण। जी १। प ६। प्रा १०। सं ०। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। योग ९। वे ०। क ०। ज्ञा ४। सं १। यथा। द ३। ले ६।
भा १
भ १। सं १। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥

आहारिसयोगकेवलिभट्टारकंगे। गु १ सयोग के। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा ४। २। सं ०। ग १। म। इं १। पं। का १। त्र। यो ६। म २। वा २। औ २। वे ०। क ०। ज्ञा १। के। सं १। यथा। द १ के। ले ६। भ १। सं १। क्षा। सं ०। आ १। उ २॥
भा १

ई प्रकारदिवं सयोगकेवलिभट्टारकंगे पर्य्याप्तापर्य्याप्ताळापद्वयं वक्तव्यमप्पुदु॥

अनाहारिगळ्गे। गु ५। मि सा। अ। सयोग अयोगि। जो। ८। एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिगळेंब अपर्य्याप्तकरु अयोगिकेवलिरहितमागि। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। २। १। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १। कार्म्मण। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। म। श्रु। अ। के। सं २। असंयममुं यथाख्यातमुं। द ४। ले १ शु। भ २।
भा ६
सं ५। मि। सा। उ। वे। क्षा। सं २। आ १। अनाहार उ १०॥

सू, द ३, ले ६, भ १, स २, उ क्षा, सं १, आ १, उ ७। उपशातकषायाणां-गु १ उ, जी १, प ६,
१
प्रा १०, सं ०, ग १ म, इं १, का १, यो ९ म ४ व ४ औ, वे ०, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं १ य, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ७। क्षीणकषायाणा—गु १ क्षी, जी १, प ६,
१
प्रा १०, सं ४, ग १ म, इं १, का १ त्र, यो ९, वे ०, क ०, ज्ञा ४, सं १ य, द ३, ले ६, भ १, स १ क्षा,
१
सं १, आ १, उ ७। सयोगिकेवलिनां—गु १ सयो, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा ४, २, सं ०, ग १ म, इं १, का १ त्र, यो ६ म २ व २ औ २, वे ०, क ०, ज्ञा १ के, सं १ य, द १ के, ले ६, भ १, स १ क्षा,
१
सं ०, आ १, उ २। एषामपर्याप्तालापोऽपि वक्तव्यः।

अनाहारिणां—गु ५ मि सा अ स अ, जी ८ सप्ताऽपर्याप्ता एकोऽयोगिनः, प ६, ५, ४, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २ १, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १, वे १, क ४, ज्ञा ६ कु कु म श्रु अ के, सं २ अ य, द ४,

अनाहारकमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १ । कार्म्म । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले १ शु । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । अनाहार उ ४ ॥
भा ६

अनाहारिसासादनसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । सासा । जी १ । अ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १ । कार्म्मणकाय । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले १ । शु । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ १ । अनाहार । उ ४ ॥
भा ६

अनाहारि असंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । असं । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १ । कार्म्मणकाय । वे २ । षं । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले १ शु । भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । अनाहार । उ ६ ॥
भा ६

अपर्य्याप्तकत्वविदमुं प्रमत्तसंयतंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ । पं । का १ त्र । यो १ । आहारमिश्रमप्पुदरिंदमौदारिकापेक्षेयिननाहारियक्कुं । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले १ क । भ १ । सं ३ । सं १ ।
भा ३
आ १ । उ ६ ॥

अनाहारिसयोगिकेवलिगळ्गे । गु १ सयोग । जी १ । अ । प ६ । अ प्रा २ । कायबल । आयुष्य । सं । ० । ग १ । म । इं । पं । का १ त्र । यो १ । कार्म्मण । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । सं १ । यथा । द १ के । ले १ । भ १ । सं १ । क्षा । सं ० । आ १ । अनाहार । उ २ ॥
भा १

ले ६, भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, सं २, आ १, उ १० । तन्मिथ्यादृशां–गु १ मि, जी ७, प ६ ५ ४,
भा ६
प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले १ शु । भ २ । स १ मि । सं २ । आ १ अ । उ ४ । सासादनानां—गु १ सा । जी १ अ ।
भा ६
प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले १ शु । भ १ । स १ सा । सं १ अ । आ १ अ । उ ४ । असंयतानां—गु १ अ ।
भा ६
जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १ का । वे २ पु । षं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ । द ३ । ले १ शु । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ अ । उ ६ । प्रमत्तानां—
भा ६
गु १ प्र । जी १ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ । का १ । यो १ आमि तेन औदारिकापेक्षया-ऽनाहारः वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं २ सा छे । द ३ । ले १ क । भ १ । स २ । सं १ ।
भा ३
आ १ । उ ६ । सयोगिकेवलिनां—गु १ स । जी १ अ । प ६ अ । प्रा २ । कायबलं । आयुष्यं । सं ० । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो १ का । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । सं १ य । द १ के । के ।
भा १

अयोगिकेवलिभट्टारकंगे। गु १ अयो। जी १। प। प ६। प्रा १। आयुष्य। सं ०। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। सं १ यथा। द १ के। ले ६। भा ० भ १। सं १। क्षा। सं १। आ १ अनाहार। उ २॥

अनाहारि सिद्धपरमेष्ठिगळगे। गु ०। जी ०। प ०। प्रा ०। गति १ सिद्धगति। इं ०। का ०। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १। के। सं ०। द १ के। ले ०। भ ०। सं १। क्षा। सं ०। आ १। अनाहार। उ २॥

---

१ भ १। स १ क्षा। सं ०। आ १ अ। उ २। अयोगकेवलिनां—गु १ अ। जी १ प। प ६। प्रा १ आयुः। सं ०। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। सं १ य। द १ के। ले ६। भा ० भ १। स १ क्षा। सं ०। आ १ अ। उ २। सिद्धानां—गु ०। जी ०। प ०। प्रा ०। सं ०। ग १ सिद्धगतिः। इं ०। का ०। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। सं ०। द १ के। ले ०। भ ०। सं १ क्षा। सं ०। आ १ अ। उ २॥ ७२८॥

[ऊपर कर्नाटक टीका और तदनुसारी संस्कृत टीकामें गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंमें बीस प्ररूपणाओंका कथन सांकेतिक अक्षरोके द्वारा किया है। उन संकेतोंको समझ लेनेसे उक्त प्ररूपणाओंको समझ लेना सरल है।

प्ररूपणा और उनके संकेत अक्षर इस प्रकार हैं।

गु (गुणस्थान १४) जी (जीवसमास १४) प (पर्याप्ति ६) प्रा (प्राण १०) सं (संज्ञा ४) ग (गति ४) इं (इन्द्रिय ५) का (काय ६) यो (योग १५) वे (वेद ३), क (कषाय ४) ज्ञा (ज्ञान ८) सं (संयम ७) द (दर्शन ४) ले (लेश्या ६) भ (भव्यत्व-अभव्यत्व) स (सम्यक्त्व ६) सं (संज्ञी-असंज्ञी) आ (आहारक-अनाहारक)।

इन बीस प्ररूपणाओंमें-से जहाँ जितनी सम्भव होती हैं उनकी सूचना संकेताक्षरके आगे संख्यासूचक अंक लिखकर दी गयी है। जैसे पृ. ९५० मे पर्याप्त गुणस्थानवालोंके गुणस्थान १४ कहे हैं। जीवसमास ७ पर्य्याप्त सम्बन्धी कहे है। पर्याप्ति ६, ५, ४ कही हैं क्योंकि पंचेन्द्रियके छह, विकलेन्द्रियके पाँच और एकेन्द्रियके चार पर्याप्तियाँ होती हैं। प्राण १०, ९, ८, ७, ६, ४, ४, १ कहे हैं क्योंकि संज्ञीके दस प्राण होते है शेष के एक-एक इन्द्रिय घटती जाती है। एकेन्द्रियके चार ही प्राण होते हैं। सयोगकेवलीके चार और अयोगकेवलीके एक प्राण होता है। संज्ञा चारो होती हैं। गति चार, इन्द्रिय एकसे लेकर पाँच तक, काय छह, योग ग्यारह (चार मन, चार वचन, तीन पूर्णकाय योग) होते हैं। वेद तीन, कषाय चार, ज्ञान आठ (पाँच और तीन मिथ्या), संयम सात (संयम मार्गणाके सात भेद है), दर्शन चार, लेश्या छह, भव्यत्व-अभव्यत्व, सम्यक्त्व मार्गणाके ६ भेद, संज्ञी-असंज्ञी, आहारक होते हैं। उपयोग बारह—आठ ज्ञान, चार दर्शन। अपर्याप्त गुणस्थानवालोंके गुणस्थान पाँच हैं—मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, प्रमत्त (आहारककी अपेक्षा), सयोगकेवली (समुद्घात अवस्थाकी अपेक्षा)। जीव समास सात अपर्याप्त होते है। पर्याप्ति छह पाँच चार हैं। प्राण अपर्याप्त अवस्थामें सात, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो होते हैं। एकेन्द्रियके तीन और समुद्घात केवलीके दो होते हैं। संज्ञा चार, गति चार, इन्द्रिय पाँच, काय छह होते हैं। योग चार होते हैं—औदारिक मिश्र, वैक्रियिक मिश्र, आहारकमिश्र, कार्मण। वेद तीन, कषाय चार, ज्ञान छह होते हैं—कुमति, कुश्रुत, मति, श्रुत, अवधि, केवल। संयम मार्गणाके चार भेद होते हैं—असंयम, सामायिक,

मणपज्जवपरिहारो पढमुवसम्मत्त दोण्णि आहारा।
एदेसु एक्कपगदे णत्थित्तियसेसयं जाणे ॥७२९॥

मनःपर्य्यायः परिहारः प्रथमोपशमसम्यक्त्वं द्वावाहारौ। एतेष्वेकस्मिन् प्रकृते नास्तीत्यशेषकं जानीहि ॥

मनःपर्य्यायज्ञानमुं परिहारविशुद्धिसंयममुं प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुं आहारकाहारकमिश्रमुमितिवरोळ्मोंदु प्रकृतमागुत्तं विरलुळिदुमिल्लेंदितु शिष्य नीनरियेंदु संबोधने माडल्पट्टुदु।

मनःपर्ययज्ञान परिहारविशुद्धिसंयमः प्रथमोपशमसम्यक्त्वं आहारकद्विकं च इत्येतेषु मध्ये एकस्मिन् प्रकृते प्रस्तुते अधिकृते सति अवशेषं उद्वरितं नास्ति-न संभवतीति जानीहि [तेषु मध्ये एकस्मिन्नुदिते तस्मिन् पुंसि तदा अन्यस्योत्पत्तिविरोधात्] ॥७२९॥

छेदोपस्थापना, यथाख्यात। दर्शन चार, लेश्या छह, भव्यत्व-अभव्यत्व, सम्यक्त्व मार्गणाके पाँच भेद सम्यक्-मिथ्यात्वके बिना। संज्ञी-असंज्ञी, आहारक-अनाहारक, उपयोग दस-विभंग और मनःपर्यय अपर्याप्त अवस्थामें नहीं होते।

इसी तरह आगे चौदह गुणस्थानोंमें क्रमशः बीस प्ररूपणाओंका कथन संकेताक्षर द्वारा किया है। उसके पश्चात् क्रमशः चौदह मार्गणाओंमें कथन किया है।

गति मार्गणामें कथन करते हुए सातों नरकोंमें, तिर्यंचके भेदोंमें, मनुष्योंमे, देवोंमें गुणस्थानोंको आधार बनाकर बीस प्ररूपणाओंका कथन विस्तारसे किया है। जैसे नरकगतिमें—नारक सामान्य, नारक सामान्य पर्याप्त, सामान्य नारक अपर्याप्त, सामान्य नारक मिथ्यादृष्टि, सामान्य नारक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि, सामान्य नारक अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि, सामान्य नारक सासादन सम्यग्दृष्टि, नारक सामान्य मिश्र, नारक सामान्य असंयत, सामान्य नारक पर्याप्त असंयत, सामान्य नारक अपर्याप्त असंयत, घर्मा सामान्य नारक, घर्मा सामान्य नारक पर्याप्त, घर्मा सामान्य नारक अपर्याप्त, घर्मामिथ्यादृष्टि, घर्मानारक अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि, घर्मा पर्याप्त सासादन, घर्मा मिश्रगुणस्थान, घर्मा असंयत गु., घर्मा पर्याप्त नारक असंयत, घर्मा नारक अपर्याप्त असंयत सम्यग्दृष्टि, द्वितीयादि पृथ्वी नारक सामान्य, द्वितीयादि पृथ्वी नारक पर्याप्त, द्वितीयादि पृथ्वी नारक अपर्याप्त, द्वितीयादि पृथ्वी नारक सामान्य मिथ्यादृष्टि, द्वितीयादि पृथ्वी नारक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि, द्वितीयादि पृथिवी नारक अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि, द्वितीयादि पृथिवी नारक सासादन, द्वितीयादि पृथ्वी नारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि, द्वितीयादि पृथ्वी नारक असंयत सम्यग्दृष्टि, इतने विस्तारसे बीस प्ररूपणाओंका प्रत्येकमें कथन किया है। इसी प्रकार तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति, इन्द्रिय मार्गणाके भेद-प्रभेदोंमें बीस प्ररूपणाओका कथन किया है।

पहले हमने पं. टोडरमलजीकी टीकाके अनुसार नकशों द्वारा अंकित करनेका विचार किया था। किन्तु उनमें भी संकेताक्षरोंका ही प्रयोग करना पड़ता। और कम्पोजिंगमें भी कठिनाई आ जाती। ग्रन्थका भार भी बढ जाता इससे उसे छोड़ दिया। संकेताक्षर समझ लेनेसे टीकाको समझा जा सकता है।]

मनःपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धि संयम, प्रथमोपशम सम्यक्त्व, आहारक, आहारक-मिश्र इनमें-से एक प्राप्त होनेपर उसके साथ शेष सब नहीं होते ॥७२९॥

---

१. ब प्रतौ कोष्ठान्तर्गतः पाठो नास्ति।

बिदियुवसमसम्मत्तं सेढीदो दिण्ण अविरदादीसु ।
सगसगलेस्सामरिदे देव अपज्जत्तगेव हवे ॥७३०॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं श्रेणितोऽवतीर्णाविरतादिषु । स्वस्वलेश्यामृते देवापर्य्याप्तके एव भवेत् ॥

असंयतादिगळोळु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वसंभवमं बुपशमश्रेणियिदमिळिदु संक्लेशवशदिंदमसंयमादियोळु परिपतितरादरोळंदु निश्चैसूद्र । आ द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिगळप्प असंयतादिगळु तंतम्म लेश्येगळोळ्कूडि मृतरादरादोडे देवापर्य्याप्तकासंयतसम्यग्दृष्टिगळे नियमदिंदमप्परेकेंदोडे बद्धदेवायुष्यंगल्लदे मरणमुपशमश्रेणियोळु संभविसदु । इतरायुस्त्रयबद्धायुष्यंगे देशसंयममुं सकलसंयममुं संभविसदप्पुदरिदं ।

सिद्धाणं सिद्धगई केवलणाणं च दंसणं खयियं ।
सम्मत्तमणाहारं उवजोगाणक्कमपउत्ती ॥७३१॥

सिद्धानां सिद्धगतिः केवलज्ञानं च दर्शनं क्षायिकं, सम्यक्त्वमनाहारः उपयोगयोरक्रमप्रवृत्तिः ॥

सिद्धपरमेष्ठिगळ्गे सिद्धगतियुं केवलज्ञानमुं केवलदर्शनमुं क्षायिकसम्यक्त्वमुं अनाहारमुं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयक्ककमप्रवृत्तियुमरियल्पडुगुं ।

मत्तं सिद्धपरमेष्ठिगळु :—

गुणजीवठाणरहिया सण्णापज्जत्तिपाणपरिहीणा ।
सेसणवमग्गणूणा सिद्धा सुद्धा सदा होंति ॥७३२॥

गुणजीवस्थानरहिताः संज्ञापर्य्याप्तिप्राणपरिहीनाः । शेषनवमार्गणोनाः सिद्धाः शुद्धास्सदा भवंति ॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं संभवति । केषु ? उपशमश्रेणितः संक्लेशवशादधः असंयतादिषु अवतीर्णेषु । ते च असंयतादयः स्वस्वलेश्यया म्रियंते तदा देवापर्याप्तासंयता एव नियमेन भवंति । कुतः ? बद्धदेवायुष्कादन्यस्य उपशमश्रेण्यां मरणाभावात् । शेषत्रिबद्धायुष्काणां च देशसकलसंयमयोरेवासंभवात् ॥७३०॥

सिद्धपरमेष्ठिना सिद्धगतिः केवलज्ञान केवलदर्शनं क्षायिकसम्यक्त्वं अनाहारः ज्ञानदर्शनोपयोगयोरक्रमप्रवृत्तिश्च भवति ॥७३१॥

संक्लेश परिणामोंके वश उपशमश्रेणिसे नीचे उतरनेपर असंयत आदि गुणस्थानोंमें द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होता है। वे असंयत आदि जब अपनी-अपनी लेश्याके अनुसार मरण करते हैं तो नियमसे देवगतिमें अपर्याप्त असंयत ही होते हैं, क्योंकि जिसने देवायुका बन्ध किया है उसके सिवा अन्यका उपशमश्रेणिमें मरण नहीं होता। जिन्होंने देवायुके सिवाय अन्य तीन आयुमें-से किसी एकका भी बन्ध किया है उसके तो देशसंयम और सकलसंयम ही नहीं होते ॥७३०॥

सिद्ध परमेष्ठीके सिद्धगति, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, अनाहार और ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगकी एक साथ प्रवृत्ति, इतनी प्ररूपणाएँ होती हैं ॥७३१॥

चतुर्द्दशगुणस्थानरहितरुं चतुर्द्दशजीवसमासरहितरुं चतुःसंज्ञारहितरुं षट्पर्य्याप्तिरहितरुं दशप्राणरहितरुं सिद्धगति ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वमनाहारमें ब मार्ग्गणापंचकमल्लदुळिद नव मार्ग्गणारहितरुं सिद्धपरमेष्ठिगळु द्रव्यभावकर्म्मरहितरप्पुदरिंदं सदा शुद्धरुमप्परु ।

णिक्खेवे एयट्ठे णयप्पमाणे णिरुत्तिअणियोगे ।
मग्गइ वीसं भेयं सो जाणइ अप्पसब्भावं ॥७३३॥

निक्षेपे एकार्थे नयप्रमाणे निरुक्त्यनुयोगे । मृगयति विंशतिभेदं स जानाति जीवसद्भावं ॥

नामस्थापनाद्रव्यभावतो यें ब निक्षेपदोळु प्राणभूतजीवसत्वमें बेकार्त्थंदोळं द्रव्यार्त्थिकपर्य्यायार्त्थिकमें ब नयदोळं मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानकेवलमें ब प्रमाणदोळं जीवति जीविष्यति जीवितपूर्व्वो वा जीवः एंब निरुक्तियोळं 'किं कस्स केण कत्थ व केवचिरं कति विहा य भावाइ' एंब अनुयोगदोळं 'निर्द्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः साध्या' एंब नियोगदोळं आवनानोर्व्वं भव्यं गुणस्थानादिविंशतिभेदमं तिळिदुमातं जीवसद्भावमनरिगुं ।

चतुर्दशगुणस्थानचतुर्दशजीवसमासरहिताः चतुःसंज्ञाषट्पर्याप्तिदशप्राणरहिताः सिद्धगतिज्ञानदर्शनसम्यक्त्वानाहारेभ्यः शेषनवमार्गणारहिताः सिद्धपरमेष्ठिनो द्रव्यभावकर्माभावात् सदा शुद्धा भवंति ॥७३२॥

नामादिनिक्षेपे प्राणभूतजीवसत्त्वलक्षणैकार्थे द्रव्यार्थिकपर्यायिकनये मतिज्ञानादिप्रमाणे जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीव इति निरुक्तौ 'किं कस्स केण कत्थवि केव चिरं कतिविहा य भावा' इति च निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः साध्या इति च[1] नियोगिप्रश्ने यो भव्यः गुणस्थानादिविंशतिभेदान् जानाति स जीवसद्भावं जानाति ॥७३३॥

सिद्ध परमेष्ठी चौदह गुणस्थान, चौदह जीवसमास, चार संज्ञा, छह पर्याप्ति, दस प्राण इन सबसे रहित होते हैं। तथा सिद्धगति, ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व और अनाहारके सिवाय शेष नौ मार्गणाओंसे रहित होते हैं। और द्रव्यकर्म-भावकर्मका अभाव होनेसे सदा शुद्ध होते हैं ॥७३२॥

नामादि निक्षेपमें, एकार्थमें, द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयमें, मतिज्ञानादि प्रमाणमें, निरुक्ति और अनुयोगमें जो भव्य गुणस्थान आदि बीस भेदोंको जानता है वह जीवके अस्तित्वको जानता है। नामस्थापना द्रव्यभावनिक्षेप प्रसिद्ध है। प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व ये चारों एकार्थक हैं इन चारोंका अर्थ एक ही है। जो जीता है जियेगा और पूर्वमें जी चुका है यह जीव शब्दकी निरुक्ति है—जो उसे त्रिकालवर्ती सिद्ध करती है। जीवका स्वरूप क्या है, स्वामी कौन है, साधन क्या है, कहाँ रहता है, कितने काल तक रहता है, कितने उसके भेद हैं इस प्रकार निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान ये अनुयोग हैं। इनके उत्तरमें जो बीस भेदोंको खोजकर जानता है उसे आत्माके अस्तित्वकी श्रद्धा होती है ॥७३३॥

१. ब नियोगे यो ।

अज्जज्जसेणगुणगणसमूहसंधारि अजियसेणगुरु ।
भुवणगुरू जस्स गुरू सो राओ गोम्मटो जयउ ॥७३४ ॥

आर्य्यार्य्यसेनगुणगणसमूह संधार्य्यजितसेनगुरुर्भुवनगुरुर्य्यस्य गुरुः स राजो य गोम्मटो जयतु ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु-भूमंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धांत-चक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजित ललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्ण्णाटकवृत्ति-जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु आळापाधिकारं निरूपितमाद्दुदु ॥

गणनेगळिविद्दं गुणगणमणिभूषण धर्म्मभूषणश्रीमुनि स–। द्गणियुपरोधदि नानोणद्दं गुणि गोम्मटसारवृत्तियं केशण्णं ।

आर्यार्यसेनगुणगणसमूहसंधार्यजितसेनगुरुः भुवनगुरुर्यस्य गुरुः स राजा गोम्मटो जयतु ॥७३४॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिका-ख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु ओघादेशयोर्विंशतिप्ररूपणालाप नाम द्वाविंशतिमयोऽधिकारः समाप्तः ॥२२॥

आर्य आर्यसेनके गुण और गणसमूहको धारण करनेवाले अजितसेन—जो तीन जगत्के गुरु हैं—वे जिसके गुरु हैं वह गोम्मटराज चामुण्डराय जयवन्त हों ॥७३४॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णी-के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डके अन्तर्गत बीस प्ररूपणाओंमें-से आलाप प्ररूपणा नामक बाईसवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥२२॥

प्रशस्ति

स्वस्ति श्रीनृपशालिवाहन शके १२०६ वर्षे क्रोधिनाम संवत्सरे फाल्गुणमासे सुक्लपक्षे शिशिरर्तौ उत्तरायणे अष्ठां सष्टिम्यां तिथौ बुधवारे सत्तावीसघटिका उपरांतिक सप्तम्यां तिथौ अनुराधानक्षत्रे तीस घटिका उपरांतिक ज्येष्ठा नक्षत्रे व्याघातनामयोगे वह घटिका उपरांतिक हर्षणनामयोगे बवकरणे सत्तावीस घटिका यस्मिन् पंचांगसिद्धि तत्र मोळेद सुभस्थाने श्रीपंच परमेष्ठिदिव्यचैत्यालयस्थिते,

श्रीमत्केशवण्ण विरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटक-
वृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोलु जीवकांडं
संपूर्णमादुदु ।

मंगळं भूयात् ॥

श्री श्री श्री ॥

गो० जीवकाण्डगाथानुक्रमणी

इति जीवकाण्डप्रकरणस्याकारादिक्रमणिकासूची ।

गो० जीवकाण्डटीकागतपद्यानुक्रमणी

□

विशिष्ट शब्द-सूची

□